

GOVERNMENT OF INDIA  
DEPARTMENT OF ARCHAEOLOGY  
**CENTRAL ARCHAEOLOGICAL  
LIBRARY**

---

ACC. NO. 8684

CALL NO. 891.3709 Upa

D.G.A. 79.

Acc N.  
8684





# पालि साहित्य का इतिहास

Pāli Sāhitya Kā itihāsa

लेखक

भरतसिंह उपाध्याय, एम० ए०

अन्ध्रप्रदेश हिन्दी-विभाग, जैन कालेज, वडौत

Bharat Singh upadhyaya

8684



891.3709

Upa

Ref 891.370109  
Jha

२००६

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

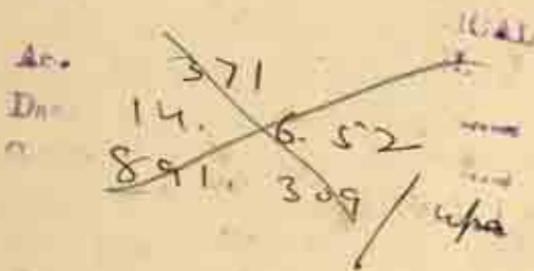
मूल्य १० )

CENTRAL ARCHAEOLOGICAL  
LIBRARY, NEW DELHI,  
Acc. No. .... 86.84 .....  
Date. .... 10.4.57 .....  
Call No. .... 591.3209  
Upa

मुद्रक—रामशतान त्रिपाठी, सम्मेलन मुद्रणालय, प्रयाग

कल्याणमित्र  
श्री तुलसीराम चर्मा को

OBG



## प्रकाशकीय

श्री भरत सिंह उपाध्याय एम० ए० के इस प्रन्थ 'पालि साहित्य का इतिहास' का प्रकाशकीय लिखना में अपने लिए विशेष महत्व की बात मानता है। विद्वान् लेखक बीद्ध और जैन साहित्य के पण्डित हैं। 'बीद्ध-दर्शन और अन्य भारतीय दर्शन' पर इन्हें बंगाल हिन्दी मण्डल से १५०० J का 'दर्शन' पारितोषिक मिल चुका है। पर यह प्रन्थ अभी अप्रकाशित है। गंभीर साहित्य पर लिखने वाले हिन्दी में अभी बहुत कम हैं। जिन इने गिने व्यक्तियों का नाम ढंगलियों पर गिना जा सकता है उनमें एक उपाध्याय जी है यह इनके इस प्रकाशित प्रन्थ के आधार पर पूरे विश्वास के साथ कहा जा सकता है। लेखक ने चार वर्षों के अध्यवसाय और तपस्या से इस प्रन्थ का प्रयत्नन किया है। संसार के प्राचीनतम उपलब्ध गाहित्य को हिन्दी जनता के लिए सुगम बनाने का श्रेय लेखक को मिल कर रहेगा। इस प्रन्थ का लाभ देश की दूसरी भाषाओं को भी मिलेगा। साहित्य के विद्यार्थी इससे ईसा पूर्व के यामाजिक जीवन, भाव और विचार से परिचित होंगे।

यह प्रन्थ दस अध्याय और उनमें वर्णित वैज्ञानिक विभागों में पूरा हुआ है। विषय-सूची को एक बार देख लेने पर सामान्य हिन्दी पाठक का बौद्धिक वित्तिज अनायास विस्तृत हो उठता है और प्रन्थ के भीतर पैठने की जिज्ञासा जाग जाती है। हिन्दी साहित्य के विकास और उन्नयन के लिए संस्कृत की जानकारी जितनी आवश्यक है उतनी ही आवश्यक है पालि की जानकारी भी। संस्कृत का परिचय संस्कार और अन्यास से विवित वर्ग को थोड़ा बहुत मिलता रहा है पर पालि परिचय के लिए हिन्दी में अब तक के प्रकाशित प्रन्थों में यह प्रन्थ सर्वथेष्ठ है, यह कहने में हमें सकोच नहीं है। बीद्ध, जैन और ब्राह्मण दर्शनों में लेखक की रुचि और जिज्ञासा पाठक के भीतर दर्शन और साहित्य दोनों की रुचि जगा देती है।

पालि साहित्य में वाचार-विचार, धर्म और संघ के विवरण के साथ इस देश का वह इतिहास जो ईसा-पूर्व और बाद की कई शताब्दियों का

इतिहास है, हमें मिल जाता है। पालि में उपलब्ध सामग्री जो न मिलती तो किरण काल का हमारा इतिहास भी लुप्त हो गया होता। दो सहल वर्ष पहले का हमारा समाज, हमारे मोवन का तल, हमारी आदा आकांक्षायें, हमारी दिनचर्या, बुद्ध और कोनुक के सभी लेत्र कम या अधिक इस ग्रन्थ से हमें मुश्यम बन जाते हैं। संस्कृति का वह सूत्र जिसे हम भूल चुके थे, लेखक ने जिस मतोयोग से खोज निकाला है, उसका अभिनन्दन हम इसलिए करते हैं कि महस्त्र के ऐसे कठिन कार्य वर्ष और यथा की कामना से सम्भव नहीं होते। गहरी निष्ठा, कठोर सकल्प, अडिग समाधि और अनासक्त बुद्धि से, व्यक्ति जब निर्माण में लगता है तभी वह ऐसी रक्षनायें दे सकता है। श्री उपाध्याय जी का सरल स्वरूप किननी सरलता से पाण्डित्य का पर्वत उठा सका है, देख कर विस्मय होता है। अभी वे तरह हैं और कार्य करने के अनेक वर्ष उनके सामने हैं। संकल्प और साधना की यही योगवृत्ति जो उनमें बनी रही तो वे अभी और कई ग्रन्थ रत्न हिन्दी भाषा को दे सकेंगे।

लक्ष्मीनारायण मिश्र  
साहित्य मन्त्री

## प्राक्तयन

भारतीय बाड़मय में बौद्ध साहित्य और उसमें भी पालि-साहित्य का बहुत महत्व है, इतना कहने से भी हम पालि साहित्य के महत्व को जच्छी तरह प्रकट नहीं कर सकते। वस्तुतः इसी सन् के पहले और पीछे की पाँच विद्वियों के भारत के विचार, साहित्य, समाज सभी दोनों की हमारी जानकारी बिलकुल अधूरी रह जाती यदि हमारे पास पालि साहित्य न होता। हमारे इतिहास के कितने ही अन्धकारावृत भागों पर पालि साहित्य ने प्रकाश डाला है। हमारे ऐतिहासिक भागों और गाँवों में से बहुतों को विस्मृति के गर्भ में से बाहर निकालने का थेय पालि साहित्य को है। फिर भारत के सुर्व थेष्ठ पुरुष गौतम बुद्ध के मानव रूप का साक्षात्कार करने के लिए पालि साहित्य तो अनिवार्यतया आवश्यक है।

दुनिया की प्रायः सभी उन्नत भाषाओं में पालि साहित्य की अनमोल निधियों के अनुवाद हुए हैं, पालि साहित्य के ऊपर परिचयात्मक ग्रन्थ लिखे गए हैं, यह सेव की बात है कि हमारी हिन्दी भाषा में ऐसी कोई पुस्तक नहीं लिखी गई थी। कुछ महत्वपूर्ण ग्रन्थों के अनुवाद अवश्य हुए हैं, लेकिन वहाँ भी बहुत थोड़े भाग में काम हो रखा है। थी भरत सिह उपाध्याय ने पालि साहित्य के इतिहास पर एक विस्तृत ग्रन्थ लिख कर हिन्दी माहित्य की एक बड़ी कमी को पूरा किया है। उनके ग्रन्थ में पालि साहित्य और तुलनात्मक भाषा के सम्बन्ध में भी पर्याप्त सामग्री दी गई है। इस ग्रन्थ के सब गुणों का परिचय देना यहाँ सम्भव नहीं है। किन्तु मैं समझता हूँ कि यह पुस्तक पालि साहित्य के उच्च विद्वियों एवं अध्यापकों के लिए तो बहुत सहायक सावित होगी ही, मात्र ही साहित्य में रचि रखने वाले पाठकों के लिए भी बहुत उपयोगी सिद्ध होगी।



नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्त

## भूमिका

हिन्दी में पालि साहित्य सम्बन्धी अध्ययन का अभी सूचपात ही हुआ है। कुछ महत्वपूर्ण ग्रन्थों के अनुवादों के अतिरिक्त पालि साहित्य सम्बन्धी कार्य हिन्दी में प्रायः बहुत कम ही हुआ है। अनुवाद भी प्रायः विनय-पिटक और मुत्त-पिटक के कुछ ग्रन्थों के ही हुए हैं। सुत-पिटक के भी संयुत और असूतर जैसे निकाय वर्षी अनुवादित नहीं हो पाए हैं। बृहदक-निकाय के भी अनेक ग्रन्थ वर्षी अनुवादित होने को वाकी हैं। सम्पूर्ण अभिघम्म-पिटक पर तो वर्षी हाथ ही नहीं लगाया गया। इसी प्रकार सम्पूर्ण अनुपिटक साहित्य, जिसमें बुद्धतत्, बुद्धोप और घम्मपाल की बट्ठकलाएँ और अन्य विशाल साहित्य सम्मिलित है, वर्षी अनुवाद की बाट देख रहा है। इस साहित्य में से केवल 'मिलिन्द-प्रश्न' और 'महावंश' तथा कुछ अन्य अन्यान्यार ग्रन्थ ही हिन्दी रूपान्तर प्रहण कर सके हैं। 'विसुद्धिमग्नो' जैसा ग्रन्थ वर्षी हिन्दी जनता को अविदित है। ऐसा लगता है कि एक महान् उत्तराधिकार से हम चित हो गए हैं। जिस दिन अवशिष्ट पालि साहित्य हिन्दी रूपान्तर प्रहण कर लेगा, उस दिन भारतीय मनीषा को एक नडे स्फृति मिलेगी। उसकी आध्यात्मिक प्रेरणा के बोत, जो आज सूखे पड़े हैं, पुनः आप्नावित हो उठेंगे, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं।

जो दशा पालि ग्रन्थों के अनुवादों की है, वही उनके मूल पाठों के नामरी संस्करणों की भी है। सन् १३७ में पुष्टिकोक वर्षी भिक्षु उत्तम ने भिक्षु-वय, महामति राहुल सांकृत्यापन, भद्रन्त आनन्द कौसल्यापन और भिक्षु जगदीश कावयप द्वारा सम्पादित बृहदक-निकाय के ११ ग्रन्थों को नामरी लिपि में प्रकाशित किया था। तब से वर्षी विश्वविशालय की ओर से निदान-कथा, महावंश, दीघ-निकाय (दो भाग), मञ्जिभम-निकाय (मञ्जिभम-ण्णासक), वेरोगाचा,

वरेगाथा, भिलिन्दपञ्चही तथा पातिमोक्ष आदि का प्रकाशन नामरी लिपि में ही कुण्डा है। पंचित विष्णुवेश्वर भट्टाचार्य के भिक्षु और निक्षुनी पातिमोक्ष के तथा द्वा० विमलाचरण लाहा के 'चरियापिटक' के नामरी संस्करण भी स्मरणीय हैं। इसी प्रकार मूँनि जिनविजय का 'अभिघानपादीपिका' का संस्करण, प्रोफेसर बापट के 'बम्बसुगणि' और 'अट्ठतालिनी' के संस्करण, आजार्य धर्मानन्द कोलम्बी के 'विसुद्धिमणि' एवं स्वकीय नवनीत-टीका सहित 'अभिघम्मत्य संग्रह' के संस्करण तथा भिक्षु जगदीश काश्यप का मोगमल्लान-व्याकरण पर आधारित 'पालि भाषा-व्याकरण' ये सब हिन्दी में पालि-स्वाभाव्याय के महत्वपूर्ण प्रगति-चिन्ह हैं। इनके अलावा कुछ अन्य ग्रन्थों के भी नामरी संस्करण निकले हैं और धर्मापद, सुस-निपात, तेलकदाहगाथा, चूइक-पाठ आदि कुछ ग्रन्थों के मूल पालि-सहित हिन्दी अनुवाद भी प्रकाशित हुए हैं। फिर भी जो कुछ काम अभी तक हो चुका है वह उसके सामने कुछ नहीं है जो जब्तो होना चाहो है। भारतीय विद्वानों के सामने एक भारी काम करने को पढ़ा हुआ है। यह काम सफलता-पूर्वक हो, इसके लिए अथवा परिष्ठम और जार्थिक व्यवस्था दोनों की ही बड़ी आवश्यकता है। महाबोधि सभा की कई सोजनाएँ आर्थिक अनुवाद के कारण अपूर्ण पड़ी हुई हैं। भिक्षु जगदीश काश्यप-कृत संयुत-निकाय का हिन्दी-अनुवाद वर्तों से पढ़ा हुआ है और उसके प्रकाशन की अवश्यकता अभी-अभी हुई है। इसी प्रकार उनके द्वारा संकलित वृहत् पालि-हिन्दी शब्द कोश के प्रकाशन का सवाल है। अनेक पालि ग्रन्थों के मूल पाठ, जिन्हें विद्वान् निखेजों ने नामरी अवश्यों में लिख लिया है, विद्यमान हैं, किन्तु उनके छपने की कोई व्यवस्था नहीं। यही अवस्था अनेक अनुवादों की है। वह अत्यन्त आवश्यक है कि महाबोधि सभा या कोई पुरानी या नई साहित्य-संस्का सम्पूर्ण पालि साहित्य के मूल पाठ और हिन्दी-अनुवाद की प्रकाशित करने का महत्वपूर्ण कार्य आने हाथ में ले और विद्वानों के सहयोग से उसे निकट भविष्य में पूरा करे। सरकार और जनता का भी कर्तव्य है कि वह इसमें महत्वपूर्ण आर्थिक सहयोग दे। विटिया सांग्राजवाद के दिनों में हम प्रत्येक स्वाधीनता-दिवस पर अंग्रेजों पर यह आरोप लगाया करते थे कि अन्य अनेक हासों के साथ उन्होंने हमारा सांस्कृतिक ह्रास भी किया है। आज स्वतंत्रता-प्राप्ति के छोरे वर्ष में मार्टीयों को यह याद दिलाने की आवश्यकता

प्रतीत नहीं होगी कि जब कि हमारी अपनी भाषा में कुछ गिनेवूने पालि ग्रन्थों के मूल पाठों और अनुवादों के अतिरिक्त कुछ नहीं है, अंग्रेजों ने बोसों वर्ष पहले सम्पूर्ण पालि साहित्य के मूल पाठ और अंग्रेजी अनुवाद को रोमन-लिपि में रख दिया था। क्या पालि साहित्य भारतीय संस्कृति और सभ्यता की अपेक्षा अंग्रेजी संस्कृति और सभ्यता से अधिक घनिष्ठ सम्बन्धित है? क्या हमारी अपेक्षा पालि साहित्य का महत्व और ममत्व अंग्रेजों के लिए अधिक था? क्या ५०० ई० पूर्व से लेकर ५०० ई० तक का भारतीय इतिहास हमारी अपेक्षा अंग्रेज लोगों के लिए अधिक जातव्य विषय था? सन् १९०२ में 'बुद्धिस्ट इंडिया' लिखते समय रायन डेविड्स ने अपने देश की सरकार की उदासीनता की शिकायत करते हुए किया था कि ईगलैण्ड में केवल दो जगह संस्कृत और पालि की उच्च शिक्षा का प्रबन्ध है जब कि जर्मनी की सरकार ने अपने यहाँ बीस से अधिक जगह इसका प्रबन्ध किया है "जैसे कि मानो जर्मनी के स्वार्थ भारत में हमसे दस गुने से भी अधिक हों।" आब सन् १९५१ में भारत में पालि के उच्च स्वास्थ्याय की अवस्था और उसके प्रति सरकार के शून्यात्मक सहयोग को देख कर कोई भारतीय विद्यार्थी यह दुःखद अनुभूति किए बिना नहीं रह सकता कि सन् ५० में भारतीय सरकार का जितना हित इस देश की संस्कृति और साहित्य के जाव दिलाई पाइता है उसके कदाचित् दुगुने और बीस गुने से भी अधिक कमसः ईंगलैण्ड और जर्मनी का सन् १९०२ में था!

जब पालि ग्रन्थों के हिन्दी अनुवाद और उनके मूल पाठों के नामरी-संस्करणों को उपर्युक्त अवस्था है तो पालि साहित्य पर हिन्दी में अभी विवेचनात्मक ग्रन्थ लिखने का कोई आधार ही नहीं मिलता। किसी भी साहित्य के विस्तृत शास्त्रीय अध्ययन एवं उस पर विवेचनात्मक ग्रन्थ लिखने के लिए पहले यह आवश्यक है उसके मूल संस्करण और अनुवाद उपलब्ध हों, जिनके आधार पर उपादान-शास्त्री का संकलन किया जा सके। हिन्दी इस शर्त को पूरा नहीं करती। इसीलिए जिन्हें दो-एक निवन्धों के अतिरिक्त पालि साहित्य के इतिहास के सम्बन्ध में यहाँ कोई विवेचनात्मक ग्रन्थ हमें नहीं मिलते। पूज्य भद्रत आनन्द कौसल्यायन जी ने सिंहल में अपने अध्ययन के परिणामस्वरूप पालि ग्रन्थों का एक संक्षिप्त विवरण लिखा था जो 'पालि वाङ्मय को अनुक्रमणिका' शीर्षक से काशी विद्यापीठ

की पत्रिका 'विद्यापीठ' के संबत् १९१३ के अधिकारीय बंक में निकला था। एक दूसरा पालि साहित्य सम्बन्धी निवन्ध आचार्य हजारीप्रसाद डिवेदी के ग्रन्थ 'हिन्दी साहित्य की भूमिका' के जतुर्वर्ष परिशिष्ट के स्वर्ण में है। तरसरी तोर पर यहाँ पालि साहित्य के विकास को दिखाने की चेष्टा की गई है। महापंचित राहुल साहित्यायन, भद्रन्त आनन्द कौसल्यायन और भिक्षु जगदीश काश्यप के अनुवादों की प्रस्तावनाओं में उन उन ग्रन्थों सम्बन्धी विवरणों के साथ-साथ सामान्यतः पालि साहित्य सम्बन्धी परिचयात्मक विवरण भी कहीं-कहीं दे दिया गया है। विशेषतः महापंचित राहुल साहित्यायन की 'बुद्ध-वर्णी', 'दीप-निकाय', 'विनय-पिटक' एवं 'अभिधर्म-कोश', जादि की भूमिकाएँ, भद्रन्त आनन्द कौसल्यायन की 'जातक' (प्रथम लक्षण) और 'महाबृंश' की भूमिकाएँ और भिक्षु जगदीश काश्यप की 'उदात्त' और 'पालि महाब्याकरण' की भूमिकाएँ इस दृष्टि से देखने योग्य हैं। भद्रन्त श्री शान्ति भिक्षु जी के भी पालि साहित्य सम्बन्धी निवन्ध इच्छा 'विश्व भारती पत्रिका' और 'विशाल भारत' में निकलते रहे हैं। 'धर्मदूत' में भी पालि साहित्य सम्बन्धी निवन्ध त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित जी, भिक्षु शोलभद्र जी, भिक्षु धर्मसंख्याजी, तथा अनेक बौद्ध विद्वानों के पालि साहित्य सम्बन्धी लेख प्राप्त निकलते रहते हैं। इच्छा बौद्ध धर्म और दर्शन सम्बन्धी कुछ विवेचनात्मक ग्रन्थ भी हिन्दी में निकले हैं। उनमें भी यथास्थान पालि साहित्य का कुछ विवरण है। पर उनमें कोई ऐसी मौलिकता या विशेषता द्विपिट्योचर नहीं होती जिससे उसे विशिष्ट महात्म दिया जा सके। ब्रतः प्रकीर्ण निवन्धों, प्रस्तावनाओं और गोण संक्षिप्त विवरणों के अतिरिक्त पालि साहित्य के इतिहास पर हिन्दी में अभी कुछ नहीं लिखा गया है।

हाँ, अंधेजी में पालि साहित्य के इतिहास पर कही महत्वपूर्ण बचत है। मेविक बौद्ध का 'दि पालि लिटरेचर औव चरमा' (लन्दन, १९०९) और जी० पी० मल्लमसेकर का 'दि पालि लिटरेचर औव सिलोन' (लन्दन, १९२८) कमसः चरमा और लक्ष के पालि साहित्य पर अच्छे विवेचनात्मक ग्रन्थ हैं। डा० विन्टर-निल्सन ने वरपने महत्वपूर्ण ग्रन्थ 'हिस्ट्री औव इन्डियन लिटरेचर' (कलकत्ता, १९२३) का दूसरी जिल्ड (पृष्ठ १-४२३) में पालि साहित्य का संक्षिप्त किल्जु

अत्यन्त प्रामाणिक विवरण दिया है। पालि भाषा और साहित्य का अत्यन्त सूक्ष्म और गम्भीर विद्वत्तामय विवेचन जमन विद्वान् डा० विल्हेल्म गायगर ने अपने ग्रन्थ 'पालि लिटरेचर एण्ड लेंचेज' (अंग्रेजी अनुवाद, कलकत्ता, १९४३) में किया है। इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ में पालि साहित्य का निर्देश तो अपेक्षाकृत संधिष्ठत रूप में किया गया है (पृष्ठ ९-५८), किन्तु पालि भाषा का शास्त्रीय दृष्टि से जितना सूक्ष्म और विस्तृत विवेचन (पृष्ठ १-७ तथा ६१-२५०) इस ग्रन्थ में उपलब्ध होता है उतना अन्यत्र कही नहीं। पालि भाषा और साहित्य दोनों के परिपूर्ण और शूखलाबद्ध विवेचन को दृष्टि से डा० विल्हेल्म गायगर लाहा का दो जिल्डों में प्रकाशित 'हिस्ट्री ऑव पालि लिटरेचर' (लन्दन, १९३३) एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है, यथापि इसका भाषा-सम्बन्धी विवेचन डा० गायगर के ग्रन्थ के सामने नगण्य सा है। पालि साहित्य-सम्बन्धी इन महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों के बलावा उसके विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश ढाकने वाले अनेक प्रबन्ध एवं परिचयात्मक निबन्ध आदि हैं, जो पालि टैक्स्ट सोसायटी के 'जनरल' में अनुसन्धेय हैं। रोमल एशियाटिक सोसायटी के 'जनरल' तथा एन्साइक्लोपेडिया ऑव रिलिजन एण्ड एविक्स में भी प्रासादिक तौर पर पालि साहित्य सम्बन्धी प्रभूत सामग्री मिलती है। पालि टैक्स्ट सोसायटी लन्दन के अंग्रेजी-अनुवादों की भूमिकाओं और अनुक्रमणिकाओं में भी भारी सामग्री भरी पड़ी है; जिसका उपयोग पालि साहित्य के किसी भी इतिहास-कार के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हो सकता है। सम्पूर्ण पालि साहित्य में प्राप्त व्यक्तिवाचक नामों का विवरणात्मक कोश (पालि डिक्षनरी ऑव प्रॉपर नेम्स) जिसे अत्यन्त परिव्रम और विद्वत्ता के साथ सिहली विद्वान् डा० मललसेकर ने, विशेषतः पालि टैक्स्ट सोसायटी के अनुवादों को अनुक्रमणियों के आधार पर, ग्रहित किया है, पालि साहित्य के विद्यार्थियों के लिए सदा एक प्रेरणा की वस्तु रहेगी। पालि साहित्य के विभिन्न पहलुओं पर विवेचन हमें जने के 'मैत्रबल ऑव इन्डियन बुद्धिष्ठ' (स्ट्रेसवर्ग १८९६), रायस डेविड्स के 'बुद्धिष्ठ: इदस हिस्ट्री एण्ड लिटरेचर' (लन्दन, १९१०) एवं 'बुद्धिष्ठ इंडिया' (लन्दन, १९०३) आदि अनेक ग्रन्थों में मिलते हैं। वैश-साहित्य पर डा० गायगर का 'दीपवंस एण्ड महावंस' (अंग्रेजी अनुवाद, कोलम्बो १९०८) एक महत्त्वपूर्ण समालोचनात्मक ग्रंथ है। अभिधर्म-पिटक के विषय का विवेचन करने वाले प्रबन्धों और ग्रन्थों में स० डा०

ओंग का 'अभिघम्म लिटरेचर इन बरमा' (जनेल औंव पालि ट्रैक्स्ट सोसायटी, १९१०-१२), डॉ सिलवा का 'ट्रोटाइज ओन बुद्धिस्ट फिलासफी' श्रीमती रायस डेविड्स को 'ए बुद्धिस्ट मेन्टबल औंव साइकोलोजीकल एविक्स' (धर्म संगणि का अंग्रेजी अनुवाद, लन्दन १९००) की भूमिका, महास्थविर ज्ञानातिलोक की 'गाइड अ॒ दि अभिघम्म पिटक' (लुजाक एण्ड कॉं, लन्दन, १९३८) एवं भिक्षु जगदीश काश्यप की 'अभिघम्म फिलोसोफी' (दो जिल्डे, चार्ल्साप १९४२) अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। इसी प्रकार मुत्त-पिटक, विनय-पिटक, पालि काल्पन, व्याकरण, अभिलेख-साहित्य, अट्ठकथा-साहित्य आदि पालि-साहित्य के विभिन्न पहलुओं पर इतनी विवेचनात्मक सामग्री अंग्रेजी और यूरोप की अन्य भाषाओं जैसे फ्रेंच और जर्मन में भरो पड़ी है कि उसके संविप्त तम निर्देश के लिए भी एक महाप्रबन्ध की जावश्यकता पड़ेगी। यह कहना अतिशयोक्ति न जान पड़े इसलिए यहाँ यह बता देना जरूरी है कि गत सत्तर-अस्ती वर्षों में पश्चिमी देशों में भारतीय विद्या-सम्बन्धी जो खोज-कार्य हुआ है, उसका तीन-चौबाई बौद्ध धर्म, दर्शन, साहित्य और संस्कृति से हो सम्बन्धित है।

जैसा कपर निर्दिष्ट किया जा चुका है, 'हिन्दी या अन्य किसी भारतीय भाषा में पालि साहित्य के इतिहास पर लिखी जाने वाली यह प्रयत्न पुस्तक है। इस पृष्ठभूमि से देखने पर इसमें अनेक अनिवार्य क्रियाओं भिलेंगी, जिनकी पूर्ति भावी विद्वानों की कृतियाँ करेंगी। १२-१-४७ के अपने कृपा-पत्र में पूज्य भद्रन भाग्यवन कौसल्यावन ने मुझे उत्साहित करते हुए लिखा था—“हिन्दी में 'पालि साहित्य का इतिहास' लिखा जाय तो ऐसा ही लिखा जाय कि अंग्रेजी इतिहास कीके पड़ जायें और १९४७ तक को साहित्यिक खोज का पूरा पूरा सार रहे।..... अपनी राष्ट्र-भाषा में 'पालि साहित्य का इतिहास' लिखा जाय तो यह ऐसा ही होना चाहिए कि उसे ही पढ़ने के लिए लोगों को हिन्दी पढ़नी पड़े”। मैं नहीं कह सकता कि पूज्य भद्रन जी ने मुझसे जो बड़ी आशा बांधी थी, उसे पूरा करने में मैं कहाँ तक सफल हुआ हूँ। परन्तु मुझे विश्वास है कि बरमा, सिहल और स्याम के निवासी भी यदि बृहू के देश के इस माणवक के पालि साहित्य सम्बन्धी विवरण को पढ़ें तो अधिक निराश नहीं होंगे। महाप्रांति राहुल सांकेतिकान और पूज्य भिलू जगदीश काश्यप जी के अनुवादों से मुझे इस पुस्तक के लिखने में बड़ी

सहायता मिली है। पूज्य भिकु काशयप जी के अभिघम्म-सम्बन्धी अध्ययन के फलों और निष्ठाओं को (जैसे कि वे अभिघम्म फिलॉसफो में प्रस्फृटित हुए हैं) पाठक इन पृष्ठों में हिन्दौ-रूप में प्रतिविम्बित देखेंगे और पूज्य राहुल जी की विद्वता के फलों से मैं किसी प्रकार लाभान्वित हुआ हूँ, इसकी तो कोई इच्छा नहीं। उन्होंने कृपा कर इस पुस्तक का प्राकृत्यन लिखा है, जिसके लिए उनका अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। पूज्य आचार्य श्री वियोगी हरिजी ने इस रचना में आदि से ही बड़ी रुचि दिखाई है, यह मेरे लिए एक बड़ी प्रेरणा और आश्वासन की बात रही है। उन्होंने ही श्री राहुल जी से मेरा परिचय कराया और इस ग्रन्थ के प्रकाशन में सहायता भी की। आचार्य श्री नरेन्द्रदेव जी ने इस ग्रन्थ की रूपरेखा को देखकर मुझे अत्यधिक उत्साहित किया, जिसके लिए उनका हृदय से कृतज्ञ हूँ। पूज्य गुरुवर आचार्य श्री जगन्नाथ तिवारी जी, आचार्य श्री धर्मेन्द्रनाथ जी शास्त्री, आचार्य श्री सीताराम जी चतुर्वेदी एवं आचार्य श्री कृष्णानन्द जी पन्त का मै हृदय से कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने कृपा कर पांडु लिपि के कई अंशों को व्यानपूर्वक पढ़ा और सल्परामशं दिये। राज्यि श्री पुरुषोत्तमदासजी टंडन, श्री चन्द्रबलीजी पाण्डेय, श्री कृष्णदेव श्रेसादजी गौड़, श्री दयाशंकरजी दुबे, श्री ५० लक्ष्मीनारायणजी मिश्र, श्री रामप्रतापजी विपाठी, एवं सम्मेलन की साहित्य-समिति के सदस्यों का हृदय से कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने इस पुस्तक को सम्मेलन के द्वारा प्रकाशन के योग्य समझा। अन्त में मैं श्री सीतारामजी गृण्णे, व्यवस्थापक सम्मेलन मुद्रणालय तथा उनके सहयोगियों के प्रति हृदय से कृतज्ञता प्रकाशित करता हूँ, जिन्होंने बड़ी दक्षता से इस पुस्तक को ढापा है। भगवान् वृद्ध का अनुभाव उन पर अभिव्यित हो !

किसी खोजपरक विवेचनात्मक ग्रन्थ के लेखक के लिए बाज़कल यह प्रायः आवश्यक माना जाता है कि वह यह बताये कि कहाँ तक उसने अपने पूर्वगामियों का अनुसरण किया है अवशा कहाँ तक उसने मौलिक स्थापनाएँ और निष्ठाएँ उपस्थित किए हैं। मैं समझता हूँ यह काम तो पालि-साहित्य के मर्मज समालोचक ही, जिन्होंने पूर्वी और पश्चिमी चिदानंदों के ग्रन्थों को पढ़ा है, कर सकेंगे। जहाँ तक मैं समझता हूँ मैंने इस पुस्तक के पृष्ठ-पृष्ठ, पंक्ति-पंक्ति, शब्द-शब्द, अक्षर-अक्षर का विपलेण कर देखा तो मुझे कहीं 'मैं' या 'मेरा' नहीं मिला, 'आपना' कुछ दिखाई

( १६ )

नहीं दिया। जो 'मेरे' नहीं है, जो मेरा 'अपना' नहीं है, उसको जितना जल्दी  
हो छाड़ देना ही मेरे लिए कल्पाणकारी होगा। इसी विचार के साथ मैं समाप्त  
करता हूँ।

जैन कालेज, बड़ोत,

१०-१-११

भरतसिंह उपाध्याय

## विषय-सूची

पहला अध्याय

### पालि भाषा

'पालि' शब्दार्थ-निर्णय—पालि भाषा—भारतीय भाषाओं के विकास में पालि का स्वान—पालि किस प्रदेश की मूल भाषा थी? पालि और वैदिक भाषा—पालि और संस्कृत—पालि और प्राकृत भाषाएँ; द्विषेषतः बौद्ध-मानवी, शोरसेनी और वैशाली—पालि के च्वनि-समूह का परिचय—पालि का शब्द-नामन और वाक्य-विचार—पालि भाषा के विकास की अवस्थाएँ—पालि भाषा और साहित्य के अध्ययन का महत्व, उपसंहार।

पृष्ठ १-७३

दूसरा अध्याय

### पालि साहित्य का विस्तार, वर्गीकरण और काल-विभाग

पालि साहित्य का उद्भव और विकास—पालि साहित्य का विस्तार—सामान्यतः दी विभागों में उसका वर्गीकरण—पालि या पिटक साहित्य—अनुपालि या अनुपिटक साहित्य—पिटक साहित्य के ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय और काल-अम—अनुपिटक साहित्य का काल-विभाग, उपसंहार।

पृष्ठ ७४-११०

तीसरा अध्याय

### सुत्त-पिटक

पालि विपिटक कही तक भूल, प्रामाणिक बुद्ध-वचन है? सुत्त-पिटक—विषय, शैली और महत्व—सुत्त-पिटक के अन्तर्गत ग्रन्थों के वस्तु-विवान का संक्षिप्त परिचय और उनका साहित्यिक और ऐतिहासिक महत्व—

अ. दीप-निकाय

आ. मञ्जिस्म-निकाय

इ. संस्कृत-निकाय  
ई. अंगुलर-निकाय  
उ. लुहक-निकाय

पृष्ठ १११-३०१

तीव्रा अध्याय

**विनय-पिटक**

त्रिपिटक में विनय-पिटक का स्थान—विनय-पिटक का विषय और संकलन-काल—विनय-पिटक के भेद—विनय-पिटक के नियम—विनय-पिटक के वस्तु-विधान का संशिष्ट परिचय—मृत-विभंग—जन्मवक—परिवार, उपसंहार।

पृष्ठ ३०२-३३३

तीव्रा अध्याय

**अभिधर्म-पिटक**

अभिधर्म-पिटक—रचना-काल—विषय, धर्मो और महत्त्व—अभिधर्म-पिटक के ग्रन्थ—पालि अभिधर्म पिटक और सर्वास्तिवाद सम्पदाय के अभिधर्म से पिटक की तुलना—अभिधर्म-पिटक के प्रत्यों के वस्तु-विधान का संशिष्ट परिचय:—

- अ. धर्मसंगणि
- आ. विभंग
- इ. बातुकवा
- ई. पुम्लपञ्जनि
- उ. कथावली
- ऊ. यमक
- ए. पट्ठान

पृष्ठ ३३४—४६४

ठडा अध्याय

**पूर्व-बुद्धधोष-युग**

( १०० ई० पू० से ४०० ई० तक)

नेतिपक्षण—पेटकोपदेश—भिलिन्दपच्छो—अन्य साहित्य।

पृष्ठ ४६५—४९५

सातवाँ अध्याय

## बुद्धघोष-युग

( ४०० ई० से ११०० ई० तक )

अट्ठकथा-साहित्य—अट्ठकथा-साहित्य का उद्भव और विकास—अट्ठकथा-साहित्य, संस्कृत भाष्य और टीकाओं से तुलना—अट्ठकथाओं की कुछ सामान्य प्रवृत्तियाँ—पालि त्रिपिटक के तीन बड़े अट्ठकथाकार—बुद्धदत्त—बुद्धघोष—धर्मपाल—बुद्धदत्त—जीवन-वृत्त और रचनाएँ—अभिधर्मावतार—रूपाल्पविभाग—विनय-विनिच्छय—उत्तर-विनिच्छय—बुद्धघोष—जीवन-वृत्त—रचनाएँ—विसुद्धिमणि—समन्वयादिका—कंतावितशी—मुमगलविलासिनी—पपञ्चमूदनी—सारत्थपकासिनी—मतीरथपूरणी—परमत्थजोतिका—अट्ठसालिनी—सम्मोहितोदनी—धातुकथा, पुमालपञ्जाति, कवावत्थ, मनक और पट्ठान, इन पाँच अभिधर्म-ग्रंथों पर अट्ठकथाएँ ( पञ्चवृण्णकरणट्ठकथा )—विम्बपदट्ठकथा—जातकत्थवरण्णना—बुद्धघोष की अन्य रचनाएँ—पालि साहित्य में बुद्धघोष का स्थान—धर्मपाल—जीवन-वृत्त—रचनाएँ—विमानवत्थ-अट्ठकथा—पेतवत्थ-अट्ठकथा—धेर-धेरी गायाओं पर अट्ठकथाएँ—उदान, इति-बुत्तक और चरियापिटक पर अट्ठकथाएँ—अनिलद और उमका अभिधर्म-त्थसंग्रह—अभिधर्मत्थसंग्रह के लिदान्तों का संक्षिप्त विश्लेषण—बुद्धघोष-युग के अन्य अट्ठकथाकार, उपसंहार ।      पृष्ठ ५९६-५३६

आठवाँ अध्याय

## बुद्धघोष-युग की परम्परा अथवा टीकाओं का युग

( ११०० ई० से बत्तमान समय तक )

सिहली भिक्षु सारिपुत्र और उनके शिष्यों की टीकाएँ—वर्गों पालि साहित्य—इस युग की अन्य रचनाएँ, उपसंहार ।      पृष्ठ ५३७-५४६

नवाँ अध्याय

## वेश-साहित्य

'वेश' शब्द का अर्थ और इतिहास से भेद—वंश-वंश—दीप्तवंश—महावंश—धूलवंश—बुद्धघोषुपत्ति—तद्भमसंग्रह—महावीरवंश—वृपवंश—

असनगलुविहारवंस—दाठावंस—छकेसवातुवंस—गम्बवंस—सासनवंस,  
उपसंहार ।

पृष्ठ ५४७-५८२

देसवाँ अध्याय

काल्य, व्याकरण, कोश, छन्दःशास्त्र, अभिलेख आदि

प्रिष्य-प्रवेश—काल्य-नय—अनागतवंस — तेलकटाहगाथा — जिनालंकार—  
जिनचरित—पञ्जमवु — सहस्रोगायत्र — पञ्चगतिदीपन — लोकप्प-  
दीपसार या लोकदीपसार—रसवाहिनी — बुद्धालंकार—महस्सवत्सूप्प-  
करण — राजधिराजविलासिनी — पालि का व्याकरण-साहित्य और  
उसके तीन नम्प्रदाय—कच्चान-व्याकरण और उसका सहायक साहित्य—  
मोमगल्लान-व्याकरण और उसका सहायक साहित्य—अन्य पालि व्याकरण—पालि कोश—  
अभिवालाप्पदीपिका—एकनल्लरकोस—छन्दः शास्त्र—वृत्तोदय आदि—  
काल्य-शास्त्र—सुबोधालंकार—पालि का अभिलेख-साहित्य, उपसंहार ।

पृष्ठ ५८३-६४३

उपसंहार

भान्तीय बाह्यमय में पालि-साहित्य का स्थान—पालि और विश्व-साहित्य ।

पृष्ठ ६४४-६४७

पहला अध्याय

## पालि भाषा

### 'पालि' शब्दार्थ-निर्णय

जिसे हम आज पालि भाषा कहते हैं, वह उसका प्रारम्भिक नाम नहीं है। भाषा-चिठ्ठी के अर्थ में पालि शब्द का प्रयोग अपेक्षाकृत नहीं त है। कम से कम इसकी तेरहवीं या चौदहवीं शताब्दीसे पूर्व उसका इस अर्थ में प्रयोग नहीं मिलता। 'पालि' शब्द का सब से पहला व्यापक प्रयोग हमें आजाये बृद्धघोष (चौथी-पाँचवीं शताब्दी ईसवी) की अटठकवाक्यों और उनके 'विसुद्धिमण्ड' में मिलता है। वहाँ यह शब्द अपने उत्तरकालीन भाषा-सम्बन्धी अर्थ से मुक्त है। आजाये बृद्धघोष ने दो अर्थों में इस शब्द का प्रयोग किया है, (१) बृद्ध-वचन या मूल त्रिपिटक के अर्थ में, (२) 'पाठ' या 'मूल त्रिपिटक के पाठ' के अर्थ में। चूंकि 'मूल त्रिपिटक' और 'मूल त्रिपिटक के पाठ' में भेद करने भर को है, अतः भोटे तीर से कहा जा सकता है कि 'मूल त्रिपिटक' या 'बृद्ध-वचन' के सामान्य अर्थ में ही बृद्धघोष महास्वतिर ने 'पालि' शब्द का प्रयोग किया है। जिस किसी प्रसंग में उन्हें पोराण-अटठकवा (प्राचीन अर्थकथा) से विभिन्नता दिखाने के लिये मूल त्रिपिटक के किसी अंश को उद्दृत करना पड़ा है, वहाँ उन्होंने 'पालि' शब्द से बृद्ध-वचन या मूल त्रिपिटक तो अभिव्यक्त किया है, जैसे 'विसुद्धिमण्ड' में "इमानि ताव पालिम्, अटठकवाय पन . . ." (ये तो 'पालि' में है, किन्तु 'अटठकवा' में तो . . . .) तथा वहीं "नेव पालिय न अटठकवाय आगत" (यह न 'पालि' में आया है और न 'अटठकवा' में)। इसी प्रकार 'सुमंगलविलासिनी' (दीर्घ-निकाय की अटठकवा) की सामञ्जकलसूत-वर्णना में "नेव पालिय न अटठकवाय दिस्सति" (यह न 'पालि' में दिखाई देता है और न 'अटठकवा' में) तथा मुग्गलपञ्जाति-अटठकवा में "पालिमूलकेन पन अटठकवायेन". ('पालि' को छोड़कर 'अटठकवा' की प्राचीनी से) आदि। इसके अलावा जहाँ उन्हें त्रिपिटक की व्याख्या करते हुए कहीं कहीं उसके पाठान्तरों का निर्देश करना पड़ा है, वहाँ उन्होंने 'इति'

पि पालि' (ऐसा भी पाठ है) कह कर 'पालि' शब्द से मूल विपिटक के 'पाठ' को दर्शातित किया है, जैसे 'सुमगलविलासिनी' की सामन्जनकलसुत्र-वण्णना में 'महच्च-राजानुभावेन' पद को व्याख्या करते हुए पहले उन्होंने उसका अर्थ किया है 'महता राजानुभावेन' और फिर पाठान्तर का निर्देश करते हुए लिखा है 'महच्चा इति ति पि पालि' जबकि 'महच्चा' ऐसा भी पाठ है। यहाँ 'पालि' का अर्थ निश्चित रूप से 'पाठ' ही है, मह इस बात से प्रकट होता है कि समान प्रसंगों में 'पालि' के स्रोत-नाये वाची शब्द के रूप में 'पाठ' शब्द का भी प्रचूर प्रयोग आचार्य बुद्धघोष ने किया है। कुछ एक उदाहरण हो पर्याप्त होगे। "सेतकानि अटीनि... सेत-दिक्का ति पि पाठो" (समन्तपासादिका—वेरञ्जकण्डवण्णना) तथा "अपमत-काठो... अपहतकाठो ति पि पाठो" (समन्तपासादिका—वेरञ्जकाठ-वण्णना)

आचार्य बुद्धघोष के कुछ ही तमस धूर्व लंका में लिखे गये 'दीपबंस' ग्रन्थ में भी जा चौधी शताब्दी ईसवी की रचना है, 'पालि' शब्द का प्रयोग बुद्ध-वचन के अर्थ में हो किया गया है।<sup>१</sup> आचार्य बुद्धघोष के बाद भी सिंहल देश में 'पालि' शब्द का प्रयोग उपर्युक्त दोनों अवधीं में होता रहा। आचार्य घम्मपाल (पांचवीं-छठी शताब्दी ईसवी) ने अपनी 'परमत्वदीपनी' (खुदक-निकाम के कातिपय ग्रन्थों की अटठकवा) में भी 'पालि' शब्द का प्रयोग मूल विपिटक के 'पाठ' के अर्थ में किया है, यथा "अव्याचितो ततागच्छोति... जागतो ति पि पालि"। इसी प्रकार 'चुद-वज्जन' के अर्थ में भी 'पालि' शब्द का प्रयोग वहाँ उपलब्धित होता है। 'चूलवंस' (तेहवी शताब्दी) में भी, जो 'महावंस' (छठी शताब्दी) का उत्तरकालीन गरिवंदित अंश है, 'पालि' शब्द का प्रयोग बुद्ध-वचन, अटठकवा से व्यतिरिक्त मूल पालि विपिटक, के अर्थ में ही किया गया है। उसका एक अति प्रसिद्ध वाक्य है—“पालिमत् इधानीत् नस्ति अटठकवा इव”<sup>२</sup> (यहाँ के बाल 'पालि' ही लाई रही है, 'अटठकवा' यही नहीं है)। इसी प्रकार 'पालि महाविघम्मस्त' अवर्ति 'मूल विपिटक के अन्तर्गत अभिघम्म का' ऐसा भी प्रयोग वही मिलता है।<sup>३</sup> उसी के

१. २०१२० ( ओलडनबर्ग का संस्करण )

२. ३७१२२७; मिलाइये वहाँ ३३१०० ( गायगर का संस्करण )

३. ३७१२२१ ( गायगर का संस्करण )

तमकालिक 'सद्भमसंगह' (तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी) में भी 'पालि' शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में किया गया है।<sup>१</sup>

उपर्युक्त उद्धरण 'पालि' शब्द के अर्थ-निर्धारण में वह महत्व के हैं। चौथी शताब्दी ईसवी से लेकर चौदहवीं शताब्दी ईसवी तक जिन अर्थों में 'पालि' शब्द का प्रयोग होता रहा है, उसका वे दिशदर्शन करते हैं। अतः उनसे हमें एक आधार-मिलता है, जिसका आश्रय लेकर हम चौथी शताब्दी ईसवी से पहले 'पालि' शब्द के इतिहास पर विचार कर सकते हैं। त्रिपिटक में वो 'पालि' शब्द गिरता नहीं। त्रिपिटक को आधार मान कर लिखे हुए तात्त्विक में भी बुद्धधोष की रचनाओं या 'दीपबत्त' के समय से पूर्वे किसी रथ्य में 'पालि' शब्द का निर्देश नहीं मिलता। फिर आचार्य बुद्धधोष ने किस परम्परा का आश्रय ग्रहण कर 'पालि' शब्द को उपर्युक्त अर्थों में प्रयुक्त किया, वह हमारे मन्त्रेण का मुख्य विषय है। दूसरे शब्दों में, बुद्धधोष के समय से पहले 'पालि' शब्द का इतिहास हमें जानना है। मानाओं के विकास में, स्थान और पृष्ठ की विशेष परिस्थितियों के कारण, शब्दों के रूपों, अर्थों और अवनियों में नाना विकार होते रहते हैं। ध्वनि, रूप और अर्थ के उन विकारों को हमें दूड़ा है, जिनका अतिक्रमण कर 'पालि' शब्द बुद्धधोष के समय तक 'बुद्ध-वचन' या 'मूल त्रिपिटक के पाठ' के अर्थ में प्रयुक्त होना लगा और तिर तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी तक उसी अर्थ को धारण करता रहा। उसके बाद के अर्थ-विकार को बात तो बाद में। उपर्युक्त महत्वपूर्ण उद्धरणों में 'पालि' शब्द के जो अर्थ व्यक्त किये गये हैं, उन्हीं को आधार मानकर कुछ आधुनिक विद्वानों ने 'पालि' शब्द को निरूपित के सम्बन्ध में कुछ महत्वपूर्ण स्थापनाएँ की हैं, जिनमें तीन अधिक प्रभावशाली हैं। गहलों स्थापना इस बात को प्रमुखता देकर चलती है कि बुद्धधोष की अट्ठकथाओं में चूंकि 'पालि' शब्द 'बुद्ध-वचन' या 'मूल त्रिपिटक' के अर्थ को व्यक्त करता है, इसलिये उसका मूल रूप भी बोई ऐसा शब्द रहा होगा जो बुद्ध-काल में इसी अर्थ को सुनित करता हो। दूसरी स्थापना इसी प्रकार 'पालि' शब्द के 'पाठ' अर्थ को प्रमुखता देकर मालती है। तीसरी स्थापना संस्कृत शब्द 'पालि' जिसका अर्थ परिवर्तित है, को प्रधानता देकर उसे बुद्धधोष आदि आचार्यों

१. पृष्ठ ५३ (सद्भामन्द द्वारा सम्पादित एवं जननेत और पालि टैक्सूट् सोसायटी, १८९०, में प्रकाशित संस्करण)।

के द्वारा प्रयुक्त 'पालि' शब्द के अर्थों के साथ संबंधित करने का प्रयत्न करती है। इन तीनों स्वापनाओं की समीक्षा हमें करनी है।

पहली स्थापना के अनुसार 'पालि' शब्द का प्राचीनतम रूप हमें 'परियाय' शब्द में मिलता है। 'परियाय' शब्द विगिटक में अनेक बार आया है। कहीं कहीं 'धर्म' शब्द के साथ और कहीं नहीं अकेले भी इस शब्द का अवृहार हुआ है। उदाहरणतः 'को नामो अय भन्ते धर्मपरियायो ति' १ (भन्ते ! यह किस नाम का धर्म-परियाय है) 'भगवता अनेक परियायेन धर्मो पकामितो' २ (भगवान् ने अनेक पर्यायों से धर्म को प्रकाशित किया) आदि, आदि। स्पष्टतः ऐसे स्वलो में 'परियाय' शब्द का अर्थ बुद्धोपदेश है। बाद में 'परियाय' शब्द का ही विकृत रूप 'पालियाय' हो गया। ब्रह्मोक के प्रसिद्ध भाष्य विलालेख में 'पलियाय' शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में मिलता है। भगव के भिक्षु-संघ को कुछ चुने हुए बुद्ध-बचनों के स्वाध्याय करने की प्रेरणा देते हुए प्रियदर्शी 'शम्मराजा' कहते हैं 'भन्ते ! ये धर्म-पलियाय हैं। मैं चाहता हूँ कि उम्मी भिक्षु-भिक्षुणिमी, उपासक और उपासिकाएँ, इन्हें सदा सुनें और पालन करें।' ३ 'पलियाय' शब्द के 'पलि' उपसर्ग का दीर्घ होकर बाद में 'पालियाय' शब्द बन गया। 'पालियाय' शब्द का ही संक्षिप्त रूप बाद में 'पालि' होकर 'बुद्ध-बचन' या 'मूल विगिटक' के अर्थ में प्रयुक्त होने लगा। इससे कुछ भिन्न है। उनके मतानुसार 'पालि' या ठीक कहें तो 'पालि' शब्द की वस्तुकथा में योग्यतापूर्वक नहीं है। ४

दूसरा मत, जिसकी स्थापना भिक्षु सिद्धार्थ ने अपने अपेक्षी निवन्ध 'पालि भाषा का उद्गम और विकास, विवेषतः संस्कृत व्याकरण के आधार पर' में की है, ५ इससे कुछ भिन्न है। उनके मतानुसार 'पालि' या ठीक कहें तो 'पालि' शब्द

१. ब्रह्मज्ञान-सूत (वीष्ण: ११)

२. सामड्ज्ञानिकल-सूत (वीष्ण-१२)

३. इमानि भन्ते धर्मपलियायानि.....एतान भन्ते धर्मपलियायानि इच्छामि किति बहुके भिक्षुपाये भिल्लुनिये चा अभिलिनं सूनयू च उपथालेयू च। हेच हेचा उपासका च उपासिका च।

४. पृष्ठ आठ-बारह।

५. बुद्धिस्तक स्टडीज (डॉ. लाहा द्वारा सम्पादित) पृष्ठ ६४१-६५६

का मूल उद्गम संस्कृत 'पाठ' शब्द है। इस मत के अनुसार संस्कृत 'पाठ' शब्द का का ही विकृत या परिवर्तित रूप 'पालि' या 'पालिं' है। यह विकास-क्रम भिन्न-भिन्नार्थ के मतानुसार कुछ-कुछ इस प्रकार चला। प्राचीन काल में 'पाठ' शब्द का प्रयोग ब्राह्मण लोग विशेषतः वेद-वाचार्यों के 'पाठ' के लिये लिया जारहा था। भगवान् बुद्ध के समय में भी यह परम्परा ब्राह्मणों में चली आ रही थी। जब अनेक ब्राह्मण-महाशाल बुद्ध-मत में प्रविष्ट हुए, तो उन्होंने इसी शब्द को, जिसे वे पहले वेद के पाठ के अर्थ में प्रयुक्त करते थे, अब बुद्ध-वचनों के लिये प्रयुक्त करना आरम्भ कर दिया। यह स्वाभाविक भी था। जब उन्होंने बुद्ध को 'मूनि' 'वेदज्ञ' 'वेदान्तज्ञ' कह कर अपनी शब्दा अपित की, तो उनके वचनों के निरैश के लिये भी वे परिवर्त 'पाठ' शब्द का अभिवान क्यों न करते? भिन्न भिन्नार्थ ने ठीक ही 'पाठ' शब्द के अतिरिक्त कुछ अन्य शब्दों की मूली दी है, जो पहले वैदिक परम्परा के थे किन्तु बोध संघ में आकर जिन्होंने नये स्वरूप बहान कर लिये थे। 'नंहिता' 'सहित' होगई, 'तन्त्र' 'तन्त्ति' हो गया, 'प्रवचन' 'पावचन' हो गया। जत श्राचीन 'पाठ' शब्द का भी बोध संस्करण असम्भव न था। किन्तु बोधोंने जो कुछ लिया उसे एक नया स्वरूप भी प्रदान किया। संस्कृत 'पाठ' शब्द भिन्न-संघ में आकर 'पाल' हो गया। यह ध्वनि-परिवर्तन भाषा-विज्ञान के नियमों के आधार पर सर्वथा सम्भव भी था। संस्कृत के सभी मूँहन्य व्यञ्जन (ह. द. द. द. ण.) पालि और प्राकृत भाषाओं में 'लू' हो जाते हैं। उदाहरणतः संस्कृत 'बाटविक' पालि में 'आलविक' है, सं० 'पठञ्चर' पालि में 'पठञ्चर' है, सं० 'एडक' पालि में 'एलक' है। इसी प्रकार सं० बेण-पालि बेलु, सं० दृढ़-पालि दलह, आदि, आदि। 'पाल' शब्द का ही बाद में विकृत रूप 'पालि' हो गया। यह भी भाषा-विज्ञान नम्बन्धों नियमों के असंगत न था। अन्त्य स्वर-परिवर्तन का विवाद पालि में अक्षर देखा जाता है, जैसे संस्कृत 'अगल' से पालि 'अंगुलि-अंगुली, सं० 'सर्वं' से पालि सर्वञ्चना आदि, आदि। जत मिथ्या-मादृश्य के आधार पर 'पाल' शब्द का विकृत रूप 'पालि' हो गया। 'पालि' शब्द में 'लू' व्यञ्जन वैदिक मृठन्य 'लू' ध्वनि का प्रतिकृप्त था। इस ध्वनि का विकास काइ आधुनिक भारतीय भाषाओं में 'ह' के रूप में हुआ है। यह वैदिक ध्वनि अन्तःश्व 'लू' से भिन्न थी। किन्तु 'लू' और 'लै' के उच्चारणों में भेद न कर सकने के कारण बाद में मिथ्या-मादृश्य के आधार पर 'पालि' शब्द को 'पालि' शब्द के साथ मिला दिया गया, जो बास्तव में व्युत्पत्ति और अर्थ की दृष्टि से एक विलक्षण भिन्न शब्द था। 'पालि' शब्द के साथ इस

प्रकार मिल कर 'पालि' शब्द भी बुद्ध-वचन के ही अर्थ में प्रयुक्त होने लगा। यिन्हीं सिद्धार्थ के मतानुसार 'पालि' शब्द की यही निश्चित है।

तीसरे मत का निवेद करते से पूर्व इन दोनों मतों की कुछ समीक्षा कर लेना आवश्यक होगा। भाषा-विज्ञान की दृष्टि से दोनों मत निर्दोष है। अनिन्यरितांग याम्बन्धी नियमों पर दोनों वरे उत्तरते हैं। दोनों एक दूसरे के विरोधी भी नहीं हैं। जहाँ तक वे यज्ञ यज्ञ तेतुओं से 'पालि' शब्द का नात्य 'बुद्ध-वचन' में दिखलाते हैं, वे एक दूसरे के पूरक हैं। किन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से यद्यु सिद्धार्थ के मत की एक निर्बलता है। उन्होंने 'पाठ' शब्द का विकृत रूप 'पाल' बतलाया है और फिर उससे 'पालि' या 'पालि' शब्द की व्युत्पत्ति की है। इसे ऐतिहासिक रूप से ठीक होने के लिये यह आवश्यक है कि 'पाठ' शब्द का प्रयोग पालि-साहित्य में उपलब्ध हो। तभी उसके आधार पर 'पालि' शब्द की व्युत्पत्ति की स्वापना की जा सकती है। ऐसा कोई उदाहरण यिन्हीं सिद्धार्थ ने अपने उक्त निवन्ध में नहीं दिया। आचार्य बुद्धघोष की अट्ठकवाओं से जो उदाहरण उन्होंने दिये हैं, उनमें भी 'इति पि गाठोंही बुद्धघोषत वचन है, 'इति पि गाठों' नहीं। जब बुद्धघोष के समय अर्थात् इसा की चीधी-नीची शताब्दी तक 'पाठ' शब्द का वैसा ही भूकृत का सा रूप पालि-साहित्य में मिलता है, तो फिर इस स्वापना के लिये क्या आधार है कि बुद्ध-काल में ही संघ में आकार उसका रूप 'पाल' हो गया था? वास्तव में ऐतिहासिक दृष्टि से तो यही अधिक युक्तियुक्त जान पड़ता है कि 'इति पि पालि' के बाद ही, उससे पहले नहीं, 'इति पि गाठों' लिखना भारम्भ किया गया होगा, जब कि विपिटक के पठन-पाठन का प्रचार कुछ अधिक बढ़ा होगा। श्रीमती रायस डेविड्स का भी यही मत है<sup>१</sup>। अतः यिन्हीं सिद्धार्थ की व्युत्पत्ति के लिये कोई जबकाम नहीं रह जाता। इस ऐतिहासिक आधार की कमी के कारण वह प्रामाणिक नहीं माना जा सकता। यिन्हीं जगदीश काश्यप के मत में ऐसी कोई कमी दिखाई नहीं देती। भावु शिलालेख का अद्वितीय साक्ष प्राप्त उसे आयत है। 'पेत्यालं' शब्द में भी वही तत्त्व निहित है<sup>२</sup>। अतः एक पूरी परम्परा का आधार लेने के कारण और इस कारण भी कि पालि साहित्य में उपलब्ध 'पालि' शब्द के समस्त विकृत

१. देखिये उनका शास्त्र और बुद्धिस्त अंतर्राजिन्स, पृष्ठ ४२५-३०

२. देखिये पालि भाषाभ्याकरण, पृष्ठ तेतालोत (वस्तुकथा)

या विकसित रूपों के साथ उसकी संगति लग जाती है, वह मत हमार बन्मण जान की जबस्या में एक मात्र लिदान्त है।

'पालि' शब्द की अल्पति के विषय में तीसरा मत परं० विष्णुशेखर भट्टाचार्य का है। उनके मतानुवार 'पालि' शब्द का अर्थ 'पंक्ति' है और इस प्रकार वह संस्कृत 'पालि' शब्द का पर्यायवाची है। इस मत को पालि भाषा और साहित्य का भी कुछ समर्थन प्राप्त न हो, ऐसी बात नहीं है। प्रसिद्ध पालि कोश 'जभिचानप्पदीपिका' (चारहवीं शताब्दी) में 'पालि' शब्द के 'दुदुवचनं' अर्थ के साथ साथ 'पंक्ति' अर्थ भी दिया गया है। "तन्ति दुदुवचनं पन्ति पालि"। पालि-साहित्य में 'बन्ध-पालि' 'दन्तपालि' जैसे प्रयोग भी 'पालि' शब्द के 'पंक्ति' अर्थ को ही लोकित करते हैं। अतः 'पालि' शब्द का अर्थ 'पंक्ति' और बाद में 'पन्थ की पंक्ति' इस आवार पर कर लिया गया है और बुद्धवाच द्वारा प्रयुक्त अर्थ के साथ उसकी संगति भी मिला लो गई है। किन्तु इस मत में दोष फिर भी स्पष्ट है। भिशु जगदीश काशयन में उसमें प्रवानतया तीन कमियों दिलाई है।<sup>१</sup> (१) 'पंक्ति' के लिये लिखित पन्थ का होना आवश्यक है। विपिटक प्रथम शताब्दी इसकी पूर्व से पहले लिखा नहीं गया था। अतः उस समय के लिये विपिटक के उद्दरण के लिये 'पालि' या 'पंक्ति' शब्द इस अर्थ से नहीं उपयुक्त हो सकता था। (२) 'पालि' शब्द का अर्थ परि 'पंक्ति' होता तो उस जबस्या में 'उदान-पालि' जैसे प्रयोगों में 'उदान-पंक्ति' अर्थ करने से कोई गमभने गोप्य अर्थ नहीं निकलता। (३) 'पालि' शब्द का अर्थ यदि 'पंक्ति' होता तो उद्धनहयाओं आदि में कहीं भी उसका बहुवचन में भा॒ प्रयोग दृष्टिगोचर होना चाहिये था, जो नहीं होता। अतः 'पालि' शब्द का 'पंक्ति' अर्थ उसके मौलिक स्वरूप तक हमें नहीं ले जा सकता। ही, भिशु जगदीश काशयन ने जो आपत्तिही उठाई है, उनमें से प्रथम के उत्तर में जाविक रूप से वह कहा जा सकता है कि विपिटक की अलिखित जबस्या में 'पालि' या 'पंक्ति' शब्द से तात्पर्य केवल शब्दों की पठित पंक्ति से लिया जाता। रहा होमा और उसके लिखबद्ध कर दिये जाने पर उसकी लिखित पंक्ति ही 'पालि' कहलाई जाने लगी होगी। श्रीमती रायगढ़ डेविल्स ने इसी प्रकार का मत प्रकाशित किया है।<sup>२</sup>

१. पालि महाव्याकरण, पृष्ठ अठ (पस्तुकथा)

२. देखिये उनका जास्त और ब्रूडिस्ट अंतर्रिजिस्ट, पृष्ठ ४२९-३०

फिर भी इस मत से 'पालि' शब्द को व्युत्पन्नि पर कुछ प्रकाश नहीं पड़ता। अतः प्रस्तुत प्रमाण में वह हमारे लिये महत्वपूर्ण नहीं हो सकता।

उपर्युक्त मतों के अलावा एक मत जर्मन विद्वान् डा० मैक्स बेलेसर ने सन् १९२५ और फिर १९२६ में प्रकाशित किया था। इस मत के अनुसार ('पाटलि' या 'पाइलि' (पाटलिपुत्र की भाषा) शब्द का ही अविचित रूप 'पालि' है। जैसे 'पालि' शब्द का प्रयोग भाषा-विद्या के अर्थ में अद्विक्याकारों तक में कहीं निलंबित नहीं, अतः मैक्स बेलेसर का मत अपने आप गिर जाता है। डा० थॉमस द्वारा उसका पर्याप्त प्रतिवाद कर दिये जाने पर<sup>१</sup> आब उसका कोई नाम नहीं लेता। यही भाषा कुछ अन्य अल्फ प्रसिद्ध मतों का भी हुआ है, जिनमें ऐतिहासिक सत्य की अपेक्षा उनके उद्भावकों का बुद्ध-वैचित्र्य ही अधिक दिखाई पड़ता है। इस प्रकार कुछ 'पलिं' (मौव) शब्द से 'पालि' भाषा की उत्पत्ति बताकर उसे भाषीण भाषा बताना चाहते हैं, कुछ प्राकृत-याकट-पाबड-याज्ञल-पालि इस प्रकार उसकी व्युत्पत्ति करना चाहते हैं, कुछ संस्कृत 'प्रालेय' या 'प्रालेयक' (पडोसी) शब्द से उसकी व्युत्पत्ति बताकर उसमें एक विदिषाट ऐतिहासिक तथ्य की लोज़ करना चाहते हैं<sup>२</sup>। यह सब अन्यकार ही अन्यकार है।

हाँ, 'अभिधानपदीपिका' के 'पालि' शब्द के महत्वपूर्ण अर्थ को लेकर हमें कुछ और विचार कर लेना चाहिये। 'पालि' शब्द को तन्ति<sup>३</sup> (संस्कृत तन्त्र) 'बुद्ध-वचन' और 'पवित्र' का समानार्थकारी मानते हुए इसकी व्युत्पत्ति वही की गई है—'गा-गालेति रख्वतीति पालि' अर्थात् जो पालन करती है, रखा करती है, वह 'पालि' है। किसको पालन करती है? किसको रखा करती है? स्पष्टतम उत्तर है बुद्ध-वचनों को। 'पालि' ने किस प्रकार बुद्ध-वचनों का पालन किया, किस प्रकार उनकी रखा की? एक उत्तर है विपिटक के रूप में उनका संकलन करने,

- 
१. इंडियन हिस्टोरिकल स्टार्टर्सी, विसम्बर १९२८ पृष्ठ ७७३; निलाङ्गे विटरनित्यः इंडियन लिटरेचर, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ६०५ (परिशिष्ट दूसरा); लाहौः पालि लिटरेचर, जिल्द पहली, पृष्ठ १८ (भूमिका); देखिये बुद्धिस्तक स्टडीज (डा० लाहौ द्वारा सम्पादित) पृष्ठ ७३०-३१ में डा० कीथ द्वारा मैक्स बेलेसर के मत का लाइन भी।
  २. देखिये जहांगीरवार-कृत कम्पोरेटिव फ़िल्म्स जी अब दि इन्डो आयन लेन्सेज़ में पालि-सम्बन्धी विवेचन।

दूसरा उत्तर है लंकाधिपति बट्टगामणि के समय में उनको लेखबद्ध कर के। त्रिपिटक का संकलन किया, इसलिये 'पालि' 'बृद्ध-वचन' है, त्रिपिटक वाँ लेख-बद्ध किया, इसलिये 'पालि' 'पंकित' है। ऐसा मालूम पड़ता है 'अभिधानपृष्ठीपिका' कार ने 'पालि' शब्द के इस पालन करने या रखा करने सम्बन्धी अर्थ पर और देकर उस महत्वपूर्ण ऐतिहासिक कार्य की ओर सकेत किया है, जो सिंहल में समाधित किया गया और जिसके विषय में 'महावेदा' में लिखा है "त्रिपिटक की पालि (पंकित) और उसकी अट्टकथा को, जिन्हें पूर्व में महामति भिक्षु कठस्थ कर के ले आये थे, प्राणियों को (स्मृति-) हाँनि देख कर, भिक्षुओं ने एकत्रित हो, अर्थ की निरस्त्यति के लिये पुस्तकों में लेखबद्ध करवाया ।" कुछ भी हो, 'पालि' शब्द के इतिहास की दृष्टि से 'अभिधानपृष्ठीपिका' की निरुक्ति अवश्य महत्वपूर्ण है, यद्यपि वह 'पालि' शब्द के मौलिक रूप 'परिचाय' पर विचार नहीं करती। वह केवल उसका समानार्थवाची 'बृद्ध-वचन' शब्द दे देती है। कुल मिलाकर हम कह सकते हैं कि 'पालि' शब्द की निरुक्ति और उसका अर्थ-निर्वचन या 'परिचाय' या 'पलियाय' शब्द में उसके मूल रूप को सोजता है, हमारे वर्तमान ज्ञान की अवस्था में एक मान्य सिद्धान्त है। 'तत् समन्वयात्' ।

### पालि भाषा

अपर हमने चौदहवीं शताब्दी तक का 'पालि' शब्द का इतिहास देखा है। इस बीच हमें एक भी उदाहरण ऐसा न भिला जिसमें 'पालि' शब्द का प्रयोग भाषा-विशेष के अर्थ में किया गया हो। पिछर कब इस शब्द का प्रयोग बृद्ध-वचन के स्थान पर जिस भाषा में बृद्ध-वचन लिखे गये, उसके लिये होने लगा, इसका निर्धारण करना कठिन है। फिर भी हुआ यह वह स्वाभाविक नियम के आधार पर। पहले 'तन्ति' या त्रिपिटक की भाषा को द्योतित करने के लिये सिंहल में 'तन्ति-भाषा' जैसा सामाजिक शब्द प्रचलित हुआ। उसी का समानार्थवाची शब्द 'पालि-भाषा' भी बाद में प्रयुक्त होने लगा। 'पालि-भाषा' अर्थात् पालि (बृद्ध-वचन) की भाषा। बाद में स्वयं 'पालि' शब्द ही भाषा के लिये प्रयुक्त होने लगा। आज 'पालि' से लालाये हम उस भाषा से लेते हैं, जिसमें स्थविरवाद और धर्म का

तिपिटक और उसका सम्पूर्ण उपजीवी साहित्य रखता हुआ है। किन्तु 'पालि' शब्द का इन अर्थ में प्रयोग स्वरूप पालि-साहित्य में भी कभी नहीं किया गया है। जिस भाषा में तिपिटक लिखा गया है, उसके लिये वहाँ मामवो, मगव-भाषा, मामधा निश्चिक, मामविक भाषा जैसे शब्दों का ही व्यवहार किया गया है, जिनका अर्थ होता है मगव-देश में बोले जाने वाली भाषा। इस प्रकार के प्रयोगों के कुछ-एक उदाहरण ही यही पर्याप्त होंगे, यथा, मामधानं निश्चिया परिवर्तेहि (मामवो भाषा में रुपान्तरित करो) — महाबंग, परिच्छेद ३३। . . . .  
 नार्तिस्तं भागवं सद्गवत्वम् (मामवो भाषा के व्याकरण का निरूपण करेंगा) — भागलतान-व्याकरण का आदि श्लोक, आदि। सिहली परम्परा के अनुसार भागवो ही वह 'मूल' भाषा है, जिसमें भगवन् दृढ़ ने उपदेश दिये थे और जिसमें ही उनका संग्रह 'तिपिटक' नाम से किया गया था। इसी अर्थ को व्यक्त करते हुए कवकान-व्याकरण में कहा गया है 'सा मामवो मूल भास्ता . . . सम्बूद्धा नापि भास्ते' (मामवी ही वह मूल भाषा है जिसमें . . . सम्यक् सम्बूद्ध ने भी भास्तवण दिया)। अद्यतनाचाय भगवान् दृढ़घोष की भी यही मान्यता थी 'सम्यातम्बूद्धेन वृत्तयातारो मामवो हो दोहारो' (सम्यक् सम्बूद्ध के द्वारा प्रयुक्त मामवी भाषा-व्याप) — सरन्तरासादिका। इस रूप में मामवो भाषा की प्रतिष्ठा स्वतंत्र-वादी दृढ़ ताहित्य में इतनी अधिक है कि कहीं कहीं उसके गोरख के विषय में इतना अधिक अवैदाद कर दिया गया है कि वह आधुनिक ऐतिहासिक दृष्टि को हुठ बरबरता भो है। मामवी भाषा को पहों सम्पूर्ण प्राणियों को आदि भाषा ही मान लिया गया है। आचार्य दृढ़घोष ने 'विमुदिमम' में कहा है 'मामचिकाय सम्बृद्धतात् मूलभासाय' (सम्पूर्ण प्राणियों को मूल भाषा मामवी का)। इस प्रकार महाबंग, परिच्छेद ३३ में कहा गया है 'सम्बृद्धं मूलभासाय मामवाय निरुत्या' (सम्पूर्ण प्राणियों को मूल भाषा मामवी भाषा का) आदि। निवृत्य ही सिहली परम्परा अपनी इस मान्यता में बड़ी दृढ़ है कि जिसे हम भ्राता 'पालि' कहते हैं, वह दृढ़कालीन भारत में बोले जाने वाली मगव की भाषा ही थी। कहीं तक या किन अर्थों में वह परम्परा ठोक है, वह हमारे ज्यव्ययन की सम्भवतः सब से अधिक महत्वपूर्ण समस्या है। पालि स्वाम्याय के प्रत्येक युग में उपर्युक्त सिहली परम्परा सिहली भिक्षुओं की एक मनमहत कल्पना भासो जाती थी। ओऽनन्दवर्ग ने इस मान्यता के प्रत्वार में काफ़ी शोग दिया था। अनेक प्रसिद्ध भारतीय विद्वान् भी उनके इस प्रवाह में वह मरे

वे ।<sup>१</sup> किन्तु उसके बाद हम दिशा में जो महत्वपूर्ण विवेधण-कार्य हुआ है, उसमें अब हमें परम्पराएँ होने की आवश्यकता नहीं है । इस महत्वपूर्ण समस्या पर, हम अभी भारतीय भाषाओं के विकास में पालि की पृष्ठभूमि को देखने के बाब्कार्योंगे ।

### भारतीय भाषाओं के विकास में पालि का स्थान

भारतीय भाषाओं का इतिहास तीन दूसरों या विकास-अणियों में विभक्त होता गया है (१) प्राचीन भारतीय आर्य-भाषा युग (वैदिक युग से ५०० ईसवी पूर्व तक) (२) मध्यकालीन भारतीय आर्य-भाषा युग (५०० ईसवी पूर्व से १००० ईसवी तक) (३) आधुनिक आर्य-भाषा युग (१००० ईसवी से अब तक) । प्रथम युग की भाषा का नमूना हमें ऋग्वेद की भाषा में मिलता है । उसमें तत्कालीन अनेक वोलियों का समिश्रण है । ऋग्वेद की भाषा का विकास जन्म वैदा, वाद्याण-वन्धों और मूढ़-ग्रन्थों में हुआ है । मध्यकालीन भारतीय आर्य-भाषा युग में एक और वेद की भाषा की विविधता को नियमित किया गया, उसे एक स्वतन्त्र प्रदान की गई, जिसके परिणाम-स्वरूप एक राष्ट्रीय, जनत्रन्त्रीय साहित्यिक भाषा का 'संस्कृत' के नाम से विकास हुआ और दूसरी ओर उसी के समकालिक, ऋग्वेद की विविधतामयी भाषा अनेक प्रान्तीय वोलियों के रूप में विकास ग्रहण करती गई । जब भगवान् बृद्ध ने भगव-प्रान्त में धर्मण करते हुए, वही की जन-भाषा में उपदेश दिया तो वह वही ऋग्वेद की विविधतामयी भाषा के प्रान्तीय विकसित रूपों में से एक थी । तथापत के 'वाचनामग्न' होने का गीरद भिलों के कारण इसका भी क्षय बाद में राष्ट्रीय हो गया और इसी कारण अनेक वोलियों, प्रान्तीय भाषाओं और उपभाषाओं का संमिश्रण भी इसमें हो गया । इस हम आज 'पालि' भाषा कहते हैं । इस प्रकार संस्कृत और पालि का विकास समकालिक है । मध्यकालीन भारतीय आर्य-भाषा युग में इस जन-भाषा के विकास के हम तीन स्तर देखते हैं (१) पालि और अशोक की चर्मलिपियों की भाषा (५००

१. डा० विमला चरण लाहौर से आधुनिक विद्वान् भी हम सोहू से मुक्त नहीं हो पाये हैं । लेलिये उनका हिस्तो और पालि लिटरेचर, जित्व पहली, पृष्ठ, ११ (भूमिका) जहाँ उन्होंने मार्गदर्शी नियमित की सिहली भिक्षुओं की शृङ्खला गढ़त कहा है ।

ईसवी पूर्व से १ ईसवी पूर्व तक (२) प्राकृत नामार्थ (१ से ५०० ईसवी तक) (३) अपन्नल मापार्थ (५०० ईसवी से १००० ईसवी तक) आद्युनिक युग में जाकर इन्हीं अपभ्रंश भाषाओं से हमारी हिन्दी, मराठी, गुजराती आदि बहुमान प्राचीन भाषाओं का विकास हुआ है। इस ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के बाद अब हमें पालि भाषा के स्वरूप आदि पर कुछ अधिक स्पष्टता के साथ विचार करना है। पालि किस प्रदेश की मूल भाषा थी?

पालि भाषा के विषय में सब से अधिक महत्वपूर्ण प्रश्न है—वह किस प्रदेश की मूल भाषा थी? सिहली परम्परा उसे मानधी या मगध की भाषा मानती है, यह हम अभी कह ही चुके हैं। किन्तु यह समस्या इतनी सस्ती निवाटने वाली नहीं है। विद्वानों के एतद्विषयक मतों का यदि संघर्ष किया जाय तो वह एक लम्बी मूर्छी होगी। सभी मत उसे निश्चयित्रण की भाषा मानने के पक्षपाती हैं। कुछ विद्वानों के मतों का निवाटन करना यही आवश्यक होगा।

(१) प्रोफेसर रायस डेविड्स—पालि भाषा का आधार कोशल प्रदेश में छठी और सातवीं शताब्दी ईसवी पूर्व में बोले जाने वाली भाषा थी। कारण (१) भगवान् बुद्ध कोशल प्रदेश के थे, अतः उनकी मातृभाषा यही थी और इसी में उन्होंने उपदेश दिये थे (२) भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण के बाद सो वर्ष के भीतर प्रवानत कोशल प्रदेश में ही उनके उपदेशों का संघर्ष किया गया।

(२,३) वैस्टर्माई<sup>१</sup> और ई० कुहन्त<sup>२</sup>—पालि उच्चयनी-प्रदेश की बोली थी। कारण (१) गिरनार (मुजरात) के अशोक के शिलालेख से इसका सर्वाधिक साम्य है (२) कुमार महेन्द्र (महिन्द) जिन्होंने लंका में बोद्ध घर्म का प्रचार किया और पालि विशिष्टक को वहाँ पहुँचाया, की मातृ-भाषा यही थी।

(४) आर० ओ० कोके<sup>३</sup>—पालि-भाषा का उद्गमस्थान विन्ध्य-प्रदेश

१. बुद्धिस्त इन्डिया, पृष्ठ १५३-५४; केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इन्डिया, जिल्द पहली, पृष्ठ १८७; पालि विकासरी, पृष्ठ ५ (प्राक्कथन)

२.३,४,५ लाहा-पालि लिटरेचर, जिल्द पहली, पृष्ठ ५०-५६ (भूमिका); बुद्धिस्त स्टडीज (दा० लाहा द्वारा सम्पादित) पृष्ठ २३३

देलिये गायगर:पालि लिटरेचर एंड लेखेज पृष्ठ ३-४ (भूमिका) विटरनिस्टज़: इंडियन लिटरेचर, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ६०४ (परिचाल दूसरा)

है। कारण (१) गिरनार-शिलालेख से उसका संबोधिक साम्य है। निषेधात्मक कारण देते हुए फँक ने कहा है कि पालि उत्तर भारत के पूर्वी भाग की भाषा नहीं ही सकती, उत्तर-पश्चिमी भाग के खरोष्टी लेखों से भी उसकी समानताएँ और असमानताएँ दोनों हैं, इसी प्रकार दक्षिण के लेखों की भाषा से भी उसकी विभिन्नता है। अधिकतर उसका साम्य मध्य-देश के पश्चिमी भाग के लेखों से है, यद्यपि यहाँ भी कुछ असमानताएँ हैं। अतः पालि भाषा का उद्गम-स्थान 'विन्ध्य के मध्य और पश्चिमी भाग का प्रदेश' है।

(५) स्टैन कोनो<sup>१</sup>—विन्ध्य-प्रदेश पालि-भाषा का उद्गम-स्थान है। कारण (१) पैशाची प्राकृत से पालि का अधिक साम्य है। (२) पैशाची प्राकृत विन्ध्य-प्रदेश में उज्ज्वलिनी के आसपास बोली जाती थी। यहाँ यह स्मरण रखना आवश्यक होगा कि पैशाची प्राकृत-सम्बन्धी स्टैन कोनो का यह भूत प्रसिद्ध भाषात्मविद् प्रियर्सन के भूत से नहीं मिलता, जिसके अनुसार पैशाची प्राकृत के क्षय और पूर्वी गान्धार की बोली थी। प्रियर्सन का भूत ही अधिक युक्तिवृक्त माना गया है।

(६) डा० ओलडनबर्ग<sup>२</sup>—पालि कलिंग देश की भाषा भी। कारण (१) लंका के पड़ोनी होने के कारण कलिंग से ही लंका में घर्मोपदेश का कार्य शताव्दियों के अन्दर सम्पादित किया गया। (२) लंडगिरि के शिलालेख से पालि का अधिक साम्य है। ओलडनबर्ग के भूत को समझने के लिये यह जानना आवश्यक होगा कि महेन्द्र हारा लंका में बृद्ध-धर्म के प्रचार की बात को ओलडनबर्ग ने ऐतिहासिक तथ्य नहीं माना है। उनके मतानुसार कलिंग के निवासियों ने लंका में बृद्ध-धर्म का प्रचार किया और इसमें कई शताव्दियाँ लगीं।

(७) ई० मूलर<sup>३</sup>—कलिंग ही पालि का उद्गम-स्थान है। कारण, यहाँ से सब से पहले लोगों का लंका में जाकर बसना और धर्म प्रचार करना अधिक संभव है।

आगे के मतों वा निवेश करने के पूर्व उपर्युक्त मतों की कुछ समीक्षा कर लेना आवश्यक होगा। इन सब मतों में सब से मूल्य बात यह है कि ये सभी मत

१. विन्ध्य-पिटक (डा० ओल्डनबर्ग द्वारा रोमन अक्षरों में सम्पादित) नित्य गहली, पृष्ठ १-५६ (भूमिका)

२. सिम्पलीकाइट प्रामार अंड्रॉ वि पालि लंग्वेज, पृष्ठ ३ (भूमिका)

पालि भाषा की उत्तरति के विषय में सिहली परम्परा से असहमत है। पालि भाषा के नामधी आधार को वे किसी भी अर्थ में स्वीकार नहीं करते। केवल रायस डेविल्स के मत में उसके लिये कुछ अवकाश अवश्य है। भगवान् कोशल में उलझ हुए, मगध में चूम-निकरे, अतः उनके उपदेशों का माध्यम कोशल की भाषा भी ही सकती थी, मगध की भाषा भी और उनका समिश्रण भी। किन्तु रायस डेविल्स का अपने मत को सिद्ध करने के लिये यह अनुमान करना कि अशोक के अभिलेखों की भाषा छठी और सातवीं शताब्दी ईसवी पूर्व की कोशल प्रदेश में बोले जाने वाली भाषा का ही विकसित रूप है, अवश्य यह कि अशोककालीन मगध-जासन की राष्ट्र-भाषा कोशल प्रदेश की टकसाली भाषा ही थी, ठीक नहीं माना जा सकता। प्रतिवेशी कोशल राज्य के मगध में सम्मिलित हो जाने के बाद मगध-जासन य जब अपनी जरम उत्तरति पर पहुंचा तो यही मानना अधिक मुश्लिमगत है कि मगध की भाषा को ही राष्ट्र-भाषा होने का गीरव मिला। हाँ, चारों ओर की जनपद-बोलियों को भी, जिनमें एक प्रथम कोशल प्रदेश की बोली भी थी, उसमें अपना उचित स्थान मिला। एक सार्वविशिष्ट, टकसाली, राष्ट्र-भाषा के निर्माण में प्रादेशिक बोलियों का हस प्रकार का सहयोग सर्वेषा स्वाभाविक है। अतः कोशल-प्रदेश की बोली का भी अन्तभीव मगध की राष्ट्र-भाषा (मानसी भाषा) में ही गया था, ऐसा हम कह सकते हैं। वैसे यदि रायस डेविल्स के मत का उसके मौलिक हा में देखा जाय तो उसका कोई आधार ही नहीं मिलता, क्योंकि जैसा द्वारा विन्दरनितज्ञ ने भी कहा है, छठी और सातवीं शताब्दी ईसवी पूर्व की कोशल प्रदेश की बोली की आज हमारी जानकारी ही क्या है, जिसके आधार पर हम उसे पालि का मूल रूप मान सकें? वैस्टरसार्थ, द्वारा कुछ न केक और स्ट्रेंगरों के ऊपर निर्दिष्ट मत भी, जो किसी न किसी प्रकार विष्ट्य-प्रदेश को पालि का जन्म-स्थान मानते हैं, एकागदर्शी हैं। अधिक से अधिक वे पालि भाषा के मिथित रूप को, जो एक सार्वत्रिक एवं अन्तर्राष्ट्रीय भाषा के लिये सर्वेषा अनिवार्य है, घोषित करते हैं। इससे अधिक उनका और कुछ महत्व नहीं है। केक ने विष्ट्य-

१. इंडियन लिटरेचर, जिल्ड द्वासरी, पृष्ठ ६०५ (परिशिष्ट २); द्वारा कोई ने भी रायस डेविल्स के मत का लंबन किया है। वैसेहिये इंडियन हिस्टोरिकल क्वार्टर्सली, लितन्यर १९२५ में प्रकाशित कीष का 'पालि दि लॉर्गेज आंद्र सदन बृद्धिस्टस' शीर्षक मिथित।

प्रदेश के मध्य और पश्चिमी भाग को पालि का उद्गम-स्थान बताने के अतिरिक्त एक और विचित्र बात कही है। उन्होंने सामाजिक पालि समझे जाने वाली भाषा (अर्थात् त्रिपिटक और उसके उपजीवी साहित्य की भाषा) के लिये तो 'साहित्यिक पालि' शब्द का प्रयोग किया है और 'पालि' शब्द से उन्होंने बुद्धकालीन भारत में बोले जाने वाली अन्य सब जार्य-भाषाओं को अभिप्रेत करना चाहा है। फँक का यह पारिभाषिक शब्द-निर्माण भ्रमात्मक ही सिद्ध हुआ है। जिन जार्य-भाषाओं को उन्होंने 'पालि' कहा है उनके लिए भारतीय साहित्य में प्राकृत भाषाओं का नाम छड़ है और जाज भी उनका यही नाम प्रचलित है। अतः उसी का प्रयोग करना अधिक उचित जान पड़ता है। त्रिपिटक की भाषा के लिए केवल 'पालि' नाम प्रयोग है। उसके साथ 'साहित्यिक' लगाने से भ्रम पैदा होने की आशंका हो जाती है। स्टैन कोनो का मत पैशाची प्राकृत को उच्चायिनी-प्रदेश की बोली बतलाता है और इस प्रकार भाषात्मविदों के सामने एक नई समस्या लड़ी कर देता है। बास्तव में उनका यह मत विद्वानों को कभी प्राहृष्ट नहीं हुआ है और पैशाची को केक्ष और पूर्वी गान्धार की बोली मानना ही सब प्रकार ऐतिहासिक और भाषाविज्ञानिक तथ्यों से संगत है। ब्रोल्डनबर्ग और हैंड मूलर के मत प्रधानतः कलनाप्रसूत हैं<sup>१</sup>। ब्रोल्डनबर्ग को अपने मत-स्थापन में महत्र के लड्डा में धर्म-प्रचार संबंधी कार्य की भी, जो अन्यथा सब प्रकार ऐतिहासिक तथ्यों से सिद्ध है,<sup>२</sup> अनेतिहासिक मानना पहा है। इसी से उनके मत की गम्भीरता का पता लग जाता है। खंडगिरि के शिलालेख के साथ पर पालि का जन्म-स्थान कल्यन बतलाना उतना ही अपूर्ण मिळाता है जितना गिरनार के शिलालेख के आधार पर उसे उच्चायिनी-प्रदेश की बोली छहराना। पालि के प्रातीय कारणों से उत्पन्न मिथित स्वरूप को दिखाने के अतिरिक्त इन मतों का अन्य कोई साक्षर या महत्व नहीं है।

जिन विद्वानों ने पालि-भाषा के मानधी आधार को स्वीकार किया है, अब वह जिन्होंने सिहली परम्परा को कुछ विशिष्ट अद्वी में समझने का प्रयत्न किया है, उनमें जेम्स एलिस, वाइल्डर, विडिच, विन्टरनिल्ड, ग्रिवसन और ग्रायगर के

१. वेलिये भागे द्वारे अन्याय में 'पालि साहित्य का उद्भव और विकास' सम्बन्धी विवेचन।

नाम अधिक प्रसिद्ध है। भिक्षु सिद्धार्थ<sup>१</sup> और भिक्षु जगदीश काशयप<sup>२</sup> जैसे मारतीय बीढ़ विद्वानों ने भी इसी मत का प्रतिपादन किया है। जेम्स एल्विस और चाइ-लड्स की यह मान्यता है कि 'मागधी' ही पालि भाषा का मौलिक और सबसे अधिक उपर्युक्त नाम है। जेम्स एल्विस के मतानुसार बुद्धकालीन भारत में १६ प्रादेशिक बोलियाँ प्रचलित थीं। इनमें 'मागधी' बोली में, जो भगव में बोली जाती थी, भगवान् बुद्ध ने उपदेश दिये थे। विद्यश ने भी पालि के 'मागधी' आधार को मिठ्ठा बारने का प्रयत्न किया है। विटरनिटज का मत भी इसी के समान है। उनका कहना है कि पालि एक साहित्यिक भाषा थी, जिसका विकास अनेक प्रादेशिक बोलियों के सम्बन्ध से हुआ था, जिसमें 'प्राचीन मागधी' प्रधान थी।<sup>३</sup> शियसंन ने पालि के मागधी आधार को तो स्वीकार किया है, किन्तु पालि में तत्कालीन पश्चिमी बोलियों के प्रभाव को देखकर उन्हें यह मानना पड़ा है कि पालि का आधार विशुद्ध मागधी न होकर कोई पश्चिमी बोली है। इसी को सिद्ध करने के लिए उन्होंने यह कल्पना कर दी है कि पालि का विकास मागधी भाषा के उस रूप से हुआ जो तत्कालीन विश्वविद्यालय में बोला जाता था और जिसमें ही विपिटक का संस्करण बहाँ किया गया था।<sup>४</sup> किन्तु न तो मागधी भाषा के बहाँ शिक्षा के माध्यम के रूप में प्रयुक्त होने की और न उसमें विपिटक के बहाँ संकलित होने की कोई अकाट्य युक्ति शियसंन या अन्य किसी विद्वान् ने अभी तक दी है।<sup>५</sup> जमेन विद्वान् गायगर का मत उपर्युक्त सभी मतों से अधिक परिपूर्ण और बहाहम है। उनके अनुसार पालि मागधी भाषा का ही एक रूप है, जिसमें भगवान् बुद्ध ने उपदेश दिये थे। यह भाषा किसी जनपद-विशेष की बोली नहीं थी, बल्कि सभ्य-समाज में बोले जाने वाली एक सामान्य भाषा थी, जिसका विकास बुद्ध-पूर्व सूख में हो रहा था। इस प्रकार की अन्तर्राष्ट्रीय भाषा में स्वभा-

१. बुद्धिस्तक स्टडीज (डा० लाहा द्वारा सम्पादित) पृष्ठ ६४१-५६
२. पालि महाब्याकरण की वस्तुकथा।
३. इंडियन लिटरेचर, जिल्ड द्वारा, पृष्ठ १३
४. भांडारकर कमेमोरेशन बोल्डम, पृष्ठ ११७-१२३ (शियसंन का 'दि होम अंबि लिटररी पालि' शीर्षक लेख)
५. यह आलोचना डा० कीव की है। देखिये उनका 'दि होम अंबि पालि' शीर्षक निबन्ध, 'बुद्धिस्तक स्टडीज' (डा० लाहा द्वारा सम्पादित) पृष्ठ ७३१

वतः ही जनेक बोलियों के तत्व विवरण थे । एक मगध का निवासी इसे एक एक प्रकार से बोलता था, कोशल का दूसरी प्रकार से और अबनी का किसी तीसरे प्रकार से चब्बपि भगवान् बुद्ध मगध प्रदेश के नहीं थे, किन्तु उनका जीवन-कार्य अविकांश वहीं संपादित किया गया था । अतः मगध की बोली की उनकी भाषा पर अभिद छाप पड़ी होगी । इसलिए उनकी भाषा को आसानी से 'मागधी' कहा जा सकता है, किंतु वाहे उसमें मागधी बोली की कुछ विशेषताएँ भले ही उपलब्ध न हों । अतः मगधर के मतानुसार पालि विशुद्ध मागधी तो नहीं थी, किन्तु उस पर आधित एक लोक-भाषा थी, जिसमें भगवान् बुद्ध न अपने उपदेश दिये थे ।

वास्तव में पालि कहीं तक या किन जबों में मागधी थी या नहीं, यह हमारे अध्ययन की सबसे बड़ी समस्या है । जिस मागधी का विवरण उत्तरकालीन प्राकृत-व्याकरणों ने दिया है या जिसके स्वरूप का दर्शन कियपय अभिलेखों या नाटक-ग्रन्थों में होता है, उससे तो पालि निश्चयतः भिन्न है, ऐसा कहा जा सकता है । प्राकृत-व्याकरणों, अभिलेखों और नाटक-ग्रन्थों की मागधी का विकास पालि के बाद हुआ है । इस प्रकार की मागधी भाषा के रूप की दो प्रथम विशेषताएँ हैं (१) प्रत्येक द् और त् का क्रमशः ल् और श् में परिवर्तित हो जाना (२) पुलिलङ्घ और नपूसकलङ्घ अकारान्त शब्दों का प्रथमा विभक्ति एक बचन का रूप एकारान्त होना । पालि में रहता है, उसका 'ल्' में परिवर्तन केवल अनि-मिमित रूप से कभी-कभी होता है, सर्वथा नियमानुसार नहीं । उदाहरणतः अशोक के पद्धितम के लेखों में राजा, पुरा, भारभित्वा जैसे प्रयोग मिलते हैं, किन्तु पूर्व के लेखों में उनके क्रमशः राजा, पुलुं, आलभितु रूप ही जाते हैं । 'स्' का 'श्' में परिवर्तन तो पालि में होता ही नहीं । 'श्' पालि में ही नहीं । केवल अशोक के उत्तर (मनसेहर) के शिलालेख में इसका प्रयोग अवश्य दूषित-गोचर होता है, जैसे प्रियदर्शिन, प्रियदर्शि, प्राणशतसहस्रानि, आदि । पुलिलङ्घ और नपूसकलङ्घ अकारान्त शब्दों के रूप भी पालि में प्रथमा विभक्ति एकबचन में क्रमशः जोकारान्त और जनुस्वारान्त होते हैं, एकारान्त नहीं । 'राहुलोबादः' की जगह 'लाभुलोबते', 'बुद्ध' की जगह 'बुचे' 'मृगः' की जगह 'मिगे' आदि प्रयोग लशोक के कुछ शिलालेखों में अवश्य पाये जाते हैं और तृतीयिक के कुछ अंगों में

भी । किन्तु नियमतः में प्रयोग नहीं पाये जाते । अतः जिस मागधी का नियमण प्राकृत-वैयाकरण करते हैं, उसे पालि का आधार नहीं माना जा सकता । उसका विकास तो, जैसा अभी कहा गया है, पालि के बाद हुआ है । पालि का आधार तो केवल वही मागधी वा मगध की बोली हो सकती है जो मध्य-मडल अबौद्ध-परिचयमें उत्तर-कुरु में पूर्व में पाटलिपुत्र तक और उत्तर में व्यावस्ती से दक्षिण में अवन्ती तक फैले हुए प्रदेश की सामान्य सभ्य-भाषा के रूप में प्रतिष्ठित भी और जिसका विकास अनेक कारणों से गौरव प्राप्त करने वाली मगध की भाषा से हुआ और अनेक कारणों से ही जिसमें नाना प्रदेशों की बोलियों का संमिश्रण हो गया, जिसका साथ आज हम उसके सुरक्षित रूप 'पालि' में पाते हैं ।

जिस प्रकार प्राकृत वैयाकरणों द्वारा विवेचित मागधी को पालि भाषा का आधार नहीं माना जा सकता, उसी प्रकार जैन सूत्रों की भाषा अद्वैत-मागधी का 'प्राप्त' को भी उसका आधार स्वीकार नहीं किया जा सकता । उसका भी विकास पालि के बाद हुआ है । पच्छिम में शीरसनी और पूर्व में मागधी प्राकृत के बीच के क्षेत्र में जो भाषा बोली जाती थी, वह अपने मिथित स्वरूप के कारण 'अद्वैतमागधी' कहलाती है । ध्रनि-समूह, शब्द-साक्षन और वाक्य-विचार की दृष्टि से पालि और अद्वैतमागधी में बहु समानताएँ या असमानताएँ हैं, इसका विवेचन हम आगे पालि और प्राकृत भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन करते समय करेंगे । अभी लूडसे के उस मत का निवेदन करना है, जिसके जनुसार 'प्राचीन अद्वैतमागधी' पालि भाषा का आधार है । लूडसे का मत है कि मौलिक रूप में पालि त्रिपिटक प्राचीन अद्वैतमागधी भाषा में था और बाद में उसका अनुवाद पालि भाषा में, जो पच्छीमी बोली पर जाखित थी, किया गया । अतः उनके मतानुसार आज त्रिपिटक में जो मागधी रूप दृष्टिगोचर होते हैं, वे प्राचीन अद्वैतमागधी के बे जबरिष्ट अव भाषा हैं जो उसका पालि में अनुवाद करते समय रह गये थे<sup>१</sup> । लूडसे का यह तर्क विलकूल अनुमान पर जाखित है । जिस प्राचीन अद्वैतमागधी को लूडसे ने त्रिपिटक का मौलिक आधार माना है, उसके रूप का निर्णय करने के लिए सिवाय उनकी कल्पना के और बोई आधार नहीं है । जैसा कीर्ति ने ने कहा है, यह सिद्ध नहीं किया जा सकता कि लूडसे द्वारा निर्मित या पर्याकल्पित प्राचीन अद्वैतमागधी का विकास

१. देखिये चुट्टिस्टिक स्टडीज, पृष्ठ ७३४; गायगर:पालि लिटरेचर एंड लेखिंज, पृष्ठ ५; लाहौ:हिस्ट्री ऑफ पालि लिटरेचर, जिल्ड पहली, पृष्ठ २०-२१ (भूमिका)

बाद से अद्वैत-मार्गधी प्राकृत के रूप में हो चुका है । अतः लूडसे ने तथाकथित 'प्राचीन अद्वैत-मार्गधी' के रूप का निर्माण अधोक के शिलालेखों और बाद में अवधीष्ट के नाटकों के अवधीष्ट अंशों से किया है । किन्तु यह अनुभानित निर्माण-कार्य प्रमाण-कोटि में नहीं आ सकता । पालि भाषा में प्राप्त विभिन्न-ताओं की व्याख्या उसके प्रांतीय विकास और समित्रण, मौखिक परम्परा और एक भिन्न देश में त्रिपिटक के विप्रिवद्ध किये जाने के परिणाम स्वरूप भी को ता सकती है ।

लूडसे के समान ही एक मत प्रांसद्व फेंच विद्वान् सिल्वरों लंबों का है । उन्होंने यह प्रमाणित करने का प्रयत्न किया था कि पालि-त्रिपिटक मौखिक बुद्ध-वचन न होकर इसी ऐसी पूर्ववर्ती मार्गधी बोली वा अनुवादित रूप है जिसमें अन्ति-वर्तन पालि भाषा की अपेक्षा अधिक विकसित अवस्था में था । पालि के 'एकोदि' एवं 'संघादिसेस' जैसे शब्दों की उनके संस्कृत प्रतिरूप 'एकोति' 'संघातिशेष' जैसे शब्दों के साथ तुलना कर उन्होंने त्रिपिटक के अन्दर एक ऐसी बोली के अवधीष्ट चिन्ह खोजने का प्रयत्न किया है, जिसमें शब्द के मध्य स्थित संस्कृत अधोष (क्, च्, त्, प् आदि) स्पर्शों के स्वान पर घोष (ग्, ज्, द्, ब् आदि) स्पर्शों होने का नियम था । पालि त्रिपिटक और अधोक के शिलालेखों के कुछ विशेष शब्दों में, जिनमें उपर्युक्त नियम लागू होता है, लेकी ने प्राचीन मौखिक बुद्ध-वचन (जिन्हें उन्होंने ऐसा समझा है) में प्रयुक्त शब्दों के लियों को खोजने का प्रयत्न किया है । उदाहरणतः भाष्य अभिलेख में 'राहुलोवाद' की जगह 'लाधुलोवादे' है, 'अधिकृत्य की जगह 'अधिगित्य' है । लेकी का कहना है कि क् (अधोष स्पर्श) के स्वान पर ग् (घोष स्पर्श) का होना पालि में तो बहुत अल्प ही होता है, इसी प्रकार 'अधिगित्य' में 'च्य' भी पालि की प्रवृत्ति के अनुकूल नहीं है । इससे उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला है कि वर्तमान पालि त्रिपिटक एक ऐसी भाषा से अनुवाद किया हुआ है, जिसमें अधोष स्पर्शों (क्, च्, त्, प् आदि) का घोष स्पर्शों (ग्, ज्, द्, ब् आदि) में परिवर्तित हो जाना अधिक सीमा तक पाया जाता था । नीचे के कुछ उदाहरण लेकी के तरफ़ी को स्पष्ट करने के लिए अल्प होंगे—

१. बुद्धिस्तिक स्टडीज (डा० लाहा द्वारा सम्पादित) पृष्ठ ७३४, पान्सकेत २

२. गायगढ़ : पालि लिटरेचर एंड लॉगेज, पृष्ठ ५

संस्कृत	पालि
मात्रानिदिक	मागनिदिप
कवचमल	कवचमल
अचिरचती	अजिरचती
पाराचिक	पाराचिक
कृष्णिवदन	इसिपत्तन

इन उद्धरणों के आधार पर लेखी ने जनुमान किया है कि पालि त्रिपिटक अपने मीलिक रूप में उस ऐसी भाषा में था जिसमें शब्द के मत्त्व-स्थित अधोष स्पशों के घोष स्पशों में परिवर्तित होने का नियम था । लेखी के मत को गायगर ने प्रामाणिक नहीं माना है । उन्होंने इसके तीन कारण दिये हैं (१) लेखी ने 'संघादिसेस' 'एकोदि' 'पानिदिप' (प्राकृचित्तिक) आदि शब्दों की जो निश्चितया दी है, वे सभी अनिश्चित हैं (२) अधोष स्पशों का घोष स्पशों में परिवर्तित होना केवल उपर्युक्त शब्दों में ही नहीं पाया जाता, अन्य अनेक शब्दों में भी इस नियम का पालन देखा जाता है, उदाहरणतः

संस्कृत	पालि
उताहो	उदाहृ
प्रथित	गथित
व्यथते	पवेधति

(३) लेखी द्वारा निर्दिष्ट नियम का ठीक विपरीत अर्थात् संस्कृत घोष स्पशों का अधोष स्पशों में परिवर्तित हो जाना भी पालि में दूषितगोचर होता है—

पालि	संस्कृत
अग्रह	अक्षल
परिष	पलिष
कुसीद	कुसीत
मृदंग	मृतिग
शावक	चापक
प्रावरण	पापुरण

अतः गायगर के मतानुसार लेखी द्वारा निर्दिष्ट अवलि-परिवर्तन संबंधी उदा-

हरणों ने हम उनके द्वारा निश्चित सिद्धांत पर नहीं पहुँच सकते। लेकिं का मत पालि भाषा की केवल एक विचित्रता वो बतलाता है और वह विचित्रता है उसका विविधतामय रूप, जिसकी व्याख्या हम नाना बोलियों के समिक्षण के आधार पर ही कर सकते हैं। अतः लेकिं का मत भी अन्ततोगत्वा पालि के मिथित स्वरूप को ही प्रकट करता है।

उपर कुछ विद्वानों के मतों का उल्लेख और उनकी समीक्षा की जा चुकी है। जब बुद्ध-युग की परिस्थितियों और स्वयं विपिटक के साक्ष पर पालि भाषा के मानवी आधार पर हम कुछ और विचार कर लें। यह निश्चित है कि भगवान् बुद्ध ने पैदल धूम घूमा कर अपने उपदेश मध्य-मध्य (भजिसमेसु पदेसु) अर्थात् कोसी कुशखेत्र से पाटलिगुड़ और विन्ध्य से हिमाचल के बीच के प्रदेश में दिये। यह भी निश्चित है कि उनके शिष्यों में नाना जाति, वर्ग और प्रवेशों के व्यक्ति सम्मिलित थे। इसी प्रकार यह भी निश्चित है कि भगवान् बुद्ध के उपदेश मौखिक थे और उनके महापरिनिवारण के अनन्तर दो-तीन घण्टाव्यंत्रों में उनका संकलन किया गया। उनका लिपिबद्ध रूप तो प्रथम शाताल्दी इसकी पूर्व में आकर हुआ, जब से वे उसी रूप में जले जा रहे हैं। इस इतने विकास की परम्परा में अनेक परिवर्तनों और परिवर्तनों की संभावना हो सकती है। भगवान् बुद्ध की 'नारों बणों की शृदि' और उसके विषय में उनकी कोई 'आत्मायं-मुटि' (रहस्य-भावना) न होने के कारण हम यह तो स्वाभाविक ही मान सकते हैं कि नाना प्रवेशों से आये हुए भिन्न अपनी-अपनी बोलियों में ही बुद्ध-वचनों को समझने का प्रयत्न करते होंगे। कम से कम अन्तर्गतीय मानवी भाषा का व्यवहार करने पर भी उस पर अपनी बोलियों की कुछ छाप तो बै लगा ही देते होंगे। बाद में उन्हीं लोगों ने जब अपने सुने हुए के अनुसार बुद्ध-वचनों का संकलन किया तो उनमें उन विभिन्नताओं का भी चला आना सर्वथा संभव था। अतः बुद्ध-वचनों की भाषा मूल रूप से मानवी होने पर भी उसमें प्राप्त विविधरूपता की व्याख्या उपर्युक्त हंग पर की जा सकती है। किन्तु गायगर ने मानवी को पालि का मलाधार मिथ करने के लिए और मह दिलाने के लिए कि भाषा और विषय दोनों को ही दृष्टि से पालि-विपिटक ही मूल बुद्ध-वचन है, एक ऐसे तक का उपयोग किया है जिसके बिना भी उनका काम चल सकता था। विनय-पिटक के चूल्हवग्म में एक कथा है, जिसमें वो बाह्यण भिन्न इस बात पर बहुत जाग्र होते दिखाये गये हैं कि नाना जाति और गोत्रों

जाने तक का विरोध किया तो फिर वे किसी साधारण बोल चाल की भाषा में उन्हें रखने जाने का किस प्रकार जादेश दे सकते थे ? उस दशा में तो उनके मौलिक अर्थों और प्रभाव में ही काफी अन्तर हो जाता ।<sup>१</sup> “अतः निःसन्देह भगवान् बुद्ध ने अपने उपदेश मगध-देश की टकसाली भाषा में ही दिये और उसी में उनके शिष्यों ने उन्हें सीखा और फिर उपदेश किया ।”<sup>२</sup> भिक्षु सिद्धार्थ के इस मन्त्रव्य से किसी को विरोध नहीं हो सकता । चूंकि भगवान् बुद्ध ने मध्य-मण्डल की रामायण सभ्य-भाषा में ही अपने उपदेश दिये और उसी के विभिन्न स्वरूपों में उनके शिष्यों ने उन्हें सीखा, अतः आज हम कहना चाहें तो कह ही सकते हैं कि मार्गधी भाषा ही भगवान् बुद्ध के उपदेशों का माध्यम थी और उसी में उनके शिष्य उन्हें सीखते और उपदेश करते थे । इस इटिंग से बुद्धघोष, गायगर और भिक्षु सिद्धार्थ के अर्थ ठीक हैं । किन्तु यदि उनके अर्थों से हम यह समझें कि स्वयं भगवान् बुद्ध और उनके शिष्यों को भगवान् बुद्ध की उपर्युक्त अनुज्ञा से वही अर्थ अभिप्रेत वा जो बुद्धघोष, गायगर और भिक्षु सिद्धार्थ ने उसे दिया है, तो यह विलक्षुल गलत है । बास्तव में, हम बुद्ध की उपर्युक्त अनुज्ञा की व्याख्या करने में बुद्धघोष या गायगर की अपेक्षा उस अनुज्ञा के ही पूर्वांग प्रसंग और बुद्ध की भावना से भी, जैसी वह अन्यत्र प्रस्फृटित हड्डि है, अधिक सहायता लेने के पक्षपाती है । विन्टरनिट्ज ने कुछ स्पष्टता-पूर्वक यह विलापा है कि ‘सकाय निरुत्तिया’ का सम्बन्ध ‘भिन्नत्वे’ के साथ लगाने के लिये उनके साथ ‘वो’ शब्द का आता अनिवार्यतः आवश्यक नहीं है जैसा कि गायगर ने आग्रह किया है । उसे प्रसंग-वश भी समझा जा सकता है ।<sup>३</sup> द्वारा विमलाचरण लाहा ने पालि के मार्गधी जापार को स्वीकार नहीं किया है, अतः उन्होंने कुछ विस्तार से गायगर के मत का प्रतिवाद किया है ।<sup>४</sup> कौप ने भी, जो

१. बुद्धिस्तक स्टडीज (डा० लाहा द्वारा सम्पादित) पृष्ठ ६४८

२. “There can be no doubt as to the fact that the Buddha preached his doctrine in the standard vernacular of the Magadha country and his disciples studied and taught it in that very language” बुद्धिस्तक स्टडीज, पृष्ठ ६४९

३. इन्डियन लिटरेचर, जिल्ड दूसरी, पृष्ठ ६०२ (परिचाप्ट द्वासरा)

४. पालि लिटरेचर, जिल्ड पहली, पृष्ठ ११-१६ (भूमिका)

पालि को किसी पञ्चमी बोली पर आधारित मानते हैं, गायगर के परम्परावादी मत को स्वीकार नहीं किया है।<sup>१</sup> वास्तव में बात यह है कि व्याकरण की दृष्टि से निर्विष होते हुए भी गायगर की बृद्ध-अनुज्ञा की उपर्युक्त व्याख्या उस प्रसंग में ठीक नहीं बैठती, जिसमें वह आई है। अतः पालि भाषा के स्वरूप के सम्बन्ध में उस मत को भिन्न करने के लिये, जो दूसरे प्रमाणों के जाथार पर उनके द्वारा ही सुनिश्चित कर दिया गया है, पर्याप्त नहीं ठहरती। सामान्यतः गायगर का अर्थ इन कारणों से प्रभागिक नहीं माना जा सकता।<sup>२</sup> (१) प्रसंग में वह ठीक नहीं बैठता। पहले भिन्न लोग 'सकाय निरुत्तिया' (अपनी अपनी भाषा में) बृद्ध-बच्चों को दृष्टिकोण से प्रस्ताव रखते हैं। इस पर ग्राह्यण भिन्न लोगों ने उन्हें 'छन्दम्' में करने का प्रस्ताव रखता है। भगवान् ने इस प्रस्ताव का विरोध करते हुए 'सकाय निरुत्तिया' बृद्ध-बच्चों की सीखने की अनुज्ञा दे दी है। स्पष्टतः प्रसंग के अनुसार यही 'सकाय निरुत्तिया' का वही अर्थ लेना ठीक है जो पहले किया गया है, अर्थात् 'अपनी अपनी भाषा में'। (२) किसी विशेष भाषा में बृद्ध-बच्चों को सीखना कड़ कर देना भगवान् तथागत की प्रवृत्ति के विपरीत है। इस प्रकार उनका 'वर्म' प्रकाशित नहीं होता, जो सारी प्रजाओं के लिये सुलने पर ही प्रकाशित होता है<sup>३</sup> (३) भगवान् बृद्ध का जीर शब्दों पर नहीं था, अबों पर था<sup>४</sup>। कोई भी भाषा किसी अन्य भाषा से उनकी दृष्टि में उच्च अवश्यकता नहीं थी। न उन्हें सम्भूत से द्वेष था, न मागधी से मोह। वे केवल जीवित भाषा में उपदेश देना चाहते थे, जिससे लोग उन्हें आसानी से समझ सकें। मागधी का ऐसा ही माध्यम उन्हें अनायास मिल गया, जिसे उन्होंने प्रयुक्त किया। (४) जनपद-निरुत्तियों अर्थात् भाषा के स्थानीय प्रयोगों में तथागत को अभिनिवेश नहीं था। किसी एक भाषा-प्रयोग में उनका आपहु नहीं था। उन्होंने स्वयं कहा है कि एक ही वस्तु 'पात्र' के

१. इन्डियन हिस्टोरिकल स्कार्टरली, १, १९२५, पृष्ठ ५०१; बुद्धिस्तक स्टडीज पृष्ठ ७३।

२. ऐसाहो अंगूतर-निकाय के तिक निपात में कहा गया है। देखिये विम्टरलिङ्ग: इन्डियन लिटरेचर, जिल्ड हूसरी, पृष्ठ ६३-६४; मिलिन्द-प्रकाश (भिन्न जगदीश काश्यप का अनुवाद) पृष्ठ २३४।

३. किन्तिसुत (भजिसम. ३। १। ३)

लिये किसी जनपद में 'पाति', किसी में 'पत्त' किसी में 'वित्त' किसी में 'मराव', किसी में 'धारोप' किसी में 'पीण' किसी में 'पिसील' शब्द का प्रयोग होता है, तो भिक्षुओं को किसी एक शब्द को ही लेकर यह समझ कर नहीं बैठ रहना चाहिये कि यही प्रयोग ठीक है और सब गलत है। बल्कि उन्हें तो अपने भी जनपद के प्रयोग के प्रति ममता न रख कर जहाँ जैसा प्रयोग चलता हो, वहाँ उसी के अनुसार बरतना चाहिये<sup>१</sup> । अतः मगध-जनपद के प्रयोग के प्रति भी तत्त्वानुत का अभिनिवेद्य या पक्षपात-व्यवहार कैसे हो सकता था? अतः यायगर का अर्थ पहल नहीं हो सकता।

जैसा हम ऊपर कह चुके हैं, यायगर की 'सकाय निश्चित्या' की व्याख्या के साथ असहमत होते हुए भी पालि भाषा के मामधी आचार को हम अस्वीकार नहीं कर सकते। अब तक हमने इस विषय सम्बन्धी जो विवेचन मिया है वह हमें इसी निष्कर्ष की ओर पहुँचने के लिये बाध्य करता है कि पालि भाषा का विकास मध्य-मंडल में बोले जाने वाली उस अन्तर्राष्ट्रीय सभ्य भाषा से हुआ जिसमें भगवान् बृह ने अपने उपदेश दिये थे और विसकी संज्ञा बौद्ध अनुश्रुति के अनुसार 'मामधी' है। इसी 'मामधी' के विकसित, विकृत या अधिक ठीक कहें तो विभिन्न जन-पर्वीय स्वरूप हमें ज्ञानके अभिलेखों की 'मामधी' में मिलते हैं। निश्चय ही इस अधोक-कालीन मगध-भाषा की उससे तीन सौ चार सौ कर्ष पूर्व बोले जाने वाली मगध-भाषा से, जो विपिटक में सुरक्षित है, विभिन्नताएँ भी हैं। इन विभिन्नताओं के आधार पर ही ओलडवर्ग आदि विद्वानों ने यह निष्कर्ष निकाल लाला था कि पालि मामधी नहीं है। पालि को मामधी न मानने से उनका तात्पर्य, जैसा हा० ई० जे० यामस ने दिखाया है, सिएँ यही था कि पालि अधोक के अभिलेखों की भाषा नहीं है।<sup>२</sup> किन्तु यही पर यह नहीं सोचा गया कि जो कुछ भी विभिन्नताएँ विपिटक की भाषा और अधोक के अभिलेखों की भाषा में हैं, वे सब एक अन्तर्राष्ट्रीय राजभाषा के प्रान्तीय प्रयोगों के आधार पर समझी जा सकती हैं। अधोक का उद्देश्य अपने विशाल साम्राज्य के विभिन्न जनपदों की सामोन्य जनता तक अपने सन्देश को पहुँचाना था। जनपद-निश्चित्यों का अभिनिवेद्य उसके हृदय में

१. देखिये अरणविभंग सूत (मनिम.३४१९)

२. चूदिस्टिक स्टडीज, पृष्ठ २३४ (डा० है० जे० यामस का "चूदिस्ट एज्युकेशन  
इन पालि एंट संस्कृत स्कूल्स "शीर्षक निवाप)

या नहीं। उसने जैसा प्रयोग जिस जनपद में बलता देखा, वैसा ही शिलालेखों में अंकित करवा दिया। इसी कारण उनमें उच्चारण आदि की अल्प विभिन्नताएँ भिलती हैं। एक ही लेख के पूर्व (जीगड़) पश्चिम (गिरनार) और उत्तर (मनसे हर) इन तीन संस्करणों का मिलान करने से यह भेद स्पष्ट हो जाता है। स्थानाभाव के कारण हम यहीं इन तीनों अभिलेखों को उदृत तो नहीं कर सकते, किन्तु उनके आधार पर विभिन्न भाषा-स्वरूपों का अध्ययन करना आवश्यक है। उनके भाषा-स्वरूपों में मुख्य विभिन्नताएँ इस प्रकार हैं। (१) पश्चिम (गिरनार) के शिलालेख में 'इ' का 'ल्' में परिवर्तन नहीं होता। उदाहरणतः 'राजा', 'राजा', 'पुरा', 'आरभित्वा' जैसे प्रयोग वहाँ दृष्टिगोचर होते हैं। उत्तर के शिलालेख (मनसे हर) में भी 'इ' का 'ल्' में परिवर्तन नहीं होता, किन्तु वहाँ प्रादेशिक उच्चारण-भेद अवश्य दृष्टिगोचर होता है। 'राजा', की जगह वहाँ 'रज', 'राजा' की जगह 'राजिने', 'पुरा' की जगह 'पुर' और 'आरभित्वा' की जगह 'आरभित्तु' मिलते हैं। पूर्व के शिलालेख (जीगड़) में 'इ' का 'ल्' में परिवर्तन हो जाता है। वहाँ 'राजा' की जगह 'लाजा' है, 'राजा' की जगह 'लाजिना' है, 'पुरा' की जगह 'पुलूव' है और 'आरभित्वा' की जगह 'आलभित्तु' है। (२) पश्चिम के लेख में (सामान्यतः गालि के समान) केवल दल्घ 'म्' का ही प्रयोग है। तालम्ब 'श्' और मर्दन्य 'थ्' वहाँ नहीं मिलते। इनकी जगह भी दल्घ 'म्' का ही प्रयोग मिलता है। 'प्रियदर्शि' इसका उदाहरण है। पूर्व के लेख की भी यहीं प्रवृत्ति है। किन्तु उत्तर के लेख की आश्चर्यजनक प्रवृत्ति 'श्' और 'थ्' दोनों को रखने की है। वहाँ 'प्रियदर्शि' (पश्चिम) या 'प्रियदर्शि' (पूर्व) की जगह 'प्रियदर्शि' है। इसी प्रकार 'प्रियदर्शिना' या 'प्रियदर्शिना' की जगह 'प्रियदर्शिन' है। 'प्राणसत्तसहस्रानि' (पश्चिम) या 'पानसत्तसहस्रानि' (पूर्व) की जगह 'प्राणशत्तसहस्रानि' है। 'आरभरे' (पश्चिम) या 'आलभियसु' की जगह आश्चर्यजनक रूप से 'अरभियस्ति' है। (३) पूर्लिङ्ग अकारान्त शब्द के प्रयोग एक-वचन वा रूप पश्चिम के अभिलेख में ओकारान्त है, जैसे 'एको मगो'। किन्तु पूर्व और उत्तर के अभिलेखों में वह एकारान्त हो गया है, जैसे 'एक मिंग' (पूर्व), 'एके घिंगे' (उत्तर)। (४) पूर्व के अभिलेख में व्यञ्जन रेफ्रेक्शन होने पर ऐक की ज्वनि लप्त होकर व्यञ्जन में ही मिल गई

१. जिसके लिये देखिये भिज्जु जगदीश काश्यप-गालि महाराजाकरण, पृष्ठ तेतोस-चौतोस (वस्तुकापा)

है, जैसे प्रियदर्शी में 'प्रियदर्शि', प्राणा से 'प्रानानि'। किन्तु पश्चिम और उत्तर के अभिलेखों में यह परिवर्तन नहीं हुआ है। वहाँ 'प्रियदर्शि', 'प्राणा' (पश्चिम) एवं 'प्रियदर्शि' 'प्रणनि' (उत्तर) शब्दों में रेफ़रेंसिं सुरक्षित है। (५) 'कृ' के परिवर्तन में भी असमानता है। मृग से 'मनो' पश्चिम में है, 'मिगे' पूर्व में है, 'मिगे' उत्तर में है। (६) पश्चिम का विलालेख संस्कृत के अधिकतम समीप है। मिलाइये, पुरा महानससिंह देवानं प्रियम प्रियदर्शिनो रात्रो अनुदिवसं बहूनि प्राणसतसहलानि आरभिसु मूपाचाव (पश्चिम); पुलुवं महानससि देवानं प्रियम प्रियदर्शिने लाजिने अनुदिवसं बहूनि पानसतसहलानि आलभियिसु मूपठाये (पूर्व); पुर महानससि मूपथवे (उत्तर)। इन विभिन्नताओं के स्वरूप पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि वे भौलिक न होकर एक ही सामान्य भाषा के प्रार्थीय या जनपदीय रूप हैं, जो उच्चारण-भेद से उत्पन्न हो गये हैं। मूल तो उन सब का एक ही है—मगध की राज-भाषा-मागधी, जिसमें ४०० वर्ष पहले भगवान् बृह ने अपने उपदेश दिये थे और जो आज तक अपने उसी प्रामाणिक किन्तु मिथित रूप में पालि त्रिपिटक में सुरक्षित है।

### पालि और वैदिक भाषा

क्षपर अबोक की धर्मलिपियों में पाई जाने वाली पालि की विभिन्नताओं की ओर संकेत किया गया है। वास्तव में ये विभिन्नताएँ पालि की जन्म-जात हैं। ये उसे वैदिक भाषा से उत्तराधिकार-स्वरूप मिली हैं। पालि का वैदिक भाषा से ऐतिहासिक दूरिट से क्या सम्बन्ध है, इसका हम पहले विवेचन कर चुके हैं। यहाँ हम इन भाषाओं के स्वरूप की दृष्टि से ही विचार करेंगे। कृष्णेद की रचना अनेक दूरों में अनेक वृहियों द्वारा की गई। अतः उसमें अनेक प्रादेशिक बोलियों का संमिश्रण मिलता है। ब्राह्मण-ग्रन्थों और सूक्त-ग्रन्थों में इसी भाषा के विकासित

१. अबोक के पूर्वी, पश्चिमी और उत्तरी अभिलेखों के ही भाषा-सत्त्व पालि में मिलते हैं। जिन्होंने पूर्वी तत्त्वों पर जोर दिया है उन्होंने पालि को मागधी या अद्वै-मागधी पर जागारित माना है, जिन्होंने पश्चिमी तत्त्वों पर जोर दिया है, उन्होंने उसमें जौरसेनी के तत्त्व ढंडे हैं और जिन्होंने उत्तरी तत्त्वों को प्रवानता दी है, उन्होंने उसमें पंशाची तत्त्व ढंडे हैं।

स्वरूप के दर्शन होते हैं। बाद में पाणिनि ने इसी भाषा की भिन्नरूपता को सुसम्बद्ध कर उसे साहित्यिक रूप प्रदान किया। यही 'संस्कृत' अर्थात् संस्कार की हुई भाषा कहलाई। ब्रह्मग-ब्रह्मों और यास्क या पाणिनि के काल के बीच में इस भाषा का व्यवस्थापन-कार्य हुआ। प्राचीन वेद की भाषा के साथ इसका विभेद दिखाने के लिये इसके लिये 'संस्कृत' शब्द का प्रयोग किया जाता है, जब कि वेद की भाषा का उपयुक्त नाम 'छन्दस्' है। वेद की भाषा जिस समय यास्क और पाणिनि के समय में और उनके कुछ पहले से सुसम्बद्ध होकर 'संस्कृत' के रूप में आयों के विज्ञान और धर्म की भाषा बन रही थी, उसी समय आयों की बोलचाल की भाषा भी विकसित होकर नया स्वरूप प्राप्त कर रही थी। मगध या कोशल के प्रान्तों में उमने जो स्वरूप प्राप्त किया, उसी के दर्शन हमें आज 'पालि' के रूप में होते हैं। मगध-साम्राज्य के विकास के साथ इसी बोली ने एक व्यापक रूप धारण कर लिया। इस प्रकार हम देखते हैं कि एक ही वैदिक भाषा के आधार पर, एक ही मध्यकालीन आर्यभाषा-युग में, संस्कृत और पालि का विकास भिन्न भिन्न ढंगों से हुआ। वैदिक भाषा के एक ही शब्दों के क्रमणः पालि और संस्कृत में विकसित स्वरूपों को मिलान कर देखने से यह ऐतिहासिक तथ्य अच्छी तरह से समझा जा सकता है।

वैदिक भाषा की सब से बड़ी विशेषता उसकी अनेकरूपता है। स्वभावतः इस अनेकरूपता का उत्तराधिकार संस्कृत की अपेक्षा पालि को ही अधिक मिला है। इस तथ्य का विशेष विवरण हम जाने पालि के शब्द-सौधन और याक्ष-विचार का विवेचन करते समय करेंगे। यहाँ कुछ उदाहरण ही पर्याप्त होंगे। अकारान्त शब्दों के तूतीया बहुवचन में वैदिक भाषा में 'देवेभिः' 'कण्ठेभिः' वैसे रूप मिलते हैं। संस्कृत ने इन रूपों को छोड़ दिया है। किन्तु पालि में ये 'देवेभिः' 'देवेहि' 'कण्ठेभिः' 'कण्ठेहि' आदि के रूप में सुरक्षित हैं। वैदिक भाषा में 'विश्वन्' 'व्यवन्' जैसे नपूरुषक लिंग शब्दों के प्रथमा और सम्बोधन के बहुवचन के रूप 'विश्वः' 'व्यवना' जैसे आकारान्त होते हैं। पालि में यह प्रवृत्ति 'चित्ता' 'रूपा' जैसे प्रयोगों में दिखाई पड़ती है, किन्तु संस्कृत में नहीं पाई जाती। उत्तम पुरुष बहुवचन का वैदिक प्रत्यय 'मसि' पालि में 'मसे' (बयमेत्य यमामसे) के रूप में सुरक्षित है। इसी प्रकार प्रथम पुरुष बहुवचन में वैदिक भाषा में 'रे' प्रत्यय लगता है। संस्कृत में वह नहीं भाषा जाता। किन्तु पालि में यह 'पञ्चरे' 'भासरे' जैसे प्रयोगों में सुरक्षित है। वेद में निमित्तार्थक 'तवे' प्रत्यय का बहुत प्रयोग होता है।

'पालि में भी 'कात्वे' 'गन्तव्ये' जैसे रूपों में वह सुरक्षित है। संस्कृत ने इस प्रयोग को छोड़ दिया है। इसी प्रकार अन्य अनेक सब्दों में हम यह प्रवृत्ति देखते हैं। संस्कृत 'आम्' सब्द का वैदिक रूप 'आम्ब्र' है। पालि में यह 'अम्ब्र' है। पालि ने 'व्' को रख लिया है।'<sup>१</sup> वैदिक अकाशन्त पुलिलज्ज शब्दों के प्रथमा विवेचन के रूप में 'असूक्' प्रत्यय लग कर 'देवास' जैसा रूप बनता था। पालि में भी यह 'देवासे' 'धम्मासे' 'बुद्धासे' जैसे रूपों में सुरक्षित है। संस्कृत ने इन रूपों को गहण नहीं किया है।

### पालि और संस्कृत

पालि और संस्कृत के ऐतिहासिक सम्बन्ध का विवेचन हम पहले कर चुके हैं। दोनों ही मध्यकालीन भारतीय भाषाएँ हैं। दोनों ही समान स्रोत वैदिक भाषा से उद्भूत हुई हैं। किन्तु जैसा कवीर ने पन्द्रहवीं शताब्दी में लोकभाषा हिन्दी का संस्कृत से मिलान करते हुए संस्कृत को 'कृपज्ञ' कह कर (हिन्दी) 'भाषा' तो 'ब्रह्मा नीर' कहा था, वही बात हम पालि के विषय में भी कह सकते हैं। पालि वह बहता हुआ नीर था जो वैदिक काल से लेकर अप्रतिहत रूप से मध्य-मठल में प्रवाहित होता हुआ चला आ रहा था। इसके विपरीत संस्कृत वह बढ़ मदासरोवर था, जिसमें समस्त आर्य ज्ञान-विज्ञान अनुमापित कर दिया गया था। एक की गति जवरुद्ध थी, दूसरे में आवर्त-विवर्ती की लहरे सतत चलती रहीं। परिणामतः प्राहृतों की सीमा पार कर अपभ्रंश के ताना विवर्त धारण कर, वह आज हमारी अनेक प्राचीय बोलियों के रूप में समाप्तिष्ठ हो गई है। संस्कृत 'पुराण यूवती' है। पुरानी होने हुए भी वह सदा अपने गौलिक अभिराम रूप को धारण करती है। उसके जरा-मरण नहीं। इसके विपरीत पालि के कुमारी, युवती, बुद्धा स्वरूप हमें दृष्टिगोचर होते हैं। अन्त में वह अपनी सन्तानों के रूप में अपने को लो भी चुकी है। पालि विपिटक में उसके बाल्य और तारण का सामान्यतः दिव्यवर्णन होता है, अनुपालि-माहित्य में सामान्यतः उसके बुद्धत्व का। उसके ये विविध भाव एक ही व्यक्तित्व के विकार हैं, जो उसने काल और स्थान के भेद से गहण किये हैं। जिन भाषा-तत्त्व-विदों ने उसके इस रहस्य

१. वैसिये बुद्धिस्तक स्टडीज, पृष्ठ ६५५-५६ (भिलू सिंहार्थ का पालिभाषा सम्बन्धी निबन्ध)

को नहीं समझा है, उन्होंने उसके आदि निवास-स्थान और स्वरूप आदि के विषय में अनेक एकांगदर्ती मत प्रकट किए हैं, यह हम पहले देख ही चुके हैं।

उद्गम की दृष्टि से पालि और संस्कृत भरोड़ा हैं। जैसे द्वे सगी बहनों में एक का रूप कुछ अधिक निखरा हो, दोनों के स्वरूप-निवासों और शब्दों के समान होने हुए भी एक कुछ अधिक परिष्कार के साथ बोले, यही हालत पालि और संस्कृत को है। ध्वनि-समूह में तो कुछ अल्प विभिन्नताएँ ही भी, किन्तु रूप-विधान में तो उतनी भी नहीं हैं। दोनों के ध्वनि, रूप और अर्थ का विस्तृत तुलनात्मक में अध्ययन करते समय यह हम अभी देखेंगे। पहले विकास-क्रम को पूरा करते हुए, पालि-भाषा का सम्बन्ध प्राकृत भाषाओं के साथ देखें।

**पालि और प्राकृत भाषाएँ; विशेषतः अर्द्धमागधी, शौरसेनी और पैशाची**

प्राकृतों का विकास (१-५०० ई०) पालि के बाद का है। यह भी कहा जा सकता है कि पालि प्राकृत की प्रथम अवस्था का ही नाम है। हम पहले कह चुके थे कि अशोक के समय में पालि या तत्कालीन लोक-सामान्य भाषा के कम से कम तीन स्वरूप प्रचलित थे। यूर्बी, पश्चिमी और पश्चिमोत्तरी। इन्हीं बालियों का विकासवाद में प्राकृतों के रूप में हुआ। मागधी और अर्द्धमागधी अशोकालीन पूर्वी बोलीये, शौरसेनी पश्चिमी बोली के और पैशाची पश्चिमोत्तरी बोली के विकसित रूप हैं, ऐसा हम कह सकते हैं। पहले ये बोलियाँ मात्र थीं, किन्तु साहित्य में प्रयुक्त होने पर इसका स्वरूप अवश्य होगया। भरत मूर्ति ने सत प्राकृत भाषाओं का उल्लेख किया है, (१) मागधी प्राकृत, (२) अवली प्राकृत, (३) प्राच्या, (४) शौरसेनी, (५) अर्द्धमागधी, (६) वाल्हीक और (७) शशिभाष्य<sup>१</sup>। बाद में वैयाकरण हेमचन्द्र ने इनमें वैशाची और लाटी को और जोड़ दिया है। साहित्य की दृष्टि से प्राकृतों में चार मुख्य हैं, मागधी, अर्द्धमागधी, शौरसेनी और महाराष्ट्री। प्राकृत के वैयाकरणों ने महाराष्ट्री को अधिक महत्व दिया है। महाराष्ट्री प्राकृत का विस्तृत विवेचन करने के बाद उन्होंने अन्य प्राकृतों की केवल कुछ विशेषताओं का विवेचन कर 'शेष महाराष्ट्रीवत्' कहकर छोड़ दिया है।

१. मागधवर्णितज्ञा प्राच्या शूरसेन्यर्द्धमागधी ।

वाल्हीक वाणिणात्याद्वच सत भाषा; अकीर्तिता! ॥

२. महाराष्ट्राभ्यां भाषा; प्राकृतं विदुः । वाढी

भाषा-तत्त्व की दृष्टि से पालि और भाषा-तत्त्वों में अनेक समानताएँ हैं। उप-युक्त विकास-विवरण से स्पष्ट है कि मामधी, अद्वैत-मामधी, बौद्धसेनी और पैदाचारी प्राकृत ही पालि के तुलनात्मक अध्ययन में अधिक ध्यान देने योग्य हैं। पहले हम सामान्यतः पालि में पाये जाने वाले प्राकृत-तत्त्वों का निदेश करेंगे और फिर मामधी, अद्वैत-मामधी, बौद्धसेनी और पैदाचारी के साथ उसका संक्षिप्त तुलनात्मक अध्ययन करेंगे ।

पालि और प्राकृत भाषाओं का ध्वनि-समूह प्राप्त एक सा ही है। अ, ए, इ, और ओ का प्रयोग पालि और प्राकृतों में समान रूप से ही नहीं पाया जाता। केवल आगमन में वह ध्वनि अवश्य मिलती है। पालि और प्राकृतों में अह ध्वनि अ, इ, उ, स्वरों में से किसी एक में परिवर्तित हो जाती है। ह्रस्व ए और ह्रस्व ओ का प्रयोग पालि और प्राकृत दोनों में ही मिलता है। विसमें का प्रयोग पालि और प्राकृत दोनों में ही नहीं मिलता। श् श् को जगह मामधी को छोड़ कर और सब प्राकृतों और पालि में 'स' ही हो जाता है। मूर्दन्य ध्वनि 'ळ' पालि और प्राकृत दोनों में ही पाई जाती है ।

विशेष रूप से प्राकृत-तत्त्व पालि में व्यंजन-परिवर्तनों में ही पाये जाते हैं। ये परिवर्तन इस प्रकार है (१) शब्द के अन्तःस्थित व्यंजन स्वरों को जगह या व् का आगमन (२) शब्द के अन्तःस्थित व्यंजन स्वरों का शोण महाप्राण की जगह ह् हो जाना (३) शब्द के अन्तःस्थित व्यंजन स्वरों का शोण हो जाना। (४) महाप्राप्तव (ह-कार) का आकस्मिक आगमन या लोप (५) आकस्मिक वर्ण-व्यत्यय। ये परिवर्तन पालि में जनियमतः कहीं-कहीं और प्रायः अन्य सब प्राकृतों में नियमतः पाये जाते हैं। आगे पालि के ध्वनि-समूह के विवेचन में इनका सोदाहरण विवरण दिया जायगा। बास्तव में बात यह है कि जिन ध्वनि-परिवर्तनों का पालि में सूत्र-गात ही हुआ है, उन्हीं का विकास हमें प्राकृतों में देखने को मिलता है। यही इन समानताओं का कारण है। इसका कुछ विस्तार से विवेचन हम आगे पालि के 'व्यंजन-परिवर्तन' पर विचार करते समय करेंगे। यहाँ इतना ही कह देना जावश्यक है कि पालि के जिस रूप के साथ प्राकृत की समानता है अथवा उसके जिस रूप में प्राकृत-तत्त्व मिलते हैं, वह पालि का प्राचीन रूप न होकर उसका विकसित रूप है। इसीलिये पालि-भाषा के विकास में भी हम तारतम्य देखते हैं, जिसका वर्णन हम जनी आगे करेंगे ।

मागधी और पालि के सम्बन्ध का विवेचन हम पहले कर चुके हैं। अद्देमागधी के सम्बन्ध में भी कुछ कहूँ चुके हैं। यहाँ केवल इतना ही कहना है कि जिस रूप में अद्देमागधी के स्वरूप को साक्ष्य हमें जैसे आगमों में मिलता है, उसकी व्याप्ति और रूप की दृष्टिसे पालि से समानताएँ तो हैं किन्तु अद्देमागधी को पालि का उद्गम या आचार स्त्रीकार नहीं किया जा सकता। प्रत्युत उसका विकास पालि के बहुत बाद हुआ है। पालि और अद्देमागधी की कुछ समानताएँ इस प्रकार हैं—(१) संस्कृत 'अस्' और 'अर्' के स्थान में 'ए' हो जाना। पालि के पुरे (पुरा); सूत्रे (स्व.); भिन्नत्वे (भिन्नव.); पुरिसकारे (पुरुषकार); दुक्षे (दुःख) जैसे शब्दों में यह अद्देमागधीपन की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है। (२) संस्कृत 'तद्' के स्थान पर 'से' हो जाना। यह प्रवृत्ति 'सेयमधा' (तदयथा) जैसे पालि के प्रयोगों में खड़ हो गई है। (३) इसी प्रकार संस्कृत वद् के स्थान पर 'ये' हो जाना। (४) एका ल् हो जाना अद्देमागधी की एक बड़ी विशेषता है। पालि में भी यह कहीं-कहीं दृष्टिगोचर होती है, नियमानुसार नहीं। (५) स्वरों और अनुनासिक स्वरों के बाद जाने पर 'एव' का अद्देमागधी में 'येव' हो जाता है। पालि में भी यह प्रवृत्ति कहीं कहीं दृष्टिगोचर होती है। (६) कहीं कहीं वर्ण-परिवर्तन का विधान भी पालि में अद्देमागधी के समान ही है। उदाहरणतः

संस्कृत	पालि	अद्देमागधी
साक्षं (जीवों के सामने)	समिक्षं (समिक्षिं भी)	साक्षं
स्त्रह (मूँठ, तलचार)	सह	सह (छह भी)
वेणु (दौस)	वेळु	वेळु
लांगल (हल)	नंगळ	नंगळ

लूटसे ने, अद्देमागधी के प्राचीन स्वरूप को पालि का आचार माना है, ततः उन्होंने उपर्युक्त समानताओं पर अधिक जीर्ण दिया है। किन्तु इन समानताओं की एक मर्यादा है। केवल कुछ हृष्टपुटे उदाहरणों को छोड़ पालि में ये प्रवृत्तियाँ नियमित दृष्टिगोचर नहीं होतीं। उदाहरणतः, सं० अस् की जगह 'ए' हो जाना, 'इ' की जगह 'ल्' हो जाना आदि प्रवृत्तियाँ जो अद्देमागधी की अनिवार्य विशेषताएँ हैं, पालि में कहीं कहीं हो गई जाती हैं।

शोरसों ग्राहक सूर्यसेन अर्थात् वज्र-मंडल या मध्य-मंडल की भाषा थी। यह प्राकृत संस्कृत के अधिकतम सेमीग्र है। उत्तरकालीन पालि में भी यही प्रवृत्ति

दिखाइ देती है। पालि भी मध्यमंडल की ही लोक-भाषा रही थी। अतः उसका प्रभाव शौरसेनी पर आवश्यक रूप से पड़ा है। जिन बिद्वानों ने पालि का आधार कोई पूर्वी बोली (मागधी या अद्ध-मागधी) न मान कर किसी पञ्चमी बोली का माना है, उन्होंने शौरसेनी प्राकृत के साथ उसकी सर्वाधिक समानताएँ दिखाने का प्रयत्न किया है। कुछ समानताएँ इस प्रकार हैं। (१) शौरसेनी के प्रार्थन हण में शब्द के मध्य में स्थित अंजन का लोग नहीं होता और अंगों स्पर्शों का घोष स्पर्शों में परिवर्तन भी बहुत कम दिखाइ पड़ता है; (२) शब्द के मध्यस्थित 'न्' में भी साधारणतः परिवर्तन नहीं होता; (३) शब्द के आदि में स्थित 'म्' की जगह 'ज्' नहीं होता, जैसा उत्तरकालीन प्राकृतों में हो जाता है; (४) 'दानि' और 'इदानि' शब्द दोनों में ही समान हण से प्रयुक्त होते हैं; (५) इसी प्रकार 'पेक्ख' 'गम्मिसिति' 'सक्तिकृति' जैसे शब्दों में भी समानता है। इन समानताओं के विषय में हमें यही कहना है कि इनमें से बहुत सी केवल पालि और शौरसेनी में ही नहीं मिलती, बल्कि अन्य प्राकृतों में भी पाई जाती है।

इसी प्रकार पालि और पैशाची प्राकृत के सम्बन्ध का सवाल है। इन दोनों भाषाओं की मुख्य समानताएँ इस प्रकार हैं— (१) घोष स्पर्शों (म्, द्, व्) के स्थान पर अंगों स्पर्श (क्, त्, प्) हो जाना; (२) शब्द के मध्य में स्थित अंजन का तुरंशित रहना; (३) 'भारिय' 'मिनाम' 'कसट' जैसे शब्दों में युक्त वर्णों का विश्लेषण (युक्त-विकृण) पाया जाना; (४) ज्, ष्य्, और न्य् का 'ञ्ज्' में परिवर्तन होता; (५) द् का ज् में परिवर्तन न हो कर सुरक्षित रहना; (६) अकारान्त पुलिङ्ग शब्दों के प्रयोग एकावचन में ओकारान्त हो जाना, (७) धातु-स्पर्शों में समानताएँ भी केवल पैशाची प्राकृत के साथ ही नहीं हैं। अन्य प्राकृतों में भी में पाई जाती है। उदाहरणतः ज्, ष्य् और न्य् की जगह 'ञ्ज्' मागधी और अन्य अनेक प्राकृतों में भी पाया जाता है। इसी प्रकार य् का ज् में परिवर्तित न होकर 'प्' ही बन रहना मागधी तथा अन्य प्राकृतों में पाया जाता है। इसी प्रकार अकारान्त शब्दों का ओकारान्त हो जाना केवल पैशाची प्राकृत में ही नहीं, किन्तु सभी पञ्चमी बोलियों में पाया जाता है और संस्कृत के मिथ्या-सादृश्य के आधार पर उद्भूत है। इसी प्रकार पालि का धातु-स्पर्श-विषय न केवल पैशाची से ही अपितु सामान्यतः सभी पञ्चमी बोलियों से समानता रखता है। यही हाल 'र्' के पालि में परिवर्तित न होने का है। पञ्चमी बोलियों में भी ऐसा ही पाया जाता है। पैशाची

प्राकृत के सब रूपों में 'र' सुरक्षित ही मिलता है, ऐसी भी वात नहीं है। शब्द के मध्य में स्थित व्यंजन का सुरक्षित बने रहना प्राचीनता का लक्षण अवश्य है, किन्तु पैशाची के साथ पालि के ध्वनिसम्बन्ध का बोतक नहीं। घोष स्पर्शों के स्थान पर अघोष स्पर्श ही जाना पालि में यत्र-तत्र ही अनियमित रूप से पाया जाता है और पैशाची में भी यह तियम अनिवार्य नहीं है। अतः पैशाची प्राकृत के साम्य के आधार पर हम पालि के स्वरूप के सम्बन्ध में कोई निश्चित सिद्धान्त स्थापित नहीं कर सकते।

उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि किसी एक प्राकृत या उसके प्राचीन स्वरूप से पालि को सम्बद्ध कर देना कितना एकाग्री और भामक सिद्धान्त है। बास्तव में तथ्य यही है कि पालि एक मिथित, साहित्यिक भाषा है जिसमें अनेक बोलियों के समिक्षण के भिन्न मिलते हैं। उसके ध्वनि-समूह का विस्तृत विवरण, प्राकृतों के साथ उसके सम्बन्ध को, जिसे हमने अभी तक अत्यन्त संक्षिप्त रूप से ही निश्चित किया है, अधिक स्पष्टता से व्यक्त करेगा।

### पालि के ध्वनि-समूह का परिचय

पालि के ध्वनि-समूह को यमझने के लिये पहले वैदिक और यस्तुत भाषा के ध्वनि-समूह को समझ लेना आवश्यक है। वैदिक ध्वनि-समूह में ५८ ध्वनियाँ थीं, जिसमें १३ स्वर थे और ३५ व्यंजन। इनका वर्णकरण इस प्रकार है—

#### स्वर—

- (१) नौ मूल स्वर : अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, , ऋ, ऋ, उ,
- (२) नार संयुक्त स्वर : ए, ऐ, ओ, औ

#### व्यंजन—

- (१) सत्ताईस स्पर्श व्यंजन —

कठूप	क्, ख्, ग्, घ्, ङ्
तात्प्र	त्, छ्, ज्, भ्, ञ्
मूँद्धन्य	—द्, ढ्, ह्, ण्, ल्, लह्
इत्य	—त्, च्, द्, च्, न्
ओँष्ट्य	—॒, फ्, ब्, भ्, म्

- (२) नार अन्तस्य —॒, र्, ल्, व्

- (३) तीन ऊर्म —॒, ष्, स्

- (४) अनुनासिक — (अनुस्वार)

## ( ६ ) तीन अधोग्र ऊम्य

विसर्जनीय या विसर्ग :

जिह्वामूलीय<sup>१</sup>उपधमानीय<sup>२</sup>

वैदिक ध्वनि-समूह ही प्रायः संस्कृत में उपलब्ध होता है। कुछ विशेष परिवर्तन इस प्रकार है—( १ ) ल्, लू, जिह्वामूलीय तथा उपधमानीय ध्वनियों का प्रयोग संस्कृत में नहीं मिलता ( २ ) कुछ स्वरों और व्यंजनों के उच्चारणों में भी परिवर्तन हुआ है। इस पृष्ठभूमि को ध्यान में रख कर अब हम पालि के ध्वनि-समूह पर विचार करें। पालि का ध्वनि-समूह इस प्रकार है—

## स्वर

अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, हस्त ए, ए, हस्त ओ, ओ

## व्यंजन

कंठ्य	— क, कू, ग, घ, ङ,
तालव्य	— च, छ, चू, झू, अ,
मूढ़न्य	— ट, टू, ढ, ढू, ण, ल, लू
वन्य	— त, थ, द, ध, न,
ओष्ठ्य	— प, फ, ब, भ, म,
अन्तःस्थ	— य, रु, ल, व
ऊम्य	— त्
प्राणध्वनि	— ह,

संस्कृत से मिलान करने पर उपर्युक्त पालि ध्वनि-समूह में ये विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती हैं—( १ ) क, कू, ल्, ए, ओ स्वरों का प्रयोग पालि भाषा में नहीं मिलता ( २ ) पालि में दो नये स्वर हस्त ए और हस्त ओ मिलते हैं, ( ३ ) विसर्ग पालि में नहीं मिलता ( ४ ) च, छ, पालि में नहीं मिलते, ( ५ ) ल्, लू, व्यंजनों का प्रयोग पालि में संस्कृत से अधिक होता है। दो स्वरों के बीच में आने वाले ह का

१. 'क' से पहले आने वाला विसर्ग 'ततः कि' में विसर्ग की ध्वनि इसका उदाहरण है।

२. 'प' से पहले आने वाला विसर्ग 'पुनः पुनः' में प्रथम विसर्ग की ध्वनि इसका उदाहरण है।

स्थान यहाँ 'ळ' ने ले किया है, इसी प्रकार 'इ' का स्थान 'ल्ह'ने। मिथ्या-सादृश्य के कारण 'ळ' का प्रयोग 'ळ' के स्थान पर भी देखा जाता है। (६) स्वतंत्र स्थिति में 'ह' प्राणध्वनि व्यंजन है, किन्तु य, इ, ल, व या अनुनासिक से संयुक्त होने पर इसका उच्चारण एक विशेष प्रकार से होता है, जिसे पालि वैद्याकरणों ने 'ओरत' या 'हृदय से उत्तर' कहा है। इस संक्षिप्त निर्देश के बाद अब उत्तर ध्वनि-परिवर्तनों का उल्लेख करना आवश्यक होगा, जो संस्कृत की तुलना में पालि में होते हैं। पहले हम स्वर-परिवर्तनों को लेंगे, बाद में व्यंजन-सम्बन्धी परिवर्तनों को। स्वर-परिवर्तनों में भी क्रमशः ह्रस्व स्वर, दीर्घ स्वर, संयुक्त स्वर, विसर्ग आदि तथा विवेचन किया जायगा। इसी प्रकार व्यंजन-सम्बन्धी परिवर्तनों में असंयुक्त और संयुक्त व्यंजनों की दृष्टि से शब्द में उनकी स्थिति के अनुसार विवेचन करेंगे, यथा आदि-व्यंजन, मध्य-व्यंजन, अस्त्र-व्यंजन, आदि। इसके साथ ही स्वर और व्यंजन-सम्बन्धी कुछ विशेष ध्वनि-परिवर्तनों का दिव्यदर्शन करना भी आवश्यक होगा।

### स्वर-परिवर्तन

ह्रस्व स्वर (अ इ, उ, ए, ओ)

१. साधारणतया संस्कृत ह्रस्व स्वर अ, इ, उ, पालि (एवं प्राकृतों) में सुरक्षित रहते हैं।

#### उदाहरण

संस्कृत	पालि	
वृः	वृ॒	(प्राकृत वृ॒)
अन्मि	अम्मि	
अर्व	अट्ठ	
प्रिय	प्रिय	
रुक्ष	रुक्षो	
मुखम्	मुखं	(प्राकृत मुहं)

२. यदि संस्कृत में ज संयुक्त व्यंजन से पहले होता है, तो पालि में उसका कहीं ए (ह्रस्व ए) हो जाता है।

#### उदाहरण

संस्कृत	पालि
फल्म् (सारहीन)	फल्म्

संख्या

संख्या (प्राकृत सेज्जा)

३. इकारान्त और उकारान्त पालि शब्दों के स्पौं में विभक्ताद्यन्त इकार और उकार का दीर्घ होकर क्रमशः ईकार और ऊकार हो जाता है, यथा ईहि अहि, ईतु, ऊतु। इस प्रकार 'अग्नि' (अग्नि) और 'भिक्षु' (भिक्षु) शब्दों के स्पौं में क्रमशः अग्नीहि, भिक्षुहि (तृतीया बहुवचन) एवं अग्नीम्, भिक्षुम् (सातमी बहुवचन) रूप होते हैं।

(४) यदि संस्कृत में इ और उ संयुक्त व्यञ्जन से पहले होते हैं, तो पालि में वे क्रमशः ए और ओ (हस्त ए और हस्त ओ) हो जाते हैं। उदाहरण—

संस्कृत	पालि
विष्णु	वेणु (कही कही विष्णु भी)
निष्ठा	नेष्ठा
उष्टु	ओट्ठ
उल्कामुख	ओल्कामुख
पुण्डर	पोङ्गवर

(५) संस्कृत में जहाँ संयुक्त व्यञ्जन से पहले दीर्घ स्वर होते हैं, वहाँ पालि में उनका रूप हस्त हो जाता है, यह पालि भाषा का एक प्रसिद्ध नियम है, जिसका विवेचन हम दीर्घ स्वरों के परिवर्तन का विवरण देते समय जारे करेंगे। यहाँ यह कह देना आवश्यक है कि इस नियम के कारण संस्कृत के ए, ए तथा ओ, औ जब संयुक्त व्यञ्जनों से पहले जाते हैं तो पालि में उनके रूप क्रमशः हस्त ए तथा हस्त ओ हो जाते हैं। उदाहरण—

द्वेष्मन्	{	सेम्ह
चेत्य		तेतिय
ओट्ठ		ओट्ठ
मोरिय		मोरिय

(६) जब उपर्युक्त स्वर संयुक्त व्यञ्जनों से पहले न आकर अन्य संयुक्त व्यञ्जनों के भी पहले जाते हैं तो भी उनका परिवर्तन उपर्युक्त हस्त स्वरणों में ही हो जाता है, किन्तु उनके आरे जाने वाला व्यञ्जन संयुक्त हो जाता है। उदाहरण—

एक	{	एक
एवम्		एवं

## ऋग्गौर लु के पालि प्रतिस्थप

(अ) वह का परिवर्तन पालि में विविध होता है। कहीं अ, कहीं इ, कहीं उ। सभीपी व्यनियों पर यह अधिक निर्भर करता है कि कब क्या परिवर्तन हो। ओष्ठ्य अक्षरों के बाद अक्षर उ होता है। फिर भी प्रयोगों के अनुसार विविभाजिता पाई जाती है, जिसे नियमों में नहीं वर्णिया जा सकता। वह का परिवर्तन यहूत प्राचीन है। ऋग्वेद में भी यह पाया जाता है। विद्वानों का अनुमान है कि संस्कृत 'अवट' शब्द पहले 'अवृत' था। 'विकट' और 'विकृत' शब्द दोनों साथ साथ ऋग्वेद में मिलते हैं। यास्क भी इस तथ्य से अवगत है। उन्होंने 'कुटस्य' 'कुतस्य' वैसे समानार्थवाची शब्दों के उदाहरण दिये हैं। उत्तरकालीन यूग में इस परिवर्तन की मूल्यतः दो प्रवृत्तियाँ दूषितगोचर होती हैं। प्रथम में वह का परिवर्तित स्वरूप 'अ' हो जाता है और दूसरी में 'इ' या 'उ'। प्रथम प्रवृत्ति के परिचायक सामान्यत पालि, अशोक के गिरनार-शिलालेख, महाराष्ट्री प्राकृत एवं अद्यमार्गभी प्राकृत हैं। दूसरी प्रवृत्ति के परिचायक विशेषतः अशोक के पूर्व और उत्तर-परिचय के शिलालेख एवं शौरसेनी प्राकृत हैं।

## उदाहरण

(१) वह की जगह 'अ' हो जाता है—

संस्कृत	पालि
ऋथ	अन्तः
वृक्	वक्
हृदय	हृदय
दृढ़	दल्ह (गिरनार शिलालेख)
मृग	मग (गिरनार शिलालेख)

(२) वह की जगह 'इ' हो जाती है—

कृत	हित (शौरसेनी किंड)
मृत	मित (शौरसेनी मृद)
ऋथ	इक
ऋण	इण
वृद्धिक	विच्छिक

( ३ ) ऋ की जगह 'उ' हो जाता है—

उजु

उजु या उञ्जु

उषम

उसम

पृच्छति

पुच्छति

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि ऋ के पालि प्रतिलिपों में अनक विभिन्नताएँ हैं। कहीं-कहीं एक ही शब्द के दो परिवर्तित स्वरूप दृष्टगोचर होते हैं। जैसे 'कृत' से 'कृत' और 'कित'; 'मृत' से 'मत' और 'मित'; 'ऋष' से 'अच्छ' और 'इष्क'। कहीं कहीं इस प्रकार के समान प्रयोगों में अर्थ की कुछ भिन्नता भी हो गई है, यथा 'वहिड' और 'वृद्धि' होनों से० 'वृद्धि' के ही परिवर्तित स्वरूप है, किन्तु प्रथम का प्रयोग होता है उभति के अर्थ में और दूसरे का उगने के अर्थ में। इसी प्रकार 'मृग' के दो परिवर्तित रूप 'मग' और 'मिग' हैं। 'मग' का प्रयोग होता है सामान्य पशु भाव के लिये, किन्तु 'मिग' का केवल हिरण के लिये। अन्य भी अनक विचिन्ताएँ हैं। 'ऋण' का पालि में 'इण' होता है, किन्तु 'स-ऋण' के लिये 'स + इण' न हो कर 'स + ऋण' अर्थात् 'साण' होता है। इसी प्रकार 'असण' होता है, 'अनिण' नहीं। सम्भवतः यह परिवर्तन स्वर-अनुसंधान के कारण है। 'पितृ' और 'मातृ' शब्दों के परिवर्तन एक जगह तो 'पितिपक्षतो' 'मातिपक्षतो' इस प्रकार होते हैं, किन्तु दूसरी जगह 'पितुषातक' 'मातुषातक' इस प्रकार होते हैं। 'पृथिवी' शब्द के पालि प्रतिलिप तो और भी अधिक आश्लयमय हैं—पथवी, पठवी, पुथवी, पुथुवी, पुठुवी। ये सब पालि के भिन्नतामयी लोक-भाषा होने के साक्षी हैं।

( ४ ) कहीं कहीं ऋ अंबन भी हो जाता है—

संस्कृत

पालि

वृह्यति

पूर्हेति

वृक्ष

सक्ष

प्रावृत

पास्त

अपावृत

अपाष्ट

( आ ) 'वृ' का 'उ' हो जाता है—

संस्कृत

पालि

वल्लून

कृत

वल्लूप्ति

कृति

## दीर्घ स्वर (आ, ई, ऊ)

( १ ) पद के जन्त में या संयुक्त व्यंजन से पूर्व तो स्थिति को छोड़कर, संस्कृत दीर्घ स्वर पालि में प्राप्त सुरक्षित रहते हैं ।

## उदाहरण

संस्कृत	पालि
काल	काल
प्रहीण	पहीण
वीर	वीर
मूल	मूल या मूळ

( २ ) पद के अन्त में जहाँ संस्कृत में दीर्घ स्वर होते हैं, पालि में वे हस्त कर दिये जाते हैं ।

## उदाहरण

देवाना	देपानं
गणनाया	गणनाय
नदी	नदि

( ३ ) संयुक्त व्यंजन से पूर्व संस्कृत में दीर्घ स्वर होने पर पालि में उसका प्रतिरूप हस्त हो जाता है और उसके बाद भी संयुक्त व्यंजन रहता है ।

## उदाहरण

जीर्ण	जिर्ण
मादृव	मदृव
तीर्थ	तिर्थ

( ४ ) संयुक्त व्यंजन से पूर्व संस्कृत में दीर्घ स्वर रहने पर कभी-कभी पालि में उसका प्रतिरूप भी दीर्घ ही बना रहता है और इस दशा में संयुक्त व्यंजन अ-संयुक्त हो जाता है । उदाहरण

लाक्षा]	लाक्षा
दीर्घ	दीर्घ

ए और ओ रहने पर संयुक्त व्यंजन विकल्प से असंयुक्त होता है, अर्थात् कहीं-कहीं वह असंयुक्त होता है और कहीं-कहीं नहीं भी ।

## उदाहरण

अपेक्षा	अपेक्षा, अपेक्षा भी
उपेक्षा	उपेक्षा, उपेक्षा भी
विमोक्ष	विमोक्ष, विमोक्ष भी

उपर्युक्त (३) और (४) व्यनि-परिवर्तनों के आधार पर प्रसिद्ध जर्मन भाषातत्त्वविद् डा० गायगार ने एक नियम खोला निकाला है। इस नियम का नाम 'हस्त मात्रा-काल का नियम' (दि ला ओव मोरा) है। इस नियम के अनुसार पालि में प्रत्येक शब्दांश के प्रारम्भ में या तो (१) हस्त स्वर ही सकता है (एक हस्त मात्रा-काल), या (२) दीर्घ स्वर ही सकता है (दो हस्त मात्रा-काल), या (३) उसके अन्त में हस्त स्वर ही सकता है (दो हस्त मात्रा-काल)। इस प्रकार किसी भी शब्दांश में दो से अधिक हस्त मात्रा काल नहीं हो सकते। दीर्घ मात्रुनामिक स्वर पालि में नहीं हो सकते। इस नियम के आधार पर ही उपर्युक्त (३) (४) व्यनि-परिवर्तनों की सिद्धि डा० गायगार ने की है। इस नियम के अनुसार बन्य परिवर्तनों का भी उन्होंने उल्लेख किया है, जो इस प्रकार है—

(१) जहाँ संस्कृत में संयुक्त व्यञ्जन से पहले हस्त स्वर होता है, वहाँ पालि में साधारण व्यञ्जन से पहले दीर्घ स्वर हो जाता है।      उदाहरण

संयुक्त (संस्कृत)	संस्कृत के व्यञ्जन सामग्री
वक्त (आल)	वक्त के व्यञ्जन वाक
नीयाति (वाहर चला जाता है)	नीयाति

(२) जहाँ साधारण व्यञ्जन से पूर्व संस्कृत में दीर्घ स्वर होता है, वहाँ पालि में संयुक्त व्यञ्जन से पूर्व हस्त स्वर होता है।      उदाहरण

अवृहति	अवृहति
--------	--------

नीड	निड (नेड भी)
उदुखल	उदुखल
कूवर	कुवर

(३) जहाँ उपर्युक्त नियम (१) के अनुसार संस्कृत में संयुक्त व्यञ्जन से पहले (हस्त) स्वर होने पर पालि में उसका साधारण व्यञ्जन से पहले दीर्घ स्वर हो

जाता है, वहाँ इस नियम के अनुसार कहीं कहीं उसके दीर्घ स्वर के समान पर मानू-  
नासिक ह़स्त्र स्वर भी हो जाता है। इस नियम का कारण यह है कि ह़स्त्र सानू-  
नासिक स्वर में भी दीर्घ स्वर के समान दो ह़स्त्र मात्रा-काल होते हैं।

## उदाहरण—

मत्कुण	माकुण के बजाय मकुण
वावरी	वावरी (सव्वरी) के बजाय सवरी
शुल्क	सुक (सुल्क) के बजाय सुक

(४) उपर्युक्त नियम का विपर्यय भी देखा जाता है, अर्थात् संस्कृत अनु-  
नासिक ह़स्त्र स्वर का गरिवत्तन पालि में दीर्घ स्वर भी हो जाता है।

सिंह	सीह
विश्वाति	वीमति, वीसं

(५) कभी-कभी संस्कृत में संयुक्त व्यंजन से पूर्व आने वाला दीर्घ स्वर  
पालि में भी बना रहता है। ऐसा अधिकतर मन्त्रियों में होता है, जैसे मात्त्वा =  
मा + अज्ञ; यथाज्ञभासयेन = यथा + अज्ञभासयेन, आदि।

(६) पालि में स्वर-भक्षित का प्रयोग प्रचुरता से मिलता है। इसका विवेचन  
हम त्रामे करेंगे। यहाँ यह स्मरण रखना चाहिये कि बब स्वर-भक्षित के कारण  
संयुक्त व्यंजन असंयुक्त किये जाते हैं, तो संयुक्त व्यंजन से पहले आने वाला दीर्घ  
स्वर पालि में ह़स्त्र कर दिया जाता है। उदाहरण—

सूर्य	सुर्य के बजाय सुरिय
प्रकीर्य	प्रकिरिय
मीर्य	मीरिय
चेत्य	चेतिय

(७) विष्वृत् स्वर ई और ऊ पालि में अमरा: म् और ओ हो जाते हैं।

## उदाहरण—

ईदृश्	एदिस (एरिस)
ईदृका	एदिसक
ईदृता	एदिसत्त (एरिसत्त)

संयुक्त स्वर ( ए, ऐ, ओ, औ ) और उनके पालि प्रतिरूप

ए और ओ पालि में हस्त और दीर्घ दोनों ही हैं। हस्त ए और ओ का विवेचन हम पहले कर चूके हैं। दीर्घ ए और ओ भी पालि में पाये जाते हैं।

( १ ) पालि में ए और ओ का आगमन संस्कृत संयुक्त स्वरों ए और ओ से हआ है।

ऐरावण	ऐरावण
मैत्री	मैता
वै	वे
ओरस	ओरस
पोर	पोर

( २ ) कभी कभी ए, ओ, संस्कृत में संयुक्त व्यंजनों से पहले आने पर, पालि में लघु होकर कम्भा, इ बोर उ रहे जाते हैं। उदाहरण

प्रतिवेशक	पटिविस्सक
प्रसेवक	पसिवक
एश्वर्य	इस्सरिय
सैन्धव	सिन्धव
ओप्पामि	सुस्स
ओल्सुक्य	उसुक
धोद्र	खुद्र
रोद्र	लुद्र

### विसर्ग

पालि में जाते-जाते विसर्ग का लोप हो गया है। प्राकृतों में भी वह नहीं मिलता। इसका परिवर्तन प्रायः तीन प्रकार से हुआ है।

( १ ) शब्द के मध्यस्थित विसर्ग का समावेश उसके आगे आने वाले व्यंजन में हो गया, जैसे

१. सं० अय से पालि ए; अव से जो; आव से ओ; अयि, आयि, आवि ते ओ; इन परिवर्तनों के लिये देखिये आगे अधार-संकोच का विवरण।

दुखं	दुखं
दुःसह	दुस्सहो
निश्चोक	निस्सोको

( २ ) अकारान्त शब्दों के परे विसर्ग का जो हो गया ।

देवः	देवो
कः	को

( ३ ) इकारान्त तथा उकारान्त शब्दों के परे विसर्ग का लोप हो गया ।

अग्निः	अग्निं
घेनुः	घेन्

### स्वर-अनुरूपता अर्थात् एक स्वर का दूसरे समीपवर्ती स्वर के अनुरूप हो जाना

समीपवर्ती स्वरों का प्रभाव पालि में दूसरे स्वरों पर भी पड़ता है । इस प्रकार पालि में हम 'स्वर-अनुरूपता' का प्रारम्भ देखते हैं । समीपवर्ती स्वरों के कारण स्वर-विषयक्य के गुण उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

( अ ) पूर्ववर्ती स्वर का परवर्ती स्वर के अनुरूप हो जाना—

( १ ) संस्कृत में 'इ' के बाद जहाँ 'उ' होता है, तो पालि में 'इ' की जगह भी 'उ' हो जाता है—

इयु	उम्
इक्षु	उच्छु ( अर्द्धमागधी में इक्षु )
विष्णु	सुभु

( २ ) अ के बाद जहाँ संस्कृत में उ होता है, तो पालि में अ की जगह भी उ हो जाता है ।

समृद्धं	सुमृग्म
असूया	उसूया ( असूया भी )

( ३ ) अ के बाद जहाँ संस्कृत में इ होता है, तो पालि में अ की जगह भी इ हो जाता है ।

तमिस्ता	तिमिस्ता
सरीसूप	सिरिसूप

(भा) परवर्ती स्वर का पूर्ववर्ती स्वर के अनुलय हो जाता ।

(१) उ के बाद जहाँ संस्कृत में अ होता है तो पालि में अ की जगह भी उ हो जाता है ।

कुरुग

कुरुग

उदक

उद्ग

(२) अ के बाद जहाँ संस्कृत में इ होता है, तो पालि में इ की जगह भी अ हो जाता है ।

अठिवर

अरजर

काकिणिका

काकिणिका

पुष्करिणी

पाष्ठुरणी

(३) अ के बाद जहाँ संस्कृत में उ होता है, तो पालि में उ की जगह भी अ हो जाता है ।

आयुपमन्

आयस्मन्

सप्तकुली

सप्तखली (मखलिका)

(४) इ के बाद जहाँ संस्कृत में अ होता है, तो पालि में अ की जगह भी इ हो जाती है ।

पंगवर

सिंगिवर

निष्पण

निस्त्र

### समीपवर्ती व्यंजनों का स्वरों पर प्रभाव

(१) ओष्ठ्य व्यंजनों के समीप विशेषतः उ जाता है ।

समाजेनी

सम्मृज्जनी (कहीं कहीं

सम्मृज्जनी भी)

मतिमान्

मृतीमा

(२) मूर्द्धन्य व्यंजनों के समीप विशेषतः इ जाता है ।

मञ्जा

मिञ्जा

बुगुच्छते

जिगुच्छति

### स्वराधात के कारण स्वर-परिवर्तन

पालि में स्वराधात का क्या स्वरूप था, इसका निश्चय अभी नहीं हो सका ।

किन्तु यह निश्चित है कि प्राचीन भारतीय आदे भाषा-काल के बाद ही स्वराधात् के चिन्ह को लगाने का प्रयोग उठ गया था । जेकोबी और गायगर का मत है कि पालि में स्वराधात् का वही रूप था, जो संस्कृत में । वह तथा नीचे लिखे परिवर्तनों से स्पष्ट होता है ।

( १ ) तीन-चार अधारों के बाद में, जिसमें संस्कृत के साथ पर प्रथम अधार में स्वराधात् होता था, स्वराधात् वाले अधार के बाद के अधार में अवृत् दूसरे अधार में पालि में स्वर-परिवर्तन पाया जाता है ।

( २ ) स्वराधात् वाले अधार के बाद अ का इ हो जाता है—

नन्दमा	नन्दिमा
नरम	नरिम
परम	परिम
पुत्रमान्	पुत्रिमा
मध्यम	मधिम
अहंकार	अहिकार

( ३ ) स्वराधात् वाले अधार के बाद अ का ऊ भी हो जाता है—

नवति	नवृति
प्रावरण	प्रापुरण
सम्मति	सम्मृति

( ४ ) कभी-कभी स्वराधात् वाले अधार के बाद इ का ऊ और ऊ का इ हो जाता है—

राजिल	राजूल
गैरिक	गैरुक
प्रसित	प्रसूत
मृदुता	मृदिता (मृदुता भी)

( ५ ) स्वराधात् वाले अधार के बाद आमे पर अनुदात् लघु स्वर कभी-कभी लगता भी कर दिये जाते हैं—

उदक	ओक
अगार	अग

( ३ ) स्वराघात के प्रभाव के कारण ही अनुदात अन्य अकार हस्त कर दिये जाते हैं। इस प्रकार 'ओ' का 'उ' हो जाता है—

असो	असू (प्रथम 'असो' हुआ; मामची में यही रूप)
-----	---

उताहो	उदाहु
सदः	सज्जु (प्रथम 'सज्जो' हुआ)

( ४ ) कहीं-कहीं शब्द का दूसरा दीर्घ अकार हस्त कर दिया जाता है। यह परिवर्तन पालि में स्वराघात के दूसरे अकार से हटाकर प्रथम अकार पर कर देने से होता है।

अलीक	अलिक
गृहीत	गहित
पानीय	पानिय (अद्वेमामची पाणिय)

( ५ ) कहीं-कहीं प्रथम अकार के स्वर को दीर्घ कर दिया जाता है। यह परिवर्तन भी उस अकार पर स्वराघात कर देने के कारण होता है।

अजिर	आजिर
अलिन्द	आलिन्द
अरोग	आरोग (अरोग भी)

### सम्प्रसारण और अक्षर-संकोच

( अ ) सम्प्रसारण—

( १ ) उदात्त 'व', का 'ई' हो जाता है—

स्त्यान	यीन
द्वयह	द्वीह
अयह	तीह
व्यतिवृत्त	वीतिवत्त

कहीं-कहीं 'व' मूरक्षित भी रहता है

व्यसन	व्यसन
व्याघ	व्याघ

( २ ) सम्प्रसारण के कारण ही कहीं-कहीं 'व' का ऊ हो जाता है।

स्वन्	मन्
-------	-----

यदि 'व' संस्कृत में संयक्त व्यञ्जनों से पहले है तो पालि में उसका छण ऊ न हटाकर पहले ऊ होता है और फिर ओ में सम्प्रसारण—

स्वस्ति

सुवस्ति—सोत्य

स्वप्न

सूप्नि—सोप्य

असंयुक्त व्यवहारों से पहले ऊ की जगह ओ होता है—

स्वपाक

सोपाक (अद्वमागधी सोवाग)

(३) कुछ सम्बन्धारण विचित्र भी होते हैं, जैसे स० 'डेथ' और 'दोष' दोनों के प्रतिस्थित पालि में 'दोस' में मिल गये हैं।

(आ) अश्वर-संकोच

(१) अय और अब क्रमशः ए और ओ हो जाते हैं। बीच में स्वराधात के कारण क्रमशः अयि, ए, अब, औ अस्वस्थाओं से होकर ये परिवर्तन होते हैं, ऐसा कहा जा सकता है।

जयति

जेति (जयति भी)

अध्ययन

अज्ञेयन

मोक्षयति

मोक्षेति

कथयति

कथेति

अवचि

ओधि

प्रवण

पोण

लवण

लोण

(२) अय और आव का आ हो जाता है

प्रतिसंचयन

पटिसल्लान

स्वस्त्रयन

सोत्यान

कास्यायन

कच्छायन (कच्छायन भी)

मौद्र्यस्त्रयायन

मोमल्लायन (मोमल्लायन भी)

(३) आव का ओ हो जाता है।

अतिघावन

अतिधोम

(४) अवा का आ हो जाता है।

यवान्

यान्

(५) अयि और अवि ए हो जाते हैं—

आश्वयं

अच्छयिर, अच्छरिय से होकर अच्छेर

आचार्य आचारिय-आचेर

मात्सर्ग मच्छर

स्वविर वेर

(६) प्राकृतों के समान पालि में भी कही-कही उप और अप उपसर्गे क्रमशः उव और अव स्वरूपों में होकर ऊ और ओ हो जाते हैं।

उपहृति कहदेति

अपवरक ओवरक

अपत्रप ओत्रप

(७) कही-कही अनियमित अक्षर-संकोच भी दिखाई पड़ते हैं।

मयूर मोर (मग्नर)

### स्वरभक्ति के कारण स्वरागम

पालि में स्वरागम अधिकतर शब्द के मध्य में होता है। स्त्री से इत्यत्री; स्मयते से उम्हृति, उम्हृते जैसे शब्द जागवाद हैं। शब्द के मध्य में स्थित केवल उन्हीं संयुक्त अंजनों के बीच में स्वर का आगमन होता है, जिनमें प्, ट्, ल्, व्, म् से कोई एक अंजन हो या जो सानुग्रामिक हो। 'कष्ट' जैसे शब्द का 'कस्ट' रूप होना एक अपवाद है। यह पालि में पाया जाने वाला पैशाची प्राकृत का प्रयोग है। इसकी व्याख्या हम पहले कर चुके हैं। पालि में पाये जाने वाले कुछ स्वरागम इस प्रकार हैं—

(अ) इ का आगमन, जो पालि में अधिकता से होता है।

(१) संयुक्त अंजन 'य्' में

इयंते इरियति

मर्यादा मरियादा

(२) ऐसे संयुक्त-अंजनों में, जिनमें एक य् हो

कालुध्य कालुसिय

ज्या जिया

ह्या हियो

(अद्वंमागधी हिजो)

(३) ऐसे संयुक्त-अंजनों में, जिनमें एक ल् हो

पलक्ष पिलक्ष

( ५१ )

ल्लाद

हिलाद

( ४ ) ऐसे संयुक्त व्यंजनों में, जिनमें एक र हो

वज्र

वजिर

( ५ ) सानुनासिक संयुक्त व्यंजनों में,

स्त्रेह

सिनेह

तृष्णा

तसिणा

निम्नलिखित अपवाद भी हैं,

कृष्ण

कण्ह

नम्न

नम्न

( आ ) अ का आगमन,

प्रायः ऐसे संयुक्त व्यंजनों के मध्य में होता है, जिनके पूर्व और पश्चात् अ स्वर हो

गही

गरहा

गहंति

गरहति

( इ ) उ का आगमन

प्रायः म् और व् से पूर्व होता है

ऊपर्म्

उसुमा

सूक्ष्म

सुखुम

द्वे

दुचे

छन्दों और समास के कारण स्वरों के मात्राकाल में परिवर्तन

( व ) छन्द की आवश्यकता के कारण

( १ ) कहीं-कहीं हस्त स्वर का दीर्घ कर दिया जाता है, जैसे 'नदिति' की जगह गावा में लघ को ठीक करने के लिये 'सी हो व नदीती बने' में कर दिया गया है। 'सतीमती' से 'सतीमती' 'तुरिय' से 'तूरिय' आदि परिवर्तन भी इसी प्रकार कर दिये जाते हैं।

( २ ) कहीं-कहीं दीर्घ स्वर को हस्त कर दिया जाता है, जैसे 'भूम्मानि वा यानि व अन्तलिक्ते'। यहीं 'व' की जगह 'वा' होना चाहिये था। किन्तु छन्द की मति के लिये उसे हस्त कर दिया गया है। इसी प्रकार 'पञ्चमीका' ते 'पञ्चतिका' जैसे प्रयोग भी छन्द में कर दिये जाते हैं।

(३) सामुनासिक स्वरों को अननुनासिक कर दिया जाता है, जैसे 'दीष-मद्धात् सोचति' में। यहाँ वंसे 'दीषमद्धानं' होना चाहिये था। इसी प्रकार 'जीवती' से 'जीवतो' जैसे प्रयोग भी दिखाई देते हैं।

(४) संयुक्त व्यञ्जनों को सरल बना कर उनमें से केवल एक रख लिया जाता है, जैसे 'दुक्त्रं' से 'दुक्त'। यह भी हस्त कर देने के समान ही है।

(ञा) समास में होने वाले स्वर-परिवर्तन

(१) समास के प्रथम पद के अन्त में होने पर हस्त स्वर बहुधा दीर्घ कर दिया जाता है, जैसे सखिभाव से सखीभाव; अब्दमत्त से अब्दमत्त; रजपथ से रजापथ। उपसर्ग-युक्त शब्दों में भी यह स्वरों को दीर्घ करने की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है, जैसे सं० प्रवचन से पालि पावचन (अङ्गमार्गी पावचन); प्रकट से पालि पाकट (अङ्गमार्गी पापाकट)

(२) जब समास के प्रथम पद में आकारान्त, ईकारान्त या ऊकारान्त शब्द होते हैं, तो इनको हस्त कर दिया जाता है, जैसे दासिगण (दासी + गण); उपाहतान (उपाहना + दान)।

### कुछ विचित्र स्वर-परिवर्तन

(१) एक ही सं० शब्द 'पुनः' के पालि में दो रूप-परिवर्तन हैं। 'पुन' और 'पन'। किन्तु इन दोनों के अर्थ भिन्न भिन्न हैं। 'पुन' का अर्थ तो स० 'पुत' के समान ही है, किन्तु 'पन' का अर्थ है 'किन्तु' 'प्रत्युत'।

(२) कहीं-कहीं पालि के स्वर-परिवर्तन संस्कृत की अपेक्षा अधिक प्राचीन हैं। इस प्रकार पालि का 'मूरु' शब्द समानार्थवाची संस्कृत 'गृह' शब्द से जटिक प्राचीन है। इसी प्रकार संस्कृत 'अग्रु' वा 'अग्रु' की अपेक्षा समानार्थवाची पालि शब्द 'अग्र' 'अग्रल' अधिक प्राचीन हैं। कहीं-कहीं पालि शब्दों का मूल रूप संस्कृत में न मिल कर प्राचीन वैदिक भाषा में मिलता है। 'अम्ब' शब्द का उदाहरण हम पहले दे सके हैं। 'सिम्बल' या 'सिम्बलो' (कपास का पेंड) शब्द भी ऐसा है। यह संस्कृत के 'शालमली' से नहीं लिया गया, किन्तु वैदिक भाषा के 'सिम्बल' (कपास का फूल) से उद्भूत है। इसी प्रकार अन्य अनेक शब्दों के मूल रूप भी संस्कृत में न मिल कर वैदिक भाषा में मिलते हैं।

## स्वर-सन्धि

स्वर-सन्धि के नियमों का विवेचन करना यहाँ हमारा उद्देश्य नहीं है। यह तो व्याकरण का विषय है। यहाँ हम केवल स्वर-परिवर्तन की दृष्टि से कुछ महत्वपूर्ण विशेषताओं का ही उल्लेख करेंगे।

( १ ) एक पद के अन्तिम स्वर का दूसरे पद के प्रारम्भिक स्वर के साथ मिलना पालि में अभिवायं नहीं है। इस प्रकार 'से अज्ज गदा अयं घमलिपी लिखिता ती एव प्राणा आर्मरे' (गिरसार शिलालेख) जैसे प्रयोग पालि में दिखाई पड़ते हैं। फिर भी जहाँ समान स्वर मिलते हैं तो संस्कृत के समान ही दोनों मिलकर दीर्घ हो जाते हैं, जैसे बुद्ध + अनुसृति = बृद्धानुसृति; सम्मति + इव = सम्मतीव; बहु + उपकारे = बहूपकार; दुर्गता + अह = दुर्गताह।

( २ ) अ अथवा आ से परे इ और उ बाने पर ऋमशः ए और ओ होना भी पालि में संस्कृत के समान ही दुष्टिगोचर होता है। यह परिवर्तन अधिकांश पालि के प्राचीनतम रूप—गायाओं की भाषा—में दुष्टिगोचर होता है। अव + इच्छ = अवेच्छ; उप + इती = उपेती; मुख + उदकं = मुखोदकं; मच्चृस्म + इव + उदके = मच्चृसेवोदके; च + इमे = चेमे।

( ३ ) अ से परे असबर्ण स्वर रहने पर इ का य और उ अथवा ओ से परे असबर्ण स्वर रहने पर उ का व हो जाता है। वि + आक्तो = व्याक्तो; यो अयं—यायं; सु + आगते = स्वागते।

( ४ ) असबर्ण स्वरों के मिलने पर कहीं-कहीं (१) पूर्व स्वर का लोप हो जाता है, (२) पर स्वर का लोप हो जाता है, (३) पर स्वर का दीर्घ हो जाता है, (४) पूर्व स्वर का दीर्घ हो जाता है।

उदाहरण (१) मस्स + इन्द्रियाणि = वस्सन्द्रियाणि; मे + अत्यि = मत्यि (२) चतारो + इमे = चत्तारो मे; ते + इमे = तेमे (३) सचे + अयं सचायं; (४) देव + इति = देवाति; लोकस्स + इति = लोकस्साति।

(५) बनेक स्वर-सन्धियों में व्यञ्जनों का आगम होता है, जैसे न + इर्दं = नयिर्दं; लघु + एस्सति = लघुमेस्सति; यवा + एव = यवरिव; तथा + एव = तथरिव; गिरि + इव = गिरिमिव; सम्मा + अत्यो = सम्मदत्यो, आदि, आदि।

(६) कभी-कभी अनुस्वार से परे स्वर का लोप हो जाता है, जैसे इर्द + अणि = इर्दणि; वातु + अणि = वातुपि; अभिनन्दु + इति = अभिनन्दुति। इस

प्रकार की सन्धियों के आधार पर मायमर ने अनुमान किया है कि पालि में स्वतन्त्र रूप में प्रयुक्त होने वाले 'व' (सं० 'इव' के लिये) 'पि' (सं० 'अपि' के लिये) 'ति' (सं० 'इति के लिये) 'दानि' (सं० 'हदानी' के लिये); पोसथ (उपोसथ, सं० 'उपवसथ' के लिये) आदि शब्द लुप्त सन्धियों के स्मारक स्वरूप हैं।

### व्यंजन-परिवर्तन

व्यंजनों का परिवर्तन पालि में प्रधानतः शब्द में उनकी स्थिति के अनुसार हुआ है। सामान्यतः संस्कृत आदि-व्यंजन पालि में सुरक्षित रहते हैं। मध्य-व्यंजनों का विकास मध्य-कालीन भारतीय आर्य माध्य-युग में तीन अवस्थाओं में हुआ है। पहली अवस्था में अधोव स्फूर्त छोष हो जाते हैं। दूसरी अवस्था में छोष स्फूर्त 'थ' इवनि में परिवर्तित हो जाते हैं। तृतीय अवस्था में य इवनि का भी लोप हो जाता है। पालि में प्रधानतः प्रवर्म दो अवस्थाएँ ही पाई जाती हैं। तीसरी अवस्था का विकास प्राकृत भाषाओं में हुआ है। बन्य व्यंजन पालि और प्राकृतों में समान रूप से ही लुप्त कर दिये जाते हैं। व्यंजन-परिवर्तनों का विस्तृत अध्ययन इस प्रकार है।

### असंयुक्त व्यंजन

#### (अ) आदि व्यंजन

(१) सामान्यतः शब्द के आदि में अवस्थित संस्कृत असंयुक्त व्यंजन (अल्पप्राण क्, त्, प्, म्, द्, व् आदि और महाप्राण ख्, च्, फ्, ष्, ध्, न्, आदि) पालि में सुरक्षित रहते हैं। उदाहरण—

संस्कृत	पालि
करोति	करोति (प्राकृत करेदि)
गच्छति	गच्छति (प्राकृत गच्छेदि)
चोरः	चोरो
जनः	जनो
तादेवति	तादेवि
पुत्रः	पुतो
दन्तः	दन्तो
वधिरः	वधिरो
खनति	खनति

घटः	घटो
कल	फल

(२) पांच सातुनामिक व्यवहारों (इ., अ., ण., न., म.) में से संस्कृत में भी केवल न् और म् ही शब्द के आदि में जाते हैं, अन्य नहीं। यही नियम पालि में भी है। अतः संस्कृत शब्द के आदि में अवस्थित न् और म् पालि में भी सुरक्षित रहते हैं। प्राकृतों में चल कर इनका परिवर्तन ण् में हो गया है। 'म्' तो वही भी सुरक्षित रहा है।

नाशयति	नासेति (प्रा० णासेइ)
मुखं	मुखं
मन्त्रयति ।	मन्त्रेति (प्रा० मन्त्रेदि)

(३) शब्द के आदि में अवस्थित अन्तःस्व प्, रु, लु, व् भी सुरक्षित रहते हैं। र् के विषय में यह विशेषता अवश्य ध्यान देने योग्य है कि रु काल् में परिवर्तन होता पालि में एक बड़ी साधारण बात है। मात्राओं प्राकृत का तो यह एक नियम ही है और अन्य प्राकृतों में भी यह नियम कहीं-कहीं पाया जाता है। य् के विषय में भी यह विशेषता ध्यान देने योग्य है कि पालि में तो वह सुरक्षित रहता है (कहीं कहीं उसके साथ ही ल् में परिवर्तित स्वरूप भी दिखाई पड़ता है) तिन्तु प्राकृतों में चलकर बाद में उसका य् में परिवर्तन हो गया है। उदाहरण—

रूपानि	रूपानि (रूपानि भी, विशेषतः अशोक के छीली और जीगड़ के लेखों में)
रुज्जते	लुज्जति
राजा	राज (लाजा, विशेषतः अशोक के पूर्व के लेखों में)
रोड़	लूह
मावत्	माव (प्राकृत जाव)
यट्ठिका	यट्ठिका (लट्ठिका भी)
बातः	बादो

(४) संस्कृत ऊर्ध्व व्, प्, स् का अन्तर्भौम पालि में केवल 'म्' में हो गया है। अतः पालि में केवल दल्ला म् है। पञ्चमी प्राकृतों की भी यही विशेषता है। इसके

विपरीत पूर्वों प्राकृतों में केवल एक तालव्य 'श्' रह गया है। अशोक के शिलालेखों में हम इस विकास-परम्परा के सभी रूप देखते हैं। इस प्रकार मन्त्र के शिलालेखों में केवल दस्त्य स् पाया जाता है। गिरनार के शिलालेखों में श् और श् दोनों ही पाये जाते हैं। उत्तर-च्छिम के शिलालेखों में तीनों ही श्, ष् और स् पाये जाते हैं। बोलियों के मिथ्यण के ज्ञातण फिर भी इस सम्बन्ध में कोई नियम नहीं बाधा जा सकता। यह परिवर्तन आदि और मध्य दोनों ही स्थितियों में दिखाई पड़ता है।

सार्थवाह	सत्यवाही
अवणीय	सवनीय
देशः	देसो
परस्	फरसु
पुरुष	पुरिस

(५) उपर्युक्त नियम (१) के अपवाद-स्वरूप निम्नलिखित तथ्य दृष्टिगोचर होते हैं, जो ध्यान देने योग्य हैं—

(अ) कहीं कहीं शब्द के आदि में पालि में प्राणाध्वनि (ह्) का आगमन होता है। इसे यों भी कहा जा सकता है कि शब्द के आदि में अवस्थित संस्कृत अधोग्रन्थ अल्पप्राण व्यंजन (क्, त्, प् आदि) पालि में उसी वर्ग के अधोग्रन्थ महाप्राण व्यंजन (ब्, ष्, फ् आदि) हो जाते हैं। उदाहरण

कील	खील
कुञ्ज	खुञ्ज
कृत्वः	खत्तु
परस्	फरसु

(बा) कहीं कहीं, किन्तु अपेक्षाकृत कम संख्या में, उपर्युक्त नियम का विपर्येय भी देखा जाता है, अर्थात् संस्कृत अधोग्रन्थ महाप्राण व्यंजनों के स्थान पर पालि में उसी वर्ग के अधोग्रन्थ अल्पप्राण व्यंजन भी दिखाई पड़ते हैं।

भालिका	जालिका
भगिनी	वहिनी (बहिणी भी)

(इ) वर्णों के उच्चारण-स्थान में परिवर्तन भी पालि में बहुत पाया जाता है। आदि और मध्य दोनों ही स्थितियों में यह होता है। शब्द के आदि में हीने वाले कृष्ण परिवर्तनों के उदाहरण नीचे दिये जाते हैं।

( १ ) कहीं-कहीं कंठ्य स्पशों की जगह तालव्य स्पशें हो जाते हैं

कुन्द

चून्द

( २ ) कहीं-कहीं दूस्त स्पशों की जगह मूर्दून्य स्पशें हो जाते हैं

दहति

डहति

दाह

दाह

इसति

इसति

### आ—मध्य-व्यंजन

पालि में मध्य-व्यंजन सम्बन्धी परिवर्तनों का विचार करते समय हम उन प्रवृत्तियों को सूचना पाते हैं, जिन्हे 'प्राकृतत्व' या 'प्राकृतपन' कहा गया है। बास्तव में यात यह है कि जिन परिवर्तनों का पालि में सूचनात ही हुआ है उनका अन्तिम विकास प्राकृतों में चल कर हुआ है। इस विकास की तीन अवस्थाओं का निर्देश हम पहले कर चुके हैं। प्राकृतों के साथ मिलने वाली पालि की ये विशेषताएँ अनेक बोलियों के समिश्रण के आचार पर व्याख्यात की जा सकती हैं। ये समानताएँ विशेषतः मध्य-व्यंजन-सम्बन्धी परिवर्तनों में पालि में कहीं-कहीं दृष्टि-गोचर होती हैं, उदाहरणतः—

( १ ) शब्द के मध्य में स्थित संस्कृत अघोष स्पशों पालि में उसी बर्ग के घोष स्पशें हो जाते हैं। इस प्रकार क्, च्, ढ्, त्, प्, थ् आदि कम्भणः ग, ज, छ, द, ब्, ध् आदि हो जाते हैं। उदाहरण—

प्रतिकृत्य	पटिगच्च (पटिगच्च भी)
शाकल	सागल
माकन्दिक	मागन्दिय
त्रूच्	सूजा
कम्बल	कम्बल (निर्देशी)
खेट	खेल (गावि)
सहिति	फलिक
उताही	उदाहृ
पृष्ठत	पसद
अपाग	अवंग
कपि	कवि

कपित्थ

• प्रथित

कविट्ठु

गवित (गवित भी)

इस प्रकार के परिवर्तन अपशंसा और कई प्राकृतों में भी पाये जाते हैं।

(२) उन्दर्युक्त परिवर्तन से एक अधिक विकसित अवस्था वह है जिसमें अधोप स्थानों का लोप हो जाता है और वे 'य' या 'व' व्यनि में परिवर्तित हो जाते हैं। इसके बाद ही वह अवस्था होती है जिसमें 'य' या 'व' व्यञ्जन का भी बिलकुल लोप हो जाता है। सं० 'शत' शब्द के विकृत या विकसित रूपों में हम इस विकास का अच्छा अध्ययन कर सकते हैं। पहले इसका पालि में 'सत' होता है, फिर अधोप स्थान 'त' का 'द' होता है और इस प्रकार प्राकृत में 'सद' रूप बनता है। इसका भी आगे विकसित रूप 'सप' बनता है और फिर अन्त में 'सप्र' और 'सौ'। अधोप स्थानों का लुप्त हो कर 'य' या 'व' में परिवर्तित होना प्राकृतों के समान पालि में भी पाया जाता है। अतः वह भी पालि का एक 'प्राकृतपन' है। उदाहरण—

युक्

सादित

स्वादते

अपरगोदान

कुर्वानगर

कौशिक

सुव (सुक भी)

सादित

सायति (सादियति भी)

अपरगोदान

कुसिनार-कुसिनार

कौसिय

(३) शब्द के मध्य में स्थित धोष महाप्राण व्यञ्जनों (ष, ष्ठ, भ, आदि) का 'ह' में परिवर्तित हो जाना प्राकृतों की एक विशेषता है। यह प्रवृत्ति पालि में भी यत्रन्त्र पाई जाती है।

लघु

श्विर

साधु

लहु

शहिर (श्विर भी)

साहु (अभितकर तो साधु ही)

इसके विपरीत कहीं-कहीं पालि वैदिक भाषा के धोष महाप्राण व्यञ्जनों को सुरक्षित रखती है जब कि संस्कृत में उनके स्वान में 'ह' ही जाता है। इसका उदाहरण पालि 'इह' (यहाँ) शब्द है। अवेस्ता (जिसमें भी इसका रूप 'इह' होता है) के जाघार पर हम जान सकते हैं कि इसका वैदिक स्वरूप 'इह' ही या। किन्तु संस्कृत में वह 'इह' ही गया है।

(४) शब्द के आदि में अवस्थित व्यंजनों में प्राण-अवनि के आगमऔर लोप न का उल्लेख हम पहले कार चुके हैं। शब्द के मध्य में स्थित व्यंजनों में भी यह परिवर्तन होता है, अवात् मध्य में स्थित संस्कृत व्यंजनों अल्पप्राण व्यंजन (क्, त्, प् आदि) पालि में उसी वर्ग के अपोष महाप्राण व्यंजन हो जाते हैं—

शुनक (कुत्ता)

सुनख (प्रा० सूनह)

सुकुमार

सुखुमाल

इसी प्रकार कहीं-कहीं, किन्तु जादि स्थित व्यंजनों की तरह ही बहुत कम, प्राण-अवनि का लोप भी हो जाता है—

कफोणि

कपोणि

(५) कहीं कहीं नियम (१) के विपरीत में ओष स्वां पालि में उसी वर्ग के अचोष स्वर्ण हो जाते हैं। मे परिवर्तन वोलियों की विभिन्नताओं के कारण हुए हैं।

अगुरु

अकलु

छगल

छकल

परिघ

पलिल (पलिल भी)

कुसीद

कुसीत

मूर्दंग

मुतिङ्ग

उपधेय (तकिया)

उपधेय

पिचीयते (ढाँका जाता है)

पिचीयति

शावक (जानवर का बच्चा)

चापक

प्रावरण

पापूरण

(६) व्यंजनों के उच्चारण-न्याय में परिवर्तन। यह परिवर्तन मध्य-स्थित व्यंजनों में आदि-स्थित व्यंजनों की अपेक्षा बहुत अधिक हुआ है। इस सम्बन्ध में सब से अधिक महत्वपूर्ण परिवर्तन में दस्त्य व्यंजनों का पालि में मुद्दान्यीकरण है। में दस्त्य व्यंजन त्, थ्, द्, थ्, न् पालि में क्रमशः द्, ठ्, द्, ल्ह्, ण् हो जाते हैं। यह नियम सामान्यतः जादि और मध्य दोनों ही स्थितियों के लिये ठीक है।

पतंग

पटंग

हृत

हट

व्यापृत	व्यावर्ट
प्रतिमा	पटिमा
प्रचम	पठम
पूर्वी	पठवी (पवी भी)
शाह	डाह
द्वेष (सन्देह)	द्वेषक
शकुन	सकुण

(३) गालि में मध्य-स्थित व्यंजनों के अन्य उच्चारण-सम्बन्धी परिवर्तन इस प्रकार हैं—

(अ) कहीं-कहीं स० तालम्ब स्पर्शों के स्थान पर पालि में दन्त्य स्पर्श होते हैं।

चिकित्सति	तिकित्सति
बालबल्यते	दइललति

(आ) कहीं-कहीं मर्दूर्ण्य के स्थान पर दन्त्य होते हैं—

दिविम	देपिडम (दिण्डम भी)
(इ) कहीं-कहीं द् के स्थान पर र् होता है—	

एकादस	एकारस (एकादस भी)
ईदूश	ऐरिस (एरिस भी)
ईदृक्षा	ऐरिक्षा (एरिक्षा भी)

(ई) कहीं-कहीं न् के स्थान पर ल् या र् होता है—

एनः (अपराध)	एल
नेरेजना	नेरजरा

(उ) कहीं-कहीं ण के स्थान पर ल् होता है—

वेणु	वेलू
मणाल	मुलाल

(ऋ) र् के स्थान पर ल् अधिकतर होता है। आदि-स्थित र् के ल् में परिवर्तन के उदाहरण पहले दिये जा चुके हैं। मध्य-स्थित र के ल् में परिवर्तन के कुछ उदाहरण ये हैं—

एरंड	एलंद
तरण	तलृण (तरण भी)

परिष्ववते

पलिस्मजति

परिष्वनति

पलिस्मनति

पालि में यह परिष्वत्तेन यथापि अधिकतर पाया जाता है, किन्तु नियमतः यह मात्राधी प्राकृत की ही विशेषता है। कुछ अन्य प्राकृतों में भी इसके स्फुट उदाहरण मिलते हैं।

(ए) कही-कही मं० ल् के स्थान पर पालि में र् पाया जाता है।

अलिजर

अरंजर

आलम्बन

आरम्भण

इसके अपवाद-स्वरूप कही कही ल् के स्थान पर न् भी पाया जाता है—

देहली

देहनी

आदि में भी इसी प्रकार

लांगल (हल)

नंगल

(ऐ) मं० य् के स्थान पर पालि व्—

आयुष्ठ

आवुष्ठ

आयुष्मान्

आवुस्मी

क्षयाय

क्षसाव

(ओ) मं० व् के स्थान पर पालि व्—

दाव

दाय (दाव भी)

(ओ) मं० व् के स्थान पर पालि म् और मं० म् के स्थान पर पालि व्—

इविह

दमिळ

भीमांसते

बीमंसति

कुछ अनियमित प्रयोग भी मिलते हैं, जैसे—

पिपीलिका

किपिल्लका

(घ) वर्ण-विपर्यय। शब्द के मध्य में स्थित व्यञ्जनों में पारस्परिक एक दूसरे की जगह प्रहण कर लेना भी प्रायः देखा जाता है। यह विपर्यय अधिकतर 'र्' व्यञ्जन में होता है।

आरालिक

आलारिक

करेण्

कणेह

लद

रहद

प्रावरण

पारस्परण (पापुरण भी)

किन्तु अन्य व्यंजनों में भी,।

मध्यक

मक्षस

### संयुक्त-व्यंजन

( अ ) आदि संयुक्त-व्यंजन

संस्कृत में भी शब्द के आदि में संयुक्त व्यंजनों का प्रयोग प्राप्तः सीमित होता है। प्रायः दो ही प्रकार के संयुक्त व्यंजन संस्कृत में शब्द के आदि में पाये जाते हैं, ( १ ) व्यंजन + अन्तःस्थ ( थ्, इ, ल्, ३ ); ( २ ) व्यंजन + ऊपम ( श्, ष्, न् )। व्यंजन + अन्तःस्थ में अन्तःस्थ कभी पहले न आकर व्यंजन ही पहले आते हैं। इस प्रकार शब्द के आदि में क्, ल्प्, प्र्, भ् जैसे संयुक्त व्यंजन ही हो सकते हैं, ल्प्, इच् जैसे नहीं। अन्तःस्थ + ऊपम में ऊपम पहले भी आ सकते हैं, जैसे स्त्, द्व् आदि में ओर पीछे भी जैसे द्व् ( क् + श् ) में

( १ ) व्यंजन + अन्तःस्थ—इस अवस्था में व्यंजन के बाद को व्यनि लृप्त होकर व्यंजन का ही रूप धारण कर लेती है—

प्रथान्त	पसन्ती
प्रजा	पञ्चा
जाम	गाम

कहीं-कहीं स्वर-भवित के कारण बीच में स्वर आने के कारण संयुक्त व्यंजन केवल असंयुक्त कर दिये जाते हैं—

कलेश	किलेसी
कलान्त	किलन्ती

कहीं-कहीं, जब व्यंजन + ल् का संयोग होता है, तो य् का पूर्ववर्ती व्यंजन तालिय हो जाता है—

त्यजति	चजति
--------	------

( २ ) ऊपम + व्यंजन—इस अवस्था में ऊपम का लोप हो जाता है और वह पूर्ववर्ती व्यंजन का रूप धारण कर लेता है तब वह व्यंजन, यदि वह अल्प प्राण होता है, तो महाप्राण हो जाता है।

स्कम्भः	सम्भो
स्तुपः	षूपो

स्वापयति

ठापेति

स्थितः

ठितो

( ३ ) गव्य के आदि में श्रू होने पर पालि में उसका क्षम् या च्छ हो जाता है। मध्य-स्थिति में भी यही परिवर्तन होता है। यही दोनों के ही उदाहरण दे देने ठीक होंगे—

शुधा

शुधा

दक्षिणा

दक्षिणा

मधिका

मधिका

धारिका

धारिका

कद्म

कच्छ

तक्षति

तच्छति

जधि

अधिक (अच्छि भी)

कही कही 'क्ष' का परिवर्तित रूप 'ग्ध' या 'च्छ' भी होता है। गायगर का मत है कि इस दशा में संस्कृत अवशर श्रू एक विशेष भारत-यूरोपियन ध्वनि का विकसित रूप है—

प्रधरति

प्रधरति

धाम

भाम

### (आ) मध्य-संयुक्त-व्यंजन

मध्य-संयुक्त-व्यंजनों के परिवर्तन में पालि में व्यंजन-अनुरूपता, व्यंजन-विपर्यय, अंजनों के उच्चारण-स्थान में परिवर्तन, प्राणध्वनि का आगमन और लोप, आदि सभी प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं। विशेषतः व्यंजन-अनुरूपता और व्यंजन-विपर्यय अधिक पाये जाते हैं। नीचे के विवरण से यह स्पष्ट होगा।

( १ ) व्यंजन-अनुरूपता

( २ ) पुर्ववर्ती व्यंजन का लुप्त होकर पश्चवर्ती व्यंजन का रूप धारण कर लेना—

( १ ) स्पृश्य + स्पृश्य में, यथा

उक्त

उत्त

सप्त

सत्त

शब्द

सह

उत्पत्ति  
मुद्रण (भूग)

उत्पन्नति  
मृग

(२) ऊपर + स्थान में, यथा

आश्वर्य  
निष्ठक

जच्छेर  
निकल, नेकल

यहाँ पर साध-साध प्राण-व्यजन का आगमन भी हो गया है।

(३) अन्तःस्थ + स्थान, या ऊपर, या अनुनासिक व्यजन में, यथा

कंक  
तिलिघ्य  
बल्क  
कार्यक  
कल्माष

कल्प  
किञ्चित्प्रस  
ब्राह्म  
कस्तक  
नम्मास

(४) अनुनासिक + अनुनासिक में, यथा

निम्न  
उन्मूलयति

निम्न  
उन्मूलेति

(५) र + ल, या र्, मा ल् में, यथा

द्रुलंभ  
अर्य  
उदीर्यते  
नियोति  
कुवेन्ति

दुलंभ  
अर्य (अरिय भी)  
उदिय्यति  
नियोति  
कुवेन्ति

(आ) परवर्ती व्यजन का लूप होकर पुर्ववर्ती व्यजन का रूप धारण कर लेना—

(१) स्थान + अनुनासिक में, यथा

लम्न  
अमिनः  
उद्दिन्न  
स्थन

लम्न  
जग्नि  
उद्दिन्न  
सोण

(२) स्थान + र वाल् में, यथा

तक	तक्क
सुकल	सुक्क

( ३ ) स्पर्श—अन्तर्रक्ष में, यथा

पाप	सक्क
उच्चते	कुच्चति
प्रज्जलति	प्रज्जलति

( ४ ) अथ—अस्तरक्ष में, यथा

मिल	मिस्स
अवश्यम्	अवस्य
अश्व	अस्स
इलेमन्	सुम्ह

( ५ ) अनुनासिक—अन्तर्रक्ष में, यथा

किण्व	किण्णा
रम्य	रम्म
कल्य (सम्भव)	कल्ल
विल्व	विल्ल

( ६ ) अ. द् जैसे संयुक्त व्यंजनों में, जो अ. हो जाते हैं,

परिव्यय	परिव्यय
तीव्र	तिल्ल

( ७ ) व्यंजन-विपर्यय

( १ ) द्—अनुनासिक, या 'द्, या 'द—इस व्यंजन-संयोग में विपर्यय होता है, अर्थात् 'हृष्ट' 'हृत्', 'हृम्', 'हृष्ट', 'हृद्', इन संयुक्त व्यंजनों के क्रमम्: 'ष्टहृ', 'तहृ', 'महृ', 'पूहृ', 'तहृ' रूप हो जाते हैं—

पुर्वाहृण	पुर्वाहृ
जपराहृण	जपराहृ
विहृ	विहृ
महृ	महृ
महृ	महृ

चिह्न

जिह्वा

चिन्ह

जिह्वा

महा—मर्घ के सादृश्य के आधार पर तुम्हे का भी पालि प्रतिश्लेष तुम्हे हो गया है।

(२) क्रम + अनुसारिक—इस संयोग-दशा में भी व्यञ्जन-विपर्यय होता है। पहले क्रम का है, में परिवर्तन होता है और फिर दोनों का विपर्यय। इस प्रकार 'शून्', 'षम्', 'पूण्', 'एम्', 'सूत्' 'सूम्' क्रमशः 'ज्ह', 'मह्', 'ज्हह्' 'मह्', 'नह्', 'मह्' हो जाते हैं—

प्रस्तुत	पञ्च (अद्वैताग्राही पञ्च)
----------	---------------------------

अद्वैता (पत्तर के ढारा)	अमहता
-------------------------	-------

उष्णा (गर्मी)	उष्णा
---------------	-------

कृष्ण	कण्ठ
-------	------

तृष्णा	तण्ठा
--------	-------

शीष्म	गिम्ह
-------	-------

सूस्मात्	सून्हात्
----------	----------

विस्मय	विम्हय
--------	--------

(३) 'पूण्', 'षम्', 'त्सून्'—इन संयुक्त व्यञ्जनों के स्वरूप विपर्यय के कारण क्रमशः 'पूह्', 'मह्', 'नह्', हो जाते हैं। इस विकास का क्रम यह है कि पहले 'पूण्', 'षम्', 'त्सून्', के क्रमशः रूप 'पूण्', 'पूम्', 'सूत्' होते हैं और फिर इनका विपर्यय हो कर उपर्युक्त नियम (२) के अनुसार इनके क्रमशः 'ज्हह्', 'मह्', 'नह्' रूप बनते हैं—

प्रकल्प (सुन्दर, कोमल)	सण्ठ
------------------------	------

पठम (पलक)	पम्ह
-----------	------

उष्णात्स्ना	उष्णा (पहले 'उन्हा' रूप बना और फिर न का मूर्द्धन्य होकर 'उष्णा' हो गया)
-------------	---

(२) व्यञ्जनों के उच्चारण-स्थान में परिवर्तन—

(१) दस्त्र स्थान + प्—इस संयोग-दशा में दस्त्र स्थानों का तालब्धी-करण हो जाता है—

सत्य	सत्यं	सच्च	सच्चं
छिद्रते	छिद्रति		
जात्या	जात्या		
कर्मण्	कर्मणं		

'य' संयुक्त व्यंजनों में भी

(२) संस्कृत तालव्य संयुक्त व्यंजनों के स्थान पर पालि में कहीं कहीं कठ्ठप  
संयुक्त व्यंजन हो जाते हैं, कहीं कहीं मूढ़न्य संयुक्त व्यंजन और कहीं  
कहीं दन्त्य संयुक्त व्यंजन ।

(अ) तालव्य के स्थान पर कठ्ठप

भैषज्य	भिसक्क (भेसज्ज भी)
--------	--------------------

(आ) तालव्य के स्थान पर मृदून्य

आज्ञा	आणा
-------	-----

(इ) तालव्य के स्थान पर दन्त्य

उच्छिद्ध	उत्तिद्ध
----------	----------

(३) मध्यास्थित दन्त्य संयुक्त व्यंजनों का मूढ़न्यीकरण । यह एक महत्त्व-  
पूर्ण परिवर्तन है । इस परिवर्तन के कारण 'ते' 'थे' 'दे' 'धे' कमशः  
'दु' 'दृ' 'इ' 'इ' हो जाते हैं—

आत्म	अहु
कैवल्य	केवद्रु
वधुते	वहुति
प्रस्थाप	पट्टाप
कूटस्थ	कूटदृ

(४) प्राण-व्यनि का आगमन और लोप—

आगमन, यथा

नूड्डाटक (बीराहा)	सिषाटक
-------------------	--------

पिपल	पिपहल
------	-------

लोप, यथा

लोप	लोह
-----	-----

मूच्छति	मूच्छति
---------	---------

## अन्त्य-व्यजन

संस्कृत के अन्त्य-व्यजन पालि में लुप्त हो जाते हैं—

भगवान्	भगवा
सम्प्रक्	सम्प्रा
विद्युत्	दिव्य

## पालि का शब्द-साधन और वाक्य-विचार

पालि के छवनि-समूह की अपेक्षा उसका स्पष्ट-विचार संस्कृत के ओर भी अधिक नमोग है। मिथ्या-मादृश्य के आधार पर संस्कृत रूपों का सरलीकरण पालि स्पष्ट-विचार की एक मुख्य विशेषता है। पहले कहा जा सकता है कि एक ही प्राचीन वायं-भाषा से संस्कृत और पालि दोनों का विकास हुआ है। संस्कृत व्याकरण का जन्म वैदिक भाषा की विभिन्नताओं को एकत्रणा देने के लिये हुआ। अतः संस्कृत में ऐसे अनेक नियम व्याकरण के नियमानुसार बनित कर दिये गये, जो वैदिक भाषा में प्रचलित थे। पालि वृक्षि ढोक-भाषा थी, उसमें में प्रयोग चले आये हैं। यह पालि के स्पष्ट-विचार की एक मुख्य विशेषता है। उदाहरणों में यह स्पष्ट होगा।

पहले मिथ्या-मादृश्य के आधार पर रूपों के सरलीकरण को ले। पालि में संस्कृत की अपेक्षा वर्ण कम हैं, यह हम पहले निर्देश कर ही चुके हैं। संस्कृत में तीन वर्णनों का प्रयोग होता है, एक-वचन, द्वि-वचन और बहुवचन। पालि में बहुल दो वचन हैं। एक वचन और अनेक वचन। वहाँ द्विवचन नहीं है। उसका भी काम वहाँ अनेक-वचन से ही निकाल लिया जाता है। यद्यपि कहने को पालि में भी सात विभक्तियाँ हैं, किन्तु उनके रूपों में बड़ी सरलता है। चतुर्थी और षष्ठी के रूपों में प्रयोग कोई भेद नहीं होता। तृतीया और पंचमी के अनेक-वचन के रूप भी प्रायः समान ही होते हैं। पालि में व्यजनान्त पदों का प्रयोग भी नहीं होता। वहाँ सभी पद स्वरूप हैं। संस्कृत के व्यजनान्त पद भी पालि में स्वरूप हो जाते हैं। इसी प्रकार सज्जा और सर्वनाम के रूपों में यही सरलीकरण की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है। किया-विभाग के विषय में भी यही बात ठीक है। संस्कृत के समान यद्यपि पालि में भी परस्मैपद (परस्परपद) और आत्मनेपद, (अत्तनो-पद) ये दो पद हैं, किन्तु व्यवहार में आत्मनेपद का प्रयोग कदाचित् ही कभी होता है। यहाँ तक कि कर्मवाचा आदि प्रयोगों में भी जहाँ संस्कृत में आत्मनेपद आवश्यक

रूप से होना चाहिये, पालि में उत्तरका प्रयोग प्रायः विकल्प से ही होता है । संस्कृत के दस गण पालि में केवल सात रह गये हैं । इसी प्रकार संस्कृत के दस लकारों के स्थान पर पालि में केवल आठ लकार हैं । लिद् लकार का प्रयोग पालि में नहीं के बशबर होता है । लड् और लृङ् वहाँ भूतकाल द्योतित करने के लिये हैं, किन्तु इनमें भी प्रायः लृङ् का ही प्रयोग पालि में अधिकता से होता है । इस प्रकार संस्कृत की अपेक्षा सरलीकरण की प्रवृत्ति पालि में अधिकता से पाई जाती है ।

वैदिक भाषा से प्राची रूपों की अनेकता पालि में सुरक्षित है, जब कि संस्कृत ने उसे व्यवस्थित कर उसमें एकरूपता ला दी है । वैद की भाषा में पुलिलकू अकारात शब्दों के बहुवचन के रूप में 'असुक्' प्रत्यय भी लगता था । इस प्रकार 'देव' शब्द का प्रथमा बहुवचन का रूप वहाँ 'देवासः' मिलता है । संस्कृत ने इस रूप को यहाँ नहीं किया है । किन्तु पालि में 'देवासे' 'पस्मासे' 'बृद्धासे' जैसे प्रयोगों में वह सुरक्षित है । इसी प्रकार 'देव' शब्द का तृतीया बहुवचन का रूप वैदिक भाषा में 'देवेभि' है । पालि में यह 'देवेभि' के रूप में सुरक्षित है । संस्कृत ने इस रूप को भी प्रहण नहीं किया है । वैदिक भाषा में प्रायः जनुर्वी विनियित के लिये घटी ता प्रयोग और घटी विभक्ति के लिये चतुर्वी का प्रयोग पाया जाता है । संस्कृत ने इसे नियित नियम में वांछ कर रोक दिया है । किन्तु पालि में यह व्यत्यय 'आद्वाणस्स वनं ददाति' आद्वाणस्स मिस्सो' जैसे प्रयोगों में मिलता है । नियत्यय त पालि में चतुर्वी और घटी विभक्तियों के रूप ही प्रायः समान होते हैं । वैदिक भाषा में 'गो' और 'पति' शब्दों के घटी बहुवचन और तृतीया एक वचन के रूप क्रमयः 'गोमाम्' और 'पतिना' होते थे । पालि में ये क्रमयः 'मोनं या 'मुञ्च' तथा 'पतिना' के रूप में सुरक्षित हैं । किन्तु संस्कृत ने इन्हें भी स्वीकार नहीं किया है । इसी प्रकार वैदिक भाषा में नपूर्मक लिङ् की जगह बहुपा पुलिलम का भी प्रयोग होता था । संस्कृत में यह प्रवृत्ति नहीं पाई जाती । किन्तु पालि में बहुपा एसा ही रूप होते हैं । यही प्रवृत्ति किया-रूपों में भी दृष्टिगोचर होती है । वैदिक भाषा में आत्मनेपद और परस्मैपद का भेद उतना स्पष्ट नहीं था । वही 'इच्छति' 'इच्छते' 'युव्यति' 'युव्यते' जैसे दोनों प्रयोग दृष्टिगोचर होते हैं । पालि में यह प्रवृत्ति समान रूप से ही दृष्टिगोचर होती है । संस्कृत में आत्मनेपद और परस्मैपद का अधिक नियित विधान कर दिया गया है । 'शु' भातु का वैदिक भाषा में अनुज्ञा-काल का मध्यम-मुख्य का एक वचन था रूप 'शुण्डी' और जनुज्ञा-काल

का मध्यम-पुरुष का वहूवचन का रूप 'शृणोत' होता था। पालि में ये क्रमसः 'सूणिः' और 'सूणोष' के रूपों में सुरक्षित हैं। किन्तु संस्कृत व्याकरण ने इन्हें भी स्वीकार नहीं किया है। वैदिक भाषा में 'हन्' चालु का लुह शब्दकार का उत्तम-पुरुषका एकवचन का रूप 'वर्धी' होता था। संस्कृत ने इसे भी स्वीकार नहीं किया है। किन्तु पालि में वह 'वधि' के रूप में सुरक्षित है। हृदयत के प्रयोग में भी संस्कृत और पालि में उपर्युक्त प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है। वेद में निमित्तार्थक १४ प्रत्ययों का प्रयोग होता है, यथा से, सेन, असे, जसेन, कसे, कसेन, अस्य, अस्येन, कास्य, कास्येन, शस्य, शस्येन, तवेन, तु। संस्कृत ने इनमें से केवल 'तु' प्रत्यय को ले किया है। पालि ने उसके साथ साथ 'तवेन' प्रत्यय को भी ले किया है। वैदिक 'दातवे' मा 'दातवै' पालि के 'दातवे' में पूरी तरह सुरक्षित है। इसी प्रकार 'कातवे' 'विष्णहातवे' 'निष्ठातवे' जैसे प्रयोग भी पालि में दृष्टिगोचर होते हैं, जो संस्कृत में नहीं मिलते। 'त्यप्' के स्थान पर वेद में 'स्वा' का भी प्रयोग मिलता है, जैसे 'परिवापयित्वा'। संस्कृत-व्याकरण के अनुसार यह रूप अशब्द है। वही उपसर्ग-पूर्वक शालु में अनिवार्यतः 'त्यप्' होता है, किन्तु पालि में वैदिक भाषा की तरह 'त्वा' देखा जाता है यथा अभिविद्यन्त्वा, निस्ताय आदि। वेद की भाषा में पूर्वकालिक अर्थ में 'त्वाय' 'त्वीन' आदि प्रत्येक लगा कर 'गत्वाय' 'इत्यवीन' जैसे शब्द बनते थे। पालि में 'गत्वान्' 'कातून्' जैसे प्रयोगों में ये सुरक्षित है, किन्तु संस्कृत में नहीं मिलते। वेद की भाषा में विभक्ति, वचन, वर्ण और काल के अनेक अवलय यादे जाते हैं। पालि में भी ये सब यादे जाते हैं। 'एकस्मिं समयस्मि' के लिये 'एक समय' (विभक्ति-व्यात्यय) 'सम्निः इमस्मि काये केसा लोमा नशा' के लिये 'अस्मि इमस्मि काये केसा, लोमा, नशा, (वचन-व्यात्यय); 'बुद्धिम्' के लिये 'बुद्धेहि', 'दुक्कट' के लिये 'दुक्कत' (वर्ण-व्यात्यय) 'अतेक जाति-संसारं सन्त्वाविस्त' (मृतकाल के अर्थ में भविष्यत् काल काल-व्यात्यय) जैसे व्यात्यय पालि में वैध हैं। किन्तु संस्कृत व्याकरण ने इन्हें ग्रहण नहीं किया है।<sup>१</sup> इस प्रकार संस्कृत भाषा की अपेक्षा पालि ही वैदिक भाषा की अधिक सच्ची उत्तराधिकारिणी ठहरती है।

१. विषय की अधिक सुगमता के लिये देखिये भिलु जागदीश काशयन-हृत 'पालि-महाव्याकरण' पृष्ठ तेर्स-उत्तीत (वस्तुकथा) पर दी हुई तालिकाएँ।

### पालि-भाषा के विकास की अवस्थाएँ

ऊपर पालि के व्वनि-समूह और कण-विचार का जो निर्देश किया गया है, उसमें यह साध है कि पालि एक ऐसी मिथित भाषा है जिसमें अनेक वॉलियों के तत्त्व विद्यमान हैं। अनेक दुहरे रूपों का होना उसके इस तथ्य को प्रमाणित करता है। फिर भी पालि के विकास में चार ऐसी कमिक विकास वाली अवस्थाएँ उपलक्षित होती हैं, जिनकी अपनी अपनी विशेषताएँ हैं और जिनके आधार पर हम पालि के पूर्वांग रूपों को भग्न सकते हैं और उनकी संगति लगा सकते हैं। पालि-भाषा के विकास की ये चार अवस्थाएँ इस प्रकार हैं, (१) त्रिपिटक में जाने वाली माध्यांओं की भाषा। यह भाषा अत्यन्त प्राचीन है और वैदिक भाषा की सी ही जनोकल्पना इसमें भिलती है। प्राचीन आर्य भाषा अर्थात् वैदिक भाषा से कही जाहीं तो इस भाषा की अवनि-परिवर्तन के कारण, केवल अल्प त्रिनिव्रताएँ ही मिलती हैं और कहीं कहीं पालि का आपना विशेष रूप-विधान भी दृष्टिगोचर होता है। उदाहरणार्थ 'पित' और 'रक्षा' जैसे शब्द प्राचीन आर्य भाषा से पालि में आ गये हैं, किन्तु इन्हीं से कमशः 'पितुस्स' और 'राजिनो' जैसे रूप पालि ने स्वयं बना लिये हैं। इस प्रकार यह भाषा बुद्ध-कालीन मध्य-देश की लोक-भाषा होने के माध्य-साथ प्राचीन वैदिक समृद्धियों से भी अनुचित है। सुन्त-निपात की भाषा इस प्रकार की भाषा का सर्वोत्तम उदाहरण मानी जाती है। (२) त्रिपिटक के मध्य-भाग की भाषा। माध्यांओं की भाषा की अपेक्षा इसमें एकरूपता अधिक है। माध्यांओं की भाषा की अपेक्षा प्राचीन रूपों की कमी और नये रूपों की अभिवृद्धि इसका एक प्रधान लक्षण है। 'चातक' की भाषा इसका उदाहरण है। (३) उत्तरकालीन पालि गद्य-साहित्य की भाषा। इस भाषा के रूप के दर्शन हमें चिलिन्द-प्रदूष और अर्यकांड-साहित्य में होते हैं। इस भाषा का आधार त्रिपिटक की गद्य-भाषा ही है। इसमें आलंकारिकता और कृतिमता की मात्रा कुछ अधिक गई जाती है। विशेषतः मिलिन्द-प्रदूष और बद्धोप की अर्यकांडाओं में हमें एक विकसित और उत्तर कालीन पालि-कार्य की दर्शन होते हैं। (४) उत्तरकालीन पालि-कार्य की भाषा। यह भाषा विलकूल पूर्वकालीन साहित्य के अनुवाद पर लिखी गई है। लेखकों ने अपनी अपनी शब्द के अनुसार कहीं तो प्राचीन रूपों का ही अनुकरण किया है या कहीं कहीं अपेक्षाकृत नवीन स्वरूपों को स्वीकार किया है। इस भाषा में एक जीवित भाषा के लक्षण नहीं मिलते। संस्कृत का बहुत हुआ प्रभाव भी

इस गुग की माहित्य-सच्चाई का एक विदोष लक्षण है। महाराष्ट्र, दीप्पंचंस, बाठा-बंस, सेलकटाहमाथा जैसे ग्रन्थों में इस भाषा के स्वरूप के दर्शन होते हैं।

### पालि भाषा और साहित्य के अध्ययन का महत्व

पालि के अध्ययन का अनेक दृष्टियों से बड़ा महत्व है। जाज बगरी अनेक प्राचीनिक वालियों के, यहाँ तक कि कुछ अवॉर्ड में राष्ट्र-भाषा हिन्दी के भी, घनि-मधूह आदि का पूरा ज्ञान हमें नहीं हो पाया। भाषा-विज्ञान सम्बन्धी अनेक बातें अभी अनिवित ही पड़ी हुई हैं। इसका कारण यही है कि मध्यकालीन जावे-भाषाओं का, जिनमें पालि प्रथम और मुख्य है, हमारा भी अध्ययन ही अचूरा पड़ा है । जपरी भाषा के बर्तमान स्वरूप को समझने के लिये हमें पालि भाषा का वैज्ञानिक ढंग से अध्ययन करना ही होगा। फिर पालि भाषा ने न केवल हमारी आधुनिक भाषाओं को ही प्रभावित किया है। उसका प्रभाव मिहल, बहु-देश और स्वाम देश की भाषाओं के विकास पर भी पर्याप्त दृष्टि में पड़ा है। भारतीय विद्यार्थी के लिये अध्ययन का इससे अधिक सुलक्षण और क्या विषय ही सकता है कि वह इस प्रभाव को छोड़, इड़े और इन देशों के साथ व्यापक भारतीय संस्कृति के समन्वयों को और अधिक दृढ़ करे। यही बात पालि-माहित्य के विषय में भी है। उसने विद्वन् के एक बड़े भू-भाग को शान्ति-प्रदान की है, क्योंकि वह प्रधानतः सधागत के मन्देश का बाहक है। उसका अध्ययन कर हम उस विद्यालय जन-समुदाय से जाता जाऊँगे हैं, जिसके साथ हमारे नांस्कृतिक और राजनीतिक सम्बन्ध नवयुग में और भी अधिक दृढ़ होंगे। इस उपरी उद्देश्य को छोड़ दें तो भी विद्युद माहित्य की दृष्टि से पालि माहित्य के अध्ययन का प्रभूत महत्व है। उसकी उदात्त प्रतिगाद अस्तु और गम्भीर, मनोरम लोली किसी भी साहित्य में टक्कर ले जाती है। याक्यसिंह ने जिन गुफाओं में निनाद किया है, वे साधारण नहीं हैं। यदि मनुष्यता-धर्म से ही अन्त में मंसार

१. डा० रीरेन्ड बर्मा १९४० में प्रकाशित अपने 'हिन्दी भाषा का इति-हात' में लिखते हैं "हिन्दी संयुक्त स्वरों का इतिहास प्रायः अपेक्षण तथा प्राकृत भाषाओं तक ही जाता है..... अपन्नं तथा प्राकृत के संयुक्त स्वरों का पूर्ण विवेचन सुलभ न होने के कारण हिन्दी संयुक्त स्वरों का इतिहास भी अभी ठीक नहीं दिया जा सकता।" पृष्ठ १४८

को मूर्चित मिलनी है, तो तत्त्वागत के सन्देश का आपका प्रत्यार होना ही चाहिए । इतिहास की दृष्टि से भी पालि-साहित्य का प्रभूत महत्व है । जो मानस्कतिक निषिद्धमारी इस साहित्य में निहित है, उसका अभी महत्वाङ्कुन ही नहीं किया गया । भारतीय इतिहास के चारों कल के निष्ठापन करने में भी सब से अधिक सहायता पालि साहित्य में ही मिली है । निषिद्ध और अनुषिद्ध साहित्य में प्राचीन भारतीय इतिहास की जो अमूल्य सामग्री भरी पड़ी है, उसका अभी तक पूरा उपयोग नहीं किया गया है । उसके सम्बन्ध अध्ययन से हम बौद्धकालीन इतिहास और भीमोलिक तथ्यों का बहुत अधिक ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं । घर्म और दर्शन की दृष्टि से भी पालि का अधिक महत्व है । हमने अभी तक प्रायः सस्तृत एव्वें में ही बौद्ध धर्म और दर्शन का परिचय प्राप्त किया है, जो कुछ हालांकि एकांगदर्शी और अधिकांशत । उसके मौलिक स्वरूप में बहुत दूर है । वैदिक परम्परा के उत्तरकालीन आचार्यों में इसी को स्वयं कर प्रायः बौद्धदर्शन की समालोचना की है । इस प्रकार बृद्ध-धर्म के मौलिक स्वरूप से हम प्रायः अनभिज्ञ ही रहे हैं । यही हमारी उम विचार-प्रणाली के प्रति, जो वास्तव में अपनी प्रभाव-शीलता के लिये विश्व में अद्वितीय है, उदासीनता का कारण है । पालि-साहित्य के प्रकाश में हम देख सकते हैं कि भगवान् गोतम बृद्ध का वास्तविक व्यक्तित्व क्या था और उन्होंने जन-समाज को क्या सिद्धाया था । पालि-साहित्य का सब में बड़ा महत्व वास्तव में उसकी प्रेरणादायिका शक्ति ही है । यह प्रेरणा अनेक रूपों में आ सकती है । साधना के उत्साह के रूप में भी, ऐतिहासिक गवेषणा के रूप में भी और रचनात्मक साहित्य की सुषिद्धि के रूप में भी । साधना के असर तो मीन है । ऐतिहासिक गवेषणा के विषय में हम काँको कह ही चुके हैं । यही अल्पम प्रेरणा के विषय में यही कहना है कि पालि-साहित्य में इनी सामग्री भरी पड़ी है कि वह अभी हिन्दी-साहित्य में अनेक विधाएँ लेखकों और विचारकों को प्रेरणा और आपार दे सकती है । अभी हमने 'बुद्धचरित' 'सिद्धांश', 'यशोधरा' और 'प्रसाद' के कठिनग्रन्थ नाटकों के अतिरिक्त हिन्दी में विशाल पालि-साहित्य से प्रेरणा ही क्या भ्रहण की है ? निष्ठापन ही प्रत्येक दिशा में उपयोग के लिये यही एक कमी समाप्त न होने वाली सामग्री भरी पड़ी है । यदि पालि की समृच्छित आराधना को जाप तो निष्ठापन ही वह बहुफलसाधिका हो सकती है ।

दूसरा अध्याय

## पालि साहित्य का विस्तार, वर्गीकरण और काल-क्रम

### पालि साहित्य का उद्भव और विकास

जिस नेत्रस्थी अवस्था से तत्पार ने सब से पहले मनुष्यता बीचों, जिसकी दीपिन से भारत के निश्चयात्मक इतिहास पर सब प्रभाव आलोक पड़ा, उसी से पालि साहित्य का भी उदय हुआ। तत्पारत की सम्पूर्ण सम्बोधि ही पालि-साहित्य का आवाह है। जिस दिन भगवान् ने बृद्धत्व प्राप्त किया और जिस दिन उन्होंने परिनिर्वाण में प्रवेश किया, उसके बीच उन्होंने जो कुछ, जहाँ कही, जिस किसी से कहा, उसी के मंग्रह का प्रवर्तन पालि-विपिटक में किया गया है। विपिटक वा अर्थ है तीन पिटक वा तीन पिटारियाँ। इन तीन पिटारियों में बृद्ध-वचन संगृहीत किये गये हैं, जो कालानुक्रम से आज के दृग को भी प्राप्त है। उपर्युक्त तीन पिटकों या पिटारियों के नाम हैं, मूत्र-पिटक, विनय-पिटक और अभिषम्भ-पिटक। भगवान् बृद्ध ने जो कुछ अपने बीचन-काल में कहा था सोचा, वह तभी विपिटक में संगृहीत है, ऐसा बावा विपिटक का नहीं है। कौन जानता है कि भगवान् के अन्तमें के कुछ उद्गार केवल उद्घेला की पहाड़ियों ने ही सुने, नेरंजरा की शान्त धारा ने ही धारण किये ! फिर उहसों ने जो कुछ सुना, उन सब ने ही आ आकर विपिटक में उसे संगृहीत करका दिया हो, ऐसा भी नहीं माना जा सकता। अतः एतिहासिक रूप से बृद्ध के मूल से निकले हुए अनेक ऐसे भी वचन हैं, जो विपिटक में हमें नहीं मिलते और जिन्हें अन्यत्र हम कही पा भी नहीं सकते। इसी प्रकार विपिटक में जो कुछ सुरक्षित है, वह सभी बिना किसी अपवाद के बृद्ध-वचन है, ऐसा भी नहीं माना जा सकता। 'विभज्यवादी' (विभाग कर बखलाने वाला, बृद्ध) को समझाने के लिये हमें सब प्रकार 'विभज्यवादी' ही होना पड़ेगा। ही, यह भाष्वासन अवश्य प्राप्त है कि पालि विपिटक में विभवसंसाम रूप से बृद्ध-वचन अपने भौतिक रूप में सुरक्षित है, जैसा कि नीचे के विवरण से स्पष्ट होगा।

भगवान् बुद्ध के सभी उपदेश मीलिक हैं। तत्त्वपि ऐतिहासिक काल का अधिकार भारत में बुद्ध-धर्म के बहुत पहले ही ही चुका था, फिर भी बुद्ध-उपदेश भगवान् बुद्ध के समय में ही लेखबद्ध कर दिये गये हों, इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। भगवान् बुद्ध के सभी शिष्य उन्हें स्मृति में ही रखने का प्रयत्न करते थे। इस बात के अनेक प्रमाण स्वयं त्रिपिटक में ही मिलते हैं। उदाहरणतः, एक बार दूर से आये हुए गोण नामक भिक्षु को जब भगवान् पूछते हैं “कठोर भिक्षु ! तुम ने यमें को कैसे समझा है ?” तो इसके उत्तर में वह सोलह अष्टक शर्तों को पुरा धूग द्वारा के साथ पढ़ देता है। भगवान् जन्मोदय करते हुए कहते हैं “माधृ भिक्षु ! सोलह अष्टक शर्तों को तुम ने छँडी प्रकार साद बन लिया है, छँडी प्रकार धारण कर लिया है। तुम्हारे कहने का प्रकार बड़ा जँड़ा है, बल्कि है, निर्दोष है, व्रथ को माफ साफ किए देने वाला है” ।<sup>१</sup> इसी प्रकार बुद्ध-वचनों को अधिक विस्तृत रूप से धारण करने वाले भी अनेक बहुश्रुत, स्मृतिगान् भिक्षु हैं। उनमें से अनेक धर्म-धर, सूत-निति के (धर्म या सूत-पिटक को धारण करने वाले) हैं, अनेक विनय-धर (विनय-पिटक या विनय-मन्त्रन्वी उपदेशों को धारण करने वाले) हैं, अनेक मात्रिका-धर (मात्रिकाओं—उपदेश-मन्त्रन्वी वत्तकमलियों, जिनमें बाद में अभिधम्म-पिटक का विकास हुआ, को धारण करने वाले) हैं।<sup>२</sup> इनके विषय में त्रिपिटक में अनेक बार प्रश्नसापूर्वक कहा गया है—बहुसृता बागतागामा धम्मधरा चिनयथर्मा मातिकावाचरा।<sup>३</sup> बाद के ‘पञ्चनेत्रायिका’ ‘भाणक’ ‘भूतनितक’, ‘पेटकी’ वैसे शब्द भी इसी पूर्व परम्परा को प्रकट करते हैं। ब्रंगुल्ल-निकाय के ‘एतदमग्नवग्म’ में हम भगवान् बुद्ध के उन प्रमुख भिक्षु-भिक्षुओं पर्व उपासक धर्मिकाओं को एक लम्बी मूर्छी देखते हैं, जिन्होंने साधना की विविध शालाओं में दशता प्राप्त करने वे अतिरिक्त भगवान् के वचनों को स्मरण करने में भी विजेता प्राप्त कर लीं।

१. उदाहरण, पृष्ठ ७९ (भिक्षु जगदीश काश्यप वा अनुवाद)

२. वैशिष्ट्ये विनय-पिटक—चूल्लवग्म।

३. बहुश्रुत, शास्त्रज्ञ, धर्म, विनय और मात्रिकाओं को धारण करने वाले विद्वान् भिक्षु। विनय-पिटक के महावग्म २; १०, और चूल्लवग्म १; १२ में; दोष-निकाय के महापरिमित्याण सूत्र (तृतीय भागवार) में; ब्रंगुल्ल-निकाय (विसुद्धिवग्म ४। १९ में उल्लेख) में; तथा त्रिपिटक के अन्य अनेक रूपानों में।

थी । इन्हीं दोनों साथकों के प्रति हम आज बुद्ध-बचनों के दायाद के लिये झूठी हैं।

शास्ता के समीप रहते भिक्षुओं को ज्ञान और दर्शन का बड़ा सहारा था। किन्तु उनके बनपाचि-योग-निवाण वातु में प्रवेश कर जाने के बाद उन्हें चारों ओर अन्धकार ही दिखाई देने लगा। यह ठीक है कि बुद्ध के समान ही उन्हें धर्म का सहारा था। किन्तु माचारण जनता वहिर्मुखी थी। अन्तरात्मा की अपेक्षा वह बाहर ही अधिक देखती थी। फिर जिस 'धर्म' की शरण में शास्ता ने भिक्षुओं को छोड़ा था, उसका भी अस्तित्व अनलगः उनके बचनों पर निर्भर था। उससे मात्र उन भिक्षुओं और अहंतां का गुजारा हो सकता था, जिनको स्वयं शास्ता से सूनने का अवसर मिला था। किन्तु बाद की जनताओं के लिये क्या होगा? जो भिक्षु भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में अपना अधिकतर समय और ध्यान बुद्ध-बचनों के समरण और संघट करने के बजाय उनके आचहारिक अभ्यास में ही लगाते थे, उन्हें भी अब यह चिन्ता होने लगी कि हमारे बाद इस धाती को कौन मंभालेगा, इस प्रकार के दोपक को एक पीढ़ी से दूसरी सीढ़ी तक कौन पहुँचायेगा? उसका इस प्रकार चिन्तित होना भावुकता पर भी आधारित नहीं था। स्वयं भिक्षु-संघ में इस प्रकार के लक्षण प्रवर्ट हो रहे थे, जिससे संयमी भिक्षुओं को दृश्य होना स्वामी-विक था। अभी भगवान् के परिनिवारण को मात्र दिन भी नहीं दूर थे कि सुभद्रा नामक बड़ा भिक्षु<sup>१</sup> कहता हुआ सुना गया था, "बस आयुष्मानो! मत शोक करो! मत चिलाकरो! हम उस महात्मण से अच्छी तरह मुक्त हो गये। वह हमें सदा ही यह कह कर कह पीड़ित किया करता था 'यह तुम्हें विहित नहीं है'। जब हम जो चाहेंगे, करेंगे; जो नहीं चाहेंगे, सो नहीं करेंगे।"<sup>२</sup> सूभद्र जैसे अवीतराग अनेक भिक्षु भी उस समय संघ में हो सकते थे।

१. लेखिये बुद्धचर्चा, पृष्ठ ४६९-७२

२. पह भिक्षु इसी नाम के उस भिक्षु से भिज था, जिसने भगवान् बुद्ध के परिनिवारण के समय प्रवर्त्या प्राप्त की थी और इस प्रकार जो उसका अन्तिम शिष्य था।

३. अब आवृत्तो! मा सोचित्व! मा परिवेषित्व! सुमुक्ता मर्यं तेन सहायणेन। उपहृता च होम। इदं बो कप्पति, इदं बो न कप्पतीति। इदानि पन मर्यं यं इच्छिस्साम तं करिस्साम। यं न इच्छिस्साम तं न करिस्साम। भावायरिनिम्बाण-सूत (बीष २।३); विनय-पिटक-बूल-वग्य, पंचसतिक लग्नवक।

इस मैल को थोड़ालने के लिये और शास्त्र की स्मृति के प्रति सम्मान प्रकट करने के लिये बुद्ध के प्रमुख शिष्यों ने उनके वचनों का संगायन करना आवश्यक समझा। सुभद्र जैसे भिक्षुओं के असंयम को देखकर आर्य महाकाशयप की भास्त्रिक व्यवसा के दर्शन हम उनके इन वचनों में करते हैं, 'आप्युमानो ! आज हमारे सामने अब भी बड़ रहा है, घर्म का ल्लास हो रहा है। ल-विनय बड़ रहा है, विनय का ल्लास हो रहा है। आओ आप्युमानो ! हम धर्म और विनय का संगायन करें ॥'। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये एक सभा को गढ़। यह सभा बुद्ध-परिवर्णीण के चाहे मात्र में हुई। बुद्ध-परिवर्णीण वैदात्त-पूर्णिमा को हुआ था, अतः यह सभा सम्भवतः आवण मात्र में हुई<sup>३</sup>। आधार का मास तैयारी में लगा। इस सभा में ५०० भिक्षु सम्मिलित हुए, अतः बौद्ध अनुश्रुति में यह सभा 'पंचयतिका' नाम से भी विल्लयत है। सभासदों में एक आनन्द भी थे। यन्मापतिल का कार्य महाकाशयप का सोपा गया। सभा की कार्यवाही में, जैसा स्पष्ट है, बुद्ध-वचनों का संगायन और संघह ही मुख्य था। सभापति महाकाशयप ने उपालि में विनय-सम्बन्धी और आनन्द में घर्म-सम्बन्धी प्रस्तु पूछे और उनके उत्तरों का दूसरे भिक्षुओं ने संगायन किया। उदाहरणतः महाकाशयप ने उपालि में पूछा—“आवृत्त उपालि ! प्रवर्म पाराजिक था उपदेश कही दिया गया ?” “भन्ते ! वैषाली में” “किस व्यक्ति के प्रसंग में ?” “कल्लद के पुक्क-नदिश्च के प्रसंग में” “दिस ब्रात को लेकर ?” “मैथुन को लेकर”। इसी प्रकार आनन्द से बुद्ध-उपदेशों (सुन्तों) के विषय ये प्रस्तु पूछे गये, जिनके उन्होंने उत्तर दिये। इस प्रकार निश्चित धर्म और विनय का सारी सभा ने समावन किया, महाकाशयप के प्रस्ताव पर—धर्मव्यवस्था विनयव्यवस्था समावेष्या।

उपर्युक्त सभा का ऐतिहासिक आधार और महत्व नहा है, और उसमें जिस 'धर्म' और 'विनय' का स्वरूप निश्चित किया गया, उसका हमारे आज प्राप्त

१. पुरे अधर्मो दिष्पति, धर्मो पटिकाहियति । अविनयो दिष्पति, विनयो पटिकाहियति । हन्द मध्ये आवृत्तो धर्मं च विनयं च संगायाम । विनय-पिटक—चुल्लवग्म ।

२. देविमे महावंश (भवत्त आनन्द की संगायन का अनुवाद) पृष्ठ ११ (परिचय)

सुन और विनय पिटक से नया सम्बन्ध है, ये अबन पालि शाहित्य के विद्यार्थी के लिये बड़े महत्व के हैं। राजगृह की इस प्रथम संगीत का बर्णन, जिसमें धर्म और विनय का संगायन किया गया, इन ग्रन्थों में उपलब्ध होता है (१) विनय-पिटक-चूल्लवस्त्र (२) दीपबंस (३) महाबंस (४) बृद्धोपद्धति समन्वयादिका (विनय-पिटक की अवधारणा) को निदान-नियम (५) महाबोधिबंस (६) महाबस्तु (७) तित्वनी दुर्लभ। इन सभी ग्रन्थों में ही कोई किसी बात पर जोर देता है और कोई किसी बात पर 'चूल्लवस्त्र' में तुम्हें आले प्रश्नण को ही प्रधानता देकर उसे सभा बृलाने का कारण दिखलाया गया है, जब कि 'दीपबंस' में इस प्रथम का कोई उल्लेख नहीं है। 'गहावस्त्र' में कुछ जल्द साधारण कारण भी दिये हुए हैं। हम आसानी से देख सकते हैं कि ये ये कोई मीलिक विभिन्नताएँ नहीं हैं। इसी प्रकार सभा में भाग लेने वाले सदस्यों की संख्या के विषय में भी विभिन्न मत हैं। ऐसा होना भी बहुत सम्भव है। हम आसानी से इतना निश्चित तथ्य तो निकाल ही सकते हैं कि यह संख्या ५०० के लगभग थी। इसी प्रकार समिलित सदस्यों में धर्म और विनय के स्वरूप के निश्चित करने में किसने वित्तना योग दिया, इसके विषय में भी उपर्युक्त ग्रन्थों में विभिन्न मत हैं। 'चूल्लवस्त्र' के अनुसार तो सारा काम महाकाशयप, आनन्द और उपालि ने ही किया। किन्तु 'दीपबंस' के बर्णन के अनुसार अन्य भिक्षुओं ने भी काफी योग दिया। इस अन्य भिक्षुओं में, अनिष्ट, वेगीय, पूर्ण, कालायन, कंटित आदि मुहूर्त हैं। पहां भी कोई मीलिक भेद दिखाई नहीं गड़ता। प्रस्तवतः महाकाशयप, आनन्द और उपालि के ही प्रधान भाग लेने पर भी अन्य अनेक भिक्षुओं का भी उनके काम में पर्याप्त सहयोग हो सकता था। अतः उपर्युक्त ग्रन्थों के विवरणों में, जिनमें 'चूल्लवस्त्र' का विवरण ही प्राचीन-

१. "उस महास्थविर (महा काश्यप) ने शास्त्रा (बृद्ध) के धर्म की चिरस्थिति की इच्छा से लोकनाश, दशशब्द भगवान् के परिनिवरण के एक सप्ताह बाद, बृद्धे सुभद्र के हुर्भायित वज्रन का, भगवान् द्वारा चौबरदान तथा अपनी समता देने का, और सद्गुर्म को स्थापना के लिये किये गये भगवान् (मुनि) के अमुग्रह का स्मरण कर के, सम्बूद्ध से जनुमत संगीत करने के लिये, नवाङ्ग बृद्धोपदेश को धारण करने वाले, सर्वाङ्गयुक्त, आनन्द स्थविर के काश्यप योग सो से एक कम महाकीणाखब भिक्षु 'चुने' महाबंस, पृष्ठ १२ (भद्रत आनन्द को संस्थापन का अनुवाद)

तम जान पड़ता है, कोई मालिक विभिन्नताएँ नहीं हैं। बल्कि वे एक दूसरे के पुरुक हैं। उनमें से अधिकांश 'बुल्लवग्म' के वर्णन को ही विस्तृत रूप देते हैं। उपर्युक्त वर्णनों के आधार पर चाह जनश्रुति रावगृह की सभा के इतिहासिक तथा को मानती है। आधुनिक विद्यार्थी भी इसमें सन्देह करने का कोई कारण नहीं देखता। ओल्डनबर्ग ने अवश्य इसमें सन्देह प्रकट किया था। उनका कहना था कि सुभद्रा वाला प्रकरण, जिसे 'बुल्लवग्म' में रावगृह की सभा के बुलाने का कारण लक्षिताया गया है, 'महापरिनिव्वाण-सूत' (दीक्ष २३) में भी उन्हीं शब्दों में रखा हूँ जा है, किन्तु वही इस सभा का कोई उल्लेख नहीं है। इस मौन का कारण उन्होंने यह माना है कि 'महापरिनिव्वाण-सूत' के संग्राहक या सम्पादक को इस सभा का कुछ पता नहीं था। यदि यह सभा हूँड होती तो 'महापरिनिव्वाण-सूत' के संग्राहक को भी इसका अवश्य पता होता और उस हालत में सुभद्रा वाले प्रकरण के साथ साथ उसने इस सभा का भी अवश्य उल्लेख किया होता। चूँकि यह उल्लेख वहाँ नहीं है, इसलिये हम मान ही सकते हैं कि यह सभा हूँड ही नहीं।<sup>१</sup> कितना भयावह और इतिहास की प्रणाली से असिद्ध है डा० ओल्डनबर्ग का यह तक ! किन्तु यह भी बहुत दिनों तक विद्वानों को भ्रम में डाले रहा। बास्तव में डा० ओल्डनबर्ग के तक का कोई आधार नहीं है। 'महापरिनिव्वाण-सूत' का विषय भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण के दृश्य का वर्णन करता है, संघ के इतिहास का निर्देश करना नहीं। संघ के इतिहास का सम्बन्ध 'विनय' से है। अतः भगवान् के परिनिर्वाण के बाद मिथुओं की विह्वल दशा का वर्णन करते हुए 'महापरिनिव्वाण-सूत' के संग्राहक या संगायकों ने सुभद्रा जैसे असंयमी मिथु के विपरीत व्यवहार का तो उल्लेख कर दिया है, किन्तु उससे जागे जाना वही ठीक नहीं समझा गया। इसके विपरीत 'विनय-पिटक' में नैव-वासन की दृष्टि से इस तथ्य को लेकर संघ के इतिहास पर भी उसका प्रभाव दिलाया गया है। यदि यह भी समाधान पर्याप्त न माना जाय, तो यह भी द्रष्टव्य है कि 'दीपवंस' में भी सुभद्रा वाले प्रकरण का उल्लेख नहीं है, किन्तु वहाँ प्रथम संगीति का वर्णन उपलब्ध है। इसलिये 'दीपवंस' के लेखक को जब हम सुभद्रा के प्रकरण में मौन रखते हुए भी प्रथम संगीति के विषय में अभिज्ञात देखते

१. विनय देवसदस्य, जिल्द पहली, पृष्ठ २६ (भूमिका) (-सेकेड चूक्स अौच दि ईस्ट, जिल्द तेरहवा)

है, तो 'महापरिनिवाग-सूत' के विषय में ही हम ऐसा कहो माने कि उसका मौन इस संगीत के बास्तविक रूप से न होने का मूलक है।<sup>१</sup> अतः 'महापरिनिवाग-सूत' के मौन से हम उस प्रकार का निषेचात्मक विद्याल नहीं निकाल सकते, जैसा ओलडम्बर्ग ने निकाला है, जब कि अनेक ग्रन्थों की भारी परम्परा उसके विषय में है। गायनर<sup>२</sup> और विल्टरनिल्ट<sup>३</sup> जैसे विद्यानों ने भी इसी कारण राजगृह की सभा को ऐतिहासिक तथ्य माना है। विल्टरनिल्ट ने कुछ गह अवश्य कहा है कि भगवान् बृद्ध के परिनिवाण के बाद इतने शोध इस सभा का बुलाया जाना हम से कुछ अधिक विश्वास करने की अपेक्षा रखता है।<sup>४</sup> इसी प्रकार मिनयक ने इस सभा की ऐतिहासिकता स्वीकार कर के भी यह स्वीकार करने में कुछ हिलकिनाहट की है कि बृद्ध-वचनों का समावन मी इस सभा की कार्यवाही का एक अंग था।<sup>५</sup> हमारी समझ में ये दोनों ही शकाएँ निमूल हैं। भारतीय साधना की आत्मा को यही नहीं समझा गया। अनुकूल शास्त्र के चले जाने पर उनके 'धर्मदायाद' भिद्युओं के लिये इससे अधिक अवश्यक और अवश्यम्भावी काय नहीं हो सकता था कि वे जल्दी से जल्दी एवं जगह मिल कर भगवान् के वचनों की स्मृति करें। ब्राह्मण और धार्मिय गृहस्थों ने तो भगवान् के शरीर के प्रति अद्वैत जादर प्रदर्शित किये, चक्रवर्ती के समाज उसका ब्रह्मसंस्कार किया और भगवान् की अस्तियां को बांट कर उनकी पूजा की। भिक्षु क्या करते? उनके लिये तो पूजा का अन्य ही विवान भास्ता छोड़ गये थे। उनके लिये तो एक ही उपदेश था। तथागत के अन्तिम पुरुष भत बनो। बृद्ध के बाद 'धर्म' की दरण लो।<sup>६</sup>

१. तिल्खती बुल्ब को भी परिस्थिति 'दोपवंस' के समान ही है, अर्थात् वही सुभद्रा का प्रकरण नहीं है, किन्तु प्रथम संगीत का वर्णन है। देखिये बुद्धिस्तक स्टडीज़ पृष्ठ ४०-४।

२. यालि लिटरेचर एंड लैंग्वेज, पृष्ठ १, पद-संकेत ३

३. इंडियन लिटरेचर, जिल्ड दूसरी, पृष्ठ ४

४. इंडियन लिटरेचर, जिल्ड दूसरी, पृष्ठ ४

५. देखिये बुद्धिस्तक स्टडीज़, पृष्ठ ४३

६. ये अक्षराः उद्भरण नहीं हैं। इन भावनाओं के लिये देखिये धर्मदायाद-सूत (मणिभृ. १११३); गोपक-सोगल्लाम सुत (मणिभृ. ३।१८)

इसी अवस्था में 'धर्म' की भगुत्तमति करना उनका प्रथम और एक मात्र कर्तव्य था । परिवे गुरुजा न करते तो हम जान यही कहते कि भगवान् का भिक्षु-नाम ही उस समय नहीं था । चूँकि हम निश्चित रूप से जानते हैं कि भिक्षु-नाम उस समय था, इसलिये उससे भी अधिक निश्चित रूप से हम यह जानता लाहिये कि उन्होंने एक जगह भिक्षकर 'बुद्ध' और 'धर्म' की भगुत्तमति भी अवश्य की होगी, भगवान् के बचनों का संग्रायन भी अवश्य किया होगा, किर जाह पह तिसी रूप से क्यों न हो । बुद्ध-नाम की जाप्ता और उसका मारा विद्वान् इसी तथ्य की ओर निर्देश करता है, जो इतिहास के साक्षा से कही अत्रिक दुड़ है, और इस विषय में तो इतिहास का साक्ष्य भी, जैसा हम ऊपर निर्देश कर चुके हैं, बहुत अधिक पर्याप्त है ।

यजग्ह की सभा की ऐतिहासिकता सिद्ध हो जाएगी पर भी यह प्रश्न रह ही जाता है कि धर्म और विनाश के जिस रूप का बुद्ध के इन प्रथम विद्वाँ ने संग्रायन और संकलन किया, वह कहीं तक हमारे वर्तमान रूप में प्राप्त सुल-पिटक और 'विनाश-पिटक' में मिलता है । इस प्रश्न का उत्तर अत्यन्त संवत वाणी में और अमर्याः ही दिया जा सकता है, यद्यपि आचार्य बुद्धघोष ने सुल-पिटक और विनाश-पिटक के विभिन्न भागों के नाम ले के कर पह दिखाया है कि उनका संग्रायन प्रथम संगीति में ही किया गया था । फिर भी आश्रुनिक विद्वाँ तो उनके इस साक्ष्य को सावधानों से ही अरुण करेगा । प्रथम संगीति के वर्णन में एक आज देने योग्य बात यह है कि वहाँ धर्म (सूत) और विनाश के संग्रायन का ही बात कही गई है । अभिधर्म के संग्रायन की बात वहाँ नहीं है । इससे यह निष्काय निकाला जा सकता है कि अभिधर्म-पिटक का उत्तरा प्रथम संगीति से बाद के काल की है । किन्तु यह निष्काय बोद्ध परमारा को मात्र नहीं है । आचार्य बुद्धघोष ने प्रथम संगीति के अवधार वर ही अभिधर्म के भी संग्रायन का उल्लेख किया है ।<sup>१</sup> यूआन-

मखादेव-सुत (मञ्जिलम् २१४३) एवं महापरिनिव्याण-सूत (वीध. २१३) आदि ।

१. ततो अनन्तर—धर्मसंगीत-विनाश इत्य, कथावस्थुङ्च पुगालं, धातु-प्रमक-पद्धानं, अभिधर्माति बुद्धतीति । एवं संविष्णत सूत्तुमञ्जाण-गोचरं, तन्ति संग्रायित्वा इवं अभिधर्मपिटकं नामाति बत्वा पञ्च-वरहन्तसतानि सञ्चायमकंसु । सुमंगलविलासिनी को निवान-कथा । मिलाइये समन्त-पासादिका को निवान-कथा भी ।

चुञ्जाक को भी यही बात मान्य था। बृद्धघोष या पूर्वान्-चुञ्जाक के माध्यम से हृदय तक महमत न हो सकने पर भी इसके कोई सन्देश नहीं फिर बृद्ध-बलनां का जो स्वरूप राजगृह की सभा में स्वीकार और उत्तर किया गया, उसी पर बत्तेमान पालि विनिपिक भावान्वित है। इस सभा के एह महत्वपूर्ण प्रसंग का यही उल्लेख कर देना और आवश्यक होगा। जिस समय यह मना हा हो रही थी या समाप्त हो चुका था, पुराण नामक एक भिन्नुकीहो विनिरता दुखा आ गिरता। उससे जब संगायन में भाग लेने के लिये रहा गया तो उसने कहा, 'आवृत्त ! स्वविरो ने धम्म और विनय को बुद्धर तौर से संगायन किया है। किन्तु जैसा मने स्वयं शास्त्र के मूल से सुना है, मूल से गहरा किया है, ने तो जैसा हो भारथ कहेगा'।<sup>१</sup> पुराण की इस उक्ति में राजगृह के सभायोदयों के इतरा गैंगायन किये हुए धम्म और विनय के प्रति अप्राप्यानिकता का भाव नहीं है, जैसा कुछ विद्वानों ने धम्मवत्सोचा है। संधि के लिये यह कोई लतरे ही घटी भी नहीं थी, जैसा एक विद्वान् को भ्रम दृश्या है।<sup>२</sup> पुराण ने एक साधक पृष्ठ पर था। एकान्त-साधना का भाव उसमें अवश्य अधिक था, जिसके कारण वह जापने उस ध्यान-भावना में, जो उस शास्त्र के प्रत्येक सम्पर्क से भिली थी, किसी प्रकार का विक्षेप नहीं जाने देना चाहता था। दूसरों ने बृद्ध-मूल से जो कुछ सुना है, वह सब शीक रहे, सत्य रहे। किन्तु पुराण को तो आत्मा जीवन-गायन उसी से करना, जो उसको आवश्यकता देता हुए स्वयं भगवान् ने उसे दिया है। इस दृष्टि से न तो पुराण की उक्ति में राजगृह की सभा में संगायन किये हुए बृद्ध-बलनां को अप्रमाणिकता की ओर संकेत है, और और न वह भिन्नु-संघ के लिये कोई लतरे की घटी ही थी। इस प्रकार के स्वतन्त्र विनारों के प्रकाशन पर भिन्नु-संघ ने कभी प्रतिबन्ध नहीं लगाया। यह उसकी एक विद्य-पता है। जल्द हम कह सकते हैं कि धर्मवत्सों भिन्नुओं ने धर्म का जैसा ही संगायन किया, जैसा उन्होंने स्वयं भगवान् से सुना था और जो उन्होंने संगायन किया उसके ही दर्शन हमें पालि सूत्र और विनय पिटकों में मिलते हैं, यद्यपि उसके साथ कुछ और भी मिल नहीं है।<sup>३</sup>

१. विनय-पिटक-चुलबग्न; देखिये बृद्धघोष, पृष्ठ ५५२ भी।

२. डॉ रमेशबन्दु भगवान्न ने लिखा है "This was a danger signal for the Church." बृद्धिस्तिक स्टडीज, पृष्ठ ४४

३. बृद्धघोष को भी यह भत्त आंशिक कथ से मान्य था। देखिये बृद्धिस्तिक स्टडीज, पृष्ठ २२१

भगवान् के परिवर्तन के १०० वर्ष बाद (बस्सतपरिनिवृत्ते भगवति—  
बुल्लवमा) किन्तु गूजार चुआळ डारं निविष्ट परम्परा के अनुसार ११०  
वर्ष बाद, वैशाली में 'धर्म' और 'विनय' का, जैसा कि वह प्रथम संगीति में  
संगृहीत किया गया था, पुनः संगायन किया गया। यह बोढ़ भिक्षुओं को दूसरी  
संगीति थी, जिसमें ३०० भिक्षुओं ने भाष्य किया। इसीलिये यह 'सप्तशतिका'  
भी कहलाती है। यह सभा वास्तव में विनय-सम्बन्धी कुछ विवाद-प्रस्ता प्रश्नों का  
निषेध करने के लिये बुलाई गई थी। वैशाली के भिक्षु दस बातों में विनय-विपरीत  
आचरण करने लगे थे, जिनमें एक सोने-चांदी का अवृण भी था। अनेक भिक्षुओं  
के भत में उत्का यह आचरण विनय-विपरीत और निर्विद्ध था। इसी का निषेध  
करने के लिये वैशाली में यह सभा हुई, जो आठ मास तक चलती रही। पालि  
साहित्य के विकास की दृष्टि से भी इस सभा का बड़ा महत्व है। एक बात इस सभा  
से यह निश्चित हो जाती है कि इस समय तक भिक्षु-संघ के पास एक ऐसा सुनि-  
श्चित संगृहीत साहित्य जबद्य था जिसके आधार पर भिक्षु विवाद-प्रस्ता प्रश्नों का  
निपटारा कर सकते थे, किर नाहे वह साहित्य मौखिक परम्परा के रूप में ही भले  
नपो न हो।<sup>१</sup> वैशाली की सभा ने वैशालिक भिक्षुओं के दस बातों सम्बन्धी व्यव-  
हार को विनय-विपरीत ठहराया। इससे एक महत्वपूर्ण समस्या पालि-साहित्य,  
विशेषतः विनय-पिटक, के सम्बन्ध में उत्पन्न हो जाती है। आज जिस रूप में विनय-

१. ऐसा हो आधार स्वर्य भगवान् बुद्ध के समय में भी विद्यमान था।  
‘भिक्षुओं ! यदि कोई भिक्षु ऐसा कहे ‘मैंने इसे भगवान् के मूल से  
सुना है,’ प्रह्ल किया है, यह धर्म है, यह विनय है, मह वास्ता का वासन  
है, तो भिक्षुओं ! उस दिन उस भिक्षु के भाषण का न अभिनन्दन  
करना, न निन्दा करना। अतिक . . . . . सूत्र से तुलना करना, विनय  
में देखना। यदि वह सूत्र से तुलना करने पर, विनय में देखने पर, न सूत्र  
में उतरे, न विनय में दिखाई दे, तो विश्वास करना यह भगवान् का  
बचन नहीं है। किन्तु यदि वह सूत्र में भी उतरे, विनय में भी दिखाई  
दे, तो विश्वास करना अवश्य यह भगवान् का बचन है।” महापरि-  
निवाण सुत (दोष. २।३) मिलाइये अंगुत्तर-निकाय, जिल्द ६, पृष्ठ  
५१; जिल्द ४, पृष्ठ १८० (पालि टैक्सट सोसायटी का संस्करण)

पिटक पाया जाता है उसमें उन दस बातों में से, जिनके निर्णय के लिये वैशाली की सभा बुद्धाइ-गढ़ थी, अधिकाम वाले साप्ततः बुद्ध-मन्तव्य के विपरीत ठहराएँ गई हैं<sup>१</sup>। इसमें प्राचीनकारी निकाला गया है कि आज जिस रूप में विनय-पिटक हैं प्राप्त हैं वह वैशाली की सभा से पूर्व वा नहीं हो सकता<sup>२</sup>। परिएता होता, तो स्वविरो को इतना ब्राह्म-विवाद करने की जावदप्रकृता ही नहीं होती, क्योंकि वही तो साप्ततः उन्हें निर्धारित जरूरतपूर्ण ही गया है। अतः ऐसा माना गया है कि पहले विनय-पिटक का स्वरूप कुछ और रहा होगा और बाद में वैशाली की सभा के बाद उसके निर्णयों को उसमें उचित स्वरूपों में समाप्ति कर दिया गया।<sup>३</sup> हम यह अस्वीकार महीने करते कि वैशाली की सभा के परिणाम-स्वरूप विनय-पिटक के स्वरूप में कुछ मशीखन या परिवर्तन न किया गया हो, किन्तु हम यह नहीं मान सकते कि तस्वतः वैशाली की सभासे पूर्व के विनय और आज वह जिस स्वरूप में पाया जाता है, उसमें कोई भेद है। बास्तवमें बात यह है कि वैशाली की सभा से पूर्व और उसके कुछ शालाभिद्या बाद तक भी 'विनय', जैसे कि अग्र बुद्ध-बनन, भौतिक अवस्था में ही रहे। अतः परिएत विनय-पिटक का स्वरूप वैशाली की सभा से पहले का भी परिएत आज का सा ही होता, तो भी उन दस बातों पर विवाद चल सकता था, जिन पर वैशाली की सभा में वह जला और जिनमें से बहुतों के ऊपर विनय का आज स्पष्ट साधा उपलब्ध है। अतः यह मानने की कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती कि बतौमात्र विनय-पिटक वैशाली की सभा से पहले का नहीं है। हाँ, वैशाली की सभा ने एक बात पहलीबार सप्तष्ट कर दी है। वह यह कि जिन भिधु-सभा में वैशाली में मिल कर अपने मतानुसार प्रामाणिक बुद्ध-मन्तव्य के अनुसार वैशाली के बृजियों के असाधार भी निवा की, उनका ही एक मात्र संग्रह बुद्ध-बचतों का नहीं है। जिन भिधुओं की इस सभा में पराजय हो गई, उन्होंने अपनी अग्र एक भारी सभा (महा-नगीति) की, जिसमें उन्होंने आपने मतानुसार नये बुद्ध-बचतों की सूचि की। इसके विषय में 'दीपबंस' में कहा गया

१. कुछ उद्धरणों के लिये देखिये बुद्धिस्तक स्टडीज, पृष्ठ ६२-६४

२. यह निष्कर्ष डा० रमेशचन्द्र मजूमदार ने निकाला है। देखिये बुद्धिस्तक स्टडीज पृष्ठ ६२

३. बुद्धिस्तक स्टडीज, पृष्ठ ६३-६५; ओल्डमवर्ग को भी यही मत मान्य है, देखिये वही पृष्ठ ६५, पदसंकेत १

है “महासंगीत के” भिक्षुओं ने बुद्ध-वासन को विलकृत विपरीत कर डाला । मूल संघ में भेद उत्पन्न कर उन्होंने एक नया संघ जड़ा कर दिया । मौलिक ‘धर्म’ को नष्ट कर उन्होंने एक नया हो गया था तंत्रह किया” ॥ अर्दि । इन महासंगीतिकारों ने जो कुछ भी संघर्ष किया हो था उनका जो कुछ भी अद्य अवशेष रहा हो, हम यह निविवाद रूप से कह सकते हैं कि बुद्धवर्णनों के पालि-संस्करण के सामने उसको कोई प्रभाणवता नहीं है । बैठाली की समा में चिनय-सम्बन्धी इस बातों के विषय में निर्णय हो जाने के बाद ७००० भिक्षुओं ने महासंविर रेवतके सभापतित्र में, प्रथम संगीत के समान हो, ‘धर्म’ का संग्रहत और संकलन किया । ‘अकर यम्मसंगह’ । आजायं बुद्धघोष के बर्णनानुसार बुद्ध-वर्णों का लोक पिटकों, पाँच निकायों, ती अंगों और ८५००० धर्मस्कन्धों में वर्गीकरण इसी समय किया गया । इस संगीत की ऐतिहासिकता विद्वानों का गहरी की जपेदा अधिक मात्र है । इस संगीत का बर्णन भी ग्राम उन सब ग्रन्थों में मिलता है जिनमें प्रथम संगीत का । इनका उल्लेख पहले किया जा चुका है ।

बैशाली की संगीत के बाद एक तीसरी संगीत समाद अशोक के समय में बुद्ध-गरिनिवाण के २३६ वर्ष बाद पाटलिपुत्र में हुई । इस संगीत का बर्णन दोपहर, महावंश और समन्तपासादिका (चिनद-पिटक का बुद्धघोष-निर्वित अट्ठलक्ष्मा) में मिलता है । चिनद-पिटक के बुल्लवग्म में इस संगीत का निर्देश नहीं किया गया है । तिब्बत और चीन के महायानी बौद्ध साहित्य में भी इस संगीत का निर्देश नहीं मिलता और न पूजार्-नुवाक्, न ही इसके विषय में कुछ लिखा है । अशोक के किसी चिलोलेख में भी इस संगीत का स्पष्टतः कोई उल्लेख नहीं

१. महासङ्गीतिका भिक्षु विलोमं प्रकंसु वासनं । भिन्वित्वा मूलसंघं अङ्गां अकंसु संघं ॥ अङ्गाया सङ्घहितं सुर्तं अङ्गाधा अकरित्वं ते । अत्यं धर्मं च भिन्विसु ये निकायेसु पंचत् ॥ यहों आगे कहा गया है कि महासंगीत के इन भिक्षुओं ने परिवार, अभिधर्म, पटिसम्भदा, निहेस और जातकों के कुछ अंशों को स्वीकार नहीं किया—परिवार अत्युदारं अभिधर्मत्यकरणं, पटिसम्भदां च निहेसं एकदेसं च जातकं, एसकं निस्सञ्जेत्वान अङ्गां अकरित्वं ते । ५१३२-३८ (ओल्डनवर्ग का संस्करण)

भिलता।<sup>१</sup> अतः कुछ विद्वानों ने इसका ऐतिहासिकता में रान्देह किया है।<sup>२</sup> वास्तव में बात यह है कि अशोक के समय तक बौद्ध भव्य १८ सम्प्रदायों में विभक्त होनेका था और जिस सम्प्रदाय का पश्च व्यहग कर गह सभा बुलाई गई थी अब विस सम्प्रदाय को इस सभा के बाद बृद्ध-धर्म का वास्तविक प्रतिनिधि माना गया था वह विभज्यवादी या स्वविरचवादी<sup>३</sup> सम्प्रदाय था। अतः यह बहुत सम्भव है कि दूसरे सम्प्रदाय वालों ने इसे स्वविरचवादी या विभज्यवादी भिक्षुओं की ही अपनी सभा मानकर इसका उल्लेख मानान्य बौद्ध संगीतियों के रूप में न किया हो। अशोक के शिलालेखों का इस सम्बन्ध में मौन रखने का यह कारण हो सकता है कि अशोक ने बास्तव में इस सभा में कोई भहत्पूर्ण भाग नहीं लिया

१. नवे शिलालेख में कुछ 'कथावत्य' के समान शब्दों अवश्य बृहिंगोचर होती है। देखिये भांडारकर और मज्जमवारः इन्सक्षिप्तान्स आंव अशोक, पृष्ठ ३४-३६

२. जिनमें मूल्य मिनयफ, लीच, मैक्स बेलेसर, वार्च, फ्रैंक और लेवी हैं। डा० टी० डब्ल्य० रायम डेविड्स, थीमती रायमडेविड्स, विटरनित्व और गायगर इस सभा को ऐतिहासिक रूप से प्रामाणिक मानते हैं। देखिये विटरनित्व; हिस्ट्री आंव इंडियन लिटरेचर, जिल्ड दूसरी पृष्ठ १६-१७० पद संकेत ५, एवं गायगरः पालि लिटरेचर सं२ लोग्बेज, पृष्ठ ९ पृष्ठ संकेत २ में निविष्ट साहित्य।

३. स्वविरचवाद का अर्थ है स्वविरो अर्थात् बृद्ध, जानी मुख्यों और तत्त्व-दर्शियों का मत। बृद्ध के प्रथम शिल्यों के लिये 'स्वविर' शब्द का प्रयोग किया गया है। बृद्ध-मन्त्रालय के विषय में उनका मत ही सर्वाधिक प्रामाणिक था। अतः स्वविरचवाद का अर्थ 'प्रामाणिक मत' भी हो गया। स्वविरचवादी भिक्षु 'विभज्यवाद' के जनुयायी थे। अतः 'विभज्यवाद' (पालि, विभज्जवाद) और स्वविरचवाद (पालि, वेरचाद) दोनों एक ही वस्तु के छोटक हैं। 'विभज्यवाद' का अर्थ है विभाग कर, विश्लेषण कर, प्रत्येक वस्तु के अच्छे अंश को अच्छा और बुरे अंश को बुरा बतलाना। इसका उल्टा एकांशवाद (पालि, एकंसवाद) है, जो सोलहो आने किसी वस्तु को अच्छी या बुरी कह डालता है। भगवान् बृद्ध ने सुभ-सुत (मस्किम, २।१।१) में अपने को उपर्युक्त अर्थ से

था। अबका उसके मारे थेय की वह उस समय के सब से अधिक प्रभिद्ध बोड विद्यान् और साधक मोग्गलिपुत तिस्स को देना चाहता था, जिन्होंने वह सभा बुलाई थी और जो ही इस सभा के सभापति थे। अनेक प्रान्ती के भिक्षुओं ने इस सभा में आग लिया। इस सभा का मूल उद्देश्य यह था कि बौद्ध संघमें जो अतिक अ-बौद्ध लोग सम्पाद अवौक के बौद्ध संघ सम्बन्धी दानों से आहूट होकर पुस गये थे उनका निष्काशन किया जाय और मूल बौद्ध-उपर्दणों का प्रकाशन किया जाय। सभा की कार्यवाही में यही काम किया गया। साथ ही पाटलिपुत्र की इस सभा में अनिम छृप से दुर्दृष्टवचनों के स्वरूप का निश्चय किया गया और ९ महीनों के अन्दर भिक्षुओं ने तिस मोग्गलिपुत के सभापतित्व में बुद्ध-वचनों का संग्रहण और प्राप्तयण किया। इसी समय तिस मोग्गलिपुत ने मिथ्यावादी १८ बौद्ध सम्प्रदायों का निराकरण करते हुए 'कथावत्य' नामक ग्रन्थ की रचना की, जिसे 'अभियम्म-पिटक' में स्वात्म मिला। जैसा पहले कहा जा चुका है, बृद्धघोष और यज्ञान्-चूत्राण के वर्णन के अनुसार अभियम्म-पिटक का भी संग्रहण महाकाशयप ने प्रथम संगीति के अवसर पर ही किया था। किन्तु उसको इतनी प्राचीनता अपने वर्तमान रूप में विद्यानों को मान्य नहीं है। कम से कम इस तीसरी संगीति के वर्णन से इतना तो स्पष्ट हो जाता है कि 'कथा-

विभज्यवादी' कहा है। स्थविरवादी भिक्षु भी यही दृष्टिकोण रखते थे। विभज्यवाद का एक सूक्ष्म और तात्त्विक अर्थ भी है, जिसका उपदेश भगवान् बृद्ध ने दिया था। इस अर्थ के अनुसार मानसिक और भौतिक जगत् की सम्पूर्ण अवस्थाओं का स्वात्म, आयतन और धातु आदि में विभिन्नता किया जाता है, किन्तु फिर भी उनमें 'अता' (आत्मा) या स्थिर तत्त्व जैसा कोई पदार्थ नहीं मिलता। विभज्यवाद के इस सूक्ष्म अर्थ के विवेचन के लिये वेत्तिये भिक्षु जगदीश-काश्यपः अभियम्म फिलासफो, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १९-२२; स्थविरवाद और विभज्यवाद के पारस्परिक सम्बन्ध के अधिक निहृपण के लिये वेत्तिये गायगर; पालि लिटरेचर एंड लॉगोज, पृष्ठ ९ पद-संकेत १, तथा बिंटरनित्तः इंडियन लिटरेचर, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ६, पद-संकेत २ में निविष्ट साहित्य।

१. महावंश ५।२७८ (भद्रन्त अनन्द कौसल्यायन का अनुवाद)

बत्तु<sup>१</sup> की रचना महास्वप्रियर तिस्ता योगलिपुत्र ने अधोक के समय में की। इतना भी निश्चित है कि सम्पूर्ण अभिव्यमनप्रियक के स्वरूप वा निश्चय अन्तिम रूप से इस संगीत के समय तक ही गया था। इस समय के परिणामस्वरूप एक महात्मपूर्ण निश्चय विदेशों में बृद्ध-धर्म के प्रचार करने के लिये उपदेशकों को भेजने का भी किया गया। अधोक के नेतृत्वे और दूसरे शिकायेश्वरों ने यह स्पष्ट होता है कि उसने न केवल धर्मने विशाल साम्बाद्र के विभिन्न प्रान्तों में ही वस्तिक सीमान्त देशों में वसने वाली धर्म, गान्धोज, गान्धार, राष्ट्रिक, पितनिक, भोज, जात्य, पुलिन्द आदि जातियों में और तेजपुत्र, मत्पुत्र, चोल, पाण्ड्य नामक दक्षिणी भारत के स्वाधीन राज्यों में तथा सिंहल द्वीप में भी बृद्ध-धर्म के प्रचारार्थी धर्मांगदेशकों नो भेजा था। दीप-वंत,<sup>२</sup> महावंत,<sup>३</sup> और समन्तपासादिका<sup>४</sup> में इन भिक्षुओं को नामाखली सुरक्षित है, जिन्हें भिन्न भिन्न देशों में बृद्ध-धर्म का प्रचार करने के लिये भेजा गया था। किस-किस भिक्षु को किस-किस प्रदेश में भेजा गया, इसकी यह भूची इस प्रकार है—

- |   |   |
|---|---|
| १. स्वप्रियर माध्यनिक (भृत्यनिक)              | —काल्मीर और गान्धार प्रदेश को                             |
| २. स्वप्रियर महादेव                           | —महिष मंडल (महिसक मंडल) को<br>(तवंदा के दक्षिण वा प्रदेश) |
| ३. स्वप्रियर रक्षित (रक्षितर)                 | —वनवासि-प्रदेश को<br>(वर्तमान उत्तरी कलार)                |
| ४. गृहानी भिक्षु घमरक्षित<br>(योनक घमरक्षित)  | —वापरात्तक प्रदेश को<br>(वर्तमान गुजरात)                  |
| ५. स्वप्रियर महाधर्मरक्षित<br>(महाधर्मरक्षित) | —महाराष्ट्र (महाराष्ट्र) को                               |
| ६. स्वप्रियर महारक्षित (महारक्षित)            | —यवन-देश (योनक लोक) को<br>(बैण्डिया)                      |
| ७. स्वप्रियर मात्तम (मजितम)                   | —हिमालय-प्रदेश (हिमवन्त) को                               |

१. परिच्छेद ८

२. ५१२८०; १२१८

३. पृष्ठ ६३-६४ (पालि देवसंहि सोसायटी का संस्करण)

८. स्वपिर दोण और उत्तर (दोनों माइ)	—सुवर्ण भूमि (सूरज्ञ भूमि) को (उत्तर)
९. महेन्द्र (महिन्द्र, चक्रिय), (इट्टिय) उत्तिय (उत्तिय) बाल्वल (सम्बल)—ताम्रपर्णी (तम्रपर्णी) को और भद्रशाल (भद्रशाल) ये (लंका) ।	

## पौच भिक्षा

उपर्युक्त सूची एतिहासिक रूप से प्रामाणिक है । सौची-स्थाप में इन आवायों में से कुछ के नाम उल्लिखित हैं १ । अबन्ता की जितकारी में भी एक चिन्ह महेन्द्र और संघमित्रा (अशोक के प्रद्वयित पुत्र और पुत्री, जो अन्य भिक्षुओं के साथ लंका में घर्मे प्रवारार्थ मर्ये) की मिहल-नामा की अमर बनाता है । फिर लंका में आब तक महेन्द्र और संघमित्रा तथा उनके नामी जन्य भिक्षुओं की स्मृति के लिये जो जीवित श्रद्धा विद्यमान है, वह केवल कल्पना पर ही आधित नहीं हो सकती । अशोक का घर्म-प्रवारार का कार्य यहीं तक सीमित नहीं था । उसने अपने घर्म-प्रवारक उस समय के प्रगिद्ध पौच यूनानी राज्यों में भी भेजे । इस प्रकार मिरिया और बैकिट्या के राजा अन्तियोकस (एटियोकस वियोस—ई० पू० २६१-२५६ ई० पू०) मिथ के राजा तुरमय (टोलेमी फिलाडेल्फस—ई० पू० २८५-२८७ ई० पू०) मेसिङ्गोनिया के राजा अल्किन (एटिगोनस गोनटस—ई० पू० २७८-२३० ई० पू०) मिरीनी के राजा मग (मेगस—ई० पू० २८५-२५८ ई० पू०) और एगिरस के राजा अलिक सुन्दर (एलेक्जेन्डर-ई० पू० २७२-२५८ ई० पू०) के देशों तक अशोक कालीन बीड़ भिक्षा और भिक्षुणियों बढ़ावा सन्देश लेकर गये ।<sup>२</sup> इस सब विस्तृत घर्म-प्रवार के इतिहास में सेष्यमें यहाँ लंका-सम्बन्धी प्रभार-नामे से ही अधिक सम्बन्ध है । लंका में महेन्द्र और उनके अन्य साथी बृद्ध-घर्मे को ले गये । वहाँ के राजा देवानंपिय तिस्सा ने भारतीय भिक्षुओं का बड़ा सल्कार किया और उनके सन्देश को स्वीकार किया । स्वपिर महेन्द्र और उनके साथी लंका में

१. देखिये, बुद्धिस्तक स्टडीज, पृष्ठ २०८ और ४६१; मिलाइये, अशोक की घर्मलिपियाँ, प्रथम भाग, पृष्ठ १६१-६२

२. स्वपिर मजिभस को वहाँ 'हिमवान् प्रदेश का उपदेशक' (हमवता-चरिय) कह कर स्मरण किया गया है ।

३. शिलालेख २

उस विपिटक को भी के गये थे जिसके स्वरूप का अन्तिम निश्चय पाटलिपुत्र की संगीत में हो चुका था । लंका में 'महा-विहार' की स्वापना हुई और विपिटक के अध्ययन का कम चलता रहा । परन्तु यह अध्ययन-कम अभी कुछ और शताव्दियों तक केवल मौखिक परम्परा (मुख्याठवसेत) में ही चलता रहा । बाद में लंका के राजा बट्टुगामणि उभय के समय में प्रथम शताव्दी ईस्टी पूर्व में, जिस विपिटक को महेन्द्र और अन्य निकू अठान्क और देवानंगिय तिस्रा के समय में बहाँ ले गये थे, लेखबद्ध कर दिया गया ।<sup>१</sup> उधर से वह उसी क्षण में चला आ रहा है । महेन्द्र के लंका-नामन और बट्टुगामणि के समय में विपिटक के लेखबद्ध होने के समय के बीच में तीन और वर्ष-संगीतियों कमज़ोः देवानंगिय तिस्रा, दृट्टोमामणि और बट्टुगामणि अभ्य नामक लंकाधिगीं के समयों में हुई । जेतः पालि-साहित्य के विकास के इतिहास में उनका भी अवश्य एक स्थान है, यद्यपि पहली तीन संगीतियों की अपेक्षा वह बहुत योग्य है । यह निरिचत है कि इन तीन संगीतियों में महेन्द्र द्वारा प्रचारित विपिटक के स्वरूप में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं किया गया और बट्टुगामणि के समय में जिस विपिटक को लेखबद्ध किया गया वह वही था जिसे महेन्द्र और अन्य निकू ले गये थे ।

इस प्रकार दृढ़ के परिनिवाण-काल से लेकर प्रथम शताव्दी ईस्टी पूर्व तक पालि-साहित्य के विकास को हमने देखा । इससे जागे पालि-साहित्य के उस धूप के विकास की कहानी है जो प्रथम शताव्दी ईस्टी पूर्व तक अन्तिम रूप से मूलशब्द और लिखित उपर्युक्त विपिटक की ओराधार मान कर लिखा गया है । इसभावतः यही हम पालि-साहित्य के विस्तार और विभावन के प्रदम पर आते हैं ।

**पालि-साहित्य का विस्तार—दो भोटे भोटे भागों में उसका वर्णकरण—  
पालि वा पिटक साहित्य एवं अनुपालि या अनुपिटक साहित्य**

विपय की दृष्टि से पालि-साहित्य उतना विस्तृत और पुर्ण नहीं है, जितने संस्कृतादि अन्य साहित्य । अतेक प्रकार की शान-शानालों पर उत्तर साहित्य

१०. दीपबंस २०।२०-२१ (ओल्डनबर्ग का संस्करण) ; महाबंस ३३।१००-१०१ (गायगर का संस्करण) (बम्बई विद्यविद्यालय द्वारा प्रकाशित 'महाबंस' के संस्करण में ३३।२५७६-८०) देखिये महाबंस, पृष्ठ १८८-७९ (भदन आनन्द कौसल्यायन का अनुवाद)

नहीं मिलता। ठीक तो यह है कि बोढ़ घरमें—स्वविरचारी बोढ़ घरमें—के अलावा उसमें ज्ञातव्य ही अल्प है। विभिन्न ज्ञान-शास्त्रों की वह बहुमूल्य सम्पत्ति उसमें नहीं मिलती जो एक सर्वविद्य समुद्र साहित्य से सम्बन्ध रखती है। किर भी पालि-साहित्य के अल्प अनेक बड़े जाकरण हैं। उसके साहित्य का विकास न केवल भारत में ही, अपितु लंका, बरमा और स्थाम में भी हुआ है और स्वभावतः उसने इन सब देशों की भाषा और विचार-ग्रन्थों को भी प्रभावित किया है। पालि साहित्य की रचना बुद्ध-काल से लेकर आज तक निरन्तर होती चली आ रही है। अतः उसके विकास का २५०० वर्ष का इतिहास है। कालानुक्रम और प्रवृत्तियाँ, दोनों को ही दृष्टि से पालि-साहित्य को दो मोटे-मोटे भागों में विभक्त किया जा सकता है, (१) पालि या पिटक साहित्य, (२) अनुपालि या अनुपिटक साहित्य। पालि या पिटक साहित्य का विकास, जैसा ऊपर दिखाया जा चुका है, बुद्ध-निर्वाण काल से लेकर प्रथम यतावदी ई० पू० तक है। अनुपालि या अनुपिटक साहित्य के विकास का इतिहास प्रथम यतावदी ई० पू० से लेकर चतुर्मास काल तक चला जा रहा है।

### पिटक-साहित्य के ग्रन्थों का संचित विश्लेषण और काल-क्रम

जैसा ऊपर कहा जा चका है, पालि या पिटक साहित्य तीन भागों में विभक्त है, सूत-पिटक, विनय-पिटक और अभिधर्म-पिटक। सूत-पिटक पाँच निकायों या जास्त्रों में विभाजित है, जिनके नाम हैं, दीध-निकाय, मजिभर्म-निकाय, संयुत-निकाय, अग्न-सर-निकाय और खुद्धक-निकाय। विनय-पिटक अपने आप में एक परिपूर्ण ग्रन्थ है, किन्तु उसकी विषय-वस्तु तीन भागों में विभक्त है, सूत-विभर्म, खंडक और परिखार। सूत-विभर्म के दो विभाग हैं, पाराजिक और पालितिय। इसी प्रकार खंडक के भी दो भाग हैं, महावग्ग और चूल्लवग्ग। अभिधर्म-पिटक में सात बड़े बड़े ग्रन्थ हैं, जिनके नाम हैं धर्मसंग्रहि, विभर्म, धानुकवा, पूर्मलपञ्जाचि, कथावद्य, वमक और पट्ठान। सूत-पिटक के पाँच निकायों का कुल अधिक विश्लेषण कर देना यहाँ आवश्यक जान पड़ता है। दीध-निकाय में कुल ३४ सूत हैं, जो तीन वर्गों में विभाजित है। पहले सीलवस्त्रवग्ग में १३ सूत हैं, दूसरे महावग्ग में १० सूत हैं और तीसरे पाटिकवग्ग में ११ सूत हैं। यह वर्गीकरण इस प्रकार दिखाया जा सकता है—

## दीघ-निकाय

## (अ) सीलकखन्थ-वग्मा

१. शहुजाल-मूत
२. यामज्जनकल-मूत
३. अन्वट्टन-मूत
४. सोणदड-मूत
५. हृष्टदन्त-मूत
६. महालि-मूत
७. जालिय-मूत
८. कस्सपर्शीहनाद-मूत
९. पोद्धार-मूत
१०. मुभ-मूत
११. केवड (या केवट्ट)-मूत
१२. कोहिच्छ-मूत
१३. तेविञ्ज-मूत

## (आ) महावग्मा

१४. महापदान-मूत
१५. महानिदान-मूत
१६. महापरिनिवाष-मूत
१७. महासूदस्सन-मूत
१८. गतवस्त्र-मूत
१९. महागोविन्द-मूत
२०. महासमय-मूत
२१. सकापक्ष्म-मूत
२२. महासतिपद्धान-मूत
२३. पायामि-मूत

## (इ) पाटिक-वग्मा

२४. पाटिक-मूत
२५. उत्तम्परिक सीहनाद-मूत

२६. चक्रवर्ति सोहनाद-सूत
  २७. अग्रज्ञ-सूत
  २८. ममपसादिय-सूत
  २९. पासादिक-सूत
  ३०. लक्षण-सूत
  ३१. सिगलीबाद (या सिगलीबाद)-सूत
  ३२. आटानाटिय-सूत
  ३३. संगीति-सूत
  ३४. इसुत्तर-सूत
- मञ्जिकम्-निकाय में १५२ सूत हैं, जो १५ वर्गों में इस प्रकार विभाजित है—

### मञ्जिकम् निकाय

#### १. मूल-परियाय-वग्म

१. मूलपरियाय-सूत
२. मन्त्रासव-सूत
३. घम्मदायाद-सूत
४. भयभेद-सूत
५. अर्तगण-सूत
६. आचरण्य-सूत
७. वत्वृगम-सूत
८. सल्लेख-सूत
९. सम्मादित्थ-सूत
१०. सतिपद्धाम-सूत

#### २. सीहनाद-वग्म

११. चूलमीहनाद-सूत
१२. महासीहनाद-सूत
१३. महातुक्त्वात्क्त्वन्ध-सूत
१४. चूलदुष्कृत्ववस्थन्ध-सूत
१५. अनुमान-सूत
१६. चेतोखिल-सूत

१७. वनपत्त्व-सूत
१८. मवुपिष्ठिक-सूत
१९. देवावितलक-सूत
२०. वितलकसंयान-सूत

## ३. ओपम्म-वग

२१. ककचूपम-सूत
२२. अलगहूपम-सूत
२३. वस्मिक-सूत
२४. रथविनीत-सूत
२५. निवाप-सूत
२६. अरियपरियेसन-सूत
२७. चूलहत्तिपदोपम-सूत
२८. महाहत्तिपदोपम-सूत
२९. महासारोपम-सूत
३०. चूलसारोपम-सूत

## ४. महायमक-वग

३१. चूलगोसिग-सूत
३२. महागोसिग-सूत
३३. महागोपालक-सूत
३४. चूलगोपालक-सूत
३५. चूलसच्चक-सूत
३६. महासच्चक-सूत
३७. चूलवण्हासख्य-सूत
३८. महातण्हासख्य-सूत
३९. महा-ब्रस्पत्र-सूत
४०. चूळ-ब्रस्पत्र-सूत

## ५. चूलयमक-वग

४१. सालेश्वक-सूत
४२. वेरमज्जक-सूत

४३. महावेदलङ्घनुत  
 ४४. चूलवेदलङ्घनुत  
 ४५. चूल-व्रम्मसमादान-नुत  
 ४६. महा-प्रम्मसमादान-नुत  
 ४७. वीरसंक-नुत  
 ४८. कोसमिववनुत  
 ४९. वहनिमंतणिक-नुत  
 ५०. मारतज्जनिय-नुत

## ६. गहणति-वग्मा

५१. कन्द्रक-नुत  
 ५२. वट्ठकनामार-नुत  
 ५३. सेत-नुत  
 ५४. पोतलिय-नुत  
 ५५. वीक्षक-नुत  
 ५६. उपादि-नुत  
 ५७. कुलमुखर्वतिक-नुत  
 ५८. अभयराजकुमार-नुत  
 ५९. वहवेदनीष्म-नुत  
 ६०. अपण्णक-नुत

## ७. चित्तवृ-वग्मा

६१. वस्त्रलद्विकाराहुलोवाद-नुत  
 ६२. महाराहुलोवाद-नुत  
 ६३. चूलमालुक्य-नुत  
 ६४. महामालुक्य-नुत  
 ६५. भद्राजि-नुत  
 ६६. लद्विकोष्म-नुत  
 ६७. चातुर-नुत  
 ६८. तलकामानक-नुत  
 ६९. गृलिस्सानि-नुत

३०. कोटागिरि-नूत

८ वरिष्ठाजक-वग्ग

३१. निविजजवच्छगोल-नूत
३२. जग्मिवच्छगोल-नूत
३३. महावच्छगोल-नूत
३४. दीधनव-नूत
३५. मागादिय-नूत
३६. समदक-नूत
३७. महायकुलदायि-नूत
३८. समणमणिका-नूत
३९. चूलसकुलदायि-नूत
४०. वेवतसरा-नूत

९ राज-वग्ग

४१. पटोकार-नूत
४२. रहयाल-नूत
४३. भवादिव-नूत
४४. यवुर-नूत
४५. बोधिराजकुमार-नूत
४६. अगुलिमाल-नूत
४७. पिप्रातिक-नूत
४८. बाहितिक-नूत
४९. घम्मचतिय-नूत
५०. कण्णकत्वल-नूत

१० ब्राह्मण-वग्ग

११. ब्रह्माय-नूत
१२. लेल-नूत
१३. अस्मलाशयन-नूत
१४. बोदभुव-नूत

१५. चक्षी-सुत  
 १६. एमुकारिन-सुत  
 १७. वानजानि-सुत  
 १८. वासद्वन-सुत  
 १९. सुभ-सुत  
 २०. संगारव-सुत

## ११. देवदह-वग्ग

२०१. देवदह-सुत  
 २०२. पञ्चतय-सुत  
 २०३. किन्ति-सुत  
 २०४. सामगाम-सुत  
 २०५. सुतक्षत-सुत  
 २०६. ऋणञ्जसप्पाय-सुत  
 २०७. यणक-मोगल्लान-सुत  
 २०८. गोपक-मोगल्लान-सुत  
 २०९. महापुण्णम-सुत  
 २१०. चूलपुण्णम-सुत

## १२. अनुपद-वग्ग

२११. अनुपद-सुत  
 २१२. छञ्जिलोधन-सुत  
 २१३. सप्तुरिस-सुत  
 २१४. सेवितब्ब-असेवितब्ब-सुत  
 २१५. बहुधातुक-सुत  
 २१६. इसिमिलि-सुत  
 २१७. महाचत्तारीसक-सुत  
 २१८. आनापानसति-सुत  
 २१९. कायगतासति-सुत  
 २२०. सखाक्षयति-सुत

## १३. सुञ्जाता-वग्ग

२२१. चूल-सुञ्जाता-सुत

१२२. महा-सूक्ष्मता-सूत  
 १२३. अच्छरियव्यभूत-धर्म-सूत  
 १२४. वचकुल-सूत  
 १२५. दन्तभूमि-सूत  
 १२६. भूमिज-सूत  
 १२७. अनुष्ठान-सूत  
 १२८. उपाधिकलेश-सूत  
 १२९. बाल-वैदित-सूत  
 १३०. देवदूत-सूत

## १४. विभंग-वग्म

१३१. भद्रकरत्त-सूत  
 १३२. आतन्द-भद्रकरत्त-सूत  
 १३३. महाकच्चवान-भद्रकरत्त-सूत  
 १३४. लोमसकार्णिय-भद्रकरत्त-सूत  
 १३५. चूलकम्मविभंग-सूत  
 १३६. महाकम्मविभंग-सूत  
 १३७. सलायतन विभंग-सूत  
 १३८. उहसविभंग-सूत  
 १३९. अरणविभंग-सूत  
 १४०. घानुविभंग-सूत  
 १४१. मच्चविभंग-सूत  
 १४२. दक्षिणाविभंग-सूत

## १५. सलायतन-वग्म

१४३. अनावगिण्डिकोवाद-सूत  
 १४४. छन्नोवाद-सूत  
 १४५. पुण्णोवाद-सूत  
 १४६. नन्दकोवाद-सूत  
 १४७. चूल-राहुलोवाद-सूत  
 १४८. छछका-सूत

१४९. महासङ्घातनिकन्सूत  
१५०. नगरविनदेव्य-सूत  
१५१. पिण्डपातपारिसुद्धि-सूत  
१५२. हन्द्रियभावना-सूत

संयुत-निकाय में कुल ५६ संयुत हैं, जो ५ बगों में इस प्रकार विभाजित हैं।

### संयुत-निकाय

#### (१) सगाथ-बग, जिसमें ११ संयुक्त हैं।

१. देवता-संयुत
२. देवपुत्र-संयुत
३. कोसल-संयुत
४. मार-संयुत
५. भिक्खुणी-संयुत
६. ब्रह्म-संयुत
७. ब्राह्मण-संयुत
८. वंशोस-संयुत
९. वन-संयुत
१०. यज्ञव-संयुत
११. सक्कर-संयुत

#### (२) निवान-बग, जिसमें १० संयुक्त हैं।

१. निवान-संयुत
२. अभिसमय-संयुत
३. धातु-संयुत
४. जनमतभग-संयुत
५. कस्सप-संयुत
६. लाभ-सक्कार-संयुत
७. राहुल-संयुत
८. लक्खण-संयुत
९. ओपम्म-संयुत
१०. भिक्खु-संयुत

## ( ३ ) खन्ध-वगा, जिसमें १३ संयुक्त हैं ।

१. खन्ध-संयुक्त
२. राव-संयुक्त
३. विद्युत-संयुक्त
४. ओक्कन्तिक-संयुक्त
५. उषाद-संयुक्त
६. किलेस-संयुक्त
७. सारिषुत्त-संयुक्त
८. नाग-संयुक्त
९. सुपण्ण-संयुक्त
१०. गन्धव्यक्ताद्य-संयुक्त
११. वलाह-संयुक्त
१२. वच्छगोत्त-संयुक्त
१३. भान-संयुक्त

## ( ४ ) सलायतन-वगा, जिसमें १० संयुक्त हैं ।

१. सळ्ठायतन-संयुक्त
२. वेदना-संयुक्त
३. मातुगाम-संयुक्त
४. जन्मबुखादक-संयुक्त
५. सामर्थ्यक-संयुक्त
६. मोगलान-संयुक्त
७. चित्त-संयुक्त
८. गामणि-संयुक्त
९. असंखत-संयुक्त
१०. अव्याकृत-संयुक्त

## ( ५ ) महावगा, जिसमें १२ संयुक्त हैं ।

१. मेग-संयुक्त
२. बोक्कंग-संयुक्त
३. सतिपट्टान-संयुक्त

४. इन्द्रिय-संयुक्त
५. सम्माण-संयुक्त
६. वल-संयुक्त
७. इद्धिगात-संयुक्त
८. वनुषद-संयुक्त
९. भान-संयुक्त
१०. जानापाण-संयुक्त
११. सोतापत्ति-संयुक्त
१२. सच्च-संयुक्त

अंगुलर-निकाय का विभाजन विलकुल संख्यावद है। एक एक, दो-दो, तीन-तीन, इस प्रकार कमानुसार गयारह तक उतनी ही उतनी संख्या से सम्बन्ध रखने वाले दृढ़-उपदेशों का संघर्ष है। इस प्रकार यह महाप्रबन्ध ११ निपातों (समूहों) में विभक्त है—

१. एक-निपात
२. दुक्त-निपात
३. तिक-निपात
४. चतुरक्त-निपात
५. पंचक्त-निपात
६. छक्त-निपात
७. सप्तक्त-निपात
८. अष्टक्त-निपात
९. नवक्त-निपात
१०. दसक्त-निपात
११. एकादशक्त-निपात

दृढ़क-निकाय में स्वतन्त्र १५ चर्च हैं, जो इस प्रकार हैं—

१. दृढ़क-गाठ
२. घम्मापद
३. उदान
४. इतिवृत्तक
५. मुत्तनिपात

६. विभाजन-वर्त्य
७. प्रेत-वर्त्य
८. थेर-नाथा
९. थेरो-नाथा
१०. जातक
११. निहेस
१२. पटिसम्मदामग
१३. अपदान
१४. बुद्धवंस
१५. चरियापिटक

पालि साहित्य अपने वर्गीकरण के लिये प्रसिद्ध है। बुद्ध-वचनों के विपिटक और उसके उपर्युक्त उपविभागों के अतिरिक्त अन्य भी विभाजन किये गये हैं। इस प्रकार सभूण बुद्ध-वचनों को पाँच निकायों में बांटा गया है। यहाँ चार निकाय तो सूत्त-पिटक के प्रथम चार निकायों के समान ही हैं, किन्तु पंचम निकाय (स्तुद्धक-निकाय) में स्वभावतः ही उसके पन्द्रह पर्यायों के अलावा विनाय-पिटक और अभिधम्म पिटक के सारे अन्य भी सम्मिलित कर लिये गये हैं।<sup>१</sup> कहने की आवश्यकता नहीं कि यह वर्गीकरण प्रथम के समान स्वाभाविक नहीं है। बुद्ध-वचनों का एक और वर्गीकरण नौ अंगों के रूप में किया गया है,<sup>२</sup> जिनके नाम हैं, सूत्त, मेष्य, विव्याकरण, गावा, उदान, इतिवृत्तक, जातक, अभ्युत्थम्म और वेदलङ्घ। सूत्त (सूत्र) का अर्थ है सामान्यतः बुद्ध-उपदेश। दीप-निकाय, सूत्त-निगात जाति में गद्य में रखे हुए भगवान् बुद्ध के उपदेश 'सूत' हैं। गद्य-पदा-मिथित अंश में यह (गाने योग्य) कहलाते हैं। 'विव्याकरण' (व्याकरण, विवरण, विवेचन) वह व्याकरणापरक साहित्य है जो अभिधम्म पिटक तथा अन्य ऐसे ही अंगों में सञ्चित

१. देखिये आगे पाँचवे अध्याय में अभिधम्म-पिटक का विवेचन।

२. नौ अंगों एवं अधिकतर १२ धर्म-प्रवचनों के रूप में बुद्ध-वचनों का विभाजन महायान बौद्ध धर्म के संस्कृत-साहित्य में भी पाया जाता है, देखिये सद्धर्मपुंडरीक २१४८ (सेकेड बुक्स ऑफ दि ईस्ट, जिल्ड २१, पृष्ठ ४५); महाकल्पा पुंडरीक, पृष्ठ ३३ (भूमिका) (सेकेड बुक्स ऑफ दि ईस्ट, जिल्ड दस, भाग प्रथम में)

है। तिकं पश्य म रचित अंग 'गाया' (पालि-दलोक) कहलाते हैं। 'उदान' का अर्थ है बुद्ध-मुख से निकले तुए भावमय श्रीति-उद्गार। 'इतिवृत्तक' का अर्थ है 'ऐसा कहा गया' या 'ऐसा तथागत ने कहा'। 'जातक' का अर्थ है। (बुद्ध के पूर्व) जन्म सम्बन्धी कथाएँ। 'अद्भुत घम्म' (अद्भुत घम्म) वे सूत हैं जो अद्भुत वस्तुओं या पोग-सम्बन्धी विभूतियों का निष्पत्ति करते हैं। 'वेदल्ल' का शास्त्रिक अर्थ है वेद-निखित या ज्ञान पर आधारित। 'वेदल्ल' वे उपदेश हैं जो प्रस्तुत और उत्तर के रूप में लिखे गये हैं।<sup>१</sup> बुद्ध-वचनों का यह नी प्रकार का विभाजन विषय-स्वरूप की दृष्टि से ही है, यद्यों की दृष्टि से नहीं। अतः कहा जा सकता है कि यह केवल औपचारिक ही है और व्यावहारिक उपयोग में प्रायः नहीं आता। बुद्ध-वचनों का एक और वर्गीकरण ८५००० घम स्कन्धों के रूप में है। किन्तु यह भी बोडों की विस्तैतान-प्रियता का ही एक उदाहरण है। प्रयोग में यह भी अक्षर नहीं आता। साधारणतः हम विपिटक और उसके उप-विभागों के रूप में ही बुद्ध-वचनों का अध्ययन करते हैं।

यह कहना कुछ आश्चर्यजनक भले ही जान पड़े किन्तु ऐतिहासिक रूप से यह सत्य है कि बुद्ध-वचनों के उपर्युक्त नारों प्रकार के वर्गीकरणों का निश्चय विपिटक के अन्तिम रूप से प्रथम यताव्यादी ईस्वी पूर्व में वे लेखबद्ध होने से बहुत पहले ही हो चुका था। तीनों पिटकों का निर्देश स्वयं विपिटक में ही मिलता है, यह हम इस आध्याय के प्रारम्भ में ही कह आये हैं। अशोक के शिलालेखों ने यह बात अन्तिम रूप से प्रमाणित कर दी है कि तीसरी यताव्यादी ईस्वी पूर्व से भी पहले बुद्ध-वचनों का कुछ उसी प्रकार का वर्गीकरण प्रचलित था जैसा कि वह आज पालि विपिटक में मिलता है। अशोक के शिलालेखों का पालि-साहित्य के विकास के सम्बन्ध में क्या साक्ष है, इसका विस्तृत विवेचन तो हम दूसरे अध्याय में पालि के अभिलेख-साहित्य का विवरण देते समय करेंगे। यहाँ इतना कहना पर्याप्त है कि अशोक के भाषु शिलालेख में राहुलोवाद (लाधुलो-वाद) सूत आदि शीर्षकों से यही निश्चित होता है कि तीसरी यताव्यादी १० पू.

१. पथा भविभास-निकाय के चूल-वेदल्ल-सूत्तन्त और महावेदल्ल-सूत्तन्त। इनमें परिप्रेक्षात्मक शैली का व्यवहार किया गया है। सम्भवतः इसी-लिये 'वेदल्ल' शब्द का अर्थ इस प्रकार की शैली में लिखे गये उपदेश किया गया है।

में त्रिपिटक प्राप्तः अपने उसी वर्गीकरण और नामकरण के साथ विभाजन या जैसा बहु जाज है। कम से कम त्रिपिटक के प्राचीनतम अंशों (सूत-पिटक और विश्व-पिटक) के विषय में तो ऐसा कहा ही जा सकता है। अंशों के बाद सारी और भारहुत (वीसरी या दूसरी शताब्दी ई० पू०) के स्तूपों के लेखों का साहम भी यही है। इन लेखों में 'पञ्चनेकायिक' (पाँच निकायों का जाता) भाषणक (पाठ करने वाला) सूतनिक (सूत-पिटक का जाता) पेटकी (पिटकों का जाता) आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है और जातक के कुछ दृश्य भी दिखाये गये हैं, जिनमें विद्वानों ने ठीक ही यह निष्कर्ष निकाला है कि बृद्ध-बचनों का तीन पिटकों और पाँच निकायों में आज का सा विभाजन इन अभिलेखों के युग से पहले ही निश्चित हो चुका था।<sup>१</sup> भाषणकों और निकायों एवं त्रिपिटक के उपर्युक्त विभाजन की जो परम्परा अद्योतक के काल से बहुत पहले से चली थी रही थी, उसके बाद भी अबाध गति से चलती रही। सारी के लेखों के अलावा मिलिन्द प्रदन<sup>२</sup> (प्रथम शताब्दी ईस्वी पूर्व) और बाद से बृद्धघोष की अर्थकथाओं<sup>३</sup>, दीपवंस,<sup>४</sup> महावंस<sup>५</sup> आदि में उसके पूर्ण साक्ष्य मिलते हैं। बृद्ध-बचनों का नो अंगों में विभाजन स्वयं त्रिपिटक की भी जात है<sup>६</sup> और बाद में न केवल मिलिन्द प्रदन,<sup>७</sup> अपितु बृद्धघोष

१. रायस डेविड्स: ब्रुडिस्ट ईंडिया, पृष्ठ १६७; बूहलर: एपीसेकका ईंडिका, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ९३;
२. तेपिटकं बृद्धबचनं, पृष्ठ ११; तेपिटका भिक्षु पञ्चनेकायिका पि च, चतुर्नेकायिका चेव, पृष्ठ २३ (बम्बई विश्वविद्यालय का संस्करण)
३. धर्मपद्धतिकथा जिल्द यहली, पृष्ठ १२९ (पालि टैक्सट सोसायटी का संस्करण) देखिये विन्टरनित्य; ईंडियन लिटरेचर, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १७, पद-संकेत ३ भी।
४. १६; १२१८४; १३१७ (जोहन्सनवर्ग का संस्करण)
५. १२१२९; १४१५८; १४१६३; १५१४ (गायगर का संस्करण)
६. अलग्दूपम सूतन्त (मणिभ्रम. ११३१२) अंगुत्तर-निकाय, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ७; १०३; १०८ (पालि टैक्सट सोसायटी का संस्करण)।
७. नवंगजिनसासनं, पृष्ठ २२; नवंगजे बृद्ध-बचने पृष्ठ १६३; । नवंगमन-मञ्जन्ती, पृष्ठ ९३ (बम्बई विश्वविद्यालय का संस्करण)

की अवधिकाराओं<sup>१</sup> गन्धवंस,<sup>२</sup> दीपवंस,<sup>३</sup> आदि में भी उसका उल्लेख हुआ है। इसी प्रकार बृद्ध-वचनों का ८४००० धर्मस्तत्त्वों में विभाजन भी बहुत प्राचीन है। बृद्धघोषने प्रथम संगीत में ही उनका संगायन होता दिखाया गया है<sup>४</sup> और अशोक द्वारा उनके सम्मान में ८४००० विहारों का संवादया जाता (चतुर्शमीति विहारमहस्सानि कागणेनि) भी बौद्ध परम्परा में अति प्रसिद्ध है।<sup>५</sup> ये सभी तथ्य पालिविषिटक के वर्णकरण के माध्य साथ उसके काल-क्रम और प्रामाणिकता पर भी काफी प्रकाश डालते हैं।

जपर पालि-साहित्य के उद्भव और विकास का वर्णन करते हुए यह दिखाया जा चुका है कि किस प्रकार तीन बौद्ध संगीतियों भारत में और बाद में तीन संगीतियाँ लंका में पालि विषिटक के स्वरूप के सम्बन्ध में हुई थीं, जिनमें बृद्ध-वचनों का संगायन किया गया था। डॉ. विमलानन्द लाहा ने इन संगीतियों के जन्मारण पालि विषिटक के विभिन्न ग्रन्थों के काल-क्रम को पांच क्रमिक अवस्थाओं में विभक्त करने का प्रयत्न किया है, जो इस प्रकार हैं—

प्रथम युग (४८३ ई० पू०—३८३ ई० पू०)

द्वितीय युग (३८३ ई० पू०—२६५ ई० पू०)

तृतीय युग (२६५ ई० पू०—२३० ई० पू०)

१. सुमंगलविलासिनी, जिल्द पहली, पृष्ठ २३; अट्ठसालिनी, पृष्ठ २६  
(पालि टंकसृट सोसायटी के संस्करण)

२. पृष्ठ ५५, ५७ (जन्मल और पालि टंकसृट सोसायटी १८८६ में प्रकाशित)

३. ४११५ (ओलटनबर्ग का संस्करण); देखिये महाबंश, पृष्ठ १२ (भद्रन्त आनन्द कौसल्यायन का अनुवाद)

४. समन्तपासादिका, जिल्द पहली, पृष्ठ २९; देखिये बुद्धिस्तिक स्टडीज, पृष्ठ २२२

५. “राजा (अशोक) न स्वविर मोगलिपुत्र तिस्स से पूछा, ‘बृद्ध के विषय गम उपदेश कितने हैं?’ स्वविर ने उत्तर दिया, ‘धर्म के चौरासी हजार स्तकन्ध (विभाग) हैं।’ यह सुनकर राजा ने कहा ‘मे प्रत्येक के लिये विहार बनवाकर उन सब को पूजा करूँगा।’ तदनन्तर राजा ने चौरासी हजार नगरों में..... विहार बनवाने आरम्भ किये।” महाबंश ५०७६-८० (भद्रन्त आनन्द कौसल्यायन का अनुवाद)

ननुवं युग (२३० ई० पू०—८० ई० पू०)

पंचम युग) (८० ई० पू०—२० ई० पू०)

इस प्रकार हम देखते हैं कि त्रिपिटक के जो आचीन से प्राचीन अंश हैं उनके स्वरूप का निश्चय ४८३ ई० पू० अशोत् शास्त्र के परिनिर्वाण के समय ही हो गया था, और जो अवाचीन से अवाचीन भी हैं वे भी २० ई० पू० के बाद के नहीं हैं, क्योंकि उस समय वे लेखदृष्ट ही हो चुके थे, जब से वे उसी रूप में आज तक चले आ रहे हैं। इस प्रकार समण्ठ रूप में त्रिपिटक की रचना की उपर्युक्ती और निचली कोटियों का पूर्ण अनुमान हो जाते पर भी उसके अलग अलग ग्रन्थों के आपेक्षिक काल-पर्याय-क्रम का सवाल अभी रह ही जाता है। इसके लिये न केवल प्रेतिहासिक विवेचन की ही किन्तु अलग अलग ग्रन्थों की विषय-वस्तु के विवेचन की भी वही आवश्यकता है, जिसे हम इस स्थल पर नहीं कर सकते। अतः जब हम आगे के अध्यायों में त्रिपिटक के भिन्न भिन्न ग्रन्थों या अंशों का विवेचन करेंगे तो उस समय उनके काल-पर्याय-क्रम का विवेचन भी हमारे अध्ययन का एक विशेष अंग होगा। ही, इस सम्बन्ध में जो पूर्व अध्ययन हो चुका है उसके परिणामों की यही रख देना बाब्यक होगा। सब से पहले डा० रायस डेविड्स ने त्रिपिटक के काल-पर्याय-क्रम का विवेचन किया था। उन्होंने अपने अध्ययन के परिणाम स्वरूप पालि त्रिपिटक का दुर्दृश्यनिर्वाण-काल से लेकर अशोक के काल तक इन दस काल-पर्यायात्मक अवस्थाओं में विभाजन किया था<sup>१</sup>—

१.—वे बुद्ध-वचन, जो समान शब्दों में हैं त्रिपिटक के प्रायः सबग्रन्थों की गाथाओं आदि में मिलते हैं।

२.—वे बुद्ध वचन, जो समान शब्दों में केवल वो या तीन ग्रन्थों में ही मिलते हैं।

३.—शील, पारायण, अद्वृक्तव्रग, पालिमीलस्त्र।

४.—दीप, मञ्जिभम, अंगुलर और संयुक्त निकाय।

५.—सुत-निपात, येद-गाथा, परो-गाथा, उदात, खुदक-गाठ।

६.—सुत-विभंग, सत्यक।

७.—जातक, वस्मयद।

१. हिस्टोरी ऑफ पालि लिटरेचर, जिल्ड पहली, पृष्ठ १२-१३

२. बुद्धिस्ट इंडिया, पृष्ठ १८८

- ८—निहेस, इतिवृत्तक, पटिसम्भवा ।  
 ९—पेतवत्थु, विमानवत्थु, अपदान, चरियापिटक, बुद्धवंस ।  
 १०—अभिधम्म-पिटक के ग्रन्थ, जिनमें पुग्गलपञ्जाति प्रथम और कथावत्थु अनिम हैं ।
- इस कम का कुछ परिवर्तन डा० विमलाचरण लाहा ने किया है । उनके मतानुसार त्रिपिटक के ग्रन्थों का काल-क्रम की दृष्टि से यह तारतम्य ठहरता है—  
 १—वे बुद्ध-वचन, जो समान शब्दों में त्रिपिटक के प्रायः सब ग्रन्थों की गाथाओं आदि में मिलते हैं ।  
 २—वे बुद्ध-वचन, जो समान शब्दों में केवल दो या तीन ग्रन्थों में ही मिलते हैं ।  
 ३—शीत, पारायण, अट्टकवग्म, सिक्खापद ।  
 ४—दीप-निकाय (प्रथम स्कन्ध), मध्यभाग-निकाय, संयुक्त-निकाय, अंगूष्ठर-निकाय, पातिमोक्ष जिसमें १५२ नियम हैं ।  
 ५—दीप-निकाय (द्वितीय और तृतीय स्कन्ध) ऐसगाथा, बैरीगाथा, ५०० जातकों का संग्रह, सूत-विभंग, पटिसम्भवामग्न, पुग्गलपञ्जाति, विभंग ६—महावग्म, चुल्लवग्म, पातिमोक्ष (२२७ नियमों का पूर्ण होना), विमान-वत्थु, पेतवत्थु, धर्मपद, कथावत्थु ।  
 ७—चुल्लनिहेस, महानिहेस, उदान, इतिवृत्तक, सूत-निगात, धातुकथा, यमक, पट्ठान ।  
 ८—बुद्धवंस, चरियापिटक, अपदान ।  
 ९—परिवार-गाठ ।  
 १०—बूढ़क-गाठ ।<sup>१</sup>

त्रिपिटक के विभिन्न ग्रन्थों या अशों के काल-क्रम सम्बन्धी उपर्युक्त निष्कर्ष अपर्याप्त ही नहीं स्वेच्छापूर्ण भी है । रायस डेविड्स और लाहा दोनों ही चिन्नानों ने भाषा-सम्बन्धी विकास को जाधार मान कर, जिसका साध्य अभी स्वतः प्रमाण नहीं माना जा सकता, अग्रना काल-क्रम स्वापित किया है । बास्तव में त्रिपिटक के ग्रन्थों में पूर्वापरता स्वापित करने के लिये हमें पहले निश्चित करना होगा कि उसके कीन से अंदर मूल प्रामाणिक बुद्ध-वचन हैं और कीन से बाद के परिवर्तन या दोनों के मिश्रित स्वरूप । मूल प्रामाणिक बुद्ध-वचनों में भी हमें बुद्ध के वर्पावासों

१. हिन्दू और गालि लिटरेचर, जिन्द पहली, पृष्ठ ४२

के अनुसार उनके काल-क्रम का तारतम्य निश्चित करना पड़ेगा । वह कार्य उपर्युक्त दो विद्वानों ने नहीं किया है । केवल महापंडित राहुल मांहस्यायन ने 'बुद्ध-वचों' में इस दण पर बुद्ध के कलिपय उपर्येकों का कालक्रमानुसार वर्गीकरण किया है । किन्तु 'बुद्ध-वचों' में सभी मृतों का उद्धरण शाय्य न होने के कारण वह कार्य वही अपर्याप्त है जो नहीं हो सकता है । पालि साहित्य के इतिहासकार के लिये बुद्ध-वचों के काल-क्रम के निश्चय के लिये इससे अच्छा मार्ग दर्शन नहीं मिल सकता । वास्तव में सद्दर्भ के प्रथम संभवकार काल-चिन्तक नहीं नहीं । वे तत्त्व धर्मचिन्तक थे । इसलिये काल-मण्डना के अनुसार उन्होंने मृतों का संबंध नहीं किया है । आज हम बुद्ध के वर्षोंवासों के आधार पर ही यह कार्य कर सकते हैं । मायामाशय से भी कुछ महायता ले सकते हैं, किन्तु अत्यन्त मावधानीपूर्वक । त्रिपिटक के जी अंदर बुद्ध-वचन महीने हैं उनके काल-क्रम का निर्णय वाय्य माशय के आधार पर ही विशेषतः किया जा सकता है । उसमें वर्णित प्रथम उनके काल-क्रम पर अच्छा प्रकाश डालते हैं । इन सब तथ्यों का विवेचन करते हुए हमने त्रिपिटक के विभिन्न घटनों के काल-क्रम का निश्चय करने का प्रयत्न किया है, जो आगे के अध्ययन से स्पष्ट होगा ।

### अनुपिटक-साहित्य का काल-विभाग

त्रिपिटक के काल-वर्षों-क्रम की समस्या को मोटे रूप में समझने के बाद हमें अनुपिटक-साहित्य के भी काल-विभाग की स्पष्टता को समझ लेना आवश्यक है । वह उतनी दुरुहृ या विवादघरस्त नहीं है । उसकी रेखाएँ विलकूल स्पष्ट हैं । जैसा पहले कहा जा चुका है, अनुपिटक साहित्य की रचना त्रिपिटक के गूण हो जाने के बाद से प्रारम्भ हो कर बर्तमान काल तक चली आ रही है । इस इतने तृदीर्घ विकास में भी उसमें इतनी विभिन्नता दिखाई नहीं पड़ती जितनी कि किसी भी साहित्य के सम्बन्ध में हो सकती थी । इसका कारण यह है कि इस साहित्य का केन्द्रीय विन्दु बौद्ध धर्म—स्थविरवाद बौद्ध धर्म—का अध्ययन और विवेचन ही रहा है । फिर भी कालानुक्रम और प्रवृत्तियों के विकास की दृष्टि से इस तृदीर्घ काल के साहित्यिक इतिहास को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है । पहला भाग प्रथम दत्तात्रीय ईस्त्री पूर्व से लेकर तीसी दत्तात्री ईस्त्री तक अवधि बुद्धधर्म के आविर्भाव-काल तक चलता है ।

इस युग में नेतृत्वकरण, पेट्कोपदेश, सूक्तसंग्रह और मिलन्प्रणाली की रचना

हुई, जिनमें मिलिन्दपन्थ सब से अधिक प्रसिद्ध है। इतिहास का प्रसिद्ध ग्रन्थ 'दीपवर्स' भी इसी युग में लिखा गया। चूंकि बुद्धधोष अनुपिटक-साहित्य में सब से बड़ा नाम है और बुद्धधोष ने एक युग-विधायक साहित्य की रचना की, अतः उनके काल के पहले इस दिशा में कितना काम हो चुका था। इसे द्योतित करने के लिये इस युग के साहित्य को 'पूर्व-बुद्धधोष' युगीन साहित्य नाम दिया जा सकता है। अनुपिटक साहित्य के इतिहास का दूसरा युग बुद्धधोष के आविभाव-काल से आरम्भ होता है। बुद्धधोष के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'विसुद्धिमग्न' और उनकी अर्थकथाओं के अतिरिक्त बुद्धदत्त, घम्मपाल जादि की अर्थकथाएँ भी इसी युग में लिखी गईं। पालि ब्रिपिटक पर अर्थकथाओं की रचना इस युग की प्रवान विशेषता है, जिसे प्रेरणा देने वाले जात्यार्थ बुद्धधोष ही हैं। अतः इस युग को 'बुद्धधोष-युग' नाम दिया गया है। इस युग की रचना ५वीं शताब्दी से बारहवीं शताब्दी तक चलती है। विशाल अर्थकथा-साहित्य के अतिरिक्त लंका का प्रसिद्ध इतिहास-ग्रन्थ 'महावर्स' भी इसी युग में रचा गया। व्याकरण के क्षेत्र में कच्चान का व्याकरण और दर्शन एवं मनोविज्ञान के क्षेत्र में अनिश्च वा प्रसिद्ध 'अभिव्यम्लत्यसंगह' भी इसी युग की रचनाएँ हैं। इस युग में जो अर्थ कथा-साहित्य लिखा गया उसी की टीकाएँ-अनु-टीकाएँ बाद की शताब्दियों में लिखी जाती रहीं। यह बारहवीं शताब्दी से लेकर अब तक का सूचीर्थ युग है। प्रायः बुद्धधोष और उनके समकालीन जात्यार्थों के दिक्षार्थ हुए ढंग पर ही और उनके ही ग्रन्थों के उपजीवी स्वरूप साहित्य की रचना इस युग में होती रही है। अतः इस युग को 'बुद्धधोष-युग' की परम्परा अर्थकथा टीकाओं का युग' नाम दिया गया है। बारहवीं शताब्दी में राजा पराक्रमबाहु के समय में लंका में जात्यार्थ बुद्धधोष जादि की अर्थकथाओं पर मगध-भाषा (पालि) में टीकाएँ लिखने का जायोजन धुक किया गया। प्रसिद्ध मिहली भिक्षु सारिपुत्र और उनकी शिष्य-मंडली ने इस दिशा में बारहवीं और तेरहवीं शताब्दी में बड़ा काम किया। मूल 'महावर्स' का 'चूलवर्स' के नाम से आगे परिवर्द्धन भी इसी युग की बढ़ना है। १५वीं शताब्दी से बरमा में बौद्ध साहित्य के अध्ययन की बड़ी प्रगति हुई। बरमी भिक्षुओं के अध्ययन का प्रवान विषय 'अभिधम्म' रहा। इस दिशा में उन्होंने अनेक महस्त्वपूर्ण ग्रन्थ दिये हैं, जिनमें 'अभिधम्मसंगह' का एक लम्बा सहायक साहित्य है। व्याकरण-मस्त्वन्ती अनेक ग्रन्थ भी इस युग में लिखे गये। यह कोई जास्त्यर्थ की बात नहीं है कि ठीक बत्तमान समय तक लंका, बरमा, स्थाम और भारत में अनुपिटक साहित्य की रचना होती

नहीं आ रही है। भारत में हम अभी हाल में परिनिवृत्त पूर्ण आचार्य धर्मसम्बन्ध कोशान्वी के नाम से सूपरिचित है। उन्होंने अनुष्ठित साहित्य को दो महत्वपूर्ण प्रथा दिये हैं, एक 'विसुद्धिमग्नदीपिका' नामक 'विसुद्धि-मग्न' की टीका और दूसरा 'अभिधर्मल्पसंग्रह' पर 'नवनीत टीका'। इस वर्तमान काल में रचित साहित्य में भी यद्यपि बहुत सी बातों को आधुनिक ढंग से रखने का प्रयत्न किया गया है जो बहुत आवश्यक है, किरंभी भी आलोक और प्रामाणिक आधार तो बुद्धांग की रचनाओं से हो किया गया है। अतः बारहवीं शताब्दी से लेकर इस इतने अभिनव साहित्य को भी 'बुद्धोप-युग की परम्परा अथवा टीकाओं का युग' कहना अनुचित नहीं है।

तीसरा अध्याय

## सुन्त-पिटक

पालि-त्रिपिटक कहाँ तक मूल, प्रामाणिक बुद्ध वचन है ?

पालि विपिटक कहाँ तक मूल, प्रामाणिक बुद्ध-वचन है, इस प्रश्न का अंशतः उत्तर पालि-भाषा के स्वरूप पर विचार करते समय (प्रथम अध्याय में) दिया जा चुका है। यदि पालि भागधो भाषा का वहाँ स्वरूप है जिसे मध्य-देश में विचरण करते हुए भगवान् बुद्ध ने प्रयुक्त किया था, तो किर इसमें कोई सन्देह ही नहीं रह जाता कि पालि-त्रिपिटक बुद्ध-वचनों का सर्वाधिक प्रामाणिक रूप है। यदि आरम्भ से ही अनेक प्राचीनीय भाषाओं में बुद्ध-वचन सोख जाते रहे हों तो भी हमारे पालि-भाष्यम् को प्राचीनतम होना ही चाहिये। पालि-विपिटक का किसी दूसरी उपभाषा से अनुवाद हुआ है, जिसी के इस मत का लंडन पहले किया जा चुका है। इसी प्रकार लॉडस के उस मत का भी निराकरण किया जा चुका है जिसके अनुसार प्राचीन अद्वैतागाथी से, जिसके स्वरूप की अवतारणा स्वयं उनकी बुद्धि ने की है, पालि-त्रिपिटक का अनुवाद हुआ है। यह निर्विवाद है कि अशोक के समय अर्थात् तृतीय शताब्दी ईसवी पूर्व पालि-त्रिपिटक का भाषा और शैली की दृष्टि से वही स्वरूप था जो आज है। अशोक के शिलालेखों से यह बात स्पष्ट हो जाती है। उनकी भाषा, उनमें निर्दिष्ट कुछ 'धर्म-पलिगायों' के नाम, सब इसी तर्फ की ओर लकेत करते हैं कि तृतीय शताब्दी ईसवी पूर्व भारतीय जनता बुद्ध-वचनों के नाम से उसी संघर्ष को पहचानती थी और आदरपूर्वक अवण और मनन करती थी, जिसे हम आज पालि-त्रिपिटक के नाम से पुकारते हैं। अन्य की दृष्टि से भी पालि-विपिटक की प्राचीनता असंदिग्ध है। ओल्डमर्गे ने कहा है कि पालि-त्रिपिटक की भाषाओं में प्रयुक्त छन्द बालमीकि-रामायण से अधिक प्राचीन होना चाहिये।

अतः भाषा और वैली के साक्षय के आधार पर पालि-त्रिपिटक बृद्ध-भूत में निःसूत वचनों का प्रामाणिकतम माध्यम ही हो सकता है।

विषय की दृष्टि से भी कोई बात उपर्युक्त साक्षय के विपरीत जाने वाली दिखाई नहीं पड़ती। पालि-त्रिपिटक में छठी और पांचवीं शताब्दी ईसवीं पूर्व के भारतीय जीवन की पूरी झलक मिलती है। गोतम बृद्ध का ऐतिहासिक व्यक्तित्व, उनका मानवीय स्वरूप, वहाँ स्पष्टतम चब्दों में जक्षित मिलता है। इस विषय में उसकी उत्तरकालीन महायान-गत्यों से एक बद्ध-भूत विशेषता है। उत्तरकालीन बौद्ध संस्कृत साहित्य में बृद्ध के लोकोत्तर स्वरूप पर जोर दिया गया है, जो इति-हास की दृष्टि से बाद का निर्माण ही हो सकता है। पालि-त्रिपिटक में मध्य-देश की ही प्रधानता है और उसी में चारिकाएँ, करते हुए शास्त्रों को दिखाया गया है, जब कि महायानी पत्नीों में इसके विपरीत उनका लका-गमन तक दिखा दिया गया है। जो लोकोत्तर तथ्यों पर आश्रित ही हो सकता है। इसके बलावा पालि-त्रिपिटक में यथार्थवाद और विवेकवाद की प्रधानता है जब कि महायानी माहित्य में अतिरेकनाओं और कल्पनाओं से भी बहुत काम लिया गया है। अतः अपेक्षाकृत महत्व की दृष्टि से पालि-त्रिपिटक को ही बृद्ध के जीवन और उगदेशों को समझने का प्राचीनतम और प्रामाणिकतम साधन मानना पड़ता है।

इतिहास की दृष्टि से पालि-त्रिपिटक को ही एक मात्र संस्कार बृद्ध-वचन मानने में सब से बड़ी कठिनाई यह है कि बृद्ध-भूत के विकास की प्रथम शताब्दी में ही उसके अनेक विभाग हो गये थे। अदोक के काल तक ही कम से कम १८ सम्प्रदायों का उल्लेख है<sup>१</sup>। इन सभी सम्प्रदायों के अपने अपने साहित्य थे, जिन्हें के प्रामाणिक बृद्ध-वचन मानते थे। पालि-त्रिपिटक इन्हीं प्राचीन सम्प्रदायों में से एक (स्वविरवाद—येरवाद) की साहित्यिक निधि है। पालि-त्रिपिटक में जिहित बृद्ध-वचन और उनकी अट्ठकवाणे—इतना ही स्वविरवाद बौद्ध धर्म का साहित्यिक

द्वारा सम्पादित दीघ-निकाय, जिल्ड दूसरी, प्रस्तावना, पृष्ठ ८  
(पालि-ट्रैक्सट) सोसायटी द्वारा प्रकाशित।

१. स्वविरवादी पत्न्य 'महावस' में भी बृद्ध का तीन बार लका-गमन दिखाया गया है, जो उतना ही अ-प्रामाणिक है।
२. देखिये आगे पांचवें अध्याय में 'कथावत्त्व' का विवेचन।

आधार है—“सेपिटकसंगहिते साट्कर्व सब्ब भेरवादिति”।<sup>१</sup> बल्य सम्प्रदाय वालों का बहुत-कुछ साहित्य लुप्त हो चुका है। मूल तो प्रायः किसी का भी मिलता ही नहीं। चीजों और तिथियों अनुवादों से ही आज हमें उनकी कुछ जानकारी होती है। जिन सम्प्रदायों के साहित्य का इस प्रकार कुछ परिचय मिलता है उनमें, सर्वास्तिवादी (सब्बलिप्तिवादी) मुख्य है। यह एक प्रभावशाली सम्प्रदाय आ जिसका आविभाव अधोके समय से पहले ही हो चुका था। इस सम्प्रदाय के मूल, विनय और अभिधर्म तीनों पिटक मिलते हैं। किन्तु उनके चीजों अनुवाद ही आज उपलब्ध हैं, मूल रूप में वे संस्कृत में थे, किन्तु आज उनका वह रूप उपलब्ध नहीं। पालि-चिपिटक से इन सर्वास्तिवादी ग्रन्थों की तुलना की गई है, जिसके परिणाम स्वरूप इन दोनों में विषय के सम्बन्ध में मूलभूत समानताएँ पाई गई हैं, केवल विषय-विनायक में कहीं कुछ भोड़ा बहुत अलार पाया जाता है। यह बात सुन्त और विनय पिटक के सम्बन्ध में तो सर्वाश में सत्य है, किन्तु अभिधर्म-पिटक के विषय में दोनों परम्पराओं में ग्रन्थ-संख्या समान (सात) होते हुए भी उनमें से प्रत्येक की विषय-वस्तु की दूसरे की विषय-वस्तु के साथ कोई विशेष समता नहीं है। इस प्रकार—

## स्वविरचाद का सुन्त-पिटक

दीष-निकाय (३४ सूत्र)

मञ्जिभर्म-निकाय

संयुक्त-निकाय

अंगूतर-निकाय

क्षुद्रक-निकाय

## सर्वास्तिवाद का सुन्त-पिटक

दीषगम (३० सूत्र-प्रवानतः बृद्धगत तथा  
२० फा० नैन द्वारा पांचवी  
शताब्दी ३० में अनुवादित)मञ्जिभर्मगम (गीतम संघदेव-द्वारा चीरी  
शताब्दी में अनुवादित)संयुक्तकायम (पांचवी शताब्दी में गुणभद्र  
द्वारा अनुवादित)अंगूतरागम (चीरी शताब्दी में घर्मनन्दि  
द्वारा अनुवादित)

क्षुद्रकायम

पालि-चिपिटक में भी यद्यपि कभी कभी दीष-निकाय आदि के लिये दीषगम आदि शब्दों का प्रयोग होता है, किन्तु प्रवानतः ‘निकाय’ शब्द का ही प्रयोग

१. समन्तपासादिका को बाहिरकथा।

होता है। सर्वांस्तिवादियों के त्रिपिटक में 'आगम' शब्द का ही प्रयोग होता है। इसी का चीनी भाषा में 'बगोन्' हो गया है। सर्वांस्तिवाद में यद्यपि प्रधानता प्रथम चार निकायों की ही है, किन्तु वहाँ पाँचवीं निकाय भी मिलता है। उसका नाम पालि खुदूक-निकाय के अनुसृष्ट ही 'खुद्रकागम' है। पालि खुदूक-निकाय के कितने ग्रन्थ सर्वांस्तिवादी सम्प्रदाय में मिलते हैं, यह निम्नांकित संख्या से विदित होगा।

स्वाधिरवादी लटक-निकाय के पन्थ सर्वास्तिवादी परम्परा में प्राप्त पन्थ

१. खुदक पाठ	
२. धर्मगद	धर्मपदं
३. उदान	उदानं
४. इतिवृत्तक	
५. सूतनिपात	सूतनिपातः
६. विमानवस्तु	विमानवस्तु
७. पेतवत्य्	
८. वेरगाया	
९. वेरी गाया	
१०. जातक	
११. निहेस	
१२. पटिमभिदामग्म	
१३. अपदान	
१४. खुदवंश	खुदवंशम्
१५. चरियापिटक	

दोनों धरम्पराओं के विनय-पिटक का विभाजन इस प्रकार है—

स्थविरवादी विनय-पिटक सर्वास्तिवादी विनय-पिटक

विभंग	{	१. पाराजिका	पाराजिका
		२. पारिचित्य	प्रायदिव्यतिकं
		३. महावंश	अवदानं
तृतीयक	{	४. चुल्लवंश	(जातकं)

## ५. परिवार

पालि अभिव्यम्म-पिटक के ७ प्रन्थों के साथ सर्वास्तिवादी अभिव्यम्म-पिटक के सात प्रन्थों की, जहाँ तक उनके नामों का सम्बन्ध है, पर्याप्त समानता है, किन्तु विषय समान नहीं है। यथा,

स्थविरवादी अभिव्यम्म-पिटक के प्रन्थ सर्वास्तिवादी अभिव्यम्म-पिटक के प्रन्थों के साथ उनके नामों की समानता

१. वस्मसंगणि	वर्मस्कन्धपाद
२. विभंग	विज्ञानकायपाद
३. पुग्गल पञ्चति	प्रज्ञप्तिपाद
४. धातुकाया	धातुकायपाद
५. पद्धान	ज्ञानप्रस्थान
६. यमक	संगीतिपर्यायपाद
७. कलावत्युपकरण	प्रकरणपाद

ऊपर स्थविरवादी और सर्वास्तिवादी सम्प्रदायों के साहित्य की समानताओं का दिस्तर्जन मात्र किया गया है। पालि विपिटक के प्रत्येक पिटक या उसके अंशों का विवेचन करते समय आवश्यकतानुसार हम उनकी तुलना सर्वास्तिवादी पिटक के अंशों के साथ करेंगे। अभी जो कहा जा चुका है उससे इतना स्पष्ट है कि दोनों सम्प्रदायों के सूत्र और विनय-पिटक में काफी समानता है और जो विभिन्नताएँ हैं वे प्रायः उसी प्रकार की हैं जैसी वेद की विभिन्न शाखाओं के पाठों में पाई जाती है। केवल अभिव्यम्म-पिटक की विषय-बस्तु में अन्तर है। अतः स्पष्ट है कि पालि-विपिटक के कम से कम वे अंश जो सर्वास्तिवादी विपिटक से समानता रखते हैं, अर्थात् सूत्र-पिटक और विनय-पिटक के अनेक महसूबपूर्ण अंश, सर्वाय में प्रामाणिक हैं और उनके बुद्ध-वचन होने में कोई सन्देह नहीं हो सकता। इसी अध्ययन से यह भी स्पष्ट है कि पालि-अभिव्यम्म-पिटक की प्रभाग-वत्ता निश्चय ही सूत्र और विनय के बाद की रह जाती है, कम से कम उसके विषय में सन्देह तो दृढ़मूल ही ही जाता है। इस विषय का विस्तृत विवेचन हम पैचवे बड़ाय में अभिव्यम्म-पिटक की समोद्दास करते समय करेंगे। सर्वास्तिवादी और स्थविरवादी परम्पराओं में जिन बातों पर मत-भेद हैं वबबधा उनके साहित्य में जहाँ विभिन्नता है, वहाँ हमें यह सोचना पड़ेगा कि किस का साध्य अधिक प्रभाव-

शाली और मानने योग्य है। हम पहले देख चुके हैं कि स्थविरवादी चिपिटक के स्वहण का अनितम निष्ठय और स्थिरीकरण अशोक के काल में अर्थात् तृतीय शताब्दी ईसवी पूर्व हो चुका था और उसी समय से वह लोक में उसी रूप में सुरक्षित रहा है। कम से कम प्रथम शताब्दी ईसवी पूर्व (बट्टगामणि अभय का समय—मिलिन्डपञ्च का समय भी) के बाद तो उसमें एक अक्षर जा कहीं परिवर्तन-परिवर्द्धन हुआ ही नहीं है। इसके विपरीत सर्वांस्तवादी साहित्य की परिस्थिति बड़ी संकटप्रस्त और असमंजसमय रही है। पहले तो अशोक ने ही स्थविरवादियों के अतिरिक्त सारे बोद्ध सम्प्रदायों के अनुयायियों को मिथ्यावादी समझ कर प्रबच्या-हीन कर दिया।<sup>१</sup> 'फिर रुग्ण राजाओं के काल में उन पर जो आपत्तियों ढाई गईं, उनसे तो अपनी मूल परम्परा से उनका कदाचित् उच्छेद ही हो गया। सम्भवतः यही कारण है कि उनके मूल विशाल साहित्य का, जो संस्कृत में था, आज कोई पता नहीं चलता और वह केवल चीनी अनुवादों में सुरक्षित है। आज पुरातत्व का कोई भी भारतीय विद्यार्थी धार्मिक कट्टरता के परिणामस्वरूप उत्पन्न इस ज्ञान-विलुप्ति के लिए लज्जित हुए, विना नहीं रह सकता। सर्वांस्तवादी सम्प्रदाय की साहित्य-विलुप्ति के बन्ध चाहे जो कारण दिये जा सकें, वह भारतीय संस्कृति की उदारता और धर्म-सहित्यता की एक कट्ट टिप्पणी भी अवश्य है। 'पुध्यमित्र'<sup>२</sup> नाम तक के प्रति चीनी बोद्ध साहित्य में जो महरी अवज्ञा का भाव विद्यमान है, वह इस साहित्य-विलुप्ति से असम्बन्धित नहीं हो सकता। यहाँ कहने का नात्पर्य यही है कि अपनी मूल परम्परा से विच्छिन्न होकर ही सर्वांस्तवाद बोद्ध धर्म चीन और

## १. देखिये महावेद ५।२६८-२७०

२. प्रसिद्ध शुद्ध बौद्धीय राजा, जिसने बोद्धों पर बड़े अस्पाचार किये, जिसके कारण अनेक बोद्धों को देज छोड़ कर बाहर भाग जाना पड़ा। केवल आन्ध्र, सौराष्ट्र, पंजाब, काश्मीर और काश्मीर में बोद्ध धर्म इस समय रह गया। चीनी बोद्ध साहित्य में विना अभिशाप के 'पुध्यमित्र' का नाम नहीं लिया जाता। देखिये बुद्धिस्तक स्टडीज (डा० लाहा द्वारा समाप्तित) पृष्ठ ८२०

अन्य देशों में गया, अतः उसकी प्रामाणिकता स्वविरचाद के सामने कुछ नहीं हा सकती। सर्वास्तिवादी जन्मों के चीजों और तिज्वती अनुवाद भी इसबी सन् के कई सी बर्षे बाद हुए, अतः इस दृष्टि से भी उनमें परिवर्तन-परिवर्द्धन की काफी सम्भावना ही सकती है। फिर बोढ़ धर्म जहाँ जहाँ गया वह अपनी समन्वय-भावना को भी अपने माथ लेता गया और जिन देशों में उसका प्रसार हुआ, उनके लोक-गत विद्वासों का भी उसके अन्दर समावेश होता गया। अतः इस प्रवृत्ति के कारण भी सर्वास्तिवादी सम्प्रदाय के साहित्य में विभिन्नताएँ आ सकती हैं, जिनके मीलिक या उत्तरकालीन परिवर्द्धित होने का निर्णय हम उनके मूल के अभाव में नहीं कर सकते। भाषा के साध्य पर भी हम उसे पालि-माध्यम के साथ मिला कर किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सकते। अतः दोनों के तुलनात्मक भहत्व और प्रामाण्य का अंकन अभी हम अनिश्चित रूप से ही कर सकते हैं। फिर भी जो कुछ तथ्य उपलब्ध है, उनसे यही विदित होता है कि सर्वास्तिवादी माध्यम की अपेक्षा स्वविरचादी माध्यम ने ही बुद्ध-वचनों की अधिक सच्ची और प्रामाणिक अनुरक्षा की है। सर्वास्तिवादियों के अतिरिक्त अन्य बीढ़ सम्प्रदायों के विषय में, जिनकी उत्पत्ति अशोक के काल तक हो चुकी थी और जिनके माथ ही स्वविरचादियों जीवित सम्बन्ध को कल्पता हम कर सकते हैं, हमें महत्वपूर्ण कुछ भी जात नहीं है। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि उनकी भी परम्पराएँ थीं अवश्य, किन्तु आज वे हमारे लिये प्राप्त नहीं हैं। द्वितीय संगीति के अवसर पर ही, जैसा हम पहले देख चुके हैं,<sup>१</sup> महासंगीतिक भिक्षुओं ने सृत और विनय के कुछ अंशों के अतिरिक्त सम्पूर्ण अभिधम्म-पिटक की ही प्रमाणवता स्वीकार नहीं की थी। उन्होंने विनय-पिटक के परिवार और सृत-पिटक के पटिसम्भिदामग्म, निदेस और जातकों के कुछ अंशों को भी प्रामाणिक नहीं माना था। अभिधम्म-पिटक के अस्वीकरण में सर्वास्तिवादी और महासंगीतिक भिक्षु समान ही थे। अतः हमें उसके विषय में गम्भीरतापूर्वक सौचना पड़ेगा कि उसे कहाँ तक बुद्ध-वचन के रूप में प्रामाणिक माना जाय। यही स्थिति जातक, निदेस और पटि-सम्भिदामग्म की भी है। इस सूची को और भी काफी बढ़ाया जा सकता है। उद्ध-हरणतः खेदगाया और पेतवल्यु जैसे चान्दों में ऐसे आन्तरिक साध्य हैं,<sup>२</sup> जिनके

१. दूसरे अध्याय में।

२. वेत्तिये आगे इसी अध्याय में खुदक निकाय का विवेचन

आधार पर उन जीवों को बुद्ध-परिनिवारण से दी जा तीन यतावदी बाद की रुक्न हो माना जा सकता है । अतः यह स्पष्ट है कि पालि-त्रिपिटक की प्रमाणवत्ता का एकाशेन उत्तर नहीं दिया जा सकता । उसके कृतिपय अंश (जैसे महार्पि-लिङ्गाण-सूत, "भग्मत्त्वक्षपवत्तन-सूत जादि, आदि) अत्यन्त प्राचीन हैं और उनमें बुद्ध के प्रत्यक्ष जीवन और उपदेशों की सबोत्तम और सर्वोत्तम सच्ची प्रति-मूर्ति मिलती है, कुछ शास्त्रों के परिनिवारण के ठीक बाद के हैं (जैसे गोपक मोग्न-लक्ष्मान-सूत) और कुछ एक-दो यतावदियों बाद की परम्पराओं को भी अंकि करते हैं, किन्तु ऐसे स्थल बहुत कम हैं । सूत और विनय-पिटक का अधिकांश भाग तो बुद्ध और उनके जीवों के जीवन और उपदेशों तक ही सीमित है । जो अंश बाद के भी हैं, वे भी अशोक के काल तक ही अपना अन्तिम स्वरूप प्राप्त कर लेते हैं । भाषा और वैली एवं पारस्परिक तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर हम पूर्व और परमामी तत्त्वों को अलग अलग कर सकते हैं । उदाहरणतः सूतों का पारस्परिक मिलान कर के हम जान सकते हैं कि किस मौलिक नमूने का आश्रय लेकर किस सूत को किस प्रकार परिवर्णित स्वरूप प्रदान किया गया है । यही हाल विनय के नियमों का है । उनमें परिवर्तन हुआ है । विनय के सभी नियम शास्त्रों के मूख से निकले हुए नहीं हो सकते । कुछ मौलिक आधारों को लेकर वेष की सूचिकरण की गई है और उनको प्रामाणिकता देने के लिये ही बुद्ध-बचन के लिये में प्रत्यापित कर दिया गया जान पड़ता है । अन्यथा मानवीय विचार को इतनी अधिक स्वतन्त्रता देने वाले के द्वारा जीवन की छोटी से छोटी क्रियाओं में विचार व्यापार करना संगत नहीं बैठता । जीवों पर उनके प्रभाव को देखते हुए भी उनकी आवश्यकता प्रतीत नहीं होती । अतः वे बुद्ध-संघों के विकास से सम्बन्धित हैं, यह हम जासानी से जान सकते हैं । बोद्ध संगीतियों के इतिहास ने भी हमें यही बताया है कि उसके स्वरूप का निर्माण और निर्धारण द्वितीय संगीति के समय ही हुआ है जो बुद्ध-परिनिवारण से १०० वर्ष बाद हुई । अतः एक सीमित किन्तु निश्चित अवधि में ही हम पालि-त्रिपिटक (विदेशतः सूत और विनय) को बुद्ध-बचन कह सकते हैं जिसे इँडने के लिये हमें काफी समालोचना-बुद्धि, और साथ ही अद्वा-बुद्धि की भी आवश्यकता है ।

समालोचना-बुद्धि के साथ-साथ अद्वा-बुद्धि की आवश्यकता इसलिये है कि हम भारतीयों को पालि-भाष्यक का परिचय पञ्चिमी विद्वानों ने ही प्रारम्भिक स्तर से कराया है और पञ्चिमी विद्वानों को भारतीय ज्ञान और साहित्य को जानने

की इच्छा उस समय हुई जब वहाँ उच्चीसवी शताब्दी में सन्देहवाद का बोलबाला था। इसमें सन्देह नहीं कि बिना सन्देह के ज्ञान नहीं हो सकता और प्रत्येक ज्ञान के पहले सन्देह होना आवश्यक है। किन्तु सन्देह ही ज्ञान का रूप धारण कर ले, तब ज्ञान का अपलाप है। अधिकांश पाश्चात्य विद्वान् इस स्थिति से शायद ही अपर उठ पाये हैं। उनकी प्रत्येक अभिज्ञा और ज्ञानकारी में सन्देह समाया हुआ है। पालि-स्वाध्याय के प्राथमिक युग में बुद्ध के ऐतिहासिक अस्तित्व तक के सम्बन्ध में उनमें से कई ने (उदाहरणतः फेक, सेना, वार्ष आदि) सन्देह प्रकट किया। त्रिपिटक के वर्णनों में भीड़-बहुत विरोध पाये जाते हैं। इन विरोधों का संप्रह फेक के द्वारा किया गया है। पर उनमें से कई वास्तविक विरोध नहीं भी हैं। अस्तु, जो भी विरोध है उनका कारण क्या है? जैसा पहले दिखाया जा चुका है, बुद्ध-धर्म के प्राथमिक विकास में बुद्ध-वचनों की परम्परा बुद्ध-परिनिर्वाण के बाद कई शताब्दियों तक मौखिक परम्परा में चलती रही। अतः उनके विरोध (बुद्ध-वचनों का संगायन करने वाले भिक्षुओं की) स्मृति-हानि के कारण ही है। उन पर अनावश्यक और देना बुद्ध-वचनों के संरक्षण-प्रकार से ही अपनी अनभिज्ञता दिखाना है। एक ही उपदेश को बुद्ध या उनके किसी शिष्य के मुख से दिया हुआ दिखलाने में या भिन्न भिन्न स्थानों में दिया हुआ दिखलाने में कोई विरोध नहीं है। वह तो ऐतिहासिक रूप से सत्य भी हो सकता था। भगवान् अपनी चारिकाओं में चतुरायं सत्य जैसे प्रमुख उपदेशों को पुनरावृत्ति भिन्न भिन्न स्थानों में करते ही रहे होंगे और फिर उनके शिष्य भी इसी प्रकार करते हुए विचरते होंगे, वह समझना कठिन नहीं है। भिन्न भिन्न स्थानों के भिन्न भिन्न व्यक्तियों द्वारा ही बुद्ध-वचनों का संगायन और संकलन हुआ है, अतः इसमें अस्वाभाविक क्या है? बल्कि यह तो उनके सत्य और ऐतिहासिक रूप से प्रमाण होने का एक प्रबल साक्ष है। कोन सा उपदेश किस स्थान पर दिया गया, किसके प्रति दिया गया, किस अवसर पर दिया गया, इतनी छानबीन के साथ बुद्ध-वचनों को उनके उसी रूप में संरक्षित रखना भिक्षुओं वी महती ऐतिहासिक बृद्धि का साक्ष देता है। निश्चय ही इतने अधिक व्योरों के साथ बुद्ध-वचनों का संरक्षण करने में कुशल भिक्षुओं ने जो दक्षता दिखाई दी, वह उनके समय को देखते हुए आश्चर्यजनक है। इसके लिये हमें उनका कृतज्ञ होना चाहिये। उनके द्वारा वी हुई सूचना पर सन्देह करना ही भाव

ऐतिहासिक प्रणाली नहीं होगी। कम से कम वह मानना पड़ेगा कि वे वर्षभादी ये और भगवान् बुद्ध के वचनों की रक्षा ही उनका प्रधान उद्देश्य था। अतः उनके द्वारा संगृहीत वचनों में मानवीय स्मरण-व्यक्ति की स्वाभाविक अल्पता के कारण कहीं अशुद्धि या अपूर्णता भले ही रह गई हो, किन्तु जो कुछ उन्होंने सुना था उसी का अस्यन्त सावधानी के साथ उन्होंने संगायन किया था, इतना तो हमें मानना ही पड़ेगा। जो उन्होंने संगायन किया था, उसी का संगृहीत रूप आज हमें पालि-विषिटक में मिलता है, यह भी निःसन्देह है ही। सर्वाधि में पालि-विषिटक बुद्ध-वचन है, ऐसी मान्यता तो स्वयं पालि-विषिटक की भी नहीं है। वहाँ स्पष्टतम् कृप से दिखा दिया गया है कि कौन से वचन सम्बुद्ध के हैं, कौन से वचन उनके विषयों के हैं, लब्धवा कौन से वचन अत्यं व्यक्तियों के भी हैं। अतः जब हम पालि-विषिटक को बुद्ध-वचन कहते हैं तो उसका अर्थ यही होता है कि वहाँ बुद्ध-कालीन भारत के देश-काल की पृष्ठभूमि में बुद्ध के जीवन और उपदेशों का सज्जीव और मौलिक चित्र मिलता है और जो बुद्ध-वचन वहाँ बुद्ध-मूर्ति से निःसृत दिखाये गये हैं, वे प्रायः बैठे ही हैं। अशोक उन्हें ऐसा ही मानता था और अशोक बुद्धिवादी व्यक्ति नहीं था, ऐसा हम नहीं कह सकते। जब बुद्ध-परिनिवारण की तीसरी शताब्दी में उल्पन्न होकर अशोक को बुद्ध-वचनों के निश्चित स्वरूप के विषय में पूर्ण सन्तोष हो गया था तो उसकी कई शताब्दियों बाद आने वाले हम, जब काल ने बहुत से पुरावृत्त को और भी ढंक लिया है, अशोक की सम्पत्ति के ही सामीदार क्षणों न बन जाएँ? यहाँ कुछ भय नहीं है। अभी तक हमने संस्कृत के आधार पर बीद्र धर्म का अध्ययन किया है। उसके तात्स्विक दर्शन के विषय में जाहे जो कुछ कहा जाय, बुद्ध के ऐतिहासिक व्यक्तित्व के प्रभावशाली सम्पर्क से तो हम अभी तक प्रायः विचित्र ही रहे हैं। आज, हमने महिन्द (महेन्द्र) के द्वारा मिहल को जो दिया था, सिहल उसका प्रतिदान करने को प्रस्तुत है। उसने बड़े प्रभाव और गीरक से हमारे दान को भूरक्षित रखता है। आज उसकी याती हमारे लिये खुली हुई है। वहाँ हम बुद्ध और उनके पाद-मूल में बैठने वाले विषयों के साथात् दर्शन कर सकते हैं, उनके उपदेश सुन सकते हैं, जिस प्रकार के देश-काल में वे विचरते थे उसका दिग्दर्शन कर सकते हैं। बुद्ध-वचनों की समृतियों के साथ यथापि यहाँ बहुत कुछ और भी अंकित है, और कहीं कहीं कुछ बुद्ध-परिनिवारण के बाद का भी काफी है, किन्तु उन सब का उपयोग बुद्ध-वचनों के लिये ही है जो स्वयं वहाँ अपनी पूर्ण विभूति और मौलिक गीरक में उपस्थित है। पालि-विषिटक के इस

मीरवमय अंश के कारण ही हम उसके सारे रूप को भी 'बुद्ध-वचन' कहते हैं, जो यथापि अक्षरः सत्य नहीं, किन्तु सत्य की महिमा और अनुभूति से व्याप्त अवश्य है।

### सुत्त-पिटक का विषय, शैली और महत्त्व

पालि-त्रिपिटक का सब से अधिक महत्वपूर्ण भाग सुत्त-पिटक ही है। बुद्ध के धर्म का वाचात्मक रूप में परिचय करना ही सुत्त-पिटक का एक मात्र विषय है। हम जानते हैं कि बुद्ध के परिनिर्वाण तक धर्म और विनय अथवा अधिक शीक कहे तो सामासिक 'धर्म-विनय' की ही प्रधानता थी। उसी की शरण में शास्त्र ने भिक्षुओं को छोड़ा था। 'बुद्ध-परिनिर्वाण' के बाद उसके शिष्यों ने बुद्ध-वचनों के नाम से जिसका संगमन किया वह धर्म और विनय ही थे। "धर्मं च विनयं च संगमयेष्याम"। अतः पालि-त्रिपिटक में अधिक महत्वपूर्ण तो धर्म और विनय ही हैं। इनमें भी संघ-अनुशासन की दृष्टि से विनय मुख्य है, किन्तु साहित्य और इतिहास की दृष्टि से सुत्त-पिटक का ही महत्त्व अधिक मानना पड़ेगा। पालि-साहित्य के मुख्य विवेचकों ने विनय-पिटक को ही अपने अध्ययन के लिये पहले चुना है।<sup>१</sup> यह भिक्षु-संघ की परम्परा के सर्वेषां अनुकूल है। किन्तु हम यहाँ सुत्त-पिटक के विवेचन को पहले ले रहे हैं। इसका कारण उसका साहित्यिक, ऐतिहासिक और अन्य सभी दृष्टियों से प्रभूत महत्त्व ही है। जिन पाठ्वात्य विद्वानों ने पालि-त्रिपिटक की प्रामाणिकता में सन्देह किया है, उनमें मिनयोफ, बाथ, स्मिथ और कीथ के नाम अधिक प्रसिद्ध हैं।<sup>२</sup> इनमें भी मिनयोक सब से अधिक उपर है। उन्होंने दीप और मञ्जिम जैसे

१. "आनन्द! मैंने जो धर्म और विनय उपदेश किये हैं, प्रकाप्त किये हैं, वही मेरे बाद तुम्हारे शास्त्रा होंगे" महापरिनिवाळ-सुत्त (वीथ-२।३)

२. गायगर, विटरनिस्त, और लाहा ने विनय-पिटक को ही पहले लिया है। पूर्ण भद्रन्त आनन्द जी के आदेशानुसार मैंने यहाँ सुत्त-पिटक को पहले लिया है, जो साहित्यिक दृष्टि से अधिक समुचित भी है।

३. इनके घन्व-संकेतों के लिये देखिये विटरनिस्तः हिस्ट्री अथ इन्हि एन लिटरेचर, जित्व दूसरी, पृष्ठ १, पद्म-संकेत १; गायगरः पालि लिटरेचर एण्ड सॉम्वेज, पृष्ठ १, पद्म-संकेत २

निकायों को भी एक-एक रचयिता की रचना बता कर उनके चुद-वामत्व और बौद संगीतियों की सारी परम्परा को एक माथ ही फूक मार कर उड़ाने की कोशिश की थी। किन्तु इतने राज्येहवाद तक यूरोपीय विद्वान् भी अपने को नैयार नहीं थे। अतः उनमें से बहुत ने मिनयेफ़ की गलत धारणा का कड़ा प्रतिवाद किया, जिसके फलस्वरूप स्वयं मिनयेफ़ को भी अन्त में अपना भत कुछ हद तक बदलना पड़ा। हमें इन यूरोपीय विद्वानों के मतों या उनके प्रतिवादों के संग्रह करने का यही प्रलोभन नहीं है। हमें केवल यह देखना है कि अन्ततः किन कारणों के आधार पर इन्होंने पालि-त्रिपिटक की प्रामाणिकता में सम्देह किया या और वे कारण किस हद तक उस परिणाम पर पहुँचने में सही या गलत है। ये कारण अपने संगृहीत रूप में इस प्रकार गिनाये जा सकते हैं (१) अशोक के काल के बाद भी त्रिपिटक में संदोधन और परिवर्तन होते रहे (२) अतः पालि-त्रिपिटक में प्राचीन और अबर्वादीन काल की परम्पराएँ मिल नहीं है (३) पालि-त्रिपिटक के वर्णनों में अनेक विरोध हैं, जैसे संयुक्त-निकाय के चुन्द-मुत्त में भगवान् बृद्ध के जीवन-काल में ही उनके प्रधान विषय सारिपुत्र का परिनिर्बाण होना दिखलाया गया है, किन्तु दीघ-निकाय के महापरिनिव्याण-मूल में भगवान् के मला-परिनिर्बाण के ठीक गहले वे उनके विषय में उद्गार करते दिखाये गये हैं। परिवहला वर्णन ठीक है तो दूसरे अवसर पर सारिपुत्र जीवित नहीं हो सकते थे। अतः दोनों वर्णनों में स्पष्ट विरोध है। (४) एक जगह जो उपदेश बृद्ध-मूल में दिलवाया गया है, वही उपदेश दूसरी जगह उनके विस्तीर्णीय के मूल से दिलवा दिया गया है। अथवा एक जगह जिस उपदेश को किसी एक ग्राम, नगर या आवास में दिया गया दिलाया गया है, दूसरी जगह उसी उपदेश को किसी दूसरे ग्राम, नगर या आवास में दिया हुआ दिलवा दिया गया है। इस प्रकार त्रिपिटक के वर्णनों में सामंजस्य का अभाव दिलाया गया है। जहाँ तक प्रथम आपत्ति का प्रदन है वह सर्वेषा निरावार है। मूल रूप से त्रिपिटक के स्वरूप में अशोक के काल के बाद कोई परिवर्तन-परिवर्तन नहीं हुआ है, इस पर हम भावा और इतिहास आदि के साथ से इतना जोर दे चुके हैं कि इस सम्बन्ध में अधिक निश्चय करने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। भगवान् और उनके साथी भित्तु जिस रूप में त्रिपिटक को लंका में ले गये उनको उसी रूप में सरदिल रखना बही के भिन्न-संघ ने सदा अपना कर्तव्य और गोरख माना है। लंका के देश काल का गोड़ा सा भी प्रभाव त्रिपिटक पर उपलब्धित नहीं है, यह एक विस्मयकारी बस्तु है। परिवहला

बहुत परिवर्तन कही हुए भी हो तो वे इतने महत्वपूर्ण कठोर नहीं कहे जा सकते थे। उसके प्राचीन रूप को ही पहले। पालि-विपिटक में अशोक से पहले की परम्पराओं का तारतम्य तो ही सकता है, किन्तु उसके बाद की परम्पराओं का भी उसके बन्दर समावेश हो, यह तो पहले आदेष का निराकरण हो जाने के बाद ही नहीं माना जा सकता। तृतीय संगीति के समय ही हमें पालि-विपिटक के स्वरूप को अन्तिम रूप से तिदिवत और पूर्ण समझ लेना चाहिये, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। अस्तु, सुत-पिटक में भगवान् के उपदेश निहित हैं। 'सुत-पिटक' शब्द का क्या अर्थ है, यह भी हमें यही समझ लेना चाहिये। सुत का अर्थ है सूत या धारा और पिटक का अर्थ है पिटारी<sup>१</sup> या परम्परा<sup>२</sup>। चूंकि पिटारी का प्रयोग लिखित ग्रन्थों को रखने के लिये ही हो सकता है और बुद्ध-वचन ईसवी पूर्व प्रथम शताब्दी से पहले लिखे नहीं गये थे, अतः इस समय से पहले उनके लिये 'पिटारी' शब्द का प्रयोग उपयुक्त नहीं हो सकता था।<sup>३</sup> मौलिक रूप में इस अर्थ में बुद्ध-वचनों के विशिष्ट ग्रन्थों के लिये 'पिटक' शब्द का प्रयोग नहीं हो सकता था। पूर्वकाल में लाक्षणिक अर्थ में 'पिटक' शब्द का प्रयोग परम्परा के लिये होता था। जैसे पिटारी में रखाकर कोई वस्तु एक हाथ से दूसरे हाथ में पहुँचाई जाती है, उसी प्रकार पहले धार्मिक सम्प्रदाय अपने विचार और सिद्धान्तों को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचाया करते थे। मजिमम-निकाय के चकिनूतन (मजिमम-२१५।५) में वैदिक परम्परा के लिये इसी अर्थ में 'पिटक-सम्प्रदाय' शब्द का प्रयोग हुआ है। यही 'पिटक' शब्द का अर्थ महापैठित राहुल सांकृत्यायन ने वेद की 'परम्परा' या 'वचन-समूह' किया है। अतः 'सुत-पिटक' शब्द का अर्थ, इस लाक्षणिक प्रयोग के बनासार होगा, जोगे रूपी (बुद्ध-वचनों की) परम्परा। जिस प्रकार सूत के बोने को फौफ देने पर वह बूलता हूआ चला जाता है, उसी प्रकार बुद्ध-वचन सुत-पिटक में प्रकाशित होते हैं।

१. वैलिये बुद्धिस्तक स्टडीज (ठा० लाहा द्वारा सम्पादित) पृष्ठ ८४६

२. श्रीमती रायस डेविड्स: शास्त्र और बुद्धिस्त औरीजिम्स, परिशिष्ट १, पृष्ठ ४३१; प्रो० टी० डबल्यू रायस डेविड्स: सेक्रेट बुक्स आ०व दि ईस्ट, जिल्ड ३५, पृष्ठ २८ का पद-संकेत; जर्मन आ०व पालि टेक्स्ट सोसायटी, १९०८, पृष्ठ ११४

३. मिलाइये कीथ: बुद्धिस्त फिलांसफी, पृष्ठ २४, पद-संकेत २

अतः उसको 'सूत-पिटक' संबंध मार्यक ही है। पालि 'मूल' का संस्कृत अनुरूप 'सूत्र' है। वैदिक साहित्य की परम्परा में 'सूत्र' शब्द से तात्पर्य ऐसे स्वल्पाक्षर कथन से होता है जिसमें सूत्र के घागे की तरह महान् अर्थ की परम्परा निकलती चली जाए। इस प्रकार के मूल-साहित्य का उद्भवावन वैदिक साहित्य के विकास के अन्तिम युग की घटना है, जब कि बड़ते हुए विशाल वैदिक वाङ्मय को संक्षिप्त रूपदेने की आवश्यकता प्रतीत हुई। परिणामतः प्रत्येक ज्ञात-गात्मापर सूत्र-साहित्य को रचना हुई। श्रीत-सूत्र, गृह्य-सूत्र, घर्म-सूत्र, व्याकरण-सूत्र, नाट्य-सूत्र, अल्प-कारण-सूत्र, न्याय-सूत्र, वैशेषिक-सूत्र, मार्कण्ड-सूत्र, योग-सूत्र, मीमांसा-सूत्र, ऋग-सूत्र आदि इस विशाल सूत्र-साहित्य के कुछ उदाहरण हैं। संस्कृत का सूत्र-साहित्य विश्व-साहित्य के इतिहास में निश्चय ही एक विस्मयकारी वस्तु है। शब्द-संघोष किस हृद तक जा सकता है, यह उसमें देखा जा सकता है। संस्कृत-भाषा की अपूर्व शक्ति वहाँ दृष्टिगोचर होती है। 'सूत्र' की परिभाषा संस्कृत-साहित्य में इस प्रकार की मर्दि है 'मूत्रज्ञ पुरुष, उस स्वल्पाक्षर कथन को, जो असंदिग्ध, महत्वपूर्ण अर्थ का प्रस्त्वापक, विश्वज्ञानी उपयोग वाला और विस्तार और व्याकरण की जश्नदि से रहित हो, सूत्र कहते हैं।'" पालि के 'मूल' इस अर्थ में सूत्र कसी नहीं कहे जा सकते। वे विस्तार में काफी लम्बे हैं। कुछ तो छोटी छोटी पुस्तकों के समान ही हैं। उनके पुनरावृत्तिमय विस्तारों को देखकर कौन उन्हें 'सूत्र' कहेगा? पालि के सूत्रों से भी अधिक लम्बे महायानी संस्कृत साहित्य के सूत्र हैं। वहाँ जिन्हें 'सूत्र' कहा गया है वे तो अनावश्यक विस्तार-पूर्ण सहस्रों पृष्ठों के विशालकाय प्रन्थ हैं। अतः बीड़ और वैदिक परम्परा के इस 'सूत्र' सम्बन्धी अर्थ-विभेद को हमें समझ लेना चाहिये।

सूत-पिटक का विषय, जैसा अभी कहा गया, भगवान् बुद्ध के उपदेश ही है। साथ ही भगवान् के कुछ प्रधान शिष्यों के उपदेश भी सूत-पिटक में मन्त्रित हैं, जिनके आधार भी स्वयं बृह-वचन ही हैं। अक्सर ऐसा होता था कि भगवान् द्वारा उपदिष्ट किसी विषय को लेकर भिन्नओं में सलाप हो उठता था। बाद में वे अपने संलाप की नृत्या भगवान् को देते थे। यदि उनको कोई तथ्य स्पष्ट नहीं

१. स्वल्पाक्षरमसंदिग्धं सारवह्निवतोमुत्तमं ।

अस्तोभमनवद्यं च सूत्रं सूत्रविदो विदुः ॥ शब्दकल्पद्रुम

होता या तो भगवान् उसे स्पष्ट करते थे। कभी कभी उनमें से किसी महाप्राच भिक्षु के कथन का अनुमोदन कर भगवान् उसे साधुबाद देते थे। विरोधी सम्प्रदाय बालों के बाय भी भिक्षुओं के इस प्रकार के संलग्न अवसर चला करते थे। उनकी भी सृचना अवसर भिक्षु भगवान् को देते थे। भगवान् या तो उनका अनुमोदन करते थे या उन्हें समझते थे। कभी-कभी (भगवान् के जीवन के अन्तिम काल में) ऐसा होता या कि लम्बे समय तक उपदेश देते देते भगवान् की पीठ पीड़ित हो उठती थी (किन्तु तपस्या के कारण भगवान् को बृद्धावस्था में बातरोग हो गया था)। उस समय उपदेश के बीच में ही भगवान् सारिपुत्र, मौदगल्यायन या आनन्द जैसे किसी शिष्य को उपदेश को पूरा कर देने का आदेश देते थे। बाय में वे इस प्रकार दिये हुए उपदेश का अनुमोदन भी कर देते थे। स्वतन्त्र रूप से भी अनेक भिक्षुओं ने एक दूसरे के प्रति या गृहस्थ शिष्यों के प्रति अनेक उपदेश दिये हैं। इस प्रकार बृद्ध-उपदेशों के साथ साथ उनके शिष्यों के उपदेश भी सुत्त-पिटक में सम्मिलित हैं। भगवान् ने अपने मूल से जो जो उपदेश दिये, अपने जीवन और अनुभवों के विषय में उन्होंने जो जो कहा, जिन जिन व्यक्तियों से उनका या उनके शिष्यों का सम्मान हुआ, जिन जिन प्रवेशों में उन्होंने भगवण किया, संक्षेप में बृहत्त-प्राप्ति से लेकर निर्वाण-प्राप्ति तक के अपने ४५ वर्षों में भगवान् की जी-जी भी जीवन-चर्या रही, उसी का वयावत् चित्र हमें सुत्त-पिटक में मिलता है।

बृद्ध और उनके शिष्यों के उपदेशों के अतिरिक्त हमें आकस्मिक रूप से छढ़ी और पौरबी सताच्छ्वी ईसवी पूर्व के भारत के सामाजिक जीवन का पूरा परिचय भी सुत्त-पिटक में मिलता है। बृद्ध के समकालीन व्यष्टियों, बाह्याणों और परिदानिकों के जीवन और सिद्धान्तों के विवरण, सोतम बृद्ध के विषय में उनके मत और दोनों के पारस्परिक सम्बन्ध, साधारण जनता में प्रचलित उच्चोग और व्यवसाय, मनो-राजन के साधन, कला और विज्ञान, तत्कालीन राजनीतिक परिस्थिति और राजन्य-गण, ब्राह्मणों के धार्मिक सिद्धान्त, जाति-वाद, वर्णवाद, यज्ञवाद, भौगोलिक परिस्थितियाँ यथा ग्राम, निगम, नगर, जनपद आदि के विवरण और उनके जीवन की साधारण अवस्था, नदी, पर्वत आदि के विवरण, साहित्य और ज्ञान की अवस्था, कृषि और वाणिज्य, सामाजिक रीतियाँ, जीवन का नैतिक स्तर, स्त्रियों, दास-दासियों और भूत्यों की अवस्था, आदि के विवरण सुत्त-पिटक में भरे पड़े हैं, जो बृद्ध और उनके शिष्यों के जीवन और उपदेशों के साथ-साथ तत्कालीन

भारतीय सामाजिक और राजनीतिक परिस्थिति आदि का भी अच्छा दिव्यरूप करते हैं।

सुतों के आकार के सम्बन्ध में प्रायः कोई नियम दृष्टिगोचर नहीं होता। उनमें कई बहुत छोटे भी हैं और कई बहुत बड़े भी। इसी प्रकार भाष्य-भव्य या पद्धति-भव्य होने का भी कोई निश्चित नियम नहीं है। कुछ विलकुल मध्य में है और कुछ गच्छ-पद्धति भी, कुछ खोड़े से विलकुल पद्धति में भी है, बीच बीच में कहीं कहीं गद्य के छिटके के साथ<sup>१</sup>। प्रत्येक सूत अपने आप में पूर्ण है और वह बुद्ध-उपदेश या बुद्ध-जीवन सम्बन्धी किसी घटना का पूरा परिचय देता है। प्रायः प्रत्येक सूत के प्रारम्भ में उसकी एक ऐतिहासिक भूमिका रहती है। वह भूमिका हमें बतला देती है कि जिस उपदेश का विवरण दिया जा रहा है, वह भगवान् ने कहीं किया। उदाहरणतः 'एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाधिकृतिक के आराम जेतवन में विहार करते थे' 'एक समय भगवान् राजमृह में गृष्मकृष्ण पर्वत पर विहार करते थे' जैसे वापर प्रायः प्रत्येक सूत के आदि में जाते हैं। सुतों को अनेक छोटी-मोटी विद्योपताएँ और भी देखी जा सकती हैं। उदाहरणतः भगवान् के उपदेश के बाद प्रायः (सदा नहीं) उपदेश सुनने वालों का इस प्रकार का कृतज्ञतापूर्ण उद्गार देखा जाता है "आश्चर्य है गोतम! अद्भुत है गोतम! जैसे ओंप्रे को गोपा कर दे, ढंके को उथाड़ दे, भूले को रास्ता बतला दे, अनन्तकार में तेल का प्रदीप रख दे, जिससे कि अचूक वाले रूप को देखें, ऐसे ही आप गोतम ने अनेक प्रकार से धर्म को प्रकाशित किया। यह मैं भगवान् गोतम की धारण जाता हूँ, धर्म की धारण जाता हूँ, संघ की भी धारण जाता हूँ। आप गोतम आज से मुझे अंजलिबद्ध शरणागत दपातक स्वीकार कर" कहीं कहीं सुतों के अन्त में भिन्नओं की कृतज्ञता के बावजूद इन शब्दों में भी स्पष्ट कर दी जाती है "भगवान् ने यह कहा। सन्तुष्ट हो मिथुओं ने भगवान् के उस कथन का अनुमोदन किया।" मिलने-जुलने, विदा लेने, कृतज्ञता प्रकाशित करने, कुत्तल-मंगल पूछने आदि साधारण जबरदस्तों पर जिस प्रकार का चिप्पाचार उस समय प्रचलित था, उसका वर्णन प्रायः समान शब्दों में सूत-पिटक में अनेक स्वल्पों पर किया गया है। ऐसे स्वल्प बार बार आने के कारण स्वयं कंठस्थ हो जाते हैं। जब कोई भिन्न भगवान् के दर्शनार्थ दूर से आता था, तो भगवान् उससे बक्सर पूछा करते थे 'कहो भिन्न!' कुत्तल से तो हो? रास्ते में कोई बड़ी हैरानी-परेशानी

१. जैसे दीप-निकाय के महासमय-सूत, लक्षण-सूत, आदानाटिय-सूत आदि

तो नहीं हुई ? भिक्षा के लिये कष्ट तो नहीं उठाना पड़ा ? आदि । भगवान् को जब कोई व्यक्ति निमत्रण देने आता है तो प्रायः यही बास्थ रहता है "भन्ते ! भिक्षु-संघ सहित आप कल के लिये मेरा भोजन स्वीकार करें" । उसके बाद "भगवान् ने मीन से स्वीकार किया ।" भगवान् के भिक्षाचर्यों के लिये जाने का प्रायः इन शब्दों में वर्णन रहता है "तब भगवान् पूर्वाञ्छ समय चीखर पहन, भिक्षा-पान ले, जहाँ . . . . था, वहाँ गये । जाकर भिक्षु-संघ सहित बिहू आसन पर बैठे । . . . . ने अपने हाथ से बुद्ध-प्रमूल भिक्षु-संघ को उत्तम खाच-भोज्य से सम्प्रसित किया । जाकर पान से हाथ हटा लेने पर, . . . . एक नीचा आसन ले, एक ओर बैठ गया । भगवान् में उपदेश से समुनेजित, सम्प्रहृष्टि किया । धर्म-उपदेश कर भगवान् आसन से उठकर जल दिये ।" जब कोई महाप्रभावशाली व्यक्ति भगवान् के दर्शनार्थ जाता है तो "जितनी यान की भूमि थी, उतनी यान से जा कर, यान से उतर, पैदल ही जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया । जाकर भगवान् को अभिवादन कर एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे . . . . को भगवान् ने धर्म-सम्बन्धी कथा से समुनेजित किया" आदि । इस प्रकार बुद्धकालीन भारतीय समाज का पूरा चित्र हमें सुन्त-पिटक में मिलता है ।

भगवान् बुद्ध के उपदेश करने का क्या ढंग था, यह भी सुन्तों से स्पष्ट दिखाई पड़ता है । पहले भगवान् दान, शील, सदाचार-प्रणाली, दुराचार-निन्दा आदि सम्बन्धी साधारण प्रवचन देते थे । फिर 'बुद्धों की उठाने वाली जादेशना' (बुद्धानं सामुक्तसिका प्रम्मदेसना) आरम्भ होती थी, जिसमें भार आर्य-सत्यो आदि का संभीर धर्मोपदेश होता था । दीप-निकाय के ब्रह्मट्ठ मुत्त, कूटदन्त-सूत आदि में इसी तरह उपदेश का विधान किया गया है । भगवान् एक मनोवैज्ञानिक की तरह उपदेश करते थे । पहले वे देश लेते थे कि जो व्यक्ति उनके पास दर्शनार्थ आया है वह किसान है, या सिपाही है, या राजा है या परिवारक है । फिर उससे परिचित वीवन से ही उपमाएँ आदि लेकर वे उसे धर्म का स्वस्थ समझाते थे । परिवारकों या अन्य भलावलम्बी साधुओं के साथ बातचलाप करते समय वे उनके मान्य सिद्धान्तों से ही प्रारम्भ करते थे और उत्तरोत्तर बिनार पर उसे अग्रसर करते हुए अपने मननाथ तक लाते थे । दीप-निकाय के सामञ्जाफल-सूत, सोणदण्ड-सूत, शोदृ-पाद-सूत और तेविच्च-सूत तथा मजिभम-निकाय के वेश्वणस-सूत, सुभ-सूत, चकिं-सूत आदि इसके बच्चे उदाहरण हैं । भगवान् बुद्ध के उपदेश करने के ढंग या उनकी जादेशना-विधि का बड़ा बच्चा विश्लेषण 'पेटकोपदेश' नामक ग्रन्थ में

किया गया है, जो विपिटक के संकलन के बाद किन्तु बुद्धोप के काल से पहले, लिखा गया था। छठे अध्याय में हम उसका विवरण देते समय इस विषय का भी कुछ दिग्दर्शन करेंगे।

सूतों की वैली की में विशेषताएँ और व्रष्टव्य हैं (१) पुनरुक्तियों की अतिरिक्तता (२) संलग्नात्मक परिगणन की प्रणाली का प्रयोग (३) उपमाओं के प्रयोग की बहुलता (४) संबद्धों का प्रयोग (५) इतिहास और आद्यानों का उपदेशों के बीच में समावेश और (६) सूतों में नाटकीय क्रियात्मकता की अभिव्याप्ति। चूंकि सूतों का संकलन विभिन्न लोतों से, विभिन्न व्यक्तियों के द्वारा और विभिन्न कालों में हुआ, अतः उनमें पुनरुक्तियों का होना बहस्यमानी है। भिक्षुओं के निरन्तर अभ्यास के लिये स्वयं भगवान् का भी एक ही उपदेश को बार बार देना, कहीं संविलिप्त है से, कहीं विस्तृत है से, उसे दूहराना, आसानी से समझा जा सकता है। फिर अध्ययन-अध्यापन की मौखिक परम्परा के कारण इस पुनरुक्तिमय वर्णन-प्रणाली को और भी अधिक प्रयोग मिला है। अतः सूतों में पुनरुक्तियों का होना एक तथ्य है और वह उनकी प्राचीनता और आमाधिकता का ही सूचक है, अप्रामाणिकता या अर्वाचीनता का नहीं। सूतों में इतनी पुनरुक्तियों भरी पड़ी है कि उनका सामान्य दिग्दर्शन भी सम्भव नहीं है। सूतों का 'पेत्याल' अति प्रसिद्ध है।<sup>१</sup> वाक्यांशों के वाक्यांशों की पुनरावृत्ति के बाल एक-दो शब्दों के हेर-फेर के साथ अनेक सूतों में पाई जाती है। सोणदंड-सूत का अन्तिम भाग हूबह कूटदत्त-सूत में रखा हुआ है। चार ध्यानों का वर्णन विलकुल समान शब्दों में अनेक सूतों में रखा हुआ है, यथा सामन्ड-काल-सूत (दीप-१।२) अम्बदृ-सूत (दीप-१।३) सोणदंड-सूत (दीप-१।४) कूटदत्त सूत (दीप-१।९) महाकि-

१. चूंकि पालि-विपिटक में, विशेषतः सूत-पिटक में, पुनरुक्तियों अधिक हैं, अतः यही कहीं एक पूरे वाक्य 'या वाक्यांशों की पुनरावृत्ति हुई, तो उसे पूरा न लिख कर केवल एक-दो जारम्भ के शब्द लिख दिये जाते हैं और फिर उसके बाद लिख दिया जाता है 'पेत्याल' जिसका अर्थ यह है कि इतने संकेत से ही पूर्वागत वाक्य को समझा जा सकता है। 'पेत्याल' शब्द का अर्थ ही है 'पातुअल' अर्थात् इतने से वाक्य समझ लिया जा सकता है और यह पाठ को बचावे रखने के लिये पर्याप्त है। वेलिये भिल जगदीश काल्यप : पालि महाब्याकरण, पृष्ठ तेतालीस (वस्तुकथा)

सूत (दीघ-११), पोटठाइ-सूत (दीघ-१२) केवटु-सूत (दीघ-१११) सुभ-नृत (दीघ-११२) सक्करति सीहनाद-सूत (दीघ-३१३), संगीति-परियाय-सूत (दीघ-३१०), भयमेरव-सूत (मजिम-१११४) देखाविलाप-सूत (मजिम-११२१) महाभस्सपुर-सूत (मजिम-१११९) चलहत्यपदोपम-सूत (मजिम-११३७) देवदहसूत (मजिम-३१११) वेरंजक-ब्राह्मण-सूत (अगुतर) मान-संपूत (संपूत-निकाय) आदि, आदि । चार आर्य सत्य, आप्य अष्टाङ्गिक मार्ग आदि के विषय में भी इसी प्रकार की पुनरुक्तियाँ दृष्टिगोचर होती हैं । संयुत-निकाय के सळायतन-संयुत में चकुरादि इनिद्वयों, उनके विषयों और विज्ञानों आदि को लेकर विस्तृत पुनरुक्तियाँ की गई हैं । अतः पुनरुक्तियों की अतिशयता सूतों की बीलों की एक प्रधान विशेषता है और जिस कारण वह उत्तर हुई है उसका उल्लेख हम पहले कर चुके हैं । संख्यात्मक परिणाम की प्रणाली का प्रयोग भी चुद्ध-वचनों के भौतिक रूप से प्राप्त होने की परम्परा पर आधारित है । केवल स्मृति की सहायता के लिये ही भगवान् चुद्ध भी इसका प्रयोग करते थे । पूरा का पूरा अगुतर-निकाय इसी संख्यात्मक प्रणाली पर संकलित किया गया है । अन्य निकायों में भी चार आर्य सत्य, पाच नीवरण, ३२ महापुरुष-लक्षण, ६२ मिथ्या-दृष्टियों आदि के संख्यात्मक निरूपण भरे रहे हैं । सातव दशन और जैन-दशन तथा महाभारत आदि में भी संख्यात्मक वर्गीकरणों का प्रयोग दिखाई पड़ता है ।<sup>१</sup> पालि सूतों में इसका प्रयोग बहुलता से किया गया है, किन्तु वह अस्वाभाविक नहीं होने पाया है । पालि सूतों को उपमाएँ बड़ी मर्मस्थानी हुई है । जीवन के अनेक थेत्रों से ये उपमाएँ ली गई हैं और उनकी स्वामाविकाता और सरलता बड़ी आकर्षक है । दीघ और मजिम निकायों के हिन्दी-अनुवाद में महापंडित राहुल सोहत्यायन ने इन निकायों में आई हुई उपमाओं की सच्ची दी है । उनसे सूत-पिटक में आई हुई उपमाओं का कुछ जनुमान हो सकता है । जहाँ भी सूतों में कोई जटिल प्रश्न आया हम यह बचन देखते हैं 'बोपम्म ते करिस्तमि, उपमाय हि इधेत्तज्ज्ञे पुरिसा भासितस्स अस्य आजानन्ति' जर्वात् 'मे तुम्हें एक उपमा कहूँगा । उपमा से भी कुछ एक बनूद्ध कहे हुए का अर्थ समझनाते हैं । उपमाओं की प्रणाली का अनुपिटक साहित्य पर भी इतना प्रभाव पड़ा है कि हम 'मिलिन्दपञ्च'

१. वेचिये विटरनिस्क : हिस्ट्री ऑब इंडियन लिटरेचर, जिल्ड द्वितीय, पृष्ठ ६५, पद संकेत १

और 'विसुद्धिगम' जैसे यन्मों तथा बुद्धियोग आदि की अट्ठकवाओं में भी उनका बहुल प्रयोग देखते हैं। निश्चय ही पालि साहित्य अपनी उपमाओं के लिये विशेष गौरव कर सकता है। विशेष को सुगम बनाने की दृष्टि से ही भगवान् स्वयं उपमाएँ दिया करते थे। दीध-निकाय के पोटठपाद-सुत में अनपद-कल्याणी की सुन्दर उपमा उन्होंने दी है<sup>१</sup>। इसी प्रकार स्वानुभव-शृन्य पंडितों की पंचित-बुद्ध अन्यों से उपमा<sup>२</sup>, अतिप्रश्न करने वाले की उस बाण-बिद्ध व्यक्ति से उपमा जो बाण को निकलवाने का प्रयत्न कर बाण मारने वाले के विषय में असंगत प्रश्न कर रहा है,<sup>३</sup> विशेष भोगों के दुष्परिणामों को दिखाने वाली उपमा<sup>४</sup>, विमुक्ति-सुत को दिखाने वाली उपमा<sup>५</sup>, "आदिअनेक प्रकार की उपमाएँ भगवान् बुद्ध के मूल से निकली हैं, जो काव्य की वस्तु नहीं किन्तु उनके अन्तर्माल से निकली हुई अनुभव सिद्ध वाणियाँ हैं। संवादों के रूप में सूतों के उदाहरण के लिये दीध-निकाय के अम्बद्ध-सुत, सोणदण्ड-सुत, पोटठपाद-सुत, लेविज्ञ-सुत आदि विशेष दृष्टिय हैं। अन्य निकायों में भी संवाद भरे पड़े हैं। पौराणिक आल्यान भी सूतों में कहीं कहीं समाविष्ट हैं, जैसे महाविजित त्रा आल्यान दीध-निकाय के कृदत्त-सुत में, आदि, आदि। उपनिषदों और महाभारत में भी ऐसे अल्यान पाये जाते हैं।<sup>६</sup> संयुत-निकाय के भिक्षुनी-संयुत में भिक्षुणियों के आल्यान बड़े ही मामिक हैं। सूतों की एक बड़ी विशेषता उनकी नाटकीय द्रुतगति एवं क्रियाशीलता भी है। इस दृष्टि से दीध-निकाय के महापरिनिव्याण-सूत और संयुत-निकाय के भिक्षुनी-संपूत विशेष रूप से दृष्टिय हैं। परिप्रश्नात्मक शैली का जैसा पूर्ण परिपाक सूतों में हुआ है, यंसा भारतीय साहित्य में अन्य कहीं पाना असम्भव है। बाद में उनका विकसित रूप ही 'मिलिन्द-पञ्च' में प्रस्फुटित हुआ है, जिसके संवादों को देख कर ही कुछ पाद्वात्य विद्वानों ने उनके ऊपर यीक प्रभाव की

१. देखिये यारे इस सूत का विवरण ।

२. अन्यवेष्य परम्परा (अन्यों की लकड़ी का सोता) चकि-सुतत्त (मणिम. २१५।५) ।

३. चूल मालुक्य-सूत (मणिम. २।२।३) ।

४. पोतलिय-सूत (मणिम. २।१।५) ।

५. सामज्जाफल सूत (दीध. १।२) में

६. देखिये विटरनित्त : हिस्ट्रो यांव इंडियन लिटरेचर, जिल्ड दूसरी, पृष्ठ ३४

कल्पना कर ली है, जिसका मिराकरण हम छठे अध्याय में उस सम्बन्धी विवरण पर आते समय करेंगे। दीघ-निकाय के 'पायासि-सूत' जैसे सूतों में संवादात्मक शैली का जो परिष्कृत रूप दिखाई पड़ता है,<sup>१</sup> उसी के आधार पर बाद में 'मिलिन्द-पञ्च' में इस कला में पूर्णता प्राप्त की गई है।

जैसा पहले कहा जा चुका है, सुत-पिटक बुद्ध-बचनों का सब से अधिक महत्वपूर्ण भाग है। न केवल बुद्ध-उपदेशों की जानने के लिये ही बल्कि छठी और पाँचवीं शताब्दी ईस्वी पूर्व के भारत के सब प्रकार के ऐतिहासिक, सामाजिक और भौगोलिक ज्ञान का वह एक अपूर्व भांडार है। इतिहास और साहित्य के विद्यार्थी के लिये भी वह उतना ही महत्वपूर्ण है जितना बोहू घर्म और दर्शन के विद्यार्थी के लिये। गम्भीर विचारों की दृष्टि से उसका स्थान केवल उपनिषदों के साथ है। उपनिषदों से भी उसकी एक बड़ी विशेषता यह है कि उपनिषदों में जब कि विशुद्ध, निर्वैयक्तिक ज्ञान है, सुत-पिटक में उसके साथ साथ जीवन भी है। उपनिषदों में बुद्ध के समान ज्ञानी की जीवन-वर्धा कहाँ है? सुत-पिटक में निहित बुद्ध-बचनों की गम्भीरता की तुलना रायस डेविल्सन अफलातूं के संवादों से की है<sup>२</sup>। अफलातूं के ज्ञान-गौरव की रक्षा करते हुए भी यह कहा जा सकता है कि तथागत की साधनामयी वाणी का तो शतांश गौरव भी उसके अन्दर नहीं है। बुद्ध-बचन अपनी गम्भीरता में सर्वथा निरपेक्ष है। जब सम्यक् सम्बुद्ध जैसा वरदान ही प्रकृति ने मानव को नहीं दिया, तो उनके जैसे बचन भी कहाँ से हों? अतः घर्म, दर्शन, साहित्य, जीवन, इतिहास, प्राचीन भूगोल आदि सभी दृष्टियों से सुत-पिटक का अध्ययन अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

सुत-पिटक, जैसा पहले भी दिखाया जा चुका है, पाँच भागों में विभक्त है  
(१) दीघ-निकाय (२) मध्यम-निकाय (३) संयुत-निकाय (४) अंगुस्तर-  
निकाय और (५) खुदक-निकाय। इनमें प्रथम चार निकाय संप्रह-शैली की दृष्टि  
से ज्ञानान हैं। पाँचवीं निकाय छोटे छोटे (जिनमें कुछ बड़े भी हैं) स्वतन्त्र ग्रन्थों  
का संग्रह है। विषय तो सब का बुद्ध-बचनों का प्रकाशन ही है। केवल सत्तों के  
आकारों या विषय के विन्यास में कहीं कुछ अन्तर है। प्रत्येक निकाय की  
विषय-वस्तु का अब हम संक्षिप्त परिचय देंगे और साथ ही उनके साहित्यका

१. इसके दर्शन के लिये देखिये आगे इस सुत का विवरण।

२. वि डायलॉग्स ऑफ दि बुद्ध, जिल्ड पहली, पृष्ठ २०६

और ऐतिहासिक महत्व का भी अनुमापन करना हमारे अध्ययन का एक अंग होगा।

### आ—दीघ-निकाय<sup>१</sup>

दीघ-निकाय दीघ आकार के सूतों का संग्रह है। आकार की दृष्टि से जो मूल या बुद्ध-उपदेश वह है, वे इस निकाय में संगृहीत हैं। दीघ-निकाय तीन भागों में विभक्त है (१) सीलकलन्य (२) महावग्म (३) पात्रेय या पाटिक-वग्म। इनमें कुल मिलाकर ३४ सूत हैं, जिनमें सीलकलन्य में १-१२, महावग्म में १४-२३ और पात्रेय या पाटिकवग्म में २४-३४ सूत हैं। जिस क्रम से इन सूतों का विन्यास किया गया है, वह काल-क्रम के अनुसार पूर्वापरता का सूचक नहीं है। कुछ घटनाएँ या उपदेश जो कालक्रमानुसार बाद के हैं पहले रख दिये गये हैं और इसी प्रकार जिन्हें पहले हीना चाहिये वे बाद में रखले हुए हैं। इसका कारण यही है कि काल-क्रम के अनुसार सूतों को यही विन्यस्त न कर आकार आदि की दृष्टि से किया गया है। पिटक और अनुपिटक (विशेषतः अट्ठकवा) साहित्य के साथ से महापादित राहुल सांकृत्यायन ने दीघ-निकाय के कुछ सूतों के कालानुक्रम का निश्चय कर उन्हें उस ढंग से अपने महत्वपूर्ण ग्रन्थ 'बुद्धचर्ची' में अनुदित किया है। यह एक स्तुत्य कार्य है। अचिन्त्यी विद्वान् अट्ठकवाओं के साथ पर इतना अधिक विश्वास न कर केवल दौली और भाषा आदि के साथ से ही दीघ-निकाय या पूरे सत्त-पिटक के विभिन्न जंडों को पूर्वापरता निश्चित करना चाहते हैं, जो अन्त में केवल उनकी कल्पना का विलास मात्र रह जाता है। फेन नामक विद्वान् ने तो इसी आधार पर अपने विभिन्न मत भी पूरे त्रिपिटक और दीघ-निकाय के सम्बन्ध में प्रकाशित कर दिये हैं। उन्होंने दीघ-निकाय के विषय में कहा है कि यह किसी एक लेखक या साहित्यकार का काम है। चूंकि ओल्डनबर्ग,<sup>२</sup> रायस डेविड्स,<sup>३</sup> विटरनित्ज़,<sup>४</sup> गायगर<sup>५</sup> आदि विद्वानों द्वारा

१. महापादित राहुल सांकृत्यायन द्वारा अनुवादित, महाबोधि समा, सारनाथ, १९२७

२. इ. ४. ५ डेविड्स विशेषतः विटरनित्ज़ : हिस्ट्री ऑफ इंडियन लिटरेचर, जिल्ड बूसरी, पृष्ठ ४४-४५; गायगर : पालि लिटरेचर एंड लेंग्वेज, पृष्ठ १७, पद-संकेत ४; रायस डेविड्स और ओल्डनबर्ग के ग्रन्थों के संकेत भी यही दोनों जगह दिये हुए हैं।

उनके मत का पर्याप्त निराकरण कर दिया गया है, अतः उनके अ-महत्वपूर्ण कल्पना-विकास को, जिसे उन्होंने दीघनिकाय को प्रामाणिकता के विरुद्ध रखा था, वहाँ उद्दृश्य और फिर से निराकृत कर, उसे अनावश्यक महत्व देने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। दीघ-निकाय के सूत कलात्मक एकात्म-कृता के अनुसार विन्यस्त होने पर भी बुद्ध-वचनों के रूप में प्रामाणिक हैं। यदि उन सब का आधारभूत विचार एक ही है, तो इससे यह निष्कर्ण नहीं निकाला जा सकता कि वे किसी एक ही लेखक की हृतियाँ हैं। बुद्ध के उपदेशों के रूप में भी उनमें एकात्मता तो होनी ही चाहिये। पालि दीघ-निकाय के ३४ सूतों में से २७ चीनी दीघांगम में मिलते हैं। शेष सात में से ३ मध्यमागम में मिलते हैं और ४ का पता नहीं लगा है<sup>१</sup>। विषय का विन्यास यहीं भिन्न होते हुए भी विषय-वस्तु तो प्रायः समान ही है। दूसरी शताब्दी से लेकर चीधी-जीवी शताब्दी तक इन सब सूतों का अनुवाद चीनी भाषा में हो गया था। जैकि इसके पूर्व प्रथम शताब्दी ईसवी पूर्व के 'मिलिन्दाङ्घ' में भी इनमें से अनेक का नामतः उल्लेख है, अतः इनकी प्रामाणिकता के विषय में सन्देह नहीं किया जा सकता। बाहरी आकार की दृष्टि से दीघ-निकाय के सब सूतों में समानता नहीं है। सीलवक्तव्य के सब सूत प्रायः गद्य में हैं, केवल कुछ पंक्तियाँ मात्र गायाओं के रूप में हैं। महावग्ग और पाथेय या पाटिक-वग्ग में अधिकांश सूत मत्त-पद्ध-मिश्रित हैं। पाथेय या पाटिक-वग्ग के महासमय-सूत और आटानाटिय सूत तो विलकूल पद्ध में ही हैं। सील-वक्तव्य के सूतों की यह प्रधान विशेषता है कि वे शील, समाधि और प्रज्ञा सम्बन्धी बुद्ध-उपदेशों की विवरण देते हैं और उनमें बुद्धकालीन भारतीय समाज का भी पर्याप्त शील-निष्पत्ति मिलता है, उसके सामाजिक और धार्मिक जीवन का पूराचित्र, आदि। यहीं उसके 'सीलवक्तव्य' नामकरण का भी कारण है। 'महावग्ग' के प्रत्येक सूत के नाम का आरम्भ 'महा' शब्द से होता है। विटरनिहृत में इस 'महा' शब्द में क्षेपकों का रहस्य निहित भाना है। उमका कहना है कि गहले इस वर्ग के उपदेश संक्षिप्त आकार के रहे होंगे और बाद में उन्हें बढ़ा-कर 'महा' कर दिया गया है<sup>२</sup>। जैकि स्वरूप भगवान् बुद्ध भी एक ही विषय पर

१. पूरे विवरण के लिये देखिये दीघ-निकाय (महापर्णित राहुल सांकुश्यायन का हिन्दी अनुवाद) का प्राक्कल्पन

२. विशेषतः 'महापरिनिव्वाण-सूत' में इस प्रकार के उत्तरकालीन परिवर्द्धनों

अवसर और पात्रों के अनुसार संभिष्ट और दीर्घ उपदेश दे सकते थे और संकलन के समय मिन्न भिन्न व्यक्तियों और स्रोतों से आने के कारण उन्हें बैसा ही संकलित कर दिया गया है, अतः एक ही विषय-सम्बन्धीयों अल्प और बड़े आकार वाले सूतों को देखकर बड़े आकार वाले सूतों को बाद के परिवर्णन ही नहीं माना जा सकता। उपर्युक्त तथ्य के प्रकाश में हम 'महावग्म' के सब सूतों को भीलिक बृद्ध-वचन ही मानने के पश्चाती हैं। 'पादेय' या 'पाटिक वग्म' का यह नामकरण इसलिये है कि इस वग्म के सूतों के आदि में 'पाटिक-सूत' नामक सूत है। दीर्घ-निकाय<sup>१</sup> का अधिक साहित्यिक और ऐतिहासिक मूल्यांकन करने के लिये पहले हम उसके सूतों की विषय-वस्तु का अलग-अलग संभिष्ट निर्दर्शन करेंगे।

### सीलकस्वन्ध-वग्म

#### ब्रह्मजाल-सूत (दीर्घ ११)

ब्रह्मजाल-सूत दीर्घ-निकाय का प्रथम और अलगत महत्वपूर्ण सूत है। प्रामुद्रकालीन भारतीय धार्मिक और सामाजिक परिस्थिति का एक अच्छा चिन्न यही मिलता है। विशेषतः उस धार्मिक विचिकित्सा का, जो उस समय भारतीय वायर्मंडल में सर्वत्र फैली हुई थी, और उसके सम्बूर्ण अतिवादों का, एक अच्छा विश्लेषण यही मिलता है। ब्रह्मजाल-सूत का अर्थ है थेष्ठ (ब्रह्म) जाल हप्ती बृद्ध-उपदेश। बृद्ध-उपदेश को यहाँ थेष्ठ जाल कहा गया है। किसे पकड़ने के लिये? किसलकर निकल जाने वाली मठलियों को यहाँ मिथ्या दृष्टियों को पकड़ने के लिये। इस सूत के उपदेश के अन्तमें आनन्द ने, जो पीछे से भगवान् को पंचा भल रहे थे, पूछा "भन्ते! इस उपदेश को क्या कह कर पूकारा जाय?" "आनन्द! तुम इस धर्म-उपदेश को 'अर्य-जाल' भी कह सकते हो, धर्म-जाल भी, ब्रह्म-जाल भी,

का विवेचन दा। विटरनिट्ज ने किया है। देखिये उनका हिस्ट्री और इन्डियन लिटरेचर, जिल्ड द्वासरो, पृष्ठ ३८-४२

१. दीर्घ-निकाय के १-२३ सूत दो भागों में देव-नागरो लिपि में बस्तु विश्व विद्यालय द्वारा प्रकाशित कर दिये गये हैं। प्रथम भाग, सूत १-१३; द्वितीय भाग सूत १४-२३; दीर्घ-निकाय का महापंडित राहुल सांकृत्यायन और निकल जगदीश काश्यप कृत हिन्दी अनुवाद (महाबोधि सभा, सारनाथ, १९३७) तो प्रसिद्ध ही है।

दृष्टि-जाल भी, लोकोत्तर संग्राम-विजय भी । ”<sup>१</sup> मिथ्या-दृष्टियों को पकड़ने के क्रिये भगवान् ने ब्रह्मजाल-सूत का उपदेश दिया ।

जिन मिथ्या दृष्टियों का विवरण ब्रह्म जाल सूत में दिया गया है, उनकी संख्या ६२ है । इनमें १८ मिथ्या धारणाएँ जीवन और जगत् के आदि सम्बन्धी हैं और ४४ अन्त सम्बन्धी । इनमें पहली १८ मिथ्या धारणाओं को पौच भागों में बांटा गया है यथा (१) शाश्वतवाद (२) नित्यता-अनित्यतवाद (३) सान्त-अनान्तवाद (४) अमराविक्षेपवाद और (५) अकारणवाद । इनमें से प्रथम चार की सिद्धि में प्रत्येक में चार चार हेतु दिये गये हैं और अन्तिम सिद्धान्त (अकारणवाद) की सिद्धि में दो । इस प्रकार १८ हेतुओं से नानाव्यवरण, ब्राह्मण और परिवाजक प्रामदुदकालीन भारत में आत्मा और लोक के आदि सम्बन्धी, (पूर्वान्त कलिप्त) उपर्युक्त पौच मतों का प्रस्तापन किया करते थे । इन्हीं को यहाँ मिथ्या दृष्टियाँ कहा गया है । आत्मा और लोक के अन्त सम्बन्धी (अपरान्त-कलिप्त) ४४ मिथ्या-धारणाएँ थीं । कुछ व्यवरण, ब्राह्मण और परिवाजक १६ हेतुओं के आधार पर मानते थे कि ‘मरने के बाद भी आत्मा संजी (होश बाला) रहता है, कुछ ८ हेतुओं के आधार पर मानते थे कि ‘मरने के बाद आत्मा असंजी हो जाता है’ (अर्थात् वह होश बाला नहीं रहता) कुछ ३ हेतुओं के आधार पर मानते थे कि ‘आत्मा का पूर्ण उच्छेद ही हो जाता है’ । ये उच्छेदवादी थे । कुछ ५ हेतुओं के आधार पर मानते थे कि इसी जन्म में निर्वाण या मोक्ष है । इस प्रकार इन परस्पर विरोधी ४४ हेतुओं से आत्मा और लोक के अन्त सम्बन्धी सिद्धान्त कलिप्त किये जाते थे । यही ४४ अपरान्तकलिप्त मिथ्या दृष्टियाँ थीं । इस प्रकार कुल मिलकार ६२ परस्पर-विरोधिनी, मानसिक वायासों से पूर्ण, मिथ्या-दृष्टियों भारतीय वायुमंडल में भगवान् बृद्ध के उदय से पूर्व प्रचलित थीं, जिनका निदान इस सूत में किया गया है ।

ब्रह्मजाल सूत की मूल्य विषय-वस्तु उपर्युक्त ६२ मिथ्यादृष्टियों का विवरण ही है, किन्तु उसमें प्रसंगवश और भी बहुत सी बातें आ गई हैं । प्रारम्भ ही में हम

१. “को नामो अयं भन्ते धर्मं परियायायोति” “तस्माति ह त्वं आनन्द इमं धर्म-परियाप्तं अत्थजालं ति पि नं धारेहि, धर्मजालं ति पि नं धारेहि, ब्रह्मजालं ति पि नं धारेहि, विद्धि जालं ति पि नं धारेहि, अनुत्तरो संग्राम-विजयो ति पि नं धारेहि ।”

भगवान् को भिक्षुओं के सहित राजघृह और नालन्दा के बीच के रस्ते पर जाते हुए देखते हैं। वे भिक्षुओं को निन्दा और स्तुति में समान रहने का उपदेश करते हैं। उसके बाद मूल (आरम्भिक) मजिदम (मध्यम) और महा के स्थान में शील की तीन भूमियों का विवरण है। यहीं प्रसंगवश उन अनेक प्रकार के उद्योगों, शिल्पों, व्यवसायों तथा मनुष्यों के रहन-सहन सम्बन्धी दण्डों का विवरण मिलता है जिनसे विरत रहने का भिक्षुओं का उपदेश दिया गया है। उस समय के समाज के जीवन की दशा का इससे बड़ा अच्छा पता लगता है। उस समय के मनोरंजन के साधनों को लेंजिये तो नृत्य, शीत, वाजे, नाटक, लीला, ताली, ताल देना, पड़े पर तबला बजाना, गीत-मंडली, लोहे की गोली का खेल, चौस का खेल, हस्ति-युद्ध, अक्ष-युद्ध, महिष-युद्ध, वृषभ-युद्ध, बकरों का युद्ध . . . . लाठी का खेल, मुट्ठ-युद्ध, कुर्सी, मारखीट का खेल, संन्य-प्रदर्शन आदि के विवरण मिलते हैं। मनुष्यों के आमोद-प्रमोद के साधनों को देखें तो दीर्घ आसन, पलंग, बड़े बड़े दीर्घ बाले आसन चित्रित आसन . . . . फुलदार विद्यावन . . . . सिह, व्याघ्र आदि के चित्र बाले आसन, भालरदार आसन आदि के विवरण, दर्पण, अंजन, मोला, लेप, मूख-चूर्ण (पाउडर), मूळ-लेपन, हाथ के आभूषण, छड़ी, तलबार, छाता, मुन्दर जूता, टोपी, मणि, चंचर आदि के विवरण पाते हैं। अनेक प्रकार के कथाएं जैसे राजकथा, चौरकथा, याम, तिगम, तगड़, जनपद, स्त्री, गणराज और भूत-यते आदि की कथाएं, अनेक प्रकार के फलित ज्योतिष के विद्यान, अनेक प्रकार के भिया सामाजिक विद्यास और माध्यम-जीवन-निवाह के दृम भी विवृत किये गये हैं। यज्ञायागादि की परम्परा कितनी विकृत हो चली थी, इसका एक संकेत अनेक प्रकार के होमों की इस सूची में ही देखिये 'अग्नि-हवन, दर्दी होम, तुप-होम, कण-होम तंहुल होम, पृत-होम, तैल-होम, मुख में धी लेकर कुल्ले से होम, सधिर होम' आदि। अनेक प्रकार की विद्याओं पर्या वास्तु विद्या, क्षेत्र विद्या, मणि-लक्षण, वस्त्र-लक्षण आदि के विवरण यहाँ दिये गये हैं। सारोंक यह कि प्राम्बुद्ध-कालीन भारत का सारा सामाजिक और धार्मिक जीवन यहाँ चित्रित हो उठा है। दार्ढनिक दृष्टि से इस नृत का यह महत्व है कि वह भगवान् दुःख के लासन के उस स्वरूप की ओर इंगित करता है जो मध्यमा-प्रतिष्ठा पर आवासित है और जिसमें जीवन के सत्य का साक्षात्कार (सच्छिकिरण) ही मूल्य है, शाश्वतवाद या अशाश्वत-वाद आदि के पतलों में पड़ना नहीं। अतः प्राम्बुद्धकालीन भारतीय विचार की विचिकित्साओं और उनकी पृष्ठभूमि में दुःख-वासन का सन्देश तथा प्रसंगवश

तत्कालीन भारतीय समाज के उचोग-व्यवसायों आदि के चित्रण की दृष्टि से यह सुन्त अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

### सामज्ञाकल-सूत (दीघ. १२)

सामज्ञाकल-सूत (शामण्य कल सम्बन्धी बुद्ध-उपदेश) में हम पितृ-वध के पश्चात्ताप से संतप्त मगध-राज अजातशत्रु को चित-शान्ति प्राप्त करने के हेतु भगवान् के पास आता देखते हैं। पहले वह अन्य आचार्यों के पास भी जा चुका है, किन्तु शान्ति नहीं मिली। इसी कारण यहाँ प्रसंगवश बुद्धकालीन उन छह प्रमिद्ध आचार्यों के मतों का भी निर्दर्शन कर दिया गया है, जिनका आनन्द बौद्ध धर्म के प्रत्येक विद्यार्थी के लिये अत्यन्त आवश्यक है। इन छह आचार्यों के नाम थे पूर्ण काश्यप, मक्षवलि गोसाल, अजित केस कम्बलि, प्रकृष्ण कात्यायन, निगण्ठ जातपुत्र और संजय बेलट्टि पुत्र। मक्षवलि गोसाल का मत अकियावाद था। उनके मत में पाप-पुण्य कुछ नहीं था। 'छुरे के समान तेज चक्र से कोई इस पृथिवी के प्राणियों के मास का एक खलियान, मांस का एक युज बना दे, तो भी इसके कारण उसे पाप नहीं लगेगा'। दान, दरम, संयम, तप में कोई पुण्य नहीं है, हिंसा, चोरी आदि में कोई पाप नहीं है, यही इनका मत था। मक्षवलि गोसाल पुरे दैववादी थे। वे कहते थे। 'सत्त्वों के कर्तेश का कोई हेतु नहीं है। विना हेतु के ही सत्त्व ब्रह्म होते हैं। सत्त्वों की शादि का भी कोई हेतु नहीं है। विना हेतु के ही सत्त्व शुद्ध होते हैं। पुराण कुछ नहीं कर सकता है। बल नहीं है, वीर्य नहीं है, पुरुष का कोई पराक्रम नहीं है। सभी प्राणी अपने वश में नहीं है। निवंल, निर्वायं, भाग्य और संयोग के फेर से इधर-दूधर उत्पन्न हो दुःख भोगते हैं।' अजित केस कम्बलि का मत था जड़वादया उच्छेदवाद। वह कहता था 'न दान है, न यज है, न होम है, न पुण्य या पाप या अच्छा बुरा कल होता है, न यह लोक है, न परलोक है, न माता है, न पिता है' आदि, आदि। प्रकृष्ण कात्यायन का मत या अकृत, अनिर्मित, कूटस्थ और अचल मानता था। 'यहाँ न हन्ता है, न धातियिता, न सुनने वाला, न मुनाने वाला, न जानने वाला, न जलाने वाला'। निगण्ठ-नाटपुत्र (निर्वायं जातपुत्र, भगवान्, महाबीर, जैन-सीर्पकुर) के मत में चार प्रकार के संयमों का चित्रण दिया गया है 'निर्वायं जातपुत्र किस प्रकार के संयमों से संबंध रहते हैं? (१) निर्वायं जातपुत्र जल का वारण करते हैं (जिसमें जल के

जीव न मारे जायें) (२) सभी पापों का वारण करते हैं (३) सभी पापों के वारण करने से पाप-रहित होते हैं (४) सभी पापों के वारण करने में लगे रहते हैं।" संजय बेलटिठपुव का मत अनिश्चिततावाद था। उनका कहना था "मैं मह भी नहीं कहता, मैं वह भी नहीं कहता, मैं दूसरी तरह मैं भी नहीं कहता। मैं यह भी नहीं कहता 'यह है'। मैं यह भी नहीं कहता 'यह नहीं है'. मैं ऐसा भी नहीं कहता, मैं वैसा भी नहीं कहता"। बुद्धकालीन धार्मिक वातावरण को जानने के लिये इन छह आचार्यों के मतों को जानना अत्यन्त आवश्यक है। भगवान् ने अज्ञातशब्द को अमण्डा (धामण्ड) या प्रक्षेप्या का फल नैतिक मूल्यों के द्वारा बतलाया है। संसार के मूल्यों से उसे नहीं तौला जा सकता। पहले यहाँ भी शील का प्रारम्भिक, मध्यम और महा इन तीन भूमियों में विवरण है, फिर इन्द्रिय-संबंध, स्मृति-सम्प्रजन्य, सन्तोष आदि के अभ्यास का विवरण है। अन्त में पश्चात्याप से अभिभूत राजा कहता है "मने ! मने . . . धार्मिक, धर्मराज पिता की हत्या की ! मने ! भविष्य में मैं भल कर रहने के लिये मुझ अपराधी पापी को आप धमा करें"। जिन दृष्टियों से ब्रह्माजाल सूत का महत्व है, उन्हीं 'दृष्टियों' से यह सूत भी महत्वपूर्ण है। वास्तव में कुछ हद तक यह उसका पूरक हो रहा है।

### अम्बट्ठ-सुन्त (दीप. १३)

पीड़करसाति नामक ब्राह्मण के अम्बट्ठ (अम्बट्ठ) नामक शिष्य के माध्यम भगवान् बुद्ध का संवाद है। अम्बट्ठ अपने उच्च धर्म के घंड के कारण भगवान् के पास जाकर अविगटापूर्वक बाते करता है। शाक्यों पर अनुचित आश्रेप भी करता है। जब भगवान् उसके अविष्ट व्यवहार का उसे समरण दिलाते हैं तो वह कहता है "मैं गोतम ! जो मुड़क, अमण्ड, इभ्य (नीच) कामे, ब्रह्मा के पैर की सन्तान, हैं उनके साथ ऐसे ही कथा संलाप किया जाता है, जैसा मेरा आप गोतम के साथ !" भगवान् उसे मिथ्या जातिवाद के अभिभावन को छोड़ देने को कहते हैं। "अम्बट्ठ ! जहाँ आवाह-विवाह होता है वही यह नहाजाता है 'तू मेरे योग्य है' 'तू मेरे योग्य नहीं है'। वही यह जातिवाद, मोक्षवाद, मानवाद भी चलता है 'तू मेरे योग्य है' 'तू मेरे योग्य नहीं है'। अम्बट्ठ ! जो कोई जातिवाद में फँसे है, योक्षवाद में फँसे हैं, अनिमानवाद में फँसे हैं, आवाह-विवाह में फँसे हैं, वे अनुपम किला और आचरण को सम्पदा से दूर हैं। अम्बट्ठ ! जातिवाद के बंधन, गोक्रवाद-बन्धन, मानवाद-बन्धन और आवाह-विवाह-बन्धन

छोड़कर ही अनुपम विदा और आचरण की सम्पदा का साकार्तकार किया जाता है।” इस प्रकार इस सुन्नत को जातिवाद के विरुद्ध भगवान् का मिहनाद ही समझना चाहिये। इस सुन्नत का एक ऐतिहासिक महत्व यह है कि यहाँ कृष्ण को एक प्राचीन जूहि के हथ में समरण किया गया है “वह कृष्ण महान् जूहि थे। उन्होंने दधिय देश में जाकर ब्रह्मस्त्र पढ़ कर, राजा इश्वाकु के पास जा उसकी लड़ूरी कन्या को माँगा। तब दुजा इश्वाकु ने ‘जरे यह मेरी दासी का पुत्र होकर मेरी कन्या को माँगता है, कृपित ही असनुष्टु हो, बाण छाया।’..... इश्वाकु ने जूहि की कन्या प्रदान की। ..... वह कृष्ण महान् जूहि थे।” शास्त्रों की उत्तरति के विषय में भी यहाँ वर्णन किया गया है।

### सोणदण्ड-सुन्नत् (दीप १४)

सोणदण्ड (स्वर्णदण्ड) नामक ब्राह्मण के साथ भगवान् का संवाद। विषय यही पूर्ववत् जातिवाद का ब्लंडन। ब्राह्मण बनाने वाले घर्मो प्रथमत् मदाचार और ज्ञान का आचरण करने वाला व्यक्ति ही सच्चा ब्राह्मण है, न कि केवल ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न। इस सुन्नत में जङ्ग की राजधानी चम्पा (वर्तमान चम्पा नगर और चम्पापुर, भागलपुर के नमीप) का उल्लेख है। राजा विम्बसार द्वारा प्रदत्त चम्पा नगर की आप का उपनोम सोणदण्ड ब्राह्मण करता था।

### कृटदन्त-सुन्नत् (दीप. १५)

कृटदन्त नामक ब्राह्मण के साथ भगवान् का संवाद। बड़ी सामग्रियों वाले एवं हिंसामय यज्ञ के स्थान पर यहाँ ज्ञान-यज्ञ का आदर्श रखता गया है। कृटदन्त ब्राह्मण एक महायज्ञ करना चाहता था। उसने भगवान् से जाकर पूछा, “भन्ते ! मैं सहायता करना चाहता हूँ। मैंने सुना है आप सोलह परिष्कार सहित विविध यज्ञ-सम्पदा को जानते हैं। कृपाकर आप मुझे उसे बतावें।” भगवान् ने पूर्वकाल में महाविजित के आलयान को काह कर उसे यह तत्त्व बताया है। वास्तव में महाविजित का यह आल्यान एक प्रकार का जातक-कथानक ही है। महाविजित नामक राजा ने भी प्राचीन युग में एक यज्ञ किया था। “ब्राह्मण ! उस यज्ञ में गाँ, नहीं मारी गई, बफरे-भेड़े नहीं मारी गई, मूर्गे-मूअर नहीं मारे गये। न यज्ञ-स्तम्भ के लिये बृक्ष काटे गये, न पर-हिंसा के लिये कुश काटे गये। जो भी उसके दास और नीकर थे, उन्होंने भी दण्ड के भय से रहित होकर, जिन्होंने चाहा किया, जिन्होंने

नहीं चाहा, नहीं किया । अब मुझे, रोसे हुए उन्हें सेवा नहीं करनी पड़ी । जिसे चाहा उसे किया, जिसे नहीं चाहा उसे नहीं किया । थी, तेल, मधुमलन, दही, मधु और खांड मे ही वह यज्ञ समाप्ति को प्राप्त हुआ । इस प्रकार दिव्य-यज्ञ में भी भगवान् सेवकों ने बोगार न लेने के विशेषत । पश्चात्ती है । किन्तु जिस यज्ञ का उन्होंने विघ्नान किया है वह तो इससे भी बहुत बढ़कर है । वह यज्ञ है दान-यज्ञ, विद्युत्य-यज्ञ, विकापद-यज्ञ, शील-यज्ञ, समाधि-यज्ञ, प्रजा-यज्ञ । तथागत इसी यज्ञ के पश्चात्ती है ।

### महालि सुन्त (दीघ. १६)

सुनक्षत्र नामक लिङ्गविष्णु भगवान् के शिष्यत्व को छोड़कर चला गया है । उसे जाशा थी कि भगवान् के पास रहते मे दिव्य शब्द सुनेगा, योग की विभूतियों को प्राप्त करेगा, आदि । जब ऐसा न हुआ तो उसने उन्हें छोड़ दिया । इसी के बारे में प्रश्न करने के लिये महालि नामक एक अन्य लिङ्गवि सरदार भगवान् के पास आया है “भन्ते ! वया सुनक्षत्र लिङ्गविष्णु ने विश्वमान ही दिव्य-शब्द नहीं सुने या अविद्यमान ।” भगवान् उसे समझते हैं कि बहुचर्य का उद्देश्य विद्य शब्द सुनना या योगकी विभूतियोंको प्राप्त करना तहीं है, बल्कि उसका एक मात्र उद्देश्य तो सदाचार के जीवन के अभ्यास के द्वारा सत्य का साक्षात्कार करना है । निर्बाण के साक्षात्कार के लिये भी बहुचर्य का यहण किया जाता है और उसी के द्वारा दुःख का अन्त होता है । “यही है महालि ! अधिक उनम् घमं जिसके साक्षात्कार करने के लिये मिथु मेरे पास आकर बहुचर्य-पालन करते हैं ।” आये अष्टाङ्गिक मार्ग के अभ्यास एवं सदाचार, समाधि और प्रजा के जीवन मे ही निर्बाण का साक्षात्कार किया जा सकता है, वह भी अन्त मे अन्य सत्तों की तरह उपरिष्ठ किया गया है ।

### जालिय-सुन्त (दीघ. १७)

जालिय नामक परिवाजक से भगवान् का संवाद । यह परिवाजक भगवान् के पास आकर उससे पूछता है “आत्म<sup>१</sup> ! शोतम ! जीव और दारीर अलग-अलग बस्तु हैं या एक ही ?” भगवान् उसे समझते हैं कि जीव और दारीर का भेद-भेद क्यन ही ब्याये है । जीवन का तत्त्व साक्षात्कार मे है । अतः शील, समाधि और प्रजा का निरन्तर अभ्यास करना चाहिये ।

१. जैसे कि मानो गोतम उससे छोटे हों । संभवतः परिवाजक की जायु भगवान् से अधिक थी और इस सुन्त का सम्बन्ध भगवान् की तरण अवस्था से है ।

### कस्सप सीहनाद-सुत्त ( दीघ. १८ )

काश्यप (कस्सप) नामक अचेल (नरन) साधु के साथ भगवान् का सवाद। अचेल काश्यप ने कहीं से सुन लिया है कि भगवान् बुद्ध सब प्रकार की तपस्याओं को निन्दा करते हैं। वह अपनी शंका लेकर भगवान् के पास आता है। भगवान् उसे कहते हैं कि सब प्रकार की तपस्याओं का निन्दा करने वाला उन्हें कहना तो उनकी असत्य से निन्दा करना है। “काश्यप ! मैं सब तपश्चरणों को निन्दा कैसे करूँगा ?” सच्ची धर्मचर्या में भगवान् का अन्य साधु-सम्प्रदायों से कोई वैभव्य नहीं है। किन्तु सभी आचार-विचार छोड़ देना या अन्य सैकड़ों प्रकार के कार्यिक वलेश देना जिनका विस्तृत विवरण इस सुत्त में है और जो उस समय की भारतीय साधना का अच्छा परिचय देते हैं, उनसे भगवान् की सहमति नहीं है। “काश्यप ! जो आचार-विचार को छोड़ देता है, वह शील-सम्पत्ति, समाधि-सम्पत्ति और प्रज्ञा-सम्पत्ति की भावना नहीं कर सकता और न उनका साधात्मकार हो कर पाता है। अतः वह भास्यम् और ब्राह्मण्य से चिल-कुल दूर है। काश्यप ! जब गिरु वैर और द्रोह से रहित होकर मैथी-भावना करता है और चिन-मलों के क्षय होने से निमंल चित्त की मुक्ति और प्रज्ञा की मुक्ति को इसी जन्म में स्वयं जामकर, स्वयं साधात्मकार कर विहरता है, तो वही पश्चातः अग्नि कहलाता है और वही ब्राह्मण भी। वास्तव में उसी की तपस्या भी सच्ची है। शील, समाधि और प्रज्ञा का तथा अतिवाद पर आश्रित कायवलेशमयी तपस्याओं को छोड़कर मध्यम-मार्ग रूपी जाये अष्टाङ्गिक मार्ग के अभ्यास का भी उपदेश वहाँ दिया गया है।

### पोट्ठपाद-सुत्त (दीघ. १९)

पोट्ठपाद नामक परिद्वाजक से भगवान् का सवाद। आत्मा और लोक के आदि और अन्त सम्बन्धी प्रश्नों को उठाना ब्रह्मचर्य के लिये सहायक नहीं, यहीं यहाँ पोट्ठपाद परिद्वाजक को भगवान् ने बताया है और शील, समाधि और प्रज्ञा की साधना करने का उपदेश दिया है। या लोक शाश्वत है या अशाश्वत, सान्त है या अनन्त, आदि प्रश्नों को भगवान् ने क्यों अव्याकृत अर्थात् अनिवेचनीय या अक्षयनीय कह कर छोड़ दिया है, इसका भी समाधान करते हुए भगवान् ने कहा है “पोट्ठपाद ! न मे अर्थ-बुद्ध, न अर्थ-युत, न अर्थ-युक्त, न निरोध के लिये, न विराग के लिये, त निरोध के लिये, न वानित के लिये, न शान-

के लिये, न संबोधि के लिये, न निर्वाण के लिये हैं, इसलिये मैंने इन्हें अव्याकृत कहा है।'

### सुभ-सुत्त ( दीघ. ११० )

भगवान् बुद्ध के परिनिवारण के बाद वह प्रवचन उनके उपस्थाक शिष्य बानन्द के द्वारा दिया गया। युभ नामक माणवक को एक प्रश्न का उत्तर देते हुए आनन्द बताते हैं कि भगवान् बुद्ध शील, समाधि और प्रज्ञा, इन तीन धर्म-स्कन्धों के बड़े प्रशंसक थे और इन्हें ही वे जनता को सिखाते थे। आनन्द द्वारा इन तीनों धर्मों का बुद्ध-गन्तव्य के अनुसार यहाँ विवरण दिया गया है।

### केवटु सुत्त ( दीघ. १११ )

केवटु नामक गृहपति-पुत्र के साथ भगवान् का संवाद। ऋषियों का विश्वाना भगवान् ने निश्चिद कर दिया है। उनके मतानुसार सब से बड़ा चमत्कार तो उपदेश का ही चमत्कार है, आदेशना-प्रातिहार्य या अनुशासनी-प्रातिहार्य (अनुशासन रूपी चमत्कार) ही है। देवताओं और ब्रह्मा को भी यहाँ उस तत्त्व के विषय में जहाँ पृथ्वी, जल, तेज और वायु का निरोध हो जाता है, अनभिज्ञ बताया गया है, जब कि बुद्ध उससे अभिज्ञ है।

### लोहित्त-सुत्त ( दीघ. ११२ )

लोहित्त (लोहित्य) नामक ब्राह्मण के साथ भगवान् का संवाद। भूठे और सच्चे शास्ताओं के विषय में भगवान् ने लोहित्त को उपदेश दिया है।

### तेविज्ज-सुत्त ( दीघ. ११३ )

वाशिष्ट और भारद्वाज नामक दो ब्राह्मणों के साथ भगवान् का संवाद। अपरोक्ष-अनुभूति और सत्य-साक्षात्कार के विना तीनों वेदों का ज्ञान व्यथा है, यह इस सुत्त की मूल भावना है। इस सुत्त में ऐतरेय ब्राह्मण, तैतिरीय ब्राह्मण, छन्दोग ब्राह्मण, छन्दावा ब्राह्मण, इन ग्रन्थों या परम्पराओं का उल्लेख हुआ है जो सम्भवतः उस नाम की उपनिषदों की ओर संकेत करते हैं। अट्टक, बामक, बामदेव, विद्वामित्र, पमदग्नि, अंगिरा, भरद्वाज, वशिष्ट, कश्यप और भूगु, इन दस ऋषियों को यहाँ मन्त्रों का कर्ता या वेदों का रचयिता बताया गया है<sup>१</sup>। तीनों

१. ये किन किन मन्त्रों के ब्रह्मा या रचयिता हैं, इसके लिये देखिये राहुल सोहत्यावनः दशान-विश्वर्ण, पृष्ठ ५२७-५२८

वेदों के ज्ञाता ब्राह्मण ब्रह्मा की सलोकता के मार्ग का उपदेश करते हैं, किन्तु ब्रह्मा को अपने अनुभव से, अपने साक्षात्कार से, जानते कोई नहीं। भगवान् बुद्ध एवं मध्यर अंग्यमधी उपमा करते हैं "बाशिष्ट ! वैविद्य ब्राह्मण जिसे न जानते हैं, जिसे न देखते हैं, उसकी सलोकता के लिये मार्ग उपदेश करते हैं। जैसे कि बाशिष्ट पुरुष ऐसा कहे—इस जनपद की जो सुन्दरतम् स्त्री (जनपद कल्याणी) है मैं उसको चाहता हूँ, उसकी कामना करता हूँ। उससे यदि लोग पूछे 'हे पुरुष ! जिस जनपद कल्याणी को तू चाहता हैं, तू क्या जानता हैं कि वह क्षमाणी है या ब्राह्मणी है या वैश्य स्त्री है या शूद्र स्त्री है ?' ऐसा पूछने पर वह नहीं कहे। तब उसमे पूछें हे पुरुष ! जिस जनपद-कल्याणी को तू चाहता है वह किस नाम वाली, किस गोत्र वाली, लम्बी, छोटी या मझोली है ? काली, इयामा, . . . . . किस ग्राम या नगर में रहती है ? . . . . . बाशिष्ट ! वैविद्य ब्राह्मणों ने ब्रह्मा को अपनी जीवितों से नहीं देखा . . . . . उसकी सलोकता के लिये मार्ग उपदेश करते हैं ! " उपास्य और उपासक के गुणों के भेद की ओर भी भगवान् ने संकेत किया है। उपास्य (ब्रह्मा) अ-परिग्रही, उपासक (ब्राह्मण) परिग्रही; उपास्य अवैर-चित्त, उपासक वैरवद्व, उपास्य वशवर्ती, उपासक वशशवर्ती। "बाशिष्ट ! सपरिग्रह वैविद्य ब्राह्मण काया छोड़ मरने के बाद परिग्रह-रहित ब्रह्मा के साथ सलोकता को प्राप्त कर सकें, मह सम्भव नहीं।" मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा की भावना के द्वारा साधक तथागत-प्रवेदित मार्ग का साक्षात्कार कर ब्रह्म-विहार में स्थित हो बाय, तो फिर "बहु अपरिग्रह भिक्षु काया छोड़ मरने के बाद अपरिग्रह ब्रह्मा की सलोकता को प्राप्त होगा, इसमें सन्देह नहीं।" आचरण की सम्भता को यहाँ भगवान् ने सदा के लिये स्मरणीय शब्दों में रख दिया है।

### महावमा

#### महापदान-सुत्त ( दीप. २१ )

भगवान् के पूर्ववर्ती छह बृद्धों, मध्य विपस्ती (विपश्यो) मिथो (गित्ती) वेस्तम् (विश्वभृ) भद्रकल्प, ककुसन्व (ककुच्छन्द) और कोणा-गमन की जीवनियों का वर्णन। गोतम बृद्ध की जीवनी के आधार पर ही ये गढ़ लिये गये हैं, जिनमें ऐतिहासिक तत्त्व कुछ नहीं।

### महानिदान-सुच ( दीघ. २१२ )

प्रतीत्यसमुत्पाद का इस सूत में विस्तृततम् विवरण है। सूत के प्रारम्भ में आनन्द यह कहते हैं दिक्षाई पड़ते हैं "आश्चर्य है भन्ते ! अद्भुत है भन्ते ! कितना गम्भीर है और गम्भीर सा दीक्षता भी है यह प्रतीत्यसमुत्पाद, किन्तु मुझे वह साक्ष साक्ष दिक्षाई पड़ता है"। भगवान् उन्हें समझते हैं "ऐसा मत कहो आनन्द ! यह प्रतीत्यसमुत्पाद गम्भीर है और गम्भीर सा दिक्षाई भी देता है। आनन्द ! इस घर्मे को जानने से ही यह प्रजा उलझे सूत सी, माठे पड़ी रसी सी, मूज बलवद सी, अपाय, दुर्गति और पतन को प्राप्त होती है और संसार से पार नहीं हो सकती।" इसके बाद प्रतीत्यसमुत्पाद का विस्तृत विवरण है, उसके विभिन्न १२ अंगों की व्याख्या के साथ ।

### महापरिनिव्वाण-सुच ( दीघ. २१३ )

महापरिनिव्वाण-सुच दीघ-निकाय का सम्भवतः सबसे अधिक महत्वपूर्ण सूत है। यहाँ हम भगवान् के अन्तिम जीवन का बहु मार्गिक और सच्चा चित्र पाते हैं। इस सूत में प्रवानतः इतनी घटनाओं की सूचना हम पाते हैं (१) वज्जियों के विनष्ट अज्ञातशर्जु के अभियान का इरादा (२) बुद्ध की अन्तिम यात्रा (३) अस्वपाली गणिका का भोजन (४) भगवान् को कट्टी बीमारी (५) चून्द का दिया अन्तिम भोजन (६) जीवन का अन्तिम समय (७) स्त्रियों के प्रति भिष्मूओं के लक्षण्य (८) चक्रवर्ती की दाह-किया (९) सुभद्रा की प्रदर्जना (१०) अन्तिम उपदेश (११) भगवान् का परिनिर्वाण (१२) दाह-किया (१३) स्तूप-निर्माण। इन सब घटनाओं का संक्षिप्त निदर्शन भी यहाँ नहीं किया जा सकता। केवल एक-दो प्रसंग लेख बढ़ किये जा सकते हैं। परिनिर्वाण से पूर्व आनन्द ने भगवान् से पूछा "भन्ते ! तथागत के घरीर को हम कौसं करेंगे ?" भगवान् ने उत्तर दिया "आनन्द ! तथागत की शरीर-पूजा से तुम बेपर्वाह रहो। तुम तो आनन्द सच्चे पदार्थ के लिये ही प्रयत्न करना, सच्चे पदार्थ के लिये ही उद्योग करना। सच्चे अर्थ के लिये ही अप्रमादी, उच्चीगी, आत्मसंयमी हो विहरना।" आनन्द से पूछा "भन्ते ! स्त्रियों के साथ हम कैसा बर्ताव करेंगे ?" "अ-दर्शन, आनन्द !" वास्तव में बुद्ध के अन्तिम जीवन से परिचित होने के लिये और उनके सेवक किया आनन्द के साथ उनकी इस समय की चारिकाओं के लिये इस सूत का पड़ना अत्यन्त आवश्यक है। महा-परिनिर्वाण प्राप्त करने से पूर्व भगवान् ने भिष्मूओं को

आश्वसित किया "आनन्द ! शायद तुम को ऐसा हो—हमारे शास्ता चले गये, अब हमारे शास्ता नहीं हैं। आनन्द ! ऐसा मत समझना । मैंने जो धर्म और विनय तुम्हें उपदेश किये हैं, वे ही मेरे बाद तुम्हारे शास्ता होंगे ॥" अनुकम्पक शास्ता ने अन्तिम बार भिक्षुओं को सम्बोधित किया "हन्त ! भिक्षुओं, अब तुम्हें कहता है—ममी मंस्तार (हृत वस्तुएँ) व्यवधर्मा (नाशवान्) है, अप्रमाद के साथ (जीवन के लक्ष्य को) सम्पादन करो"—यही तथागत का अन्तिम वचन था । राजगृह से लेकर कुसिनारा तक की बृद्ध-धारा का वर्णन, जहाँ-जहाँ भगवान् रुके उनके पूर्ण विवरण के साथ, हमें यहीं मिलता है । इस प्रकार अन्वलिठिका, नालन्दा, पाटलिङ्गाम, कोटिलाम, नादिका, वैशाली, मंडगाम, हत्यिगाम, और पावा आदि स्थानों का वर्णन आया है । वैशाली मण्डल के सात शुणों की प्रशंसा भी भगवान् ने इस सूत में की है ।

### महासुदस्सन-सुत्त ( दीघ. २।४ )

भगवान् बृद्ध अपने एक पूर्व जन्म में महासुदस्सन नामक चक्रवर्ती राजा थे । उसी समय की उनकी जीवनी का विस्तृत विवरण है । 'महासुदस्सन जातक' के कथालक से यहीं समानता और असमानता दोनों ही है ।

### जनवसभ-सुत्त ( दीघ. २।५ )

विश्वसार मरने के बाद जनवसभ नामक यथा के रूप में स्वर्ग-लोक में उत्पन्न हुआ । उसने इस सूत में अपने गृह से बृद्ध-धर्म की प्रशंसा की है । देवेन्द्र शक और सनलकुमार द्वारा भी इस सूत में बृद्ध-धर्म की प्रशंसा करते दिखाये गये हैं । इस सूत में काशी, कोल, बिज, मल, चेति(चेदि) कुरु, पंचाल, मच्छ (मत्स्य) और शूरसेन जनपदों का उल्लेख है ।

### महागोविन्दसुत्त ( दीघ. २।६ )

भगवान् बृद्ध अपने एक पूर्व जन्म में महागोविन्द नामक व्याधुण थे । उसी का यहीं प्रवालतः वर्णन है । जब इस अंत को एक जातक ही समझना चाहिये । ये से इस सूत में भी पूर्व सुत्त (जनवसभ सूत्त) की तरह देवराज इन्द्र और सनलकुमार द्वारा बृद्ध-धर्म की प्रशंसा करवाई गई है । बृद्धकालीन भारत के राजनीतिक भूगोल का वर्णन इस सूत की एक प्रधान विशेषता है । यहीं काशी-कोशल और अंग-मण्ड आदि राज्यों का विवरण दिया गया है । अहमक राज्य के पोतन नामक नगर का भी निवेदा है ।

## महासमय-सुन्त ( दीघ. २०७ )

इस सूत में बुद्ध के दर्शनार्थ देवताओं का आगमन विस्तारा गया है।

## सक्कपच्छ-सुन्त ( दीघ. २१९ )

शक्र (इन्द्र) द्वारा उह प्रस्तों का पूछा जाना। उसके द्वारा बुद्ध-धर्म की प्रशंसा।

## महासतिपट्ठान सुन्त ( दीघ. २१९ )

इस सूत में चार स्मृति-प्रस्त्वानों यथा कायानुपश्यना, वेदनानुपश्यना, चित्तानुपश्यना और धर्मानुपश्यना का विशद विवरण किया गया है। ये चार स्मृति-प्रस्त्वान 'सत्त्वों की विशुद्धि के लिये, शोक के निवारण के लिये, दुःख और दीमेनस्य का अतिक्रमण करने के लिये, सत्य की प्राप्ति के लिये और निवाण की प्राप्ति और साकाल्कार के लिये एकायन (सबोंतम्, अकेले) सामग्रे हैं' ऐसा भगवान् ने यहाँ कहा है।

## पायासि राजञ्च-सुन्त ( दीघ. २१० )

पायासि राजन्य के साथ भगवान् बुद्ध के शिष्य कुमार काश्यप के संवाद का वर्णन है। पायासि राजन्य परलोक में विश्वास नहीं करता। वह यह मानता है कि मरने के साथ जीवन उच्छ्वस हो जाता है। उसका तर्क स्पष्ट है। (१) भरे हुओं को किसी ने लौट कर जाते नहीं देखा। (२) धर्मात्मा आस्तिकों को भी मरने की इच्छा नहीं होती। (३) जीव के निकल जाने पर मृत शरीर का न तो बजन ही कम होता है और न जीव को कहीं से निकलते जाते देखा जाता। भौतिकवादी पायासि का कुमार काश्यप ने समाधान करने का प्रयत्न किया है। पायासि के मतानुसार "यह भी नहीं है, परलोक भी नहीं है। जीव मरने के बाद फिर नहीं पैदा होते और अच्छे दूरे कर्मों का कोई फल भी नहीं होता।" इस मत के अनुसार ब्रह्मचर्य का अभ्यास ही व्यर्थ है। बुद्ध का मन्तव्य अनात्मवाद होते हुए भी पायासि के भौतिकवाद से तो फिर भी ठीक विपरीत है।

## पाथिक वग्ग

## पाथिक-सुन्त ( दीघ. ३११ )

सुनक्षत्र लिङ्छविपुत्र के बौद्ध धर्म-व्याग की बात फिर इस सूत में आई है। वह इसलिये रुट होकर भिलू-संघ को छोड़ कर चला गया था कि भगवान् ने उसे

कृद्विवल मही दिखाया । "सुनवत्त ! क्या मैंने तुमसे कभी कहा था—  
सुनवन्त ! आ मेरे धर्म को स्वीकार कर । मैं तुम्हें अलौकिक कृद्विवल दिखा-  
़करूँगा ?" "नहीं भल्ले !" "मूँख ! यह तेरा ही अपराध है" । ईश्वर के जगत्कर्तृत्व  
का भी इस सूत में खंडन किया गया है ।

### उदुम्बरिक सीहनाद सुत्त ( दीघ. ३।२ )

उदुम्बरिक नामक परिद्रावक-आराम में भगवान् ने यह सिहनाद किया, अतः  
इसका यह नाम है । यह सिहनाद भगवान् ने व्यग्रोच नामक परिद्रावक के प्रति  
किया । यहाँ भगवान् ने भूती और सज्जी तपस्थाओं विषयक उपदेश दिया है और  
बृद्ध-धर्म की साधना से इसी जन्म में शान्ति की प्राप्ति को दिखाया है ।

### चक्कवत्तिसीहनाद सुत्त ( दीघ. ३।३ )

स्वावलम्बन, ब्रत-पालन एवं चार स्मृति-प्रस्थानों के अध्यास का उपदेश ।  
भिजुओं के कलंब्यों सम्बन्धी उपदेश भी ।

### अग्नात्य-सुत्त ( दीघ. ३।४ )

इस सूत्त में वर्ण-व्यवस्था का खंडन किया गया है । जन्म की अपेक्षा यहाँ  
कर्म को ही प्रशान्त माना गया है ।

### सम्पसादनिय-सुत्त ( दीघ. ३।५ )

परम ज्ञान में बृद्ध के समान आज तक कोई नहीं हुआ । बृद्ध अत्यन्त विनाश  
और निरहंकार है । बृद्ध के उपदेशों की विशेषताओं का विवरण भी ।

### पासदिक-सुत्त ( दीघ. ३।६ )

निर्घन्य ज्ञातपुष्ट ( तीर्थद्वार भगवान् महावीर ) के पावा में जोवल्य-प्राप्ति की  
इस सूत्त में सूचना है । बृद्ध के उपदिष्ट धर्म, अव्याकृत और व्याकृत वाते, पूर्वान्त  
और अपरान्त दर्शन, चार स्मृति-प्रस्थान आदि विषय जो धूर्व के सूतों में आ  
चूके हैं, यहाँ फिर विवृत किये गये हैं । साथ ही यहाँ यह भी बताया गया है कि  
बृद्ध-धर्म चित्त की शुद्धि के लिये है और यही उसका प्रमुख उद्देश्य और उपयोग है ।

### लक्खण-सुत्त ( दीघ. ३।७ )

इस सूत्त में ३२ महापुरुष-लक्षणों का विवरण है । साथ ही किस कर्म-  
विषय से किस किस शुभ लक्षण की प्राप्ति होती है, यह भी दिखाया गया है ।  
इस प्रकार नैतिक उद्देश्य स्पष्ट है ।

### सिंगालोबाद-सुत्त ( दीघ. ३८ )

सिंगाल ( सिंगाल ) नामक गृहगति-मुत्र ( वैश्य-मुत्र ) को भगवान् द्वारा पुरे गृहस्थ-धर्मों का उपदेश । चार पाप के स्वान, छह सम्पत्ति-नाश के कारण, मिथ और अभिन्न की पहचान तथा छह विद्याओं की पूजा करने का बौद्ध विद्यान, जादि वातों का विवरण है । जानायें बुद्धघोष ने कहा है कि गृहस्थ उम्बन्धी कर्तव्यों में कोई ऐसा नहीं है जो यहाँ छोड़ दिया गया हो । महसुत बौद्ध धर्म में गृहस्थ धर्मों के स्वरूप और महत्व को समझने के लिये अत्यन्त आवश्यक है । अबोक ने इस सुत्त की भावना को अपने अभिलेखों में बार-बार ग्रहण किया है ।

### आटानाटिय-सुत्त ( दीघ. ३९ )

बौद्ध रक्षा-मन्त्र । सात बुद्धों को नमस्कार जादि और इत प्रकार भूत-वक्तों से रक्षा करने का उपाय । यह सुत्त बुद्ध की विद्याओं से भेद नहीं खाता । यह चार का परिवर्द्धन ही ज्ञान पड़ता है, जैसा अत्य अनेक विद्याओं का भी विचार है ।

### संगीत परियाय-सुत्त ( दीघ. ३१० )

एक संख्या से लेकर दस संख्या तक के वर्गीकरणों में बुद्ध-मत्तव्यों की सूची ।

### दसुत्तर-सुत्त ( दीघ. ३११ )

एक से लेकर दस संख्या तक के धर्मों में कोन कोन से उपकारक, भावनीय, परिज्ञेय ( त्याज्य ), प्रहातव्य, हानभागीय ( पतनकारक ), विदेय भागीय, दुष्प्रति-वेध्य, उत्पादनीय, अभिज्ञेय, या साक्षात्करणीय हैं, इसका विवरण ।

### आ—मञ्जिभम-निकाय<sup>१</sup>

मञ्जिभम-निकाय में मध्यम आकार के सूतों का संग्रह है । इसलिये इसका यह नाम पड़ा है । सुत्त-पिटक में इस निकाय का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण स्वान है । महापांडित राहुल सांकृत्यायन ने इस निकाय को 'बुद्धवचनग्रन्थ' कहा है जो इसमें निहित बुद्ध-वचनों की सर्वविध महत्व को देखते हुए बिलकुल दीक्ष ही है । फैक जैसे सत्येहवादी विदान को भी मञ्जिभम-निकाय की मौलिक सूत्रग्रन्थ के सामने

१. केवल मञ्जिभम-पण्डितसक अर्थात् सुत्त ५१-१०० देवतानगरो लिखी ने श्री भागों में बन्धवी विद्यव विद्यालय हारा प्रकाशित, जाग प्रबन्ध सुत्त ५१-३०; भाग द्वितीय सुत्त ७१-१०० ( श्री जागवत हारा भंपादित ) हिन्दी ने महापांडित राहुल सांकृत्यायन ने इसे अनुवादित किया है । यह अनुवाद महावीर सभा, सारनाथ, हारा सन् १९३३ में प्रकाशित किया गया है ।

नत-प्रस्तुत का होता रहा है और उन्होंने भी यह स्वीकार किया है कि मणिभूमि-निकाय में हम निश्चय ही धर्म-स्थानी के कुछ महत्वपूर्ण उद्गार पाते हैं। जर्मन बिडान् डाइ द्वाल्फो ने महत्वतः इसी एक ग्रन्थ के आधार पर अपने गण्डीर बोढ़ धर्म सम्बन्धी निवालों की रखना की है। मणिभूमि-निकाय का वर्गीकरण १५ बगों में है, जिनमें कुल मिला कर १५२ सूत हैं। हम इन वर्गीकरण की स्फरेखा पहले दिखा चुके हैं। अतः यहाँ असि संशिष्ट रूप में केवल मणिभूमि-निकाय के सूतों के विषय की ओर इंगित साझा करेंगे।

### (१) मूल परिचय वस्त्र

१. मूल परिचय-सूत—सारे धर्मों का मूल नामक उपदेश—त मैं, न मेरा, न मेरा आत्मा—अनात्मवाद-अनाशक्तिवाद।
२. सञ्चासव-सूत—“मिथुओ ! सारे जित्त-मलों के संचर (रोक) नामक उपदेश को मैं तुम्हें देता हूँ, ध्यान से सुनो !”
३. घम्म दायाद-सूत—“मिथुओ ! तुम मेरे धर्म के वारिस बनो, धनादि भोगों (आभिष) के दायाद नहीं। मिथुओ ! तुम पर मेरी अनुकूल्या हैं।”
४. भय-मेरव-सूत—बन-ज्ञांड और सूनी कुटियों में रहने वाले ज्ञानुद्ध कायिक तर्मे तंगकृत मिथुओं को कनी-कमी भव हो उठता है। इसे केसे दूर किया जाय, इसका जानुस्तोषि नामक धार्हण को भगवान् का उपदेश है, स्वकीय पूर्व-ज्ञानुभव के आधार पर। “ज्ञाहण ! शायद तेरे मन में ऐसा हो— जावे भी अमण गोतम अ-वीतराग अ-वीत द्वेष, अ-वीत मोह है, इसीलिये जरूर, बन-ज्ञांड तथा सूनी कुटिया का सेवन करता है !” ज्ञाहण ! मैं दो यातों के लिये ज्ञात भी अरण्य सेवन करता हूँ (१) इसी शरीर में अपने सात-विहार के विचार से (२) जागे आने वाली जनता पर अनुकूल्या करने के लिये, ताकि मैंना अनुगमन कर नह भी सुफळ की भागी हो !”
५. अनंगम-सूत—राग, द्वेष और मोह से रहित (अनंग) और उनसे युक्त अवित्यों के जार प्रकार—सारिपुत्र, मौद्गुल्यायन और अग्न मिथुओं के आभिक संलाप।
६. आकंसेय-सूत—“मिथुओ ! शील-सम्पद होकर विहरों, प्रातिमोक्ष रूपी सवभ से संयमित होकर विहरों, ध्यान और विपध्यना से युक्त ही मूने परों की शरण लो !”

७. बल्य सुत—मैले वस्त्र पर रंग नहीं चढ़ता। किन्तु साफ वस्त्र पर चढ़ जाता है। चित्त के लिम्बल होने पर सुगति भी बनिबाल्य है। वह नदियों के स्नानादि से प्राप्त नहीं होती। 'बाह्यण ! तू यदि भूत नहीं बीलता, प्राणियों को नहीं मारता, विना दिया लेता नहीं, तो गया जाकर क्या करेगा, द्युद्र जलाशय भी तेरे लिये गया है।'
८. सल्लेख-सुत—ताप-विहार का उपदेश।
९. सम्मादिट्ठ-सुत—सम्यक् दृष्टि पर धर्मसेनापति सारिपुत्र का प्रबन्ध।
१०. सति पट्ठान-सुत—चार स्मृति-प्रस्तावनों का उपदेश। यही विषय दीप्तिनिकाय के भाषासतिपट्ठान-सुत का भी है। केवल कुछ अंश वही अधिक है।

## (२) सीहनाद वग्ग

११. चूल सीहनाद-सुत—चार बातों में बीड़ भिक्षुओं की अत्य धर्मविलभियों से विशेषता।
१२. भग्नाचौहनाद-सुत—सुनवक्त लिङ्छविपुत्र यह कह कर भिक्षु-संघ को छोड़कर चला गया है "थमण गोतम के पास आये ज्ञान-दर्शन की पराकाष्ठा नहीं है, उत्तर-मनुष्य धर्म नहीं है। वह केवल अपने ही विज्ञान से सोचे, अपनी प्रतिभा से जाने, तर्क से प्राप्त, धर्म का उपदेश करते हैं।" इसी प्रसंग को लेकार भगवान् द्वज और धर्मसेनापति सारिपुत्र में संलाप। तथागत के दस बल तथा चार वैशारदमों का वर्णन। इसी प्रसंग में भगवान् ने अपनी पूर्व उपस्थियों का वर्णन भी किया है "सारिपुत्र ! यह मेरा रक्षा-चार था। पपड़ी पड़े अनेक वर्ष के मैल को शरीर में संचित किये रहता था.... भीषण बन-बोड में प्रवेश कर विहरता था—मुँड की हाइड्यों का सिरहाना बना इमजान में शयन करता था—सारिपुत्र ! जब मेरे पेट के चमड़े को पकड़ता तो पीठ के कौटे को ही पकड़ लेता था, पीठ के कौटे को पकड़ते समय पेट के चमड़े को ही पकड़ लेता था—इस दुष्कर उपस्थि से भी मेरे उत्तर मनुष्य-धर्म नहीं पा सका..... आज सारिपुत्र ! मेरी आपूर्व अस्ती को पहुँच गई है..... सारिपुत्र ! अशन, पान शयन की छोड़, मल-मूत्र-त्याग के समय की छोड़, तथागत की धर्म-देशना सदा अखंड ही चलती रहेगी।" द्वज-बीबनी की दृष्टि से यह सुत अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

१३. महादुक्षकवन्ध-सूत—दुःख, उसका हेतु और निरोध ।
१४. चूल दुक्षकवन्ध-सूत—उपर्युक्त के समान ही विषय ।
१५. अनुमान-सूत—महामौद्गल्यायन का प्रवचन । सावधानी पूर्वक आत्म-प्रत्यवेक्षण करते हुए सदाचारी जीवन विताने का उपदेश ।
१६. चेतोखिल-सूत—वित के पाँच कटीों का भगवान् के द्वारा वर्णन ।
१७. बनपत्त-सूत—बनप्रस्त में विहरने का उपदेश ।
१८. मधूपिडिक-सूत—भगवान् के द्वारा धर्म की व्यपरेखा का वर्णन । कञ्चनात (कात्यायन) द्वारा उसकी विस्तार से व्याख्या ।
१९. द्वेषावितक-सूत—भगवान् द्वारा अपने पूर्व अनुभवों का वर्णन । चित्तमलों का शमन, ध्यान, आर्य अष्टाङ्गिक भार्ग, अभिसम्बोधि-प्राप्ति का वर्णन ।
२०. वितक सण्ठान-सूत—वितकों को वश में करने का उपाय ।

### (३) ओपम्म वग्ग

२१. ककवूपम-सूत—आरे से चौरे जाने पर भी जो नित को बिना दूषित किये जान्त न रह सके, वह बुद्ध का विषय नहीं है ।
२२. अलगद्वूपम-सूत—धर्म के विषय में मिथ्या धारणाएँ रखना सर्व को पूछ से एकड़ना है ।
२३. वर्मिक-सूत—नर-देह की असारता एवं निर्वाण-प्राप्ति की वाधाएँ ।
२४. रथविनीत-सूत—ब्रह्मचर्य के उद्देश्य और विशुद्धियाँ ।
२५. निकाप-सूत—मार से कैसे बचें ?
२६. अरियपरियेसन-सूत—बुद्ध के द्वारा अपने महाभिनिष्ठमण एवं (पासरासि-सूत) —अभिसम्बोधि-प्राप्ति का वर्णन । धर्म-चक्र-प्रवर्तन का भी वर्णन ।
२७. चूलहत्यिपदोपम-सूत—सत्य-प्राप्त मूनि के आशचर्य ।
२८. महाहत्यिपदोपम-सूत—उपादान-स्कन्धों से विमुक्ति, प्रतीत्यसमृताद । सभी कुशल धर्म जार आर्य सत्यों में निहित है ।
२९. महामारोपम-सूत—देवदत के संघ को छोड़ जाने के बाद भगवान् का भिक्षु जीवन के उद्देश्यों पर उपदेश ।
३०. चूलसारोपम-सूत—पूर्वोक्त के समान ही । इस सूत में छह तैयिकों या तत्कालीन आचार्यों का वर्णन भी है ।

## (४) महायमक वग्म

३१. चूल गोसिंग-सुत—अनिरुद्ध, किंविल और नन्दिव की प्रव्रज्या एवं सिद्धि-प्राप्ति ।
३२. महागोसिंग-सुत—गोसिंग शालवन किस प्रकार के भिक्षु में मृशोभित होगा ?
३३. महागोपालक-सुत—भिक्षु के लिये आवश्यक ग्यारह वर्ते ।
३४. चूल गोपालक-सुत—अच्छे और बुरे शास्त्राओं के अनुयायियों की दशा ।
३५. चूल सच्चक-सुत—सच्चक नामक आजीवक को पञ्चस्तन्ध और अनात्मवाद का उपदेश ।
३६. महासच्चक-सुत—मगवान् बुद्ध का अभिसम्बोधि और समाधि पर प्रबचन । काया की साधना के ऊपर मन की साधना की स्थापना ।
३७. चूलतण्हासंखय-सुत—तृष्णा का धय कैसे हो ?
३८. महातण्हा संखय-सुत—अनात्मवाद का तृष्णा-धय के रूप में उपदेश । वर्ष में भी अनासन्क्षित आवश्यक ।
३९. महा-अस्सपुर-सुत—
४०. चूल अस्सपुर-सुत—
- } भिक्षुओं के कर्तव्यों का वर्णन ।

## (५) चूल यमक वग्म

४१. सालेयक-सुत—कुछ प्राणी क्यों सुमति और कुछ क्यों दुर्गति प्राप्त करते हैं ?
४२. वेंजक-सुत—उपर्युक्त के समान विषय ।
४३. महावेदलङ्घन-सुत—वेदना, संज्ञा, शील, समाधि, प्रज्ञा, आशु, उपमा और विज्ञान पर धर्मसेनापति सारिपुत्र का प्रबचन ।
४४. चूलवेदलङ्घन-सुत—आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग, मंजावेदयित-निरोध, स्पर्श, वेदना तथा अनुशास्यों पर भिक्षुणी धर्मदिक्षा का प्रबचन ।
४५. चूल धर्मसमादान-सुत—धर्मानुयायियों के चार प्रकार ।
४६. महाधर्मसमादान-सुत—उपर्युक्त के समान ही ।
४७. वीरामयक-सुत—ठीक विमर्श कैसे हो ?

४८. कोसमिव्य-सूत—कीदास्त्री के गिर्कुओं को भेलजोल के लिये उपयोगी छह बातों का उपर्युक्त ।

४९. ब्रह्मनिमन्तिक-सूत—ब्रह्मा को सृष्टिकर्ता मानना ठीक नहीं ।

५०. मारनवनिय-सूत—महामोदगल्यायन का मार को तर्जन ।

#### (६) गहणति वग्म

५१. कन्दरक-सूत—आत्म-निर्वातन के विशद प्रबचन !

५२. अटठक नागर-सूत—म्यारह अमृत द्वार (ध्यान) ! आनन्द निर्वाण-मार्ग पर स्थित ।

५३. सेक्ष्य-सूत—दैश्य जनों के कर्त्तव्यों पर आनन्द का प्रबचन ।

५४. पोतलिय-सूत—आवेद-मार्ग क्या है ?

५५. जीवक-सूत—मांस-भक्षण पर बुद्ध-पत ।

५६. उपलिन-सूत—दीर्घ तपस्वी निर्घन्य के साथ भगवान् का संवाद ।

५७. कुबुकुरवतिक-सूत—निरर्थक वत । कर्म पर भी प्रबचन ।

५८. अभयराजकुमार-सूत—उपकारी अप्रिय सत्य को भी दोलना कर्त्तव्य है। यदि वह उपकारी हो है। राजगृह के वेणुवन में इस सूत का उपदेश भगवान् ने अभयराजकुमार को दिया ।

५९. वहुदेवनिय-सूत—देवनाभो का वर्णकरण ।

६०. अगणक-सूत—हिविधा-रहित (अपर्णक) धर्म का उपदेश ।

#### (७) भिक्षु-वग्म

६१. ब्रह्मवलटिठक-राहुलोवाद-सूत—"राहुल ! तुझे सीखना चाहिये कि मैं प्रत्यवेक्षण कर कायद-कर्म, वचन-कर्म, मन-कर्म का परिशोधन करेंगा।" ब्रह्मवलटिठका (वेणुवन के विमारे वासनधार) में राहुल के प्रति भगवान् का उपर्युक्त ।

६२. महाराहुलोवाद-सूत—राहुल को प्रश्नान्तः आनापानसति (प्राणायाम) के अभ्यास का उपदेश। "राहुल ! पृथ्वी-समान ध्यान की भावना कर।

..... जैसे राहुल ! पृथ्वी में शूचि वस्तु भी फैलते हैं, अशूचि वस्तु भी फैलते हैं..... उससे पृथ्वी दुखी नहीं होती, स्लानि नहीं करती, धृणा नहीं करती। इसी प्रकार राहुल ! पृथ्वी समान भावना करते तेरे जित को अच्छे लगने वाले स्थान न चिपटेंगे....., राहुल ! मैत्री-भावना

का अभ्यास कर। जो देख है, उससे छूट जायेगा। राहुल ! करुणा-भावना का अभ्यास कर। जो तेरी परम्परीड़ा-करण इच्छा है, वह हट जायगी। राहुल ! उपेक्षा-भावना का अभ्यास कर ! जो तेरी प्रतिहिसा है, वह हट जायगी। राहुल अशुभ-भावना का अभ्यास कर। जो तेरा राग है, वह चला जायगा' आदि ।

६३. चूल-मालूक्य-सुत—लोक शाश्वत है या अशाश्वत, आदि इस प्रश्न चूल-मालूक्य पृथि ने भगवान् ने किये। भगवान् ने उन्हें अव्याकृत (अव्याकृत-अकथनीय) करार दे दिया, क्योंकि इनका उत्तर या कथन सार्थक नहीं, अहम-उपयोगी नहीं और न वह वैराग्य, निरोध, ज्ञानि, उत्तम, परम, ज्ञान एवं निर्वाण के लिये ही आवश्यक है ।

६४. महा-मालूक्य-सुत—पौर्व संयोजनों (सत्काय दृष्टि, विचिकित्सा, शील-वत परामर्श, काम-राग व्यापाद) के प्रहाण का सार्ग ।

६५. भद्रालि-सुत—भद्रालि नामक भिक्षु को आचार-भाग्य का उपदेश ।

६६. लकुटिकोपम-सुत—स्वविर उदायी को भगवान् का घमोपदेश । "उदायी ! कोई कोई मूर्ख पुरुष मेरे 'यह छोड़ो' कहने पर ऐसा कहते हैं "क्या इस छोटी बात के लिये, तुम्ह बात के किये, यह अमरण जिद कर रहा है" और वह उसे नहीं छोड़ते। किन्तु जो भिक्षु सौख्यने बाले होते हैं, उन्हें यह होता है 'यह बलवान् बन्धन है, दृढ़ बन्धन है, स्थिर बन्धन है, स्थूल कलिगर (पशुओं के गले में बाधने वा काष्ठ) है। जैसे उदायी ! पोय-लता के बन्धन से बंधी लकुटिका (गोरेख्या) पशी वही बध, बन्धन या मरण की प्रतीक्षा करती है। उदायी ! जो आदमी यह कहे 'चूँकि यह लकुटिका पशी पोय-लता के बन्धन से बंधा है, वह वही बध, बन्धन या मरण की प्रतीक्षा कर रहा है, किन्तु उसका वह निर्वेल बन्धन है, सड़ा बन्धन है, कमजोर बन्धन है'। बया उदायी ! ऐसा कहते वह ठीक कह रहा है ?" "नहीं भन्ते ! वह लकुटिका पशी जिस पीयलता के बन्धन से बंधा है, वह उसके लिये बलवान् बन्धन है, स्थूल कलिगर (पशु के गले में बाधने का काष्ठ) है" आदि ।

६७. चातुर्म-सुत—चातुर्मा के भिक्षुओं को आचार-तत्त्व का उपदेश ।

६८. नलक-ज्ञान-सुत—नलक-ज्ञान-के पलास-ज्ञन में भगवान् का भिक्षु अनि-रुद्र से धर्म-संलाप ।

३९. गुलिसानि-सूत—गुलिसानि नामक आरण्यक भिक्षु को लब्ध कर घर्म-  
मेनापति सारिपुत्र का भिक्षुओं को उपदेश ।
४०. कीटागिरि-सूत—भिक्षु-नियमों सम्बन्धी उपदेश, विशेषतः एक समय  
भोजन करने के प्रसंग को लेकर ।

### (८) परिचाजक—वग्म

४१. तेविजवच्छगोत्त-सूत—भगवान् बुद्ध वेविद्य है ।
४२. अगिवच्छगोत्त-सूत—अगिवच्छगोत्त नामक परिचाजक को भगवान् की  
शिष्यत्व-आप्ति ।
४३. महावच्छगोत्त-सूत—उपासकों और भिक्षुओं के कर्तव्य ।
४४. दीघनख-सूत—दीघनख परिचाजक से भगवान् का संलाप ।
४५. मागन्दिय-सूत—मागन्दिय नामक परिचाजक को कामनाओं के त्याग का  
उपदेश ।
४६. सन्दक-सूत—सन्दक नामक परिचाजक को आनन्द का उपदेश ।
४७. महासकुलुदायि-सूत—महासकुलुदायि परिचाजक को उपदेश ।
४८. समणमेडिका-सूत—शुद्ध आचरण पर भगवान् बुद्ध का उपदेश ।
४९. चूलसकुलुदायि-सूत—निराण नाथपुत्र और उनका चातुर्याम संवर ।
५०. वेष्वनस-सूत—पूर्वोक्त के समान ही विषय-वस्तु ।

### (९) राजवग्म

५१. पाटिकार-सूत—भगवान् बुद्ध के एक पूर्वजन्म का विवरण ।
५२. राष्ट्रपाल-सूत—राष्ट्रपाल की प्रवृत्त्या का विवरण । कुरुदेश की राजधानी  
बुल्लकोटिका का उल्लेख है । राष्ट्रपाल यहीं के निवासी थे ।
५३. मत्तदेव-सूत—बुद्ध के एक पूर्व जन्म की कथा ।
५४. पाषुरिण-सूत—चारों बण्डों को समता का उपदेश आयूष्मान् कात्यायन  
द्वारा । बुद्ध-निर्वाण के बाद आयूष्मान् कात्यायन का मधुरा के राजा  
अवन्तिपुत्र से मधुरा के गुन्दावन में संवाद ।
५५. बोधिराजकुमार-सूत—भगवान् बुद्ध की जीवनों, स्वयं उनके शज्जों में,  
गृहत्याग से बुद्धत्व-आप्ति तक ।
५६. अंगुलिमाल-सूत—डाक अंगुलिमाल का जीवन-परिचर्तन ।
५७. पिग्जातिक-सूत—सम्पूर्ण दुःख प्रेम से उत्पन्न होने वाले हैं ।

८८. वाहितिक-सूत—यूम और अग्रम आनंदण । बुद्ध अथवा आचरण नहीं कर सकते । आनन्द का प्रतीक्षित को उपदेश ।
८९. परमतेतिय-सूत—मोगों के दुष्टरिणाम एवं बृद्ध की प्रजा का दर्शन ।
९०. कण्णकत्थल-सूत—यथा बृद्ध सर्वज्ञ है ?

### (१०) ब्राह्मण—वस्त्र

९१. ब्रह्मण-सूत—३२ महापुरुष-नाम । तपागत के दीर्घिय का विवरण । ब्राह्मण, वेदग्र आदि शब्दों की बुद्धमतालूसार व्याख्या ।
९२. मेल-सूत—सेल ब्राह्मण की प्रवर्त्तया ।
९३. अस्सलायन-सूत—जातिवाद का खंडन । धार्मस्ती-निवारी ज्ञानवलायन ब्राह्मण का यहाँ वर्णन है, जिसे विद्वानों ने प्रधन-उपनिषद् के धार्मवलायन से मिलाया है ।
९४. घोटमूख-सूत—आत्म-वीहा की निन्दा ।
९५. चंकि सूत—बृद्ध के गुणों का वर्णन । सत्य की रक्षा और प्राप्ति के उपाय ।
९६. फासुकारि-सूत—जातिवाद की निन्दा ।
९७. धानजानि-सूत—गृहस्थ-नन्दन अग्रम कर्म करने का बहाना नहीं ।
९८. वास्त्रठ-सूत—वास्त्रविक ब्राह्मण कौन ?
९९. सुन-सूत—गृहस्थ और संन्यास की तुलना ।
१००. संगारव-सूत—बृद्ध-जीवनी का विवरण । बृद्ध इतर देवताओं के अस्तित्व की स्वीकृति ।

### (११) देवदह वस्त्र

१०१. देवदह-सूत—निमठों के मत का विवरण ।
१०२. पञ्चतय-सूत—आत्मवाद आदि नाना मतवादों का खंडन ।
१०३. किन्ति-सूत—सिद्धुओं की एकता का उपदेश ।
१०४. सामग्राम-सूत—बृद्ध के गुल उपदेश । संघ में ज्ञानि सम्बन्धी उपदेश । इस सूत में जैन तीर्थकर भगवान् महावीर की कौवल्य-प्राप्ति की सूचना है ।
१०५. सुनक्षत-सूत—ध्यान और चित्त-संयम पर प्रबन्धन ।
१०६. आनंजसप्ताय-सूत—मोगों की निलासता ।
१०७. गणकमोगलाल-सूत—आनंदण की गिरा का अभिक विकास ।

१०८. गोपकमोगलान-सुत्त—बुद्ध के बाद धर्म ही भिक्षुओं का एक मात्र प्रतिचारण। गोपक ब्राह्मण के साथ आनन्द का संलग्न। इन सुत्त से हमें यह सूचना भिलती है कि राजा प्रचोत के भय से मगधराज अजातशत्रु नगर सुरक्षित करवा रहा था।

१०९. महापुण्णम-सुत्त—पञ्चसंकाश एवं अनात्मवाद सम्बन्धी उपदेश।

११०. चूलपुण्णम-सुत्त—अच्छे और बुरे मनुष्य।

### (१२) अनुपद-वग्म

१११. जनुपद-सुत्त—भगवान् बुद्ध द्वारा सारिपुत्र के बील, समाधि और प्रजा आदि की प्रशंसा।

११२. छब्बिसोवन-सुत्त—अहंत् की पहचान क्या है?

११३. गायुरिस-सुत्त—सत्पुराव और असत्पुराव की पहचान।

११४. लेकिनव्य-असेवितव्य-सुत्त—व्याया सेवनीय और क्या असेवनीय है?

११५. बहुजातुक-सुत्त—धातुओं का निरूपण।

११६. इसिगिलि-सुत्त—प्रत्येक बुद्ध-सम्बन्धी उपदेश।

११७. महायत्तारीसक-सुत्त—तथ्यक् समाधि सम्बन्धी प्रवचन।

११८. आनामानसति-सुत्त—ग्राणायाम और ध्यान सम्बन्धी बुद्ध-प्रवचन।

११९. कायनतासति-सुत्त—काये कायानुपस्थना क्या है?

१२०. बंसारप्पलि-सुत्त—संस्कारों की उत्पत्ति कैसे?

### (१३) सुञ्जवता-वग्म

१२१. चूल-मुञ्जाता-सुत्त—चित की शूल्यता का व्योग।

१२२. महामुञ्जाता-सुत्त—उपर्युक्त का विस्तृत विवरण।

१२३. बच्छरियडसुत्तवस्म-सुत्त—आवश्यं-पुरुषा भगवान् बुद्ध का जन्म कही व कैसे?

१२४. बष्टुल-सुत्त—व्यविर व्यवकूल की जीवन-धर्म।

१२५. दन्तभूमि-सुत्त—नंगम का उपदेश।

१२६. भूमिज-सुत्त—जीन सा यद्युच्चर्व रफल है?

१२७. अनुरुद्ध-सुत्त—भिज अनिश्चितद्वारा अ-प्रमाणा चेतो-विमुक्ति पर उपदेश।

१२८. उपविकलेशवात्त—कलह रोकने के उपाय। योग-साधन।

१२९. बाल पंडित सुत्त—जीवन के बाद कल?

१३०. देवदत्त-सुत्त—यम का भय?

## (१४) विभंग-वग्म

१३१. भद्रकरत-सुत—भूत और भविष्यत की चिन्ता छोड़ बत्तमान में करने करना ही सर्वोत्तम मंगल है।
१३२. आनन्द भद्रकरत-सुत—उपर्युक्त के समान ही।
१३३. महाकल्पाल भद्रकरत-सुत—उपर्युक्त का ही अधिक विस्तृत वर्णन।
१३४. लोमसकंगिय-भद्रकरत-सुत। उपर्युक्त के समान ही।
१३५. चूल कम्मविभंग-सुत—संसार में असमानता क्यों? कर्म-फल।
१३६. महाकम्मविभंग-सुत—उपर्युक्त के समान ही।
१३७. सल्लायतन-सुत—छह आयतनों एवं चार स्मृति-प्रस्थानों का वर्णन।
१३८. उद्देश विभंग-सुत—इन्द्रिय संयम, आन और अगरियह का उपदेश।
१३९. अदण-विभंग-सुत—जान्ति का रहस्य?
१४०. धातु विभंग-सुत—छह धातुओं (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, चित्त) का निरूपण।
१४१. सच्चविभंग-सुत—चार आर्य सत्यों का विवरण।
१४२. दशिणा-विभंग-सुत—संघ को दिया हुआ दान स्वकित को दिये हुए दान से बढ़कर है।

## (१५) सल्लायतन-वग्म

१४३. अनायपिण्डिकोवाद-सुत—अनायपिण्डिक की बीमारी और मृत्यु का वर्णन। अन्तिम समय में घरमेनोपति सारिपुत्र का उसको उपदेश।
१४४. छत्रोवाद-सुत—छत्र की आत्महत्या।
१४५. पुण्योवाद-सुत—स्वविर पूर्ण की महिलाता।
१४६. नन्दकोवाद-सुत—अनात्मवाद एवं सात बोध्यज्ञों का वर्णन।
१४७. चूलराहुलोवाद-सुत—अनात्मवाद-गम्भन्धी उपदेश।
१४८. छटक-सुत—अनात्मवाद का विस्तृत विवेचन।
१४९. महासल्लायतनिक-सुत—तृष्णा और दुख का निरूपण।
१५०. नगर विदेश्य-सुत—आदरणीय अमण-ब्राह्मण कौन है?
१५१. पिङ्गात-गरिमुद्दि-सुत—मिथा की शुद्धि कैसे? स्मृति-प्रस्थान आदि की भावना का उपदेश।
१५२. इन्द्रिय-भावना-सुत—इन्द्रिय-संयम कैसे हो?

दोष-निकाय के समान मजिभम-निकाय में भी छठी और पाँचवीं शताब्दी ईसकी पूर्व के भारतीय समाज की सामान्य अवस्था का अच्छा पता चलता है। उसके अनेक वर्णनों में तत्कालीन भौगोलिक और ऐतिहासिक तथ्यों की महत्वपूर्ण सूचना मिलती है। मजिभम-निकाय में वर्णित भगवान् के उपदेश जिन जिन प्रदेशों, नगरों, निगमों (कस्बों) भागों या वन-प्रदेशों में हुए उनकी एक सूची बनाई जाय तो उस समझ की भौगोलिक परिस्थितियों को समझने में हमारी बड़ी सहायता होगी। अंग, चंग, शोनकम्बोज, भग्न, काशी, कुरु, कोशल जैसे प्रदेश, वैशाली, चम्पा, पाटलिपुत्र, कपिलवस्तु, राजगृह, नालन्दा, श्रावस्ती, कौशाम्बी, वाराणसी जैसे नगर, शाक्यों के मेदलुम्प, कोलियो के हलिहवसन, कुरुओं के थुल्लकोटि आदि कस्बे तथा दण्डकारण्य, कलिज्ञारण्य जैसे वन-प्रदेश, जो बृद्ध-चरणों की रज में अंकित हुए थे, हमारे लिये एक गीरधरमयी स्मृति का सन्देश देते हैं। कोशल-प्रदेश के दो मूर्ख नगरों श्रावस्ती और साकेत के बीच ढाक (रथ विनीत) का सम्बन्ध था, यह हम रथ विनीत-सुतन्त (मजिभम १।३।४) से जानते हैं। बृद्धकालीन भारत का पूरा धार्मिक वातावरण मजिभम-निकाय में उपस्थित है। ब्राह्मणों के जीवन, कर्मकांड और सिद्धान्त, उनके मन्त्रकर्ता ऋषि, वाद-प्रश्नपत्रा और पौरोहित्य, सभी का मूर्तिमान् चित्र हमें यहाँ मिलता है। इस दृष्टि से पूरा ब्राह्मण-वर्ग अर्थात् ९१वें सुत से लेकर १०० वें सुत तक का भाग अत्यन्त महत्वपूर्ण है। ब्रह्माय, शैल, अश्वलायन, घोटमूल, चंकि, एसुकारी, धानजानि, वासेन्ठ, भारद्वाज, सूभ, संगारव, मार्गनिदय आदि तत्कालीन ब्राह्मण-दार्शनिकों का पूरा अविकल्प, उनके मत और बृद्ध-धर्म के साथ उनके सम्बन्ध का पूरा चित्र हमें इन सूतों में मिल जाता है। इसी प्रकार तत्कालीन परिवाजकों का चित्र हमें अग्निवच्छगोत् सुत जैसे सूतों में मिल जाता है। दीपनल, मन्दक, सकुलादायि, वेलानस आदि परिवाजकों के साथ भगवान् के संबाद जो मजिभम-निकाय में दिये हुए हैं, अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। तत्कालीन छह प्रसिद्ध आचार्यों (पुराण कस्तप, मवस्तुलि गोसाल, अजित केस कम्बलि आदि) तथा अन्य सम्प्रदायों के मतों को जानने की दृष्टि से अपणणक-सुत, तेविज्ज्व-वच्छगोत्सुत, तथा महावच्छगोत्सुत आदि अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। कन्दरक-सुत, उपालि-सुत तथा अभ्यवराजकुमार सुत में निर्णय ज्ञापुत्र (भगवान् महावीर) के मत के सम्बन्ध में भी कुछ सूचना मिलती है। तत्कालीन साधकों में जो नाना प्रकार की

पीड़ाजनक तापरत्यागि प्रचलित थी और जिनका अभ्यास गोतम ने भी अपने ज्ञान की खोज में किया था, महामीहनाद-सूत, कुचकुरत्विक-सूत वौधि-राज-कुमार-सूत और कन्दरक-सूत में वर्णित हैं। पासरामि-सूत, वौधि-राजकुमार सूत और महासच्चक-सूत में भगवान् बुद्ध को आत्मकथा है, जो बहुत ही महत्वपूर्ण है। प्रधापु-सूत में उनके इयागिव का वर्णन है जो उनकी दैनिक चर्या तथा साधारण शारीरिक चाल-द्वाल को समझने के लिये बहुत आवश्यक है। इसी प्रकार महाराहुलोवाद-सूत, महावच्छमोत्त-सूत तथा महासकुलद्वायि-सूत में संघ के नियम और जीवन सम्बन्धी महत्वपूर्ण सामग्री है। कन्दरक-सूत और वानजानि-सूत भी इस दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। पियज्ञातिक-सूत, घरम-चेतिय-सूत, तथा कण्णात्वलक-सूत में तत्कालीन राजाओं का कुछ विवरण है। भाग्यनिय सूत में तत्कालीन आपुवेद की अवस्था का कुछ विवरण मिलता है। यहाँ ऊर्ध्व विरेचन, अबो विरेचन आदि जा वर्णित हैं। वाहीमिति-सूत में महीन कपड़े के बनने का वर्णन है और उपालि-सूत में रसने की कला का विवेच आया है। सारांश यह कि मरिनम निकाय में तत्कालीन समाज, धर्म, कला-कौशल आदि का एक अच्छा चित्र हमें मिलता है।

### इ—संयुक्त-निकाय<sup>१</sup>

संयुक्त-निकाय (संयुक्त-निकाय) छोटे-बड़े सभी प्रकार के सूतों का संग्रह है। इसीलिये इसका यह नाम पड़ा है।<sup>२</sup> विशेषतः संयुक्त-निकाय में छोटे ज्ञानार के सूत ही अधिक हैं। संयुक्त निकाय के सूतों की कुल संख्या २८८९ है। प्राप्त: प्रत्येक सूत संविष्ट गच्छात्मक बुद्ध-प्रबलन के रूप में ही है। बुद्धकालीन

१. लियोन फियर डारा पांच जिल्हों में रोमन-लिपि में सम्पादित एवं पालि-देवसृष्ट सोसायटी, लन्दन, १८८४-९८, द्वारा प्रकाशित। जमरतिह का लिहली संस्करण बलोतारा, १८९८, प्रसिद्ध है। इस निकाय का हिन्दौ-अनुवाद निकाय जगदीश काश्यप ने किया है, किन्तु वह अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ।
२. 'वौधि,' 'वर्जिनिम' और 'लहूक' शब्दों की पृष्ठभूमि में सौ 'संयुक्त' (संयुक्त, मिथित) शब्द का यही अर्थ हो सकता है। बौद्ध परम्परा को भी प्रधानतः यही अर्थ मान्य है। गायगर ने अवश्य 'संयुक्त' शब्द की सार्वकात्ता को उस निकाय में विषय वार सूतों के संयुक्त या वर्गीकृत करने के कारण माना है। ऐसिये उनका पालि लिटरेचर एंड सोसायेटी, पृष्ठ १८।

भारतीय प्रामीण जीवन का इस निकाय में वडा सुन्दर चित्र मिलता है। साथ में काल्पात्मक अवश्यक भी है और लोक-आत्मान भी कहीं कहीं समाविष्ट है। यथा, यक्षिणी, देवता और गन्धवों का इस निकाय में कुछ अधिक निर्देश मिलता है। किन्तु इससे पृष्ठ भूमि की स्वामाविकता में कोई अल्पर नहीं आने पाया। भगवान् वृद्ध के स्वभाव और जीवन की विशेषताएँ, उनकी गम्भीरता, प्राणि-मात्र के प्रति उनकी करुणा, इसी कारण मनुष्य-समाज के अज्ञानों पर उनके मृदुल व्यञ्जन, उनकी चिन्मता, मानवीयता, सभी इस निकाय में उसी प्रकार प्रस्फुट होती है जैसे पूर्व के दो निकायों में। धैली की दृष्टि से भी इस निकाय की दीप और मजिमास की अपेक्षा कोई विशेषता नहीं। पुनर्जितयों कहीं दोनों निकायों की सी है। 'सदायतन वग्म, इसका एक अच्छा उदाहरण है। यथापि संयुक्त-निकाय का अधिकांश भाग गच्छ में है, किन्तु प्रथम वर्ग 'संग्राम वग्म' (गाथा-युक्त वर्ग) में वही सुन्दर, भावात्मक गाथाएँ, भी मिलती हैं। मार-संयुक्त और भिन्नतुनी-संयुक्त, आल्पानात्मक काव्य के सर्वोत्तम उदाहरण हैं। गच्छ और पद्म दोनों में ही यह आल्पान-साहित्य संयुक्त-निकाय में मिलता है। 'भिन्नतुनी-संयुक्त' जैसे आत्मानों में नाटकीय तत्त्व भी अपनी विशेषता लिये हुए हैं, जो इन रचनाओं की एक विशेष मति और क्रियाशीलता प्रदान करता है।

जैसा पहले दिखाया जा चुका है, संयुक्त-निकाय पांच वर्गों में विभाजित है, जिनमें क्रमशः ११, १०, १३, १० और १२ अव्याप्ति कुल मिला कर ५६ संयुक्त हैं। यह विभाजन पूर्णतया विषय की दृष्टि से नहीं है। जैसा विद्वन्मित्र ने कहा है, संयुक्त-निकाय के वर्गीकरण में तीन सिद्धान्तों का अनुवर्तन किया गया मालूम होता है (१) वृद्ध-वर्ग के किसी मूल्य पहलू का विवेचन करने वाले सुन्तों को एक संयुक्त में वर्गीकृत कर दिया गया है, जैसे बोञ्ज-झंसंयुक्त आदि। (२) मनुष्य, देवता या यथा आदि के निर्देश के आधार पर उनका अलग अलग वर्गों में विभाजन कर दिया गया है, जैसे देवता-संयुक्त आदि (३) वक्ता या उपरेष्ठा के रूप में जो प्रधान व्यक्ति अनेक सुन्तों में दृष्टिगोचर होता है, उस सम्बन्धी उपरेष्ठों को एक संयुक्त में सम्मिलित कर दिया गया है, जैसे सारिपुन-संयुक्त आदि।<sup>१</sup> वर्ग वार इन सुन्तों की विषय-वस्तु का यहाँ कुछ संक्षिप्त परिचय देना आवश्यक होगा।

१. हिन्दू और इंडियन लिटरेचर, जिल्ड दूसरी, पृष्ठ ५६; मिलाइये गाथगर : पालि लिटरेचर एंड लेंग्वेज, पृष्ठ १८

## १—संगाथ-वर्णना

१. देवता-संयुत—देवताओं ने भगवान् से कुछ प्रश्न पूछे हैं, जिनका उन्होंने उत्तर दिया है। काम-वासना, पुत्रजन्म, मिथ्या मतवाद और अविद्याश्रित इच्छाओं का किस प्रकार भगवान् ने दमन किया है, यह यही बताया गया है। पाप और आसक्ति मुक्ति पाने का मार्ग भी भगवान् ने यही बताया है।

२. देवदत्त-संयुत—देव-पुत्रों के कुछ प्रश्नों का उत्तर भगवान् ने दिया है। उन्होंने कहा है कि सूख-प्राप्ति का एक मात्र उपाय त्रोष-त्याग और सत्संगति ही है।

३. कोसल-संयुत—यह समूण संयुत कोशलराज प्रसेनजित् (प्रसेनदि) के विषय में है। प्रसेनजित् पहले बालरिनामक ब्रह्मण का शिष्य था। बाद में वह बृद्ध-वर्म में गृहस्थ-शिष्य (उपासक) के रूप में प्रविष्ट हो गया। भगवरराज अजातशत्रु (अजातसत्) और प्रसेनजित के बीच युद्ध होने का भी उल्लेख इस संयुत में मिलता है। यह युद्ध काशी-प्रदेश के ऊपर हुआ। प्राचीनिक विजय अजातशत्रु की हुई, किन्तु बाद में वह पराजित किया गया और प्रसेनजित् उसे बन्दी बनाकर कोशल ले गया। वही उसने अपनी पुत्री वज्ञा (वजिरा) का उसके साथ पाणि-ग्रहण कर काशी-प्रदेश उसे भेट-स्वरूप प्रदान किया।

४. मार-संयुत—बृद्ध और उनके शिष्यों की मार-विजय का बर्णन है। बृद्धस्व-प्राप्ति के बाद भी मार ने बृद्ध को ब्रह्मचर्य के जीवन से विचलित करने के लिये प्रभूत प्रयत्न किया। ढेले बरसाये, पत्थर फेंके, अनेक प्रकार के भय दिखलाये, यही तक कि 'तंचशाल' नामक गोव के गृहस्थों को कहा कि इस महाश्रमण को भोजन मत दो। एक दिन भगवान् को भिक्षा भी नहीं मिली। चूला-पूलाया रीता पात्र लेकर लौट आये। किन्तु मार के ये सब प्रयत्न विफल हुए और वह बृद्ध और उनके शिष्यों को ब्रह्मचर्य के जीवन से विचलित नहीं कर सका।

५. भिक्षुनी-संयुत—इस भिक्षुणियों के सुन्दर काव्य-मय आव्याज है। किस प्रकार गोतमी, उत्पलवणी (उप्लवणा) वज्ञा (वजिरा) आदि भिक्षुणियों बृद्ध-मार्ग का अनुगमन करती हुई मार पर विजय प्राप्त करती हैं, इसी का सुन्दर काव्य-मय बर्णन है।

६. ब्रह्मा-संयुत—बृद्धस्व-प्राप्ति के बाद बृद्ध को उपदेश करने की इच्छा नहीं हुई। सूर्या-विनाश का यह स्वाभाविक परिणाम था। विमुक्ति-मुख का

अनुभव करते हुए सफल हों तक समाधि में बैठे रहे। उहाँा को चिन्ता हुई, इस प्रकार तो लोक नष्ट हो जायगा। जाकर भगवान् से प्रार्थना की—भर्ते! लोक के हित के लिये धर्मोपदेश करें। भगवान् ने कहा कि जनता काम-वासनाओं में लिप्त है। वह उनके गम्भीर उपदेश को नहीं समझती। उहाँा ने भगवान् से अनुनय की कि संसार में कुछ अल्प-मल ग्राणी भी हैं और उनको भगवान् के उपदेश से अवश्य लाभ होगा। तबाहत ने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। उसके बाद भगवान् ने धर्म-चक्र-पर्वतीन करने के लिये बाराणसी की ओर प्रस्थान किया।

७. ब्राह्मण-संयुत—एक भारद्वाज गोत्रीय ब्राह्मण की प्रब्रज्ञा का वर्णन है। अपनी पत्नी के मूल से बुद्ध-प्रशंसा सुन कर वह भगवान् बृद्ध के दर्शन के लिये गया। वहाँ उनके उपदेश से प्रभावित होकर उसने विशरण (बृद्ध, धर्म और संघ की शरण) ली और प्रवर्जित हो गया।

८. वर्गीस-संयुत—वर्गीश नामक भिक्षु की काम-वासना पर विजय-प्राप्ति का वर्णन है। एक बार विहार में आई हुई कुछ सुन्दर, आभूषित लिंगों को देख कर उनके मन में काम उत्पन्न हो गया। काम-दुष्परिणाम का पर्यवेक्षण कर किस प्रकार इस भिक्षु ने काम-वासना से विमुक्ति पाई, इसका सुन्दर भावना-मय वर्णन है।

९. वन-संयुत—किस प्रकार वन-देवता भी पव-ब्रह्म भिक्षुओं को सम्पर्क मार्ग पर लगा देते हैं, इसका कुछ भिक्षुओं के उदाहरणों के साथ वर्णन है।

१०. यज्ञ-संयुत—इन्द्रकृष्ण और गृध्रकृष्ण पर्वतीं पर विचरते हुए भगवान् से कुछ यज्ञों ने प्रश्न पूछे हैं, जिनका उन्होंने उत्तर दिया है। अनेक प्रश्नों में एक यह भी है “भन्ते! यताइये कहीं से काम-वासना, द्वेष, असम्मोग, भय आदि उत्पन्न होते हैं?” भगवान् कहते हैं “हे यज्ञ! कहता हूँ। ध्यान से मूल है, इसका उत्तर देते हुए भगवान् कहते हैं ‘जिसका चित्त दिन-रात वैर-साधन में लगा है, वह वैर से मुक्त नहीं होता। किन्तु जो सब प्राणियों के प्रति अहिंसा और मैत्री-भावना का जागरण करता है, वह वैर से विमुक्त हो जाता है। इसी संयुत में एक यज्ञिणी की अपने प्रिय पुत्र को यह कह कर चूप करते हुए हम देखते हैं “चूप हो जा यिमकर! प्रिय वत्स चूप हो जा! देख मह-

भिक्षु कुछ कह रहा है। मुझे इसके वचन सुन लेने दे। यह मेरे लिये हितकार होगा।" इसी प्रकार एक और यजिणी कहती है "चूप हो जा उत्तर ! पुनर्बंस ! और बन्द कर दे ! देख, मुझे इन शास्त्रों के वचन सुन लेने दे।" यह और यजिणीयों के स्थान में यहाँ उस प्रभाव को ही अंकित किया गया है जो न केवल बृद्ध वत्तिक तत्कालीन भिक्षु-भिक्षुणियों के भी पवित्र जीवन ने साधारण जनता के हृदय पर डाला था। साधारण गृहिणियों भी उनके वचन को सुनने के लिये कितना उत्सुक रहती थीं और उसे अपने लिये कितना कल्याणकारी भानती थीं, यह इस सुन में दृष्टब्य है। इसी संयुत के अन्त में एक यज्ञ आकर भगवान् से कहता है "भिक्षु ! मैं तुम्हें एक प्रश्न पूछता हूँ। तू इसका उत्तर दे। यदि न दे सका तो मैं या तो तेरी लोपड़ी को फोड़ दूँगा या तुम्हें पकड़ कर गंगा में फेंक दूँगा।" भगवान् कहते हैं "मेरी लोपड़ी को फोड़ने वाला या मुझे पकड़ कर गंगा में फेंकने वाला इस समार में कोई नहीं है। हाँ, तू इच्छानुसार प्रश्न पूछ सकता है।" यज्ञ भगवान् के उत्तरों से सन्तुष्ट हो जाता है और अन्त में बुद्ध, घर्म और संघ की शरण में जाता है। इसमा ही नहीं वह कृतज्ञतापूर्वक कहता है "अब मैं गाँव से गाँव, कस्बे (निगम) से कस्बे, और नगर से नगर जाकर बृद्ध द्वारा उपर्युक्त ब्रह्म का जनताओं के कल्याण के लिये प्रचार करेंगे।" यज्ञ और बृद्ध के उपर्युक्त संवाद की तुलना विटरनिटज ने महाभारत के यज्ञ और युधिष्ठिर के संवाद से की है।<sup>१</sup> किन्तु दोनों में बहुत अन्तर है। महाभारत में आरम्भ से लेकर अन्त तक युधिष्ठिर यज्ञ की कृपा के भिक्षुक हैं और अपने उत्तरों द्वारा उसे प्रश्न कर के ही के अपनी विमुक्ति प्राप्त करते हैं। इसके विपरीत यज्ञ यहाँ यज्ञ पहले ही बृद्ध पर अपना प्रभुत्व स्वाप्नित करने में असफल हो जाता है। बृद्ध-गौरव से पराजित होकर ही वह प्रश्न पूछता है और अन्त में तो वह उनका अंजलिबद्ध शिष्य ही ही जाता है।

११. सक्क-संयुत—देवराज शक की बृद्ध द्वारा प्रशंसा है। ऋग्वेद का चत्वरी इन्द्र बौद्ध प्रभाव में आकार धमाकील बन गया है। वह वैसा असंघमी भी नहीं रहा। भगवान् ने इस प्रशंसा में इन्द्र की धमाकीलता और उसकी संयम-प्रायणता का ही विशेष वर्णन किया है। अपने इन्हीं गुणों के कारण

१. हिस्ट्री ऑफ इंडियन लिटरेचर, जिल्ड दूसरी, पृष्ठ ५८।

उसने ३३ देवताओं के ऊपर ऋचिपत्य प्राप्त किया है। इसी प्रसंग में देवामुर-संग्राम का भी इस संयुक्त में वर्णन आया है।

## २—निदान-वग्ग

१. निदान-संयुक्त—प्रतीत्य समुत्पाद का विशद वर्णन है। किस प्रकार अविद्या से संस्कार, संस्कार से विज्ञान, विज्ञान से नाम-रूप, नाम-रूप से सळायतन, सळायतन से स्पर्श और इस प्रकार क्रमणः वेदना, तृष्णा, उपादान, भव, जाति और जरा-मरण-ओक-परिदेव-दुख आदि की उल्लिख होती है और किस प्रकार इनका क्रमणः निरोष होता है, इसी का उपदेश यही भगवान् ने भिक्षुओं को दिया है। विषय-निहृष्ण प्राप्तः महानिदान-सूत (दीप-२१२) के समान ही है।

२. अभिसमय-संयुक्त—अणुमात्र भी चित्त-मलिनता रहते निर्वाण की प्राप्ति सम्भव नहीं। अतः भिक्षु को उत्तरोत्तर अनवरत अध्यवसाय करते हुए अ-प्रहीण चित्त-मलों को नष्ट करना चाहिये और सदाचरण की वृद्धि करनी चाहिये।

३. घातु-संयुक्त—चलु, ओत्र, द्वाण, जिह्वा, काष, मत, आदि इत्यियों, रूप, अल्प, मन्त्र, रस, सूक्ष्मव्य और धर्म उनके विषयों एवं चलु-विज्ञान, ओत्र-विज्ञान, द्वाण-विज्ञान, जिह्वा-विज्ञान, काष-विज्ञान एवं मनोविज्ञान उनके विज्ञानों, इस प्रकार इन अठारह घातुओं का यही विवरण दिया गया है।

४. अनमतग्न-संयुक्त—“मिथुओ ! इस सम्मार का आदि पूर्णतः अजात (अनमतग्न) है। तृष्णा और अविद्या से संचालित, भटकते-फिरते प्राणियों के आरम्भ का पता नहीं चलता।” यही इस संयुक्त की मूल भावना है।

५. कर्सप-संयुक्त—भगवान् बृढ़ ने महाकाश्यप की सन्तोष-वृत्ति की प्रशंसा की है। महाकाश्यप यथा-प्राप्त भोजन, यथा-प्राप्त वस्त्र, यथा-प्राप्त शयनासन (निवास-स्थान) और यथा-प्राप्त पञ्च-जीवध आदि की सामग्री से सम्पुष्ट हो जाने वाले हैं। भगवान् ने दूसरे भिक्षुओं को भी ऐसा ही होने का उपदेश दिया है।

६. लाभ-सम्पाद-संयुक्त—लाभ और सत्कार से विरत रहने का भिक्षुओं को भगवान् के द्वारा उपदेश दिया गया है। उन्होंने कहा है कि लाभ और

सत्कार को चाहने वाले भिक्षु का पतन हो जाता है और उसकी वही गति होती है जो अंकुश को निगलने वाली मछली की ।

७. राहुल संयुत—राहुल को संघम का उपदेश । शब्द, स्पष्ट, हय, रस मन्त्र, सभी अनित्य और दुःख-हृषि हैं । उनमें 'मे' या 'मेरा' की भावना करने से दुःख ही हो सकता है । उनमें से किसी के विषय में 'यह मे है' 'यह मेरा आत्मा है' ऐसी भावना करना उपयुक्त नहीं ।

८. लक्षण-संयुत—एक दिन घमंसेनापति सारिपुत्र और एक अग्र भिक्षु जिसका नाम लक्षण (लक्षण) था साथ साथ भिक्षा-चर्या को जा रहे थे । अचानक सारिपुत्र को हँसी आ गई । भिक्षा से लौट आने के बाद लक्षण ने उनकी इस हँसी का कारण पूछा । घमंसेनापति ने भगवान् बुद्ध और अन्य भिक्षुओं की उपस्थिति में उसका कारण बताया ।

९. ओपम्म-संयुत—भगवान् ने भिक्षुओं को सचेत और जागरूक रहने का उपदेश दिया है । यही उन्होंने उपमा (ओपम्म) की है । जिस प्रकार यदि किञ्चित्वा गणतन्त्र के लोग सतत जागरूक और सचेत नहीं रहें तो अज्ञातशत्रु (सगवरदात) उन्हें दबा लेगा, पराजित कर देगा, इसी प्रकार यदि भिक्षु जपने आचरण में खोड़ा भी प्रमाद करेंगे, तो उन्हें मार अपने फले में दबा लेगा ।

१०. भिक्षु-संयुत—महामोग्नलाल (महामीदग्न्याधन) का भिक्षुओं को 'आर्य-मौन' पर उपदेश । उन्होंने बताया है कि 'आर्य-मौन' का बास्तविक आचरण द्वितीय अथान की अवस्था में होता है । भगवान् बुद्ध नन्द और तिष्य (तिस्स) नामक भिक्षुओं को भिक्षु-मियमों का पूरा पालन करने को कहते हैं ।

### ३.—खन्धवमा

१. खन्ध-संयुत—पञ्चवस्कन्धों का वर्णन है । हय, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान अनित्य, परिवर्तन-दील और दुःख-हृषि हैं । इनमें 'यह मे है' 'यह मेरा है' या 'यह मेरा आत्मा है' इस प्रकार की भावना साधक को नहीं करती जाहिये । बल्कि इनके उदय (उत्पत्ति) और व्यय (विनाश) का प्रत्यवेक्षण करना चाहिये और इनमें मन को आसक्त नहीं करना चाहिये । पञ्चवस्कन्धों की अनित्यता और दुःखमयता का विन्तन करने पर काम-न्वासना रह ही नहीं सकती, और पूनर्जन्म, अविद्या, आत्माभिनिवेश, सभी नष्ट हो जाते हैं ।

२. राष्ट्र-संयुक्त—स्वविर राष्ट्र ने भगवान् से मार, तुष्णा, अनित्यता आदि पर प्रश्न पूछे हैं। भगवान् के उत्तर वडे मार्मिक हैं।

३. विद्युत-संयुक्त—मिथ्या मतवादों की उत्पत्ति का कारण भगवान् ने बताया है। रूप, वेदना, मन्त्रा, मंस्कार और विज्ञान में 'मे' या 'मेरा' की भावना करना, इस प्रकार के चिन्तनों में लगे रहना जैसे कि क्या यह लोक शाश्वत है या अशाश्वत है, मान्य है या अनन्य है, क्या जीव और शरीर दो अलग अलग हैं या एक है, आदि, इस प्रकार के विचारों की आसक्ति ही मिथ्या मतवादों का कारण है।

४. ओक्लन्ति-संयुक्त—चक्र, ध्रोत्र, ग्राण, जिह्वा, शरीर और मन, ये सभी अनित्य, परिवर्तनशील और द्रुत रूप हैं, इनमें 'आत्मा' (जला) की उपलब्धि नहीं होती, इस प्रकार जिसकी स्मृति सदा उपस्थित रहती है वही धर्म-मान में विचरण करने वाला भिन्न है।

५. उत्पाद-संयुक्त—चक्र, ध्रोत्र, ग्राण, जिह्वा, काय और मन का उत्पन्न होना ही जन्म, जरा, मरण, दुःख और शोक का उत्पन्न होना है—कृद-उपदेश।

६. किलेस-संयुक्त—किलेस या चित्त-मलों का विवरण है। चक्र और द्रस्य पदार्थ में, ध्रोत्र और शब्द में, ग्राण और गत्व में, जिह्वा और रस में, काय और स्पृष्टिय में, मन और धर्मों (पदार्थों) में इच्छा और आसक्ति का होना ही, चित्त का भल है।

७. सारिपुत-संयुक्त—आनन्द ने धर्मसेनापति सारिपुत से पूछा है कि उन्होंने अपनी इन्द्रियों को किस प्रकार शमित किया है ? धर्मसेनापति ने उत्तर-स्वरूप कहा है "एकान्त-बास (प्रविवेक) से उत्पन्न, सूख और सौमनस्य से युक्त, प्रथम ध्यान में स्थित रह कर, विषयों से दूर रह कर, 'यह मैं हूँ' 'यह मेरा हूँ' इस प्रकार के विचारों को ल्पान कर मैंने अपनी इन्द्रियों को शमित किया है।"

८. नाम-संयुक्त—नामों की चार प्रकार की उत्पत्तियाँ हैं, जैसे कि अंडे से उत्पत्ति, माँ के पेट से उत्पत्ति, स्वेद से उत्पत्ति, माता-पिता से उत्पत्ति।

९. सूर्यण-संयुक्त—सूर्यण नामक पश्चियों की भी चार प्रकार की उत्पत्तियाँ हैं, अंडे से उत्पत्ति, माँ के पेट से उत्पत्ति, स्वेद से उत्पत्ति, विना माता-पिता के उत्पत्ति।

१०. गन्धव्य-काय-संयुक्त—गन्धव्य जाति के देवताओं का वर्णन है।

११. वलाह-संयुत—‘वलाहक कामिक’ अर्थात् बादल हप्ती काया वाले देवताओं का वर्णन है।

१२. वच्छगोत्संयुत—वच्छगोत्स नामक परिवाजक की मिथ्या-धारणओं का भगवान् के द्वारा निवारण। क्या लोक शाश्वत है या अशाश्वत है, सान्त है या अनन्त है, जीव और शरीर एक ही है या अलग अलग है, आदि मिथ्या वारणाओं का कारण भगवान् ने पंच स्कल्पों (रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान) के वास्तविक स्वरूप (अनित्य, दुःख, अनात्म) का अज्ञान ही बताया है। वच्छगोत्स परिवाजक का भगवान् से सबाद मविभम-निकाय के तेविष्व वच्छगोत्स-भूत’ (१३।१) में भी हुआ है।

१३. भान (या समाधि) संयुत—ध्यान या समाधि का विवरण है। भगवान् ने कहा है कि जो पुरुष ध्यान और उसकी प्राप्ति की रक्षा करने में कृश्चल है, वही सर्वोत्तम ध्यानी है।

#### ४—सक्षायतन-वग्म

१. सक्षायतन-संयुत—बश, और रूप, श्वोऽथ और यथ्द, व्याण और गन्ध, काया और स्पर्श, यत और घर्म, सभी अनित्य, दुःख और अनात्म हैं। इन सब में ‘मे’ और ‘मेरा’ की भावना करना उपयुक्त नहीं। इनमें जब आसुकित को मनस्य नष्ट कर देता है, तो वह बन्धन से छूट जाता है। उच्चतम संयम भी यही है।

२. वेदना-संयुत—सुखा, दुःखा और न-सुखा-न-दुःखा, ये तीन वेदनाएँ हैं। इनमें सूख की वेदना को दुःख के रूप में देखना चाहिये, दुःख की वेदना को शूल के रूप में देखना चाहिये और न-सुख-न-दुःख की वेदना को अनित्य के रूप में देखना चाहिये। वेदनाओं को छोड़ देने वाला अनासक्त भिक्षु ही ‘सम्प्रकृदृष्टि’ सम्पन्न कहलाता है।

३. मातुगाम-संयुत—स्त्रियों-सम्बन्धी बृढ़-ग्रन्थन है। भगवान् ने स्त्रियों को पुरुषों की अपेक्षा अधिक दुःखभागिनी माना है। अतः ब्रह्मवर्य-जीवन की उनके लिये उतनी ही अधिक आवश्यकता भी। स्त्रियों को पौन विशेष कठ है—बाल्य काल में माता-पिता का घर छोड़ना पड़ता है, उसे छोड़ कर दूसरे (पति) के घर जाना पड़ता है, गर्भ भारण करना पड़ता है, प्रसव करना पड़ता है, पुरुष की सेवा करनी पड़ती है। संसार में रूप, धन, चरित्र और परिवर्षी स्वभाव

बाली एवं सन्तान प्रसविनी स्त्री का आदर होता है। यदि स्त्री पतिप्रता, विनीत, लज्जाशील और ज्ञानवती हो तो वह मरने के बाद सद्गति प्राप्त करती है। दुराचारणी, सूखी और निलंब्जा होने पर वह मरने के बाद दुर्गतियों में पड़ती है।

४. जम्बुखादक-संयुत—जम्बुखादक नामक परिवाजक के प्रति घर्म-सेनापति सारिपुत्र का बुढ़-घर्म पर उपदेश है। निवाण और अहंत्व का अथं सारिपुत्र ने राग, द्वेष और मोह से विमुक्ति कहा है। इसे प्राप्त करने का उपाय आवं अष्टाङ्गिक मार्ग ही है। जिसने राग-द्वेष को छोड़ दिया, वही मनुष्य सुखी है। आत्माओं (चित्त-मलों) से विमुक्ति पाने का आवं अष्टाङ्गिक मार्ग से अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है।

५. सामंडक-संयुत—सामंडक नामक परिवाजक के प्रति सारिपुत्र का 'निवाण' (निवाण) पर उपदेश है। विषय-वस्तु उपर्युक्त संयुत के समान ही है।

६. मोगल्लान-संयुत—महामोगल्लान (महामोद्गल्लायन) द्वारा भिकुओं की चार ध्यानों का उपदेश है। दीप और मञ्जिल निकायों के इस सम्बन्धी वर्णन से यही कोई विशेषता नहीं है। विलकुल उन्हीं शब्दों में यही भी चार ध्यानों का विवरण दिया गया है। अरुपावचर भूमि के आकाशानन्दयायतन, विज्ञानानन्दयायतन, आकिञ्चन्यायतन और नैवसंज्ञानासंज्ञायतन नामक ध्यान-अवस्थाओं का भी यही वर्णन किया गया है।

७. चित्त-संयुत—चक्र, श्रोत्र, ध्वाण, काय और मन स्त्रों इन्द्रियों बन्धन की कारण नहीं हैं। रूप, शब्द, गन्ध, स्पर्श और मानसिक घर्म भी बन्धन के कारण नहीं हैं। बन्धन की कारण तो वह बासना है, तृष्णा है, जो चक्र और रूप के संयोग से उत्पन्न होती है, श्रोत्र और शब्द के संयोग से पैदा होती है, ध्वाण और गन्ध के संयोग से पैदा होती है, काय और स्पर्श के संयोग से पैदा होती है, मन और घर्मों के संयोग से पैदा होती है। अतः इस बासना या तृष्णा का निरोध ही बन्धन-विमुक्ति का कारण है।

८. गामणि-संयुत—भोगवाद और लपदवरण की अतियों को छोड़कर मध्यम मार्ग पर चलने का उपदेश गामणि को दिया गया है। कोष को छोड़कर वशाशील होने का भी यही उपदेश दिया गया है।

९. असंखत-संयुत—निवाण असंख्त अर्थात् अहत है। राग, द्वेष और मोह का समूण निरोध ही 'निवाण' कहा जाता है, कायिक-मानसिक जागरूकता

(स्मृति-सम्प्रज्ञन) वित्त-शान्ति (रामध), आल्तरिक ज्ञान-दर्शन (क्षिपद्यन) चार स्मृति-प्रस्ताव और आपेक्षात्तिक मार्ग, यही उसकी प्राप्ति के सर्वोत्तम साधन है।

१०. अव्याकृत-संयुत—कोशलराज प्रसेनजित् ने क्षेमा (क्षेमा) नाम की भिक्षुणी से पूछा है “वया मृत्यु के बाद तथागत रहते हैं या नहीं रहते? या रहते भी हैं और नहीं भी रहते?” । क्षेमा ने इसके उत्तर स्वरूप केवल यह कहा है कि तथागत ने इसे अव्याकृत कर दिया है अर्थात् उन्होंने इसे ब्रह्मचर्य के लिये आवश्यक न समझकर अक्षयनीय कर दिया है । साथ में वह यह भी कहती है कि तथागत का ज्ञान गम्भीर समृद्ध के समान है, जिसकी वाह नहीं ली जा सकती । जब अनिरुद्ध, सारिपुत्र और सौदगल्यायन जैसे बुद्ध के अन्य शिष्यों से यह प्रश्न पूछा जाता है तो वे भी उसका उसी प्रकार उत्तर देते हैं जैसे क्षेमा भिक्षुणी ने दिया है । दोष और मणिकम निकायों के ‘इस अव्याकृत’ (अक्षयनीय) वर्मों के समान यहीं भी बृहद-मन्त्रव्य विमल जल के समान स्वरूप दिखलाई पड़ता है । पासादिक-सूत (वीघ. ३१६) और चूल मालुक्षन-सूत (मणिभृत. २५२१३) के समान ही इस संयुत की विषय-वस्तु है ।

#### ५—महावग्म

१. मग्न-संयुत—आपेक्षात्तिक मार्ग (सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकाल्प, सम्यक् वाणी, सम्यक् कर्मात्म, सम्यक् आजीव, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति, सम्यक् समाधि) का पूरे विवरण के माध्य वर्णन किया गया है ।

२. बोद्धभाग-संयुत—परम ज्ञान (बोधि) के सात बन्धों यथा स्मृति, धर्म-नवेशण (धर्मविचय) वीर्य, श्रीति, प्रवृत्ति (वित्त-प्रसाद) समाधि और उपेक्षा का विस्तृत वर्णन किया गया है ।

३. सतिपट्ठान-संयुत—काया में कावानुपस्थी होना, वेदनाओं में वेदमानुपस्थी होना, चित्त में चित्तानुपस्थी होना और वर्मों (पदार्थों) में धर्मानुपस्थी होना, इन चार स्मृति-प्रस्तावों (सतिपट्ठान) का यहीं दीप्ति<sup>१</sup> और मणिकम<sup>२</sup> निकायों के समान शब्दों में विस्तृत वर्णन किया गया है ।

१. देखिये महात्तिपट्ठान-सूत (वीघ. २१५)

२. सतिपट्ठान-सूत (मणिभृत. ११११०)

५. इन्द्रिय-संयुक्त—श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि और प्रज्ञा इन पांच इन्द्रियों अवबो ज्ञान-शक्तियों का वर्णन है।

६. समर्पणधान-संयुक्त—जो चित्त-मल अभी उत्पन्न नहीं हुए हैं, उनकी उत्पत्ति को रोकना, जो चित्त-मल उत्पन्न हो चुके हैं उनको नष्ट करना, जो शुभ कर्म अभी उत्पन्न नहीं हुए हैं उनको उत्पन्न करना, जो उत्पन्न हो चुके हैं उनको बढ़ाना, इन चार सम्यक्-प्रधानों या शुभ प्रयत्नों का यहाँ विस्तृत वर्णन किया गया है।

७. वल-संयुक्त—श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि और प्रज्ञा, इन पांच वलों का वर्णन है।

८. इदिपाद-संयुक्त—इच्छा-शक्ति (छन्द), वीर्य, चित्त और शीर्मांसा (वीर्मांसा) इन चार इदिपादों या योग-सम्बन्धी विभूतियों का वर्णन है।

९. अनुरुद्ध-संयुक्त—शरीर, वेदना, मन और मानसिक धर्म, इन सब पर अद्भुत संयम प्राप्त कर किस प्रकार स्पष्टिर अनिश्च ने योग की विभूतियों को प्राप्त किया है, इसका वर्णन है।

१०. ज्ञान-संयुक्त—ध्यान की चार अवस्थाओं का वर्णन है। वर्णन की भाषा विलकूल वही है जो प्रथम दो निकायों में। किस प्रकार शील और सदाचार में प्रतिष्ठित होकर, एकान्त-वास का सेवन कर, साधक कर्मणः ध्यान की प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ अवस्थाओं को प्राप्त करता है, इसका विप्रिटक में प्रायः समान शब्दों में अनेक बार वर्णन किया गया है।<sup>१</sup> संक्षेप में हम यही कह सकते हैं कि प्रथम ध्यान की अवस्था में वितर्क, विचार, प्रीति, सुख और एकाभ्रता रहते हैं। द्वितीय ध्यान की अवस्था में वितर्क और विचार का प्रह्लाण हो जाता है और केवल समाधि से उत्पन्न प्रीति और सुख रहते हैं। तृतीय ध्यान की अवस्था में प्रीति और सुख से भी उपेक्षा हो जाती है और साधक उपेक्षा और स्मृति के साथ ध्यान करने लगता है। चतुर्थ ध्यान में चूंकि सुख-दुःख, शीमनस्य, शीर्मनस्य पहले से ही अस्त हुए रहते हैं, अतः साधक न दुःख और न सुख वाले तथा स्मृति और उपेक्षा से शुद्ध, इस ध्यान को प्राप्त करता है।

१०. आनापान-संयुत—मगावान् ने प्राणायाम या व्यास-प्रवास को नियमित करने का उपदेश दिया है और उसे मार्ग-प्राप्ति का सहायक माना है।<sup>२</sup>

सोतापत्ति-संयुत—सोतापत्ति अवस्था अर्थात् धर्म समी नदी की धारा में पड़ता, इसका बर्णन किया गया है। बुद्ध-धर्म और संघ में जिसकी अदा और निष्ठा है वह सांसारिक लाभों की चिन्ता नहीं करता। वह इच्छा और द्वेष को छोड़कर फिर इस लोक में नहीं आता।

सञ्च-संयुत—चार आर्य सत्यों का बर्णन है। दुःख, दुःख-समुदय, दुःख-निरोध और दुःख-निरोध-गामिनी प्रतिपद्, इन चार आर्य सत्यों का उपदेश बुद्ध-धर्म की प्रतिष्ठा है। प्रायः समाज शब्दों में इन सम्बन्धी उपदेश का बर्णन विप्रिटक में अनेक बार आया है।

उपर्युक्त संक्षिप्त विवरण में यद्यपि वर्गों और संयुक्तों के बम से उनकी विवरण-सूत्र का संक्षिप्त दिग्दर्शन करा दिया गया है, किन्तु उनके असंख्य मूलों की वह सामर्थी अभी बाकी ही बच रहती है जो उन्होंने बुद्ध, उनके जीवन, उनके उपदेश, इसी प्रकार बुद्ध-शिष्यों के जीवन और उपदेश, तत्कालीन धर्मोपदेष्टाओं और वासिक विचारों के साथ बुद्ध और उनके धर्म का सम्बन्ध, तत्कालीन ऐतिहासिक और भौगोलिक परिस्थिति, एवं इसी प्रकार के अन्य महत्वपूर्ण विषयों के सम्बन्ध में दी है। इन सम्बन्धी समृद्धियों का कुछ संक्षिप्त दिग्दर्शन करना यहाँ आवश्यक होगा। संयुत-निकाय के 'धर्म तत्क यवत्तत-सूत' में (जो विनय-पिटक—महायाम के इस सम्बन्धी बर्णन की पुनरुक्ति ही है) हम बाराणसी के ऋषिपतन मृगदाव (वर्तमान सारनाथ) में पञ्चवर्षीय भित्तिओं को उपदेश करते देखते हैं। काम-वासनाओं में काम-लिप्त होना और काय-क्लेश में लगाना, इन दो अतियों के त्याग एवं आर्य ऋषित्रिक मार्ग

२. मिलाइये विशेषतः भवन्नेत्र-सूत (मणिभूम. १११५); द्वेषा वितरक सूत (मणिभूम. १२१९) महाभस्तपुर-सूत (मणिभूम. १४१९); चूलहरिष्यप-दोपम सूत (मणिभूम. १३१७; सामञ्जाकल सूत (दीप. १२); अम्बदृढ-सूत (दीप. १३); सोणवंड सूत (दीप. १४); कूटदन्त सूत (दीप. १५); महालिसूत (दीप. १५) पोट्ठपात्र-सूत (दीप. १९) केवड-सूत (दीप. १११) सुभ-सूत (दीप. ११०); चक्रवर्तिसीहनाद सूत (दीप. ३१३); संगोतिपरियमसूत (दीप. ३११०) आदि, आदि।

रुपी मध्यम-भार्ग के आचरण तथा जार आये सत्यों का उपदेश देते यहाँ हम प्रथम बार भगवान् को देखते हैं। सलायतन-संयुत में (यहाँ भी विनय-पिटक-महावग्म के समान ही) हम तथागत को भिक्षुओं को इस प्रकार सम्बोधित करते हुए देखते हैं "भिक्षुओ ! जिनमें भी मानुष और दिव्य पाप हैं, मैं उन सब से मुक्त हूँ। तुम भी दिव्य और मानुष पापों से मुक्त होओ ! भिक्षुओ ! बहुत जनों के हित के लिये, बहुत जनों के सुख के लिये, लोक पर दया करने के लिये, देवताओं और मनुष्यों के प्रयोजन के लिये, हित के लिये, सुख के लिये, विचरण करो। एक साथ दो मत जाओ ! भिक्षुओ ! आदि में कल्याणकारी, मध्य में कल्याणकारी, अन्त में कल्याणकारी धर्म का उसके पूरे बब्दों और अर्थों के साथ उपदेश करते हुए सम्पूर्ण, परिशुद्ध ब्रह्मचर्य का प्रकाश करो। संसार में अल्प दोष वाले प्राणी भी हैं। धर्म के न अवण करने से उनकी हानि होगी। सुनने से वे धर्म के जासने वाले होंगे। भिक्षुओ ! मैं भी जहाँ उद्देश्य और सेनावी गाँव है, वहाँ धर्म-देशना के लिये जाऊँगा।" सतिपट्ठान-संयुत के जरा-सुत में भगवान् की बृद्ध-वस्था का सर्वीव चित्र है। भगवान् अपराह्न में ध्यान से उठ कर धूप में बैठे हैं। आनन्द भगवान् को देखकर कहते हैं "आश्चर्य भन्ते ! अद्भुत भन्ते ! भगवान् के लम्हे का रंग उतना परिशुद्ध, उतना पर्यवदात (उज्ज्वल) नहीं है। अंग भी सिधिल ही गमे हैं। पूरी काया में भूरिंग पड़ी हुई है। शरीर आगे की ओर भूका है। और, कान, नाक आदि इन्द्रियों में भी विपरिणाम दिखाई पड़ता है।" "आनन्द ! यह ऐसा ही होता है ! यौवन में जरा-धर्म है, आरोग्य में व्याधि-धर्म है। जीवन में मरण-धर्म है।" हम भगवान् और उनके उपस्थाक शिष्य के विमल मनुष्य-कृप को यहाँ देखते हैं। इसी निकाय के सकलिक-सुत में हम सुचना पाते हैं कि भगवान् का पैर पत्थर के टुकड़े से बिछत हो गया है और वे स्मृति-सम्प्रबन्ध के साथ उसको सहन कर रहे हैं। इसी प्रकार सबक-संयुत में अनाधारिक की दीक्षा एवं जेतवन-दान का वर्णन है। विनय-पिटक के चूल्लवग्म में भी यही वर्णन आया है। संयुत-निकाय के भिस्तु-संयुत में हम सुनता पाते हैं कि कौशाम्बिक भिक्षुओं के दुर्घटहार के कारण भगवान् पाप-चीवर ले विना किसी भिक्षु को कहे अकेले ही पारिलेखक (पालिलेखक भी) नामक स्थान में एकान्त-दास के लिये चले गये हैं। संयुत-निकाय के 'उदायि-सुत' में हम भगवान् और स्वरित उदायी का

संवाद देखते हैं जो शास्ता और शिष्य के सम्बन्ध के अलावा बृद्ध-भर्मे के प्रारम्भिक स्वरूप पर भी पर्याप्त प्रकाश डालता है। "भन्ते ! पहले गृहस्थ रहते मुझे घर्मे से बहुत लाभ न मिला था । किन्तु भन्ते ! आज मैंने घर्मे को जान लिया । मुझे वह मार्ग मिल गया ।" "साथु उदाही ! तुझे वह मार्ग मिल गया । जैसे जैसे तू इसकी भावना करेगा, वृद्धि करेगा, यह तुझे बैसे ही भाव को ले जायगा जिससे कि तू जानेगा "आवागमन थाय हो गया, ब्रह्मचर्य-वास पूरा हो चुका, करना था सो कर लिया, अब कुछ करने को बाकी नहीं है।" भगवान् का अपने शिष्य भिक्षुओं के साथ कैसा अनुकम्पाप्रभय सम्बन्ध था, इसका एक और उदाहरण इसी निकाय में देखिये । मग्न-संयुक्त के चुन्द-सुन्त में हम चुन्द समणुद्रेस को भगवान् के पास घर्मेसेनापति के परिनिर्वाण वा सन्देश लाते देखते हैं । इसे मूनते ही आनन्द की क्या हालत होती है, यह उन्हीं के शर्वों में मून लीजिए "आद्युष्मान् सारिपुत्र परिनिवृत्त हो गये, यह मून कर भेरा शरीर ढीला पड़ गया है, मुझे दिखाएं नहीं सूझती, बात भी नहीं सूझ पड़ती ।" भगवान् सचेत करते हैं "क्यों आनन्द ! क्या मैंने पहले ही नहीं कह दिया है कि सभी प्रियों से जुदाई होती है । इसलिये आनन्द ! आत्म-दीप, आत्म-दारण, अ-प्राणलभ्वी होकर विहरो ! धर्मदीप, धर्म-दारण, अपरालभ्वी होकर विहरो ।" इसी संयुक्त के उक्काचेल-सुन में सारिपुत्र के परिनिर्वाण के थोड़े दिन बाद ही भगवान् को अपने द्वितीय प्रशान शिष्य महामीद्धाल्यायन के भी परिनिर्वाण की सूचना मिलती है । सभी शिष्य अपने शास्ता के सहित स्मृति-सम्प्रजन्य के साथ इस दुःख को सहते हैं । एक दिन भगवान् गंगा की रेती में उक्काचेल नामक स्थान पर विहरे रहे हैं । भिक्षु-परिषद् को विज्ञापित करने के लिये बैठते हैं किन्तु सबं प्रथम व्यान आता है अपने सद्यः परिनिवृत्त शिष्य सारिपुत्र और भीमोद्गल्यायन का । बृद्ध का मानवीय रूप कट्ट पड़ता है "भिक्षुओ ! सारिपुत्र और भीमोद्गल्यायन के बिना मुझे वह परिषद् शून्य सी जान पड़ती है । जिस दिशा में सारिपुत्र-भीमोद्गल्यायन विहरते थे, वह दिशा किसी और को न नाहने वाली होती थी" इतना ही कह पाते हैं कि भगवान् का मानवीय रूप उनके बृद्ध-रूप में परिवर्तित हो जाता है और "भिक्षुओ ! आश्वर्य है तथागत को । जद्भूत है तथागत को । इस प्रकाश के शिष्यों की जोड़ी के परिनिवृत्त ही जाने पर भी तथागत को शोक-परिदेव नहीं है ।... भिक्षुओ ! जैसे महान् वृक्ष के लड़े रहते भी उसकी सारबाली

वास्तव दूट जायें, उसी प्रकार भिक्षुओं ! तथागत के भिद्यु-संघ के रहते भी सार बाले सारिपुत्र और महामीद्यशङ्कयन का परिनिर्वाण है । सो वह भिक्षुओं ! कहीं से मिले । जो कुछ उत्पन्न होने वाला है, सब नष्ट होने वाला है । इसलिये भिक्षुओं ! आत्मदीप, आत्म-दारण, अनन्यशरण होकर विहरो, धर्म-दीप, धर्म-दारण, अनन्यशरण होकर विहरो ।” शास्ता का मानवीय रूप और आध तथा उनका बुद्धत्व यहाँ स्पष्टतम् रूप में दिखाई पड़ता है । बुद्ध-धर्म की साधना इसी जन्म को साधात् अनुभूति के लिये है, यह तथ्य इस निकाय के संबहुल-सूत से भली प्रकार हृदज्ञम् किया जा सकता है । एक ब्राह्मण आकर भिक्षुओं से कहता है “आप लोग वर्तमान को छोड़कर कालान्तर की ओर दौड़ रहे हैं । इस से तो यही अच्छा हो कि आप मानुष कामों का भोग करें ।” भिक्षु उत्तर देते हैं “ब्राह्मण ! हम वर्तमान को छोड़कर कालान्तर की चीज़ के पीछे नहीं दौड़ रहे । वल्कि कालान्तर की चीज़ को छोड़कर ब्राह्मण ! हम वर्तमान के पीछे दौड़ रहे हैं । ब्राह्मण ! भगवान् ने कामों को बहुत दुख बाले, बहुत प्रयास बाले, बहुत दुष्टरिणाम बाले, कालिक (कालान्तर) कहा है । किन्तु यह धर्म तो सांदृष्टिक के (वर्तमान में फल देने वाला) अ-कालिक, यहीं साधात्मार किया जाने वाला, वह तक पहुँचाने वाला और प्रत्येक शरीर में अनुभव करने योग्य है ।” अत-दीप सूत में हम आत्म-निर्भर होने का उपदेश पाते हैं, जिसकी पुनरावृत्ति भगवान् ने अनेक स्थलों पर की है और जो उनके धर्म के स्वरूप को समझने के लिये अति आवश्यक है । भगवान् सब को प्रश्नज्या का ही उपदेश नहीं देते थे । वल्कि गृहस्थान्नम् में रह कर भी वे प्रमाद-रहित जीवन की सम्भावना मानते थे । ऐसा ही उन्होंने राजों (मकान बनाने वाले मजदूरों) से इसी निकाय के धर्मति-सूत में कहा भी है “स्थपतियो ! गृहवास बाधापूर्ण है, मल का आगमन-मार्ग है । प्रत्यज्या खली जगह है । किन्तु स्थपतियो ! तुम्हारे लिये अप्रमाद से रहता ही उत्तम्यक है ।” ऐसा मालूम पड़ता है भगवान् के इस अप्रमाद-उपदेश को स्मरण कर के ही अशोक अपनी प्रजाओं को इतनी पुनरावृत्ति के साथ अ-प्रमाद, का जीवन बिताने को कहता है । संयुत-निकाय में बुद्धकालीन भारत में प्रत्यलित धार्मिक सम्प्रदायों और उनके प्रधान आचार्यों एवं बुद्ध और

१. देखिये आगे इसमें अध्याय में अशोक के अभिलेखों का विवरण ।

उनके घर्म के साथ उनके सम्बन्धों पर भी प्रकाश ढालने वाले काफी बर्णन हैं। इस प्रकार संयुत-निकाय के लग्नव-संयुत में हम उस काल के छः प्रसिद्ध आनांदीं मध्या पूर्ण कात्यायण, मन्त्रली (मन्त्रकरी) गोशाल, संजय वेलिदिठपुत्र, प्रकृष्ट-कात्यायन<sup>१</sup> आदि का बर्णन पाते हैं। इसी प्रकार मोम्पलान-संयुत के असिं-वन्धकपुत्र-सूत और निगण्ठ-सूत से हमें बृद्ध-घर्म और तत्कालीन जैन घर्म के पारस्परिक सम्बन्ध के विषय में पर्याप्त सूचना मिलती है। तत्कालीन याज्ञिक ब्राह्मणों के यज्ञवाद और बृद्ध के नीतिक आदर्शवाद में यथा ऐतिहासिक सम्बन्ध है, और किस प्रकार एक के सामने दूसरे को भुक्तना पड़ा, यह देखने के लिये संयुत-निकाय का मुन्दरिक-भारद्वाज सूत अत्यन्त महत्वपूर्ण है। कोणत-देव में मुन्दरिक-नदी पर भारद्वाज नामक ब्राह्मण हवन कर रहा है। भगवान् भी उधर चारिका करते हुए निकल पड़ते हैं। वह उन्हें देख कर यज्ञ से बचा हुआ अब देना चाहता है, किन्तु पहले पूछता है "आप कौन जाति है?" भगवान् का ज्ञान उभाइ पाता है "जाति मत पूछ। आचरण पूछ। काठ से आग पैदा होती है। नीच कुल का भी पुरुष धुतिमान्, जाती, पाप-रहित मुनि हो सकता है। जो सत्य का आचरण करने वाला, जितेन्द्रिय और ज्ञान के अन्त को पहुँचा हुआ है और जिसने ब्रह्मचर्य-वास समाप्त कर लिया है, वह यज्ञ में उपर्युक्त ही है और वह काल से दक्षिणा देने ग्रोम्य है। जो उसे देता है, वह दक्षिणाग्नि में ही हवन करता है।" भारद्वाज को ऐसे उद्धरातिशय वचन सुन कर अद्वा उत्पन्न होती है। वह कहता है "निष्ठय ही यह मेरा यज्ञ मुहूर्त है जो ऐसे ज्ञान को प्राप्त (वेदग) पुरुष को मैंने देखा। तुम्हारे जैसे को न देखने से ही दूसरे जन हथायोष जाते हैं। हे गीतम! आप भोजन करें। आप ब्राह्मण हैं।" भारद्वाज ब्राह्मण की यह बृद्ध-प्रशंसा दिवलाती है कि यज्ञवाली होते हुए भी ब्राह्मण ज्ञान और सदाचरण की प्रतिष्ठा को समर्भते थे और उसे देखकर उसके सामने न तमस्तक होना भी जानते थे। भारद्वाज ब्राह्मण का बृद्ध की ब्राह्मण तक ज्ञानने को उचत हो जाना और उनकी प्रशंसा करना उसकी उदारता का सूचक है। कुछ भी हो, यज्ञ को ही सर्वस्व मानने वाले

१. सुस-पिटक के प्रकृष्ट कात्यायन को डा० हेमचन्द्र रायक्षीयरी ने उप-नियम के कवन्धी कात्यायन से मिलाया है। देखिये उनका पोलिटिकल हिस्ट्री ऑफ एनिमेन्ट इनिड्या, पृष्ठ २१ (तृतीय संस्करण, १९३२)

ब्राह्मणों को भी बुद्ध के ज्ञान-व्यञ्ज का लोहा अवश्य मानना पड़ा। भारद्वाज की उद्बोधित करने हए भगवान् उसे कहते हैं "ब्राह्मण ! लकड़ी जला कर शुद्धि मत मानो। यह तो बाहरी चीज़ है। पर्दिल लोग उसमें गढ़ि नहीं बतलाते जो बाहर से भीतर की शुद्धि है। ब्राह्मण ! मैं दास-दाह छोड़ भीतर की ज्योति जलाता हूँ। नित्य आम बाला, नित्य एकान्त-चित्त बाला हो, मैं ब्रह्मचर्य-पालन करता हूँ। ब्राह्मण ! यह तेरा अभिभाव ऋस्यि का भार है, शोष ध्वा है, मिद्या-भाषण भस्म है, जिद्धा लक्षा है और हृदय ज्योति का स्थान है। आत्मा के दमन करने पर पुरुष को ज्योति प्राप्त होती है। ब्राह्मण ! शील तीर्थ बाला, सन्तजनों से प्रशंसित, निर्मल धर्म स्त्री सरोबर है। इसी में वेद को जानने वाले (वेदग) पुरुष नहाकर तिना भीमे गात के पार उतरते हैं। ब्रह्म-प्राप्ति, भृत्य, धर्म, संवर्म और ब्रह्मचर्य पर अभित है। तू ऐसे हवन किये हुओं को नमस्कार कर। मैं उनको पुरुषों को संवर्मो बनाने के लिये सारथी-स्वरूप कहता हूँ।" इस प्रकार इन निकाय में हमें बुद्ध-जीवन, बुद्ध और उसके शिष्य, एवं बुद्ध-धर्म और तत्कालीन अन्य धार्मिक माध्यनाओं के साथ उसके सम्बन्ध आदि के विषय में प्रभृत जानकारी मिलती है।

ऐतिहासिक और भौगोलिक परिस्थितियों का भी इस निकाय में प्रधम दो निकायों की तरह काफी परिचय मिलता है। जहाँ तक राजनीतिक ऐतिहास का सम्बन्ध है, इस निकाय में काशलराज प्रसेनजित का वर्णन आया है और समघ-राज अजातशत्रु के साथ उसके युद्ध, अजातशत्रु की पराजय और बाद में प्रसेनजित को पुत्री वज्रा (वज्रिरा) का उसमें विवाह और भेट-स्वरूप काशी-प्रदेश की प्राप्ति इन घटनाओं का विवरण पहले किया ही जा चुका है। कीशास्त्री-नरेश उदयन (उदेन) का भी यही वर्णन आया है। इसके अतिरिक्त लिख्छवि, कोलिय आदि धर्मिय राजाओं के जहाँ-तहाँ वर्णन भरे पड़े हैं। भौगोलिक दृष्टि से राजगृह में वेलुवन, सुसुमार गिरि में भेसकलावन, वैयाली में महावन आदि बनों, नेरजरा, मंगा, यमुना आदि नदियों, मगध में गिरियज और अवन्ती में कुरुक्षेत्र आदि पर्वतों, न्यगोदागम (कपिलवस्तु) कुकुटाराम (पाटलिपुत्र) आदि आरामों (भिक्षु-निवासों), नालक (मगध) शाल (कोसल) वेलुवार (कोसल) आदि शामों, मगध, वर्ज्जा, कोसल बादि-प्रदेशों, और देवदह, कपिलवस्तु, साकेत आदि नगरों तका अनेक कर्मों (निर्गमों) के वर्णन भरे पड़े हैं, जो तत्कालीन भारतीय प्रदेशों और

उनके निवासियों के जीवन सम्बन्धी काफी महत्वपूर्ण ज्ञान को हम प्रदान करते हैं।

### ई—अंगुलर-निकाय

अंगुलर-निकाय सूत्र-पिटक का जीवा बड़ा भाग है। बृहद-धर्म के जिस स्वरूप का ज्ञान हमें प्रब्रह्म तीन निकायों में मिलता है, वही अंगुलर-निकाय का भी विषय है। केवल अंगुलर-निकाय की शैली में कुछ भिन्नता है। संख्याबद्ध शैली इस निकाय को सब से बड़ी विशेषता है। जैसा पहले दिखाया जा चुका है, सभूलं निकाय ग्यारह निपातों में विभक्त है, यथा एक-निपात, दुक-निपात, तिक-निपात, चतुरक-निपात, पञ्चक-निपात, छठक-निपात, सत्तक-निपात, अट्ठक-निपात, नवक-निपात, दसक-निपात तथा एक-दसक-निपात। प्रत्येक निपात बांगों में विभक्त है। ग्यारह निपातों की योग-संख्या कमज़ोः इस प्रकार है (१) २१ बर्ग (२) १६ बर्ग (३) १६ बर्ग (४) २६ बर्ग (५) २६ बर्ग (६) १३ बर्ग (७) ९ बर्ग (८) ९ बर्ग (९) ९ बर्ग (१०) २२ बर्ग (११) ३ बर्ग। इस प्रकार ग्यारह निपात कुल १६० बांगों में विभक्त हैं। प्रत्येक बर्ग में अनेक सूत है, जिनकी कम से कम संख्या ३ और अधिक ने अधिक २६२ है। कुल मिलाकर अंगुलर-निकाय में २३०८ सूत हैं। आकार में प्रायः संयुक्त-निकाय के भूतों के समान ही छोटे हैं और उन्हीं के समान उनका विषय भी कोई बृहद-प्रब्रह्म या किसी के साथ हूआ बृहद-संबंध है। अंगुलर-निकाय के प्रत्येक निपात में ऐसी संख्याओं से सम्बद्ध उपदेशों का संग्रह किया गया है जिनकी समता उक्त निपात की संख्या से है। इस प्रकार एक-निपात में केवल उन उपदेशों का संग्रह है जिनका सम्बन्ध संख्या एक से है। इसी प्रकार दुक-नियात में केवल उन उपदेशों का संग्रह है जिनका सम्बन्ध संख्या दो से है। इस प्रकार उत्तरोत्तर बढ़ती हुई यह संख्या

१. मारिस तथा हार्डी द्वारा पांच जिन्हों में दोमन लिपि में सम्पादित, पार्लिंटन-स्टॉट और सायटी द्वारा प्रकाशित, लन्दन १८८५-१९००। छठी जिल्ड में भेदिल हून्ट से अनुक्रमणियाँ दी हैं। सिहली लिपि में देवमित्र का संस्करण, कोलम्बो १८९३, प्रसिद्ध है। वरमी और अन्य सिहली संस्करण भी उपलब्ध हैं। हिन्दी में अभी कोई संस्करण या अनुवाद नहीं निकला।

एकोदसक-निपात तक पहुंच जाती है, जिसमें भगवान् बुद्धदेव के उन उपदेशों का संग्रह है जिनके विषय का सम्बन्ध किसी न किसी प्रकार मंत्रया ग्यारह मे है। अहीं कारण इस निकाय के अंगतर-निकाय (अकोलतर-निकाय) नाम-करण का भी है। 'मिलिन्दपञ्च' में इसी निकाय का नाम 'एकुत्तर-निकाय' (एकोलतर-निकाय) भी कहा गया है।<sup>१३</sup> उसका भी यही अर्थ है। सर्वास्तिवादी सम्प्रदाय के संस्कृत-विषिट्ठक में भी यह निकाय 'एकुत्तरागम' के नाम से ही वर्णित था। वह उसके चौंनी अनुवाद से विदित होता है। अंगतर-निकाय की संख्या-बहुत शैली उसके लिये कोई नहीं है। थोड़ी बहुत वह प्रत्येक निकाय में पाई जाती है। अतः उसके आधार पर इस संग्रह को प्रथम तीन निकायों की ओला काल-क्रम में बाद का छहराना ठीक नहीं माना जा सकता। बास्तव में तीन प्रत्येक निकाय में ही, बल्कि कहीं कहीं प्रत्येक सूत्र में ही, पूर्व और उत्तर-कालीन परम्पराओं के माध्यमाथ साथ-साथ दिखाई पड़ते हैं। यही बात अंगतर-निकाय में भी है। अतः गणनात्मक शैली की बहुलता होने के कारण ही अंगतर-निकाय को बाद का संग्रह नहीं माना जा सकता। जैसा अभी कहा गया, गणनात्मक प्रणाली थोड़ी-बहुत मात्रा में प्रत्येक निकाय में पाई जाती है। दोष-निकाय के संगीति-परिचय-सूत्र और दसूतर-सूत्र एवं त्रुट्टक-निकाय के सूट्टक-पाठ (कुमारपञ्च) ऐरगाढ़ा, वेशीगाढ़ा, इनिवृत्तक आदि में बस्तु-विनायक संख्यात्मक संवित्तण की के शैली आधार पर ही किया गया है। बाद में चल कर अभिघम्म-पिट्ठक में तो यह प्रणाली पूरे सात महात्माओं का ही आधार बन जाती है। चंद्रि अंगतर-निकाय की अभिघम्म-पिट्ठक से इस विषय में सब से अधिक समानता है, बल्कि उसके ग्यारह निपातों से अभिघम्म-पिट्ठक के एक सून्दर (पुण्याल पञ्चान्ति) की तो सारी विषय-बस्तु ही निकाली जा सकती है, अंगतर-निकाय के इस प्रकार वर्षाकृत बुद्ध-वचनों को उत्तरकालीन संग्रह नहीं माना जा सकता। जैसा हम पहले भी दिला लूके हैं, बुद्ध-वचनों का संख्यण, उस युग में, सून्ने वालों की सृजनी में ही किया जाने के कारण, उसकी सहायताथे संख्यात्मक संवित्तण की आवश्यकता पड़ती थी। इसलिये कभी कभी सूत्रयासता भी अपने उपदेशों में इस प्रकार के तत्त्व का संभिश्यण कर देते थे।

यह हम अंगुलर-निकाय के एक-क-निकाय के 'कर्जमला-सूत' में अच्छी प्रकार देख सकते हैं। कुछ उपासक कर्जमला नामक भिक्षुणी के पास जाकर पूछते हैं 'अब्दा ! भगवान् ने यह कहा है 'महा प्रश्नों में एक प्रश्न, एक उद्देश, एक उत्तर; दो प्रश्न, दो उद्देश, दो उत्तर... दस प्रश्न, दस उद्देश, दस उत्तर ! भगवान् के इस संधिष्ठन कथन का उत्तर किस प्रकार समझना चाहिये ? ' कर्जमला भिक्षुणी ने कहा 'एक प्रश्न, एक उद्देश, एक उत्तर ! यह ओ भगवान् ने कहा, वह इस कारण कहा । आवृत्तो ! एक बस्तु में भिन्न भली प्रकार निषेद्ध की ग्राप्त हो, भली प्रकार विश्वास को ग्राप्त हो, भली प्रकार विश्वास हो, अच्छी प्रकार अलदेशी हो, इसी जन्म में दुख का अन्त करने वाला हो । किस एक घरमें ? 'सभी सत्य आहार पर निभर है' । आवृत्तो ! भगवान् ने जो यह कहा 'एक प्रश्न, एक उद्देश, एक उत्तर ! वह इसी कारण कहा !' इसी प्रकार उत्तरात्मक क्रम से कहती हुई कर्जमला भिक्षुणी दस प्रश्न, दस उद्देश, दस उत्तर (व्याकरण) तक की व्याख्या करती है । गणनात्मक विश्वास होते हुए भी स्वयं उपदेश की सम्भावना में कोई अन्तर वही नहीं आता । यही बात विस्तार से हम अंगुलर-निकाय में भी देखते हैं । चार आर्य सत्य, आर्य-अष्टाङ्गिक मार्ग, सात वीष्य-ज्ञ, चार सम्प्यक प्रधान, पाँच इन्द्रिय आदि सभी मौलिक बृह-उपदेश इसी संस्थानमक तत्त्व की सच्चाई देने हैं । अंगुलर-निकाय में केवल इसे उनके बर्ण-बद्ध स्वरूप में प्रस्तुत करने का आधार मान लिया गया है । अतः निश्चित है कि इसके अनेक सूत या अंश जो विद्युत निकायों में अनेक प्रसंगों में आ चके हैं, यही संस्थानमक प्रशाली को पुण्यता देने के लिये फिर रख दिये गये हैं ।<sup>१</sup> उदाहरणतः चार आर्य सत्यों और आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग सम्बन्धी उपदेश विनय-पिटक के महाबग्न तथा संयुक्त-निकाय के 'धर्मचक्र दवतन-सूत' में स्वभावतः वाराणसी में दिये हुए उपदेश के रूप में अंकित हैं, किन्तु अंगुलर-निकाय में चार जाते सत्यों मध्यमध्यी उपदेश चतुर्क-निपात और आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग सम्बन्धी उपदेश अट्टक-निपात में संगहीत है । अतः यह बहुत सम्भव है कि कुछ स्थलों में अंगुलर-निकाय के सत्त दीप्ति और मणिम स्त्रियों के परिवर्तित, विभक्त अवता संविधान स्वरूप ही हों । किन्तु अधिकतर स्थलों में वे मौलिक ही हैं और

१. इनसी सभी के लिये देखिये पालि टंकसूट सोमायदो द्वारा प्रकाशित अंगुलर-निकाय, जिल्ड पाँचवीं, पृष्ठ ८ (भूमिका)

उनकी उपर्युक्तता उनके संवादात्मक स्वरूप में वही असंविध भी है। अंगूस्तर-निकाय जैसा हम अभी देखेंगे वृद्ध और उनके घरम और विवरण के सम्बन्ध में कुछ ऐसी भी सच्चाना देता है जो प्राचीन भी है और साथ ही साथ अन्य निकायों में भी नहीं मिलती। पुनर्गठितयों आर यात्यात्मक विवरण विशेषतः पादन तथा विट्ठानों को वह अरचिकर प्रतीत है, है, अतः उन्होंने अंगूस्तर-निकाय के वास्तविक मूल्यांकन करने में वही कृपणता दिखाई है। याहौस्त्रिक और ऐतिहासिक दृष्टियों में अंगूस्तर-निकाय का स्थान दीप, मजिभम और सगृन्त निकायों के साथ ही है और उसमें भी, केवल कुछ कुत्रिम वर्णीकरण में, वृद्ध के जीवन और उपदेशों की वही साक्षात् सम्पर्क में प्राप्त स्मृतियों उपलब्ध होती है, जैसी प्रत्येक तीन निकायों में। यह हम उसकी विषय-वस्तु के विवरण में अभी देखेंगे।

अंगूस्तर-निकाय की विषय-वस्तु का नाहे जितना विस्तृत विवरण दिया जाए वह उसकी वास्तविक विभागिता को नहीं दिला सकता। इसका कारण यह है कि केवल संवादात्मक सूचियों का संकलन ही अंगूस्तर-निकाय नहीं है। अंगूस्तर-निकाय को केवल संगीति-परियाग-सूत (दीप. ३।१०) या वस्त्रर-सूत (दीप. ३।११) का ही विस्तृत रूप समझ लेना एक भारी भ्रम होगा। इसमें सन्देह नहीं कि अंगूस्तर-निकाय के एक से लेकर स्पारह निपातों की विषय-वस्तु का स्वरूप वही किसी न किसी प्रकार उनके अनुकूल संव्या से सम्बन्धित है, तरीके कि

१. एकाक-निपात—एक धर्मे क्या है? इसी प्रकार के प्रलोत्तर के अनेक स्वरूप।

२. दुक-निपात—दो स्थान्य वस्तुएँ, दो प्रकार के ज्ञानी पुरुष, दो प्रकार के बल, दो प्रकार की परिषदें, दो प्रकार की इच्छाएँ, आदि, आदि।

३. त्रिक-निपात—तीन प्रकार के दृढ़त्व (कार्यिक, वाचिक, मामसिक) तीन प्रकार की वेदनाएँ (सूक्ष्मा, दृश्या, त-सूक्ष्मा-न-दृश्या), आदि, आदि।

४. चतुर्वक-निपात—चार आयंसत्य, चार ज्ञान, चार आमण्ड-पल, चार समाधि, चार दोग, चार आम्हार, आदि, आदि।

५. पञ्चवक-निपात—पाँच अङ्गों वाली समाधि, पाँच उपादान-स्वरूप, पाँच इन्द्रियों, पाँच निम्नरूपीय ज्ञान, पाँच घर्महात्य, गनि-विमलि-आगतन आदि आदि।

६. शतक-निपात—उः अनुसंगति-व्यापान, उः आध्यात्मिक आयतन, उः अभिज्ञेय आदि, आदि ।

७. सत्तक-निपात—सात मम्रोध्याङ्ग, सात अनुशय, सात सध्दमं, सात सज्जाएं, सात सत्पुर्ण-घमे आदि, आदि ।

८. अट्ठक-निपात—आर्य अष्टाङ्गिक-मार्ग, अठ आरब्ध वस्तु, आठ अभिभू-आयतन, आठ विमोछ, आदि, आदि ।

९. नवक-निपात—नव त्रृणामूलक, नव सत्त्वावास, आदि, आदि ।

१०. दसक-निपात—दस तत्त्वाशत-वल, दस आर्य-वास आदि, आदि ।

११. एकादशक-निपात—निर्वाण-प्राप्ति के ग्यारह उपाय, आदि, आदि ।

फिन्नु इस उपर्युक्त सूची मात्र से अंगूतर-निकाय के विषय या उसके महत्व को नहीं समझा जा सकता । उसके लिये हमें उद्दरणों से उसके विषय की मूल बृद्ध-वचनों के स्वर में प्रामाणिकता और बृद्ध-कालीन इतिहास के लिये उसके महत्व को हृदयाङ्गम करना होगा । पहले एकादशक-निपात को ही लीजिये । घम्म-विनय की दृष्टि से ही अंगूतर-निकाय के प्रथम निपात में उद्दृत इस बृद्ध-वचन को देखिये "माह भिक्षुवे ! अङ्गजो एक घम्मापि समनुयस्त्वामि यो ग्रंवं महेतो अनश्वाय संवत्सति, यदिदं भिक्षुवे पापमित्तता । पापमित्तता भिक्षुवे महतो अनश्वाय संवत्सति ।" इसका अर्थ है "भिक्षुओ ! मैं किसी भी दूसरी चौज को नहीं देखता जो इतनी अधिक अनश्वर, हो, कितनी पाप-मित्तता ! भिक्षुओ ! पाप-मित्तता बहुत अन्येकारी है ।" जो दीप्त, मञ्जिभम और मन्युक निकायों में निहित बृद्ध-वचनों की आत्मा और वाह्याभिव्यक्ति से परिचित है वे यही उनकी अपेक्षा कुछ विभिन्नता नहीं देख सकते । अतः केवल इसीलिये कि संगीतिकारों ने कुछ बृद्ध-वचनों को संस्कारण वर्षी-करण में वर्षिकर रख दिया है, उनकी मौलिकता या महत्ता में कोई अन्तर नहीं आता । अंगूतर-निकाय की सब सामग्री अन्य निकायों से भी की हुई नहीं है, बल्कि उसमें बहुत सी ऐसी भी सूचना है जो अन्यत्र कहीं नहीं मिलती । इसका भी एक उदाहरण एक-निपात के ही 'एतदमावद्म' के उस महात्मपूर्ण विवरण में पाते हैं, जिसमें बताया गया है कि भगवान् बृद्ध के किस-किस भिक्षु, भिक्षणी, उपासक, या उपासिका, ने जाखना के किस-किस विभाग में दक्षता या विदेषता द्वारा आप्त की थी । महापंडित राहुल माङ्कुश्यायन द्वारा अनुवादित इस अंश को,

उसके ऐतिहासिक महात्व के कारण, यहाँ पूर्णतः उद्भृत करना ही उपयुक्त होगा। "ऐसा मने सुना—एक समय भगवान् आवस्ती में अनाथपिंडिक के आराम बैठकन में विद्वार करने थे। ..... भगवान् ने भिक्षुओं को नम्बोधित किया,

(१) भिक्षुओ ! मेरे रक्तज्ञ (अनुरक्षत) भिक्षु आवक्तों में यह ब्राह्म-कौषिङ्गन्य अथ (श्रेष्ठ) है। (२) महाप्रज्ञों में यह मारिपूत्र अथ है (३) श्रद्धि-मानों में यह महामीद्रगल्यायन अथ है (४) घृतवादियों (ब्रह्मन-क्रतों का का अभ्यास करने वालों) में यह महाकाशयप अथ है (५) दिव्यचक्रकों में यह अनिश्च अथ है। (६) उच्च-कुलीनों में यह भद्रिय कालिशोधा-पुत्र अथ है। (७) मंकु स्वर में धर्म उपदेश करने वालों में यह मंकुटिक-भद्रिय अथ है। (८) सिहमाद करने वालों में यह पिडोल भारद्वाज अथ है (९) धर्म-उपदेश करने वालों में यह पूर्ण में आवणी पूत्र अथ है (१०) संवित्स धर्मोपदेश को विस्तृत स्थ में समझाने वालों में यह महाकाल्यायन अथ है। (११) मनो-समय काव्य-निर्माण करने वालों में यह चूल्ल पथक अथ है। (१२) संज्ञा-विवर-चतुर्ं में यह महापथक अथ है। (१३) अरण्य विहारियों में यह सुभूति अथ है; दान-गावों में भी यह सुभूति अथ है। (१४) आरण्यकों में यह रेवत विदित वनिय अथ है। (१५) ध्यानियों में यह कंखा-रेवत अथ है। (१६) आरब्ध-वीरों में यह सोण कोटिवोग (शोणकोटिविष) अथ है। (१७) सुजन्ताजों में यह सोण कुटिकण्ण अथ है। (१८) लाभ पाने वालों में यह सौवली अथ है। (१९) शदावानों में यह चक्रकली अथ है। (२०) भिक्षा-कार्यों (भिक्ष-नियम के पावनों में) में यह राहुल अथ है। (२१) शदा से प्रवर्जितों में यह राष्ट्रपाल अथ है। (२२) प्रथम शलाका ग्रहण करने वालों में यह कुडघान अथ है। (२३) प्रतिभा वालों में यह लंगीज अथ है। (२४) समन्त ग्रामादिकों (सब ओर से मून्दरों) में यह उपसेन वंगमत्पूर्न अथ है। (२५) दायनासन-प्रजापिकों (गृह-प्रबन्धकों) में यह दद्व भल्लपूर्न अथ है। (२६) देवतार्थी के प्रियों में यह पिलिन्द वास्त्प-पुत्र अथ है। (२७) विप्राभिज्ञों (प्रत्यर द्वियों) में यह बाहिय दाक्षीरिय अथ है। (२८) विवक्षिकों (विचित्र वक्ताओं) में यह कुमार काश्यग अथ है। (२९) प्रति-संवित-प्रातों में यह महाकोटित (महाकोण्ठित) अथ है। (३०) बहुश्रुतों में, गतिमानों में, स्थितिमानों में, यह आनन्द अथ है। (३१) महापरिषद् वालों में यह उष्मेल-काशयप अथ है। (३२) कुल-प्रसादकों (कुलों को प्रसन्न

करने वालों -) में यह काल-उदयी अप है । (३३) अल्पादारों (मिरोगो) में यह जबकुल अप है । (३४) पूर्व-जन्म स्मरण करने वालों में यह शोभित अप है । (३५) विनय-परों में यह उपालि अप है । (३६) भिकुणियों के उपदेशकों में यह नन्दक अप है । (३७) वितेन्द्रियों में यह नन्द अप है । (३८) भिक्षुओं के उपदेशकों में यह महाकपिन अप है । (३९) वैज-वातु-कुशलों में यह स्वागत अप है । (४०) प्रतिभासालियों में यह राघ अप है (४१) रक्ष चौबरधारियों में यह मोषुराज अप है । (४२) भिक्षु ! मेरी रक्षज्ञ भिक्षुणी-श्राविकाओं में महाप्रजापति गोतमी अप है । (४३) महाप्रजापति गोतमी में लेमा अप है (४४) कृदिमतियों में उत्पलवर्ण अप है । (४५) विनय धारण करने वालियों में पटचारा अप है । (४६) धर्मकथिकाओं में धर्मदिग्ना अप है । (४७) ध्यानियों में तन्दा अप है । (४८) जारवधीर्यों में सोणा अप है । (४९) जिग्राभिजालों में भद्रा कुट्टल केशा अप है (५०) पूर्व जन्म की अनुस्मृति करने वालियों में भद्रा कापिलायिनी अप है । (५१) महा-अभिज्ञ-प्राप्तों में भद्रा कात्यायनी । (५२) रक्ष चौबरधारियियों में कुशा गोतमी (५३) अद्वा-एकत भिक्षुणियों में शूगाल-माता । (५५-५६) भिक्षुओं ! मेरे उपासक आवकों में प्रथम शरण आने वालों में तपस्य और भग्नदुक वैणिक अप है । (५७) दायकों में अनाथ-परिदिकः सूदल गृहपति अप है । (५८) धर्मकथिकों (धर्मोगदेश्टाओं) में मच्छिकायष्विवासी लिपि गृहपति अप है । (५९) चार संश्वर-वस्तुओं से परिषद् को मिलाकर रखने वालों में हस्तक आल-धक अप है । (६०) उत्तम दायकों में महानाम दावय अप है । (६१) प्रिय-दायकों में वैशाली का निवासी उत्तम गृहपति अप है । (६२) संघ-सेवकों में उद्गत (उगत) गृहपति अप है । (६३) अस्यन्त प्रसदों में शूर अस्विठ अप है । (६४) व्यक्तिगत प्रसदों में जीवक कौमार भूत्य अप है । (६५) विद्वान्तकों में नहुल-पिता गृहपति अप है । (६६) भिक्षुओं ! मेरी उपासिका श्राविकाओं में ग्रन्थ धरण आने वालियों में सेनानी दुहिता सूजाता अप है । (६७) दायिकाओं में विशाला मूरारमाता अप है । (६८) बहूद्वत्ता आदि में बहूद्वत्ता (कुम्हा उत्तरा) अप है । (६९) मेथी विद्वार प्राप्त करने वालियों में सामावती (श्वासावती) अप है । (७०) ध्यानियों में उत्तरा सत्य-माता अप है । (७१) प्रशीत दायिकाओं में सुप्रवासा कोलिय-दुहिता अप है । (७२) रोगी की सेवा करने वालियों में गृहिण्या उपासिका अप है । (७३)

जर्तीय प्रसंगों में काल्यासनी जय है। (३४) विद्वामिकाओं में नकुल-माता महूपली अष्ट है। (३५) अनश्व शमशों में कुरर शर में व्याहो काली उपामिका जय है।<sup>१</sup> भगवान् बद्ध-देव के प्रधान विष्णु-विश्वासों का यह द्विवरण, जिसमें उसके भित्ति, भित्तिएँ, उपासक और उपासिका सभी कोटि के पुरुष और स्त्री माधव-नाथिकाओं के नाम हैं बद्ध-वर्षम् और सप के इतिहास की दृष्टि से किसना महस्त्वपूर्ण है, इसके कहने की अवश्यकता नहीं। इसमें माहित्य और इतिहास की दृष्टि से महस्त्वपूर्ण इस प्रकार की प्रभुत मामर्ही अंगसर-निकाय में भरी पड़ी है। दूसरे निपात के इस मून्दर भाव-पूर्ण बुद्ध-वचन की लीलिये, "हे भित्ति व व्योगासनबों, मीहोच भिगराजा। इसे जो भित्ति व असनिया फलनिया न सन्तुष्टित। कतमे हे भित्ति च व्योगासनबों, मीहोच भिगराजा। इसे जो भित्ति व असनिया फलनिया न सन्तुष्टित।"<sup>२</sup> जर्तीनि "भित्तिओ ! विजयी काङ्कने पर दो ही प्राणी नहीं छोक पड़ते हैं। कौन से दो ? श्वीणास्व भित्ति और भूगराज सिंह। भित्तिओ ! यही दो विजयी काङ्कने पर चौक नहीं पड़ते।"<sup>३</sup> इस प्रकार के अर्थ-मर्भित उपदेश जिसकी मौलिकता और स्वभाविकता में उनका संहारावद चिन्माम कोई अस्ति नहीं पहुँचाता, अंगसर-निकाय में भरे पड़े हैं। तिक-निपात के भरंडुमूल में हम भगवान् को, बुद्धत्व-प्राप्ति के बाद अपने पन्द्रहवें वर्ष-वास में, लारिल वस्तु में विचरते देखते हैं। महानाम शास्त्र उनका गतकार करता है। भगवान् नवर से बाहर भर्द्द-कालाम सामक अपने पूर्व स-व्रह्माजारी के आश्रम में एक रात भर ठहरते हैं। रात के बीतने पर महानाम शास्त्र फिर उनकी सेवा में उपस्थित होता है। भगवान् उसे उपदेश देते हैं "महानाम ! लोक में तीन प्रकार के शास्त्र विद्यमान हैं। कौन से तीन ? (१) यही एक शास्त्र महानाम ! कामों के त्याग का उपदेश करते हैं, किन्तु लोगों और वेदनाओं के त्याग को प्रजापित नहीं करते (२) कामों और कर्मों के त्याग का उपदेश

१. बद्ध चर्चा, पृष्ठ ४६७-४७२ (कुछ अहं शास्त्रिक परिवर्तनों के बारे)

२. "क्षीणास्व भित्ति नहीं चौक पड़ता है, व्योकि उसका 'अहंभाव' विलक्षु निरह द्वारा रहता है। मूगराज सिंह नहीं चौक पड़ता है, व्योकि उसका 'अहंभाव' अस्थन्त प्रबल होता है; चौकने के बदले वह और गरज उठता है कि कौन दूसरा उसकी बराबरी कर सकता है।" भित्ति जगदीश काश्यपः पालि महारथाकरण, पृष्ठ चतुर्वीस (वस्तुकथा) में।

करते हैं किन्तु वेदनाओं के त्याग को प्रजापित नहीं करते (३) कालामों के लाग की भी, कर्णों के त्याग को भी और वेदनाओं के त्याग को भी प्रजापित करते हैं। महानाम ! लोकमें यहाँ तीन प्रकार के शास्त्रा हैं ।" अग्नशर-निकाय के अनुष्ठानिग्राहण के केस-युक्तिय-मूल में हम दुड़के लुढ़िवादी दृष्टिकोण को स्पष्टता देखते हैं। कोमल-प्रदेश में चारिका करते करते भगवान् केसपूत नामक निषम (कस्ये) में, जो कालाम मामक धर्मियों का निवास-स्थान था, पहुँचते हैं। कालाम धर्मिय भगवान् को हाथ जोड़-जोड़ कर एक और नृपनाग बैठ जाते हैं। वे भगवान् से चिनझला के साथ पूछते हैं "भन्ते ! कोई-कोई धर्मण-ब्राह्मण के-मपूत में आते हैं । वे अपने ही मत वी प्रथासा करते हैं, दूसरे के मत की भिन्ना करते हैं, उसे छुड़वाते हैं । भन्ते ! दूसरे भी कोई-कोई धर्मण-ब्राह्मण के-मपूत में आते हैं और वे भी वैसा हो करते हैं । तब भन्ते ! हमको संशय अवश्य होता है, कौन इन धारा धर्मण-ब्राह्मणों में सच कहता है, कौन भूत ?" कालामों का प्रश्न ऐसा है जो दुनिया के धार्मिक इतिहास में हर वर्ष में और हर व्यक्ति के हृदय में आता है । अतः कालामों के प्रश्न का महत्व सब काल के मनुष्य के लिये समान रहा से है । भगवान् ने तो उत्तर दिया है, वह उससे भी अधिक विश्व-जनीन महता लिये हुए है । भगवान् कहते हैं "कालामो ! तुम्हारा संशय ठीक है । संशय-योग्य स्थान में ही तुम्हें संशय उत्पन्न हुआ है । आओ कालामो ! मत तुम अनुश्रव से विश्वास करो, मत परम्परा से विश्वास करो । 'यह ऐसा ही है' इस से भी तुम मत विश्वास करो । कालामो ! मान्य शास्त्र की अनुकूलता (पिटक-नामप्रदाय) से भी तुम विश्वास मत करो । मत तक्ष से, मत न्याय-न्येतृ से, मत वक्ता के आकार के विचार से, मत अपने चिन-धारित विचार के होने से, मत वक्ता के भव्य रूप होने से, मत 'धर्मण हमारा गृह है' इस भाषण से, कालामो ! मत इस सब कारणों से तुम विश्वास करो । बल्कि कालामो । तब तुम अपने ही आग जानो कि ये धर्म अकृशक हैं, ये धर्म सदोष हैं, ये धर्म विज्ञ-निन्दित हैं, ये गहण करने पर अहित, दुःख के लिये होंगे, तो कालामो ! तुम उन्हें छोड़ देना । . . . . इसी प्रकार कालामो । जब तुम अपने ही आग जानो कि ये धर्म दूषक हैं, ये धर्म निर्दोष हैं, ये धर्म विज्ञ-प्रवर्णित हैं, ये गहण कर लेने पर मृत्यु और कल्पाण के लिये होंगे, तो कालामो ! तुम उन्हें प्राप्त कर विहसो ।" इस प्रकार पात्रता की उपर्युक्त भूमि लैयार कर बाद में तथागत कालामों को विजापित करते हैं "तो यथा मानते हो कालामो । पुरुष के भीतर

उत्तम हुआ लोभ (राग) हित के लिये होता है या अहित के लिये ?" "अहित के लिये, भन्ते !" "पुरुष के भीतर उन्नय हुआ देष . . . . . हित के लिये या अहित के लिये ?" "अहित के लिये, भन्ते !" "मोह?" "अहित के लिये, भन्ते !" "तो वया मानने हो कालामो ! ये यम (राग, देष, मोह) मदोष हैं या निदोष ?" "मदोष, भन्ते !" "प्राण्ट करने पर अहित के लिये, दुःख के लिये हैं या नहीं ?" "प्रहृण करने पर भन्ते ! अहित के लिये हैं, ऐसा हमें लगता है।" बूढ़ी उठाने वाली आदेश ना होती है "तो कालामो ! तुम इन्हें छोड़ दो।" इसी प्रकार अल्लोध, अडेल, जमोह की हित, दुख का कारण समझा कर भगवान् कालामो को उन्हें यहूण करने को प्रेरणा करते हैं। किसी भी विद्वास को मानने या न मानने की आदेश के बिना ही स्वयं सदाचार का जीवन सम्पूर्ण आश्वासनों से किस प्रकार आश्वस्त है, इसे समझते हुए भगवान् कहते हैं, "कालामो ! जो आयं साधक (आवक) अ-बैर-चित, अ-आप्न-चित, अ-मंजिलट-चित (विश्विदि-चित) है, उसको इसी जन्म में चार आश्वासन (आश्वासन) मिले रहते हैं, (१) यदि परलोक है, यदि सुकृत-दुष्कृत कर्मों का फल है, तो निश्चय ही में कालामो, मरने के बाद, सुगति, स्वयं-लोक में उत्पन्न होंगा, यह उसे प्रथम आश्वास प्राप्त रहता है। (२) यदि परलोक नहीं है, यदि सुकृत-दुष्कृत कर्मों का फल नहीं है, तो इसी जन्म में, इसी समय, अ-बैर-चित, अ-आप्न-चित, अ-मंजिलट-चित, अपने को रखता है, यह उसको द्वितीय आश्वास प्राप्त रहता है। (३) यदि काम करते पाप किया जाये, तो भी में किसी का बुरा नहीं चाहता, बिना किये पिर पाप-कर्म मुझे क्यों दुःख पहुँचायेगा। यह उसे तीसरा आश्वास प्राप्त रहता है। (४) याद करते हुए पाप न किया जाय, तो इस समय में बीजों से ही मृक्त अपने को देखता है। यह उसे चौथा आश्वास प्राप्त हुआ रहता है।" यह उपदेश न केवल दड़ के नैतिक आश्रमबाद और विचार-स्वातन्त्र्य का वल्कि भगवान् की उपदेश-प्रणाली का भी अच्छा सूचक है। अंगतर-निपात की एक बड़ी विशेषता यह है कि वहाँ भिक्षु-यम (भिक्षु-विनाय) के साथ-साथ सूहस्त्र-यम (गिहि-विनाय) का भी उपदेश दिया गया है। चतुर्वक्त-निपात के वेरंजक-आश्रण-मूल में भगवान् मधुरा और वेरंजा के बीच के रास्ते में शृहस्थों को विजापित करते हुए दिलाई देते हैं, "गृहपतियो ! चार प्रकार के संवास होते हैं। जौन से चार ? (१) शब शब के साथ संवास करता है (२) शब देवी के साथ संवास करता है (३) देव शब के साथ संवास करता है (४)

देव देवी के साथ संवास करता है। कौने मृहपतियो ! जब शब के साथ संवास करता है ? यहाँ मृहपतियो ! परि हिंसक, चौर, दुराचारी, भट्ठा, नशाचाज, दुष्प्रीत, पापचर्मी काक्षी को गन्दमी से लिप्त चित्तचाला, अमण-ब्राह्मणों को दुर्वचन कहने वाला हो, इन प्रकार मृह में बास करता हो और उसकी भार्या भी उसी के समान हिंसक, चौर, दुराचारिणी । अमण-ब्राह्मणों को दुर्वचन कहने वाली हों। उस शमय मृहपतियो ! शब शब के साथ संवास करता है। कौने मृहपतियो ! जब देवी के साथ संधार करता है ? मृहपतियो ! परि हिंसक, चौर, दुराचारी । अमण-ब्राह्मणों को दुर्वचन कहने वाला हो, फिसु उसकी भार्या - अहिंसा-रत, जारी रहित, सदाचारिणी, सच्ची, नशा-विरत, सूक्ष्मीता, कन्याज-प्रसं-प्रवृत्त, मल-मात्स्यं-रहित, अमण-ब्राह्मणों को दुर्वचन न कहने वाला हो, तो मृहपतियो ! जब देवी के साथ संवास करता है। कौने मृहपतियो ! देव शब के साथ संवास करता है ? मृहपतियो ! परि ही अहिंसा-रत, चोरी-रहित, सदाचारी । उसकी भार्या हो हिंसा-रत चौर, दुराचारिणी । मृहपतियो ! देव देवी के साथ संवास करता है ? मृहपतियो ! परि अहिंसा-रत, चोरी-रहित, सदाचारी । उसकी भार्या भी अहिंसा-रत, चोरी-रहित, सदाचारिणी । मृहपतियो ! देव देवी के साथ संवास करता है।" इसी प्रकार एकादश-निपात के महानाम-सून में हम भगवान् को महानाम शमय के प्रति, जो मृहस्य वा, वृद्ध, धर्म, संज आदि की अनुस्मृति करने का उपदेश देते हुए देखते हैं "महानाम ।" तुम चलते भी भावना करो, साते भी, लेटे भी, कर्मस्तक (बेती आदि) का अभिष्ठान (प्रवृत्त) करते भी, पुत्रों से पिरो शाश्य पर भी ।" बढ़ ने मृहस्य, भित्ति, सब के लिये अ-प्रसाद या मनत पुकार्य पर कितना अधिक जोर दिया, यह हमने दीप, मणिभास और संयुक्त निकायों के विवरण में देखा है। अनुसून-निकाय के छत्तक-निपात के पश्चानीय-सूत में भी हम भगवान् को भिक्षाओं के प्रति यहाँ उपदेश करते देखते हैं। भावस्ती में अनावशिक के जेतवन-आदाम में कुछ नये अविष्ट भिक्षु नर्योदय तक लर्हाएं ले सो रहे हैं। भगवान् भिक्षुओं को विजापित करते हैं "भिक्षुओ ! सूर्योदय तक खट्टी मार कर संति हो । तो वया मानते हो भिक्षुओ ! वया तुमने देखा या मृता है, नर्योभिगित (अभियोक-त्राप्त) विविध राजा को इच्छानमार शायम-मूर, हर्षं-नुत, आलम्य-सून के साथ विहार करते भी और जीवन-गवेन्त राज्य करते था।

देश का भला होते ?" "नहीं भन्ते !" "साथ भिल्हाओ ! मैंने भी नहीं देखा । तो क्या मालते हो भिल्हाओ ! क्या तुमसे देखा है या मना है, बायन-मूल, सार्व-सूर्य आलम्य-मूल में यक्त, इन्द्रियों के द्वारों को सरक्षित न रखने वाले, भोजन की माला को न जानते वाले, जागरण में अनन्तपर, कुशल घर्मों की विपद्धता (साक्षा-लकार) न करने वाले, रात के पहले और पिछले पहर में लगकर बोधि-पद्धीय घर्मों की भावना न करने वाले, किसी भी थपथप या ब्रह्मण की चित्त-मलों के धर्य से प्राप्त निमेल चित्त की विमुक्ति या प्रज्ञा-विमुक्ति को इसी जन्म में स्वयं मालालकार कर, स्वयं जान कर, स्वयं प्राप्त कर विहरते ?" "नहीं भन्ते !" "साथ भिल्हाओ ! मैंने भी नहीं देखा । तो भिल्हाओ ! तुम्हें ऐसा सोखना चाहिये—इन्द्रिय-द्वार को सुरक्षित रखनीगा । भोजन की माला को जानने वाला हीऊँगा । जागने वाला, कुशल कर्मों की विपद्धता करने वाला, रात के पहले और पिछले पहरों में बोधिपद्धीय घर्मों की भावना करने वाला, इस प्रकार में सावना में लग्न रह जाए विहरते । भिल्हाओ ! तुम्हें ऐसा सोखना चाहिये ।" अमृतर-निकाय के अटठाक-निपात के लगावती-प्रबन्धा-मूल में महा-प्रजापती गोतमी की प्रवृत्त्या का चिल्कुल उन्हीं शब्दों में वर्णित है, जैसा विनय-गिटक के चूल्लबन्ध में । कपिलबन्धु के त्यगाधाराम में भगवान् के विहार वारते समय महाप्रजापती गोतमी भगवान् के पास आकर उनसे प्रार्थना करती है, "भन्ते ! अच्छा हो, मदि मालूसाम (मातृ-समृह—स्त्रियां) भी तत्वागत-प्रवेदित वर्म-विनय में प्रवृत्त्या पावे ।" भगवान् ने उत्तर दिया, "गोतमी ! मत तुझे मह रुचे कि स्त्रियाँ तत्वागत-प्रवेदित वर्म-विनय में प्रवृत्त्या पावे ।" महाप्रजापती दुर्खी दुर्मना, अध्रमुखी होकर चली गई । बाद में वह वैष्णाली में भगवान् के पास पहुँची । वही आनन्द ने स्त्री-जाति की ओर बोलते हुए भगवान् से निवेदन किया, "भन्ते ! महाप्रजापती गोतमी कुले पैरों, घुल भरे जारीर से, दुली, दुर्मना, अद्यमुखी रोती हुई हार-कोण्ठ के बाहर लड़ी है । भन्ते ! स्त्रियों की प्रवृत्त्या को आज्ञा भिले ।" "आनन्द ! मत तुझे यह रुचे ।" आनन्द ने तथागत-प्रवेदित वर्म-की मूल आत्मा को लेकर ही कहा, "भन्ते ! क्या तत्वागत-प्रवेदित वर्म-में जर में वे वर प्रवर्जित हो, स्त्रियों लोत-आपति-फल, तक्कदागामि-फल, अनागामि-फल, अहस्य-फल जी भावात् बर सकती है ?" भगवान् को कहते देर न लगी, "मालात् बर सकती है, आनन्द !" वस प्रजापती गोतमी और आनन्द की इच्छा को पूरी होते देर न लगी । भगवान् ने आठ सुर-घर्मों

(जिनके कारण ही इस प्रसंग को यही अनुत्तर-निकाय के इस निपात में स्वान मिला है) के पालन करने की जरूरि लेकर महाप्रजापती को प्रवचया गहण करने की आज्ञा दी। उसी समय से अन्य भी स्त्रियों भिक्षणियों हुईं और बाद में एक वलय भिक्षुणी-संघ ही बन गया। किन्तु स्त्रियों को प्रवचया की अनुमति देते समय भगवान् ने चेतावनी भी दी, जिसे बृद्ध-धर्म के बाद के इतिहास ने समझतः सच्चा भी प्रमाणित कर दिया है 'आनन्द ! यदि तथागत-प्रवेदित-धर्म-विनय में स्त्रियों प्रवचया न पातीं, तो यह प्रहृष्टवर्य चिरस्थायी होता, सद्गम सहस्र वर्ष ठहरता । किन्तु चूंकि आनन्द ! स्त्रियों प्रदर्शित हुईं, जब सद्गम चिरस्थायी न होता, सद्गम अब पौत्र सौ वर्ष ही ठहरेगा । . . . . आनन्द ! जैसे आदमी पाती की रोक-याम के लिये, वह तालाब को रोकने के लिये, मेड बच्चे, उसी प्रकार आनन्द ! मैंने रोक-याम के लिये भिक्षणियों को जीवन-भर अनलंघनतोय आठ गुण-धर्मों में प्रतिष्ठापित किया ।' इसी प्रसंग में यही यह भी कह देना अप्रासादिक न होगा कि आनन्द किस प्रकार स्त्री-जाति के समर्थन में अपने यग से बहुत आगे थे, इसकी भी सूचना हमें इस निकाय में मिलती है। स्त्रियों को प्रवचया दिलाने में उन्होंने महाप्रजापती गोतमी की किस कुशलता के साथ सहायता की, यह हम अभी देख ही चुके हैं। हम एक बार उन्हें (चतुर्क-निपात में) भगवान् से यह तक पूछते देखते हैं, 'भन्ते ! यथा कारण है कि स्त्रियों परिषदों में स्वान नहीं पाती, स्वतन्त्र उद्योग नहीं करती, स्वावलम्बन का जीवन नहीं विताती ?' हम जानते हैं कि आनन्द को अपने इन सब विचारों के कारण ही प्रवचय संगीति में धर्म-याचना करनी पड़ी। मनुष्यता के नाते आज आनन्द इसीलिये हमारे लिये अधिक प्रिय बन गये हैं, उस समय के लोगों ने चाहं जो सीखा हो । अनुत्तर-निकाय में इस प्रकार बृद्ध के विषयों के स्वभाव और जीवन पर प्रकाश डालने वाली प्रभुत सामयों मिलती है। प्रवचया गहण करने के बाद प्रजापती गोतमी इसी निकाय (अठठक-निपात) में भगवान् से पूछती है 'भन्ते ! अच्छा हो यदि भगवान् संक्षेप से भूमि-धर्म का उपदेश करें, ताकि मैं उसे मुन कर, प्रमाद-रहित हो, आत्म-संग्रह कर जीवन में विचरहें ।' भगवान् का उत्तर बृद्ध-धर्म के उदार मन्तव्य को समझने के लिये इतना महावृप्ति है कि उसको उद्भृत करने का लोभ संवरण नहीं किया जा सकता। 'गोतमी ! जिन वातों को तू जाने कि ये वाते सद्गम के लिये हैं, विचार के लिये नहीं, संयोग के लिये हैं विद्योग के लिये नहीं, संघर्ष के लिये हैं, असंघर्ष के लिये नहीं, इच्छाओं को बदाने

के लिये है, बढ़ाने के लिये नहीं, असल्लोप के लिये है, सर्तोष के लिये नहीं, भीड़ के लिये है, एकान्त के लिये नहीं, अनुशोगिता के लिये है, उद्योगिता के लिये नहीं, कठिनाई के लिये है, मुगमता के लिये नहीं, तो तू गोतमी ! सोलहो आने जानना कि वह न यथ है, न विनय है, न शास्त्र का शासन है। किन्तु गोतमी ! जिन वासी को तू जाने कि वे विश्व के लिये है, सर्वान के लिये नहीं . . . इच्छाओं की घटाने के लिये है, बढ़ाने के लिये नहीं . . . मुगमता के लिये है कठिनाई के लिये नहीं, तो गोतमी ! तू सोलहो आने जानना वही विनय है, वही शास्त्र का जानन है ! ”

मतक-निपात में भगवान् बुद्ध का ब्रह्मचर्य-सम्बन्धी गम्भीर उपदेश है जो अपनी सूक्ष्मता और मामिकता में अद्वितीय है। उसे यहीं उद्दृत करता उपरोक्ती मिठ हींगा। “ब्राह्मण ! यहीं कोई एक अभ्यर्ण या ब्राह्मण सम्यक् ब्रह्मचारी होने का दावा करता है और वह स्त्री के साथ प्रत्यक्ष सहवास नहीं भी करता, किन्तु वह स्त्री के द्वारा (स्नान-स्त्री आदि) उबटन किये जाने, मौले जाने, स्नान कराये जाने और मालिश किये जाने को स्वीकार करता है। वह उसमें रस लेता है, उसकी इच्छा करता है, उसमें प्रसन्नता अनुभव करता है। ब्राह्मण ! यह भी ब्रह्मचर्य का दूटना है, छिद्रवृक्ष होना है, चितकवरा होना है, अच्छेदार होना है। ब्राह्मण ! इस पुल के लिये कहा जायगा कि वह मैथुन (स्त्री-सहवास) से पूरा होकर ही मलिन ब्रह्मचर्य का सेवन कर रहा है। वह मनुष्य जन्म से, जरा से, मरण से नहीं छूटता . . . तर्हीं छूटता दुःख से भी—मैं कहता हूँ। पुनः ब्राह्मण ! यहीं एक अभ्यर्ण या ब्राह्मण सम्यक् ब्रह्मचारी होने का दावा करता है और वह स्त्री के साथ प्रत्यक्ष सहवास नहीं भी करता और न स्त्री के द्वारा अपने उबटन-आदि किये जाने को हीं स्वीकार करता है, किन्तु वह स्त्री के साथ हैसी-भजाक करता है, जीड़ा करता है, खेलता है, वह उसमें रस लेता है . . . पुःख से नहीं छूटता—मैं कहता हूँ। पुनः ब्राह्मण ! यहीं एक अभ्यर्ण या ब्राह्मण सम्यक् ब्रह्मचारी होने का दावा करता है और वह स्त्री के साथ प्रत्यक्ष सहवास नहीं भी करता, उसके द्वारा उबटन आदि किये जाने को भी स्वीकार नहीं करता, उसके साथ हैसी भजाक भी नहीं करता, किन्तु वह स्त्री को अंत गड़ाकर देखता है, नजर भर कर देखता है, वह उसमें रस लेता है . . . दुःख से नहीं छूटता—

मैं कहता हूँ। पुनः ब्राह्मण ! यही एक अमण या ब्राह्मण सम्यक् ब्रह्मचारी होने का दावा करता है और वह न प्रत्यक्ष स्त्री के साथ सहवास करता, न उससे उबटन आदि लगवाता, न उसके साथ हैसी-मजाक करता, न उसे आंख मड़ाकर देखता, किन्तु वह दीवार या चहारवीवारी की ओट से छिपकर स्त्री के शब्दों को सुनता है, जब कि वह हमें रही हो, या बात कर रही हो, या गा रही हो, या रो रही हो, वह उसमें रस लेता है..... दुख से नहीं छुटता—मैं कहता हूँ। पुनः ब्राह्मण ! यही एक अमण या ब्राह्मण सम्यक् ब्रह्मचारी होने का दावा करता है और वह न स्त्री के साथ प्रत्यक्ष सहवास करता, न स्त्री से उबटन लगवाता, न उसके साथ हैसी-मजाक करता, न उसको नजर भर कर देखता है जब कि वह गा रही हो या रो रही हो, जिन्तु वह अपने उन हैसी-मजाकों, सम्भाषणों और ओढ़ाओं को समरण करता है जो उसने पहले स्त्री के साथ की थीं, वह उसमें रस लेता है..... दुख से नहीं छुटता—मैं कहता हूँ। पुनः ब्राह्मण ! यही एक अमण या ब्राह्मण सम्यक् ब्रह्मचारी होने का दावा करता है और वह न स्त्री के साथ प्रत्यक्ष सहवास करता, न स्त्री से उबटन लगवाता, न उसके साथ हैसी-मजाक करता, न उसकी आंख गड़ा कर देखता, न उसके साथ किये हुए अपने पुराने हैसी-मजाकों, सम्भाषणों और कीड़ाओं आदि को ही समरण करता है, किन्तु वह किसी गृहस्थ या गृहस्थ-पुत्र को पुरी तरह पौत्र प्रकार के (यज्ञ, शायं, रूप, रस, गव्य यस्त्वाद्य) विषयों से समरित, संयुक्त हो, विशास करते देखता है, वह उसमें रस लेता है..... दुख से नहीं छुटता—मैं कहता हूँ। पुनः ब्राह्मण ! यही एक अमण या ब्राह्मण सम्यक् ब्रह्मचारी होने का दावा करता है और न वह न स्त्री के साथ प्रत्यक्ष सहवास करता, न स्त्री से उबटन लगवाता, न उसके साथ हैसी-मजाक करता, न उसको आंख गड़ाकर देखता, न उसके साथ किये हुए अपने पुराने हैसी-मजाकों को समरण करता, न किसी गृहस्थ या गृहस्थ-पुत्र को कामासात्त होकर मूर्त्त-विहार करते देख कर प्रसन्न होता, किन्तु वह किसी देव-योनि में जन्म लेने की अभिलाषा से ब्रह्मालय से मैं देव हो जाऊंगा या देवोंमें कार्दि, वह इसमें रस लेता है, उसकी इच्छा करता है, इसमें प्रसन्नता अनुभव करता है। ब्राह्मण ! यह भी ब्रह्मचर्य का संहित

ही जाना है, दूढ़ जाना है, छिड़-युक्त ही जाना है, चित्कवरा ही जाना है, थम्बे-दार हो जाना है। इसीलिये कहा जाता है कि इस प्रकार के वद्वाचयं का आचरण करने वाला पृथग मतिन मंथून के संग्रह से युक्त प्रह्लादयं का ही आचरण करता है और वह गम्भीर से, जरा से, मरण से नहीं छूटता, नहीं छूटता दुःखसे—मैं कहता हूँ।" साक्षा के इतिहास में इससे गम्भीर प्रबलन वद्वाचयं गह नहीं दिया गया।

तथागत-प्रवेदित धर्म-विनय के बास्तविक स्वरूप को समझते के लिये हितनी महत्वपूर्ण और प्रामाणिक सामग्री हमें अंगूनर-निकाय में मिलती है, इसका कुछ दिव्यदर्शन किया जा सकता है। तत्कालीन इतिहास की भलक भी उसमें कितनी मिलती है, यह अब हमें देखना है। सिह सेनापति (सिंच्छवि सुरदार) बुद्ध-युग का एक आधारीक व्यक्ति है।<sup>१</sup> अद्वितीय-निपात में हम सिह सेनापति को भगवान् से भेट करते हुए देखते हैं। सिह पहले नियमों (नियंत्रों-जैन साध्यों) का शिष्य रहा है वह अपनी कुछ आपत्तियों को लेकर भगवान् बुद्ध के पास आता है। वह उन्हें पूछता है कि वे कहीं तक अकियावादी, उच्छेदवादी हैं या नहीं। भगवान् एक-एक कर उसको बतला देते हैं कि किन-किन अर्थों में उनको ऐसा (अकियावादी, उच्छेदवादी जादि) कहा भी जा सकता है। सिह सेनापति संतुष्ट होकर उपासक बनना चाहता है। भगवान् उसे कहते हैं "सिह! सोच-समझ कर जारी। तुम्हारे जैसे समझान्त मनव्यों का सोच-समझ कर निष्ठय करना ही अच्छा है।" सिह सेनापति जब अपनी दृढ़ वद्वा दिखाता है तो भगवान् उसे उपासक के रूप में स्वीकार कर लेते हैं, किन्तु चूँकि वह पहले नियंत्रों का शिष्य रहा है और वे उससे दान पाते रहे हैं, इसलिये उदार शास्ता सिह को यह भी आदेश देना नहीं भूलते, "सिह! तुम्हारा कुल दीर्घ-काल से नियमों के लिये ध्योज की तरह रहा है। उनके आने पर उन्हें पहले की ही तरह तुम्हारे वर से दान मिलता रहना चाहिये।" धूम के विरुद्ध किस प्रकार मिथ्या प्रचार किया जाता था इसका विवरण हम इसी निकाय के वेरंजक-मृत में पाते हैं। वेरंजक नामक ब्राह्मण भगवान् के गास जाकर कहता है, "हि गोलम! मने सुना है कि आप गोतम अ-रस

१. देखिये महापरित राहुल सांकेत्यायन का 'सिह सेनापति' शोधक उपन्यास।

है ..... आप गोतम निर्भीग है ..... आप गोतम अकियावादी है ..... आप गोतम उच्छेदवादी है ..... आप गोतम जुगला (छुणा करने वाले) है ..... आप गोतम वैत्तिक (हटाने वाले) है ..... आप गोतम तासबी है ..... आप गोतम जरगभ है । भगवान् उसे बताते हैं कि उन्हें किस-किस वर्ष में ऐसा कहा भी जा सकता है ।" उदाहरणतः "ब्राह्मण ! मेरे काया के दुराचार, बाणी के दुराचार, मनके दुराचार को अकिया कहता है । अनेक प्रकार के याप कर्मों को मेरे अ-अकिया कहता है । यही कारण है ब्राह्मण ! जिससे 'अमण गोतम अकियावादी है' । ऐसा कहा जा सकता है । ..... ब्राह्मण ! मेरे राम, दूष, मोह के उच्छेद का उपर्युक्त करना है । अनेक प्रकार के याप-वार्मों का उच्छेद कहता है । 'अमण गोतम उच्छेदवादी है' ऐसा कहा जा सकता है । ..... ब्राह्मण ! जिसका भवित्व का गम्भीरायन, आवागमन नष्ट हो गया, जड़-मूल से चला गया, उसको मेरे अपगम में करता है । ब्राह्मण ! तथागत का गम्भीरायन, आवागमन, नष्ट हो गया, जड़-मूल से चला गया । 'अमण गोतम अपगम में है', ऐसा कहा जा सकता है ।" आदि, आदि । यही भगवान् अपनी जीवनी का भी कुछ वर्णन करने लगते हैं, "ब्राह्मण ! इस अविद्या में पड़ी, अविद्या हरी अंडे से जकड़ी ग्रजा में, मेरे अंकला ही अविद्या हरी अंडे को फोड़ कर, अनुत्तर सम्बद्ध-सम्बोधि को जानने वाला है । मेरे ही ब्राह्मण ! लोक में ज्योष्ठ है, वय है । मैंने न दबने वाला वीर्यारम्भ किया था, विलमरण-रहित समृद्धि मेरे सम्मुख थी, अचल और वाल्त मेरा शरीर था, एकाग्र समाहित चित्त था । ..... ब्राह्मण ! उस प्रकार प्रमाद-रहित, तत्त्व, आत्म-संयम-युक्त होकर विहृते हुए, मूर्ख रात के पहले याम में, पहली विद्या प्राप्त हुई, अविद्या नष्ट हुई, विद्या उत्पन्न हुई, तम नष्ट हुआ, आलोक उत्पन्न हुआ । ब्राह्मण ! अंडे से मुर्मी के बच्चे की तरह यह पहली फट हुई । फिर ब्राह्मण ! रात के बीच के याम में द्वितीय विद्या उत्पन्न हुई । रात के गिछले याम में तृतीय विद्या उत्पन्न हुई । अविद्या नष्ट हुई, विद्या उत्पन्न हुई । तम गया, आलोक उत्पन्न हुआ । ब्राह्मण ! अंडे से मुर्मी के बच्चे की तरह यह तीसरी फट हुई ।"

कोशल-राज प्रमेनजित् युद्ध का अदावान् उपागमक था, यह हम संवत्त निकाय में देख चुके हैं । महिमग-निकाय (वार्तीतिक-सूत्र) में हमने प्रयोग-

जित् और भ्रान्ति का संवाद भी देता है। अंगूष्ठर-निकाय के कोसल-मुत में हम उसे पृथक् के प्रति अवीच खदा और प्रेम प्रदशित करते हुए देखते हैं। श्रावस्ती में भगवान् के दर्शनार्थी वह जाता है। जेतवन-बाराम के द्वार पर ही वह भिक्षुओं से भगवान् के दर्शन-विषयक अपनी इच्छा को प्रकट करता है। "महाराज ! यह द्वार-बन्द कोठरी है, चुपके से धोरे-धीरे वहाँ जाकर बरामदे में प्रवेश कर, सौत कर जबीर को खटखटा देना। भगवान् तुम्हारे लिये द्वार सोल देंगे।" भगवान् ने द्वार लोल दिया। "विहार में प्रविष्ट हो प्रसेनजित् भगवान् के पैरों में मिर-कर, भगवान् के पैरों को मुल से चमता था, हाथ से पैरों को दबाता था और अपना नाम सुनाता था 'भन्ते ! मैं राजा प्रसेनजित् कोसल हूँ'।" "महाराज ! तुम किस बात को देखकर इस शरीर में इनी मैत्री का उपहार दिलाते हो ?" "भन्ते ! कृतज्ञता, कृतवेदिता को देखते हुए मैं भगवान् की इस प्रकार की परम सेवा करता हूँ, मैत्री उपहार दिलाता है। भन्ते ! भगवान् बहुत जनों के हित, बहुत जनों के सूख के लिये है।" अंगूष्ठर-निकाय में हम देखते हैं कि भगव-राज अजानवाच वज्रियों के गण-लन्त्र के विस्तु अभिधान करना चाहता है। भगवान् जिस समय-राजगृह में गद्धकूट-पञ्चत (गिज्मूकूट पञ्चत) पर विहर रहे थे, उसने आपने मन्त्री वर्षकार (वस्सवार) सामक ब्राह्मण को उनसे इस सम्बन्ध में पूछने के लिये भेजा था। सोलह महाजन-नदी का इस निकाय में विशेष वर्णन है।<sup>१</sup> इन सोलह सहायय पदों के नाम हैं अंग, भगव, काशी, कोशल, वज्रि, भूल, चेति, वस, कुरु, पांचाल (पांचाल), मच्छ (मत्स्य), सूरसेन (सूरसेन), अस्मुक (अस्वक-अदमक), अवन्ती, गन्धार और कम्बोज। ये सभी नाम उन प्रदेशों के निवासियों (जनों) के सूचक हैं। गणतन्त्र-प्रणाली की यह मुख्य विशेषता थी। भीमोजिक दृष्टि से भी इस निकाय के अनेक वर्णन बड़े महत्व के हैं। उदाहरणतः यहाँ गगा, यमूना, अविरवती, सरम् (मरय) और मही इन पौन बड़ी नदियों का वर्णन है। इसी प्रकार भडगाम (वज्रिप्रदेश) इच्छा-मंगल (कोशल) आदि ग्रामों, केसपुत (कालाम नामक धर्मियों का कस्बा)

१- अंगूष्ठर-निकाय, जिसद पहली, पृष्ठ २१३, जिसद चौथी, पृष्ठ २५२, २५६, २६०, आदि (पालि दंकस्त् सोतायदी का संस्करण)

कुसीनारा (मल्ल-प्रदेश में), नलकपान (कोशल), कम्मासदम्भ (कुरु-प्रदेश) आदि कस्त्रों और शावस्त्रों, कोशाम्बी, पाटलिपुत्र आदि अनेक नगरों के वर्णन हैं जो बृहद-कालीन भारत के ब्रातावरण को आज भी हमारे लिये सर्वोच्च बनाते हैं।

### उ—खुदक-निकाय

#### खुदक-निकाय के स्वरूप की अनिश्चितता।

खुदक-निकाय सूत-पिटक का पाँचवाँ स्वरूप भाग है। पहले भार निकायों की सी एकलपता यही नहीं मिलती। खुदक-निकाय छोटे-छोटे (खुदक) स्वतन्त्र सन्धों का संग्रह (निकाय) है। सभी ग्रन्थ छोटे भी नहीं हैं। कुछ तो (जैसे जातक आदि) काफी बड़े भी हैं। भाषाभौली में भी समानता नहीं है। कुछ विशुद्ध पद्यात्मक और कुछ गद्य-पद्य मिश्रित रखनाएँ हैं। काव्य, आर्थ्यान, गीत, यही खुदक-निकाय के विषय हैं। निश्चयतः खुदक-निकाय के विषय और शैली की सब से बड़ी विशेषता उसकी विविधरूपता ही है। जैसा अनेक दूसरे अध्याय में दिलाया जा चुका है, वर्गोकरण के भेद से खुदक-निकाय की ग्रन्थ-संख्या में भी पर्याप्त भेद पाया जाता है।

#### सूत-पिटक के अङ्ग के रूप में

सामान्यतः खुदक-निकाय सूत-पिटक का एक अङ्ग है। इस रूप में खुदक-निकाय में गन्ध ग्रन्थ सम्मिलित है, जिनकी गणना नीचे लिखे क्रम से आवाय बृहदधोष ने की है—

१ खुदक-गाठ	६ विमानवर्त्य
२ घम्मपद	७ पेतवर्त्य
३ उदान	८ वैरगाभा
४ इतिवृत्तक	९ चैरी गाया
५ सूत-निपात	१० जातक

१. सुमंगल विलासिनी, भाग प्रथम, पृष्ठ १७ (पाति ईक्स्ट्र सोसायटी का संस्करण)

११ निहेस	१४ बुद्धवंस
१२ पटिसम्भिदामग्ग	१५ चरियापिटक
१३ अपदान्	

निहेस के दो भाग चलनिहेस और महानिहेस हैं। उनको दो स्वतंत्र प्रन्थ मान कर गिनने से उपर्युक्त प्रन्थ-संख्या १६ हो जाती है। किन्तु स्थविरवादी दोड परम्परा १५ ही प्रन्थ मानती है। "पण्णरमभेदो लुद्धक-निकायो"। आचार्य बुद्धधोष ने हमें सबना दी है कि प्रथम संगीति के अवसर पर मठिभमनिकाय का संगायन करने वाले (मठिभम-भाषणक) भिक्षु उपर्युक्त १५ प्रन्थों को सूत-पिटक के अन्तर्गत लुद्धक-निकाय में सम्मिलित मानते थे।<sup>१</sup>

### लुद्धक-निकाय अभिधम्म-पिटक के अन्तर्गत भी

किन्तु एक दूसरी परम्परा उसी समय से लुद्धक-निकाय को सूत-पिटक के अन्तर्गत मानने के विषय में थी। यह दीघ-निकाय का संगायन करने वाले (दीघ-भाषणक) भिक्षुओं की परम्परा थी। ये भिक्षु लुद्धक-निकाय को सूत-पिटक के अन्तर्गत न मान कर उसे अभिधम्म-पिटक के अन्तर्गत मानते थे। प्रन्थ-संख्या के विषय में भी घतभेद था। इन्हें लुद्धक-निकाय के सिफ़ निन्नलिखित १५ प्रन्थ, विन्हें वे लुद्धक-प्रन्थ कहते थे मात्य थे। आचार्य बुद्धधोष ने इन द्वन्द्वों की सूची इस प्रकार दी है—<sup>२</sup>

१ जातक	७ इतिवृत्तक
२ निहेस	८ विमानवत्थु
३ पटिसम्भिदा मग्ग	९ पेतवत्थु
४ सूत-निपात	१० धेरमाया
५ धम्मपद	११ धेरीगाया
६ उदान	

१. मठिभमभाषणका पन सर्वापि सं लुद्धक-प्रन्थं सूतगतपिटके परियाप्तं ति बद्धन्ति। सुभंगलविलासिनी को निवानकया।

२. ततो परं जातक, ... धेरभ्येदो गायाति इन तन्ति संगायित्वा 'लुद्धक-

उपर्युक्त सूची में स्पष्ट है कि चरियापिटक, अपदान, बुद्धवेस और लुहक-पाठ, ये चार प्रम्य लुहक-निकाय के ग्रन्थों के रूप में दीघ-भाणक भिक्षुओं को मान्य नहीं थे। वास्तव में लुहक-निकाय को सूत-पिटक के अन्तर्गत न मानना दीघ-भाणक भिक्षुओं का इनना साहसिक कृत्य नहीं था। जितना वह हमें आज लगता है। प्रथम संगीति के अवसर पर ही हम आर्य महाकाशयप द्वीप आनन्द से पृथग्ने हुए, देखते हैं “सूत-पिटक में चार संगीतियों (संग्रह) हैं। उनमें से पहले किसका संगायन करना होगा ?”<sup>१</sup> इसमें स्पष्ट है कि यहले सूत-पिटक को चार भागों में ही विभाजित करने की प्रणाली थी। बाद में स्वतन्त्र ग्रन्थों का एक अलग संग्रह कर दिया गया, जिसकी तो प्रम्य-संग्रहों का ही दीक्ष निश्चय हो चका और न जिसे निकायपूर्वक सूत-पिटक या अभिधर्म-पिटक में ही रखना जा सका। लुहक-निकाय के अनिश्चित स्वरूप का यही कारण है।

### अभिधर्म-पिटक लुहक-निकाय के अन्तर्गत भी

किन्तु इस अनिश्चितता का यही अन्त नहीं है। समय लुह-वचनों का जब पौर्व निकायों में वर्गीकरण दिया जाता है, तो वही भी लुहक-निकाय पौर्ववर्गी भाग है।-किन्तु वही इसका विषय-तेज़ बहुत विस्तृत है। दीघ, मठिभर्म, संबुद्ध और अद्वाल निकायों को छोड़कर बाकी सभी लुह-वचन जिनमें पूरे विनय और अभिधर्म पिटक भी सम्मिलित हैं, वही लुहक-निकाय के ही अन्तर्गत समझे जाते हैं। लुहक-निकाय के इस विस्तृत विषय-क्षेत्र के सम्बन्ध में ‘सूमगल-विलासिनी’ की निदान-कथा में कहा गया है—“या है लुहक-निकाय ? सम्पूर्ण विनय-पिटक, सम्पूर्ण अभिधर्म-पिटक, लुहक-पाठ आदि १५ प्रत्यय, सारोंश यह कि चार निकायों को छोड़कर बाकी सभी लुह-वचन लुहक-निकाय है।”<sup>२</sup>

ग्रन्थों नाम अर्थ ति च वस्त्रा अभिधर्मपिटकस्मि येव संगहं आरोपयित्सूति दीघभाणका वदन्ति । अट्ठसालिनी की निदान-कथा ।

१. सूतन्त-पिटके चतुसों संगीतियों, तासु-पठमं कतरं संगीतिन्ति । अट्ठसालिनी की निदान-कथा ।

२. कतमो लुहक-निकायो ? सकलं विनय-पिटकं अभिधर्म-पिटकं लुहक-

निकाय की दृष्टि से यही अभिवस्तु-गिटक को लुटक-निकाय में ही सम्मिलित कर दिया गया है, केवल गिटक के लाए में उसकी स्वतन्त्र सत्ता अवश्य स्वीकार की गई है।<sup>१</sup>

### इसका अभिप्राय

उपर्युक्त वर्गीकरणों को घासपूर्वक देखने से विदित होगा कि उनमें लुटक-निकाय और अभिवस्तु-गिटक को एक दूसरे में मिला दिया गया है। इसका अभिप्राय क्या है ? ऐतिहासिक दृष्टि से यह तथ्य बहुत महत्व का है। 'अभिवस्तु' धम्म का, सुत-गिटक का, परिशिष्ट है। 'अभिवस्तु' में 'अभि' शब्द यही रहस्य लिये चैढ़ा है, यह हम आगे देखेंगे। प्रथम चार निकायों के अतिरिक्त जो कुछ भी लुटक-वचन है, वे इस विस्तृत अर्थ में सभी अभिवस्तु हैं, 'अतिरिक्त' धम्म है। लुटक-निकाय के प्रत्यन्त इसी प्रकार के अतिरिक्त धम्म हैं। अतः उन्हें 'अभिवस्तु' के साथ उपर्युक्त अर्थ में मिला दिया गया है। इस तथ्य से लुटक-निकाय के ग्रन्थों के संकलन-काल पर भी पर्याप्त प्रकाश पड़ता है।

सिंहल, बरमा और स्याम में लुटक-निकाय की ग्रन्थ-संस्था के विषय में विभिन्न मत

मिहलदेशीय परम्परा लुटक-निकाय के ग्रन्थमंत्र १५ ग्रन्थों को (जो निहेस को दो ग्रन्थ मान कर १६ हो जाते हैं) मानती है। बरमा में इनके अतिरिक्त चार अन्य ग्रन्थ भी लुटक-निकाय में सम्मिलित माने जाते हैं। इनके नाम हैं, मिलिन्द-पञ्च, सुत-नंगह, पेटकोपदेश और नेति या नेति-गकरण<sup>२</sup>। मिहली परम्परा इन्हें लुटक-निकाय के ग्रन्थमंत्र स्वीकार नहीं करती। १८९४ई० में

पाठाद्यो च पुष्टे निवसितपञ्चदसभेदा, ठापेत्वा चत्तारो निकाये अवसेसं लुटक-वचनं ति । सुमंगलविलासिनो, भाग प्रब्रह्म, पृष्ठ २३ (पालिन्द० सो०); मिलाइये अद्भुतालिनो, पृष्ठ २८ (पालिन्द० द० सो०); गन्धवंस, पृष्ठ ५७ (जनन्ल आंव पालिटैक्सट् सोसायटी, १८८६)

१. अयं अभिवस्तु-गिटकतो अभिवस्तु-गिटकं, निकायतो लुटक-निकायो ।  
अद्भुतालिनो की निदान-कथा ।

२. मेविल जोड़ : पालि लिटरेचर ऑफ बरमा, पृष्ठ ४

प्रकाशित चिपिटक के स्थानी संस्करण में ये आठ सत्य अनुपलब्ध हैं—विमान-वत्य, पैतवत्य, वेरमाया, थेरोगाधा, जातक, अपदान, बुद्धवचन और चरियापिटक। विटरनिलज से कहा है कि यह बात आकर्षित नहीं हो सकती।<sup>१</sup> इससे उनका तात्पर्य यह है कि स्थान में ये सत्य बुद्ध-वचन के रूप में प्रामाणिक नहीं माने जाते। कम से कम उनका अल्प महत्व तो निश्चित है ही।

### खुदक-निकाय के ग्रन्थों का काल-क्रम

उपर के विवेचन से स्पष्ट है कि खुदक-निकाय पहले चार निकायों के बाद का संकलन है। बुद्ध-वचन के रूप में उसका महस्त्र भी उसके बाद ही माना चाहिये। चींगी आगमों में तो उसे एक प्रकार स्वतन्त्र निकाय का स्वान ही नहीं मिला। केवल कुछ स्फुट ग्रन्थों के पात्र जाने के कारण ही वही 'बुद्ध-कागम' के अस्तित्व का अनुमान कर लिया गया है<sup>२</sup>। ये प्रथम भी वही कभी कभी अन्य निकायों में ही सम्मिलित कर दिये जाते हैं<sup>३</sup>। अतः स्थविरवादी और सर्वोस्तिवादी दोनों ही परम्पराओं में प्रथम चार निकायों की प्रधानता, पालिचिपिटक में उसके स्वतन्त्र रूप की अनुमति अवश्य आवश्यक प्राप्ति, एवं सब से वह कर स्थविरवादी परम्परा में भी उसको कुछ ग्रन्थों को बुद्ध-वचन के रूप में प्रामाणिक न मानने की ओर प्रवृत्ति, ये सब तथ्य इसी बात के सूचक हैं कि खुदक-निकाय प्रथम चार निकायों के बाद का संकलन है। विचारों के विकास की दृष्टि से भी इसी निष्कर्ष पर आना पड़ता है। प्रथम चार निकायों में विवेकबाद की प्रधानता है। खुदक-निकाय में काव्यात्मक तत्त्व का आधार लेकर भावुकता भी काफी प्रधानता लिये हुए हैं। स्थविरवादी परम्परा बुद्ध-वचनों की गम्भी-

१. हिस्ट्री ऑब इंडियन लिटरेचर, जिल्ड दूसरी, पृष्ठ ७७ पद-संकेत ३

२. वेलिये पहले इसी अध्याय में 'पालिचिपिटक कहाँ तक मूल, प्रामाणिक बुद्ध-वचन हैं?' इसका विवेचन।

३. वेलिये ट्रॉलेंस्टान्स ऑब दि एशियाटिक सोसायटी ऑफ जापान, जिल्ड ३५, भाग ३, पृष्ठ ९ में प्र०० एम० अनेसाकि का लेख, विटरनिलज, : हिस्ट्री ऑब इंडियन लिटरेचर, जिल्ड दूसरी, पृष्ठ ७७, पद-संकेत २ में उद्दृत।

रता को काव्योचित भावनाओं और कल्पनाओं में से देना पसंद नहीं करती थी। विनय-पिटक के चुल्लवग्म में बृद्ध-उपदेशों को गातों की तरह माना स्पष्ट क्य से निषिद्ध किया गया है और उसे अपराज्य बतलाया गया है। मम्मीर अनास्त्रदान पर प्रतिलिपि बृद्ध-बच्चों को भावात्मक कविताओं में गाना स्थविरवादी परम्परा संधि के लिये एक आने वाली विपत्ति समझती थी।<sup>१</sup> खुदूक-निकाय के ग्रन्थों में इसी विपत्ति के दर्शन हुए हैं, विट्ठनित्य का मह समझना<sup>२</sup> यद्यपि ठीक नहीं माना जा सकता, किन्तु यह उसके अपेक्षाकृत उत्तरकालीन होने का सूचक तो है ही। खुदूक-निकाय का अधिकांश स्वरूप काव्यात्मक होते हुए भी उसका मूल भावना सर्वांश में बोड़ है। बल्कि उसकी गाथाओं में अनेक तो पिटक-संकलन के प्राचीनतम युग की सूचक भी हैं। उनके सर्वांश में बृद्ध-बच्चन होने का दावा तो स्वयं खुदूक-निकाय में भी नहीं किया गया, क्योंकि येर-येरी गाथाओं जैसी रचनाओं को वहाँ स्पष्टत, भिक्षु-भिक्षु-गियों की कृतियाँ रहा गया है। वास्तव में बात यह है कि तत्कालीन लोक-साहित्य और भावनाओं का प्रभाव खुदूक-निकाय के कुछ ग्रन्थों (विशेषतः विमान-वत्त्व, पेतवत्त्व, जातक, चरियापिटक आदि) में अधिक परिलक्षित होता है, जो उनकी अणेकिक जबर्नीनिता का सूचक अवश्य है, किन्तु साहित्य और इतिहास के विद्यार्थी के लिये इसी दृष्टि से उसका महसूव भी बहु गया है। पालि के सर्वांशम काव्य-उदागार खुदूक-निकाय के ग्रन्थों में ही सञ्चिहित है और उनका प्रणयन मानवीय तत्त्वों के आधार पर निश्चय ही चार निकायों के बाव होता है, यद्यपि उनमें से अनेक अत्यन्त प्राचीन युग के भी हैं, यह भी उतना ही सुनिश्चित तथ्य है। इसका एक स्पष्टतम प्रमाण तो यही है कि 'पंचनेकायिक' भिक्षुओं की परम्परा विनय-पिटक—चुल्लवग्म से आरम्भ होकर, भारहुत और संची के स्तूपों (तृतीय शताब्दी या कम से कम २५० वर्षे ईसवी पूर्व) में

१. देखिये ओपम्म-संदृश (संयुक्त-निकाय) एवं अंगुस्तह-निकाय के अनागत-भव-सूत्र

२. हिरद्वी आंव-ईंडियन लिटरेचर, जिल्ड तूसरी पृष्ठ ७७

अधिक होती हैं), अविभिन्न स्वर से मिलिन्दग्रन्थ<sup>१</sup> (प्रथम शताब्दी ई० पू०) तक दुष्टिगोचर होती है। 'प्रचम' निकाय के अस्तित्व के बिना यह असम्भव है। जब यह निषिद्ध है कि प्रथम संगीति के समय से ही, जब कि दीप्ति-भाणक और मणिभूमि-भालक भिन्नओं में लृहक-निकाय के विषय में सत्त-भेद प्रारम्भ हुआ, लृहक-निकाय का संकलन होने लगा था, किन्तु प्रथम चार निकायों से इसका अन्तर बोल इतना था कि जब कि उनका स्वरूप उसी समय स्थिर हो गया था, लृहक-निकाय में तृतीय संगीति तक परिवर्त्तन होते थे। अतः प्रथम और तृतीय संगीतियों उसके प्रणयन या संकलन काल भी कमज़ोः उपर्युक्ती और निचली काल-सीमाएँ हैं।

इस सामान्य कथन के बाद अब हमें लृहक-निकाय के १५ प्रन्थों की पूर्वापरता पर विचार करना है। याहाँ साध्य के जापार पर हम जिन घन्थों को कम या अधिक प्रामाणिक मान सकते हैं, इसका दिर्घर्णन करने के लिये हमें उन परम्पराओं को देखना है, जो लृहक-निकाय की प्रामाणिकता के विषय में पालि-साहित्य के इतिहास में जल पड़ी हैं। इन्हें इस प्रकार विचारा जा सकता है—

(१) प्रथम संगीति के अवसर पर दीप्ति-भाणक भिन्नों ने जिन प्रन्थों को प्रामाणिक नहीं माना—(१) बुद्धवंस (२) चरियापिटक (३) अपदान।

(२) द्वितीय संगीति के अवसर पर महासंगीतिक भिन्नों ने जिन घन्थों को प्रामाणिक नहीं माना—(१) पटिसम्भवामग (२) निहेश (३) जातक के कुछ अंश

(३) स्थामी परम्परा जिन्हें बुद्ध-वज्रन के लग में प्रामाणिक नहीं समझती—  
(१) विमानवल्ल (२) पेतवल्ल (३) वेरगाया (४) वेरीगाया (५) जातक (६) अपदान (७) बुद्धवंस (८) चरियापिटक।

जिन घन्थों को दीप्ति-भाणक भिन्नों ने प्रामाणिक स्वीकार नहीं किया थे सभी स्थामी परम्परा द्वारा बहिष्कृत घन्थों की सूची में भी सम्मिलित है। महासंगीतिक भिन्नों ने जातक के कुछ अंशों को भी प्रामाणिक नहीं समझा और

१. वैलिये रावस डेविड्स : बृद्धिस्ट इंडिया, पृष्ठ १६९

२. पृष्ठ २३ (बम्बई विश्वविद्यालय का अनुवरण)

स्थानी परम्परा भी इसमें उसके समान ही है। पटियालियामग्ग और निहेंग की महासंगीतिक भित्तिओं ने अवश्य प्रामाणिक स्वीकार नहीं किया जब कि स्थानी परम्परा में उन्हें प्रामाणिक मान लिया गया है। यदि तुम सम्पूर्ण उपर्युक्त बहिरकृत ग्रन्थों को भिलाकर गिरें तो—अप्रमाणिक ग्रन्थों की यह सूची इस प्रकार होगी (१) विमानवन्धु (२) गेतवल्लु (३) खेदगाया (४) खेदीगाया (५) जातक (६) अपदान (७) बुद्धवंस (८) चरियापिटक (९) पटियालियामग्ग और (१०) निहेंग। बुद्ध-निकाय के १५ ग्रन्थों में से इन्हें निकाल दें तो बाकी से बच रहते हैं (१) बुद्ध-गाठ (२) दम्पत्र (३) मृत-निपात (४) उदाम और (५) इतिवलक। अतः बाह्य सारण के आधार पर उपर्युक्त दोनों ग्रन्थ ही अन्य १० की अपेक्षा अधिक प्रामाणिक बुद्ध-वचन ठहरते हैं। बुद्ध-गाठ को छोड़कर शेष चार ग्रन्थ भी अनुवाद में भी उपलब्ध हैं।

आन्तरिक माध्य भी इसी विषय का अधिकतर समर्थन करता है। भाषा और विषय दोनों की दृष्टि से घम्मापद, सूत-निपात, उदान और इतिहासक प्राचीनतम युग के संचक हैं। इनकी विषय-वस्तु का जो विवेचन आगे किया जायगा, उससे यह तथ्य स्पष्ट हो जायगा। बृहक्-पाठ अवश्य बाद का संकलन जान पड़ता है। उनमें कुछ सामग्री सूत-निपात से ली गई है और कुछ विधिटक के अन्य अंशों से। शरण-त्रय और धरीर के ३२ अङ्गों के विवरण जो इस संकलन में हैं, शार तिकायों में प्राप्त विवरणों से कुछ अधिक विवरित अवस्था के संचक हैं।<sup>१</sup> अतः बृहक्-पाठ का स्वाम भी काल-वस की दृष्टि से

१. देखिये विमलाचरण लाहा : हिस्ट्री औंव पालि लिटरेचर, जिल्ड पहली, पृष्ठ ३५; बास्तव में शरण-ब्रह्म के सम्बन्ध में तो ऐसा कोई अन्तर नहीं है, क्योंकि 'बृद्ध' सरण गच्छामि' आदि के बाद वहाँ केवल 'तुतियमि' (इसरी बार भी) 'ततियमि' (तीसरी बार भी) अधिक हैं। ही शरीर के दूर अंगों के कथन में 'मरुके मरुबुलंगति' (मरुतक का गवा) पद अवश्य अधिक है। प्रथम जार निकायों में केवल ३१ अंगों का ही वर्णन है।

योग १०० अन्यों के साथ है। इन सब योगों के संकलन की निश्चित तिथि के सम्बन्ध में तो कुछ नहीं कहा जा सकता, किन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि इनमें जो अधिक उत्तरकालीन है वे भी अधीक के काल से बाद के नहीं हैं। घम्मपद, सूत-निपात, उदान और इनिवृत्तक के बाद काल-क्रम की दृष्टि से जातक और थेर-थेरी गाथाओं का स्थान कहा जा सकता है। 'जातक' में बुद्ध के पूर्व-जन्म की कथाएँ हैं। मूल जातक में ऐसों केवल ५०० कहानियाँ थीं। चूल्ह-निर्देश में ५०० जातक-कहानियों का ही निर्देश हूआ है।<sup>४</sup> फाहयान ने भी सिंहल में ५०० जातक-कहानियों के चित्र अंकित देखे थे।<sup>५</sup> बाद में जातक-कहानियों की संख्या बढ़कर ५४७ हो गई। मूल जातक की प्राचीनता इस बात से प्रकट होती है कि तीमरी शताब्दी ईस्वी पूर्व के सौंचों और भारहुत के स्तूपों में उसकी अनेक कहानियों के दृश्य अंकित किये गये हैं।<sup>६</sup> अतः जातकों का काल उस में काफी पहले का होना चाहिये। थेर-और थेरी-गाथाओं में बुद्ध-कालीन भित्तियों और भित्तियों की गाथाएँ हैं। केवल थेरगाया की कुछ गाथाएँ जडोक के समय के भित्तियों की बताई जाती हैं।<sup>७</sup> अतः सम्भव है थेरगाया ने भी अपना अन्तिम स्वरूप अधीक के काल में ही प्राप्त किया हो और तृतीय संगीत के अवसर पर उसका संगायन हुआ हो। जातकों के बीचियस्त-आदर्श पर ही आधारित बुद्धवंस और चरिया-

## १. पृष्ठ ८०

२. रिकार्ड ऑब दि बुद्धिस्ट किलडम्स, ऑफसफल १८८६, पृष्ठ १०६ (ज्ञ० लेप का अनुवाद)

३. रायस डेविड्स : बुद्धिस्ट इंडिया, पृष्ठ २०९; हल्डा : जनेल ऑब रायस एशियाटिक सोसायटी, १९१२, पृष्ठ ४०६; इस सम्बन्धी अधिक साहित्य के परिचय के लिये देखिये विटरन-बैच : हिन्दू ऑब इंडियन लिटरेचर, जिल्ड द्वासरी, पृष्ठ १६, पदसंकेत ३; पृष्ठ ११३ पद संकेत ३

४. गाथाएँ १६२-७० जडोक के कनिष्ठ भ्राता बीतसोक की रचनाएँ हैं। मिलाइये "इमस्मि बुद्धप्यादे अट्ठारस वस्ताधिकारं हिन्नं वस्त सतानं यस्थके धम्मासोकरङ्गो कणिष्ठ भ्राता हुत्वा निवृत्ति । तस्म बीत-सोकोति नामं अहोसि ।" (बीतसोकथेरस गाथावण्णना । )

पिटक है। बुद्धवंस में मीलम् बुद्ध और उसके पुत्रवतीं २४ बुद्धों का वर्णन है, जब कि प्रथम चार निकायों (विशेषतः महापदानसूत-बीच, ३।३) में केवल ६ पुत्रवतीं बुद्धों का ही वर्णन मिलता है। चरियापिटक में बोधिसत्त्वों की जीवन-वर्या का वर्णन मिलता है। यहीं पर सब प्रथम दस पारमिताओं का भी वर्णन मिलता है। जातक को कहानियों से इन सब को बड़ी समानता है। बल्कि कहता चाहिये एक प्रकार से चरियापिटक २६ पश्च-बुद्ध जातकों का संग्रह ही है। जिस प्रकार बुद्धवंस और चरियापिटक जातक के उत्तरवतीं हैं, उसी प्रकार निहेस भी जातक के बाद का संकलन है। जैसा अभी कहा जा चुका है, चुल्ल-निहेस में जातक का निर्देश मिलता है। निहेस (जिसमें चुल्ल-निहेस और महानिहेस दोनों मम्मिलित हैं) सूत-निपात से बाद का संकलन है। एक प्रकार से निहेस सूत-निपात के कुछ अंशों की व्याख्या ही है। चुल्ल-निहेस खम्माविसाणसूत और पारायणवग्ग की व्याख्या है, जब कि महानिहेस में अट्ठकवग्ग की व्याख्या की गई है। अतः निहेस सूत-निपात से बाद की रचना ही मानी जा सकती है। डा० लाहा की मत इससे भिन्न है। उनका कहना है कि निहेस सूत-निपात से पहले की रचना होनी चाहिये। इसके लिये उन्होंने दो कारण दिये हैं, (१) महानिहेस में सूत-निपात के अट्ठकवग्ग की व्याख्या उस वग्ग की मूलक है जब अट्ठकवग्ग एक बलग वर्ग की अवस्था में था, (२) सूत-निपात के पारायणवग्ग के आरम्भ में एक प्रस्तावना है जो चुल्ल-निहेस की व्याख्या में लुप्त है। यदि चुल्ल-निहेस सूत-निपात के बाद का संकलन होता तो इस प्रस्तावना की भी व्याख्या वही अवश्य होती। डा० लाहा न जो कारण दिये हैं वे निषेधात्मक दंग के हैं। निहेस के रचयिता या संकलनकर्ता को सूत-निपात के सम्पूर्ण अंशों की जानकारी होने हुए भी वह उसके कुछ अंशों को ही व्याख्या के लिये चुन सकता था। इसी प्रकार प्रस्तावना की भी व्याख्या करना या न करना उसकी इच्छा पर निर्भर था। सब से बड़ी बात तो यह है कि निहेस में सूत-निपात की कठिपय गाधाओं की व्याख्या की गई है, अतः वह उसके बाद की रचना ही हो सकती है। जिस प्रकार बुद्धवंस, चरियापिटक और निहेस जातक के बाद को रचनाएँ हैं उसी प्रकार वे-

थेरी—गाथाओं के बाद अपदान का भी प्रणयन निश्चित है। अपदान के दो भाग हैं, थेर अपदान और थेरी अपदान। इन दोनों भागों में कमज़ू और भिजुगियों के पूर्व जर्म की कठाय है। इस प्रकार यह पूरा ग्रन्थ थेर और थेरी-गाथाओं का पूरक ही कहा जा सकता है। अपदान निश्चयतः अशोककालीन रचना है। इसका कारण यह है कि उसमें कवाक्षस्तु का निर्देश हुआ है, जो निश्चयतः तृतीय समीति के समय लिखी गई। विमानवत्यु और वेतवत्यु भी उत्तरकालीन रचनाएँ हैं। इनमें कमज़ू: देव-लोकों और प्रेतों के वर्णन है, जो स्थविरवादी बीज समें के प्रारम्भिक स्वरूप से बहुत दूर हैं। विमानवत्यु में तो एक ऐसी पटना का भी वर्णन है जो उसी के वर्णन के अनुसार पायामि राजन्य के १०० साल बाद हुई।<sup>१</sup> पायामि की भृत्य भगवान् बृद्ध से कुछ साल बाद हुई थी, अतः जिस पटना का विमानवत्यु में वर्णन है वह बृद्ध-निवारण के सौ से कुछ अधिक साल बाद ही हुई होगी। इस प्रकार विमानवत्यु की रचना तृतीय समीति के कुछ पहले की ही अधिक से अधिक हो सकती है। इसी प्रकार वेतवत्यु भी अशोककालीन रचना है। उसमें 'मीयं-अधिष्ठिति' का निर्देश हुआ है<sup>२</sup> जिसका अभिप्राय 'अट्टकषा' के अनुसार पम्माशीक में है।<sup>३</sup> 'पटिसम्भदा-मग्म' की रचना अभिप्रम-पिटक की बीली में हुई है, अतः वह भी इसी युग की रचना है। इस प्रकार प्रस्तुत विवेचन के आधार पर खुदक-निकाय के सन्धों का काल-कम तीन थेरियों में विभक्त किया जा सकता है, जो इस प्रकार दिलाया जा सकता है—

१. धर्मपद, सुल-निपात, उदान, इतिवृत्तक।

२. जातक, थेरगाया, थेरोगाया।

३. मानुस्मक वस्त्रसत्तं अतोत्तं यदम्ये कायमित्र इथूपपत्रो । पृष्ठ ८१ (पालि-टैक्स्ट्र सोसायटी का संस्करण)

४. राजा पिगलको नाम सुरद्धानं अधिष्ठित अहुमोरियानं उपद्धानं गमन्वा सुरद्धं पुनरगम्मा ।

५. मोरियानंति मोरियराज्ञनं धर्मासोकं सन्धाय वदति । पृष्ठ ९८ (पालि-टैक्स्ट्र सोसायटी का संस्करण)

३ बुद्धवंस, चरियापिटक, निहेस, अपदान, पटिसम्भवामग, तिमानवत्य,  
प्रेतवत्य, खुदक-पाठ ।

प्रत्येक श्रेणी के ग्रन्थों में भी कोने किस से पहले या पीछे का है, इसका सम्पर्क निर्णय नहीं किया जा सकता। इसके लिये उतने स्पष्ट वाक्य और आन्तरिक साक्षय उपलब्ध नहीं हैं। निश्चित तिथियों के अभाव में इस प्रकार के निर्णय का कोई अधिक महत्व भी नहीं हो सकता। अब हम खुदक-निकाय के ग्रन्थों का संदर्भित विवरण देंगे ।

### खुदक-पाठ ।

खुदक-पाठ छोटे छोटे नी पाठों या मृतों का संशह है। ये सभी पाठ विशेषतः मृत-पिटक और चिनय-पिटक से संगृहीत हैं। प्रहले चार पाठ पिछले पाँच को अपेक्षा अधिक संक्षिप्त हैं। इनका संकलन प्रारम्भिक विद्यार्थियों को शिक्षा के लिये अथवा बौद्ध मृद्घस्थों के दैनिक पाठ के लिये किया गया है। अतः तिहल में खुदक-पाठ का बड़ा आवश्यक है। खुदक-पाठ के नी पाठों या मृतों के नाम और विवाय इस प्रकार हैं—

१. सरणत्य (तीन शरण) —मैं बुद्ध की, धर्म की, संघ की, शरण जाता हूँ। दूसरी बार भी—तीसरी बार भी—मैं बुद्ध की, धर्म की, संघ की, शरण जाता हूँ।

२. दस सिक्खापद—(दस शिक्षापद या सदाचार-सम्बन्धी नियम)  
(१) जीवहिसा (२) चोरी (३) व्यभिचार (४) असत्य-भाषण (५) मर्द्य-मान (६) असमय-भोजन (७) मृत्य-गोत (८) माला-गन्ध-विलेपन (९) जैवी जीर्ण बड़ी शब्दों (१०) सोने और चांदी का प्रहण, इन दस बातों से विरत रहने का व्रत लेता हूँ।

१. राहत सांकुत्यायन, आनन्द कोसल्यायन एवं जगदोश काश्यप द्वारा सम्पादित तथा भिक्षु उत्तम द्वारा प्रकाशित (बुद्धाब्द २४८१, १९३७ई०) नामरो संस्करण उपलब्ध है। भिक्षु धर्मसत्त्व एम० ए० का मूल-पालि-सहित हिन्दी अनुवाद महायोग्य सभा, सारनाथ (१९४५) ने प्रकाशित किया है।

३. द्वितीयाकार (जारीर के ३२ अङ्ग) — जारीर के ये ३२ (गतिशीलों से भरे) अङ्ग हैं, जैसे कि केश, रोम, नख, दौत आदि ।

४. कुमारपञ्च (कुमार विद्याशिलों के लिये प्रश्न)

एक क्या है ?	सभी प्राणी आहार पर स्थित हैं ।
दो क्या है ?	नाम और रूप ।
तीन क्या है ?	तीन वेदनाएँ ।
चार क्या है ?	चार आधं-सत्य ।
पाँच क्या है ?	पाँच उपादान-स्वान्ध ।
छः क्या है ?	छः आन्तरिक आवरतन ।
सात क्या है ?	बांधि के सात जङ्ग ।
आठ क्या है ?	आयं अष्टाङ्गिक मार्ग ।
नौ क्या है ?	प्राणियों के नौ आवास ।
दस क्या है ?	दस वातें, जिनसे मृक्ष होने पर मनुष्य अहंत बनता है ।

५. मङ्गल सूत (मङ्गलसूत्र) — प्राणी नाना प्रकार के मङ्गल-कार्य करते हैं। किन्तु सर्वोत्तम मंगल क्या है ?

“ माता-पिता की सेवा, पत्नी और पुत्रों का भरण-योग्य,

शान्ति से अपना काम करना — यही सर्वोत्तम मंगल है ।

“ दान देना, घर्म का जीवन, जाति-वन्धुओं की सहायता करना, कर्म निर्दोष रखना — यही सर्वोत्तम मंगल है ।

“ पाप और मरण-यान से अलग रहना, संयमी जीवन,

घर्म के काखों में आउस्य न करना — यही सर्वोत्तम मंगल है !

“ गुरुजनों का आदर, विनश्चता, सन्तोष-वृत्ति, कृतज्ञता, समय पर घर्म को ध्वन करना — यही सर्वोत्तम मंगल है !

“ धमा, बहानय, जानी भिशुओं का दर्शन, समय पर घर्म का मालाकार — यही सर्वोत्तम मंगल है !

“ तपश्चर्चा, बहानय, चार आयं सत्यों का दर्शन अन्त में निर्वाण का साक्षात्कार — यही सर्वोत्तम मंगल है ! ”

६. रतन सूत (रत्नसूत) — (३ मात्राओं में बुद्ध, अम्म और संघ, इन तीन रत्नों की महिमा वर्णन की गई है और उसी में लोक-कल्याण की कामना की गई है। आरम्भ की दो ओर जन की तीन मात्राएँ वो बड़ी ही मार्गिक हैं। बीज परम्परा इन्हे मौलिक मात्राएँ मानती हैं। बुद्ध, अम्म और संघ की महिमा का वर्णन करते हुए प्रत्येक के विषय में कहा गया है 'इवं पि बुद्धे रतनं पणीतं' (यह बुद्ध रूपी रत्न ही सर्वोत्तम है। 'इवं पि अप्ये रतनं पणीतं' (यह अम्म रूपी रत्न ही सर्वोत्तम है) और 'इवं पि संघे रतनं पणीतं' (यह संघ रूपी रत्न ही सर्वोत्तम है)। इस सत्य रूपी वाणी से लोक-कल्याण की कामना करते हुए कहा गया है—ऐतेन सच्चेन सुविद्य होतु (इस सत्य से लोक का कल्याण हो)

७. निरोक्तुड्ड-सूत — सूत आत्माएँ अपने छोड़े हुए घरों के दरवाजों पर और उनकी देहलियों पर आकर खड़ी हो जाती हैं। वे अपने सम्बन्धियों से भोजन और पान की इच्छा रखती हैं। प्रेतों के लोक में सेवी और वाणिज्य नहीं होते। उन्हें जो कुछ इस लोक से मिलता है, उसी पर वे गुजारा करते हैं। सदगृहस्व प्रेतों के कल्याण की कामना से भोजन और जल का दान करते हैं। सुप्रतिष्ठित भिक्षु-नंष्ठ को जो कुछ दान किया जाता है, वह प्रेतों के चिर सुख और कल्याण के लिये होता है। यह सूत भारतीय समाज में प्रचलित आद्व-विद्यान और पितॄ-पूजा का बीज संस्कारण ही है। दार्शनिक मिदान भिक्ष रखते हुए भी बीज जनता किस प्रकार भारतीय समाज में प्रचलित व्यवहारों और सामान्य विश्वासों से अपने को विमृत्त महीं कर सकी, यह सूत इसका एक अच्छा उदाहरण है। इस सूत की कुछ मात्राओं का पाठ आज भी सिहल और स्पाम देशों में मुद्रों को जलाते समय किया जाता है।

८. निधिकड़ सूत (निधि सम्बन्धी सूत) — सर्वोत्तम निधि क्या है? दान, शील, संयम, इन्द्रिय-विजय, संक्षेप में पूर्ण कर्मों का करना ही सर्वोत्तम निधि है। जल्द सब निधियों तो नष्ट हो जाने वाली है, किन्तु किया हुआ धूम कर्म कभी नष्ट नहीं होता। यही वह निधि है जो मनुष्य के पीछे जाने वाली है—यो निधि अनुगामिको।

९. मेत्त-सूत (मेत्तो-सूत) — ऊपर, नीचे, जारों और, लोक को भित्रता की कामना से भर दो। किसी का दृग्म-चिन्तन मत करो। भावना करो कि

सभी प्राणी सुतो हों—सब्वे रत्ता भवन्तु सुखितता । बहुविहार भी तो यही है—बहुमेत विहारं इधामात् !

शुद्धक-गाठ के उपर्युक्त ९ सुतों में से भगल-सुत, रत्तन-सुत, और मेत-सुत सुत-निपात में भी है । सुत-निपात में भगल-सुत का नाम महा-भगलसुत अवश्य है । इसी प्रकार तिरोकुड़-सुत पेतवत्यु में भी है । तीन शरण और दस शिखापदों के विवरण विनय-पिटक के आचार तर संकलित हैं । कुमारपञ्च सुत को भी विनय-पिटक या दीप-निकाय के संगीति-मरियाय और दसूतर जैसे सुतों अथवा ब्रह्मनर निकाय के विशाल तत्सम्बन्धी भाँडार में से संकलित कर लिया गया है । 'कायगतासति' के व्याघ्र में शरीर के ३२ आकारों का वर्णन दीप और मजिभम-निकायों के क्रमशः महासतिपट्ठान और सति-पट्ठान सुनों के वर्णनों की अनुलिपि है । केवल अन्तर इतना है कि वहाँ ३४ अङ्गों का वर्णन है जब कि यहाँ एक और (मत्वके मत्वलुन—मध्ये का मूदा) बड़ा दिया गया है । कायगता-सति (शरीर की गन्दगियों और अनित्यता पर विचार) का विधान बोद्ध योग में प्रारम्भ से ही है । दीप और मजिभम निकायों के उपर्युक्त सुतों के अतिरिक्त संयुत-निकाय के कस्सप-सुत में भी भगवान् बुद्ध ने महाकाशप को 'कायगता सति' का ध्यान करने का उपरेक्ष दिया है । धम्मपद २१।१० में भी भिक्षुओं को 'कायगतासतिपरायण' होने को कहा गया है । 'उदान' में भगवान् बुद्ध के योग्य शिष्य महामौद्गल्यामन और महाकाल्यामन को काय-नता-सति की भावना करते दिखलाया गया है । 'विसुद्धि-मम्म' (पौर्च्छी शताव्दी) में इस सम्बन्धी ध्यान का विस्तृत वर्णन किया गया है<sup>१</sup> ।

शुद्धक-गाठ के समान, किन्तु आकार में उससे बड़ा, एक और संग्रह पालि साहित्य में प्रसिद्ध है । इसका नाम 'परित' या 'महापरित' है । 'परित' शब्द का अर्थ है 'परित्राण' या 'रक्षा' । भिक्षुओं और गृहस्थों की रक्षा के उद्देश्य

१. क्रमशः पृष्ठ ३८ एवं १०५ (भिक्षु जगदीश काश्यप का अनुघात)

२. विसुद्धिमम्म १४२-१४४; देखिये ११४८-८१ भी (धर्मानन्द कोसाम्बी का संदर्भ)

से सुत-पिटक से लगभग ३० सुन्तों का संग्रह कर लिया गया है, जिनका पाठ, बोद्धों के विश्वास के अनुसार, रोग, दुष्मिक्ष आदि उपद्रवों को शान्त करने वाला और सामान्यतः मङ्गलकारी होता है। लंका और वरमा में परित्त-पाठ की प्रथा अधिक प्रचलित है।<sup>१</sup> मेविल बोड ने हमें बतलाया है कि वरमा में तो इसके समान लोक-प्रिय पुस्तक ही पालि-साहित्य की दूसरी नहीं है।<sup>२</sup> खुदक-पाठ के ऊपर निर्दिष्ट ९ सुन्तों में से सात 'परित्त' में भी सम्मिलित हैं। 'परित्त' में विशेषतः निम्नलिखित सुत सम्मिलित हैं—

- १ दस घम्म-सुत
- २ महामंगल-सुत
- ३ करणीय मेत-सुत
- ४ चन्दपरित्त सुत
- ५ मेत सुत
- ६ मेतानिसंस सुत
- ७ मोरपति सुत
- ८ चन्दपरित्त सुत
- ९ सूरिय परित्त सुत
- १० धज्ञा सुत
- ११ महाकस्तपवेद बोजक्षंग सुत
- १२ महामोमाल्लानवेद बोजक्षंग सुत
- १३ महाचन्द्रवेद बोजक्षंग सुत
- १४ गिरिमानन्द सुत
- १५ इसिगिलि सुत
- १६ अम्मचन्द्रकपवतन सुत

१. लंका में यह 'परित्त' कहलाता है। लंका से परित्त-पाठ की सांगोपांग विधि के विवरण के लिये देखिये त्रिपिटकालायं भिलु धर्मरक्षित का "परित्त-पाठ और लंका" शीर्षक लेख "धर्मसूत" फर्मेंटी-मार्च १९४८ पृष्ठ, १६३-६७ में;

२. वि पालि लिटरेचर ऑब वरमा, पृष्ठ ३-४

- १७ आमवक मूल  
 १८ कलिमारदाव मूल  
 १९ गरामव मूल  
 २० बसल मूल  
 २१ भज्जविभग मूल  
 २२ आठामाटिय मूल

इनके अनिरिक्त परित्याठ से 'अनुलोम-यटिलोम-पटिच्छसम्पादन' आदि कुछ सुओं का भी पाठ किया जाता है। परित्याठ की ग्रवा दुड़-बाल में भी प्रचलित थी, ऐना बोंदों का विवास है। कहा जाता है कि एक बार विच्छिन्नों के नगर बेशाली में दुमिक्ष पड़ा था। भगवान् के आदेशानुसार उन्होंने परित्याठ किया था, जिसके परिणामस्वरूप वर्षों हुई थी। परित्याठ से बीमारी की वानि हुई, इसके तो उदाहरण विपिटक में काफी मिलते हैं। दोष लम्बक याम के किसी ब्राह्मण का युग परित्याठ से रोग-विमुक्त हो गया। इसी प्रकार आप महाकाश्यप की बीमारी के समय स्वयं भगवान् ने बोझग-मूल का पाठ किया और महाकाश्यप उसी समय रोग-मुक्त हो गये। स्वयं भगवान् दुड़ ने एक बार आपनी बीमारी की वानि के लिये महाचुन्द स्वविर से बोझग-मूल का पाठ करवाया। गिरिमानन्द नामक भिक्षुकी रोग-वानि के लिये विधान बतलाते हुए भगवान् ने स्वयं आनन्द से कहा 'आनन्द! यदि तुम गिरिमानन्द भिक्षुके पास जाकर 'दधा-संज्ञा-मूल' का पाठ करो, तो उसे सुनकर अवश्य ही उसका रोग शान्त हो जायगा।'<sup>१</sup> मिलिन्द-प्रश्न में 'परित्य' की भगवान् दुड़ का ही उपदेश बतलाया गया है।<sup>२</sup> अतः परित्य पाठ का भगवत् स्वविरवादी परम्परा में सुप्रतिष्ठित है, इसमें सन्देह नहीं।

परित्य के संकलन का ठीक काल निश्चय नहीं किया जा सकता, किन्तु इसमें

- 
१. सचे लो त्वं आनन्द! गिरिमानन्दस्स भिक्षुनो उपसक्तिस्वा दस सञ्जा भासेव्यासि, ठान सो पनेत्र विज्ञति य गिरिमानन्दस्स भिक्षुनो दससङ्जा सुत्वा सो आवायो ठानसो पटिप्पसंभ्येव्य ।
२. परित्या च भगवता उविट्ठाति । मिलिन्दपञ्च, पृष्ठ १५३ (बम्बई विद्व-विद्यालय का संस्करण)

सन्देह नहीं कि वह काफी बाद का है। स्वपिरवाद-परम्परा के पूर्वतम स्वरूप में भूत-प्रेत आदि की बातें अथवा उनसे बचने के लिये जादू के से प्रयोग बिलकुल नहीं है। ये शब्द बातें सामान्य अंश विद्वानों के आधार पर उसमें प्रयोग कर गईं। इस दृष्टि से दीप्ति-निकाय के आटानाटीय-सुत जैसे अंश भी उत्तरकालीन ही कहे जा सकते हैं। भगवान् बृद्ध ने योग की विमुतियों के भी प्रदर्शन की निम्ना हो की? । फिर जादू के प्रयोगों की तो बात ही क्या? प्रतीत्य समुत्पाद के आधार पर सूष्टि के व्यापारों की व्याख्या करने वाला मन्त्रों के जप से वीमारी से विमुति दिलाने नहीं आया था। जहाँ तक 'परित्त' के सूतों का सम्बन्ध है, वे जगन्ने आप में नैतिक भावना से ओतप्रोत हैं। उनके बन्दर स्वयं कोई ऐसी बन्तु नहीं जो उस उदात्त गम्भीरता से रहित हो जो सामान्यतः बौद्ध साहित्य की किशोरता है। उनका पाठ निष्ठय ही मनको लैंची आध्यात्मिक अवस्था में ले जाने वाला है। असः उनका संग्रहन करना अत्येक अवस्था में चंगल का मल ही हो सकता है। वीमारी की अवस्था में वह मानसोपचार का अज्ञ भी ही राकता है, कुछ-कुछ उसी प्रकार वैसे रामनाम के स्मरण को गांधी जी ने प्राकृतिक चिकित्सा का एक अज्ञ बना दिया। यदि परित्त-पाठ में अन्ध-विद्वास हैं तो उसी हृद तक जितना गांधीजी की उपर्युक्त जग्वार-चित्ति में। फिर हम इसे अन्ध-विद्वास भी नयों कहे? जिससे मन ऊँची अवस्था में जा सकता है, उससे शरीर पर भी स्वस्य प्रभाव नयों न पड़ेगा? इस दृष्टि से परित्त-पाठ का उपदेश स्वयं बृद्ध भगवान् का भी दिया हुआ ही सकता है, ही वहाँ कर्मकांड अवश्य नहीं है। भगवान् ने सर्व को अपनी मैत्री-भावना से आल्छादित कर देने का आदेश दिया।<sup>३</sup> सर्व के भय से बचने का यही

१. विनय-पिठक, खुलवगा में विभूति-प्रदर्शन को 'बुद्धत' अपराध बतलाया गया है; मिलाइये; घम्मपद्धतिका ४२, बृद्धचर्चा, पृष्ठ ८२-८३ में अनु-वाचित। वैलिये केवटु-सुत (दीप १११) तथा सम्प्रसादनिय-सूत (दीप. ३१५) महालि-सुत (दीप ३१६) जावि।

२. मैतेन चित्तेन कर्त्त्वं (भित्रतापूर्ण चित्त से आल्छादित कर देने के लिये)—विनय-पिठक। साधारण अर्थ में इसे मग्न कहना तो बुद्धि का उपहास होगा।

एक 'मन्त्र' है। शेष जीव-जगत् के साथ मंजी स्वापित कर इस 'मन्त्र' की सत्यता देखी जा सकती है। 'परित्त' में संगृहीत सुरों की भावनाएँ वही मञ्जलमय और उदात्त हैं। उनमें चित्र को डुबो देने पर शरीर और मन प्रसन्नता से न भर जायें, यह असम्भव है। प्रसन्नता (चित्र-प्रसाद) ही तो स्वास्थ्य और मञ्जलों की जननी है। भिक्षु-गण परित्त पाठ के अन्त में ठीक ही संगायन करते हैं—सब्बीतियो विवज्जन्तु सब्बरोगो विनस्त्वतु। मा ते भवत्वत्तरायो सुखी दीधायुको भव ॥ तेरी सारी आपदाएँ दूर हों, सब रोग नष्ट हो जायें, तुमें विघ्न न हों, तू सुखी और दीधायु हो ।

#### धम्मपद<sup>१</sup>

बौद्ध साहित्य का सम्भवतः सबसे अधिक लोकप्रिय ग्रन्थ है। एक प्रकार इसे बौद्धों की मीठा ही कहना चाहिये। सिहल में बिना धम्मपद का गारायण किये किसी भिक्षु की उपसम्पदा नहीं होती। बुद्ध-उपदेशों का धम्मपद से अच्छा संप्रह पालि-साहित्य में नहीं है। इसकी नेतिक दृष्टि जितनी गम्भीर है, उतनी ही वह प्रसादगुणपूर्ण भी है। धम्मपद में कुल मिलाकर ४२३ गायाएँ हैं, जो २६ वर्गों में बंटी हुई हैं। प्रत्येक वर्ग में गायाओं की संख्या इस प्रकार है—

वर्ग

गायाओं की संख्या

१ यमक वर्ग

२०

२ अप्पमाद वर्ग

१२

यह तो एक गम्भीर नेतिक उपदेश है। अधिकतर बुद्ध-वचनों का यही हाल है, फिर चाहे उनका उपयोग उत्तरकालीन बौद्ध जनता किसी प्रकार करने लगी हो ।

१. धम्मपद के जनेक संस्करण और अनुवाद हिन्दी-भाषा में उपलब्ध है। महापंडित रामुल सांकृत्यायन और भद्रन्त आनन्द कौसल्यायन के अनुवाद विशेष उल्लेखनीय हैं ।

३ चित वग्म	११
४ पुण्क वग्म	१६
५ वाल वग्म	१६
६ पंडित वग्म	१४
७ अरहन्त वग्म	१०
८ सहस्र वग्म	१६
९ पाप वग्म	१३
१० देह वग्म	१७
११ जरावग्म	११
१२ जत वग्म	१०
१३ लोकवग्म	१२
१४ वृद्धवग्म	१८
१५ सूखवग्म	१२
१६ पियवग्म	१२
१७ कोथवग्म	१४
१८ मलवग्म	२१
१९ घम्मटवग्म	१७
२० मग्गवग्म	१७
२१ पकिलग्गकवग्म	१६
२२ निरयवग्म	१४
२३ नागवग्म	१४
२४ तष्ठावग्म	२६
२५ भिस्तुवग्म	२३
२६ वाहृणवग्म	४१

४२३

'यमकवग्म' (वर्ण १) में अधिकतर ऐसे उपदेशों का संग्रह है, जिनमें दो वो वाले जोड़े के रूप में आती हैं। " 'मूझे गाली दी', 'मूझे पारा', 'मूझे हरा दिया',

मुझे लूट किया, ऐसा जो मन में बैधते हैं, उनका वैर कभी शान्त नहीं होता ।<sup>१</sup> अहिंसा का यह समातन सत्येश भी कितना मार्मिक है “यहाँ वैर से वैर कभी शान्त नहीं होता । अवैर से ही वैर शान्त होता है, वही मनातन वर्म है ।<sup>२</sup>” वही वही संहिताओं का भाषण करने वाले किन्तु उनके अनुसार आचरण न करने वाले व्यक्ति जो ‘धम्मपद’ में उस ग्राले के समान कहा गया है जिसका काम केवल दूसरों की गायों को भिन्नता है ।<sup>३</sup> बोद्ध चिन्तकों ने शारीरिक संयम की भूल की सदा मन के अन्दर देता था, इसीलिए धम्मपद की प्रथम गाया मन की महिमा का वर्णन करती हुई कहती है “मन ही सब घनों (कायिक, वाचिक मानसिक कर्मों) का अध्यगमी है मन ही उनका ग्राहान है । सभी कर्म गनोमय है ।<sup>४</sup> अत्म-संयम वास्तविक शाश्वत और सत्त्वकल्प के स्वरूप और महत्व के बर्णन इस वर्म के अन्य विषय है । ‘अणमाद-वर्म’ में प्रमाद की भिन्ना और अ-प्रमाद की प्रशंसा की गई है । अप्रमाद के द्वारा ही अनुपम वोग-ज्ञेम रूपी निर्बाण को प्राप्त किया जाता है ।<sup>५</sup> अप्रमाद के कारण ही इन्द्र देवताओं में थ्रेष बना है ।<sup>६</sup> अप्रमाद में रत भिन्नजों को ही यही ‘निर्बाण के समीप’ (निब्बाणस्सेव सन्ति के) कहा गया है ।<sup>७</sup> ‘नित्तवर्म’ (वर्म ३) में चित्त-संयम का वर्णन है । “जितनी भलाई न माता-पिता कर सकते हैं, न दूसरे भाई-बच्च, उससे अधिक भलाई ठीक मार्ग पर लगा हुआ चित्त करता है ।” ‘पुष्टवर्म’ (वर्म ४) में पुष्ट को आलम्बन मानकर नैतिक उपदेश दिया गया है । सदाचार रूपी गन्ध की प्रशंसा करते हुए कहा गया है “तगर और चन्दन की जो यह गन्ध फैलती है, वह अल्पमात्र है । किन्तु यह जो सदाचारियों की गन्ध है वह देवताओं में फैलती है ।” ‘वालवर्म’

१. ११४

२. ११५

३. ११९

४. २१३

५. २११०

६. २११२

(वर्ग ५) में भूतों के लक्षण बतलाते हुए कहा गया है कि उनके लिये संसार (आवागमन) लभ्वा है । इसी वर्ग में सांसारिक उत्तरति और परमार्थ के मामं जी विभिन्नता बतलाते हुए कहा गया है "लाभ का रास्ता दूसरा है और निर्वाण को ले जाने काला रास्ता दूसरा है । इसे जानकर बुद्ध का अनुगामी मिथु सत्कार का अभिमन्दन नहीं करता, बल्कि एकान्तचर्चा को बढ़ाता है ।" 'वैदितवग्म' (वर्ग ६) में वास्तविक पंडित पुरुषों के लक्षण बतलाये गये हैं । "जो अपने लिये या दूसरों के लिये पूर्व, धन और राघव नहीं चाहते, न अधर्म से अपनी उत्तरति चाहते हैं, वही सदाचारी पूरुष, प्रशाचन और धार्मिक है ।" अहंस वग्म (वर्ग ७) में बड़ी सुन्दर काव्य-भाषा में अहंतों के लक्षण कहे गये हैं । "जिसका मार्ग-गमन समाप्त हो जाका है । जो शोक-रहित तथा सर्वथा मुक्त है, जिसकी सभी दण्डियाँ क्षीण हो गई हैं, उसके लिये सन्तान नहीं है ।" "सचेत हो वह उद्योग करते हैं । गृह-सूख में रमण नहीं करते । हंस वैसे बुद्ध जलाशय को छोड़ कर चले जाते हैं, वैसे ही जहंत् गृह को छोड़ चले जाते हैं ।" "जो वस्तुओं का संचय नहीं करते, जिनका भोजन नियत है, शून्यता-स्वरूप तथा कारण-रहित मोक्ष-जिनको दिखाई भड़ता है, उनकी मति आकाश में पक्षियों की भाँति अज्ञेय है ।" "माव में या बंगल में, नीचे या ऊपरे स्थल में, जहाँ कहीं अहंत् लोग विहार करते हैं, वही रमणीय भूमि है ।" नहस्सवग्म (वर्ग ८) की मूल भावना यह है कि सहस्रों गावाओं के मृत्यु से एक शब्द का सूनना अच्छा है, यदि उससे वानित मिले । सिद्धान्त के मन भर से अभ्यास का कारण भर अच्छा है । सहवर्षों वर्षों से सदा-चारी जीवन श्रेष्ठ है । पापवग्म (वर्ग ९) में पाप न करने का उपदेश दिया गया है, क्योंकि "म आकाश में, न समुद्र के मध्य में, न पर्वतों के विवर में प्रवेश कर— संसार में कोई स्पृष्टि नहीं है जहाँ रह कर, पाप कर्मों के फल से प्राप्ती बच सके ।"

दंडवग्म (वर्ग १०) में कहा गया है कि जो सारे प्राणियों के प्रति दंडत्यागी हैं, वही ब्राह्मण है, वही अमण्ड है, वही मिथु है ।" 'जरावग्म' (वर्ग ११) में वृद्ध-वस्त्रों के दुःखों का दर्शन है । इसी वर्ग में संसार की अनित्यता की याद दिलाते हुए यह मार्मिक उपदेश दिया गया है "जब नित्य ही आग जल रही हो तो क्या हैंसी है, क्या आनन्द मनाना है । अन्धकार से छिरे हुए तुम दीपक को क्यों नहीं ढूँढ़ते हो ?" इसी वर्ग में भगवान् के वे उद्घार भी संनिहित हैं जो उन्होंने समयक-

सम्बोधि प्राप्त करने के अनन्तर ही किये थे, "अनेक जन्मों तक विना हके हुए मे संसार में दौड़ता रहा । इस (काया-रूपी) कौठरी को बनाने वाले (गृहकारक) को खोजते खोजते तुमः पुमः मुझे दुख-मय जन्मों में गिरना पड़ा । आज है गृह-कारक ! मैंने तुम्हें पहचान लिया । अब फिर तू घर नहीं बना सकेगा । तेरी सारी कहियाँ भग्न कर दी गईं । गृह का शिल्प भी निर्बल हो गया । संस्कार-रहित चित्त से आज तुम्हारा का क्षय हो गया ।" ब्रतवग्म (वर्ग १२) में आरम्भ-श्रति का मार्ग दिलाया गया है । इसी वर्ग की प्रसिद्ध गाया है "पुरुष जाग ही अपना स्वामी है, दूसरा कोन स्वामी हो सकता है ? अपने को भली प्रकार दमन कर लेने पर वह दूर्लभ स्वामी को पाता है ।" लोकवग्म (वर्ग १३) में लोक सम्बन्धी उपदेश है । बुद्धवग्म (वर्ग १४) में भगवान् बुद्ध के उपदेशों का यह सर्वोत्तम सार दिया हूँगा है "सारे पापों का न करना, पुण्यों का संचय करना, अपने चित्त को परिशुद्ध करना—यही बुद्ध का शासन है । निन्दा न करना, धात न करना, भिन्न-नियमों द्वारा आने को सुरक्षित रखना, परिमाण जानकर भोजन करना, एकान्त में सोना-बैठना, चित्त को योग में लगाना—यही बुद्धों का शासन है ।" "सुग्रीवग्म" (वर्ग १५) में उस सूख की महिमा गाई गई है जो धन-ममति के संयोग से रहित और केवल सदाचारी और अकिञ्चनता मय एवं मैत्रीपूर्ण जीवन से ही लभ्य है । निन्दा कहते हैं "वैर-बद्ध प्राणियों के बीच बवंदी होकर विहरते हुए वहो ! हम कितने सुखी हैं । वैर-बद्ध मानवों में हम अवंदी होकर विहरते हैं ! भयभीत प्राणियों के बीच में अभय होकर विहरते हुए वहो ! हम कितने सुखी हैं ! भयभीत मानवों में हम अभय होकर विहरते हैं । आसपित-युक्त प्राणियों के बीच में अनासक्त होकर विहरते हुए वहो ! हम कितने सुखी हैं ! जासचित-युक्त मानवों में हम अनासक्त होकर विहरते हैं ।" "गियवग्म" (वर्ग १६) में यह कहा गया है कि जिसके जितने अधिक प्रिय है उसको उतने ही अधिक दुःख है । "प्रेम से शोक उत्पन्न होता है, प्रेम से भय उत्पन्न होता है । प्रेम से मुक्ति को कोई शोक नहीं, फिर यह कहाँ से ?" "कोषवग्म" (वर्ग १७) की मूल्य भावना है "अकोष से कोष की जीतो, असाप को साधुता से जीतो, कृपण को दास से जीतो, भूढ़ बोलने वाले को सत्य से जीतो ।" "मलवग्म" (वर्ग १८) में भगवान् ने कहा है कि अविद्या ही सब से बड़ा भल है

"मिश्रओ ! इस मर्म को स्थाप कर निमेल बनो ।" "धर्मदृष्टवग्ग" (बगं १९) में वास्तविक धर्मात्मा पुरुष के लक्षण बतलाये गये हैं । "बहुत बौलने से धर्मात्मा नहीं होता । जो घोड़ा भी सून कर शरीर से धर्म का आचरण करता है और जो धर्म में असाक्षात्ता नहीं करता, वही वास्तव में धर्मधर है ।" इसी प्रकार "मौन हीने से मृति नहीं होता । वह तो मृत और अविद्यान् भी हो सकता है । जो पार्ण द्वा प्रस्तियाग करता है, वही मृति है । जूँकि वह दोनों लोकों का भगवन् करता है, इसीलिये वह मृति कहलाता है ।" इसी बगं में भगवान् का यह उत्साहकारी मार्मिक उपदेश भी है, 'मिश्रओ ! जब तक चित्त-भूमि का विनाश न कर दो तैन मत लो'—भिक्षु ! विस्तास मापादि व्रजपत्ति आसवन्तये । "भगवग्ग" (बगं २०) में निर्बाण-गामी विशुद्धि-मार्ग का वर्णन है । सभी संस्कारों को अनित्य, कुत्त और अनात्म समझते हुए मनुष्य को चाहिये कि "वाणी की रक्षा करने वाला और मन से संयमी रहे तथा काया से पाप न करे । इन तीनों कर्म-पार्णों की शुद्धि करे और ऋषि (चुद) के बताये धर्म का द्वारोवन करे ।" 'पक्षिणीक-वग्ग' (बगं २१) में अहिंसा, और शरीर के दुखदोषानुचिन्तन आदि का वर्णन है । "निरय-वग्ग" (बगं २२) में बतलाया गया है कि कैसे पृथग नरक-गामी होते हैं । "नाग-वग्ग" (बगं २३) में नाग (हाथी) के समान अधिग रहने का उपदेश दिया गया है । "जैसे पृथग में हाथी अनुष्य से गिरे वाण को सहन करता है, वैसे ही वाल्मीकी को सहन करनगा । संसार में तो दुश्मील आदमी ही अधिक है ।" "तुम्हा वग्ग" (बगं २४) में तृष्णा को खोद डालने का उपदेश है । अपने पास दर्शनार्थ आये हुए आदमियों को गम्भीरन करते हुए भगवान् कहते हैं, "इसलिए तुम्हें कहता हूँ, जितने यह। आये हो, तुम्हारा सब का भगल हो । जैसे गति के किए लोग उथीर को खोदते हैं, वैसे ही तुम तृष्णा की जड़ को खोदो ।"

"मिश्रवग्ग" (बगं २५) में मिश्रओं के लिए लोमहर्षक उपदेश है । "हे मिश्र ! इस नाप को उलीजो । उलीचने पर यह तुम्हारे लिए हल्की हो जागमी । राग और हृष्य को छेदन कर फिर तुम निर्बाण को प्राप्त कर लोगे ।" पुनः "हे मिश्र ! ध्यान में लगो । मत असावधानी करो । मत तुम्हारा जित्त भोगों के चक्कर में पड़े । प्रमत्त हो कर मत लोहे के गोले को निगलो । हाय कुत्त !" कह कर यम तीने हुए मत तुम्हें पीछे कर्नदन करना पड़े ।" "मिश्रओ ! जैसे जूही कुम्हलामे हुए फूलों को

छोड़ देती है, विषे ही तुम राग और देष को छोड़ दो।" "ब्राह्मण-वग्य" (वर्ग २६) में ब्राह्मणों के लक्षण गिनाये गए हैं। २६। १३-४६ गाथाएँ तो चहों ही काव्य-भय हैं। भगवान् की इटिंग में बास्तविक ब्राह्मण कोन है, इस पर कुछ गाथाएँ देखिए—

"माता और योनि से उत्तर तीन से मैं किसी को ब्राह्मण नहीं कहता।

वह जो 'भोवादी' ('भो' 'भो' कहने वाला, जैसा ब्राह्मण उस समय एक दूसरे को सम्बोधन करते समय करते थे) है और संघर्षी है। मैं तो ब्राह्मण उसे कहता हूँ जो अपरिह्री और लेने की दृच्छा न रखने वाला है।

"जो विना दूषित चित्त किये गाली, वह और बन्धन को सहन करता है, उसमा बल ही विसाही मेना का सेनापति है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

"कमल के पासे पर बल और आरे के नीक पर सरसों की भाँति वो भग्नों में लिप्त नहीं होता, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

"जो विरोधियों के बीच विरोध-रहित रहता है, जो दंडबारियों के बीच दंड रहित रहता है, संघर्ष करने वालों में जो संघर्ष-रहित है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

"जिसने यहाँ पुण्य जीर पाग दोनों की आसन्ति को छोड़ दिया, जो शोक-रहित, निर्मल और शुद्ध है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

"जिसके बागे, पीछे और मध्य में कुछ नहीं है, जो सर्वज्ञ परिच्छ हरहित है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।" जादि।

कपर घट्टम-नद की विषय-वस्तु के स्वरूप का जो परिचय दिया गया है, उससे स्पष्ट है कि उसमें नीति के बे सभी आदर्श संगृहीत हैं जो भास्तीय संस्कृति और समाज की सामाज्य सम्पत्ति है।<sup>१</sup> घट्टम-नद की आधी से अधिक गाथाएँ विपिटक

१. डा० विमलाक्षरण लाहा ने 'हिस्ट्री ऑफ पालि लिटरेचर' जिन्हें पृष्ठ २००-२१४ के अनेक पद-संकेतों में उपनिषद्, महाभारत, भीता, मनुस्मृति आदि पन्थों से उद्भरण देकर घट्टम-नद की गाथाओं से उनकी समाजता दिखाई है। इस विषय का अधिक तुलनात्मक अध्ययन भी किया जा सकता है।

के अन्य भागों में भी मिलती है। धर्मपद के पालि संस्करण के अतिरिक्त कुछ अन्य संस्करण भी मिलते हैं। उनका भी उल्लेख कर देना यहाँ आवश्यक होगा। इस प्रकार के संस्करण चार संस्करण उपलब्ध हैं। सर्वप्रथम प्राकृत धर्मपद है। लोतान में लोडित लोटोट्टी लिपि में यह प्राप्त हुआ है। यह चिलकुल अपूर्ण अवस्था में है और यह नहीं कहा जा सकता कि इसका मौलिक स्वरूप क्या था। इस अन्य का सम्पादन पहले केवल विद्वान् सेनां ने किया था। बाद में इसका सम्पादन डा० वेणीमाधव वाडुआ और सुरेन्द्रनाथ मिश्र ने किया है। प्रस्तुत अन्य में १२ अध्याय हैं, जिनकी अनुसृप्ता पालि-धर्मपद के साथ इस प्रकार है—

## प्राकृत धर्मपद

वर्ग-क्रम वर्ग-नाम और नायाओं की संख्या

## पालि धर्मपद

इनके अनुस्य वर्ग-

१	मगवग ३०	२० मगव वग १३
२	जग्मादवग २५	२ जग्मादव वग १२
३	चित्तवग ५ (अपूर्ण)	३ चित्त वग ११
४	पुष्ट वग १५	४ पुष्ट वग १६
५	सहस वग १७	८ सहस वग १६
६	पनित वग या धमठ वग १०	६ पनित वग १४
		१९ धमट्ठ वग १७
७	वाल वग ३ (अपूर्ण)	५ वाल वग १६
८	जरा वग २५	११ जरावग ११
९	सुह वग २०	१५ सुह वग १२
१०	तप वग ३ (अपूर्ण)	२४ तप्हा वग २५
११	मित्र वग ४०	२५ मित्र वग २३
१२	त्रात्तिण वग ५०	२६ त्रात्तिण वग ४१

१. वेष्ये वाडुआ और मिश्र : प्राकृत धर्मपद, पृष्ठ ८ (भूमिका)

चूंकि प्राकृत धर्म पद की अभी कोई पूर्ण प्रति नहीं मिल सकी है, अतः दोनों के तुलनात्मक अध्ययन से किसी निश्चित मत पर नहीं पहुँचा जा सकता। जिन वर्गों में समानता है उनके भी क्रमों और गाथाओं की संख्या के सम्बन्ध में काफी असमानता है। अधिकतर पालि धर्मपद की अपेक्षा प्राकृत-धर्मपद के वर्गों में ही गाथाएँ अधिक हैं। इस गाथा-वृद्धि का कारण यहीं जान पड़ता है कि चूंकि धर्मपद की गाथाओं का संग्रह पूरे भूत-पिटक के ग्रन्थों से ही किया गया है, अतः उनके बीच में विभिन्न सम्प्रदायों के ग्रन्थों में विभिन्नता आ गई है।<sup>१</sup> अन्य संस्कारणों के बारे में भी यही बात है। धर्माद का दूसरा संस्कारण, जिसका भी स्वरूप अभी अनिदिच्छत ही है उसका गाथा-संस्कृत या मिश्रित संस्कृत में लिखा हुआ स्थूल है। इसका साध्य हमें 'महावस्तु' से मिलता है जो स्वयं गाथा-संस्कृत में लिखी हुई रचना है और विसने 'धर्मपद' का एक अंश मानते हुए 'सहस्र वर्ग' (धर्मपदे य सहस्रवर्गः) नामक २४ गाथाओं के समूह को उद्धृत किया है।<sup>२</sup> 'सहस्रग' नामक धर्मपद का भी आठवीं 'वर्ग' है, यह हम पहुँचे देख नुके हैं। किन्तु वही केवल १६ गाथाएँ हैं। 'महावस्तु' में उद्धृत 'सहस्र वर्ग' के अतिरिक्त प्राकृत धर्मपद के पूरे स्वरूप के बारे में हमें कुछ अधिक ज्ञान नहीं है। धर्मपद के 'चूह-सिंह-उ-धिङ' नामक चीजी अनुवाद से जो २२३ है० में किया गया था, यह अवश्य जात होता है कि उसका मूल प्राकृत धर्मपद था, किन्तु उसके भी आज अनुपलब्ध होने के कारण प्राकृत-धर्मपद के वास्तविक स्वरूप की समस्ता उलझी ही रह जाती है। धर्मपद का तीसरा क्षेत्र विशुद्ध संस्कृत में है जो अपने खंडित रूप में तुर्कान में पाया गया है। इस ग्रन्थ में २३ अध्याय हैं, अर्थात् पालि धर्म पद से ६ अधिक। इसी संस्कारण का तिव्रती भाषा में अनुवाद भी मिलता है जो ८१३-८४२ ईसवी में किया गया था। राक्षित ने इसका अनुवाद 'उदान वर्ग' शीर्षक से किया है और उसे संस्कृत-धर्मपद का प्रतिलिपि

१. गाथा-वृद्धि के उदाहरणों और उसके कारणों के अधिक विस्तृत विवेचन के के लिये देखिये बाढ़ा और मित्र : प्राकृत धर्मपद, पृष्ठ ३१ (भूमिका)

२. तेया भगवान् जटिलानां धर्मपदे य सहस्रवर्गं भासति 'सहस्रमपि बाजानां अनर्थपदसंहितानां, ऐकार्यवती भेदा य भूत्वा उपताम्यर्थत'

माना है। धर्मपद का चौथा रूप क-स्यू-किड् नामक चीनी अनुवाद में पाया जाता है। यह अनुवाद मूल संस्कृत धर्मपद से २२३ ई० में किया गया। मूल आज अनुपलब्ध है। अतः पालि धर्मपद से उसकी तुलना तो नहीं की जा सकती, किन्तु चीनी अनुवाद के आधार पर कुछ ज्ञातव्य बातें अवश्य जानी जा सकती हैं। पहली बात तो यह है कि चीनी अनुवाद मात्र अनुवाद ही नहीं है। उसे या तो एक अर्थ-कथा ही कहा जा सकता है, या यह स्वीकार करना पड़ेगा कि उसमें वास्तविक धर्मपद का काफी परिवर्द्धन किया गया है। इस चीनी अनुवाद में पालि धर्मपद के २६ वर्गों या अध्यायों की जगह ३९ तो अध्याय हैं और ४२३ शाश्वतों की जगह ७५२ शाश्वत हैं। इनका तुलनात्मक विवरण इस प्रकार है—

## चीनी धर्मपद (क-स्यू-किड्)

## पालि धर्मपद

१. अनित्यता (२१)	अनुपलब्ध
२. ज्ञान-दर्शन (२९)	
३. शावक (१९)	
४. अद्वा (१८)	
५. कर्तव्य-पालन (१६)	
६. विचार (१२)	
७. मैत्री भावना (१९)	
८. संलग्न (१२)	
९. यमक वग्म (२२)	१. यमक वग्म (२०)
१०. अप्रमाद वग्म (२०)	२. अप्रमाद वग्म (१२)
११. चित वग्म (१२)	३. चित वग्म (११)
१२. पुण्क वग्म (१७)	४. पुण्क वग्म (१६)
१३. बाल वग्म (२१)	५. बाल वग्म (१६)
१४. पंडित वग्म (१५)	६. पंडित वग्म (१४)
१५. अहंत वग्म (१०)	७. अहंत वग्म (१०)
१६. सहस्र वग्म (१६)	८. सहस्र वग्म (१६)
१७. पाप वग्म (२२)	९. पाप वग्म (१३)
१८. दंड वग्म (१४)	१०. दंड वग्म (१७)

१९.	जरा वग्ग (१४)	११.	जरा वग्ग (११)
२०.	अल वग्ग (१५)	१२.	अल वग्ग (१०)
२१.	लोक वग्ग (१६)	१३.	लोक वग्ग (१३)
२२.	बुद्ध वग्ग (२१)	१४.	बुद्ध वग्ग (१८)
२३.	मूल वग्ग (१७)	१५.	मूल वग्ग (१२)
२४.	पिय वग्ग (१२)	१६.	पिय वग्ग (१२)
२५.	कोघ वग्ग (२६)	१७.	कोघ वग्ग (१६)
२६.	मल वग्ग (१९)	१८.	मल वग्ग (२१)
२७.	धम्मटड वग्ग (१३)	१९.	धम्मटड वग्ग (१०)
२८.	ममा वग्ग (२८)	२०.	ममा वग्ग (१३)
२९.	पक्षिण वग्ग (१६)	२१.	पक्षिण वग्ग (१६)
३०.	निरय वग्ग (१६)	२२.	निरय वग्ग (१४)
३१.	नाम वग्ग (१८)	२३.	नाम वग्ग (१५)
३२.	तण्डा वग्ग (३२)	२४.	तण्डा वग्ग (२६)
३३.	सेवा (२०)		—
३४.	भिक्षु वग्ग (३२)	२५.	भिक्षु वग्ग (२३)
३५.	ब्राह्मण वग्ग (४०)	२६.	ब्राह्मण वग्ग (४१)
३६.	तिर्थी (३६)		—
३७.	जन्म और मृत्यु (१८)		—
३८.	धर्म-लाभ (१९)		—
३९.	महामंगल (१९)		—

ऊपर चीनी अनुवाद के वर्गों के नाम जहाँ उनकी पालि धम्मपद के साथ समता है, पालि में सुविधा के लियार से दे दिये गए हैं। चीनी अनुवादों में तो उनके स्वभावतः चीनी भाषा में ही शीर्षक हैं। ऊपर की तुलना से स्पष्ट है कि पालि धम्मपद की माध्यात्रों की मंस्या को चीनी अनुवाद में बढ़ा दिया गया है। वास्तव में ऊपर लिखे संस्करणों का विवरण दिया है उनमें वही घटा-घटी की गई है। वास्तव में सब का मूलाधार तो पालि धम्मपद ही है लिखकी माध्यात्रों को अक्सर बढ़ा कर और कहीं कहीं घटा कर भी निम्न-निम्न बीड़ सम्प्रदायों

ने अपने अलग अलग संश्रह बना लिए जिनके कुछ उदाहरण हम घम्मापद के ऊपर निंदाएँ स्वरूपों में देख सकते हैं। अब हम त्रुट्यवचनों के एक दूसरे संश्रह पर जाते हैं।

### उदान<sup>१</sup>

'उदान' भगवान् बृद्ध के मुख से समय-समय पर निकले हए प्रीति-वाक्यों का एक संश्रह है। "भावातिरेक से कभी कभी सन्तों के मुख से जो प्रीति-वाक्य निकला करते हैं, उन्हें 'उदान' कहते हैं।" "उदान" में भगवान् बृद्ध के ऐसे गम्भीर और उनकी समाधि-जवस्था के सचक शब्द संगृहीत हैं जो उन्होंने विशेष अवसरों पर उच्चरित किये। भगवान् द्वारा उच्चरित वचन अधिकतर गाथाओं के समें हैं और जिन अवसरों पर वे उच्चरित किये गये, उनका बर्णन गच्छ में है। मत्य-भाग निश्चयतः सर्वातिकारों की रचना है जिसे उन्होंने बृद्ध-जीवन के प्रत्यक्ष सम्पर्क में प्रथित किया है। उसकी प्रामाणिकता के विषय में यही कहा जा सकता है कि विनय-पिटक के चूल्हवग्म और महावग्म में तथा महापरिनिध्वाण-सूत जैसे सूत-पिटक के अंशों में बृद्ध-जीवन का जो चित्र उपस्थित किया गया है उसकी वह जनकृपता में ही है। मत्य-भाग के अन्त में आते आले 'उदानों' में तो वास्तविक बृद्ध-वचन होने की सुगन्ध जाती ही है। उनमें जैसे ज्ञाता ने अपने आपको अनुप्राणित कर दिया है, अपनी प्राण-ज्वनि ही फुक दी है, ऐसा मालम पहता है। वास्तव में 'उदान' का अर्थ भी यही है। 'उदान' की सब से बड़ी विशेषता है बौद्ध जीवन-दर्शन का उसके अन्दर साप्ततम प्रस्फुटित स्वरूप। बृद्ध-जीवन के अनेक प्रसंगों के अतिरिक्त चित्र की परम जानित, निर्बाण, पूनर्जन्म, कर्म और आचार-नियम सम्बन्धी गम्भीर उपदेश 'उदान' में निहित है।

'उदान' में ८ वर्ग (वग्म) हैं और प्रत्येक वर्ग में प्राप्त इस सूत है। केवल सातवें वर्ग में ९ सूत हैं। ८ वर्गों के नाम इस प्रकार हैं (१) बोधि वर्ग (बोधि-

१. महापृष्ठित राहुल सांहृत्यायन, भद्रन्त आनन्द कौमल्यायन तथा भिक्षु जगदीश काश्यप द्वारा देव-नामरी लिपि में सम्पादित, तथा उत्तम भिक्षु द्वारा प्रकाशित, सारनाथ १९३७ ई०। भिक्षु जगदीश काश्यप ने इस प्रन्थ का हिन्दी अनुवाद किया है, महाबोधि सभा, सारनाथ, द्वारा प्रकाशित, बृद्धाम्ब. २५८२।

वर्ग), (२) मूच्छलिङ्ग वर्ग (मूच्छलिङ्ग वर्ग), (३) नन्द वर्ग (नन्द वर्ग), (४) मेषिय वर्ग (मेषिय वर्ग), (५) शोण-स्वविर संबंधी वर्ग (शोण-स्वविर संबंधी वर्ग), (६) जाययन्ध वर्ग (जाययन्ध वर्ग), (७) चुल वर्ग (चुल वर्ग), और (८) पाटलिङ्गाम वर्ग (पाटलिङ्गामिय वर्गी)। प्रत्येक वर्ग के प्रत्येक सूत्र में भगवान् का गाथा बढ़ उदान है। यौली सरल है और सब जगह प्राप्त एक सी ही है। उदाहरण के लिए पाचवें वर्ग के इस सातवें सूत का उद्धरण किया जाता है— “ऐसा मैने मृना—

एक समय भगवान् आवस्तो में अताथौपिडिक के जेतवन आराम में विहार करते थे। उस समय भगवान् के पास ही आयुष्मान् काकारेवत आसन लगाये, अपने शरीर को सीधा किए, काकाओं से बुढ़ हो गये अपने चित का अनुभव करते देठे थे। भगवान् ने पास ही में आयुष्मान् काकारेवत को आसन लगाये, अपने शरीर को सीधा किये, काकाओं से बुढ़ हो गए अपने चित का अनुभव करते देखा। उसे जान, उस समय भगवान् के मुह से उदान के य शब्द निकल पड़े—

“लोक या परलोक में, अपनी या परायी,  
(संसार सम्बन्धी) जितनी कोशाएं हैं,  
ध्यानी उन सभी को छोड़ देते हैं,  
तपस्वी ऋहुत्तर्य वत का पालन करते हैं।”

सब सूतों की यही यौली है। यहले कहानी या पृथग्भूमि आती है, पिर बृद्ध का भावातिरेकमय वचन। कहीं कहीं कहानी जगनो प्रभावशीलता और मौलिकता भी लिये हए हैं जैसे ३।२ में नन्द को कहानी, या २।८ में सुप्रवासा की कथा। कहीं कहीं, जैसा विटरनिलङ्घ ने विज्ञाना है, उदानों के लिए उपर्युक्त पृथग्भूमि तैयार करने के लिए मंगीतिकारों ने कथाओं को अपनी तरफ से गड़ा भी है जिसमें उन्हें सफलता नहीं मिली है। विटरनिलङ्घ के इस कथन से सर्वोग में सहमत हीना अस्त्रय है। उदाहरणतः ८।९ में आयुष्मान् दद्ध जो एक महान् साधक और भगवान् बढ़ के विषय थे, की निर्वाण-प्राप्ति के अवसर पर भगवान् ने वह उदान किया ‘शरीर को छोड़ दिया, मन्जा निरुद्ध हो गई, सारी बेदनाओं को भी विलकुल

जला दिया। भगवान् शान्त हो गए, विज्ञान वस्त हो गया।" विदरनित्य का कहना है कि ऐसे गम्भीर प्रबलन के लिए उपर्युक्त अवसर ठीक नहीं था। कम ही लोग डा० विदरनित्य के इस मत से सहमत हो सकते हैं। जिन-जिन अवसरों पर या जिस-जिस पृष्ठभूमि में बुद्ध के उद्गारों का 'उदास' में निकलना विवलाया गया है, उन्हें हम ऐतिहासिक रूप से अधिकतर श्रेष्ठ ही मानने के प्रधापतों हैं। अब हम प्रत्येक वर्ग को विषय-वस्तु का संधिष्ठन निर्देश करेंगे।

"बोधि वर्ग" (वर्ग १) में भगवान् बुद्ध को सम्बोधि-प्राप्ति के बाद के कुछ सानाहों के जीवन का वर्णन है। उस समय भगवान् विमुचित-सूत्र का अनुभव करने हुए विहार रहे थे। इसी समय उन्होंने अनुलोम और प्रतिलोम प्रतीत्य-समृत्पाद का चिन्तन किया था। कुछ ब्राह्मणों को देख कर उन्होंने वास्तविक ब्राह्मण पर उद्गार किये। स्नान और होम में रत कुछ व्यक्तियों को देख कर भगवान् ने वह उद्गार भी किया, "स्नान तो सभी लोग करते हैं, किन्तु पानी से कोई शुद्ध नहीं होता। जिसमें सत्त्व है और धर्म है, वही शुद्ध है, वही ब्राह्मण है।"

"भूतलिन्द वर्ग" (वर्ग २) में भी भगवान् की सम्बोधि-प्राप्ति के कुछ सानाहों वाद तक की जीवनी का वर्णन है, किन्तु यहाँ कुछ अलीकिकता से अधिक काम लिया गया है। मुख्यालिन्द नामक मर्यादा समाधिस्थ भगवान् बुद्ध के शरीर की वर्षा से रखा करने के लिए जो उस समय होने लगी थी, उनके शरीर को सात बार लांड कर उनके ऊपर अपना फन फैला कर लौटा हो गया, ताकि भगवान् की वर्षा का कष्ट न होने पाये। जिन घटनाओं का प्रथम और इस दूसरे वर्ग में वर्णन है, उनमें काल-क्रम का कोई तारतम्य नहीं है, वर्षोंकि प्रथम वर्ग के कुछ सूत्र भगवान् को सम्बोधि-प्राप्ति की बाद की अवस्था का वर्णन करते हैं और उनके बाद ही कुछ सूत्र सूचना देते हैं "एक समय भगवान् आवस्ती में अनावधिक के जेतवन आराम में विहार करते थे"। (१५; १६; ११०)। इसी प्रकार दूसरे वर्ग में भी प्रथम सूत्र में तो भगवान् उमरेला में नेरजना नदी के तीर पर ही विहार करते हैं, किन्तु दूसरे सूत्र में वे धावस्ती में अनावधिक के जेतवन आराम में विहार कर रहे हैं। बुद्धत्व के तीसरे वर्ष जेतवन-आराम का दान किया गया था। अतः ये घटनाएँ काफी बाद की हैं। इसी प्रकार भगवान् अन्य स्थानों में भी विहार

करते दिखाये गए हैं, जैसे भूगर्भाता के पूर्वाराम प्रापाद में (२१९) या कुंडिया नगर के कुंडियान बन में (२१८)। तुमरे बगे में हम भिक्षुओं को इस निरवेदक बात पर विवाद करते हुए पाते हैं कि "भगवान् चिन्मित्रसार और वौशलराज प्रसेनजित् में कोन अधिक धनी, सम्पत्तिशाली या अधिक सेमाओं वाला है।" भगवान् इसे सुन कर उन्हें कहते हैं "भिक्षुओं ! तुम अद्वापूर्वक धर में वेष्टर होकर प्रदानित हुए हो। तुम कुलपुत्रों के लिए यह अनुचित है कि तुम ऐसी चर्ची में पढ़ो। भिक्षुओं ! इकट्ठे हो कर तुम्हें दो ही काम करने चाहिए, या तो वामिक कथा गा उत्तम मौन भाव।" इसी बगे में सुप्रवासा की कथा भी है। यह स्त्री दर्म की असह्य पीड़ा में पड़ी थी। प्रसव न होता था। उसने सुन रक्षा था भगवान् दुखों के प्रहाण के लिये धर्मोपदेश करते हैं। पति से कहा—भगवान् के चरणों में मेरा धिन में प्रणाम कहना, उनका कुशल-संगल पूछना और मेरी दशा से अवगत कराना। उसके पति ने ऐसा किया। भगवान् ने अनुकम्भा-पूर्वक आशीर्वाद देते हुए कहा, "कोलिय पुत्री सुप्रवासा सुखी हो जाय, चर्ची हो जाय, बिना किसी कष्ट के युत प्रसव करे।" पति धर लौटा तो सुप्रवासा को सुखी और चर्ची पाया, जिसने बिना किसी कष्ट के युत प्रसव कर दिया था। सारा धर सुन्दोष और प्रमोद में भर गया। हतजाता से भर कर सुप्रवासा ने एक सप्ताह भर तक बुद्ध-प्रमुख चिङ्ग-संघ को भोजन के लिये आमन्वित किया। भगवान् शिष्यों सहित उामित हुए। मात दिन ब्रीत जाने पर भगवान् ने सुप्रवासा से कहा, "सुप्रवासे ! ऐसा ही एक और भी युत लेना चाहती है ?" सुप्रवासा न प्रमोद में भर कर कहा "भगवान् ! मे ऐसे सात पुत्रों को लेना चाहती है।" भगवान् के महसे उस समय उदान के बैश्वद निकल गए, बैरे को अच्छे के हृष में, अप्रिय को प्रिय के हृष में, दृग्म को सुख के हृष में प्रमत लोग समझा करते हैं। बैठ के बीबन-दर्शन को समझने के लिये यह कहानी एक अच्छा उदाहरण है। विद्वन्मित्र में कहा है कि यह कहानी यह भी दिखाती है कि बुद्ध-नाम में ही बुद्ध-भक्ति के द्वारा लोग अपने कल्याण की कामना करने लगे थे। महात्माओं के बचनों और आशीर्वादों में भज्ञ व्रत प्रसविनी शक्ति होती है, ऐसा विश्वास भारतीय जनना में प्रायः सदा से हो रहा है। अतः इसमें कोई विशेषता दिखाई नहीं पड़ती। विशेषता उस बात में है जो भगवान् ने बाद में सुप्रवासा की सात पुत्रों

बाली कामना को सनकर कही । यह बात बुद्ध के मूख से ही निकल सकती थी । बुद्ध, जिसने अपने एकमात्र पृथक का जन्म होते समय उसे अपने उद्दीप्तमात्र विचार-चन्द्र को समने के लिये राहु समझ कर 'राहुल' नाम दिया, "राहु पेंदा हुआ, बनवान दीदा हुआ ।" या तो 'प्रजया कि करिष्यामः' ( हम सन्तान से तपा करेंगे ) उहने ताजे उपनिषदों के बहुगुण सम्बन्ध ही इतना जैवा और निवृत्ति-परायण दृष्टिकोण से गकते थे । १८ में वर्णित आद्य मंगाम जी की कथा और २१७ में प्रेम को छोड़ देने का उपदेश, मेंसे ही निवृत्ति-परायण उपदेश है । नन्द-वर्ग ( वर्ग ३ ) में विवेचतः भगवान् बुद्ध के मौभिरे भाई नन्द की कथा है । किस प्रकार यह चिल्डमो युवक भगवान् के उपदेश से विरक्त बन गया, यही इसमें वर्णन किया गया है । यहाँ भी निवृत्ति का आदर्श ही सामने रखा गया है । नन्द पहले भगवान् की जामिनी पर आसराओं के लिये ब्रह्मवर्ग का पालन करता है । किन्तु ब्रह्मवर्ग का पालन करते-करते उसकी आसराओं सम्बन्धी इच्छा प्रहीण हो जाती है । भगवान् कहते हैं "नन्द ! जिस समय तुम्हारी नासारिक आसक्ति से मुक्ति हो गई उसी समय में जामिनी से छुट गया ।" कुछ अन्य कथाएँ और उद्दार भी इस तर्ग में सम्भिलित हैं । ३१५ में भगवान् ने कहा है कि अनासक्ति ही मुक्ति-माम है । मेघिय-वर्ग ( वर्ग ४ ) में मेघिय नामक भिक्षु की कथा है । यह भिक्षु भगवान् की देवा में नियत था । एक दिन एक रमणीय आस्था-वन देख कर इसने वहाँ जाकर योग-साधन करने की भगवान् से अनुमति मांगी । भगवान् ने कहा "मेघिय ! ठहरो, अभी मैं धकेला हूँ, किसी दूसरे भिक्षु को जा जाने दो ।" मेघिय ने भगवान् के आदेश को न माना और ध्यान करने लगा गया । किन्तु वहाँ जाकर जैसे ही ध्यान के लिये बैठा उसके मन में पाप-वित्तके उठने लगे । शाम को किर भगवान् के पास लौटकर आया । भगवान् ने उसे ध्यान-सम्बन्धी उपदेश दिया । इसी वर्ग में भिक्षुओं पर अभिभावक के मिल्यारोप का वर्णन है ( १८ ) । इस अवस्था में भी वे शान्त रहते हैं और वाद में उनकी निष्ठापता सिद्ध हो जाती है । भगवान् का एक ध्वनि ने मरणन और जीव से आतिथ्य किया, इसका भी वर्णन इस वर्ग में आता है ( १३ ) । आदमियों की भीड़ से तेग आकर भगवान् को गालिकेन्द्रक के रक्षितपत्र में एकान्त-वास करते भी इस वर्ग में हम देखते

है (४५)। भव-नाला मिट जाने से ही मुकित होती है, इस अर्थ का एक उदाहरण भी भगवान् ने यही किया है (४११०)। पौच्छ्रे वर्ग (शोष स्वरिं सम्बन्धी वर्ग) में शोष नामक भिक्षु के संघ-प्रबेश, अहंत्क-प्राप्ति आदि का वर्णन है। इसी वर्ग में कोशलराज प्रभेनवित का चुद्र के दर्शनार्थ जेतवन-आराम में जाना (५१२) तथा सुप्रबृद्ध नामक कीदी की उपासक (मृहस्थ-शिष्य) के स्पृ में दीक्षा (५१३) का भी वर्णन है। छठे वर्ग (जात्यन्ध-वर्ग) में जात्यन्ध पुरुषों को हाथी दिखाये जाने की कथा है। इस कथा का प्रबन्ध भगवान् ने व्यावस्ती के जेतवन-आराम में दिया। अनेक अन्धे हाथी को देखते हैं, जिन् उसके पूरे स्वरूप को कोई नहीं देख पाता। जो जिस अंग को देखता है वह उसका बैसा ही अप बताता है। “सिद्धओ !” जिन जात्यन्धों ने हाथी के शिर को पकड़ा था, उन्होंने कहा, ‘हाथी ऐसा है जैसे कोई बड़ा यहा’। जिन्होंने उसके कान को पकड़ा था उन्होंने कहा ‘हाथी ऐसा है जैसे कोई सूप’। जिन्होंने उसके दौत को पकड़ा था, उन्होंने कहा ‘हाथी ऐसा है जैसे कोई खट्टा’। जिन्होंने उसके शरीर को पकड़ा था उन्होंने कहा, ‘हाथी ऐसा है जैसे कोई कोठी’ आदि। इस प्रकार अन्धे आपस में लड़ने-भिड़ने लगे और कहने लगे हाथी ऐसा है, वैसा नहीं, वैसा है, ऐसा नहीं। यही हालत मिथ्यामतवादों में क्षेत्र हुए लोगों की है। कोई कहते हैं ‘लोक शाश्वत है, यही सत्य है, द्रुसरा विलकुल भूठ’ कोई कहते हैं ‘लोक अशाश्वत है, यही सत्य है द्रुसरा विलकुल भूठ’ आदि।” कितने अमण्ड और ब्राह्मण इसी में जुझे रहते हैं। (धर्म के केवल) एक अज्ञ को देख कर वे आपस में विवाद करते हैं।” उपर्युक्त दृष्टान्त बोढ़ साहित्य में बहुत प्रसिद्ध है। संस्कृत में भी ‘अनशगजन्याय’ प्रसिद्ध है। जैन-साहित्य में भी यह सिद्धान्त विदित है। मातवीय बृद्धि की अल्पता और सर्व-धर्म-सम्बन्ध की बृद्धि से यह दृष्टान्त इतमा महत्वपूर्ण है कि प्रसिद्ध सफी कवि मलिक मूहम्मद जायसी ने भी इसका उद्घरण अपने ‘अस्तरावट’ में दिया है “मूनि हाथों कर नांब औरन टोआ थायके। जो देखा जेहि ठोव मुहम्मद गो तैसेहि कहा।” विश्व का धार्मिक साहित्य इस बहुमूल्य दृष्टान्त के लिये अपने मूल रूप में बोढ़ साहित्य का ही ऋणी है, इसमें विलकुल भी सम्बेद नहीं। सातवें वर्ग ( चूलवर्ग ) में अनेक स्फुट बातों का वर्णन है, मध्य लंकुटक भद्रिय नामक भिक्षु को सारिपुत्र का उपदेश (३१२) और

उसकी समाधि-प्राप्ति (३१५), महाकालयापन की कायगता-मति की भावना (३१६) तथा कीदाम्बी के राजा उदयन के अन्तःपुर में अग्निकांड की सूचना विसमें रानी द्यामाकती (सामाकती) के साथ '१०० स्त्रियों जल मरी' (३१७)। आठवें वर्ग (पाटिल पातम-वर्ग) में निवाणि-सम्बन्धी गम्भीर प्रबन्धन है। जेवल एक को यहाँ उद्धृत किया जाता है 'भिशओ ! वह एक आयतन है जहाँ न पाप्ती है, न जल है, न तेज है, न वायु है, न आकाशानन्दयापतन, न विज्ञान-नन्दयापतन, न आकिञ्चन्यापतन, न नैवसंज्ञानसंज्ञायतन है। वहाँ न तो यह लोक है, न पश्चलोक है, न चन्द्रमा है, न सूर्य है। न तो मैं उसे 'अगति' कहता हूँ और न 'मति'। न मैं उसे स्थिति और न व्युति कहता हूँ। मैं उसे उत्पत्ति भी नहीं मानता। वह न तो कही ठहरा है, न प्रवतित होता है और न उसका कोई आपार है। यही दुर्घटों का अन्त है'" (८११) आप्तमान् दत्त के तिर्योण पर भगवान् ने जो उद्गार किया उसे हम पहले उद्धृत कर ही चुके हैं। बीढ़ निवाणि के स्वयं को समझने के लिये 'उदान' का आठवीं वर्ग भूरि भूरि पढ़ने और मतन करने योग्य है। भगवान् के चन्द्र सोनार के यहाँ अन्तिम भोजन करने का भी इस वर्ग में वर्णन है, जो महारिनिवद्वाण-नृत (दीप० २१३) के समान ही है।

### इतिवृत्तक १

'इतिवृत्तक' लूटक-निकाम का लोका यन्त्र है। यह प्रथम गच्छ और पद्धति दोनों में है। 'इतिवृत्तक' का अर्थ है 'ऐसा कहा गया' या 'ऐसा तथागत ने कहा'। 'इतिवृत्तक' में भगवान् बुद्ध के ११२ प्रबन्धों का संग्रह है। मैं तभी प्रबन्धन अत्यन्त लघु आकार के लौर नीतिक विषयों पर हूँ। 'इतिवृत्तक' का ग्रामः प्रत्येक सूत्र इन दाढ़ों के साथ आरम्भ होता है— "भगवान् (बुद्ध) ने यह कहा, पूर्ण

१. महापंडित राहुल सोकुलयापन, भद्रन्त ज्ञानन्द कीसल्यापन तथा भिक्षु जगदीश काश्यप द्वारा वेवनागरी लिपि में सम्पादित। उत्तम भिक्षु द्वारा प्रकाशित, १९३७ई०। इस प्रथम के गत्ता-भाग का अनुवाद प्रस्तुत लेखक ने 'ऐसा तथागत ने कहा' शीर्खक से किया है।

पुरुष (तथागत) ने यह कहा, "ऐसा मैंने सुना।" केवल ८१-८८, ९१-९८, और १००-१०१ संख्याओं के सब इसके अपवाद हैं। बुद्ध-बचनों के उद्धरण की यह विधिषट् शैली ही इस मंथह के "इतिवृत्तक" (ऐसा तथागत ने कहा) नामांरण का आधार है।

"इतिवृत्तक" के विषय-संकलन और शैली की अपनी विशेषताएँ हैं। "इतिवृत्तक" के ११२ सूत्र चार बड़े वडे वर्षों का निपातों में विभक्त हैं। पहले निपात में उन उपदेशों का संकलन है जिनका सम्बन्ध संख्या एक से है। इसी प्रकार दूसरे, तीसरे और चार वर्षों निपातों में उन उपदेशों का संकलन है, जिनका सम्बन्ध क्रमशः दो, तीन और चार संख्याओं से है। इसीलिये इनके नाम भी क्रमशः एक-निपात, दूसर-निपात, तिक-निपात और चतुर्थ-निपात हैं। पहले निपात में २७ सूत्र हैं, दूसरे में २२, तीसरे में ५० और चौथे में २३। इस प्रकार सूत्रों की कुल संख्या मिलाकर ११२ है। विषय-संकलन की यह शैली आज हृतिम जान पड़ती है, किन्तु अध्ययन-अध्यापन के उस युग में जब सारा काम सौचिक रूप से (मुख्याठवसेन) ही चलता था, गणनात्मक संकलन और वर्णक्रियण को यह पहुँचति स्मृति के लिये बड़ी महायक सिद्ध होती थी। फलत बोहों और जेनों का अधिकांश प्राचीन साहित्य इसी शैली में लिखा गया है। संस्कृत के सब साहित्य का भी उद्भावन इसी अवध्यकता के कारण हुआ। "इतिवृत्तक" की संख्यावलु शैली का ही विकासित रूप हमें अग्नस्त्र-निकाय और वाट में अभियम्म-रिट्टक में मिलता है। "इतिवृत्तक" के विषय में यह अवध्य कहा जा सकता है कि इस गणनात्मक विधान ने उसके विषय-स्वरूप की स्वाभाविकता में कोई वाधा नहीं पहुँचाई है। उसका अन्तकार-विहीन सीन्दर्य हमें बुद्ध-बचनों को उसके उस नैसर्गिक रूप में, जिसमें वे उच्चरित किये गये थे, ठीक प्रकार देखने में सहायता देता है।

"इतिवृत्तक" की एक बड़ी विशेषता उसके अन्दर गद्य और पद शोनों का होना है। प्रत्येक सूत के आदि में पहले "ऐसा भगवान् ने कहा, ऐसा पूर्ण पुरुष (जहें) ने कहा, ऐसा मैंने सुना" आता है। फिर गद्य में बुद्ध-बचन का उद्धरण होता है। फिर उसके बाद "भगवान् मैं पहुँच कहा। इसी सम्बन्ध में पहुँच कहा जाता है" इस प्रस्तावना के साथ कोई गाथा या गाथाएँ आती हैं, जिनका या तो विल-

कुल वही अभिप्राय होता है जो गच्छ-भाग का अथवा जो उसकी पूरक-स्वरूप होती है। शब्दों में भी बहुत थोड़ा ही हंर-फेर होता है, अक्सर गच्छ-भाग को गाथा-बद्ध कर के रख दिया जाता है। इस गाथा-भाग को भी बुद्ध-बचन की सी प्रामाणिकता देने के लिये उसका उपसंहार करते हुए अन्त में लिख दिया जाता है, 'यह अर्थ भी भगवान् ने कहा, ऐसा मैंने मूना।' इस प्रकार गच्छ-भाग और गाथा-भाग दोनों एक दूसरे के साथ जुड़े हुए हैं। 'इतिवृत्तक' के अत्यंक सत्र की यही शैली है। इसका दिग्दर्शन करने के लिये एक पूरे सूत्र को उद्धृत कर देना आवश्यक होगा। एक-निपात के इस तीसरे सत्र को लीजिये—“ऐसा मैंने मूना—

भगवान् मे यह कहा, पूर्ण पूरष (जहेत) ने यह कहा, 'मिथुओ ! एक वस्तु को छोड़ो। मे तुम्हारा साक्षी होता है तुम्हें फिर आवागमन मे पड़ना नहीं होगा। किस एक वस्तु को ? मिथुओ। मोह ही एक वस्तु को छोड़ो। मे तुम्हारा साक्षी होता है तुम्हें फिर आवागमन मे पड़ना नहीं होगा।'

भगवान् ने यह कहा। इसी सम्बन्ध मे यह कहा जाता है—

जिस मोह के कारण मुझ बत कर प्राणी वरी गतियों मे पड़ते हैं, उसी मोह को तस्वीरीं मनुष्ये सम्पर्क जान की प्राप्ति के लिये छोड़ देते हैं, छोड़ कर, वे इस लोक मे फिर नहीं आते।

यह अर्थ भी भगवान् ने कहा, ऐसा मैंने मूना।'

विदानों मे इस बारे मे कुछ मत-मेद है कि 'इतिवृत्तक' के गच्छ और पूर्व भाग मे कोन अधिक प्राचीन या प्रामाणिक है। चिन्तु उपर्युक्त उद्धरण से यह स्पष्ट है कि संकलनकर्ता ने भी गच्छ-भाग मे रखते हुए अंश को ही बुद्ध-बचन के साथ मे उद्धृत किया है और फिर उसकी अदालया-स्वरूप गाथा-भाग को जोड़ दिया है, जिसकी प्रशंसा मात्र करने के लिये ही उसने अन्त मे यह अर्थ भी भगवान् ने कहा, ऐसा मैंने सूना, जोड़ दिया है। बास्तव मे, जैसा संकलनकर्ता ने स्वयं कहा है, गाथा-भाग बास्तविक बुद्ध-बचन का, जो गत मे है, अर्थ (अर्थो) ही है। मूल-बुद्ध-बचन के साथ इस प्रकार उसकी अर्थ-कथा देने की प्रतिति विप्रिटक के कुछ अन्य अंशों मे भी देखी जाती है। 'इतिवृत्तक' मे इसी प्रवृत्ति का अनुसरण किया गया जान पड़ता है। अतः 'इतिवृत्तक' के गाथा-भाग का उसके गच्छ-भाग से उसी प्रकार का सम्बन्ध है जैसा 'उदान' के गच्छ-भाग का उसके गाथा-भाग

के साथ। 'उदान' में गत्या-भाग मूल्य प्रामाणिक बुद्ध-वचन है। उसकी पृष्ठभूमि के रूप में ही वहाँ के गत्या-भाग का उपरोग है। कुछ कुछ इसी प्रकार 'इतिवृत्तक' में गत्या-भाग मूल्य प्रामाणिक बुद्ध-वचन है, जिसकी व्याख्या स्वयं ही गत्या-भाग की अवतारणा की गई है। अतः 'इतिवृत्तक' के गत्या-भाग की अपेक्षा उसके गत्या-भाग की ही प्रमाणवता और प्राचीनता हमें अधिक माल्य होती। बैली की दृष्टि में भी यही निष्ठाये ठीक जान पड़ता है। 'इतिवृत्तक' का गत्य सारल, स्वामानिक और आलङ्घारिक कृत्रिमताओं से रहित है। अतः उसको मूल बुद्ध-वचन मानना अधिक युक्ति-प्रवृत्त जान पड़ता है। निमन्देह यह भाग वास्तव के मूल से ही निकला हुआ है। एक एक शब्द यहाँ 'धर्म-मेष' (धर्म रूपी मेष-बुद्ध) की वर्णने से अभी तक वांछ है। ऐं जैं पृष्ठमंडप के इस कथन से हम अवश्यक महमत है कि "यदि 'इतिवृत्तक' बुद्ध-वचन न हो तो और कुछ भी बुद्ध-वचन नहीं है।" हमें 'इतिवृत्तक' को इसी गीरव-दृष्टि से देखना है।

'इतिवृत्तक' के पहले निपात में, जैसा पहले कहा जा चुका है, उन मूलों का संग्रह है जिनका सम्बन्ध एक संसार वाली वस्तुओं से है। इसी निपात में से एक पूरे मूल का उद्धरण पहले दिया भी जा चुका है। इसी प्रकार राग, द्रेष, छोड़, ईर्ष्या आदि पर भी सूच है। यह निपात तीन कमों में विभक्त है, जिनमें में प्रत्येक में कमशः १०, १० और ५ सूच है। इस निपात का मेलभाव-मूल (मैत्री-भाव सत्र—१३१३) तो भावा और भाव की दृष्टि से बड़ा ही मुन्दर है। उसके गत्या-भाग को उद्धत करना यहाँ उपयुक्त होगा। भगवान् कहते हैं; "मिलूओ ! पुतजैन्म के आधारभूत सब पुण्यकार्य मिलकर भी उस मैत्री भावना के लो चित" को विमूलित है, सोलहवें अंश के भी चरावर नहीं होते। मिलूओ ! मैत्री भावना ही सब पुण्यकारी कमों से अधिक चमकती है, प्रभासित होती है, क्योंकि वह नित की विमूलित ही है। मिलूओ ! जैसे लालागणों का सारा प्रकाश मिलाकर भी एक चन्द्रमा के प्रकाश के सोलहवें अंश के भी चरावर नहीं होता...—जैसे वर्षी के अल्प में शरद ऋतु में जब अकाश साफ और मेषों से रहित होता है तो सूर्य वही जारोहण कर अग्निकार-समृद्ध को विभिन्न कर चमकता है...—जैसे भिलूओ ! रात के पिछले पहर में, प्रत्येक काल के समय, शुक-

तारा चमकता है... भिक्षुओ ! मैंकी भावना भी सब पृष्ठकारी कर्मों के ऊपर चमकती है, प्रभासित होनी है, कर्मोंकी वह चित्त की विमुक्ति ही है ।"

### सुत्तनिपात ।

सुत्तनिपात भी खुदकनिकाय का धर्मपद के समान ही अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रन्थ है, यद्यपि हिन्दी में वह अभी इतना लोक-प्रिय नहीं हुआ जितना धर्मपद । फिर भी मौलिक बोड भर्म और बोड नाहित्य की दृष्टि से इस गन्ध-रत्न का अत्यन्त ऊँचा स्थान है । अशोक ने भाव शिला लेख में जिन सात बूढ़ो-पदेशों के नाम दिये हैं उनमें से तीन बोले सुत्तनिपात में हैं, यथा मोनेय सूत = नालक सूत; मनि गाया = मनि सूत एवं उत्तिसप्तसते = सारिगुन-सूत । सुत्तनिपात की भाषा वैदिक भाषा के बहुत अधिक समीप है । वैदिक भाषा की विविधताएँ और उसके अनेक प्रकार के व्यत्ययों का विवरण हम यहले दो चुके हैं ।<sup>१</sup> जिन अनेक प्रयोगों को बाद में चल कर संस्कृत ने छोड़ दिया, सुत्तनिपात में हमें ज्यों के त्यों मिलते हैं । संस्कृत और पालि का विकास समकालिक है, पर चैकि पालि विदेशतः जन-भाषा भी उसने

१. नागरी लिपि में डा० बापट द्वारा सम्पादित, पूना १९२४ । पर यह संस्करण आज कल अप्राप्य है । सन् १९३७ (बुद्धाब्द २४८१) में खुदकनिकाय के अन्य इस गन्धों के साथ-साथ सुत्तनिपात का भी नागरी लिपि में सम्पादन महापंडित राहुल सांख्यायन, भद्रन्त आनन्द कौसल्यायन और भिक्षु जग-वीश कार्यप ने किया है । वर्मों विहार सारनाथ (बनारस) द्वारा प्रकाशित । पर यह संस्करण भी अब नहीं मिलता । सुत्तनिपात के पांच वर्गों में से प्रथम वर्ग (उरग वर्ग) का हिन्दी-अनुवाद भिक्षु धर्मरत्न ने किया है । साथ में मूल पालि भी दी है । प्रकाशक भिक्षु महानाम, मूलगन्धकुटी विहार, सारनाथ (बनारस), बुद्धाब्द २४८८ (१९४४ ई०) । सुत्तनिपात के शेष भाग का भी अनुवाद भिक्षु धर्मरत्न ने किया है, और इस समय प्रेस में है । बंगला में पुरे सुत्तनिपात का अनुवाद भिक्षु शोलभट्ट ने किया है, जो कलकत्ता से सन् १९४१ में प्रकाशित हुआ है ।

२. वेलिए प्रथम परिचयेर में पालि और वैदिक भाषा को तुलना ।

ऋग्वेद की भाषा के उन अनेक प्रादेशिक प्रयोगों को ले लिया है जो वहाँ विचार-मान हैं। अतः उसकी भाषा में पर्याप्त प्राचीनता है। अनेक गाथाओं में हमें इस प्रकार वैदिक भाषा के प्रभाव के लक्षण मिलते हैं। उदाहरणतः समहृतसे (गाथा १४) पञ्चवायासे (१५), चरामसे, भवामसे (३२), आतुमान, सुवानि, सुवाना (२०१), अवीवदाता (३८१) जैसे प्राचीन वैदिक प्रयोग हमें सूत-निपात की भाषा में, विदेशी उसकी भाषाओं की भाषा में, मिलते हैं। इसी प्रकार 'जनेत्वा' के स्वान पर 'जनेत्व' (६१५) और कुप्पटिच्छमसन्ति (३८४) जैसे प्रयोग भी विलकूल ऋग्वेद की भाषा के प्रयोग हैं। सूत-निपात की गाथाओं के छन्द भी प्रायः वैदिक हैं। अनप्टुभ, श्रिष्टुभ, और जगती छन्दों की वहाँ अधिकतम है और वैदिक छन्दों के समान गण का वर्णन भी नहीं है। भाषा के समान विचार के साथ से भी सूत-निपात की प्राचीनता खिद्द है। वैदिक युग के देवयज्ञवाद का पुरा चित्र हमें वहाँ मिलता है। उसका वर्णन इतना सजीव है कि वह प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर ही लिखा हुआ हो सकता है। भाषा और विचारों में सभी जगह एक निसर्गगत स्वाभाविकता और सरलता मिलती है जो बोधधर्म के विकास के प्रथम स्तर का पर्याप्त रूप से परिचय देती है। उसकी प्रभावशीलता भी इसीलिए अत्यन्त उच्चकोटि की है। बृह-पर्मे के नेत्रिक रूप का बड़ा सुन्दर चित्र हमें सूत-निपात में मिलता है। उर्ग-सूत में निर्वाण-प्राप्ति के मार्ग की बताते हुए कहा गया है :

यो उप्पतिं विनेति कोषं, विसं सप्तविसं व ओसधेहि ।

सो भिक्षु जहाति ओरपार, उरगो विष्णुमिव तर्च पुराण ॥

जो भिक्षु जहु कोष को, साप-विष को ओषध की तरह, धान्त कर देता है, वह इस पार (अपने प्रति आसक्ति) और उस पार (दूसरे के प्रति आसक्ति) को छोड़ता है, साप जैसे अपनी पुरानी कंचुली को। 'साप जैसे अपनी पुरानी कंचुली को' कैसी सुन्दर उपमा है !

१. वैतिवे सूत-निपात (भिक्षु धर्मस्तन-कृत हिन्दी अनुवाद, प्रवम भाग) की वस्तुकथा में भिक्षु जगदोश काइप का 'सूतनिपात की प्राचीनता' सम्बन्धी विवेचन, पृष्ठ ३-५

धनिय-सुत में गृहस्थन्-ख और ध्यान-सुत की तुलना की गई है, जिसके उद्दरण का भोह संवरण नहीं किया जा सकता। वनिय गोप पुत्र, स्त्री, घन, घासपादि में समृद्ध है। वह एक सुखी गृहस्थ किसान है। वणिकाल में वह उद्गार कर रहा है :—

भात मेरा पक चुका। दूध दूह लिया। मही (मंडक) नदी के तीर पर स्वजनों के साथ घास करता है। कुटी छा ली है। आग सुलगा ली है। अब हे देव ! चाहो तो खूब बरसो !

मतखी मच्छर यहीं पर नहीं है। कछार में उगी घास को गीवें चरती है। पासी भी पड़े तो वे उसे सह लें। अब हे देव ! चाहो तो खूब बरसो !

मेरी ग्वालिन आज्ञाकारी और अचंचला है। वह चिरकाल की प्रिय संगिनी है। उसके विषय में कोई पाप भी नहीं सुनता। अब हे देव ! चाहो तो खूब बरसो !

मैं आप अपनी ही मजदूरी करता हूँ। मेरी सन्तान अनुकूल और नीरोग है। उसके विषय में कोई पाप भी नहीं सुनता। अब हे देव ! चाहो तो खूब बरसो !

मेरे तरण बैल और बछड़े हैं। गामिन गायें हैं और तरण गायें भी, और सब के बीच वृषभराज भी है। अब हे देव ! चाहो तो खूब बरसो !

मृटे मजबूत गड़े हैं, मूज के पगड़े नये और अच्छी तरह घटे हैं, बैल-भी उन्हें नहीं लोड सकते। अब हे देव ! चाहो तो खूब बरसो !

पौखर्वी-छठी पताख्यी ईसवी पूर्व के मगध-कोसल के किसान के सुखी जीवन का कंसा सन्दर चित्रण है, उसकी आज्ञा-आकांधाओं का कंसा सन्दर निष्पण है ! सामीण जीवन का यह चित्र, उसके सुख का यह आदर्श, आज भी उतना ही सत्य है जितना बृद्ध-काल में ।

१. भिक्षु धर्मसंस्कृत का अनुवाद, पृष्ठ ७-१० (कुछ अल्प परिवर्तनों के सिहत)

वेद की एक ग्राथेना में गण्डु की विभूति का चित्र संचर्णी गया है । पर उसके रूप इतने गहरे नहीं हैं, उसकी रेखाएँ इतनी और स्पष्ट नहीं हैं, जितनी सुरभिपात के वर्णन की । इतना हीसे हुए भी सुखी कृपक के जीवन का वर्णन मूल-निपात में केवल एक पुष्टभूमि के रूप में है, वह स्वयं अपना लक्ष्य नहीं है । उसका वर्णन यहीं उससे बढ़े एक अन्य मूल को केवल अभिव्यक्ति के रूप में किया गया है । उस सूख का उपर्योग भगवान् बुद्ध कर रहे हैं । उनके उद्यारों को कृपक के उद्यारों से पंक्तिशः मिलाइये । मही नदी के तट पर खुले आकाश में बढ़े हुए भगवान् उमड़ते हुए बादलों को देख कर प्रसन्न उद्यार कर रहे हैं :—

मेरे कोध और राम से रहित हैं । एक रात के लिए मही नदी के तट पर छहरा है । मेरी कुटी खूली है । अग्नि (रागाग्नि, द्रेषाग्नि, मोहाग्नि) बुझ जुकी है । अब है देव ! जाहो तो खूब बरसो !

मैंने एक अच्छी तरफी बना ली है । भव सागर को तर कर पार चला आया । अब तरफी की जावश्यकता नहीं । हे देव ! जाहो तो खूब बरसो ।

मेरा मन वशीभूत और विमुक्त है, चिर काल से परिभावित और दान्त है । मुझ में कोई पाप नहीं । हे देव ! जाहो तो खूब बरसो ।

मेरे किसी का जाकर नहीं । स्वच्छन्द सारे संसार में विवरण करता है । मुझे चाकरी से मतलब नहीं । हे देव ! जाहो तो खूब बरसो ।

१. "आ ब्रह्मन्वाब्रह्मो ब्रह्मवचंसो जायताम् . . . . दोग्धो घेनुवौदाज्ञ  
द्व्यामाग्नः सतिः पुराण्यांशा . . . . निकामे-निकामे नः पर्वन्यो वर्णतु ।  
कल्पत्यो न ओषधयः पच्यन्ताम् । योगक्षेमो नः कल्पताम्" । यजुर्वेद  
२२।२२

मेरे स-तरण बंल है और म-बछड़े, न गाभित गाये है और म-तरण गाये और सब के बीच यामरात्र भी नहीं। हे देव ! चाहो तो तुम बरसो ।<sup>१</sup>

सांसारिक सुख और ध्यान-सुख को आमने-सामने रख कर कितनी सुन्दर तुलना है। सांसारिक मनुष्य कहता है 'उपधी हि नरस्स मन्दना, न हि सो नन्दति यो निलगधि' अर्थात् विषय-भोग ही मनुष्य के आनन्द के कारण है। किन्तु विषय-भोग नहीं, उन्हें आनन्द भी नहीं। पर राम-विमुक्त महात्मा कहत<sup>२</sup> है "उपधी हि नरस्स मोनना न हि सो मोचति यो निलगधि" अर्थात् विषय-भोग ही मनुष्य की चिन्ता के कारण है। जो विषय-रहित है, वे चिन्तित भी नहीं। दोनों आदर्शों का इसमें अधिक सुन्दर निष्पत्ति, इस नाटकीय मति और संवाद-पैली के साथ, सम्भवतः सम्पूर्ण भारतीय साहित्य में नहीं मिल सकता। बीढ़ घर्म के आचार-सत्त्व के रूप का समझने के लिए भी यह प्रकरण अत्यन्त महसूबपूर्ण है। इसी प्रकार 'खगविसाग सुत' में एकान्तवास का सुन्दर उपदेश दिया गया है। 'एको चरे खगविसाग कणो' (अकेला विचरे गेडे के सोंग को तरह) से अन्त होने वाली इन गायाओं का सौन्दर्य भी अपना है।

कसी भारद्वाज सुत में हम ५०० हल लेकर जूताई के काम में रग्मे हूए कुटी भारद्वाज नामक बाह्यण के साथ भगवान् के प्रसिद्ध काव्यात्मक संवाद को देखते हैं। भिक्षा के लिए भीत लड़े हुए भगवान् को देख कर कुपि भारद्वाज कहता है "अमण ! मैं जोतता हूं, बोता हूं। अमण ! तुम भी जोतो, बोओ। जोताई-बोआई कर लाओ।" भगवान् कहते हैं "बाह्यण ! मैं भी जोताई बोआई करता हूं, बोताई बोआई कर लाता हूं।" (अहर्ण्य सो बाह्यण कसामि च वपामि च कर्मित्वा च वपित्वा च भूज्ञामि) आगे भगवान् ने अपने इस कथन की व्याख्या की है, जो बड़ी सुन्दर है। चन्द-सुत में भगवान् ने समजिन (मायं जिन) आदि चार प्रकार के अमणों की व्याख्या की है। पराभव-सुत में पतन के कारणों

१. भिक्षु धर्मसत्त्व का अनुवाद, पृष्ठ ७-१० (कुछ अल्प परिचर्तनों के साथ);

भगवान् के इन उदयारों के साथ मिलाइये 'धेरगामा' में प्राप्त भिक्षाओं के इस प्रकार के उद्गार भी (आगे 'धेरगामा' के विवेचन में)

को बतलाया गया है । वस्तु सूत में हम अग्नि-भारद्वाज नामक ब्राह्मण को भगवान् के प्रति यह कहते सुनते हैं 'मुण्डक ! बहौ ठहर ! अमण बहौ ठहर ! वृषल वही ठहर ! (तत्रेव मुण्डक, तत्रेव समणक, तत्रेव वशलक निर्दार्हाति) । भगवान् ने विता क्रोध किए उस अग्निहोत्री ब्राह्मण को बतलाया कि वृषल किस कहते हैं । लक्षित होकर ब्राह्मण भगवान् बृद्ध का जीवन-पर्यन्त उपासक (गृहस्थ-निधान) बना । हेमवत् सूत में भगवान् बृद्ध के स्वभाव का वर्णन है । अन्य अनेक वातों के साथ कहा गया है कि उनका ध्यान कभी रिति नहीं होता—बुद्धो भानं न रित्यन्ति । इसी प्रकार भगवान् बृद्ध के विषय में कहा गया है :

"उनका चित्त समाविष्य है । सब प्राणियों के प्रति" वे एक समान है । इष्ट और अनिष्ट विषयक संकल्प उनके वच में है ॥ आलबक सूत आलबक यज्ञ के साथ भगवान् का संबाद है, जिसको तुलना महाभारत में वृषभिंद्र और यज्ञ के संबाद से की जा सकती है । यज्ञ के इस प्रेषण के उत्तर में कि सब रसों में कोंन सारस उत्तम है (कि सु हवे सादुतरं रसान्) भगवान् ने कहा है 'सर्वं हवे सादुतरं रसान्' अत्रात् सत्य ही सब रसों में उत्तम है ।

ब्राह्मण बाबरि और उनके शिष्यों के भगवान् से संबाद तो विश्व के दार्शनिक काव्य के सर्वोत्तम उदाहरण कहे जा सकते हैं । इसी प्रकार 'एवज्ज्ञा' पश्चाम और नालक सूत भी अपनी आस्थानात्मक गीतात्मकता के साथ साथ दार्शनिक गम्भीरता में अपनी तुलना नहीं रखते । सूत-निष्पात की विषय-वस्तु पाँच वर्णों में विभक्त है (१) उत्तरवर्ण (२) चूल वर्ण (३) महावर्ण (४) अट्ठक-वर्ण और (५) पारायण वर्ण । प्रथम वर्ण में १२ सूत है, यथा (१) उत्तर (२) अनिय (३) खगविसारण (४) कसि भारद्वाज (५) चुन्द (६) परामव (७) वशल (८) मेत्त (९) हेमवत् (१०) आलबक (११) विजय और (१२) सुनि । द्वितीय वर्ण में १४ सूत है, यथा (१) रत्न (२) आमगन्ध (३) हिरि (४) महामंगल (५) सुचिलोम (६) परमचरिय (७) ब्राह्मण-पर्मिम, (८) तावा (९) कितील (१०) उटडान (११) राहुल (१२) वर्गीय (१३) यमापरिच्छाजनिय और (१४) पर्मिम । तीसरे वर्ण में १२ सूत है, यथा (१) पञ्चज्ञा (२) पधान (३) सुभासित (४) सुन्दरिक भारद्वाज (५) पाष (६) समिय (७) खेल, (८) सल्ल

(१) बर्सेटठ (२) कोकालिय (३) नालक और (४) दायलानु-  
पसता। जीवे वर्ग में १६ सूत हैं, यथा (१) काम (२) गहटक (३)  
दुटक (४) मुहटक (५) गरमठक (६) जरा (७) तिस्समे-  
नेष, (८) पसूर (९) मारगन्दिय, (१०) पुरामेद (११) कलहविवाद  
(१२) चूल वियुह (१३) महावियुह (१४) तुबटक (१५) अतदण्ड और  
(१६) मारियुत। पौधवें वर्ग में ये १३ सूत हैं, (१) बलुगाया (२)  
अजितमाणवपुच्छा (३) तिस्समेतेप्रमाणवपुच्छा (४) पुण्णकमाणवपुच्छा  
(५) मत्तमाणवपुच्छा (६) चोतकमाणवपुच्छा (७) उपसीवमाणव-  
पुच्छा (८) नन्दमाणवपुच्छा (९) हेमकमाणवपुच्छा (१०) तोदेयमाणव-  
पुच्छा (११) कणमाणवपुच्छा (१२) जतुकणिमाणवपुच्छा (१३) भड़ा-  
वृष्माणवपुच्छा (१४) उदयमाणवपुच्छा (१५) पोमालमाणवपुच्छा (१६)  
मोषराजमाणवपुच्छा और (१७) पिनियमाणवपुच्छा।

यद्यपि सूत-निपात की साथाओं के अनेक अंश, जिनमें आल्यान भी कहीं  
कहीं कलात्मक सुन्दरता के साथ अनुविद्ध हैं, उद्धरण की अपेक्षा रखते हैं, किन्तु  
विस्तार-भय से ऐसा नहीं किया जा सकता। वास्तव में सूत-निपात में सभी  
कुछ इतना महत्त्वपूर्ण, सभी कुछ इतना आकर्षक है कि कुछ समझ में नहीं आता  
कि उसकी सुन्दरता का क्या नमना सामने रखता जाए। वह सब का सब बौद्ध-  
साहित्य में जो कुछ भी जर्यन न सुन्दर और अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, उसका नमना  
है। फिर भी पौधवें वर्ग (पारायण वर्ग) में बुद्ध के समकालिक गोदावरी-  
तटवासी प्रसिद्ध लेदज ब्राह्मण बाबरि के १६ शिथों के भगवान् बुद्ध के साथ जो  
उदान्त-मम्भीर मंलाप हुए उनका कुछ दिग्दर्शन तो आवश्यक ही है। यहाँ हम  
देखेंगे कि वैदिक परमारा के मध्ये साधकों ने भी बुद्ध को कितनी ज़र्दी पहचान  
किया था और उन्हें कितना लंगा स्थान दिया था।

### अजित-माणव-पुच्छा

(अजित) “लोक किससे ढंका है? किससे प्रकाशित नहीं होता? किसे  
इसका अभिलेपन कहते हों? क्या इसका महाभय है?”

(भगवान्) “अविद्या से लोक ढंका है, प्रमाद से प्रकाशित नहीं होता।

तुण्णा को अभिलेपन कहता है। जन्मादि दृश्य इसके महाभय हैं।"

- (अजित) "चारों ओर सोने बह रहे हैं। सोतों का क्या निवारण है? सोतों का ढैंकना बतलाओ, किससे ये सोने ढौके जा सकते हैं?"
- (भगवान्) "जितने लोक में सोने हैं, स्मृति उनका निवारण है। सोतों की की रोक प्रवा है, प्रवा से ये रोके जा सकते हैं।"
- (अजित) "हे मार्य! प्रवा और स्मृति नाम-हृषि ही है। यह पूछता है, बतलाओ, कहाँ यह नाम-हृषि निरुद्ध होता है?"
- (भगवान्) "अजित! जो तूने यह प्रश्न पूछा, उसे तुम्हे बतलाता हूँ, जहाँ पर कि सारा नाम-हृषि निरुद्ध होता है। विज्ञान के निरोध से यह निरुद्ध हो जाता है।"

### पुरुषएक-माणव-पुरुषा

- (पुण्णक) "हे तुण्णा-रहित मुख-दशी! मैं आपके पास प्रश्न के सहित आया हूँ.....जिन ऋषियों ने यज्ञ कल्पित किये, क्या वे यज्ञ-पथ में अ-ग्रामादी चे? हे मार्य! क्या वे जन्म-जरा को पार द्यें? हे भगवान्! तुम्हें यह पूछता हूँ, मुझे बताओ!"
- (भगवान्) "वे जो हृष्ण करते हैं, लाभ के लिए ही कामों को जाते हैं। वे यज्ञ चे योग से भव के राग से रक्षते हो, जन्म-जरा को पार नहीं हुए, ऐसा मैं कहता हूँ।"
- (पुण्णक) "हे मार्य! यदि योग के योग (आसन्नित) से यज्ञो द्वारा जन्म-जरा को पार नहीं हुए तो हे मार्य! किर लोक में कौन देव-मनव्य जन्म-जरा को पार हुए, तुम्हें हे भगवान्! मैं पूछता हूँ। मृग बतलाओ?"
- (भगवान्) "लोक में वार-यार को जान कर, जिसको लोक में कही भी तुण्णा नहीं, जो शान्त, धूम-रहित, रागादि-विग्रह और आया-रहित है, वह जन्म-जरा को पार हो भया—मैं कहता हूँ।"

### मेत्तगृ-माणव पुच्छा

- (भगवान्) “हे भगवान् ! मैं तुम्हें पूछता हूँ, मूँझे यह बतलाओ, तुम्हें मेरा ज्ञानी (वेदगृ-वेदज्ञ) और भावितात्मा समझता हूँ। जो भी लोक में अनेक प्रकार के दुश्म हैं, वे कहाँ से आये हैं ? ”
- (भगवान्) “दुश्म की इस उत्तरि को पूछते हो। प्रजासत्त्वार में उसे तुम्हें कहता हूँ। तप्ता के कारण ही लोक में अनेक प्रकार के दुश्म उत्पन्न होते हैं।”

### धोतक माणव पुच्छा

- (धोतक) “हे भगवान् ! तुम्हें यह पूछता हूँ, महर्षे ! तुम्हारा वचन सुनना चाहता हूँ। तुम्हारे निर्वाण को सुन कर मैं अपने निर्वाण को सीखूँगा ।”
- (भगवान्) “तो तत्पर हो.... स्मृतिमान् हो, यहाँ से वचन सुन तुम अपने निर्वाण को सीखो ।”
- (धोतक) “मैं तुम्हें देवमनूष्य-लोक में मिठाओं होकर विहरने वाला ब्राह्मण देखता हूँ। हे समन्वयवा ! ( वारों और आखों वाले ) तुम्हें मैं नमस्कार करता हूँ। हे शक ! मूँझे बाद-विवाद से छुड़ाओ ।”
- (भगवान्) “हे धोतक ! लोक में मैं किसी बाद-विवाद-परायण... (कथकीय) को छुड़ाने नहीं जाऊँगा। इस प्रकार श्रेष्ठ धर्म तो जान कर तुम इस ओषध (भव-सामग्र) को तर जाओगे ।”
- (धोतक) “हे ब्रह्म ! कठणा कर विवेक-धर्म को मूँझे उपदेश करो, जिसके बन्दुसार में यही शान्त और विमुक्त हो कर विचल्ने ।”
- (भगवान्) “धोतक ! इसी अरोट में प्रत्यक्ष धर्म को बताता हूँ, जिसे जान कर, स्मरण कर, आवरण कर, तू लोक में अशान्ति से तर जायगा ।”

### कष्ट-माणव पुच्छा

- (कष्ट) “बड़ी भयानक बाहु में गरोबर के बीच में लड़े, मूँझे तुम द्वीप (परण-स्वान) बतलाओ, जिसमें वह संसार फिर न हो ।”

(भगवान्) "हे कर्ण ! तुमें द्विष्ट बतलाता हूँ। अकिञ्चनता ही सर्वोत्तम दीप है। इसे मैं जरा-मृत्यु-विनाश रूप निर्वाण कहता हूँ ?" आदि आदि ।

### विमानवत्थु और पेतवत्थु

विमानवत्थु (विमानवस्तु) का अर्थ है विमानों या देव-आवासों की कथाएँ। इसी प्रकार पेतवत्थु का अर्थ है प्रेतों की कथाएँ। विमानवत्थु और पेतवत्थु में क्रमशः देवताओं और प्रेतों की कहानियों के द्वारा कर्म-फल के नियान्त्रण का प्राकृत-जनोपयोगी विवरण कराया गया है। देवता प्रकाश-रूप है। वे सुन्दर आवासों में रहते हैं। स्वर्ग-लोक नाना प्रकार के आमोद-प्रमोदों से पुरित हैं। इसके विपरीत प्रेत-वर्णन दुःखमय है। प्रेतों को नाना प्रकार के कष्ट भेजने पड़ते हैं। इस जन्म में जो नाना प्रकार के शुभ या अशुभ कर्म किये जाते हैं, उन्हीं के परिणामस्वरूप मृत्यु के उपरान्त कर्मः देवताओं या प्रेतों की गतियाँ प्राप्त होती हैं, यह दिखाने के लिए ही विमानवत्थु और पेतवत्थु की रचना की गई है। इस प्रकार बोढ़ नैतिकवाद ने यहाँ पीराणिक परिधान ग्रहण कर लिया है। ऐसा लगता है नैतिक प्रयोजन के लिए बोढ़ों ने स्वर्ग-नरक मध्य प्राचीन पीराणिकवाद की स्वीकार कर लिया है। किन्तु स्वर्ग का लक्ष्य उन्होंने गृहस्थ-जनों के लिए ही रखा है। भिन्न ता एवं इससे बहुत अधिक ऊँचा है। वह तो निर्वाणिका अभिलाषी है। स्वर्ग-लोक भी उसके लिए एक बन्धन है, कामनाओं की तृप्ति का ही एक साधन है। वह तो कामनाओं से क्लार उठ कर, मनुष्य और देवता सब का ही अनुभासक है। अतः यह ठीक ही है कि निसी भी भिन्न को शुभ कर्म के परिणामस्वरूप स्वर्ग प्राप्त करते 'विमानवत्थु' में नहीं दिखाया गया। केवल सद्गृहस्थ ही शुभ कर्मों के परिणामस्वरूप स्वर्ग प्राप्त करते हैं और वहाँ नाना प्रकार के रमण, त्रीटा दिव्य माल्य-धारण आदि का उपयोग करते हैं। 'विमानवत्थु' में ८५ देव-आवासों

१. महार्पदित राहुल सांकुत्पायन द्वारा बुद्धचर्चा, पृष्ठ ३७३-३८४ में अनुवादित।
२. देवनामरी लिपि में महार्पदित राहुल सांकुत्पायन, भद्रन आनन्द कोसल्यायन तथा भिन्न जगदीश काश्यप द्वारा सम्पादित (भिन्न उत्तम द्वारा प्रकाशित, बुद्धाब्द २४८१ (१९३७ ई०))

(विमानों) का वर्णन है, जिन्हें सात बगों में विभक्त किया गया है। प्रथम बगों का नाम 'पीठ वग' है। इनमें १३ देव-निवासों का वर्णन किया गया है। इसी प्रकार शेष ६ बगों में जिनके नाम क्रमशः 'चित्तलता वग', 'पारिच्छलक वग', 'मञ्जुरेण्ड वग', 'महारथ वग', 'पापासि वग' और 'मूर्मिकिलत वग' हैं, क्रमशः ११, १०, १२, १४, १० और ११ देव-निवासों का वर्णन किया गया है। केवल नाम और योहे से जामीद-प्रभोदों को छोड़ कर प्रायः प्रत्येक देव-आवास के वर्णन की शैली और मूल भावना एक ही है। कोई देवता किसी आवास-विशेष में आमोद-प्रभोद करता हुआ दिखाई पड़ता है। उसे देख कर कोई भिन्न (सोम्मलालाल) उसमें पूछता है "हे देवते ! तू सुन्दर वर्ण से वृक्त है। आने वाले वर्ण से तु शुक्रनारा के समान सारी दिवालों को आलोकित कर रहा है। मनुष्यों को ग्रिय लगने वाले सारे भोग तुम्हे प्राप्त हैं। हे महानुभाव देवते ! मैं तुमसे पूछता हूँ—मनुष्य होते हुए तुमें क्या पूण्य किया था जिसके फलस्वरूप तुम्हें ये सब भोग मिले—'पुरुषामि तं देवि महानुभावे मनुस्सभूता किमकामि पुञ्जः . . . . . यस्स कम्मस्सिदं फलं !'" देवता ग्रसन्न हो कर अपने मनुष्य रूप में किए हए पुण्यादि का वर्णन करता है—"महानुभाव भित्त ! गुन में तुम्हे अपने मनुष्य-रूप में किए हए पुण्य को बतलाता हूँ। प्राण-हिसा से विरत, मृषावाद से विरत, संयंत, सदा शील से संयुत हो कर मैं चधुष्मान्, यजस्त्वी, मोतम का उपासक थे। . . . . इसी कारण भेजा यह शुभ वर्ण है। इसी कारण में दिवालों को आलोकित कर रहा है।" सब वर्णनों की प्रायः यही बासी है। बोढ़ धर्म में जन-साधारण के लिए विग्रहीत-विधान का आदर्श रखता रहा है उसी का दिनदर्शन ये कहरते हैं। अधिक काव्यमय नवीनता इनमें न होते हुए भी वे केवल उन ऐतिक गृहों को जिन्हें बोढ़ धर्म में लान्दृहस्तों के लिए साधारणतः आदर्शीय माना गया है, बार बार हमारी स्मृति में अचिह्नित करने का प्रयत्न करते हैं। आज इसमें अधिक विमानवर्त्य के वर्णनों का भहत्व हमारे लिए नहीं माना जा सकता। उनकी पीराणिक पृष्ठभूमि तो निश्चय ही बोढ़ धर्म के उत्तरकालीन विकास की सूचक है, अतः उसे बढ़-आसन का उत्तरा आवश्यक अंग मानने की मरली नहीं करनी चाहिए। काव्यात्मक रूप भी उसके अन्दर अधिक नहीं है। 'पेतवर्त्य' में ५० प्रेतों की कहानियाँ हैं, जिन्हें ४ भागों में विभक्त किया गया है, यथा (१) पेतवर्त्य,

(२) उत्तर पेतवल्थु, (३) उच्चरी पेतवल्थु और (४) आतु विवण पेतवल्थु। 'पेतवल्थु' में प्रेतों की कहानियों के द्वारा यह दिलाया गया है कि किस किस दृष्टिमें के कारण परलोक में यथा वया दुःख भोगने पड़ते हैं। उदाहरण के लिए एक भिक्षु की कथा देखिए। भिक्षु नारद किसी प्रेत से पूछते हैं—“तेरी सम्पादे काया दाख है। तु सारी दिलाओं को अपने कान्त वर्ण में आदोकित भी कर रहा है। किन्तु तेरा मना शकार का है। तुने पूर्व जन्म में क्या कर्म किया था ?”<sup>१</sup> प्रेत उत्तर देता है “नारद ! मैं जाया से संयत था, किन्तु वाणी से असंयत था। इसी लिये नारद ! मेरा यह ऐसी अबस्था है जिसे तु देखता है। हे नारद ! जैसा तुमने स्वयं देखा है, मैं भी तुम्हें कहता हूँ—मूल में गाप न करना, ताकि तुम्हें भी कही दृढ़कर के मुख वाला से होना पड़े !”<sup>२</sup> इस प्रकार शूभ कर्म का परिणाम भरने के बाद शूभ और अशूभ कर्म का अशूभ होता है, इसी नेतिक तत्त्व को कहते ‘विमानवर्त्थ’ और ‘पेतवल्थु’ में दिलाया गया है।

### थेरगाथा<sup>३</sup> और थेरीगाथा<sup>४</sup>

थेरगाथा और थेरीगाथा सुदृढ़क-भिकाव के दो महत्वपूर्ण प्रथ्य हैं। इन दो प्रथ्यों में कमशः बुद्धकालीन भिक्षु और भिक्षुणियों के पवन-वद्ध जीवन-संस्मरण हैं।

१. कायो ते सब्बसोवण्णो सद्बा ओभासते दिसा । मूँ ते सूक्ष्मास्त एव कि कर्म अकरी पुरे ।

२. कायेन सज्जतो आर्स वाचा आर्सि असज्जतो । तेन मे तादिसो वण्णो धधा पस्तसि नारद ।

ते त्यहं नारद श्रुति साधं विद्धं इदं तथा । मा कासि मूलसा पापं मा लो सूकर-  
मुलो अहं ति । पेतवल्थु (स्त्रेस्पना पेतवल्थु)

३. ऐ. महापंडित राहुल संकृत्यायन, भद्रन्त आसन्द कौसल्यायन तथा भिक्षु जगदीश काश्यप ने इन दोनों प्रथ्यों का सम्पादन देखनामारी लिपि में किया है जिसे भिक्षु उत्तम ने बृद्धाव १४८१ (१९३७ई०) में प्रकाशित किया है। प्रोफेसर भागवत ने भी थेरीगाथा का सम्पादन नामरी लिपि में लिया है, जिसे बम्बई विश्व विद्यालय ने शन् १९३७ में प्रकाशित किया है। ‘थेरीगाथा’

थेरगाथा में २५५ भित्तियों के उद्गार है, जबकि थेरीगाथा में ३३ भित्तियों के। थेरगाथा में १३७९ लाकार्ह (पद्ध) है जो २१ निपातों (वर्गों) में विभक्त है। थेरीगाथा में ५२२ लाकार्ह है जो १६ निपातों में विभक्त है। वस्त्रव में थेरगाथा में थेरीगाथा अधिक महत्वपूर्ण सन्दर्भ है, पर्योगीक यहाँ भित्तियों की आलमीयता और पापार्वदादिता अधिक स्पष्ट भूल्यनी है। थेरगाथा में अन्तर्ज़ंगत के अनुभवों की वहूलता है, जबकि थेरीगाथा में यज्ञवित्तक इवनि प्रधान है। थेरगाथा में सरम्य प्राकृतिक वर्णनों की अधिकता है। भित्तियों के व्यापार के प्रसंग में ये वर्णन वहाँ स्वभावतः आ गए हैं। किन्तु भित्तियों ने वर्णन जीवन की वास्तविक परिस्थितियों पर ही अधिक पर्यावरण किया है। वर्णनों के ही उद्गारों में जीवन के करण पशु के अनुभव को अधिक अधिव्यक्ति है। फिर भी वहाँ निराशा नहीं है। बृद्ध-आमन का अवलभव पा कर दोनों ने ही उम मंभीर और शान्त सुख का स्पर्श किया है, जो जीवन की विषमताओं और कटूताओं को धोल डालता है और उन पर मनुष्य की विवरण का मूल्यक बनता है। किसी किसी किसी भित्ति ने पृष्ठ के द्वारा उस पर किये गए अस्पाचार का भी दुःखपूर्वक स्मरण किया है। मानव-जीवन की ये सामान्य विषमताएँ हैं। इनसे हमें किसी विशेष सिद्धान्त को यहाँ निकालने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए। अब हम ऐरे और येरी गाथाओं से कुछ उदरण दे कर उनकी विषय-वस्तु की विशेषताओं को सारांश करेंगे। स्थविर आनुष जपने अनुभव का वर्णन करते हुए कहते हैं—मैंते बृद्ध, दुःखी, व्याधि से मारे हुए, समाप्त आयु-संस्कार लाए, पुराय को इन छोड़ों से देखा। वस इन (दुःखों) से निष्कर्मण पाने के लिए मैंने मारे सनोरम भोगों को छोड़ कर प्रदद्या ले ली।<sup>१</sup>। स्थविर विविध का अनुभव भी सामिक है ‘मेरे बाल बनाने के लिए नाई मेरे पास आया।

का अनुचाद (परमत्यदीपनी के आधार पर भित्तियों की जीवनियों के सहित, लेखक ने किया है, जो संसार साहित्य भंडल, नई दिली, द्वारा प्रकाशित हो चुका है)।

१. विष्णवन् दिव्या मुविलतञ्च व्याधिते भतञ्च दिव्या गतमायुसंखयं।

ततो अहं निकलमितुन् पर्वान् पहाय कामानि मनोरभाति॥गाथा ७३

उसके हाथ से दर्पण के कर में अपने शरीर का प्रत्यवेक्षण करने लगा। काया की तुच्छता को मैंने देखा। मेरा अन्धकार वहीं किसीहीं हो गया। अहंकार का बस्त्र फाड़ डाला गया। सारे आवरणों से मैं अब विमुक्त हो गया। अब मेरे लिए पुनर्जन्म होना नहीं है।”<sup>१</sup> एक चिप्पी पुरुष बुद्ध-वासन को सुन कर किस प्रकार प्रवत्तित हो गया है, गह स्थविर किञ्चित्क के शब्दों में सनिधि, “ये चिन्तन में लगा हुआ मैं पहले इस काया के शृंगारभावन में लगा रहता था। मैं उद्दत था, चौकड़ था, एवं काम-वासन से युरी तरह व्यथित था। सौभाग्यवश आदित्य-वर्ष भगवान् बुद्ध ने, जो मेरे जैसों का उपाय करने में कुशल है, अपने उपदेश से मुझे सलाघ पर लगा दिया। अब संसार में मेरा चित अनासक्त हो चुका है।”<sup>२</sup> स्थविर-मन्द का गम्भीर अनासक्त भाव देखिये, “चित्त समाधि-मन्त्र नहीं है और दूसरे इसकी प्रशंसा करते हैं। मदि चित्त समाधि-मन्त्र नहीं है तो दूसरों की प्रशंसा अवै हो है। चित्त अच्छी प्रकार समाधि-मन्त्र है और दूसरे इसकी निन्दा करते हैं। यदि चित्त अच्छी प्रकार समाधि-मन्त्र है, तो दूसरे की निन्दा अवै ही है।”<sup>३</sup>

बस्तुतः ‘धेरगाया’ को दो बड़ी विषयताएँ हैं, भिक्षुओं के आनन्दिक अनुभव का वर्णन और उनका प्रकृति-दर्शन। भिक्षुओं ने संस्कारों की अनित्यता को देख कर सांगीतिक जीवन से बैराग्य लिया है। चित्त की शार्निं ही उसके लिए सब में यहा सुना है। जीवन के प्रति न उनमें उत्सुकता है और न विगादमय दृष्टिकोण।

१. केसे मे ओलिलिस्तसन्ति कप्पको उपसंकमि। ततो आदाय सरोरं पञ्च-  
येविषयसं। तुच्छो कायो अदित्यित्य, अन्धकारे तमो व्यगा। सखे जोला  
समुच्छिप्रा नत्य दानि पुनर्भवो’ ति ॥ गायाएँ १६९-१७०

२. योवेनिसोमनसोकारा मण्डनं अनुपूज्जितं। उद्दो चपलो चासि कामरागेन  
अदिठतो । उपायकुसलेनाहं बुद्धेनादित्यवसन्धुना। योगिसो पदिपञ्जित्या  
भवे चित्त उद्द्वहिति ॥ गायाएँ १५७-१५८

३. परे च न पसंसन्ति अता चे असमाहितो। मोर्धं परे पसंसन्ति अता हि अस-  
माहितो ॥

परे च न गरहन्ति अता चे सुसमाहितो। मोर्धं परे गरहन्ति अता हि सुसमा-  
हितो ॥ गायाएँ १५९-१६०

वे केवल शान्त और समीर हैं। अनासक्ति उनके जीवन का मुख्य लक्षण है। जिन्होंने विषयों को बनने के समान छोड़ दिया है, सुख-दुःख जिनके लिए अर्थहीन हो गए हैं, शोत और उत्ता जिनके लिए समान हैं, ऐसे साधकों को मानसिक दशाओं का दर्जन ही हमें 'धर्मगारा' में मिलता है। भिल-जीवन के आदर्श को धर्म-सेनापति सारिपुत्रःने सदा के लिए स्मरणीय शब्दों में व्यक्त करते हुए अपने विषय में कहा है :—

नाभिनन्दामि मरणं नाभिनन्दामि जीवितं ।  
कालञ्च पटिकत्तुमि सम्प्रज्ञानो पटिस्सतो ॥  
नाभिनन्दामि मरणं नाभिनन्दामि जीवितं ।  
कालञ्च पटिकत्तुमि निविसं भत्तको यथा ॥३

( न मुझे मरने की इच्छा है, न जीने की अभिलाषा । ज्ञान-पूर्वक साधाधान हो मेरपने समय की प्रतीक्षा कर रहा हूँ । न मुझे मरने की इच्छा है, न जीने की अभिलाषा । काम करनेके बाद अपनी मज़बूरी पासे की प्रतीक्षा करने लोले दास के समान मेरपने समय की प्रतीक्षा कर रहा हूँ ।)

धर्मसेनापति सारिपुत्र के परिनिवाण पर महामीमगललाल स्वविर ने संस्कारों की अनित्यता पर जो भाव प्रकट किए हैं, वे भगवान् के उन महादिक्ष्य के हृदय के अन्तस्ताल तक हमें ले जाते हैं। 'जनित्वा वत निवारा' का उद्दगार करते हुए महामीमगललाल स्वविर कहते हैं—

तदासिधं भिसमकं तदासि लोमहसनं ।  
अनेकाकारसम्पन्नं सारिपुत्रमिह निवृते ॥३

यह भीषण हुआ, यह रोमांचकारी हुआ। अनेक ध्यान-समाप्तियों से सम्पन्न सारिपुत्र परिनिवृत्त हो गये !

१. गाया॒ १००२-१००३; स्वविर संकिञ्चन ने भी इन भावों की पुस्तरावृत्ति की है, गाया॒ ६०६-६०७ और अंशातः स्वविर निसभ ने भी, गाया १९६; भिलन्द्रिय इन में भी इन गायाओं को उद्दृत किया था है। देखिये मिदिःद-प्रश्न, पृष्ठ ५५ (भिल जगतों का आदर्श का अनुचाव )

२. गाया॒ ११५८-११५९ ।

भिक्षुओं ने स्त्री के आसीनी-स्वर पर चिन्हण प्राप्त की है। उसके प्रतीभनों में ये नहीं आ सकते, ऐसा उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक कहा है।<sup>३</sup> एक अलंकृता, सुवसना, मालाधारिणी, चन्दन लेप किये हुए सर्वकों को महापश्च के बीच में नृत्य-गान करते हुए भिक्षु ने देखा है। उसी समय उसने बायना के दुष्परिणाम पर चिन्तन किया है, अशुभ-भावना की है, और इस प्रकार अपने चित्त को विमुक्त किया है।<sup>४</sup> स्त्री के रूपादि की आवश्यित को भिक्षुओं ने गब दुख का कारण माना है।<sup>५</sup> इमणान में स्त्री के सड़ने हुए भारीर को हुमि आदि से खाये जाते हुए देख कर उन्होंने उसके अनित्य और अशुभ स्वर्ण की भावना की है और सत्य का दर्शन किया है।<sup>६</sup> स्त्री की काया के ही नहीं, उन्होंने अपनी काया के भी अशुभ, तुच्छ स्वर्ण

१. सचे पि एतका भिट्यो आलमिस्सनि इस्तियो ।

नेव म व्याधिविस्तन्ति धर्मे स्वमिह पतिदिन्तो ॥ गाया, १२११  
२. अलंकृता सुवसना मालिनी चन्दनस्तदा ।

मञ्ज्ञे महापश्च नारो तुरिये नच्चति नद्रुकी ॥ गाया, २६७

ततो मे मनसीकारो . . . . . ततो चित्तं विमुच्चिम मे ॥ २६९-७०;  
मिलाइये गाया एं ४६९-४६५ भी जहाँ 'पेरों मे महापश्च लगाये हुए' (अलंकृतकता पादा) सुवसना, अलंकृता, चित्त करती हुई वेद्या ने भिक्षु के लाभने गृहस्थ-जीवन में प्रवेश का प्रस्ताव रखता है 'अहं चित्तं ददामि ते' (मे तुझे घन देती हूँ) यह कहते हुए, पर भिक्षु के उसे मृत्यु का पाता समझ कर अशुभ की भावना की है और सत्य का साक्षात्कार किया है। "काम-बासना मे दुष्परिणाम देख कर मैंने चित्तमल-रहित अवस्था को प्राप्त कर लिया" (कामेस्तवादीनवं . . . . पतो मे आसबक्तयो—गाया ४५८); मिलाइये "अंकेन पुत्रमादाप्य भरिया मे उपागमि . . . . ततो मे मनसीकारो . . . . . ततो चित्तं विमुच्चिम मे", आदि गाया एं २९९-३०१ भी।

३. इस्तियहे इस्तिवरसे कोट्ठव्ये पि च इस्तिया । इस्तियाग्येसु सारतो विविध चिन्हते दुर्लभ ॥ गाया ७३८

४. अपविदुं सुवानस्मि लक्ष्मन्ति किमिही युद्धे ।

जातुरं अवृचि पूति पस्त कुल्त समुस्तयं । गाया ३९३ मिलाइये 'विरत्यु पुरे

का दर्शन ज्ञान-दर्शन की प्राप्ति के लिए किया है।<sup>१</sup> एक भिक्षु ने हमें बताया है कि भिक्षु होने से पहले वह एक राजनृसोहित का पुत्र वा और जाति-मद और भोग और गंधवय के मद से मतवाला रहता था, किन्तु अब उसका सब मान, मद और अस्मिमान छूट चूका है और वह प्रसन्न और शान्त है।<sup>२</sup> इसी प्रकार एक अन्य भिक्षु ने हमें बताया है कि पहले राजा होते समय किस अकार उसके हाथी की शीताओं में सूइम वस्त्र लटकते थे, पर वही आज परिव्रह-नहित सुन में व्याप करता है। उच्च मंडलाकार दृढ़ अट्टलिकाओं और कोठों में वह पहले हाथ में खड़ग धारण किये सिपाहियों और पहरेदारों द्वारा रक्षित होते हुए भी वासपूर्वक मोता था, पर आज वही बिना किसी वास के, सम्पूर्ण अयों से विमुक्त हो कर बन में प्रवेश कर ध्यान करता है।<sup>३</sup> एक दूसरे भिक्षु (शीलव) ने हमें बताया है कि वह पहले नीच कुल में उत्पत्त हुआ था। दरिद्र वा और भोजन भी मही पाता था। सूचे कूलों को बीम बीम कर वह बेचता था और बानी बीचिका का पाता था। उसका कम हीन था। जपने मन को नीचा कर के वह अगेक मनुष्यों की बनदाना करता था। एक दिन भिक्षु-मंग के साथ मगथ के उत्तम नगर (राजगृह) में प्रवेश करते हुए भगवान् सम्यक् सम्बुद्ध को उसने देखा। वह आगे

कुरान्ते... ' आदि गाथा २७५ तथा गाथा ११५० भी ।

१. वस्त्रादासं गहेत्वान् त्राणवस्त्रनपस्तिया । यस्त्वेविलं तुमं कार्य तुच्छं  
सत्तरवाहिर ॥ गाथा ३१५

२. जातिमदेन मतोहं भोगीसरियेन च । . . . . . माने मदञ्च छुड़देवा  
विष्पसन्नेन चेतसा । अस्मिमानो समुच्छिन्नो सद्वे मानविधा हता ॥४२३-  
४२८

३. या तं मे हत्यिगीवाय सुखमा यस्या पशारिता ।

सोऽज्ञ भद्रो भायति अनुपदानो । . . . .

उच्छे मधलियाकारे बल्हूमददालकोह्ठके ।

रसितातो वामाहत्येहि उत्तरं विहरि पुरे ।

सोऽज्ञ भद्रो अनुत्रासी पहीनभयन्नेरवो ।

भायति बनमोग्न्य ॥ ४२२-४२४

बहु कर भगवान् की बन्दना करने गया। पुलवोत्तम (बुद्ध) उस पर कृपा करके स्वर्य बहु हो मग। फिर सर्वलोकानुकम्पक कारणिक शास्त्रा ने उससे कहा "आ भिक्षु"। यही उसकी उपचारिता हई। आज भिक्षु की यह हालत है कि इन्हें और बहु भी आकर अञ्जलि वार्षि कर उसको प्रणाम करते हैं। निष्ठुओं के आनंदिक जीवन का एक अनुठा चित्र हमें स्वविर तालपृष्ठ के आदमोदगार में मिलता है। इस भिक्षु ने अपने चित्र को सम्बोधन कर कुछ महर्षीय उद्घार किया है जिसकी तुलना समर्थ रामदास के 'मनाचे लोक' और गोस्वामी तुलसीदास के 'विनय-प्रियिका' के अनेक पदों से अच्छी प्रकार की जा सकती है। जैसे तो तालपृष्ठ स्वविर द्वारा उच्चारित मभी गायाएँ (१०९१-११४५) उद्घरणीय हैं, परन्तु वहाँ स्वानाभाव से केवल कुछ का उद्घरण ही उपयुक्त होगा। स्वविर तालपृष्ठ अपने मन को सम्बोधन करते हुए कहते हैं "हे चित ! जैसे फल की इच्छा करने वाला मनुष्य दूस को लगाकर फिर उसकी जड़ को ही तोड़ने की इच्छा करे, उसी प्रकार हे चित ! मुझको चल और अनिता इस संसार में लगातार तू बैसा ही करता है ! ३ . . . हे चित ! सर्वत्र ही तो मैंने तेरे वक्तन को लिया है, असेक पूर्व

१. नीचे कुलमिह जातोहं बलिहो अप्पमोजनो ।

होनं कर्मं मम आसि जहोसि पुकाङ्गद्वको ॥६२

नीचे मनं करित्वान बनिदस्तं बहुकं जनं ॥६२१

अब अहमांसं सम्बुद्धं भिक्षुसंघपुरखतं पविसन्तं महाप्रीरं मापातं पुर-  
त्तमं ॥ ६२२

निकलपित्वान व्याख्यं बनितुं उसपतंकमि ।

ममेव अनुकम्पाय अट्ठासि पुरिसुत्तमो ॥६२३

ततो कारणिको सत्या सर्वलोकानुकम्पको । एहि निकलति मं जाहं सा मे  
आसुपसम्बद्धा ॥६२४

इन्द्रो बहु च जागम्बा मं नमस्मिसु पञ्जलि ॥६२८

२. रोपेत्वा रक्षानि यथा फलेसी मूले तर्हं छेत् तमेव इच्छसि ।

तपूपमं चित्र इवं करोसि यं मं अनिक्षमिह चले निष्पञ्जसि ॥६२१

जन्मों में भी तो मैंने तुम्हे कभी कृपित नहीं किया। तू मेरे ही अन्दर से उत्पन्न हैं, इसलिए हृतज्ञतावश है चित्त ! मैंने तेरे लिए चिरकाल तक दृश्य में संसरण किया है<sup>१</sup> ! हे चित्त ! तू ही ब्राह्मण बनाता है और तू ही खण्डित राजा है। हे चित्त ! तेरे ही कारण यैश्य और शूद्र बनते हैं और देवत्व भी पाते हैं तेरे ही कारण ! हे चित्त ! तेरे ही कारण अमृत बनते हैं नरक-योनियों भी तेरे ही कारण हैं। हे चित्त ! पश्च-पश्ची की योनियों और पितरों की योनियों में भी तू ही बालता है<sup>२</sup> । पिक् ! पिक् ! रे चित्त ! अब तू आगे का बया करना चाहता है। अब तू मृभो अपना वशवर्ती बना न सकेगा ॥<sup>३</sup> यही भिक्षु आगे कामना करता है :—

कदा नु ह दुर्वचनेन वृत्तो ततो निमित्तं विम्बो न हेस्त ।

अथो पसट्ठो पि ततो निमित्तं तुट्ठो न हेस्तं तदिदं कदा मे ॥<sup>४</sup>

अर्थात्—कब में अपने लिए प्रयुक्त दुर्वचनों को सुनकर उनके कारण दुर्द्वी और उदासीन नहीं होंगा, और इसी प्रकार अपनी प्रशंसा किये जाने पर उसके कारण प्रसन्न भी नहीं होगा—बया कभी मेरे ऐसे दिन आयेंगे ? आदि, आदि ।

अपने पुत्र भिक्षु को बुढ़े के साथ देखकर एक पिता उसका अभिमन्दन करता है :—

१. सद्ब्रत्य ते चित्त वचो कलं मया बहूसु जातिसु न मे सि कोपितो । अवभृत-  
सम्भवो कतञ्जुताय ते दुख्ले चिरं संसरितं तथा कते ॥११२६

२. तवेव हेतु असूरा भवामसे, त्वं मूलकं नेत्रयिका भवामसे । अथो तिरच्छान  
शतापि एकदा पेतत्तनं वापि तवेव बाहसा ॥११२८

त्वञ्जेवनो चित्त करोति ब्राह्मणो त्वं खतिया वापि राजदिसो करोति ।

वेस्सा च सुहा च भवाम एकदा, देवत्तनं वापि तवेव बाहसा ॥११२७

३. धी धी परं कि मम चित्त काहसि न ते अलं चित्त वसानुपत्तको । ११३४;  
मिलाइये . . . . . नाहं अलं तुष्ह वसे निवलितुं । ११३५

४. गाया ११००; मिलाइये तुलसीदास “कबहुँक हो यहि रहनि रहोगो । . . . .  
पहय वचन अति दुमह खवन सुनि लेहि पावक न बहौंगो । विगतमान, सम  
सौतल मन . . . . .” विनय-पत्रिका ।

जैसे पर्वत-गुफा में दो सिंह एक दूसरे को देखकर नाच करें, उसी प्रकार दोनों जाति एक दूसरे का अभिमन्दन करते हुए कहते हैं :—मार को सेना-सहित जीत बर हम दोनों जीरों ने संप्राप्त विजय किया है ।<sup>१</sup>

अपने प्रब्रह्मित पुत्र को देखकर माता विलाप करती है । पुत्र उसे समझाता हुआ कहता है :—माता ! मृत पुत्र के लिए माता ये सकती है, अपना उस पुत्र के लिए भी जो जीवित होते हुए भी उसे दिलाइ नहीं देता, अनुपस्थित है । माता ! मैं तो जीवित हूँ और तु मुझे सामने देख भी रही है । किर माता ! मेरे लिए तू रोदन क्यों करे ?

मतं वा अम्म रोदन्ति वो वा जीव न दिस्सति ।

जीवलं भं अम्म दिस्सन्ति कस्मा मं अम्म रोदन्ति ॥३॥

पर्वत-गुफाओं में ध्यान करते हुए अनेक भिन्नओं के चित्र हमें 'बेरगाया' में मिलते हैं । पाण्डुल धारी (मृदुडी धारी) भिन्न पर्वत-गुफा में सिंह के समान सूर्योभित है—'सोमति पसुकलेन सोहो व गिरियम्भरे' ।<sup>२</sup> इसी प्रकार भिन्न को अचल, ध्यानस्त्र अवस्था का चरण बताते हुए कहा गया है : जिस प्रकार सूदूर पर्वत निश्चल और सुप्रतिष्ठित होता है, उसी प्रकार विस भिन्न का सोह नष्ट ही नुका है, वह अचल पर्वत के समान कम्पित नहीं होता ।

यथापि पञ्चतो सेनो अचलो मुपतिष्ठतो ।

एवं मोहकखया भिन्नं पञ्चतो व न देशति ॥४॥

इस प्रकार भिन्न-जीवन के बाह्य और आन्तरिक रूप के अनेक चित्र हमें 'बेरगाया' में मिलते हैं । उनके आन्तरिक अनुभवों और ध्यानी जीवन का पूरा परिचय हमें यहाँ मिलता है ।

१. नन्दन्ति एवं सपञ्ज्ञा सोहो व गिरियम्भरे ।

बीरा विजितसंगमा जेत्वा मारं सवाहनं ॥ गाथा १७७

२. गाथा ४४

३. गाथा १०८१

४. गाथा १०००

भिशुओं ने जगनी साधना में प्रकृति का कितना सहयोग लिया था, इसका भी पूरा दर्शन हमें 'धेरगाथा' में मिलता है। 'धेरगाथा' में इस प्रकार वन्य और पार्वत्य दृश्यों के तथा वर्षा और शरद आदि छटुओं के जितने सुन्दर, सशिलाट चित्र प्रसंगवद्य आ गये हैं, वे उसकी एक विभूति बन गये हैं। 'धेरगाथा' के प्रकृति-वर्णन को तुलना भारतीय साहित्य में केवल जालीकि के इस विषय-सम्बन्धी वर्णनों से की जा सकती है। उसकी उदासता, सरलता और मृदम निरोक्षण सब अद्वितीय हैं। विन्दरनितज्ज ने 'धेरगाथा' के प्रकृति-वर्णनों को 'भारतीय गीति-काव्य के सच्चे रूप' कहा है।<sup>१</sup> प्रस्तुत लेखक ने 'पालि साहित्य में प्रकृति-वर्णन' शीर्षक सेक्ष में पालि साहित्य, विशेषतः 'धेरगाथा', में प्राप्त प्रकृति-वर्णन का विस्तृत विवेचन करते हुए भारतीय काव्य-साहित्य में उसके स्थान को निर्धारित किया है।<sup>२</sup> अतः यहाँ केवल संखेप से ही कुछ कहना उपयुक्त होगा।

भिशुओं का जीवन प्रकृति से सहरे रूप में सम्बद्ध था। मिरिन्गुहा, नदी-तट, वन-प्रस्थ, पुआल-गुब वधवा किसी छाई हुई या चिना छाई हुई ही<sup>३</sup> कुटिया में ध्यान करते हुए भिशुओं को वर्षा, शीत आदि छटुओं के परिवर्तन का और पृथ्वी और आकाश के अनेक रंगों और रूपों के परिवर्तन का साक्षात् अनुभव होता था। प्रकृति के अनेक रूपों को प्रतिक्रिया उनके चित्त पर कंसी होती है, इसके अनेक चित्र वे 'धेरगाथा' में हमारे लिए छोड़ दिये हैं। उनमें से कुछ का अध्योक्तन करना यही आवश्यक होगा।

मूसलाधार वर्षा हो रही है। चाननस्थ भिशु जगनो कुटिया में बैठा है। हो, उसकी कुटिया छाई हुई है। भिशु उदगार करता है:—

१. "The Real Gems of Indian Lyric Poetry" इन्डियन लिटरेचर,

जित्व दूसरी, पृष्ठ १०६

२. असंक्षिप्त, अप्रेल-मई १९५१

३. वर्षा होने वाली है। भगवान् महो (गंडक) नदी के तट पर खुली कुटिया (चित्रा कुटि) में बैठे हैं। वेलिये सूत-निपात, गाथा १९ (धनिय-सूत)

बरसो देव ! यथामुख बरसो !

मेरी कुटिया छाई हुई है ।

(ठड़ी) हवा अन्दर न आ सकने के कारण वह सुखकारी है ।

मेरा चित्त समाधि में दृढ़तापूर्वक लोन है ।

(कामासक्ति से) विमुक्त हो चुका है ।

निर्वाण के लिए उद्योग चल रहा है ।

बरसो देव ! यथा सुख बरसो !

एक दूसरे भिजू ने इसी अनुभव को इससे भी अधिक सुन्दर शब्दों में व्यक्त किया है

सुन्दर गीत के समान देव बरसता है ।

मेरी कुटिया छाई हुई है ।

(ठड़ी) हवा अन्दर न आ सकने के कारण वह सुखकारी है ।

उसमें शान्त-चित्त, व्यानस्थ में बैठा है ।

बरसो देव ! जितनी तुम्हारी इच्छा हो बरसो !

सुन्दर गीत के समान देव बरसता है ।

मेरी कुटिया छाई हुई है ।

(ठड़ी) हवा अन्दर न आ सकने के कारण वह सुखकारी है ।

उसमें शान्त-चित्त में व्यान कर रहा है ।

बीत-रुग ! बीत-देष ! बीत-मोह !

बरसो देव ! जितनी तुम्हारी इच्छा हो बरसो !

१. छाना मेरे कुटिका सुखा निवाता वस्स देव यथामुख ।

चित्त मे सुसमाहित विमुतं आतापी विहरामि वस्स देवा' ति । गाया १

२. वस्सति देवो यथा सुगीतं, छाना मेरे कुटिका सुखा निवाता ।

तस्मै विहरामि वृपसन्तो, अय चे पत्त्वयसि पवस्स देव ॥

वस्सति देवो यथा सुगीतं, छाना मेरे कुटिका सुखा निवाता ।

बीतरागो . . . . . बीतदोतो . . . . . बीतमोहो . . . अय चे

पत्त्वयसि पवस्स देवा' ति ॥ गायाएँ ३२५-३२९

'वस्त्रति देवो यथा सुमीत' (सुन्दर मीत के समान देव बरसता है !) की सुन्दर उपमा है ! प्राकृतिक सौन्दर्य का कैसा मनोज प्रत्यक्षीकरण है ! भड़ी लगाकर बरसते हुए बादल के समान सुन्दर मीत की वर्णों के सौन्दर्य को भी देखते की असता बीतराम भिक्षा में है । पर ध्यान का सूख तो इससे भी बढ़ा है :

पञ्चविष्ट्रिकेन तुरियेन न रति होति तादिसो ।

यथा एकमाचितस्ता सद्मा धर्म्य विपस्तो ॥१॥

(पञ्चविष्ट्रितुर्येऽवनि (महात्मा) से भी वेसा आनन्द प्राप्त नहीं होता, जैसा एकाग्र चित्त पुरुष का धर्म से सम्यक् दर्जन करने से उत्पन्न होता है) अतः ध्यान का सूख ही भिक्षा के लिए सब से बड़ा सूख है और प्राकृतिक सौन्दर्य उसके लिए इसी ध्यान का उद्दीपन बनता है ।

वर्णकाल है । सुन्दर नीली धीरा वाले, कलेंगीधारी भोर अपने सुन्दर मूलों से बोल रहे हैं । कितनी मधुर है उनकी गंजन ! विस्तृत पृथ्वी चारों ओर हरियाली से भरी हुई है । यारी सृष्टि जल से व्याप्त है । आकाश में जल-पूरित कुण्ड मेष छाये हुए हैं । ध्यान के लिए यह उपद्युक्त ज्ञवसर है । भिक्षा को प्रसंगता है कि उसका ध्यान अत्यन्त नुचार रूप से जल रहा है । बुद्ध-जासन के अभ्यास में वह सुन्दर रूप से अप्रमादी है । पदि प्रकृति में उल्लास और उत्साह है, तो भिक्षा का मन भी सुन्दर है । उसे भी उत्साह होता है अत्यन्त पवित्र, कुशल, दुर्दय, उत्तम, अच्युत पद (निर्वाण) का साक्षात्कार बरसने के लिए । वर्णकालीन सौन्दर्य के बीच ध्यानस्थ भिक्षा के इस प्रसाक्रम को देखिये ॥—

नम्यन्ति भोरा सुसिलः सुपेत्कुणा सुनोलगीवा सुमुखः सुमज्जिनो ।

सुसद्गुला चापि महा महो अयं सुव्यापितम्बु सुबलाहकं नभं ॥

सुकललहवो सुमनस्ता भावितं सुनिकालसो साधु सुदुद्दसासने ।

सुसुखकसुकं निषुणं सुदुद्दसं कुताहितं उत्तममक्षुतपदं ॥२॥

छतके मीने बंडे हुए, भिक्षा परिच्छनादि से घिरे हुए, सामारिक मनुष्यके समान वर्णों का सौन्दर्य केवल दूर से अवलोकन करने की वस्तु भिक्षा के लिए नहीं थी ।

१. गाथा ३९८, भिलाईये गाथा १०७६

२. गाथाएँ २११-२१२

उसके लिए वर्षों अपने समृद्धि अक्षयीण और भय के साथ ही आती थी। उसके रोटि रूप का भी वह उसी प्रकार प्रत्यक्ष अनुभव करता था जैसे उसके मध्यर गीत के समान स्वित होने का। अकेला व्यासलव भिन्न भवकर गुफा में देखा है। बादल बरस रहा है और आकाश में गडगड़ा रहा है। भवकर मृसलाहार लाई और आकाश में निरन्तर विजली की गडगड़ाहट ! पर भिन्न को भय कही ? निरंयता उसका स्वभाव है, उसकी 'धम्मता' है। बत उसे न भय है, न स्तूप है और न रोमाच ! स्थिर मम्बुल कच्चान के अनुभव को उसके सब्दों में ही सुनिये :

देवो च वस्तति देवो च गङ्गावापति  
एकको चाह भेरवे विले विहरति।  
तस्म मध्यं एककस्स भेरवे विले विहरति।  
नत्यं भयं वा छम्मितत्तं वा लोमहसो वा॥।  
धम्मता ममेसा यस्स मे एककस्स  
भेरवे विले विहरतो नत्यं भयं वा  
छम्मितत्तं वा लोमहसो वा॥।

भिन्नओं का वृत्ति वर्षोंकालीन प्राकृतिक सौन्दर्य और विशेषता ज्यान के लिए उसकी उपयुक्तता पर वहूँ रहा है। सून्दर योवा वाले सोरों का बोलना और एक दूसरे वो बुलाना भिन्नओं के लिए ज्यान का निर्मलण है। पीत वासु में कलित विहार करते हुए भी भिन्न को ज्यान के लिए उद्देश्य करते हैं :

नीला सुरीवा मोरा कारंविष्य अभिनदिन्ति।  
ते सौतबातकलिता सुतं भात्यं निवोधेन्ति॥।

इसी प्रकार सालक स्थिर का भी वर्षोंकालीन सौन्दर्य से प्रेरणा प्राप्त कर ज्यान के लिए बैठ जाना एक अविकलाकारी वस्तु है। महास्थिर वापने

१. गाथा १८९-१९०; निरंयता-विहार के लिए देखिये स्थिर स्थिरोप का का उद्गार भी "नाहै भयस्स भायामि सत्या नो अमतस्स कोविवो। यत्थ भयं नावनिटठति तेन ममेन वजन्ति भिक्षवो ॥। गाथा २१

२. गाथा २२

प्रकृति-प्रेम और उससे उत्पन्न ध्यान की इच्छा का बर्णन करते हुए कहते हैं :—

जब स्वच्छ पांडुर पंख बाले बगूले काले मेघ से भयभीत हुए अपनी लोहों की खोज करते हुए उड़ते हैं । उस समय बाइ में शब्द करती हुई यह नदी मुझे कितनी प्रिय लगती है ।

जब स्वच्छ पांडुर पंख बाले बगूले काले मेघ से भयभीत हुए अपनी लोहों की खोज करते हुए उड़ते हैं ।

और उसकी लोहे वर्ग के अन्धकार से इकी हुई है । उस समय बाइ में शब्द करती हुई यह नदी मुझे कितनी प्रिय लगती है ।

इस नदी के दोनों ओर जामुन के पेड़ हैं, वहाँ मेरा मन क्से न रमेगा ? महामार्ग के पीछे, नदी के किनारे पर अन्य अनेक निर्भरिणियों सूखोभित हैं । जगे हुए मैंडक मृदुल नाद कर रहे हैं ।

आज गिरि और नदी से बलग होने का समय नहीं है ।

बाइ में शब्द करती हुई यह नदी कितनी सुरक्ष्य, शिव और लोमकारी है ! मैं यहाँ ध्यान करूँगा ।

'नाज्ज गिरिनदीहि विष्वासममयो' (आज गिरि और नदी से बलग होने का समय नहीं है) इस उद्गार से भिक्षु ने प्रकृति-प्रेम की उस पूरी निष्ठा को रख दिया है, जो आज तक विश्व-साहित्य में कही भी अवश्य हुई है ।

१. यदा बलाका सुचिपण्डरकछदा कालसं मेघसं भयेन तस्तित ।

पलेहृति आलयमालयेतिनी तदा नदी अजकरणी रमेति म ॥

यदा बलाका सुचिपण्डरकछदा कालसं मेघसं भयेन तस्तित ।

परियेसतिलेन मलेन इस्सनी तदा नदी अजकरणी रमेति म ॥

कम्भु तत्व न रमेति जम्बुयो उभतो र्त्ति, सोभेति आणा

कूलं महालेनस्स पच्छती ॥

तामतमदसं घसुप्पहोमा भेका मनवती पनादयन्ति

नाज्ज गिरिनदीहि विष्वासममयो,

लेमा अजकरणी तिवा सुरम्माति॥ गाथाएं, ३०७-३१०

प्राकृतिक सौन्दर्य के बीच एकान्त ध्यान करते हुए, जो आनन्द प्राप्त होता है उससे अधिक आनन्द और कुछ नहीं है, ऐसा साध्य देते हुए, एक स्थविर साधक ने प्रभावशाली शब्दों में कहा है :

जब आकाश में मेघों को दृष्टुमी बजाती है और पश्चियों के माझे में जारी और पाराकुल बाष्ठ चमकते जाते हैं ;

उस समय भिन्न पहाड़ पर जाकर ध्यान करता है—इससे बड़ा आनन्द और कुछ नहीं है ।

जब कुमुदों से आच्छादित नदियों के . . .

किनारे पर बैठ कर सून्दर मन बाला भिन्न ध्यान करता है—इससे बड़ा आनन्द और कुछ नहीं है ।

जब एकान्त बन में, अद्व रात्रि में, बाष्ठ महसूस रहा है और शुक्र पहाड़ रहे हैं,

उस समय पर्वत पर बैठा हुआ भिन्न ध्यान करता है—इससे बड़ा आनन्द और कुछ नहीं है । \*

इसी परमानन्द को प्राप्त करने के लिए एक भिन्न निरिवज (राजगृह के समीप गृध्रकृष्ण पर्वत) जाने का इच्छक है ।

अहो ! कब मैं बुढ़ द्वारा प्रयंसित बन को जाऊँगा !

योगियों को प्रसन्नताकारी भूत, कुजरों से तेवित,

रमणीय, उस बन में मैं कब प्रवेश करूँगा !

१. यदा नमे शक्ति भेषदुन्मिधाराकुला विहंगपदे समन्ततो ।

भिन्नल्लु च पद्मारगतो व भायति ततो रति परमतरं न विन्दति ॥

यदा नदीनं कुमुदाकुलानं

तीरे निसिनो सुमनो व भायति ततो रति परमतरं न विन्दति ॥

यदा नितीषे रहितमिह कानने देखे गल्लन्तमिह नदिनि दर्शिनो ।

भिन्नल्लु च पद्मारगतो व भायति ततो रति परमतरं न विन्दति ॥

गायाएँ ५२२-५२४

उस सुपुणित शीत वन में, गिरिओर कन्दराओं में,  
कव में अकेला चक्रमण कहेंगा।  
अकेला, विना साथी के, उस रमणीय महावन में,  
एकान्त, शीतल, पुष्पों से आच्छादित पर्वत पर,  
निमित्त-भूख से सुधी, मैं गिरिवज्र में कव विचरण करेंगा। १

एक दूसरे स्वविर (तालपृष्ठ) की भी इस इक्ष्या को देखिये :  
कव में अकेला, विना किसी साथी के, (गिरिवज्र के) पर्वत-कन्दराओं में  
ल्यान करता हुआ विचरणगा। वहा कभी मेरे ऐसे दिन आयेंगे ? २  
कव में एकान्त वन में विदेहना भावना का अभ्यास करता हुआ निर्भय  
विचरणगा। वहा कभी मेरे ऐसे दिन आयेंगे ? ३

कव में वन के उन भागों पर जिन पर छहि (वुड़) चढ़े, चलता हुआ, और  
वहाँ काल के मेघ नदे जल की वृष्टि सचीवर भूख पर करते होंगे ! वहा कभी  
मेरे ऐसे दिन आयेंगे ? ४

कव में वन और गिरिगहाओं में कलेगीधारी मधुर पश्चियों की मधुर द्वनि

१. हन्द एको गमित्तामि अरठां बुद्धवचितं । गाया ५३८

योगिवीतिकरं रथं मतकुञ्जरसेवितं । ५३९

सुपुणिते सोतवने सोतले गिरिकन्दरे ।

..... चंकमि स्तामि एकको । ५४०

एकाकियो अदुतियो रमणीये महावने । ५४१

विने कुतुमसञ्जल्लभे पव्वारे नुन सोतले ।

विप्रतिसूलेन सुखितो रमित्तामि गिरिवज्रे । ५४५

२. कदा नु हं पावतकन्दरासु एकाकियो अदुतियो विहसं । ..... ते मे  
इदं ते नु कदा भवित्सति । १०९१

३. विपस्समानो बीतभयो विहसं एको वने सं नु कदा भवित्सति । १०९३

४. कदा नु मं पावृसकालमेघो नवेन सोयेन सचोवरं मे । इसिम्पात्तमित् पर्ये वज्रतं  
ओवस्सते, ते नु कदा भवित्सति । १०९२

को सुनकर अमृत की प्राप्ति के लिए जागरूक होकर ध्यान करेगा ! वहा कभी मेरे ऐसे दिन आयेगे ? ।

फिर आगे बन को सम्बोधन कर भिक्षु कहता है :

हे चित्त ! उम मिशिवत में अनेक विचित्र और रंग विरचे पंखधारी पक्षी हैं । सुन्दर नीली धीवा बाले भौंड हैं । (इन्द्र के पोप को सुनकर उसका अभिनन्दन करते हुए ) वे नित्य ही मंजुर ध्यनि करते हैं । हे चित्त ! जब तु ध्यानी होकर वहाँ विचरेगा तो ये तुझे कितने प्रीतिकर होंगे । ३

ये वर्णावल में मिशिवत कानन में, किसी गृहागृह में ध्यान लगाते हुए । मधूर और कौच के रव में पूरित उस बन में, हाथी और व्याघ्रों के सामने बसते हुए, ४ हे चित्त ! तुझे ध्यानी को ये कितने प्रीतिकर होंगे ॥ ५

एक दूसरे ध्यानी भिक्षु को भी पर्वत कितने प्रिय हैं ।

करोरि-वृक्षों की गणितीयों ने आपूर्ण, भनोरम भूमिभाग बाले

कुञ्जरों से अभिरुद, रमणीय—वे पर्वत मुझे प्रिय हैं ।

नीले आकाश के समान वर्ण वाले, सुन्दर, शीतल जल  
में परिपूर्ण, पवित्रताकारी

हावियों के अब्दों में परिपूर्ण—वे पर्वत मुझे प्रिय हैं !

मम ध्यानेच्छ, आत्मसंयमी, रमितिमान् भिक्षु के लिये पर्माणु,  
मग सम्हांगों में सेवित ।

१. कदा मधुरस्स सिखण्डिनो बने दिजस्स सूत्वा गिरिगङ्गभरे रत । पच्चटठहित्वा अमृतस्त पट्टिया संचित्तये तं तु कदा भविस्सति ॥ ११०३

२. सूतीलगीवा सुसिला तुपेकुला तुचितपत्तचलवना विहंगमा । सुमञ्जुषोस्त्व-  
निताभिगविजनो ते तं रमिस्सनित बनम्ह भाविनं ॥ ११३६

३. नवाम्बुता पावूससित्तकानने तर्ह गृहापेहगतो रमिस्सति । ११३५

४. मधुरकोऽचामिभिक्षुम्ह कानने दीपीहि ध्यायेहि पुरक्षतो वसं । ११३६

५. ते तं रमिस्सनित बनम्ह भाविनं । ११३६ जावि

अनेक पश्चिममहों से जाकीर्ण—के पर्वत सुन्दे प्रिय है ।

शीतकाल का पुरा अनुभव लेने हुए भी ध्यानी भिक्षुओं को हम 'धेरगाथा' में देखते हैं :

हेमन्त की शीतल काल राति है ।

खाल को भी गार करने वाली, मन को भी जिदीण करने वाली, ठंडी हवा है ।

भिन्न ! तू कैसे करेगा ?

मैंने सुना है भगव निवासी नोग वस्त्रों की गृह्णता से सम्प्रत है । उनका जीवन मुश्ली है । मैं भी उनके समान मुख अनुभव करता हूँ ।

दीत की पह रात में इस पुत्रालभूज में लेटकर छिनाऊंगा ॥

इसी प्रकार एक दूसरे भिक्षु ने 'जारो ओर मनोरम द्रुम कठ हुए हैं' (दुमानि फूलानि मनोरमानि—गाथा ५२८) आदि रूप से वसन्त ऋतु का वर्णन करते 'जालो इतो पश्चमनाय बीर' (हे ब्रीर ! यह प्रक्रमण करने का समय है) इस प्रकार ध्यानमयी व्रेरणा दी है ।

भगवान् ने मध्य रात्रि में उठ कर दोषिपर्तीय घरों की भावता करने का

१. करेरिमालावितता भूमिभागा मनोरमा । कुञ्जवराभिक्षु ते सेला रमयन्ति मं ॥१०६२

नीलभवणा गचिरा पारिसीता सुचिन्धरा ॥१०६३

बारमाभिक्षु ते सेला रमयन्ति मं ॥१०६४

अर्ल भाषितुकामस्त स पहितस्त से सती ॥१०६५

मिगरंधनिमेविता ।

नामादिवगणाकिणा ते सेला रमयन्ति मं ॥१०६६

२. छविधापक चित्तभृक् ..... हेमन्तिक सीतकालरसियो भिक्षु तं सि कर्ष करिस्ससि ॥सम्पद्रसस्सा मगधा केवला इति मे सूते । पलालक्ष्मको सेव्य यथङ्गे मूलजीविनो ॥२०७—२०८

३. वसन्त ऋतु के सुन्दर वर्णन के लिए देखिये वेरोगाथा, माधाएँ ३७१—३७२ आदि भो ।

आदेश दिया है। भिक्षु की रात्रि ध्यान करने के लिए है। एक भिक्षु का कहना है :

न ताव सुपितं होति रत्ति नवखलतमासिनो ।

पटिजग्निमुमेवेसा रत्ति होति चिजानता ॥<sup>१</sup>

यह ताराओं से भरी रात मोने के लिए नहीं है। जानी के लिए यह रात जाग कर ध्यान करने के लिए है।<sup>२</sup>

इस प्रकार हम देखते हैं कि विद्येपतः वन्य और पावर्त्य प्रकृति के अनेक सम्मदर संशिलिष्ट चित्र हमें 'धेरगाथा' में मिलते हैं। वेस्मन्तर जातक (संस्कार १४३) में भी हमें ऐसे अनेक चित्र मिलते हैं। महर्षि वाल्मीकि को छोड़कर ऐसे संशिलिष्ट वर्णन किसी प्राचीन पा वर्वाचीन भारतीय कवि ने नहीं किये हैं। वित्तना भग्न और विद्याग इन प्राकृतिक वर्णनों में 'धेरगाथा' में मिलता है, उत्तना भग्न किसी काव्य में नहीं। विष्व-साहित्य में प्रकृति का वर्णन अधिकातर कवियों ने राग के उद्दीपन की दृष्टि से ही किया है। वाल्मीकि के समान उदास वर्णन करने वाले कवि बहुत कम हैं। हिन्दी के कवियों ने प्रायः संस्कृत के उत्तर-कालीन कवियों का अनुसरण कर प्रकृति को शृंगार रम के उद्दीपन के रूप में ही चिह्नित किया है। आधुनिक कवि और साधकों को वाल्मीकि भी ओर देखते के साथ-साथ रामायनकारी 'धेरगाथा' के प्रकृति-वर्णनों को ओर भी देखता चाहिये।

'धेरगाथा', जैसा अभी कहा गया, ५२२ पालि श्लोकों (गाथाओं) का संग्रह है जिसमें उड़ बूढ़ बोढ़ भिक्षुणियों के उद्गार संत्रिहित हैं। अत्यन्त संगीतात्मक भाषा में, जात्माभिव्यञ्जनात्मक गीतिकाव्य की शीली के आधार पर अपने जीवनानुभवों को व्यक्त करते हुए यही बूढ़ भिक्षुणियों ने अपने जीवन-काव्य को गाया है। नैतिक सच्चाई, भावनाओं की गहनता और सब से बढ़कर एक अपराजित वैयक्तिक ध्वनि, इन शीलों की मूल्य विद्येपताएँ हैं। निर्बाण की परम शान्ति में भिक्षुणियों के उद्गारों का एक एक शब्द उच्छ्वसित है। यहाँ संगीत

१. गाथा १९३

२. मिलाइये, "या निशा सर्वभूताना तस्यां जागति संयमो ।" गीता २१९

भी है और जीवन का सच्चा दर्शन भी । निर्वाण की परम शान्ति का वर्णन करते हुए भिक्षुणियों कभी थकती नहीं । जीवन की विषयसत्ताओं पर वे अपनी विजय का ही गीत गाती है । "अहो ! मे चित्तनी सुखी हूँ ।" यही उनके उद्गारों की प्रतिनिधि ध्वनि है । बार बार उनका यही प्रसन्न उद्गार होता है "सीति-भृतमिह निवृता" अर्थात् निर्वाण को प्राप्त कर मे परम शान्त हो गई, निर्वाण की परम-शान्ति का मंत्र साक्षात्कार कर लिया । भिक्षुणियों की भावाओं मे निराशावाद का निराकरण है, साधनालब्ध इन्द्रियालील शुद्ध का साक्षम है और नैतिक ध्येयवाद की प्रतिष्ठा है । बुद्ध-वासन को भावना से ओतप्रोत है, यह कहने की तो आवश्यकता ही नहीं । 'वेरेमाला' की भावनादीली से परिचित होने के लिये महाप्रजातीयों गोतमी की भगवान् बुद्ध के प्रति यह अडाऊँगति देखिये—  
हे बुद्ध ! हे चौर ! हे सर्वेत्तम प्राणी ! तुम्हे नमस्कार !

जिसने मुझे और अम्ब भहुत से प्राणियों को दुःख से उबारा ।

मेरे सब दुःख दूर हो गये, उनके मूल कारण वासना का भी उच्छेदन कर दिया गया ।

आज मैंने दुर्घनिरोध-गामी आयं अष्टाङ्गिक मार्ग मे विचरण किया ।  
माता, पृथ, पिता, भाई, स्वामिनी, मे पूर्व जन्मों मे अनेक बार बनती रही!  
यथायं जान न होने के कारण मे ज्ञानात्म संसार मे जमती रही । अब मैंने  
इस जन्म मे उन भगवान् (बुद्ध) के दर्शन किये, मुझे अनुभव हुआ—यह  
मेरा अन्तिम शरीर है ।

मेरा आजागमन क्षीण हो गया, अब मेरा फिर जन्म लोना नहीं है ।

बहुतों के हित के लिये ही भगवान्या ने गोतम को जाला ।

जिसने व्याधि और मरण से आकुल जन-समृद्ध के दुर्घटनाको काट दिया ।

एक अन्य भिक्षुणी (चन्द्रा) अपने पूर्व के दुर्घट-मण्ड जीवन का प्रस्तवेशण करती हुई कहती है—

विषवा और निःसन्तान—मे पहले बड़ी गमीवत मे पड़ी थी,

मिथ-गामी मेरे कोई नहीं थे, जाति-वस्त्र भेरे कोई नहीं थे ।

भोजन और वस्त्र भी भी नहीं पाती थी ।

लकड़ी और भिक्षागाव लेकर घर से प्रत भिक्षा मांगती हिस्ती थी,  
सर्मी और सर्दी से ब्याकुल है, मैं सात वर्ष तक इसी प्रकार समती रही,  
एक दिन एक भिक्षुणी के दर्शन मुझे हुए,  
उसने आदरपूर्वक भोजन और जल देकर मुझे ब्रतगहीत किया,  
फिर मैंने उसके पास जाकर धार्यता की—  
मैं प्रव्रज्या लंगी ।

उस दयालयी पटाचारा ने मुझे अनुकाल्यापूर्वक प्रब्रज्या दी ।  
फिर मुझे धर्मोपदेश देकर उसने मुझे परमार्थ में लगाया ।  
उसके उपदेश को सुनने के बाद मैंने उसके अनुगामन को पूरा किया ।  
अहो ! जगोष या देवी या उपदेश ।

मैं आज तीनों विद्याओं को जानने वाली हूँ, समूण चिन-मलों से रहित हूँ।  
पटाचारा भिक्षुणी की विषया तीस भिक्षुणियों किस प्रकार उसके प्रति अपनी  
कृतज्ञता का भीव प्रदर्शित करती है, वह उनके उद्गारों में देखिये—

“लोग मुमलों में अल्प कृट कृट कर वित्तावैन करते और अपने स्त्री-युवादि  
का पालन करते हैं ।

तो फिर तुम भी बृद्ध-शासन को पूरा नयों नहीं करती,  
विस कर के पछताना नहीं होता ।”

ब्रभो शीघ्र पैर धोकर बैठ जाओ,

विन की एकाप्रता से यकृत होकर बृद्ध-शासन को पूरा करो ।”

पटाचारा के शासन के इन इन शब्दों की सुनकर हम सब पैर धोकर एकान्त  
में ध्यान के लिये बैठ गई ।

विन की समाधि मे यकृत होकर हमने बृद्ध-शासन को पूरा किया ?

रात्रि के प्रथम याम में हमने पूर्व-अन्मों का स्मरण किया ।

रात्रि के मध्यम भाग में हम ने दिव्य चक्रवर्णों को विशेषित किया । रात्रि  
के अन्तिम भाग में अन्यकार-पूजा को विनष्ट कर दिया ।

भिक्षुणी अम्बाली ने अपनी बृद्धावस्था में अपने शरीर का प्रत्यवेक्षण कर जो  
उद्गार किये हैं, वे तो पालि-वाद्य के सर्वोन्मम उदाहरण ही हैं । अन्यथाली  
अपने जीण-शरीर को देख कर कहती है—

किसी नमय भौति के समान हुए वर्ण और उन में से केशपाण और सधन उपबन सी में सही यह वेणी, पुण्याभरणों और स्वर्णलिंगारों से सूरभित और सूशोभित रहा करती थी, वही आज जरावरस्था में इति, गन्धपूर्ण, विश्वरी हुई, जीणे सम के वस्त्रों जैसी भर रही है। सत्पवादी (बुद्ध) के वचन मिथ्या नहीं होते !

गाहु नीत मणियों से समृद्धवान्, ज्योनिष्युर्ण नेत्र आज योभा विहीन हैं !

नवदीवन के समय मृदीष्व नामिका, कर्णदृष्ट और कदली-मुकुल के समय पूर्व की दन्तांश्चित्रमध्य दुलकनी और भग्न होती जा रही है।

इनवासिनी कोकिला के समान मेरा मधुर स्वर और चिकने पंख की भौति मृष्ट धीरा आज कम्पित हो रही है।

स्वर्ण-मंडित उंगलियों आज अशक्त एवं मेरे उत्तम स्तन आज दुलकते शूरक चर्म मात्र है।

स्वर्ण नूपुरों से सूशोभित पंरों और कटि-प्रदेश की पति आज थीं विहीन हैं। आदि

प्रायः सभी निष्ठाणियों के उद्गारों में काल्पगत छियेष्टाएँ भरी पड़ी हैं, जिनका विचेचन यहाँ नहीं किया जा सकता। निष्ठग ही निष्ठाणियों के उद्गारों की मामिकता और उनकी सान्त गम्भीर इवनि भास्तीय साहित्य में अडिनीय है और पालि-काल्प की तो वह अमूल्य सम्पत्ति ही है। जिन ३३ विषाणियों के उद्गार 'येरीगाढ़ा' में सञ्चिहित हैं, वे सभी बढ़कालीन हैं। जल्क यों कहना जाहिये, वे सभी भगवान् बुद्ध की शिष्याएँ हैं। नारी जाति के प्रति भगवान् की कितनी अनुकूलगा थी, यह इसी से समझा जा सकता है कि उनमें से ज्ञेनक अपने को 'बुद्ध की हृष्यम से उत्पन्न कन्ना' (ओरसा धीता बुद्धस्त) कह कर अभिनन्दित करती थीं। वे मासती थीं कि 'जब चित्त सुसमाहित है, तो स्त्री-भाव इसमें हूमारा क्या करेगा (इरिधभावो जो

कि कविरा विलम्ह सुसाहिते (गाना ६१) । फलतः निर्दाण-प्राप्ति में उनका अधिकार था और उसे प्राप्त भी उन्होंने किया था, जिसके साइय-स्वरूप उन्होंने अपने उद्गार भी किये हैं । महाराव शुद्धोदन की मृत्यु के उपरान्त भगवान् बृह ने अपनी विमाता महाप्रजापती गौतमी को भिक्षणी होने की अनुमति दें दी थी । उसके साथ पाचि सौ अन्य शास्त्र-महिलाएँ भी प्रवर्जित हुई थीं । कालान्तर में भिक्षणियों वा एक अलम संघ ही बन गया था और नाना कुलों और नाना जीवन की अवेस्थाओं से प्रवर्जित होकर उन्होंने शाश्वत-मूर्ति के गाद-मूर्ति में बैठकर साजना का मार्ग स्थीकार किया था । इन्हीं में से कुछ भिक्षणियाँ आगे जीवन-नुभवों को हमारे लिये छोड़ नहीं हैं जो 'थेरीगाथा' के सप्त में आज हमारे लिये उपलब्ध हैं । किस उद्देश्य से, किन कारणों से, किस सामाजिक परिस्थिति में, प्रत्येक भिक्षणी ने बृह, घरम और संघ की शरण ली थी, इसका विस्तृत विवरण तो 'थेरीगाथा' की अर्थकथा 'परमत्वदीपनी' में उपलब्ध है, जो पौचवीं शताब्दी ईसवी की रचना है । इसी के अधार पर यहाँ संक्षेप में यह दिखाया जा सकता है कि किन नाना कारणों से इन भिक्षणियों ने वर को छोड़कर प्रवर्जया ली । इनमें से कुछ, जैसे मृता (२) और पूर्णा (३) अपनी जान-सम्पत्ति की पूर्णता के कारण प्रवर्जित हुईं । कुछ ने घर के काम काज और दोषों से उब कर प्रवर्जया ली, जैसे मृता (११) गृहा (१६) और नृमा (२०) । परमदिता (१३) ने पति को विरक्ति के कारण प्रवर्जया ली । घर्मा (१९) मैत्रिका (२४) दन्तिका (३२) मिहा (४०) सूजाता (५३) पूणिका (६५) रोहिणी (६७) नृमा (११) चिचा (२३) तृकला (३४) अस्तपाली (६६) अनोपमा (५५) तपा योमा (२८) ने जास्ता में श्रद्धा के कारण प्रवर्जना ली । प्रिय-जनों की मृत्यु और उनके विश्व के कारण प्रवर्जया लेने वाली भिक्षणियों में श्यामा (३६) उर्विरी (३३) किसा गौतमी (६३) वासेदी (४१) सुन्दरी-नन्दा (४१) चन्दा (४९) गटाचारा (४७) तता महाप्रजापती गौतमी है । पुत्रों की अकृतज्ञता योग्या (४५) की प्रवर्जया का कारण हुई । भद्रा कुदलकेशा और रहगिदामी ने अकृतम, यत्न पतियों के कारण प्रवर्जया ली । पति का अनुसरण कर भद्रा नागिलायिनी और चापा प्रवर्जित हुई । इसी प्रकार भाई (सारिपुत्र) का अनुसरण कर ज्ञाता, उपकाला और शिशपचाला प्रवर्जित हो गई ।

बुद्ध-गिरज को पराजित न कर सकते पर विमला प्रवर्जित हो गई । वहाँ तक इन भिद्धणियों के बेश मा सामाजिक कुल-जील आदि का सम्बन्ध है, ये प्रायः सभी परिस्थितियों की थीं । उदाहरणतः खेमा, सुमना, शेला और सुमेघा कोशल और मगध के गाजबगी की महिलाएँ थीं । महाप्रजापति गोतमी, तिष्णा, अभिकण्ठामन्दा, सुन्दरी मन्दा, जेनी, सिंहा, तिला, ओरा, मित्रा, भद्रा, उपतमा और अग्ननदा स्थविरी, जाम्बव और लिल्लवि आदि सामन्ती को लड़कियाँ थीं । मंत्रिका, अन्यतरा उत्तमा, चाला, उपत्तारा, जिज्ञेश्वाला, दंहिणी, सुन्दरी, चुम्भा, भद्रा कापिल, यिनी, मृक्ता, तन्दा, सकुला, कन्दा, गुप्ता, दर्निता और योभा त्रात्मण-बंज की थीं । गृहपति और देश्य (सेठ) वर्ग की महिलाओं में पूणी, चित्रा, शराम, उविरी, शुक्ल, वर्मादिशा, उत्तमा, भद्रा कुडलकेपा, पटाचारा, सुजाता, अनोपमा और पूणिका थीं । अहृडकासी, अभय माता, विमला और अस्वपाला जैसी मणिकाएँ थीं । इसी प्रकार शुभा बड़ई की पुत्री और चूपा एक बहेलिये की लड़की थीं । यारांश यह कि अनेक कुल-शीलों ने स्त्रियों ने बुद्ध-सामने में दीक्षा प्रहण की थीं । 'येरीगाथा' में सञ्चिहित इनके उद्गारों और उत्तम प्रतिष्ठनित इनकी पूर्व जीवन-वर्याओं से पौत्रवंश-हठों शताब्दी इस्वी पूर्व के भारतीय समाज में नारी के स्थान पर भी प्रवर्तित प्रकाश पड़ता है । परन्तु 'येरीगाथा' का मूल्य आकर्षण तो उसकी काव्य और माचना की भूमि ही है, जिसके विषय में पौछे काफी कहा जा सकता है ।

हम देखते हैं कि प्रकृति-वर्णन की ओर जितनी प्रवृत्ति भिद्धुओं की है, उसमें भिद्धणियों का नहीं । 'येरीगाथा' में किल शुभा भिद्धुणी की गाथाओं में वसन्त का वर्णन है । वह अत्यन्त सुन्दर, सस्तिष्ठ और सूक्ष्म निरोक्षण पर आधारित है । पर उसका लक्ष वहाँ केवल पृष्ठभूमि को तेयार कर देना है । शुभा भिद्धुणी अपनी ओर को अध्यजल-सिवित जन्म-बुद्ध-मातृ कहती है । वाद में निविकार भाव से उसे निकाल कर कामी पुरुष को दे देती है । इसके प्रभाव में तीव्रता लाने के लिए ही यहाँ पृष्ठभूमि रूप में वसन्त का वर्णन किया गया है । वसन्त की योभा काव्य का सत्य है, जोक्या का वर्णन विज्ञान का सत्य है । इन दो सत्यों को इनमें सुन्दर दृग से आमने-सामने रख कर काव्य में कभी वर्णन नहीं किया गया । भिद्धणियों की प्रवृत्ति आपने आन्तरिक अनुभव के वर्णन

के साथ-साथ आपने पूर्व आधम के जीवन की अस्थायों के लिए की ओर ही अधिक है। भिन्नओं में तो शीलव और जयन्त पुरोहित-गुरु आदि कुछ-एक भिन्नओं न ही हमें अपने पूर्व जीवन से परिचित कराया हैं। बाहु जीवन की अपनी अन्तरिक अनुभव के प्रकाशन पर ही उनका ध्यान अधिक है, और उस अनुभव में इतना सामय है कि कहीं-कहीं न केवल भिन्नों के उद्गारों की भाषा ही समान है, बल्कि वे कई जगह व्यक्ति के प्रतिनिधि न होकर वर्ण (भिन्न-वर्ण) के ही प्रतिनिधि हो गये हैं। इसके विपरीत भिन्नणियों के उद्गारों में व्यक्तिगत विशिष्टता की पूरी धृति विलम्बित है। उन्होंने आपने पारिवारिक और सामाजिक जीवन के विषय में हमें बहुत कुछ बतलाया है। अपने पूर्व जीवन के सूख-दूख, हर्ष-विपाद आदि के बारे में भी उन्होंने बहुत कुछ कहा है। इस प्रकार अपने मृहस्थ-जीवन के भूमियों की ओर मंजूल भूला, गृष्म और वृद्धा भिन्नणियों ते किया है। उच्चिरों, किसानों गोलमों और बालियों भिन्नणियों के वचनों में उनके सन्नान-विशेष की पूरी भलक है। सुन्दरी सन्दा और चन्दा ने पति जादि सम्बन्धियों की सूत्य से प्रद्रव्या प्राप्त को, इसकी सूचना है। पटाखार के शब्दों में उसके कल्प जीवन की सारी गाथा छिपी हुई पड़ी है। भिन्नणियों की अनेक गायारे (११; २५-२६; ३५-३८; ६१; ६२-६३; ९९-१०१; १०७-१११; १५३-१५८, आदि, आदि) 'अह' से ही प्रारम्भ होती है और उनकी आन्तरिक ध्वनि भी अपनी विशिष्टता लिए हुए हैं।

जहाँ तक विचार और काव्यगत सीम्बद्य का सम्बन्ध है, वेरगाया और थेरी-गाया में अनेक समानताएँ हैं। जिस प्रकार भिन्नों ने अनुभ की भावना की है उसी प्रकार भिन्नणियों ने भी। 'बाज मेरी भवन-बेडी कट गई ! मेरे हृदय में विद्धा तीर निकल गया, तुम्हारों की लो सदा के किए बुझ गई ! ' 'मैं सब मलों से बिमुक्त हूँ' जब मेरे बौद्धा शान्त हूँ, निपापा हूँ' आदि भिन्नणियों के उद्गार आपना नम्भीर और शान्त प्रभाव लिए हुए हैं और मानव-मन को पवित्रता की उन्न भूमि में ले जाते हैं। पटाखार का यह उपदेश-वाच्य 'बुद्ध-शासन को पूरा करो, जिसे करके पछताना नहीं होता। अभी शीघ्र पैर धोकर एकात्म (एकात्म) में बैठ जाओ' कितना प्रेरणादायक है ! भिन्नणियों को जीवित विचारम या कि वे निवृण का माध्यात्कार कर सकती हैं। स्वी-भाव को अवशतता दिलाई

जाने पर एक भिक्षुणी (सोमा) जात्मविश्वासपूर्वक कह उठती है "जब चित्त अच्छी प्रकार समाधि में स्थित है, जीवन नित्य ज्ञान में विद्यमान है, अन्तर्जाल पूर्वक धर्म का मम्पद् दर्शन कर लिया गया है, तो स्त्री-भाव इसमें हमारा क्या करेगा?" 'थेरीगाया' में नाटकीय तत्त्व को कमों नहीं है और असेक महस्त्र पूर्ण संवाद है। गोलिणी और उसके पिता का संवाद (२७१-२९०) सुन्दरी उसकी माता और सारथी का संवाद (३१२-३३७) चापा और उसके पति का संवाद (२९१-३११) बैला और मार का संवाद, (५३-५९) चाला और मार का संवाद (१८०-१८९) शिवपञ्चाला और मार का संवाद (१९६-२०३), उत्पलवणी और मार का का संवाद (२२४-२३५) बड़हमाता और उसके पुत्र का संवाद (२०४-२१२) आदि नाटकीय गति से परिपूर्ण है। यनिहारिन के रूपमें पूर्णी ने अपने पूर्व जीवन को जो परिचय दिया है, वह अपनी कलाणा लिए हुए हैं। अम्बणाली की गाथाओं में अनित्यता का चित्रण गीतिकाव्य के मम्पूर्ण सौन्दर्य के साथ हूबा है। सुन्दरी की गाथाओं (३१२-३३७) और दृभा की गाथाओं (३६६-३९३) को विन्दुर-मिल्ज ने सम्मद्र आल्यान-गीति कहा है<sup>१</sup>।

धर और थेरीगायाएँ कमज़ो़ उन भिक्षुओं और भिक्षुणियों की रचनाएँ हैं, जिनके नामों से वे मम्पन्धित हैं। जमेन विद्वान् के हैं, न्यूमनन उन पर एक मम्पाय के मन की छाप देखी है।<sup>२</sup> बौद्धधर्म का प्रभाव-न्यमिति के कारण, जो स्वभावतः ही इन गाथाक और साधिकाओं के अनुभव-मिल्ड रखना में होनी चाहिये, न्यूमन को यह भ्रम हो गया है। विन्दुरमिल्ज ने न्यूमन के मन से गहरमति तो नहीं दिखाई पर कुछ भिक्षुओं की रखनाओं में भिक्षुणों की रखनाएँ और इसी प्रकार कुछ भिक्षुणियों की रखनाओं में भिक्षुओं की रखनाएँ सम्मिलित हो गई हैं, ऐसा उन्होंने माना है।<sup>३</sup> वस्तुतः बात यह है कि गाथाओं का संकलन विषय-क्रम से न होकर गाथाओं की

१. इन्डियन लिटरेचर, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १०८-१०९।

२. देखिये विन्दुर निल्ज, इन्डियन लिटरेचर, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १०२, पद-संकेत १।

३. इन्डियन लिटरेचर, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १०१।

संहया के बम से है, जो कुप्रिय है। फिर संकलन में भी कहीं कुछ कहियो रह ही नहीं है। ल्यविरिणियों के साथ पुरुषों के संबंध भी 'वेरीगाथा' में कहीं कहीं परिवर्तित ही है। दोनों की रुचा भी कहीं कहीं भिन्नती दिखाई देती है। उदाहरणामें वेरीगाथा (२०४-२१२) में बड़ड की मात्रा उपर जान-मार्ग पर लगाती है और वेरीगाथा (३३५-३३६) में वह उसे अन्यवाद देता है। जिन प्रकार तीन देशों वस्तुओं (हमिया, हठ और कुदाल) से मुक्ति पाकर भिन्न प्रसव हैं उनमें प्रकार आवाल में, मूसल में और अपने कुबड़े स्वामी से मुक्ति पाकर भिन्नती प्रसव है।<sup>१</sup> इसी प्रकार के घण्टों से विन्दूभित्ति को गाथाओं के सम्मालित होने का भ्रम हो गया है। गाथाओं के संकलन में भले ही कहीं कोई प्रमाद हो, पर वेर और वेरी-गाथाओं को मूलतः उन भिन्न और भिन्नतियों की रूपनाएँ ही माना जा सकता है, जिनके नामों से वे सम्बन्धित हैं।

### जातक<sup>२</sup>

जातक खुटक-निकाय का दसवां प्रसिद्ध ग्रन्थ है। जातक को वस्तुतः धन न कह कर जन्म-नामूह ही कहना अधिक उपयुक्त होगा। ऐसा हम आपे देखें,

१. असितासु मथा नंगलासु मथा खुदकुदातासु मथा। गाथा ४३ (वेरीगाथा)

२. उदुक्कलेन मुसलेन पतिना खुञ्जकेन च। गाथा ११ (वेरीगाथा)

३. भद्रत आनन्द कौसल्यायन ने जातक का हिन्दी में अनुवाद किया है। हिन्दी माहित्य सम्मेलन, प्रयाग, से वह तीन भागों में प्रकाशित हो चुका है। जातक (प्रथम लंड), १९४१; जातक (द्वितीय लंड) १९४२; जातक (तृतीय लंड) १९४६। प्रथम लंड में जातक-संहया १-१००; द्वितीय लंड में जातक-संहया १०१-२५० और तृतीय लंड में जातक-संहया २५१-४०० अनुवादित है। चतुर्थ लंड प्रेस में है। राय साहब 'ईशानजनन धोष का बेगला अनुवाद प्रसिद्ध है। अंग्रेजी में कौबल के सम्पादकत्व में ६ जिलों में जातक का अनुवाद प्रकाशित हो चुका है। सातवीं जिले में अनुकरणी है। कौबल के अतिरिक्त चारसं आदि अन्य चार विद्वानों ने इस अनुवाद-काव्य में भाग लिया है। जातक का यह सम्पूर्ण अंग्रेजी अनुवाद केन्द्रिय से १८९५-१९१३ में प्रकाशित हुआ था। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य विद्वानों ने जातक के कुछ अंशों का अनुवाद भी

उसका कोई-कोई कथानक पूरे ग्रन्थ के रूप में है और कहीं-कहीं उसको कहानियों का रूप संधिष्ठ महाकाव्य का सा है। 'जातक' वाद का अर्थ है 'जात' अर्थात् जन्म-सम्बन्धी। 'जातक' भगवान् बुद्ध के पूर्व-जन्म सम्बन्धी कथाएँ हैं। बुद्धत्व प्राप्त कर लेने की अवस्था में 'पूर्व भगवान् बुद्ध' वीष्मिसत्त्व' कहलाते हैं। वे उस समय बुद्धत्व के लिए उम्मेदवार होते हैं, और दान, शील, मैत्री, सत्य आदि दस पारमिताओं अथवा परिपूर्णताओं का अभ्यास करते हैं। भूत-दया के लिए वे अपने प्राणों का अनेक बाह्य बलिदान करते हैं। इस प्रकार वे बुद्धत्व की बोग्यता का सम्पादन करते हैं। 'बोधिसत्त्व' शब्द का अर्थ ही है बोधि के लिए उच्चोग्नशील प्राणी (सत्त्व)। बोधि के लिए है सत्त्व (सार) जिसका, ऐसा अर्थ भी कुछ विद्वानों

किया है। इनमें रायस डेविड्स का 'बुद्धिस्त वयं स्टोरोऽऽ', जो सन् १८८० में लग्नदन से प्रकाशित हुआ था, अति प्रसिद्ध है। इसमें जातक-संलग्न १-४० अनुवादित हैं। सम्पूर्ण जातक का जर्मन अनुवाद भी हो चुका है (लोपजिंग, १९०८)। कांतवाल का रोमन लिपि में जातक का संस्करण एक महसूबपूर्ण और ऐतिहासिक कार्य है। यह भी ३ जिल्दों में है और सातवीं जिल्द में अनुक्रमणी है (लग्नदन, १८७०-१८९०)। सिंधामी राजवंश की दो अद्भुत रानियों के द्वारा सन् १९२५ में १० जिल्दों में जातक का सिंधामी लिपि में सुन्दर संस्करण प्रकाशित किया जा चुका है। सिंहली लिपि में हेवाचितरण निधि को को और से प्रकाशित संस्करण बैशानिक सम्पादन-कला का एक सन्दर नमूना है। 'जातक' के अनेक बरमी संस्करण भी उपलब्ध हैं। यह खेद है कि नागरी लिपि में अभी जातक का कोई संस्करण नहीं निकला। अर्योजी में तथा जन्म अनेक यूरोपीय भाषाओं में तो 'जातक' पर प्रभृत विवेचनात्मक साहित्य भी लिखा गया है। इसके अतिषय परिचय के लिए देखिये, चिन्टरनित्य, इडियन लिटरेचर, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ११६, पद-संकेत ३, तथा एन्साइक्लोपेडिया ऑफ रिलिजन एण्ड इंडियन, जिल्द सातवी, पृष्ठ ४९१ से आगे उही का जातक सम्बन्धी विवरण; रायस डेविड्स : बुद्धिस्त इंडिया, पृष्ठ १८९; गायगर: पालि लिटरेचर एंड लेखेज, पृष्ठ ३०, पद-संकेत २ एवं ३; लाहौ : पालि लिटरेचर, जिल्द पहली, पृष्ठ २७६-७७, यादि, आदि

ने किया है। पालि मुद्रों में हम अनेक बार पढ़ते हैं "सम्बोधि प्राप्त होने से पहले, बृद्ध न होने के समय, जब में बोधिसत्त्व ही था" १ आदि। अतः बोधिसत्त्व से स्पष्ट तात्पर्य ज्ञान, सत्य, दया आदि का अभ्यास करने वाले उस माध्यक से हैं, जिसका आगे चलकर बृद्ध होना निश्चित है। भगवान् बृद्ध भी न केवल अपने अनेक पूर्व जन्मों में भी बोधिसत्त्व की अवस्था से पूर्व बोधिसत्त्व रहे थे, बल्कि अपने अनेक पूर्व जन्मों में भी बोधिसत्त्व की चर्चा का उन्होंने पालन किया था। 'जातक' की अवधारणे भगवान् बृद्ध के इन विभिन्न पूर्व-जन्मों से, जब कि वे 'बोधिसत्त्व' रहे थे, सम्बन्धित हैं। किसी-किसी कहानी में वे प्रधान पात्र के रूप में चित्रित हैं। कहानी के ले स्वयं नायक हैं। कहीं-कहीं उनका स्थान एक साधारण पात्र के रूप में गोप्य है और कहीं कहीं वे एक दर्शक के रूप में भी चित्रित किये गए हैं। प्रायः प्रत्येक कहानी का आरम्भ इस प्रकार होता है "एक समय (जब ब्रह्मदत्त के बाराणसी में राज्य करते समय) बोधिसत्त्व कुरुञ्ज मूर्ग की योनि में उत्पन्न हुए" २ अथवा ".... मिन्दु पात्र के खोहों के कुल में उत्पन्न हुए" ३ अथवा ".... बोधिसत्त्व गोह की योनि में उत्पन्न हुए" ४ आदि, आदि।

जातकों की निश्चित संख्या कितनी है, इसका निर्णय करना बड़ा कठिन है। लक्षा, चरमा, और सिङ्गाम में प्रचलित परम्परा के अनुसार जातक १५० हैं। यह संख्या मोटे तौर पर ही निश्चित को मई जान पड़ती है। जातक के बत्तेनाम कृप में ५४३ या ५४८ जातक-कहानियाँ पाई जाती हैं। परं यह संख्या भी केवल झपरी है। कई कहानियाँ अल्प रूपान्तर के साथ दो जगह भी पाई जाती हैं या एक दूसरे में समाविष्ट भी कर दी गई हैं, और इसी प्रकार कई जातक-

१. विन्दरनित्य—द्विदिव्यन लिटरेचर, जिल्ड द्विसरी, पृष्ठ ११३, पद-संकेत २

२. भय-भेदव सुत्तन्त (मणिभूम १११४)

३. कुरुञ्जमिष जातक (२१)

४. भोजाजानीष जातक (२३)

५. अभिष्ठ जातक (२७)

६. गोध जातक (३२५)

कथाएँ सुन-पिटक, विनय-पिटक तथा अन्य पाठि ग्रन्थों में तो पाई जाती है, किन्तु 'जातक' के बर्तमान रूप में समृद्धीत नहीं है। अतः जातकों की संख्या में काफी कमी की भी और बृद्धि की भी सम्भावना है। उदाहरणतः, मुनिक जातक (३०) और सालक जातक (२८६) की कथाएँ स्तु एक ही सी हैं, किन्तु केवल मित्र-भित्र नामों से वह दो ब्रग्ह आई हैं। इसके बिपरीत 'मुनिक जातक' नाम के दो जातक होते हुए भी उनकी कथा भिन्न-भिन्न है। कठी-कहीं दो स्वतंत्र जातकों को मिला कर एक नीमरे जातक का निर्माण कर दिया गया है। उदाहरण के लिए, पञ्चपदित जातक (५०८) और दक्षरवस जातक (५१७) ये दोनों जातक महादुर्ममग जातक (५४६) में अन्तर्भूति हैं। जो कथाएँ जातक-कथा के रूप में अन्यत्र पाई जाती है, किन्तु 'जातक' में समृद्धीत नहीं है, उनका भी कुछ उल्लेख कर देना आवश्यक होगा। मञ्जिकम-निकाय का चटिकार सुन्तन (२१४१) एक ऐसी ही जातक-कहानी है, जो 'जातक' में नहीं मिलती। इसी प्रकार दोष-निकाय का महागीविन्द-जातक (२१६) जो स्वयं 'जातक' को निदान-कथा में भी 'महागीविन्द-जातक' के नाम से निविष्ट हुआ है, 'जातक' के अन्दर नहीं पाया जाता। इसी प्रकार धर्मपद्धतिकथा और मिलिन्दपञ्च में भी कुछ ऐसी जातक-कथाएँ उल्लेख की गई हैं, जो 'जातक' में समृद्धीत नहीं हैं।<sup>१</sup> अतः कुल जातक निश्चित रूप में कितने हैं, इसका ठीक निर्णय नहीं हो सकता। जब हम जातकों की संख्या के सम्बन्ध में चिचार करते हैं तो 'जातक' से हमारा तात्पर्य एक विशेष शोधकं बालों कहानी से होता है, जिसमें बोधिसत्त्व के जीवन-सम्बन्धी किसी घटना का वर्णन हो, फिर वाहे उस एक 'जातक' में कितनी ही अवान्तर कथाएँ नहीं न मौथ दो गई हों। यदि कुल कहनियाँ मिनी जार्य तो 'जातक' में करीब तीन हजार कहनियाँ पाई जाती हैं।<sup>२</sup> वास्तव में जातकों का संकलन सुन्त-पिटक और विनय-पिटक के आधार पर किया गया है। सुन्त-पिटक में अनेक ऐसी कथाएँ हैं जिनका उपयोग बहाँ उपरेक्ष देने के लिए किया गया है। किन्तु बोधिसत्त्व का उल्लेख उसमें नहीं है। मह काम बाद में करने के प्रत्येक कहानी को जातक का

१. विन्दरनित्त—इंडियन लिटरेचर, जिल्ड द्वातारी, पृष्ठ ११५, पद-संकेत ४

२. देखिये जातक (प्रथम खंड) पृष्ठ २१ (वस्तुकथा)

रूप दे दिया गया है। तिनिर जातक (३४) और दीवित कोमल जातक (३७१) का निर्माण इसी प्रकार विनय-पिटक के कमश चुल्लबग्ग और महाबग्ग से किया गया है। मणिकंठ जातक (२५६) भी विनय-पिटक पर ही आधारित है। इसी प्रकार दीवनिकाय के कूटदत्त-सूतन्त्र (११८) और महासूदस्त्र सूतन्त्र (२१४) तथा मणिनभनिकाय के मखादेव-सूतन्त्र (२१४३) भी पूरे अध्याय में जातक हैं। कमश से कम १३ जातकों की खोज विद्वानों ने सूत-पिटक और विनय-पिटक में की है।<sup>१</sup> यद्यपि राज-कथा, चोर-कथा, एवं इसी प्रकार की भय, घृड़, प्राम, निगम, नगर, जनपद, स्त्री, यत्पठ, भूत-प्रेत आदि सम्बन्धी कथाओं का 'तिरस्वीन' (अथवे को, अधम) कथाएँ कह कर भिन्न-संघ में हेतुता की दृष्टि से देखा जाता था,<sup>२</sup> हिन्दी उपदेश के लिए कथाओं का उपयोग भिन्न लोग कुछ-कुछ भाषा में करते ही थे। स्वयं भगवान् ने भी उपमाओं के द्वारा वर्षे का उपदेश दिया है। इसी प्रवृत्ति के आधार पर जातक-कथाओं का विकास हुआ है। जन-समाज में प्रचलित कथाओं को भी कहीं-कहीं ले लिया गया है, किन्तु उन्हें एक नया नेतृत्व रूप दे दिया गया है जो बांद्र वर्षे का एक विशेषता है। अतः सभी जातक कथाओं पर बांद्र वर्षे की पूरी छाप है। पूर्वं परम्परा से जाती आती हुई जनध्रुवियों का आधार उनमें हो सकता है। पर उसका सम्पूर्ण दौना बीढ़ भर्मे के नेतृत्व आदर्यों के अनुकूल है। हम पहले देख सकते हैं कि बुद्ध-वचनों का नी अंगों में विभाजन, जिनमें जातक की संख्या नातर्षी है, अल्पतर प्राचीन है।<sup>३</sup> अतः जातक कथाएँ संखीया में पालि साहित्य के महस्तपूर्ण एवं आवश्यक अंग हैं। उसकी संख्या के विषय में अनिदिच्छता विशेषतः उनके समय-समय पर सूत-पिटक और विनय-पिटक तथा अन्य स्रोतों से संकलन के कारण और स्वयं पालि त्रिपिटक के नाता वर्गीकरणों और उनके परस्पर सम्बन्धण के कारण उत्पन्न हुई हैं। चुल्ल-निर्देश में हमें केवल ५०० जातकों का (पञ्च जातकसंतानि) का उल्लेख मिलता

१. विन्दरनिर्ज्ञ—इंडिपन लिटरेचर, जिन्द दूसरी, पृष्ठ ११५, पद-संकेत २

२. बहुजाल-सूत (दोष ११), सामज्जकल-सूत (दोष १२), विनय-पिटक—  
महाबग्ग, आदि, आदि।

३. वेत्तिपे पोछे दूसरे जग्याय में पालि साहित्य के वर्गीकरण का विवेचन।

है।<sup>१</sup> जोनो याची फ-गिनयन ने पौच्छी जातकों के चित्र लका में अंकित हुए देखे थे।<sup>२</sup> डिसीप-तृतीय जातकों ईस्वी पूर्व के भरहुत और सौंची के स्तुपों में कम से कम ८३ या २९ जातकों के चित्र उत्कीर्ण मिले हैं।<sup>३</sup> ये सब तथ्य 'जातक' की प्राचीनता और उसके विकास के सूचक हैं।

रायस डेविड्स का कथन है कि जातक का संकलन और प्रणयन मध्य-देश में प्राचीन जन-कथाओं के आधार पर हुआ।<sup>४</sup> विल्टरमित्र ने भी प्राचीन इसी मत का प्रतिपादन किया है।<sup>५</sup> अधिकांश जातक बृहदालीन हैं। सौंची और भरहुत के स्तुपों के याण-वेष्टनियों पर उनके अनेक दृश्यों का अङ्गुष्ठ होना उनके पूर्व-अशोककालीन होने का पर्याप्त साक्ष प्रदान करता है। 'जातक' के काल और कल्पना के सम्बन्ध में अधिक प्रकाश उनके माहितिहक रूप और विवेचनों के विवेचन से पड़ेगा।

प्रत्येक जातक-कथा पौच्छ भागों में विभक्त है (१) पञ्चुपद्धवत्य् (२) अतीतवत्य् (३) गाथा (४) वेष्याकरण या अत्यवण्णना (५) समोदान। पञ्चुपद्धवत्य् का अर्थ है वर्तमान काल की घटना या कथा। बृद्ध के जीवन काल में जो घटना पड़ी, वह पञ्चुपद्धवत्य् है। उस घटना ने भगवान् को किसी पूर्व जन्म के बृत को बहस का अवसर दिया। यह पूर्व जन्म का बृत ही अतीतवत्य् है। इसी के अनुकूल पञ्चुपद्धवत्य् कहीं-कहीं गढ़ ली गई प्रतीत होती है। पञ्चुपद्धवत्य् के बाद एक या अनेक गाथाएँ आती हैं। गाथाएँ जातक के प्राचीनतम अंश हैं। वास्तव में गाथाएँ ही जातक हैं। पञ्चुपद्धवत्य् आदि पौच्छ भागों से समन्वित जातक तो वास्तव में 'जातकवन्णना' या जातक की अर्थकथा है। गाथाओं के बाद प्रत्येक जातक में वेष्याकरण या अत्यवण्णना आती है। इसमें गाथाओं की व्याख्या और

१. पृष्ठ ८० (स्टोड द्वारा सम्पादित, पालि ईक्सट सोसायटी, १९१८)

२. लेंगो : रिकांड अंव दि डुडिस्ट किंग्स्स, पृष्ठ १०६ (आंक्सफ़र्ड, १८८६)

३. रायस डेविड्स : बृहिस्ट इंडिया, पृष्ठ २०९

४. बृहिस्ट इंडिया, पृष्ठ १७२; २०७-२०८

५. इंडियन लिटरेचर, जिल्ड दूसरी, पृष्ठ ११३-११४; १२१-१२२

उसका अद्वारी होता है। सबसे अन्त में समोचान आता है, जिसमें अतीतवर्त् के पात्रों का बुद्ध के जीवन-काल के पात्रों के साथ सम्बन्ध मिलाया जाता है, यथा “उस समय अटारी पर से शिकार बेलने वाला शिकारी अब का देवदत था। और कुशङ्ग मृग तो मैं था ही”<sup>१</sup> आदि, आदि ।

प्रत्येक जातक के पौच अङ्गों के उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि जातक गच्छ-वच्च मिथित रखताएँ हैं। गाथा (गच्छ) भाग जातक का ग्राहीनाम सभाग माना जाता है। निगिटक के जन्मभूत इस गाथा-भाग को ही मानना अधिक उपयुक्त होगा। शेष मध्य अटठकथा है। परन्तु जातक-कथाओं की गहरति ऐसी है कि मूल को व्याख्या ने अलग कर देने पर कुछ भी समझ में नहीं आ सकता। केवल गाथाएँ कहानी का निर्माण नहीं करती। उनके ऊपर बब बत्तमान और अतीत की घटनाओं का ढाँचा नहाया जाता है तभी कथावर्त् का निर्माण होता है। अतः पूरे जातक में उपर्युक्त पौच अवधियों का होना आवश्यक है, जिसमें गाथा-भाग को छोड़कर शेष सब उसकी व्याख्या है, बाद का जोड़ा हुआ है। फिर भी सुविधा के लिए, और ऐतिहासिक दृष्टि से गलत हँग पर, हम उस सबको ‘जातक’ कह देते हैं। वास्तव में ५४३ जातक-कथाओं के संग्रह को, जो उपर्युक्त पौच अणों से समन्वित है हमें, ‘जातक’ न कहकर ‘जातकट्ठवच्छना’ (जातक के अथं की व्याख्या) ही कहना चाहिए। फौसवाल और काँवल ने जिसका ऋमणि दीपन लिपि में और अंग्रेजी में सम्बादन और असुवाद किया है, या हिन्दी में भगवन्त जानन्द कौसल्यागम ने ‘जातक’ शीर्षक से ३ भागों में (चतुर्थ भाग निकलने वाला है) अनुवाद किया है, वह वास्तव में ‘जातक’ न हो कर जातक की व्याख्या है। जैसा अभी कहा गया, जातक तो मूल रूप में केवल गाथाएँ हैं, शेष भाग उसकी व्याख्या है।

तो फिर गाथा और जातक के शेष भाग का काल-क्रम आदि की दृष्टि से क्या पारस्परिक सम्बन्ध है, वह प्रदन सामने आता है। अटठकथा में गाथा-भाग को ‘अभिसम्बूद्ध गाथा’ या भगवान् बृद्ध द्वारा भाषित गाथाएँ कहा गया है। वे बृद्ध-वचन हैं। अतः वे निगिटक के अंगभूत थीं और उनको वहाँ से संकलित कर उनके ऊपर कथाओं का ढाँचा प्रस्तुत किया गया है। सम्पूर्ण ‘जातक’ ग्रन्थ की

विषय-बस्तु का जिस आधार पर वर्गीकरण हुआ है, उससे भी वही स्पष्ट है कि गांधी-भाग, या जिसे विन्टरनिल्ड आदि विद्वानों ने 'गांधी-जातक'<sup>१</sup> कहा है, वही उसका मूलाधार है। 'जातक' शब्द का वर्गीकरण विषय-बस्तु के आधार पर न होकर गांधीओं की संलग्ना के आधार पर हुआ है। ऐरें-ऐरो गांधीओं के समान वह भी निपातों में विभाजित है। 'जातक' में २२ निपात हैं। पहले निपात में १५० गांधी कथाएँ हैं जिनमें एक ही एक गांधी पाई जाती है। दूसरे निपात में भी १५० जातक-कथाएँ हैं, किन्तु यही प्रत्येक कथा में दो-दो गांधीएँ पाई जाती हैं। इसी प्रकार तीसरे और चौथे निपात में गांधी-निपात कथाएँ हैं और गांधीओं की संलग्न कथाएँ तीन-चौंत और चार-चार हैं। आगे भी तेरहवें निपात तक प्रायः वही कम बढ़ता है। चौदहवें निपात का नाम 'पक्षिण्णक निपात' है। इस निपात में गांधीओं की संलग्न नियमनन्तर १५८ न हो कर विविध है। इनीलिए इसका नाम 'पक्षिण्णक' (प्रकोर्णक) रख दिया गया है। इस निपात में कुछ कथाओं में १० गांधी भी पाई जाती हैं और कुछ में ४३ तक भी। आगे के निपातों में गांधीओं की संलग्न नियमनन्तर बढ़ती गई है। चार्ट्सवें निपात में केवल इस जातक कथाएँ हैं, किन्तु प्रत्येक में गांधीओं की संलग्न सी से भी ऊपर है। अन्तिम जातक (वेस्मन्तर जातक) में तो गांधीओं की संलग्न सात सी से भी ऊपर है।<sup>२</sup> इस सब से यह नियत आसानी से नियमनन्तर है कि जातक-कथाओं की जागार गांधीएँ ही हैं। स्वयं अनेक जातक-कथाओं के 'वेद्याकरण' भाग में 'पालि' और 'अट्टकचारी' के बीच भेद दिखाया गया है, जैसे कि पालि सूतों की अन्य अनेक अट्टकचारी तथा 'विमुद्दिमग्मो' आदि मध्यों में भी।<sup>३</sup> यहाँ तक 'जातक' के वेद्याकरण भाग में सम्बन्ध है, वही 'पालि' का अर्थ त्रिपिटक-गत गांधी ही हो सकता है। गांधी के साध्य से भी गांधी-भाग अधिक प्राचीनता का छोतक है अपेक्षाकृत गणभाग के। फिर भी, जैसा विन्टरनिल्ड ने कहा है, जातक की सम्पूर्ण

१. इंडियन लिटरेचर, जिल्ड दूसरी, पृष्ठ ११८-११९

२. जातक (प्रथम खंड) पृष्ठ २० (वस्तुकथा); देखिये विन्टरनिल्ड: इंडियन लिटरेचर, जिल्ड दूसरी, पृष्ठ ११८-११९ भी।

३. देखिये पहले अध्याय में 'पालि-गांधी-निर्णय' सम्बन्धीय विवेचन।

गावाओं को विपिटक का मूल अंश नहीं माना जा सकता। उनमें भी पूर्वीपर भेद है। स्वयं 'जातक' के बर्गीकरण से ही यह स्पष्ट है। जैसा कि इस दिखाया जा चुका है, चौदहवी निपात में प्रत्येक जातक-कथा की गावाओं को संख्या नियमानुसार १५ न होता रही-कही बहुत अधिक है। इसी प्रकार सत्तरवें निपात में उसकी दो जातक-कथाओं की गावाओं की संख्या सत्तर-सत्तर न ही कर कम है। १२ और १३ है। इस सब से यह नियमित निकाल गया है कि जातक की गावाओं अथवा 'गाया-जातक' की मूल संख्या निपात की संख्या के अनुकूल ही रही होती, और बाद में उसका संबद्धन नियम गया है।<sup>१</sup> अतः कुछ गायाएँ अधिक गावीन हैं और कुछ अपेक्षाकृत कम ग्राहीन हैं। इसी प्रकार गदा-भाग भी कुछ अस्पृश प्राचीनता के लक्षण जिस दृष्टि से वीर कुछ अपेक्षाकृत गवावीन है। चिसी-किसी जातक में गदा और गाया-भाग में साम्य भी नहीं दिखाई पड़ता। और कही-कही शैली में भी बड़ी विभिन्नता है। इस सब से जातक के संकलनात्मक हूप और उसके भाषा-कला की विविधता पर प्रकाश पड़ता है, जिसमें कई रचयिताओं या संकलनकर्ताओं और कई दातात्रियों का योग रहा है।

जातक की गावाओं की ग्राहीनता तो निविवाद ही हो, उसका अधिकांश गदा-भाग भी अस्पृश प्राचीन है। भरहुत और सौनी के स्तूपों की पाण्डाण-नेटनियों पर जो चित्र अक्षित है, वे 'जातक' के गदा-भाग से ही सम्बन्धित हैं। जतः 'जातक' का अधिकांश गदा-भाग और प्राचीन है, तृतीय-द्वितीय शताब्दी ईसी के पूर्व से इसमा लोक प्रिय तो होना ही चाहिए कि उसे शिल्प-कला का धारार बनाया जा सके। अहः सामान्यतः हम 'जातक' को बुद्धकालीन भारतीय समाज और संस्कृत का प्रतीक मान सकते हैं। ही, उसमें कुछ लक्षण और अवस्थाओं के चित्रण प्राचीन-कालीन भारत के भी हैं। यही तक गावाओं को आवश्या और उनके यज्ञार्थ का सम्बन्ध है, वह सम्भवतः जातक का तत्काल से अधिक गवावीन अंश है। इस अंश के लियक आवार्य बृद्धधोग माने जाते हैं। 'गन्धर्वेन' के अनुसार ग्रावामें बृद्धधोग ने

१. विन्दरनित्यः इंडियन लिटरेचर, जिल्ड दूसरी, पृष्ठ ११९

२. वेलिये विन्दरनित्यः इंडियन लिटरेचर, जिल्ड दूसरी, पृष्ठ ११९, पद-संकेत २; पृष्ठ १२२, पद-संकेत २

ही 'जातकट्ठवण्णना' की रचना की।<sup>१</sup> किन्तु यह सन्दर्भ है। रामन डेविडस ने बृद्धोप को 'जातकट्ठवण्णना' का रचयिता या संकलनकर्ता नहीं माना है।<sup>२</sup> स्वयं जातकट्ठकथा के उपोदधात में लेखक ने अपना गतिविधि देते हुए कहा है—“शान्तनित पवित्र बृद्धमित और महिषासक वंश में उत्तर, यासवज्ञ, शूद्रघुड़ि भिजु बृद्धदेव के पहने से ... व्याहरा कर्त्तेना।”<sup>३</sup> महिषासक सम्प्रदाय बहाविहार की परम्परा से भिज एक बृद्ध सम्प्रदाय था। बृद्धोप में जितनी अट्टकथाएँ लिखी हैं, शूद्र बहाविहार वासी भिजबों की उपदेश-विधि पर आधारित (महाविहारवासीन देसनामपनिस्तिं—विसुद्धिमनो) है। अतः जातकट्ठकथा वह लेखक को आत्माये बृद्धोप से मिलाना ठीक नहीं। सम्भवतः यह कोई अन्य सिद्धों भिजु चे, जिनका काल पौज्यवी शताव्दी ईसवी मात्रा जा सकता है। जातक-कथाएँ, जैसा बहुले कहा जा चुका है, भगवान् बृद्ध के पूर्व-जन्मों से सम्बन्धित हैं। बोधिसत्त्व की जर्याओं का उत्तम तर्णन है। अतः वे सभी श्रावण-उपदेशात्मक हैं। परन्तु उनका साहित्यिक रूप भी निष्पत्त हुआ है। उपदेशात्मक होने हुए भी वे पूरे अर्थों में कलात्मक हैं। कुछ जातक-कथाओं का सारांश देकर यही उनकी विषय-वस्तु के रूप को स्पष्ट कर देना आवश्यक होता। 'जातक' के आदि में निदान-कथा (उपोदधात) है, जिसमें भगवान् बृद्ध के पहले के २३ बृद्धों के विवरण के साथ-साथ भगवान् गौतम बृद्ध की जीवनी भी जेतवन-विहार के दान की स्त्रीकृति तथा दीर्घी है। अब हुठ जातकों की कथा बस्तु का विवरण करें। अपणाक्त जातक (१) ज्यापार के लिए जाते हुए दो बनवारों की कथा है। एक देल्लों के हाथ मारा गया, दूसरा बृद्धिमान् होने के कारण उपने पाँच सौ सातियों महित सकुशल बहुलोद आया। कण्ठिन जातक (२३)—कामुकता के कारण एक मृग चिकारी के हाथों मारा गया। मत्तदेव जातक (१)—मिर के शफेद बाल देवत कर राजा मिहासन छोड़ कर बत लका गया। सम्मोद्दामन जातक (३३)

१. पृष्ठ ५९ (जन्मल अंगौव पालि ईवस्ट सोसायटी, १८८६, म प्रकाशित संस्करण)

२. बृद्धिस्त वर्षे स्टोरीज, पृष्ठ ६३ (भूमिका)

३. जातक, प्रथम खण्ड, पृष्ठ १०२ (भदन्त अनन्द कौसल्यायन का अनुवाद)

वैसिये, वहाँ पर्य २३ (वस्तुकथा) भी।

एकमत बटेरों का लिहीमार कुल न विणाड़ सका, परन्तु जब उनमें फूट गड़ गई तो सभी लिहीमार के जाल में फँस गये। तिनिर जातक (३०) — बदर, हाथी और तितिर ने आगम में विचार कर निश्चय किया कि जो ज्येष्ठ हो उसका आदर करना चाहिए। बक जातक (३१) — बगुले ने मछलियों को धोखा दे कर एक एक को ले जाकर भार लाया। अन्त में वह एक कोकड़े के हाथ से मारा गया। कण्ठ जातक (२१) — एक बैठ ने अपनी चुड़िया मां को जिसने उसे गाला या मजबूरी से कमा कर एक हजार कार्यालय ला कर दिये। बेलुक जातक (४३) तपस्वी ने सौप के बच्चे को गाला, जिसने उसे उम कर मार डाला। रोहिणी जातक (४५) रोहिणी नामक दासी ने अपने माता के भिरकी भक्षियाँ हटाने के लिये जाकर माता की मार डाला। वानरित्व जातक (५३) मधरमच्छ अपनी ननी के कहने से बानर का हृदय चाहता था। बानर अपनी चतुरता से बच निकला। कुदाल जातक (३०) कुदाल पंचित कुदाल के मोह में पहुँचः बार मृहस्त्र और प्रवत्तित हुआ। सीलवनामराज जातक (३२) बन में रास्ता भूले हुए एक आदमी की हाथी ने जान बचाई। खरस्सर जातक (३९) गाँव का मुखिया चौरों से मिल कर गाँव लूटवाता था। नामगिरि जातक (१३) 'पालक' नामक विदार्थी एक जड़े नाम की तलाश में बहुत घूमा। अन्त में वह समझ कर कि नाम केवल बुझाने के लिए होता है, वह लौट आया। अकालरात्रि जातक (११९) जसमग दोर मचाने वाला मुर्मि विद्यायियों द्वारा मार डाला गया। विळारवत जातक (१२८) गीदह घर्में बांदोग कर लूहों को लाता था। गोव-जातक (१४१) मोह की विरोधी के माथ मिलता उसके कुल-विनाश का कारण हुई। विरोचन जातक (१४३) गीदह ने शेर की नकल कर के पराक्रम दिखाना चाहा। हाथी ने उसे पौव से रोद कर उस पर लौद कर दी। मृण जातक (१५७) दलदल में फैसे सिह को सियार ने बाहर निकाला। मवकट जातक (१७३) बन्दर तपस्वी का येत्र बना कर आया। आदिक्षपटश्चान जातक (१७५) बन्दर ने सूर्य की पूजा करने का ढोग बनाया। कड़छर जातक (१७८) जन्मभूमि के मोह के कारण कल्पने की जान गई। पिरिदत जातक (१८४) विद्यक के लैंगड़ा होने के कारण योद्धा लैगड़ा कर बलने लगा। सीहबम जातक (१८९) सिह की बाल पहन कर गवा खेत चरता रहा। किन्तु बोलने पर मारा गया। महागिरंग जातक (२४०)

राजा मर गया, किर भी द्वारपाल को भय था कि अस्याचारी राजा यमराज के पास से कहीं लौट न आवे। आरामदूसक जातक (२६८) बन्दरों ने पौधों को उखाड़ कर उसकी जड़े नाप-नाप कर पानी सीचा। कुटिदूसक जातक (३२१) बन्दर ने वये के सदुपदेश को सुन कर उसका घोसला नोच डाला। बावेर जातक (३३९) बावेर राष्ट्र में कौआ सौ काष्ठगिण में और मोर एक हजार काष्ठगिण में बिका। बानर जातक (३४२) मगरमच्छनी ने बन्दर का हृदय-मांस खाना चाहा। संविभेद जात (३४९) गीदड़ ने चुमली कर गिरह और बैल को परस्पर छड़ा दिया, आदि आदि।<sup>१</sup>

इसके विवरण से स्पष्ट है कि जातक-कथाओं का सप्तजन-साहित्य का है। उसमें पशु-गधियों आदि की कथाएँ भी हैं और मनुष्यों की भी। जातकों के कथामनक विविध प्रकार के हैं। विन्दरनित्यन ने मूर्खतः सात भागों में उनका वर्गीकरण किया है<sup>२</sup> (१) व्यावहारिक नीति-सम्बन्धी कथाएँ (२) पशुओं की कथाएँ (३) हास्य और विनोद से पूर्ण कथाएँ (४) रोमांचकारी लभ्यी कथाएँ या उपनिषद (५) नैतिक वर्णन (६) कथन और (७) धार्मिक कथाएँ। वर्णन की शिलिंगी भी भिन्न-भिन्न हैं। विन्दरनित्यन ने इनका वर्गीकरण पाँच भागों में इस प्रकार किया है<sup>३</sup> (१) गणात्मक वर्णन (२) आश्यान, जिसके दो रूप हैं (अ) भेदभावत लम्बे विवरण, जिसका आदि गच्छ में होता है किन्तु बाद में जिसमें गाथाएँ भी पाई जाती हैं (४) किसी विषय पर कथित वचनों का संग्रह और (५) भग्नाकाव्य या संघ काव्य के रूप में वर्णन। बानरिन्द जातक, (१७) विलारवत जातक, (१२८) सीहचम्म जातक (१८९) संसुमारजातक

१. इस विवरण के लिए मैं भद्रन आनन्द कौसल्यान के जातक-जनुवाद के तीनों खंडों की विषय-सूची के लिए हृतक हूँ। वहीं से यह सामग्री संकलित की गई है।

२. हिन्दू आंव दृष्टियन लिटरेचर, जिल्ड दूसरी, पृष्ठ १२५

३. वहीं पृष्ठ १२४

(२०८) और सन्धिभेद जातक (३५९) आदि जातक-कथाएँ पशु-कथाएँ हैं। ये कथाएँ अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। विशेषतः इन्हीं कथाओं का गमन विदेशों में हुआ है। अज्ञान का पृष्ठ भी यहीं अपने काव्यालम्बक रूप में दृष्टिगोचर होता है। प्रायः पश्चात्रों को तुलना में मनुष्यों को हीन दिखाया गया है। एक विशेष बात यह है कि अज्ञान किसी व्यक्ति पर न कर सम्पूर्ण जाति पर किया गया है। एक बन्दर कुछ दिनों के लिए मनुष्यों के बीच आकर रहा। बाद में अपने साथियों के पास जाता है। साथी पूछते हैं—

"आप मनुष्यों के समाज में रहे हैं। उनका वर्ताव जानते हैं। हमें भी कहें। हम उसे सुनना चाहते हैं।"

"मनुष्यों की करती मुझ से भत पूछो।"

"कहें, हम सुनना चाहते हैं।"

बन्दर ने कहना शुरू किया,

"हिरण्य मेरा ! सोना मेरा ! यहीं गात-दिन ते चिलताते हैं। घर में दो जने रहते हैं। एक को मूळ नहीं होती। उसके लम्बे केवा होते हैं, लेकी होती है और कानों में छोद होते हैं। उसे बहुत बन से लारीदा जाता है। वह सब जनों को कष्ट देता है।"

बन्दर कह ही रहा था कि उसके साथियों ने कान बन्द कर लिए "भत बहे, भत कहें"। इस प्रकार के मधुर और अनुठ अज्ञान के जनको विव जातक में भिलेंगे। विशेषतः मनुष्य के अहंकार के मिथ्यापत्र के सम्बन्ध में मर्मसंग्रही अज्ञान महापिमल जातक (२५०) में, ब्राह्मणों की लोभ-वृत्ति के सम्बन्ध में सिगाल जातक (११३) में, एक अति बुद्धिमान् तपस्वी के सम्बन्ध में अवारिय जातक (३३६) में हैं। सबदाठ नामक शुगाल सम्बन्धी हास्य और विनोद भी बड़ा सधुर है (सबदाठ जातक २५१) और इसी प्रकार मक्की हृदाने के प्रयत्न में दासी का मुखल से अपनी माता को मार देना (रोहिणी जातक ३४५) और बन्दरों का योद्धों को उत्ताइकर पानी खेना भी (आरामदूनक

१. गरहित-जातक (२१९) भदन्त आनन्द कौसल्यायन का अनुवाद, जातक (हिंदीय संदर्भ), पृष्ठ ३६२-६३

जातक-४६) मधुर विनोद से भरे हुए हैं। इसी प्रकार शेषांच के रूप में महाउम्मण्ड जातक (५४६) आदि; नाटकीय आन्ध्रान के रूप में छद्मन्त जातक (५१६) आदि, एक ही विषय पर कहे हुए कवयों के सकलन के रूप में कुणाल जातक (५३६) आदि, संवित्त नाटक के रूप में उम्मदत्ती जातक (५२७) आदि, नौति-परक कवयों के रूप में गुण जातक (१५७) आदि, पुरे महाकाव्य के रूप में वेस्मन्तर जातक (५५३) आदि एवं ऐतिहासिक संवादों के रूप में ५३० और ५४४ संख्याओं के जातक आदि, अनेक प्रकार के वर्णनात्मक आन्ध्रान 'जातक' में भरे पड़े हैं, जिनकी साहित्यिक विशेषताओं का उल्लेख यहाँ अन्यतत्त्व संधित रूप से भी नहीं किया जा सकता।

बुद्धकालीन भारत के समाज, धर्म, राजनीति, भूगोल, लौकिक विश्वास, अधिक एवं व्यापारिक अवस्था एवं सर्वविषय जीवन को पूरी सामग्री हमें 'जातक' में मिलती है। 'जातक' के बाल कवयों का संघर्ष भर नहीं है। बोढ़ साहित्य में तो उसका स्थान सर्वभास्य है ही। स्वविरवाद के समान महावान में भी उसकी प्रभृत महत्ता है, यद्यपि उसके रूप के सम्बन्ध में कुछ थोड़ा-बहुत परिवर्तन है। बोढ़ साहित्य के समान समय भारतीय साहित्य में और इतना ही नहीं समझ विवेच-साहित्य में 'जातक' का एक महत्वपूर्ण स्थान है। इसी प्रकार भारतीय सभ्यता के एक युग का ही वह निदानों का नहीं है बल्कि उसके प्रसार की एक अद्भुत गाथा भी 'जातक' में समाई हुई है। विवेचतः भारतीय इतिहास में 'जातक' के स्थान को कोई दूसरा यस्त नहीं ले सकता। बुद्धकालीन भारत के सामाजिक आधिक, राजनीतिक जीवन को जानने के लिए 'जातक' एक उत्तम साधन है। जूँकि उसकी सूचना प्रामाणिक रूप में ही दी गई है, इसलिए वह और भी विधिक प्रामाणिक है और महत्वपूर्ण भी। 'जातक' के आधार पर यहाँ बुद्धकालीन भारत वा संवित्ततम् विवरण भी नहीं दिया जा सकता। जातक की निदान-कथा में हम तत्कालीन भारतीय भूगोल-सम्बन्धी महत्वपूर्ण सूचना पाते हैं। वही कहा गया है कि जम्बूदीप (भारतवर्ष) दस हजार योजना बड़ा

१. देखिये डॉ चिमलाचरण लाहा के प्रन्थ "Geography of Early Buddhism" से डॉ एक० डल्लू० थामस का प्राकृतवर्णन।

है। मध्य-देश की सीमाओं का उल्लेख वहाँ इस प्रकार किया गया है—“मध्य-देश की पूर्वे दिशा में कर्वण्डा नामक कस्बा है, उसके बाद वहें शाल (के बन) हैं और, फिर आगे सीमान्त (प्रत्यन्त) देश। पूर्व-विभाग में सललबती नामक नदी है उसके आगे सीमान्त देश। इश्किंग दिशा में नेतकणिक नामक कस्बा है, उसके बाद सीमान्त देश। पश्चिम दिशा में धून नामक ब्रह्मण नाम है, उसके बाद सीमान्त देश। उत्तर दिशा में उजोरखबज नामक पर्वत है, उसके बाद सीमान्त देश।”<sup>१</sup> यह तर्जन यही विनष्ट-पिटक से किया गया है और बुद्ध-काण्डीन मध्य-देश की सीमाओं का प्रामाणिक परिचयक माना जाता है। जातक के इसी भाग में नेरञ्जरा, अनोमा आदि नदियों, पाण्डव पर्वत, वैभारगिरि, गयासीस आदि पर्वतों, उम्बेला, कपिलवस्तु, वाराणसी, राजमृह, लुम्बिनी, वैशाली, आवस्ती आदि नगरों और स्थानों, एवं उत्कल देश (उडीसा) का तबा विष्टवत (लटिठ वन) आदि बनों का उल्लेख मिलता है। सम्पूर्ण जातक में इस सम्बन्धी जितनी सामग्री भरी वर्णी है, उसका ठीक अनुमान ही नहीं लगाया जा सकता। सम्पूर्ण कोशल और गणव का तो उसके घारों, नगरों और पर्वतों के सहित वह पूरा वर्णन उपस्थित करता है। सोलह महाजनपदों (जिनका नामोल्लेख अंग-तत्त्व-निकाय में मिलता है) का विस्तृत विवरण हमें असम्पदान जातक में मिलता है। महागृहसीम जातक (५३३) में हमें कुरु-देश के विस्तार के सम्बन्ध में महस्तपूर्ण सूचना मिलती है। इसी प्रकार बूमाकारि जातक (४१३) में कहा गया है कि युधिष्ठिर मोग के राजा का उस समय वहाँ राज्य था। कुरु-देश की राजधानी इन्द्रप्रस्थ का विस्तार ३०० योजन (त्रियोजनसते कुरुरद्दे) महासूत-सीम जातक (५३३) में दिया गया है। धनञ्जय, कोरव्य और सूतसीम आदि कुरु-राजाओं के नाम कुरुतेम्म जातक (२७६), यूमकारि जातक (४१३), सम्बद्ध जातक (५१५) और विषुर पहिल जातक (५४५) में आते हैं। उत्तर पंचाश के लिए कुरु और पंचाश बड़ों में भगवा चलता रहा, इसकी सूचना हम चमोद्य जातक (५०६) तथा अन्य अनेक जातकों में पाते हैं। कभी वह कुरु-राष्ट्र में सम्मिलित हो जाता था (सामनस्स-जातक, ५०५)<sup>२</sup> और कभी कम्पिल-

१. जातक (प्रथम खंड) पृष्ठ ६४ (भद्रत आनन्द कौसल्यायन का अनुवाद)

२. मिलाइये महाभारत ११३८ भी।

राष्ट्र में भी, जिसका साध्य बहुदत जातक (३२३), जयहिंस जातक (५१३) और मण्डितिन्दु जातक (५२०) में विद्यमान है।<sup>१</sup> पंचाल-राज उल्लेख निर्मि का ममकालिक था, इसकी सूचना हमें ४०८ संख्या के जातक से मिलती है। अस्तक (अस्तक) राष्ट्र की राजधानी पोतन मा पोतलि का उल्लेख हमें चूल्ह-कलिङ्ग जातक (३०१) में मिलता है। भिविला के विस्तार का वर्णन सुरुचि जातक और गन्धार जातक (४०६) में है। महाजनक जातक (५३९) में भिविला का बड़ा सुन्दर वर्णन उपलब्ध होता है, जिसकी तुलना महाभारत ३, २०६, ६-५ से को जा सकती है। सागल नगर का वर्णन कलिङ्गबोधिजातक (४७९) और कुश जातक (५३१) में है। काशी राज्य के विस्तार का वर्णन धर्मविद्यह जातक (३९१) में है। उसकी राजधानी वाराणसी के केन्द्रमती, सुरुच्चन, सुदस्सन, बहुवहन, पृष्ठवर्ती, रम्मनगर और मोलिनी आदि नाम थे, ऐसा साध्य अनेक जातकों में मिलता है।<sup>२</sup> तण्डुलमालि जातक (५) में वाराणसी के प्राकार का वर्णन है। तेलपत जातक (९६) और सुसीम जातक (१६३) में वाराणसी और तद्यागिला की दूरी १२० पोजल बताई गई है। कुम्भकार जातक (४०८) में गन्धार के राजा नग्निया नग्नितृजा वर्णन है। कुरु जातक (५३१) में मल्लराष्ट्र और उसकी राजधानी कुमारवती या कुमिनारा का वर्णन है। चम्पेय जातक (५०६) में अज्ञ और सगव के संघर्ष का वर्णन है। बस्स राज्य और उसके आधीन भग्न-राज्य की सूचना योनमाल्य जातक (३१२) में मिलती है। इन्द्रिय जातक में सुरट्ठ, अवन्नी, दक्षिणापथ, दण्डकद्वय, कुम्भवति नगर आदि का वर्णन है। विम्बिसार सम्बन्धी महत्वपूर्ण सूचना जातकों में भरी पड़ी है। महाकोशल की राजकुमारी कोसलादेवी के साथ उसके विचाह का वर्णन और काशी गाँव की प्राप्ति का उल्लेख हरितमालक जातक (२३९) और बड़किसूकर जातक (२८३) आदि जातकों में है। सगव और कोसल के संघर्षों का और अन्त में उनकी एकता का उल्लेख बड़किसूकर जातक, कुम्भासारिष्ठ जातक, तच्छसूकर जातक और भहसाल

१. मिलाइये कुम्भकार जातक (४०८) भी

२. वैलिये, डायलांग्म आंव दि बुढ़, तृतीय भाग, पृष्ठ ७३; कारमाइकेल लेखन्ते, (१९१८), पृष्ठ, ५०-५१.

जातक आदि अनेक जातकों में है। इस प्रकार बृहुकालीन राजाओं, राज्यों, प्रदेशों, जातियों, चारों, नगरों आदि का पूरा विवरण हमें जानकों में मिलता है।<sup>१</sup> तिलमुट्ठि जातक (२५२) में हमें बृहुकालीन शिशा, विदेषतः उच्च शिशा, का एक उत्तम चित्र मिलता है। सखपाल जातक (५२४) और दरीमुख जातक (३३८) में मगव के राजकुमारों की तक्षशिला में शिशा का चित्र है। शिशा के चित्रान्, पाठ्य-क्रम, अध्ययन-विधय उनके आधारिक और मैदानिक पक्ष, निवास, भोजन, नियन्त्रण आदि के विषय में पूरी जानकारी हमें जातकों में मिलती है। बनारस, राजगृह, मिथिला, उज्जैनी, श्रावस्ती, कीशाम्बी, तक्षशिला आदि प्रनिहं नगरों को मिलाने वाले मार्गों का तथा स्थानीय व्यापार का पूरा विवरण हमें जातकों में मिलता है। काषी से चेदि जाने वाली महक का उल्लेख बृद्धभ जातक (४८) में है। क्या क्या नाना पेड़ों उस समय लोगों में प्रचलित थे, कला और दस्तकारी की क्या अवस्था थी तथा अवस्थाय किस प्रकार होता था, इसके अनेक चित्र हमें जातकों में मिलते हैं। बाबेश जातक (३३९) और गुरुभ्यु जातक (३६०) से हमें पता लगता है कि भारतीय व्यापार निवेदों से भी होता था और भारतीय व्यापारी सूखण्ड-भूमि (बरमा ने मलाया तक का प्रदेश) तक व्यापार के लिए जाते थे। भरतलङ्घ उन समय एक प्रनिहं बन्दरगाह था। जल के मार्गों का भी जातकों में स्पष्ट उल्लेख है। लोकिक विश्वासों आदि के बारे में देवधर्म जातक (६) और नल-पान जातक (२०) आदि में; समाज में स्त्रियों के स्थान के सम्बन्ध में अण्डभूत जातक (६२) आदि में; दासों आदि की अवस्था के सम्बन्ध में कटाहक जातक (१२५) आदि में; सुरापान आदि के सम्बन्ध में सुरापान जातक (८) आदि में; यज्ञ में जीव-हिसा के सम्बन्ध में दुम्पेष जातक (५०) आदि में; आपारिक संघों

१. डॉ चिमलाचरण लाहा का "Geography of Early Buddhism" बृहुकालीन भगोल पर एक उत्तम प्रन्थ है, जिसमें जातक के अलावा त्रिपिटक के अन्य अंशों से भी सामग्री संकलित की गई है। डॉ लाहा के 'Some Kshatriya Tribes of Ancient India', तथा 'Ancient Indian Tribes' आदि पालि त्रिपिटक पर आधारित प्रन्थ बृहुकालीन भारत के अनेक पक्षों का प्रामाणिक विवरण उपस्थित करते हैं।

और शाकुओं के भव्य आदि के सम्बन्ध में कुररप्प जातक ( २६५ ) और तत्कालीन पिल्लकला आदि के विषय में महाउत्तमग्र जातक ( ५४६ ) आदि में प्रभृत मामधी भरी पड़ी है, जिसका यहाँ वर्णकरण करना अत्यन्त कठिन है । नवमुच विपिटक में यदि ऐतिहासिक, भौगोलिक, आर्थिक, सामाजिक आदि सूचनाओं के लिए यदि किसी ग्रन्थ का 'महत्व सब से अधिक है' तो 'जातक' का । रायम डेविड्स ने 'बुद्धिस्ट इन्डिया' में बुद्धकालीन भारत का चित्र उपस्थित किया है । उसमें उन्होंने एक अध्याय (भारहवाँ अध्याय) 'जातक' के विवेचन के लिए दिया है । बुद्धकालीन राजवंशों, विभिन्न जातियों, जन-तन्त्रों, भौगोलिक स्थानों, ग्रामों, नगरों, नदियों, पर्वतों, मनुष्यों के पेतों आदि के सम्बन्ध में जानकारी न जो महत्वपूर्ण उद्घरण वही दिये गये हैं, यदि उनका संज्ञितात्म विवरण भी दिया जाय तो ग्रन्तुत परिच्छेदांश जातक का विवेचन न होकर बुद्धकालीन भारत का ही विवरण हो जायगा । फिर वही अन्त नहीं है । बुद्धकालीन भारत के अनेक पक्षों को लेकर विद्वानों में अलग-अलग महाप्रबन्ध लिखे हैं और उनमें प्रायः जातक का ही जाग्रत्य अधिकतर लिया गया है । रायम डेविड्स के उपर्युक्त ग्रन्थ के अलावा ता० विमलाचरण लाहा का बुद्धकालीन भूगोल सम्बन्धी महत्वपूर्ण ग्रन्थ है ।<sup>१</sup> ता० फिर ता० बुद्धकालीन सामाजिक जनस्था पर प्रसिद्ध ग्रन्थ है ।<sup>२</sup> ता० राधाकृष्णन मृकर्जी ने 'इंडियन विपिट' में भारतीय व्यापार का विस्तृत विवेचन लिया है और एक जन्य प्रसिद्ध ग्रन्थ में वैदिक और बौद्धप्रमीन धिक्षा पद्धति का भी ।<sup>३</sup> इसी प्रकार आर्थिक और व्यावसायिक परिस्थितियों पर भी महत्वपूर्ण ग्रन्थ और प्रबन्ध है ।<sup>४</sup> वीसों की सूचा इसी प्रकार गिनाई जा सकती

१. Geography of Early Buddhism, केगन पाल, लन्दन १९६२; देखिये उनका India as Described in Early Texts of Jainism and Buddhism भी ।

२. मल ग्रन्थ जर्नल में है । अपेक्षी में "The Social Organization in North-East India in Buddha's Time" शीर्षक से ता० जन्त्र ने अनुवाद किया है । कलकत्ता, १९२०

३. Ancient Indian Education, Brahmanical and Buddhist, Macmillan.

४. उदाहरणार्थ ओमती रायम डेविड्स: Notes on Early Economic Conditions in Northern India, जर्नल और रायल एग्रियार्टिक

है। यदि पालि साहित्य के इतिहास का लेखक इन अनेक ग्रन्थों, महाग्रन्थों में में उल्लिखित जातक-सामग्री का उल्लेख अपने जातक-परिचय में कराना चाहे तो यह उसकी वृष्टिता ही होगी। यह अनेक महाग्रन्थों का विषय है। यदि वह इसके निर्दर्शन का प्रयत्न करेगा तो महासमृद्ध में अपने को गिरा देगा। उसका मुश्यप्राप्त हो जायगा।

यही बात वास्तव में जातक के भारतीय साहित्य और विदेशी साहित्य पर प्रभाव की है। पहले बौद्ध साहित्य और कला में उसके स्थान और महत्व को लें। जैसा पहले कहा जा चुका है, बौद्ध धर्म के सभी सम्प्रदायों में 'जातक' का महत्व मूल्यात्मिकता है। महायान और हीनयान को वह एक प्रकार से जोड़ने वाली कड़ी है, क्योंकि महायात का बोधिसत्त्व-आदर्श यही अपने बीज-सूप में विद्यमान है। हम पहले देख चुके हैं कि दूसरी-तीसरी शताब्दी ईसवी पूर्व के साचों और भरहुत के स्तूपों में जातक के अनेक दृश्य अंकित हैं। 'मिलिन्डपञ्चङ्गो' में अनेक जातक-कलाओं को उद्धृत किया गया है। पौत्रबो शताब्दी में लका में उसके ५,००० दृश्य अंकित किये जा चुके थे। अजन्ता की चित्रकारी में भी महिम जातक (२३८) अंकित है ही। बोध-गया में भी उसके अनेक चित्र अंकित हैं। इतना ही नहीं जावा के बोरोबुदुर स्तूप (९वीं शताब्दी ईसवी) में, बग्गा के पेगन स्थित पेगोदाओं में (१३वीं शताब्दी ईसवी) और मिजाम के सबोदय नामक प्राचीन नगर (१४वीं शताब्दी) में जातक के अनेक दृश्य चित्रित मिले हैं। अतः जातक का महत्व भारत में ही नहीं, बहुत भारत में भी, स्थानिक बौद्ध धर्म में ही नहीं, बौद्ध धर्म के अन्य अनेक के लियों में भी, स्थापित है।

अब भारतीय साहित्य में जातकों के महत्व और स्थान को लें। यदि काल-क्रम की दृष्टि से देखें तो वैदिक साहित्य की शून्य को कथा, यम-यमों संवाद, पुरुरवा-उर्वशी संवाद आदि कथानक ही बृद्ध-पूर्व काल के ही सकते हैं। छान्दोग्य और बृहदारण्यक आदि कुछ उपनिषदों की आस्थायिकाएँ भी बृद्ध-पूर्व काल की मानी जा सकती हैं, और इसी प्रकार ऐतरेय और यत्यपि ब्राह्मण के कुछ

आश्वान भी। पर इनका भी जातकों से और सामान्यतः पालि साहित्य से घनिष्ठ सम्बन्ध है। हम देख चुके हैं कि तेविज्जन-सूत (वीघ ११३) में अट्रुक, वामक, वामदेव, विश्वामित्र, यमदग्नि, अङ्गिरा, भरदाज, वशिष्ठ, कश्यप और भूम् इन दस मन्त्रकारों के नाम के साथ-साथ ऐसरेय ब्राह्मण, तैत्तिरीय ब्राह्मण, छन्दोग ब्राह्मण और छन्दावा ब्राह्मण का भी उल्लेख हुआ है।<sup>१</sup> इसी प्रकार हम यह भी देख चुके हैं कि मजिभम-निकाय के अस्सुलायण-मूलन्त (२१५।३) के आश्वलायन ब्राह्मण को प्रश्न-उपनिषद् के आश्वलायन से मिलाया गया है। मजिभम-निकाय के आश्वलायन श्रावस्ती-निवासी हैं और वेद-वेदाङ्ग में पार-ज्ञत (तिष्ण वेदानं पारम् सनिषष्टु-केटभान्) हैं, इसी प्रकार प्रश्न-उपनिषद् के आश्वलायन भी वेद-वेदाङ्ग के महाप्रज्ञत हैं और कोसल्य (कोसल-निवासी) हैं।<sup>२</sup> जातकों में भी वैदिक साहित्य के साथ निकट समर्पक के हम असंक्षण पाते हैं। उदालक जातक (४८७) में उदालक के नज़िला जाने और वहाँ एक लोकविश्वुत आचार्य की सूचना पाने का उल्लेख है। इसी प्रकार सेतु-केतु जातक (३७३) में उदालक के गुव देवतुकेतु वा कलाओं की शिक्षा प्राप्त करने के लिए तज़िला जाने का उल्लेख है। शतपथ ब्राह्मण (११. ४. १-१) में उदालक को हम उत्तरापथ में भ्रमण करते हुए देखते हैं। अतः इससे यह निष्कर्ष निकालना असंगत नहीं है कि जातकों के उदालक और देवतुकेतु ब्राह्मण-ग्रन्थों और उपनिषदों के इन नामों के अविक्षियों से भिन्न नहीं हैं।<sup>३</sup> जर्मन विद्वान् लूडसन ने सेतुकेतु जातक (३७३) में आनं वाली गावाओं को 'वैदिक आश्वान और महाकाव्य-यगीन काव्य को मिलाने वाली कही' कहा है,<sup>४</sup> जो समुचित

१. वेशिये पीछे दीप-निकाय को विषय-वस्तु का विवेचन।

२. हेमचन्द्र राय चौधरी : पोलिटिकल हिस्ट्री ऑफ एन्डियन्स इंडिया, पृष्ठ २१ (तृतीय संस्करण, कलकत्ता, १९३२)

३. हेमचन्द्र राय चौधरी : पोलिटिकल हिस्ट्री ऑफ एन्डियन्स इंडिया, पृष्ठ ४१ (तृतीय संस्करण, कलकत्ता, १९३२); विन्टरनित्यः इंडियन लिटरेचर, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १२३

४. "connecting link between the vedic epic आश्वान and the epic poetry" विन्टरनित्य-हृत इंडियन लिटरेचर, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १२३, पद-संकेत २ में उद्धृत।

ही है। रामायण और महाभारत के साथ जातक की तुलना करते समय हमें एक बात का बड़ा ध्यान रखना चाहिए। वह यह है कि इन दोनों सन्घों के सभी अथ बृद्ध-पुरुष के नहीं हैं। रामायण के बत्तमात्र समय में २४००० श्लोक गाये जाते हैं। जनश्रुति भी है और स्वयं रामायण में कहा भी गया है 'जन्मुविष्य सहस्राणि इलोकानाम् उक्तवान् ऋषिः' (१. ४. २)। जिन्हें बौद्ध महाविभाषण-कास्त्र में सिद्ध है कि द्वितीय शताब्दी ईमवी में भी रामायण में केवल १२००० श्लोक थे।<sup>१</sup> रामायण २-३९०-९४ में 'बृद्ध तथागत' का उल्लेख आया है।<sup>२</sup> इसी प्रकार शक, यज्ञ आदि के साथ संघर्ष (शकान् यज्ञस्मितितान्-१-५८-८१) वा वर्णन है। विश्विकन्धान्काण्ड (३. ४३-११-१२) में सूर्योत्त के द्वारा कुरु, मह और छिमालय के बीच में यज्ञों और शकों के देश और नगरों को स्पृह वताया गया है। इससे सिद्ध है कि जिस समय ये अंग लिखे गये, शीक और सिद्धियन् लोग पंजाब के कुछ प्रदेशों पर आगता आधिपत्य जमा चुके थे। अतः रामायण के काफी अंश महाराज विविसार या बृद्ध के काल के बाद लिखे गए।<sup>३</sup> महाभारत में इसी प्रकार एहुको (बौद्ध मन्दिरों) का स्पाट उल्लेख है।<sup>४</sup> बौद्ध विशेषण जानुसंहाराजिक भी बही आया है (१२-३३९-१०)। रोमक (रोमन) लोगों का भी वर्णन (२-५१-१५) है। इसी प्रकार सिद्धियन् और शोक आदि लोगों का भी (३-१८८-३५)। आदि पर्व (१-६७-१३-१४) में महाद्यन अशोक को 'महामूर' कहा गया है और 'महावीरोऽपशोजितः' के काम में उत्तरी प्रशंसा की गई है। शान्ति पर्व में विद्यागृष्ण कौटिल्य (द्वितीय शताब्दी ईमवी पूर्व) के शिष्य कामन्दक का भी अर्थविचार के आचार्य के रूप में उल्लेख है। इस प्रकार अनेक प्रमाणों के आधार पर सिद्ध है कि महाभारत के बत्तमान सम-

१. हेमचन्द्र राय चौधरी : पोलिटिकल हिस्ट्री ऑफ एन्डियन इंडिया, पृष्ठ ३  
(तृतीय संस्करण, १९३२)

२. उद्धरण के लिये देखिये जातक (प्रथम लंड) पृष्ठ २४ (बस्तुकथा) पद-संकेत  
३ (भद्रन जानन्द को सत्यायन का अनुवाद)

३. हेमचन्द्र राय चौधरी : पोलिटिकल हिस्ट्री ऑफ एन्डियन इंडिया, पृष्ठ ३  
(तृतीय संस्करण १९३२)

४. देखिये बही, पृष्ठ ४-५

का काफी अंश बढ़, जशोक और कोटिल्य विष्णुगुप्त के बाद के युग का है।<sup>१</sup> जातक की अनेक गाथाओं और रामायण के श्लोकों में अद्भुत नमानता है।<sup>२</sup> दसरव जातक (४६१) और देवधर्म जातक (६) में हमें प्राप्त राम-कथा की पूरी रूपरेखा मिलती है। जयद्विस जातक (५१३) में राम का दण्डकारण जाना दिखाया गया है। इसी प्रकार साम जातक (५४०) का सदृशता रामायण २, ६३-२१ से है और विन्टरनितज्ज के मत में जातक का वर्णन अधिक सरल और प्रारम्भिक है।<sup>३</sup> वेस्मन्तर जातक (५४७) के प्रकृति-वर्णन का साम्य इसी प्रकार वाल्मीकि के प्रकृति-वर्णन से है और इस जातक की कथा के साथ राम की कथा में भी काफी सदृशता है।<sup>४</sup> महाभारत के साथ जातक की तुलना अनेक विद्वानों ने की है। उनके निष्कर्षों को यहाँ संक्षिप्ततम् रूप में भी रखना बास्तव में बड़ा कठिन है। सब से बड़ी बात यह है कि महाबनक जातक (५३१) के जनक उपनिषदों और महाभारत के ही व्याख्यानों जनक है।<sup>५</sup> इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। मिथिला के प्रासादों को जलते देखकर जनक ने कहा था 'मिथिलायां प्रदोषात्यामा न मे दद्यति किचन' (महाभारत १२-१७; १८-१९; २१९-५०)। ठीक उनका यही कथन हमें महाबनक जातक (५३१) में भी मिलता है तथा ४०८ और ५२९ संहिताओं के जातकों में भी। अतः दोनों घटकित एक हैं, इसमें तनिक भी सन्देह का अवकाश नहीं। इसी प्रकार कृष्ण शङ्ख (पाणि इसिसिङ्ग) की पूरी कथा नलिनिका जातक (५२६) में है। युधिष्ठिर (युधिष्ठिर) और विदुर (विधुर) का संवाद जातक-संहिता ४९५ में है। बृहाप्त

१. अधिक प्रभाणों के लिए देखिये, वहीं, पृष्ठ ४-५

२. कुछ उदरणों के लिए देखिये जातक (प्रथम खंड) पृष्ठ २५ पद-संकेत १

(भद्रन्त आनन्द कीसल्लायन का अनुवाद)

३. इंडियन लिटरेचर, जिल्ड दूसरी, पृष्ठ १४७, पद-संकेत ४

४. विदरनितज्ज : इंडियन लिटरेचर, जिल्ड दूसरी, पृष्ठ १५२

५. रायस डेविड्स : ब्रुद्धिस्ट इंडिया, पृष्ठ २६, विन्टरनितज्ज : इंडियन लिटरेचर,

जिल्ड दूसरी, पृष्ठ १४६; हेमचन्द्र राय चौधरी : पोलिटिकल हिस्ट्री ऑफ एन्डियन इंडिया, पृष्ठ ३६-३७ (तृतीय संस्करण, १९३२), आदि. आदि

जातक (५३६) में हज़ा और द्वीपदी को कथा है। इसी प्रकार घट जातक (३५५) में कृष्ण द्वारा कर्त्तव्य और दारका बनाने का पूरा वर्णन है। महाकथ्य जातक (४६९) निमि जातक (५४१) और महातारदक्षसंप्र जातक (५४४) में राजा उचीनर और उसके पुत्र शिवि का वर्णन है। सिविजातक (५११) में भी राजा शिवि की दान-पारमिता का वर्णन है। अतः कहानी मूलतः चोद है, इसमें सन्देह नहीं। महाभारत में १०० ब्रह्मदत्तों का उल्लेख है (२.८.२३)।<sup>१</sup> सम्भवतः ब्रह्मदत्त किसी एक राजा का नाम न होकर राजाओं का नामान्य विवेषण था, जिसे १०० राजाओं ने धारण किया। दुम्मेष जातक (५०) में भी राजा और उसके कुमार दोनों का नाम ब्रह्मदत्त बताया गया है। इसी प्रकार गगमाल जातक (५२१) में कहा गया है कि ब्रह्मदत्त कुल का नाम है। सूरीम जातक (५११) कुम्मासप्तिं जातक (५१५) बद्धान जातक (५२५) लोमससक्सम्प्र जातक (५३३) आदि जातकों की भी यही स्थिति है। अतः जातकों में आपे हुए ब्रह्मदत्त केवल 'एक समय' के पर्याय नहीं हैं, ऐसा कहा जा सकता है। उनमें कुछ न कुछ ऐतिहासिकता भी अवश्य है। रामायण और महाभारत के अतिरिक्त पठनजलि के महाभाष्य में भी जातक-माध्यार्थ उल्लिखित हैं,<sup>२</sup> प्राचीन जैन माहित्य में भी<sup>३</sup> और पञ्चतन्त्र, हितोपदेश, वैताल, पञ्चविंशति, कथासरित्सागर तथा पैशाचीप्राकृत-निबद्ध 'बहुकर्ता' (बृहत्कथा) में भी जातक का प्रमाण किस प्रकार स्पष्टतः उल्लिखित है, इसके तिदर्शन के लिए तो कई महाप्रबों की आवध्यकता होगी।

'जातक' ने विवेची माहित्य को भी किस प्रकार प्रभावित किया है और किस प्रकार उसके माध्यम से बृद्ध-वचनों का गमन दूरस्थ देशों में, यूरोप तक, हुआ है, इसकी कथा भी बड़ी अद्भुत है। जिस प्रकार जातक-कथाएँ समुद्र-मार्ग से लेका, बरमा, सिङ्गार्म, जावा, सुमात्रा, हिन्द-चीन आदि दक्षिण-पूर्वो एशिया के देशोंको गई और बहास्यापत्य-कला आदि में चित्रित की गई, उसी प्रकार स्थल-मार्ग से हिन्दुकथा और हिमालय को गार कर पञ्जिसी देशों तक उनके

१. मिलाइये "शत्रं बै ब्रह्मदत्तानम्" (मात्स्य पुराण)

२. जनेल औंव रांगल एशियाटिक सोसायटी, १८९८, पृष्ठ १७

३. विन्दरनित्य : इंडियन लिटरेचर, जिल्ड द्वासरी, पृष्ठ १४५, पद-संकेत २

पहुँचने की यात्रा भी बड़ी लम्बी और मतोहर है। पिछले पचास-साठ वर्षों की ऐतिहासिक गवेषणाओं से यह पर्याप्त रूप से सिद्ध हो चुका है कि बृद्ध-पूर्व काल में भी विदेशी साथ भारत के व्यापारिक सम्पर्क थे। बाबूश जातक (३३९) और समर्निध जातक (३६०) में हम इन सम्बन्धों की पर्याप्त भल्कु देख ही चुके हैं। द्वितीय यतान्त्री ईनवीं पूर्व से ही अलसन्द (अलेक्जेंट्रिया) जिसे अलशेन्ड (अलेक्जेन्डर) ने चलाया था, पूर्व और पश्चिम की संस्कृतियों का मिलन केत्र हो गया था। बस्तुतः पश्चिम में भारतीय साहित्य और विशेषतः जातक-कहानियों की पहुँच अरब और फिर इनके बाद श्रीक लोगों के माध्यम से हुई। पञ्चतन्त्र में अनेक जातक-कहानियाँ विद्यमान हैं, यह तथ्य सर्वविदित है। इनी शताब्दी ईसवी में पञ्चतन्त्र का अनुवाद पहलवी भाषा में किया गया। बाठवी शताब्दी में 'कलेला दमना' शीर्षक से उसका अनुवाद अरबी में किया गया। 'कलेला दमना' शब्द 'कॉट' और 'दमनक' के अरबी लम्बन्तर है। पन्द्रहवीं शताब्दी में पञ्चतन्त्र के अरबी अनुवाद का जर्मन भाषा में अनुवाद हुआ, फिर धीरें-धीरे उभी यूरोपीय भाषाओं में उसका स्वप्रत्तर हो गया। यह हमने पञ्चतन्त्र के माध्यम में जातक-कथाओं के प्रसार की बात कही है। वास्तव में शीघ्रे रूप से भी जातक ने विदेशी साहित्य को प्रभावित किया है और उसकी कथा भी अत्यन्त प्राचीन है।

श्रीक साहित्य में ईसप की कहानियाँ प्रसिद्ध हैं। फौंच, जर्मन और अरेज विद्वानों को खोज से सिद्ध है कि ईसप एक श्रीक थे, यक्षपि उनके काल के विषय में अभी पुराण निश्चय नहीं हो पाया है। ईसप की कहानियाँ का यूरोपीय साहित्य पर बहु प्रभाव पड़ा है और विद्वानों के द्वारा यह दिखा दिया गया है कि ईसप की प्रायः प्रत्येक कहानी का आधार जातक है।<sup>१</sup> यही बात अलिकलेला की कहानियों के माध्यम में भी है। समुग्म जातक (४३६) का तो शीघ्रा सम्बन्ध अलिकलेला की एक कहानी से दिखाया ही गया है।<sup>२</sup> अन्य अनेक कहानियों की

१. रायस डेविडस : ब्रूडिस्ट बथ स्टोरीज, पृष्ठ ३२ (भूमिका)

२. डेविडस डा० हेमचन्द्र राय चौधरी का "ब्रूडिस्ट इन बेस्टन एशिया" शोधक सेल डा० विमलावरण लाहू द्वारा सम्पादित 'ब्रूडिस्टिक स्टडीज' में, पृष्ठ ८३९-८४०

भी तुलना विद्वानों ने की है।<sup>१</sup> आठवीं शताब्दी में अरबों ने यूरोप पर आक्रमण किया। स्पेन और इटली आदि को उन्होंने रोड डाला। उन्होंने साथ जातक-कहानियों भी इन देशों में गई और उन्होंने थोरे थोरे सारे यरोपीय साहित्य की प्रभावित किया। कान्स के मध्यकालीन साहित्य में पश्चीमी सम्बन्धी कहानियों की अधिकता है। केंच विद्वानों ने उन पर 'जातक' के प्रभाव को स्वीकार किया है। वायविल और विशेषतः सन्त जोन के सुसमाजार की अनेक कहानियों और उपमाओं की तुलना पालि विपिटक और विशेषतः 'जातक' के इस सम्बन्धी विवरणों से विद्वानों ने की है। इसाई धर्म पर बोढ़ वर्षे का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है, यह अब प्रायः निविवाद माना जाने लगा है। इस प्रभाव में अन्य अनेक तत्त्वों के अतिरिक्त 'जातक' का भी काफी सहयोग रहा है। इसाई सन्त एल्सीडस की कथा की तुलना न्यग्रोधाराम जातक (१२) की कथा से की गई है, यद्यपि विन्टरनिट्ट ने उसमें अधिक साम्य नहीं पाया है।<sup>२</sup> पर सब से अधिक साम्य तो मध्य-यूग की रचना 'बरलाम एण्ड जोसफ्ट' का जातक के 'बोधिसुत्त्व' से है। इस रचना में जो मूलतः उठी या सातवीं शताब्दी ईसाई में पहलवी में लिखी गई थी, भगवान् बृद्ध को जीवनी ईसाई परिवान में वर्णित की गई है। बाद में इस रचना के अन्तवाद अरब, सीरिया इटली और यूरोप की अन्य भाषाओं में हुए। 'जोसफ्ट' शब्द ब्रह्मी 'युद्धन्त' का रूपान्तर है, जो स्वयं संस्कृत 'बोधिसुत्त्व' का अर्थी अनुवाद है। ईसाई धर्म में सन्त 'जोसफ्ट' को (जिनका न केवल नाम, बल्कि पूरा जीवन बोधिसुत्त्व-बुद्ध का है) ईसाई सन्त के रूप में स्वीकार किया गया है।<sup>३</sup> यह एक बड़ी बद्भुत किन्तु ऐतिहासिक रूप से सत्य बात है। शीमतो रायन डेविडस ने तो शेषाधिपत्र के भवेट और बेनिस में 'तीन हिकियाँ' तथा 'आष सेर मांस' के बर्णन में तथा 'ऐज यु लाइक इट' में 'बहुमूल्य रत्नों' के विवरण में जातक के प्रभाव को दर निकाला है, एवं स्लेषोनिक जाति के माहित्य

१. मिलाइये विन्टरनिट्ट : इंडियन लिटरेचर, जिल्ड द्वासरी, पृष्ठ १३०, पद-संकेत २, आदि, आदि ।

२. इंडियन लिटरेचर, जिल्ड द्वासरी, पृष्ठ १५०, पद-संकेत २

३. देविये जातक (प्रधमसंड) पृष्ठ ३०, पद-संकेत १ (वस्तुकथा)

में तभा प्रायः सभी पूर्वों दूरोप के साहित्य में 'जातक' के प्रभाव की विश्वसनता दिखाई है।<sup>१</sup> भिक्षु शीलभद्र ने पर्याप्त उदाहरण देकर सिद्ध किया है कि निमि जातक (५४१) ही चोदहर्वी यताव्वी के इटालियन कवि दति की प्रसिद्ध रचना (Divina Comedia) का आधार है।<sup>२</sup> जर्मन विद्वान् बेन्टे के 'जातक' की विश्व के कथा-साहित्य का उद्गम कहा है, जो तब्दों के प्रकाश में अतिरायोक्ति नहीं कहा जा सकता। इस प्रकार भारतीय साहित्य और संस्कृति के साथ विश्व के साहित्य और सभ्यता के इतिहास में 'जातक' के स्थान और महत्व के इस संक्षिप्त विवरण के बाद अब हम चुटकि निकाय के अन्य प्रन्तों पर आते हैं।

### निहेस

निहेस के दो भाग हैं, महानिहेस और चूल निहेस। महानिहेस सुत-निपात के अट्ठक बना की व्याख्या है। इसी प्रकार चूल निहेस एक प्रकार सुत-निपात के ही खग विसाणु सुत और पारायण की व्याख्या है। इस प्रकार पूरा निहेस सुत-निपात के एक भाग को ही अट्ठकाया है। परम्परा से वह सारिपुत्र की रचना बताई जाती है। 'महानिहेस' में हमें उन स्थानों, देशों और बन्दरगाहों की सूची मिलती है जिनके साथ भारत का व्यापार पौच्छी-छठी यताव्वी इसी पूर्व होता था। समूद्र, नदी और स्थल के कौन-कौन से मार्ग थे, इसका भी पूरा विवरण हमें पहाँ मिलता है।

1. "Thus for instance the Three Caskets and the Pound of Flesh in the Merchant of Venice and the Precious Jewels which in 'As You Like It' the venomous toad wears in his head, are derived from the Buddhist tales. In a similar way, it has been shown that tales current among the Hungarians and the numerous peoples of the Slavonic race have been derived from the Buddhist sources, through translations made for the Huns, who penetrated in the time of Genghis Khan into the East of Europe."

बैंडिस्ट बर्थ स्टोरीज, पृष्ठ १२ (भूमिका)

2. दैखिये उनका Influence of the Buddhist Jatakas on European Literature" शोधक लेख, महात्रोधि, जनवरी १९५०, पृष्ठ १०-१६; मिलाइये दि बूहिस्ट, जनवरी, १९४८, पृष्ठ ११८-१२० (कोलम्बो, सिहल),

## पटिसम्मिदामग

इस ग्रन्थ का विषय अहंत् के प्रतिसवित् सम्बन्धी ज्ञान का विवेचन है। सम्पूर्ण भूम्य में तीन मुख्य भाग हैं, जिनमें से प्रत्येक में १० गणितोद्धेश हैं। इस ग्रन्थ का सम्बन्ध औली और विषय दोनों की दृष्टि से अभिधर्म पिटक से अधिक है। इसका कुछ विवरण हम आगे अभिधर्म पिटक का विवेचन करते समय करेंगे।

## अपदान

अपदान (म० अवदान) चुद्धक-मिकाय के उत्तरकालीन ग्रन्थों में से है। इसमें बौद्ध भिक्षुओं और भिक्षुणियों के पूर्व जन्मों के महान् कृत्यों का वर्णन है। जातक के समान इसको भी कहानी के दो भाग होते हैं, एक अतीत जन्म-सम्बन्धी और दूसरा बत्तेमान (प्रत्युत्पन्न) जीवन-सम्बन्धी। अपदान दो भागों में विभक्त है, थेर-अपदान और थेरी-अपदान। थेर-अपदान में ५५ वर्ग हैं और प्रत्येक वर्ग में १० अपदान हैं। थेरी-अपदान में ४ वर्ग हैं, जिनमें भी प्रत्येक में १० आदान हैं। साहित्य या इतिहास की दृष्टि से इस ग्रन्थ का कोई विशेष महत्व नहीं है। ही, इसी ग्रन्थ पर संस्कृत बौद्ध साहित्य का अवदान-साहित्य अधिकांशतः आधारित है, यह इसका एक महत्व अवश्य कहा जा सकता है। 'अपदान' में चीनी लोगों के व्यापारार्थ उत्तरी चीजों में ज्ञाने का उल्लेख है।

## चुद्धवंस<sup>१</sup>

चुद्धवंस २८ परिच्छेदों का एक पद्धात्मक ग्रन्थ है, जिसमें मोतम चुद्ध और उनके पूर्ववर्ती २४ अन्य चुद्धों की जीवनियों का विवरण है। मोतम चुद्ध के जीवनी सम्बन्धी वृश को छोड़ कर शेष तो प्रायः वीराणिक दृग का ही है, अतः उसका महत्व भी केवल उसी दिवा में समझना चाहिए।

## चरियापिटक<sup>२</sup>

चरियापिटक में भगवान् चुद्ध के पूर्व जन्मों की जयाओं का वर्णन है, जिसमें

१. २. इनके देवनामारी संस्करण भिक्षु उत्तम द्वारा प्रकाशित किए जा चुके हैं, जिन्हे भगवान् राहुल संकृत्यापन, भद्रन वानग्न को सल्यायन तथा भिक्षु अगदीश काल्यप ने सम्पादित किया है। 'चरियापिटक' का देवनामारी लिपि में सम्पादन डा० विमलाचरण लाहा ने भी किया है, जिसे मोतीलाल बनारसीबास, लाहोर, ने प्रकाशित किया था।

यह दिखाया गया है कि किस प्रकार भगवान् ने नाना पारमिताओं को पूरा किया था। इस पारमिताओं में से यही केवल सत का उल्लेख है, यथा दान, शोल, नैषकम्य, अपिष्ठान, सत्य, संतो और उपेक्षा। प्रजा, बीमे और धानि का बर्णन नहीं है। समूर्ण चत्वरि ६ परिलक्षणों में है जिनमें कुल मिला कर २५ जीवन-चर्याओं का बर्णन है। प्रत्येक जीवन-चर्या का बर्णन एक जातक-कथा सा लगता है जिसे गायात्रम् रूप दे दिया गया है। नाम-साम्य भी दोनों में पूरा है। उदाहरण के लिए 'अकिति-चरिय' 'अकिति-जातक' का रूपान्तर मात्र है। इसी प्रकार 'संत-चरिय' 'संखपालजातक' के, 'कुरुषम्भ चरिय' 'कुरुषम्भ जातक' के तथा इसी प्रकार शेष चर्याएँ प्राप्तः उसी नाम के जातक के प्रदात्मक रूपान्तर मात्र हैं। जातक से अत्यन्त सम्बन्धित होते हुए भी चरियापिटक का कलात्मक रूप उस कोटि तक नहीं पहुँच पाया है। वैसे कई मनोहर गायाएँ भी यत्न-तत्र दिलाई पड़ती हैं।

'चरियापिटक' की प्रत्येक 'चर्या' की तुलना किस जातक में है, यह निम्नलिखित नालिका से स्पष्ट होगा।

## १—दान पारमिता

१. अकिति चरिय—अकिति जातक (४८०)
२. संत चरिय—संखपाल जातक (५२४)
३. कुरुषम्भ चरिय—कुरुषम्भ जातक (२७६)
४. महासुदस्सन चरिय—महासुदस्सन जातक (१५)
५. महोगोविन्द चरिय—महोगोविन्द सूलन्त (दीष निकाय)
६. निमिराज चरिय—निमि जातक (५४१)
७. चन्दकुमार चरिय—चंदहाल जातक (५४२)
८. मिविराज चरिय—मिवि जातक (५९९)
९. वेस्मन्तर चरिय—वेस्मन्तर जातक (५०७)
१०. समर्पित चरिय—सम जातक (३१६)

## २—सील पारमिता

११. सीलवनाम चरिय—सीलवनाम जातक (७२)
१२. भूरिदत चरिय—भूरिदत जातक (५४३)
१३. चमोर्य नाग चरिय—चमोर्य जातक (६०६)
१४. चूल बोधि चरिय—चूलबोधि जातक (५४३)
१५. महिसुराज चरिय—महिस जातक (२३८)
१६. ससराज चरिय—सस जातक (४८२)
१७. मातंग चरिय—मातंग जातक (४९३)
१८. धम्माधम्मदेवपुत चरिय—धम्म जातक (५१३)
१९. जयहिस चरिय—जयहिस जातक (५१३)
२०. संखपाल चरिय—संखपाल जातक (५२४)

## ३—नेक्खम्म पारमिता

२१. युवज्ञव चरिय—युवज्ञव जातक (४६१)
२२. सोमनस्स चरिय—सोमनस्स जातक (५०५)
२३. अयोधर चरिय—अयोधर जातक (५१०)
२४. भीस चरिय—भीस जातक (४८८)
२५. सोणपणित चरिय—सोणनन्द जातक (५३८)

## ४—अधिद्रूप पारमिता

२६. तेमिय चरिय—तेमिय जातक (५३८)

## ५—सब पारमिता

२७. कपिराज चरिय—कपि जातक (२१०)
२८. सञ्जवसञ्जृष्ट चरिय—सञ्जकिर जातक (३३)
२९. वटुपोतक चरिय—वटु जातक (३५)
३०. मच्छराज चरिय—मच्छ जातक (३४)
३१. कण्ठदीपायन चरिय—कण्ठदीपायन जातक (४४४)
३२. मृतसूम चरिय—महासृतसूम जातक (५३७)

## ६—मैत्री पारभिता

३२४. नववर्णमाम चरिय—सम जातक (५४०)

३२५. एकराज चरिय—एकराज जातक (३०३)

## ७—उपेक्ष्वा पारभिता

३२६. महालोमहस चरिय—लोमहस जातक (३४)

## चौथा अध्याय

### विनय-पिटक

#### त्रिपिटक में विनय-पिटक<sup>१</sup> का स्थान

त्रिपिटक बोद्ध संघ का संविधान है। अतः धार्मिक दृष्टि से उसका बहुमहसूल है। बुद्ध-धर्म में को प्रथम तीन गताल्पियों का इतिहास विनय-पिटक सबसे विचारों और भृत्यों का ही इतिहास है। शास्त्र के महापरिनिर्वाण के बाद ही 'बुद्धानुभृत' विनय-सम्बन्धी नियमों को लेकर भिक्षु-संघ में विचार उठ जाता हुआ था, जिसका प्रथम संघ-भृदक परिणाम वैशाली की संगीति में दृष्टिगोचर हुआ और बाद में तुतीय संगीति तक आते आते वह अष्टादश निकायों के रूप में पूर्णतः प्रस्तुति हो गया। यह बात नहीं है कि इसके अन्य कारण न रहे हों, किन्तु विनय-विषयीत आवरण एक प्रमुख कारण था। यही कारण है कि स्थविरवाद बोद्ध धर्म की परम्परा ने 'विनय-पिटक' को अपनी प्रमुख कारण था। यही कारण है कि स्थविरवाद जीवन-काल में ही उनके विद्रोही शिष्य देवदत ने विनय-सम्बन्धी नियमों में कुछ अधिक कड़ाई की माँग की थी। उसने उस स्वतंत्रता के विरुद्ध ही, जो तथागत ने अपने शिष्यों को दी थी, विद्रोह किया था। इसी प्रकार कौशाम्बिक भिक्षुओं के दुर्व्यवहार के कारण भगवान् को लिङ्ग हो कर एक बार भिक्षु-संघ को कुछ काल के लिए छोड़ कर एकान्त-वास के लिए जाना पड़ा था। इन सब बातों से स्पष्ट था कि भगवान् ने जिस धर्म का उपदेश दिया था उसका साक्षात्कार बिना जीवन की पवित्रता के असम्भव था। उस पवित्रता के सम्पादन के लिए जिस साधन-मार्ग की जावश्यकता थी उसका वास्त-

१. महापरिव्रत राहुल सांकुत्यायन द्वारा अनुवादित, महाक्षेत्रि सभा, सारनाथ १९३५; २० द० बदेकर ने विनय-पिटक के 'पातिमोक्ष' अंश का नाम ही लिपि में सम्पादन किया है।

विक उपदेश तो उनके 'धर्म' में ही दे दिया गया था, किन्तु भिन्न और भिन्नी संघों की स्थापना के बाद, उनमें कुछ असंयमी और अ-वैराग्यवान् व्यक्तियों के भी स्वभाविक रूप से प्रविष्ट हो जाने के कारण, उनकी व्यवस्था को कुछ बाह्य नियमों में भी बदलने की आवश्यकता थी। यही कारण है कि हम विनय-पिटक में नाना प्रकार के नियमों का प्रज्ञापन बृहद-मुख्य से हुआ देखते हैं, जिनके प्रज्ञापन करने की उनके अपने उस प्राथमिक उपदेश-काल में, जब तपस्मु और भूलिक जैसे उपासक लोग बृहद और धर्म की शरण जाते थे (संघ की स्थापना हो उस समय नहीं हुई थी, अतः स्वभावतः पारिभाषिक अर्थों में विनय-साम्बन्धी नियमों की भी नहीं) कोई आवश्यकता नहीं थी।<sup>१</sup> बृहद-धर्म की साधना का यह वह युग था जब बृहद कह सकते थे—

'यं मया साधकार्णं सिद्धावापदं पञ्चतं, तं मम साधका जीवितहेतु पि नातिकरमन्ति (अंगुत्तर-निकाय) अर्थात् "जिन शिक्षापदों (सदाचार-नियमों) का मने उपदेश किया है, उनको मेरे शिष्य अपने प्राणों के लिये भी कभी नहीं तोड़ते ।"

उस समय शिक्षा-पद थे, किन्तु वे धर्म में ही अन्तर्हित थे। वोषिपशीय घरों की साधना और तदनकल आचरण स्वयं अपने आप में चित और काया की विशुद्धि के लिए एक अद्वितीय मार्ग था। चार आद्य-सत्य, आद्य आटोमिक मार्ग अदि सभी उस साधना के भग थे। चार स्मृति-प्रस्थानों के विषय में तो स्वयं भगवान् ने कहा है "भिन्नुओ ! प्राणियों की विशुद्धि के लिए . . . . निर्विण के साक्षात्कार के लिए, यही अकेला सर्वोत्तम मार्ग है।" कहने का तात्पर्य यही है कि जब भगवान् बृहद ने प्रारम्भ से ही सभी पाप-कर्मों को न करने, सभी कुशल कर्मों को करने और चित को संयमित कर उसे शुद्ध रखने का आदेश देते हुए अपने धर्म को प्रकाशित किया, तो 'विनय' उसमें स्वयं अपने आप सम्मिलित था। लोकिक सफलता और महृत्व-प्राप्ति के लिए भी जब संयम, या जिसे आज अनु-शासन कहा जाता है, इतना आवश्यक है, तो बहुचर्य के उस महत् उद्देश्य के

१. पद्धति विनय-पिटक के बर्णनानुसार यह काल बहुत कम विम रहा, किन्तु इसकी सी पवित्रता तो बहुत दिन रही।

लिए, विसकी महता सभी लोकिक और पारलोकिक उद्देशों को अतिक्रमण करती है, कितना जावशक था, इसका सबोत्तम दर्शन हमें बुद्ध-उपदेशों में ही होता है। स्वभावतः शास्त्र के धर्म और विनय दोनों एक चीज़ है, एक ही धर्म के दो गहराएँ हैं। उसके सामाजिक स्वरूप 'धर्म-विनय' का भी यही रहस्य है।

जब कि बृद्ध-मन्त्रावधि के अनुसार धर्म और विनय का एक सा ही महत्त्व है, 'विनय-पिटक' के नियम शास्त्र के शासन के बाहरी क्षण मात्र है। उनका मानसिक भाषार निश्चित होते हुए भी स्वयं उत्तर का प्रशापन उस अवस्था का नूतन है जब संघ में प्रविष्ट कुछ अनंगमी भिन्न तथागत-प्रवेदित धर्म के विशद आचरण करने लगे थे। जब तक पह वात नहीं हुई तथागत को नियम विधान करने की आवश्यकता नहीं हुई। धर्मसेनापति के साथ भगवान् के इस संकाय से यह वात स्पष्ट होगी। धर्मसेनापति सारिपुत्र भगवान् से प्रश्नेन् करते हैं—“भन्ते ! भगवान् शिष्यों के लिए शिखा-पद का विधान करें, प्रातिमोक्ष का उपदेश करें, विसरों कि यह ब्रह्मचर्य चिरस्थानी हो।” भगवान् कहते हैं, ‘सारिपुत्र ! उहरो, तथागत कोल जानें। सारिपुत्र ! शास्त्र तब तक व्यापकों (शिष्यों) के लिए शिखा-पद का विधान नहीं करते, प्रातिमोक्ष का डारेण नहीं करते, जब तक कि संघ में कोई चित्त-मल वाले धर्म (पदार्थ) उपग्रह नहीं होते। सारिपुत्र ! जब यहीं संघ में कोई चित्त-मल को प्रकट करने वाले धर्म पैदा हो जाते हैं, तो उन्हीं का विधारण करने वे लिए, उन्हीं के प्रतिष्ठात के लिए, शास्त्र आवकों को शिखा-पद का विधान करते हैं, प्रातिमोक्ष का उपदेश करते हैं..... (अभी तो) सारिपुत्र ! सब मल-रहित, दुष्परिणाम-रहित, कालिमा-रहित, शृङ, सार में स्थित है। इन गोंच सौ निष्ठाओं में जो सब से गिरफ्ता भिक्षा है, वह भी स्वोत-आपत्ति फल को प्राप्त, दुर्गंति से रहित और स्थिर संबोधि-परायण है।” जब निश्चित है कि विनय सम्बन्धी नियमों का उपदेश जैसे कि वे विनय-पिटक में निहित हैं, भगवान् के हारा 'धर्म' के बाद दिया गया जब कि अधिक मल-गस्त व्यक्ति उसके आधार पर अपना संवार नहीं कर सके।

एक बार शिक्षापदों और प्रातिमोङ्ग-सम्बन्धी नियमों का प्रज्ञापन करने के बाद संघ की स्थिति के लिए वह अत्यन्त आवश्यक हो गया। किन्तु शास्त्र यह जानते थे कि एक बार आन्तरिक संघम से च्युत हो जाने के बाद उसे बाहरी नियमों के बन्धन में बाँध कर नहीं रखा जा सकता था। भिक्षुणी-संघ की स्थापना के समय भिक्षुणियों के लिए जीवन-पर्यावर्त्त पालनीय आठ गृह धर्मों (बड़ी शर्तों) का विवाद करते समय ही शास्त्र को यह प्रतिभान हो गया था कि यह बाहरी रोक-थाम अधिक दिन तक चल नहीं सकती। “आनन्द ! जैसे आदमी पानी को रोकने के लिए, वह तालाब की रोक-थाम के लिए, मेंड़ बधे, उसी प्रकार आनन्द ! मैंने रोक थाम के लिए, भिक्षुणियों को जीवन भर अनुलंघनीय आठ गृह धर्मों को स्थापित किया।” फलतः “आनन्द ! अब बहुतचर्चे चिरस्थायी न होगा, सद्गम पांच सौ वर्ष ही ठहरेगा।” विचार-स्वातन्त्र्य की महत्वानुभूति पर आधित बृद्ध-मन्त्रव्य कभी मनुष्य को बाहरी नियमों के बन्धन में बाँधने वाला नहीं हो सकता था। जो कुछ भी नियम उन्होंने आवश्यकतावश प्रज्ञान किये थे, उनमें से अनेक ऐसे भी हो सकते थे जो उसी युग और परिस्थिति के लिए अनुकूल हों और जिनका सावंकालिक या सावंजनीन महत्व प्रतिष्ठापित करना उसी दृष्टिहीनता, संकुचित वृत्ति और सच्चे उद्देश्य को छोड़ कर बाहरी रूप की ओर दौड़ने की प्रवृत्ति का सूचक हो, जो धर्म-साधनाओं के इतिहास में अक्सर देखा जाता है, इसकी भी पूरी अनुभूति भगवान् बृद्ध को थी, यह हम परिमिवृत्त होने से पहले उनके इस आदेश में देखते हैं “इच्छा होने पर संघ मेरे बाद लुद्रानक्षुद्र (छोटे-मोटे) शिख पदों को छोड़ दे।” संघ बाहरी बनान अनुभव न करे, इसीलिए उन्होंने अपने बाद किसी व्यक्ति को जान बूझ कर उसका नेता तक नहीं चुना।<sup>१</sup> एकमात्र ‘धर्म-विनय’ रूपी नेता की घटण में ही उन्होंने भिक्षु-संघ को छोड़ा। उन्होंने तो यहाँ तक कह दिया “भिलओ ! मैंने वेडे की भाँति निस्तरण के लिए तुम्हें धर्म का उपदेश दिया है, पकड़ रखने के लिए नहीं। धर्म को वेडे के समान उपदिष्ट जान कर तुम धर्म को मी छोड़ दो, अधर्म की तो बात ही क्या ?”<sup>२</sup> यही बात विधि-निषेध-प्ररक-

१. वेलिये विशेषतः महायरिनिवाण-सुत (दीप, २१३); गोपक-मोगललान-सुत (मञ्जिल ३।१८)

२. अलगहू पर्म-सुत (मञ्जिल १।३२)

विनय-सम्बन्धी नियमों के विषय में भी कही जा सकती है। चेतना, (चित्त) को ही कम्म (कर्म) कहने वाले<sup>१</sup> शास्त्रा का यह बाहरी नियम-विधान अन्तिम मन्त्रव्य नहीं ही सकता था, यह ऊपर के उद्धरणों से स्पष्ट है। किन्तु निर्वैल, मल-भ्रस्त मानवता के लिए और क्या किया जाय? बाहरी नियम-विधानों से काम नहीं चलता, वे अपूर्ण ठहरते हैं, किन्तु उनके प्रभापन किये विना काम भी नहीं चलता! जब सम्यक् सम्बुद्ध ने मनुष्यों का शास्त्र बनाया स्वीकार कर लिया, उनके दीन रहना-सहना, भूमना-फिरना स्वीकार कर लिया, संघ को भारण करना स्वीकार कर लिया, <sup>२</sup> मनुष्यों को विशुद्धि ह्यो निर्वाण के मार्ग पर लगाना स्वीकार कर लिया, तो उनकी चित्त-स्थिति के लिए अनुकूल नियम-विधान भी वे क्यों नहीं करते? उनके शिष्यों में जो प्रधान थे, वे स्वतः ही भगवान् के 'धर्म' के अनुसार आचरण करते थे। अतः उन्हें अलग से विनय-सम्बन्धी नियमों का उपदेश करने की आवश्यकता नहीं थी। किन्तु 'वहुजनों' में अधिकांश तो मल-भ्रस्त प्राणी ही थे। उन्हीं के पतन को देख कर भगवान् ने बाहरी नियमों का विधान किया, किन्तु हम आज विनय-पिटक में देखते हैं। इनमें से बहुत कुछ बाहरी होते हुए भी अधिकांश मानसिक भित्ति पर ही आधित है, जो बुद्ध-भ्रतव्य की तरफ से बड़ी विशेषता है। संयुक्त-निकाय के भिक्षु-संघत में जिस प्रकार भगवान् बुद्ध ने नन्द और तिस्स तथा अन्य भिक्षुओं को विनय-सम्बन्धी नियमों को कठाई के साथ पालन करने का जादेश दिया है, यह हम पहले देख चुके हैं।

१. चेतनाहृं भिक्षत्वे कर्मं चदामि। चेतयित्वा हि कर्मं करोति कायेन वाचाय भनता वा। अंगुत्तर-निकाय ।

२. केवल व्याचहारिक अर्थ में। वास्तव में तो संघ को पूरी व्यष्टिका करते हुए भी भगवान् सदा निर्लिप्त ही रहे। जब आनन्द उनसे अन्तिम समय पर भिक्षु-संघ के लिए कुछ काहने के लिए प्रार्थना करते हैं, तो भगवान् कहते हैं, "आनन्द! जिसको ऐसा हो कि मेरे भिक्षु-संघ को भारण करता हूँ..... वह जरूर आनन्द! भिक्षु-संघ के लिए कुछ कहे। आनन्द! तत्पात्र को ऐसा नहीं हूँ।" एक और स्थान पर भगवान् अपनी निलेपता का साक्ष बतें है "मायन्दिय! घमों का अन्वेषण कर के मुझे 'मैं यह कहता हूँ' यह भारणा नहीं हुई।"

अन्य भी अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं, जहाँ भगवान् बुद्ध ने विनय सम्बन्धी नियमों को पूरी तरह पालन करने का भिक्षुओं को उपदेश दिया है। जब तक भगवान् जीवित रहे, तब तक उनके अविकृत और साधारू सम्पर्क से मनुष्यों को प्रेरणा मिलती थी। किन्तु उनके परिमिती के बाद तो विनय-सम्बन्धी नियम ही संघ की एकता और मौलिक पवित्रता के एक मात्र मापदंड रह गए। उसके बाद बोद्ध संघ में विनय-पिटक का जो महान् आदर और गौरव प्रतिष्ठापित हुआ वह उसको संकोचिता या साम्प्रदायिकता का दौतक नहीं था। वह भिक्षुओं की उस अप्रतीक्षित का दौतक था जिसके साथ वे 'छिले थंक की तरह निर्मल' (शंख-लिखित) भास्य-मूलि के आसन को उसकी मौलिक पवित्रता में रखना और इसना चाहते थे। उनका वह प्रयत्न देकार नहीं गया है, यह हम आज भी देख सकते हैं। बैशाली जी संगीति के अवसर पर ही धर्म-वादी भिक्षुओं ने किता प्रकार भगवान् के मौलिक उद्देश्यों की रक्षा की, मह हम उसके विवरण में (द्वितीय अध्याय में) देख चुके हैं। लंका, वरमा और स्याम के भित्र-संघों के इतिहास में किस प्रकार विहार-नीमा और पारुपण (चीवर को दोनों कन्धों ढंक कर पहनना), एकेसिक (चीवर को इस प्रकार पहनना, जिससे एक कन्धा, दाहिना कन्धा खुला रहे) आदि अल्प महसूव के विनय-सम्बन्धी प्रश्नों को लेकर भी उत्तरकालीन युगों में जो ब्राद-विवाद होते रहे हैं वे न केवल उन देशों में बुद्ध-धर्म के जीवित स्वरूप में विद्यमान होने के प्रमाण हैं, बल्कि उसे उसी मौलिक, अद्वितीय पवित्रता के साथ रखने की अवश्यता के भी अविवाद लक्षण है। अतः स्वविवरवादी बोद्ध धर्म के धेन में विनय-पिटक की जो प्रतिष्ठा ग्राहमिक युग से जब तक रही है, वह एक जीवित ऐतिहासिक तथ्य है और ऊपर के तथ्यों को देखते हुए, वह सांखेक भी है।

बोद्ध संघ में विनय-पिटक का सदा से वित्तना आदर रहा है और उसके उत्तरकालीन इतिहास के निर्माण में उसका कितना बड़ा हाय रहा है, मह ऊपर के विवरण से स्पष्ट है। ब्रास्तव में भिक्षु-संघ ने अत्यन्त प्राचीन काल से उसे सुन्त-पिटक से भी अधिक ऊँचा स्थान दिया है, क्योंकि उसे ही उन्होंने बुद्ध-आसन की आप माना है। उनका विश्वास रहा है कि जब तक विनय-पिटक अपने मौलिक, विशद रूप में रहेगा तभी तक बुद्ध-आसन भी जीवित रहेगा और विनय-सम्बन्धी

नियमों के अभ्यास के लक्ष्य हो जाते पर बुद्ध-शासन भी लुप्त हो जायगा । विशेषतः सिहल और स्थाम के भिन्न-संघ में अभी तक यह विश्वास बुढ़ है और वे विनय, सूत, अभिव्यम यह ग्रन्थ महस्त्र की दृष्टि से विपिटक का करते हैं । विनय-सम्बन्धी मामलों में चरमी भिन्न-संघ पर सिहली प्रभाव भ्यारहबी शताब्दी से ही रहा है ।<sup>१</sup> दोनों देशों में बुद्धवत्, बुद्धथोद और घम्मपाल (चौथी-यात्रबी शताब्दी के प्रसिद्ध पालि अट्टकाशाकार) के काल से लेकर ठीक आधुनिक काल तक विनय-पिटक पर विपुल अध्यात्मापरक साहित्य की रचना ही है, जो इन देशों में उसकी जीवित परम्परा का सूचक है । न केवल स्वविरचार बौद्ध धर्म की परम्परा में ही बल्कि अन्य बौद्ध सम्प्रदायों में भी विनय की महिमा सुरक्षित है, फिर चाहे उनके विनय-पिटक का स्वरूप स्थविरचारी बौद्धों के विनय-पिटक से भले ही कुछ थोड़ा विभिन्न हो । चीन और जापान में 'रिश्य' नामक बौद्ध सम्प्रदाय है, जिसका दाविदिक वर्ण ही है 'विनय-सम्प्रदाय' । यह सम्प्रदाय 'धम्मगुत्तिक' विनय का ही अपना मुख्य आधार मानता है । इस प्रकार विनय की प्रतिष्ठा सम्पूर्ण बौद्ध सम्प्रदायों में समान रूप से पाई जाती है ।

ऐतिहासिक और साहित्यिक दृष्टि से भी विनय-पिटक का बड़ा महस्त्र है । पिटक-साहित्य के कालानुक्रम के विवेचन में हम देख सुके हैं कि विनय-पिटक के अनेक अंश विपिटक के प्राचीनतम अंशों में से हैं । न केवल बुद्ध की जीवनी, विद्यक उनके द्वारा संघ की स्थापना, उनके जीवन-काल में संघ का विकास, उसके नियम, उसका शासन, एवं बुद्ध-परिनिर्वाण के बाद १०० साल तक का उसका प्रामाणिकतम इतिहास, यह सब हमें विनय-पिटक से ही मिलता है । प्रथम दो बौद्ध संगोत्तियों के विषय में किस प्रकार विनय-पिटक का विवरण प्राचीनतम और प्रामाणिकतम है, यह हम दूसरे अध्याय में देख सुके हैं । इसके अलावा बुद्ध के शिष्यों का परिचय, छठी-यात्रबी शताब्दी ईसवी पूर्व के भारत का सामाजिक विवरण, विशेषतः बुद्धकालीन संघ और तत्सम्बन्धी विवरण, इस सबके लिये विनय-पिटक के

१. सिहली विनय-पिटक सम्बन्धी यन्यों के आधार पर ही बरमा में इस सम्बन्धी साहित्य की रचना हुई । देखिये मेविल बौद्ध : दि पालि लिटरेचर ऑब बरमा, पृष्ठ ५

समान अन्य कोई प्रामाणिक साधन हमारे पास नहीं है। साहित्यिक दृष्टि में व्यव्यपि विनय-पिटक का महत्व उतना नहीं दिखाया जा सकता क्योंकि उसका अधिकांश भाग नियमों का प्रज्ञापक है जो अत्यन्त नीरस ही हो सकता है। फिर भी 'धर्मचक्रवर्तन सूत' आदि गम्भीर बुद्ध-प्रबल्ल भी यहाँ रखे हुए हैं, जो उसके ऐतिहासिक अंश के समान ही उसे महत्ता प्रदान करते हैं।

### विनय-पिटक का विषय और उसका संकलन-काल

भिक्षु और भिक्षुणी संघ ही विनय-पिटक के एक मात्र विषय है, ऐसा कहा जा सकता है। वह बीढ़ संघ का संविधान और एक मात्र आधार है। बीढ़ संघ की व्यवस्था, भिक्षु और भिक्षुणी के नित्य-नैमित्तिक कृत्य, उपसम्पदा-नियम, देसना-नियम, वर्गावास के नियम, भोजन, वस्त्र, पद्य-आग्रहादि सम्बन्धी नियम, संघ के संचालन सम्बन्धी नियम, संघ-भेद होने पर संघ-सामग्री (संघ की एकता) सम्पादित करने के नियम, आदि नियम-समूह विनय-पिटक में विवृत किये गये हैं। इन सभी नियमों का प्रज्ञापन भगवान् बुद्ध के द्वारा ही हुआ है, ऐसी बीढ़ संघ की सामान्यतः मान्यता है। विनय-पिटक का संकलन, जैसा हम ने ब्रह्म संगीति के विवरण में देखा है, धर्म या सूत-पिटक के साथ-साथ प्रथम संगीति के अवसर पर ही हुआ। उसके प्रारम्भ में ही हम आयं महाकाश्यप को कहते देखते हैं "धर्म च विनय च सञ्ज्ञायेष्याम" अर्थात् "हम धर्म और विनय का संग्रहन करें"। अतः सूत और विनय के संकलन-काल में कुछ ऐसा पूर्वार्थ स्थापित नहीं किया जा सकता, जैसा अवसर पञ्चमी विहानों ने किया है। कुछ पञ्चमी विहानों (कने, पूर्सी आदि) ने विनय-पिटक को सूत-पिटक से पूर्व का संकलन माना है, कुछ (फैक आदि) ने उसके बाद का भी। किन्तु ये दोनों ही मत निराकार हैं। सूत और विनय में अनेक उपदेश समान हैं, विनय-सम्बन्धी अनेक उपदेश सूत-पिटक में भी मिलते हैं, और सूत-पिटक के अनेक बुद्ध-धर्म और बुद्ध-जीवन सम्बन्धी प्रकरण विनय-पिटक में मिलते हैं। दोनों की शैली प्राची-नता की सूचना है। अतः उन दोनों को समकालीन मानना ही अधिक युक्ति-संगत है। वैशाली की संगीति के अवसर पर विनय-सम्बन्धी कुछ विवादों का निषेच हुआ था, अतः उसके आधार पर सम्भव है इस पिटक के रूप में कुछ

अन्तर कर दिया गया हो । चूंकि इस संगीति का इस पिटक में विवरण भी है, अतः उसी समय इसके रूप का अन्तिम स्थिरीकरण ही गया था, यही इसके संकलन-काल के विषय में हमें जानना चाहिये ।

बौद्ध परमारा विनय-सम्बन्धी सब नियमों का प्रभापन बुद्ध-मुख से ही हुआ मानती है । आचार्य बुद्धघोष (चौथी-पाँचवीं शताब्दी ईसवी) ने समन्तपासादिका (विनय-पिटक की अटठकथा) के प्रारम्भ में भिक्षुओं की उप अप्रतिहत परम्परा का उल्लेख किया है जिसने बुद्ध-काल से लेकर उनके समय तक विनय-पिटक का उपदेश दिया । बुद्ध-काल में विनय-धरों में उपालि स्थविर ग्रधान थे, यह हम अगुत्तर-निकाय के एतदगच्छमा से जानते हैं । प्रथम संगीति के अवसर पर उन्होंने ही विनय का संग्रहन किया, यह विनय-पिटक की मूलना है । अतः विनय-धरों की परम्परा स्थविर उपालि से ही प्रारम्भ होती है । बुद्ध-शिष्य उपालि से लेकर अशोक के समाकालिक मोगलिपुत तिस्स तक विनयधरों की इम परम्परा का उल्लेख आचार्य बुद्धघोष ने इस प्रकार किया है (१) बुद्ध (२) उपालि (३) दासक (४) सोणक (५) सिगगव और (६) मोगलिपुत तिस्स । "श्री जम्बुदीप में तृतीय संगीति तक इस अटठे परम्परा से विनय आया । . . . तृतीय संगीति से आगे इसे इस (लंका) द्वीप में महेन्द्र आदि लगाये । महेन्द्र से सीख कर कुछ काल तक अटठे स्थविर आदि द्वारा चला । उनसे ही उनके शिष्यों की परम्परा वाली आचार्य-परम्परा में आज तक विनय आया, जैसा कि पुराने आचार्यों ने कहा है, (७) महिन्द, इटिथ्य, उत्तिय, मवल और भद्रसाल ये महाप्राज्ञ भारत (जम्बुदीप) से वहाँ आये । उन्होंने तम्बपणि (ताङ्राणी-लंका) द्वीप में विनय-पिटक पढ़ाया । . . . तब (८) आप्य तिष्ठदत (९) कालसुमन (१०) दीर्घ स्थविर (११) दीर्घ सुमन (१२) काल सुमन (१३) नाग स्थविर (१४) बुद्धरक्षित (१५) तिष्य स्थविर (१६) देव स्थविर (१७) सुमन (१८) चूलनाग (१९) चर्मपालित (२०) रोहण (२१) धोम (२२) उपतिष्य (२३) पृथ्यदेव (२४) सुमन (२५) पुण्य (२६) महाशिव (महाशीव) (२७) उपालि (२८) महानाग (२९) अभय (३०) तिष्य (३१) पुण्य (३२) चूल अभय (३३) तिष्य स्थविर (३४) चूलदेव (३५) शिव स्थविर . . . . . इन महाप्राज्ञ, विनयमार्ग-कोशिकों ने ताङ्राणी (लंका) द्वीप में विनय-पिटक को प्रकाशित

किया ?<sup>१</sup> जिस प्रकार किसी कलेज की दीवाल में लगे हुए प्रस्तरपट पर उसके प्रिसिपलों के नाम हुए नामों की सूची में कोई सन्देह नहीं करता, उसी प्रकार हमें विनय-घरों की इस सूची को भी प्रामाणिक मानना चाहिये ।

### विनय-पिटक के भेद

पालि संस्करण के अतिरिक्त विनय-पिटक के छह और संस्करण चीनी अनुवादों में मिलते हैं । इनके नाम हैं (१) जूजु-रित्सु, सर्वास्तिवादियों का विनय (२) शिवुन-रित्सु, धर्मगुरुत्व का धर्मगुरुत्व का सम्प्रदाय का विनय (३) मध्यसोमि-रित्सु, महासंघिक सम्प्रदाय का विनय (४) कोन्मोन-सेत्सु-इस्से-उव, नवीन या उत्तरकालीन सर्वास्तिवादियों का विनय (५) गोबुन-रित्सु या महिसासक विनय (६) विनय । विनय-पिटक के इन छह चीनी संस्करणों में आपस में बहुत कम भेद है । मौलिक रूप से के सब समान हैं । जिन सम्प्रदायों से वे सम्बन्धित हैं, उनका उद्भावन अशोक के काल से पहले ही हो चुका था । वे सब स्थविरवाद बौद्ध धर्म की ही जाता थे और विनय-सम्बन्धी कुछ छोटे-मोटे मत-भेदों के कारण ही उनसे अलग हो गये थे । 'कथावत्थ' में इन सब का वर्णन आया है । पाँचवें अध्याय में हम इन सब के सिद्धान्तों का विवरण देंगे । यहाँ अलग से परिचय देने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती । स्थविरवाद बौद्ध धर्म के अलावा अन्य १३ बौद्ध सम्प्रदायों के, जो तृतीय संगीति तक उत्पन्न हो चुके थे, साहित्य के विषय में हमें अभी कोई महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त नहीं हुई है । केवल सर्वास्तिवादियों का कुछ साहित्य मिला है, जिसका कुछ विवरण हम ने सुन्न-पिटक के विवेचन के आरम्भ में दिया है और उनके अभिधर्म-साहित्य का स्थविरवादियों के माध्यम सुलनात्मक विवेचन हम पाँचवें अध्याय में करेंगे । यह प्रसवता की बात है कि विनय के शेष में न केवल सर्वास्तिवादियों का ही बल्कि उनसे अतिरिक्त अन्य पाँच प्राचीन बौद्ध सम्प्रदायों का भी साहित्य मिलता है जो सब उत्तरकालीन बौद्ध धर्म के विकास की दृष्टि से हीनयानी ही थे । न केवल विनय-पिटक ही बल्कि उसकी पाँच व्याख्याएँ भी चीनी अनुवादों में सुरक्षित हैं । उनके नाम हैं (१)

१. बुद्धचर्या पृष्ठ ५७६ में अनुवादित । मोगलिपुत्र तिस्स ताक की परम्परा के लिए देखिये आगे नवें अध्याय में 'महावंस' सम्बन्धी विवरण भी ।

विनय-मो-रोन् या विनय-माता-बण्णना (२) भतो-रोग-रोन् या मातिका अथवा मातिका-बण्णना (३) जेन-कैन-रोन् (पासादिका-बण्णना) (४) सब्बत-रोन् (सब्बतिय-बण्णना) (५) म्हो-र्यो-रोन् या पाकटबण्णना। चीनी भाषा में 'रोन्' 'विभाषा' या 'बण्णना' (बर्णन, व्याख्या) को कहते हैं। 'जैन-कैन-रोन्' बुद्धधोषकृत 'समन्तपासादिका' (विनय-पिटक की अट्टकथा) का चीनी अनुवाद है। एहले यह 'धम्मगुत्तिक' सम्प्रदाय के विनय 'शिवृन्तरित्सु' की व्याख्या समझी जाती थी। किन्तु जापानी विद्वान नगई ने इस भ्रम का निवारण कर दिया है।<sup>१</sup> चीनी और जापानी बीद घरों की दृष्टि से 'धम्मगुत्तिक' (धम्मगुत्तिक) सम्प्रदाय का विनय-पिटक शिवृन्तरित्सु ही अधिक महत्वपूर्ण है। वही के रिश्ता सम्प्रदाय (विनय-सम्प्रदाय) का यही आधार-भूत ग्रन्थ है। पालि विनय पिटक के साथ चीनी विनय-पिटक की तुलना के प्रसंग में इसी संस्करण को लिया जा सकता है और वाकी छोटे-मोटे विभेदों को, जो बहुत अल्प हैं, अलग से दिखाया जा सकता है। यही हमें तुलना के बल 'शिक्षापदों' या विनय-सम्बन्धी नियमों के विषय में करनी है, जो ही विनय-पिटक के आधार-भूत विषय हैं, चाहे वह किती सम्प्रदाय या संस्करण का हो।

पालि विनय-पिटक के शिक्षापदों की संख्या २२७ है, जिनकी गणना इस प्रकार है—

१. पारात्रिका	४
२. संघादिसेसा	१३
३. अनिवाता धम्मा	१
४. निस्समिया पाचित्तिया धम्मा	३०
५. पाचित्तिया धम्मा	१२
६. पटिदेसनिया धम्मा	४
७. सेतिया धम्मा	७५
८. अधिकरणसमवा धम्मा	७
	—
	२२७

१. देखिये बुद्धिस्तक स्टडीज (दा० लाहा द्वारा सम्पादित) पृष्ठ ३६८ में नगई के 'बुद्धिस्तक विनय डिसिप्लिन' शीर्षक लेख का अंग।

चीनी विनय-पिटक के प्रायः सभी संस्करणों में शिखापदों की यह संख्या २५० है। 'शिवुन्-रित्सु' के अनुसार यह गणना इस प्रकार है—<sup>१</sup>

१. पाराजिका	✓
२. संघावशेष (संघादिसेसा)	१३
३. अनियत	२
४. निःसमिक पातयन्तिक (निःसमिया पाचित्तिया)	३०
५. पातयन्तिक (पाचित्तिय)	९०
६. प्रतिदेशनीय (पटिदेशनिया)	४
७. शैक्ष्य (सेखिया)	१००
८. अधिकरण-शमथ	७
	—
	२५०

विनय-पिटक के चीनी-संस्करणों के अलावा एक तिक्ष्णती संस्करण भी मिलता है।<sup>२</sup> यह मूल सर्वास्तिवादियों के प्रातिमोक्ष का तिक्ष्णती अनुबाद है। इसके अनुसार शिखापदों की संख्या इस प्रकार है—

१. पाराजिका	✓
२. संघावशेष	१३
३. अनियत	२
४. निःसमिक पातयन्तिक	३०
५. पातयन्तिक	९२
६. प्रतिदेशनीय	४
७. शैक्ष्य	१०६
८. अधिकरण-शमथ	७
	—
	२५८

१. बुद्धिस्तक स्टडीज (डा० लाहा द्वारा सम्पादित), पृष्ठ ३६९ (नगई का विनय-पिटक सम्बन्धी लेख)

२. इसके अलावा महापर्दित राहुल सांकृत्यायन तिक्ष्णत से विनय-सूत्र, विनय-सूत्र-टीका, प्रातिमोक्ष-सूत्र, प्रातिमोक्षसूत्र-टीका, भिक्षु-प्रकोणिक तथा उपसम्पदा-

उपर्युक्त सचिवों से साएट है कि पालि-विनय-पिटक से शिक्षापदों की संख्या २२७ और चीनी और तिब्बती संस्करणों में वह कमशः २५० और २५८ है। जहाँ तक पालि और तिब्बती संस्करणों की तुलना का तराफ़ है, उनके प्रत्येक नियम की संख्या में समानता है। केवल शैक्षण्य-सम्बन्धी नियमों में अन्मानता है। पालि संस्करण में वे ७५ हैं जब कि तिब्बती संस्करण में १०६। इसी कारण तिब्बती संस्करण के नियमों की कुल संख्या भी ३१ बड़ी है। पालि और चीनी संस्करणों में केवल 'पाचित्तिया धर्मा' (पात्रप्रतिक) और 'सेखिया धर्मा' (शैक्षण्य) इन दो नियमों की गणना में अन्तर है। पालि संस्करण में इनकी संख्या कमशः १२ और ३५ हैं जब कि चीनी 'शिवुन्-रित्सु' में वह इसी कम से १० और १०० है। 'पाचित्तिय' धर्मों सम्बन्धी मत-भेद कुछ महत्वपूर्ण भी हो सकता है, किन्तु 'सेखिय' धर्मों सम्बन्धी मत-भेद विलक्ष्य कुछ महत्वपूर्ण नहीं है। 'सेखिय धर्म' बाह्य शिष्टाचार सम्बन्धी छोटे-मोटे नियम हैं, जो बुद्धोक्त 'जटानुब्रह्म' को कोटि में आसानी से आ जाते हैं। अतः उनके विषय में मतभेद होना भिन्न-संघ के इतिहास में प्रथम समीक्षा के समय से ही देखा जाता है। स्वयं विभिन्न चीनी सम्प्रदायों के विनय-पिटकों में भी इसके विषय में समानता नहीं है। पालि विनय-पिटक के ७५ 'सेखिय' धर्मों के स्थान पर 'शिवुन्-रित्सु' में तो उनकी संख्या १०० है ही, नवीन सर्वास्तिवादी विनय के अनुसार उनकी संख्या १०३ है। तिब्बती मूल सर्वास्तिवादियों के अनुसार तो वह १०६ है ही, जैसा हम देख चुके हैं। इस प्रकार कुछ छोटे-मोटे विभेद हैं। 'महाव्यत्पत्ति' (महायानी ग्रन्थ) ने इन शैक्षण्य धर्मों को 'असंख्य' (संबहुलः शैक्षण्यर्थाः) बताकर इस सम्बन्धी भेद का बड़ा ही अच्छा समाधान कर दिया है। पालि और चीनी विनय-पिटकों के शिक्षापदों की तुलना के आधार पर यहाँ एक सम्भाव रख देना आवश्यक जान गहता है। पालि विनय-पिटक में, जैसा हमने अभी देखा है, शिक्षापदों की संख्या २२७ है। किन्तु अंगूतर निकाय में कम से कम दो जगह उनकी संख्या १००

जिति आदि अनेक विनय-सम्बन्धी ग्रन्थों के फोटो लाये हैं, जिनके सम्पादन के बाद इस विषय सम्बन्धी अध्ययन पर पर्याप्त प्रकाश पड़ेगा। अभी ये प्रतिलिपियाँ विहार और उड़ीसा के ओरियनल रिसर्च इनस्टीट्यू-टिंग्स, पटना में सुरक्षित हैं।

कही गई है ।<sup>१</sup> ('मिलिन्डपञ्च' में भी १५० शिक्षापदों का वर्णन है<sup>२</sup> । यदि पालि मूली की कुल संख्या (२२७) में से हम उसके ७५ 'सेखिय' घर्मों को, जो अत्यं महत्त्व के हैं, निकालते हैं तो बाकी संख्या १५२ बच जाती है । किन्तु 'शबुन्-रित्तु' की कुल संख्या २५० में से उसके १०० 'शैक्ष्य' घर्मों को निकाल देने पर ठीक संख्या १५० बच जाती है । क्या पालि विनय-पिटक की अपेक्षा 'शबुन्-रित्तु' उस प्रम्परा का अधिक बाहक है जिसके आधार पर अंगुत्तर-निकाय या मिलिन्डपञ्च में शिक्षापदों की संख्या १५० बताई गई है ?

### विनय-पिटक के नियम

पालि विनय-पिटक के अनुमार अब हम उसके ऊपर निंदिष्ट २२७ शिक्षापदों या विनय-सम्बन्धी नियमों का वर्णन करेंगे ।

### चार पाराजिक घन्म

'पाराजिक घन्म' का अर्थ है वे वस्तुएँ जो भिन्न को पराजय दिलाती हैं, अथोत् जिस उद्देश्य के लिये उसने घर से बेघर होकर प्रद्रज्या ली है उसमें उसे सफल नहीं होने देती । इस प्रकार की वस्तुएँ चार हैं, (१) श्री-मैथुन (२) चोरी या न दी हुई वस्तु को लेना (३) मृत्यु या आत्म-हत्या की प्रशसा करना, ताकि कोई दूसरा आदमी आत्म-हत्या करने के लिये उचित हो जाय (४) लाभ या मत्तार की इच्छा से अपने अन्दर ज्ञान और दर्शन की प्राप्ति दिलाना जब कि बास्तव में ऐसी प्राप्ति नहीं हुई है । ये चार वस्तुएँ भिन्न को उसके श्रामण्य के उद्देश्य की प्राप्ति नहीं हानि देता । वे उसे पराजित कर डालती हैं । इसीलिये वे 'पाराजिक घन्म' कहलाती हैं । इनमें से किसी एक का भी अपराधी होने पर भिन्न बदू का शिक्ष्य नहीं रहता । वह अपने उद्देश्य से पतित हो जाता है । वह

१. देखिये विटरनित्त : हिस्ट्री ऑब इंडियन लिटरेचर, जिल्ड हूसरी, पृष्ठ २३, पद-संकेत ५; अंगुत्तर-निकाय में बास्तव में शब्द है 'साधिक वियह-सिक्षापदसत्' (१५० या उससे कुछ अधिक) जिसका अर्थ जाचाय बृद्धघोषने ठीक १५० किया है । 'मिलिन्डपञ्च' में भी बिलकुल यही शब्द है ।

२. देखिये, पृष्ठ २६७ (बन्धु विद्विद्वालय का संस्करण)

संघ से बहिष्कृत कर दिया जाता है। उसके लिये किसी प्रायश्चित्त का विधान नहीं है। जैसे पीली पड़ी हुई पत्ती पेड़ से भास्कर मिर पहती है, उसी प्रकार यह भिक्षु अपराध के सबंधा अयोग्य समझा जाता है और नियमानुसार संघ से उसका निष्कासन कर दिया जाता है।

### तेरह संघादिसेसा धर्मा

चार पाराजिक धर्मों का दण्ड तो जैसा हम ऊपर देख चुके हैं संघ से निष्कासन है। 'संघादिसेस' धर्म इन पाराजिक धर्मों से कुछ कम गम्भीर अपराध माने जाते हैं। इनका नाम 'संघादिसेस' इसलिये है कि इनके दण्ड-स्वरूप अपराधी भिक्षु को छह दिन के लिये अस्थायी रूप से संघ को छोड़ देना पड़ता है और प्रायश्चित्त-स्वरूप वह अकेला रह कर तपस्या (मानन) करता है। बाद में शुद्ध होकर वह संघ में प्रवेश करता है। 'संघादिसेस' कोटि में आने वाले तेरह अपराध हैं, जो इस प्रकार हैं (१) जान बूझकर बीयं-नाश करना। अज्ञात हप से स्वप्न-दोष में बीयं-स्वलन हो जाना इसके अन्तर्गत अपराध नहीं माना जाता (२) काम-वासना से स्त्री-स्त्रशं (३) काम-वासना से स्त्री से बातोलाप (४) अपनी प्रजेसा द्वारा किसी स्त्री को अपनी ओर बुरे उद्देश्य से जाकर्पित करना (५) विवाह सम्बन्ध निश्चित करवाना या प्रेमियों का संगम करवाना (६) विना संघ की अनुमति लिये अपने लिये विहार बनवाने लग जाना (७) विना संघ की अनुमति के निश्चित मात्रा से बड़े नाप के विहार बनवाने लग जाना जिनके चारों ओर लकड़ी जगह भी न हो (८) कोप के कारण निराधार ही किसी भिक्षु को 'पाराजिक धर्म' का अपराधी ठहराना (९) पाराजिक अपराध से मिलते-जुलते किसी अन्य अपराध को पाराजिक अपराध बतलाकर किसी साथी भिक्षु को उसका अपराधी ठहराना (१०) बारबार चेतावनी दिये जाने पर भी संघ में फूट डालने का प्रयत्न करना (११) फूट डालने वालों की सहायता करना। (१२) विना किसी मृहस्य की अनुमति के उसके पर के भीतर घुस जाना (१३) बारबार चेतावनी दिये जाने पर भी संघ या साथी भिक्षुओं के आदेश को न मूलना।

### दो अनियत धर्मा

'अनियत' का अर्थ है अनिश्चित। जिन अपराधों का स्वरूप अनिश्चित हो और साक्ष प्राप्त होने पर ही जिन्हें एक विवेष ध्येयी के अपराधों में रखता जा

तके, तत्सम्बन्धी नियमों को 'अतिवयता धर्ममा' कहते हैं। इनका सम्बन्ध दो प्रकार के अपराधों से है (१) यदि कोई भिष्म किसी एकान्त स्थान पर बैठा हुआ स्त्री से बातें कर रहा है और कोई अद्वावती उपासिका आकर उसे 'पाराजिक' 'संघादिसेस' या 'पाचित्य' (प्रायविचितिक—जिसके लिये प्रायविचित लाठना पड़े) अपराध का दोषी ठहराती है और वह उसे स्वीकार कर लेता है तो वह उसी अपराध के अनुसार दंड का भागी है (२) यदि वह एकान्त स्थान में न बैठ कर किसी खुली हुई जगह में बैठ कर ही स्त्री से सम्भाषण कर रहा है। किन्तु उसके शब्दों में कुछ अनीचित्य है और कोई अद्वावती उपासिका उसी प्रकार आकर उसे 'पाराजिक' 'संघादिसेस' या 'पाचित्य' अपराध का दोषी ठहराती है और वह उसे स्वीकार कर लेता है, तो वह उसी अपराध के अनुसार दंड का भागी है।

### तीस निस्समिया पाचित्या धर्ममा

'निस्समिया पाचित्या धर्ममा' वे अपराध हैं जिनके लिये स्वीकरण के साथ साथ प्रायविचित करना पड़ता है और जिस वस्तु के सम्बन्ध में अपराध किया जाता वह वस्तु भी भिष्म से छीन ली जाती है। इस घेणी के अपराधों में प्रायः सभी वस्त्र-मंबन्धी और केवल दो भिष्मा-यात्र सम्बन्धी हैं। वस्त्र सम्बन्धी तृष्णा भिष्म को किन किन रूपों में आ सकती है, इसी को देखकर इन नियमों का विधान किया गया है। उत्तरणतः यदि कोई भिष्म अपने पास अतिरिक्त वस्त्र रखता है, या किसी गृहस्थ से बेठीक समय पर वस्त्र माँगता है, या अपनी इच्छानुसार किसी अच्छे वस्त्र को प्राप्त करने के लिये अपने किसी उपासक-गृहस्थ को दृश्यारा देता है, या रेशम या मूलायम ऊन के गद्दों आदि को काम में लेता है, तो वह इस अपराधी के अन्तर्गत अपराधी होता है। इसी प्रकार अतिरिक्त भिष्मा-यात्र रखने पर या चिना आवश्यक कारण उसे किसी दूसरे से बदल लेने पर वह इस अपराध के अन्तर्गत अपराधी होता है। इन वस्त्र और भिष्मा-यात्र सम्बन्धी नियमों का उद्देश्य, जिनके सब के व्योरेवार विवरण देने की हमें आवश्यकता नहीं, केवल यही है कि भिष्म इन वस्तुओं के प्रयोग में संयत और सावधान रहे, वे अलोच्छ हों और यथा-ग्राह्य सामग्री से ही अपना गुजारा कर लें। अवित के क्षेत्र संघ की प्रतिष्ठा भी इन नियमों के द्वारा की गई है। जो वस्तु संघ को दान दी गई है उसे कोई एक भिष्म व्यक्तिगत रूप से अपनी बनाकर नहीं रख

सकता । ऐसा करने पर वह अपराधी ठहरता है, उसे प्रायशिचत्त करना पड़ता है और वह वस्तु संघ को लौटा देनी पड़ती है ।

## ९२ पारिचित्तया धम्मा

९२ अपराधों की एक सूची ऐसी है जिन्हें करने पर प्रायशिचत्त करने के बाद अपराधमुक्त कर दिया जाता है । भीनी विनय-पिटक शिवुन्-रित्म् (धम्मगुत्तिक सम्प्रदाय का विनय-पिटक) में इस श्रेणी के बेबल ०० अपराधों का उल्लेख है । इन सब अपराधों का विवरण यही ज्ञावशयक होगा । संथ-जास्तन की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण होते हुए, भी पालि-साहित्य के इतिहास में तो इनका मन्त्रिष्ठ निर्देश ही हो सकता है । अधिकतर नियम ऐसे हैं जो उस समय के देश-काल आदि से सम्बन्ध रखते हैं, किन्तु ऐसे भी कम नहीं हैं जिनका उपर्योग सब काल और सब देश के लिये है । भित्ति के लिये एक बार भोजन करना, भित्तियों को उपर्योग देते समय जावधान और जागरूक रहना, भित्ति-यदि के गोरव को रक्षा करना, आदि वर्तमान ऐसों हैं जिनका उल्लेखन करने पर भित्तियों को प्रायशिचत्त कर जाने के लिये संयम-रक्षा का संकल्प लेना पड़ता था । भठ बोलना, गाली देना, चूंगली करना, नजीली चीजों का प्रयोग करना, आदि अपराधों के करने पर भी प्रायशिचत्त करने के बाद आगे के लिये बैसा न करने के लिये कृत-संकल्प होना पड़ता था ।

## चार पटिदेसनिया धम्मा

'पटिदेसनिया धम्मा' का अर्थ है वे बल्लुएं जिनके लिये प्रतिदेशना (अमायाचना) आवश्यक हो । किसी अन्नात भित्तियों द्वारा भोजन-प्राप्ति, भोजन के समय किसी भित्तियों की भित्तियों के प्रति आदेश देती हुई बेलकर भी उसे न रोकना, बिना पूर्व निमंत्रण के अपने स्थान पर किसी गृहस्थ के हाथ से भोजन ग्रहण करना तथा उपद्रव-ग्रस्त वन में किसी गृहस्थ को कहीं बुलवा कर उसके हाथ से भोजन की प्राप्ति, इन चार अपराधों के लिये अमा-याचना करनी पड़ती है ।

## ७५ सेरिया धम्मा

'सेरिया धम्मा' या शैश्व धम्म ये हैं जिनका सम्बन्ध बाहरी शिष्टाचार वस्त्र पहनने के डंग और भोजन जादि करने के नियमों से है । भित्ति को किस प्रकार शीक वस्त्र पहनकर भिक्षा-निया के लिये जाना चाहिये, किस प्रकार शरीर औ

वस्त्रों के उचित समेटन और फैलाव के साथ उसे बरतना चाहिये, किस प्रकार उसे शान्त रहना चाहिये, जोर से हँसना आदि नहीं चाहिये, इन्हीं सब बातों का विस्तृत विवरण किया गया है और इनके तोड़ने पर फिर शिक्षा का विधान किया गया है। इन नियमों में से अधिकतर तत्कालीन शिष्टाचार से सम्बन्ध रखते हैं जो बीदू देशों में आज तक भी कुछ हद तक जीवित अवस्था में हैं।

### सात अधिकरण-समझा धर्मा

संघ में विवाद होने पर उसकी शान्ति के उपाय के रूप में सात नियमों का विधान किया गया है। वे सात नियम हैं (१) संमुख-विनय (२) स्मृति-विनय (३) अ-मूढ़ विनय (४) प्रतिज्ञात करण (५) यद्भूयसिक (६) तत्पापी-यसिक (७) तिग्रवत्पारक। चूंकि संघ-शासन तथा तत्कालीन गणतन्त्रीय शासन-अवधस्था की दृष्टि से ये अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं, अतः इनका संभिप्त विवरण अपेक्षित होगा। भगवान् के मुख से ही नुनिये—“आनन्द ! संमुख विनय कैसे होता है ? आनन्द ! भिन्न विवाद करते हैं यह धर्म है या अधर्म ; विनय या अविनय ? आनन्द ! उन सभी भिन्नओं को एक जगह एकत्रित होना चाहिये। एकत्रित होकर धर्म रसी का ज्ञान से परीक्षण करता चाहिये। जैसे वह ज्ञान हो उसी प्रकार उस भगवे (अधिकरण) को शान्त करना चाहिये। इस प्रकार आनन्द ! संमुख विनय होता है। इस प्रकार संमुख विनय से भी किन्हीं किन्हीं भगवान् (अधिकरणों) का शमन होता है।

“आनन्द ! यद्भूयसिक कैसे होता है ? आनन्द ! पदि भिन्न अपने भगवे को उसी आवास (मिवास-स्थान) में शान्त न कर सके तो आनन्द ! उन सभी भिन्नों को, जिस आवास में अधिक भिन्न है, वही जाना चाहिये। वही सबको एक जगह एकत्रित होना चाहिये, एकत्रित होकर धर्म रसी का समनुमानन (परीक्षण) करना चाहिये। इस प्रकार भी कुछ भगवान् का शमन हो जाता है।

“आनन्द ! स्मृति-विनय कैसे होता है ? यहाँ आनन्द ! भिन्न भिन्न परपाराजिक या-पाराजिक समान दोष का आरोप लगाता है, स्मरण करो जावूम ! तुम पाराजिक या पाराजिक-समान वहे दोष के अपराधी हुए, किन्तु वह इसरा भिन्न उत्तर में कहता है, ‘आवूम ! मूँझे याद नहीं कि मैं ऐसी भारी आपत्ति से आपन्ह हूं, दोष से दोषी हूं।’ उस भिन्न को आनन्द ! स्मृति-विनय देना चाहिये। इस स्मृति विनय से भी किन्हीं किन्हीं भगवान् का निवारा होता है।

"आनन्द ! अमृड़ विनय कैसे होता है ? ..... 'आवुस ! मैं पागल हो गया था, मुझे भूति-भ्रम हो गया था, उन्मत्त हो मैंने बहुत सा अमण-विशद आचरण किया, भाषण किया, मुझे वह स्मरण नहीं होता । मृड़ हो, मैंने वह किया । उस भिक्षुको आनन्द ! अ-मृड़-विनय देना चाहिये ।

"आनन्द ! प्रतिज्ञात करण कैसे होता है ? आनन्द ! ..... भिक्षु दूसरों के द्वारा जारोप करने या न करने पर भी अपने दोष को स्मरण करता है, खोलता है, स्पष्ट करता है । उस भिक्षु को अपने से बुद्धतर भिक्षु के पास जाकर चौबर को एक (बाये) कन्धे पर करके, पाद-बन्दना कर हाथ जोड़कर ऐसा कहना चाहिये, 'भन्ते ! मैं इस नाम की आपत्ति (दोष) से आपद्ध हूँ, उसकी मैं प्रति-देखना (निवेदन) करता हूँ' । तब वह दूसरा भिक्षु ऐसा कहे 'देखते हो उस दोष को ?' 'देखता हूँ' "आगे से इन्द्रिय-रक्षा करना", "रक्षा करेंगा" । आनन्द ! इस प्रकार प्रतिज्ञात-करण होता है ।

"आनन्द ! तत्पारीयसिका कैसे होती है ? यही आनन्द ! किसी भिक्षु पर कोई दूसरा भिक्षु पाराजिक या पाराजिक-समान भारी अपराध का दोष लगाता है । वह उसे सुनकर कहता है, 'आवुस ! मुझे स्मरण नहीं कि मैं ऐसी भारी आपत्ति से आपन्न हुआ हूँ' फिर दोष लगाने वाला भिक्षु कहता है 'आपूर्यमन ! अच्छी तरह बूझो । क्या तुम्हें स्मरण है कि तुम ऐसी भारी आपत्ति में आपन्न हुए थे !' 'आवुस ! मैं स्मरण नहीं करता कि मैं ऐसी भारी आपत्ति से आपन्न हुआ । स्मरण करता हूँ आवुस ! मैं इस प्रकार की छोटी आपत्ति से आपन्न हुआ' । 'आपूर्यमन ! अच्छी तरह बूझो ।' 'आवुस ! मैं इस प्रकार की छोटी आपत्ति से आपन्न हुआ, यह मैं बिना पूछे ही स्वीकार करता हूँ, तो क्या मैं ऐसी भारी आपत्ति से आपन्न हो पूछते पर भी स्वीकार न करेंगा' । अधिक जोर देने पर वह स्वीकार करले 'आवुस ! स्मरण करता हूँ मैं ऐसी भारी आपत्ति (दोष) में आपन्न हुआ । सहसा प्रमाद से मैंने यह कह दिया कि मैं स्मरण नहीं करता' । इस प्रकार आनन्द ! तत्पारीयसिका (उससे भी और कहीं आपत्ति) होती है ।

"आनन्द ! तिण्ण वित्त्वारक कैसे होता है ? आनन्द ! आपस में कलह करते हुए भिल बहुत से अमण-विशद आचरण करते और भाषण करते हैं । उन सभी भिक्षुओं को एकत्रित होना चाहिए । एकत्रित हो कर एक पक्ष यालों में से किसी चतुर भिक्षु को आसन से उठ कर चौबर को एक कन्धे पर कर हाथ जोड़ सभ को विजापित करना चाहिए 'भन्ते ! सभ सुने । कलह करते हुए हमने बहुत से

श्रमण-विशद आचरण किए हैं। यदि मध्य उचित समझे तो जो इन आद्यतानों का दोष है और जो मेरा दोष है, इन आद्यतानों के लिए भी और अपने लिए भी मैं तिणवित्यारक (धौस से डौकना जैसा) स्थान करूँ, लेकिन वह दोष गृहस्थ-समवन्धी को छोड़ कर। तब दूसरे पक्ष बालों में से चतुर भिन्न को आमन से उठ कर ऐसा ही करना चाहिए। इस प्रकार आमन्द! तिणवित्यारक (तृष्ण से डौकने जैसा) होता है”।<sup>१</sup>

भिन्नओं के समान भिन्नणिओं के लिए भी अनेक आचरण-सम्बन्धी नियमों का विधान था। आठ मृण-धर्म तो भगवान् ने प्रथम बार ही भिन्नणी-गंज के लिए स्थापित कर दिये गए थे, जो इस प्रकार है—

- (१) नीं वर्ष की उपसमदा पाई हुई भिन्नणी को भी उसी दिन के समय भिन्न के लिए अभिवादन, प्रत्युत्थान, ब्रजलि जोडना, सामीचों कर्म करना चाहिए।
- (२) वहाँ भिन्न न हों, ऐसे स्थान में वार्षोवास नहीं करना चाहिए।
- (३) प्रति आधे मास भिन्नणी को भिन्न-संघ से पर्येषण करना चाहिए।
- (४) वर्षा-वास कर चुकने पर भिन्नणी को दोनों संघों में देखे, सुने, जाने तीनों स्थानों से प्रवारणा करनी चाहिए।
- (५) जिस भिन्नणी ने मृण-धर्मों को स्वीकार कर लिया है उसे दोनों संघों को मानना चाहिए।
- (६) किसी प्रकार की भिन्नणी भिन्न को गाली आदि न दे।
- (७) भिन्नणिओं का भिन्नों की कुछ भी कहने का रास्ता बन्द है। भिन्नणी को भिन्न से बात नहीं करनी चाहिए।
- (८) भिन्नओं का भिन्नणिओं को कहने का रास्ता खुला है। अर्थात् भिन्नओं को उन्हें उपदेश करने का अधिकार है।

उपर्युक्त प्रधान नियमों के अलावा भिन्नणियों के दैनिक जीवन के लिए अनेक साधारण नियम भी थे। उनमें कुछ भिन्नओं के समान भी थे, जैसे भूठ, चुगली आदि से बिरति। कुछ विशिष्ट रूप से उनके लिए ही थे, जैसे एकान्त या अंधेर स्थान में किसी से सम्भाषण न करना, रात्रि में अकेली कहीं न जाना, सड़क पर भी किसी से अलग बात नहीं करना, किसी भी गृहस्थ या गृहस्थ-युवा से न

१. साधगाम-सूत (मविभग. ३।१।४; महापंडित राहुल सांकृत्यापन का अनुवाद)

मिलना-जुलना, जीविका के लिए कोई शिल्प न सीखना न सिखाना, अंग-नेप आदि न लगाना, जादि । भिक्षुणियों पर भी पाराजिका आदि दोष उसी प्रकार लागू हो जैसे भिक्षुओं पर । ही, प्रशंस्या प्राप्त करने से पहले के दोषों के लिए वे दंड की भागिनी नहीं होती थीं । एक बार एक व्यभिचारिणी द्वीप संघ में प्रवेश पा गयी थीं । संघ-प्रबोध के बाद वह उसके लिए दृष्टित नहीं की गई ।

उत्तर भिक्षु-भिक्षुणियों सम्बन्धी नियमों और उनके उल्लंघन करने पर प्राप्त दण्ड-विधान का कुछ विवरण किया गया है । वास्तव में विनय-पिटक नियमों और उनके उल्लंघन से उत्पन्न दोषों की इतनी लम्बी सूची है कि उसका नक्षेप नहीं दिया जा सकता । किन्तु विनय-पिटक में नियमों के अलावा और भी बहुत कुछ है । उसकी विषय-बस्तु के अम में ये नियम और अन्य बातें कहीं नहीं आती हैं, यह तत्सन्बन्धी विश्लेषण से स्पष्ट होगा । जैसा पहले कहा जा चुका है, विनय-पिटक निम्नलिखित भागों में विभक्त है—

### १. सुन्त-विभंग

- (अ) पाराजिक
- (आ) पाचित्तिय

### २. सम्बन्ध

- (अ) महावग्म
- (आ) चूल्लवग्म

### ३. परिवार

## सुन्त-विभंग

सुन्त-विभंग के दो भागों 'पाराजिक' और 'पाचित्तिय' में क्रमशः उन अपराधों का उल्लेख है, जिनका दृढ़ क्रमानुसार संघ से निष्कासन या किसी प्रकार का प्रायोगिक है । ये ऋषदाव संघमा में २२७ हैं और जैसा हम अभी दिला चुके हैं, इन सम्बन्धी नियम बाठ बर्गोंकरणों में विभक्त हैं, यथा (१) बार पाराजिक, (२) १३ संधादिसेम, (३) दो अनियतो धर्म, (४) तीस निस्समिया पाचित्तिया धर्म, (५) ९२ पाचित्तिय धर्म, (६) बार पटिवेमनिय धर्म, (७) ३५ सेत्रिय धर्म, तथा (८) सात अधिकरणसमय धर्म । इनका विश्लेषण हम पहले कर चुके हैं । सुन्त-विभंग में इन्हीं नियमों का विश्लेषण है । साथ में इन नियमों का

विधान किस प्रकार किया गया इसका पूरा इतिहास भी दिया गया है। अपराधों के विचार से वर्गीकरण करने पर 'सुत-विभंग' के दो विभाग होते ही (१) पाराजिक और (२) पाचित्तिय, किन्तु भिक्षु और भिक्षुणी संघों को उद्देश्य कर उनका वर्गीकरण करने से उसके दो भाग होते हैं (१) महाविभंग या भिक्षु-विभंग और (२) भिक्षुणी-विभंग (भिक्षुनी विभंग)। भिक्षु-विभंग में भिक्षुओं सम्बन्धी नियमों का विवरण है और भिक्षुनी-विभंग में भिक्षुणी-सम्बन्धी नियमों का। इन नियमों का इतिहास छोड़ कर केवल नियमों मात्र का सम्बह ही 'पातिमोक्ष' के नाम से प्रसिद्ध है। भिक्षु और भिक्षुणी संघ के बन्दुकार पातिमोक्ष के भी दो भेद हैं, यथा (१) भिक्षु पातिमोक्ष और (२) भिक्षुनी पातिमोक्ष और कमज़ूँ महाविभंग (भिक्षु विभंग) और भिक्षुनी-विभंग के ही संक्षिप्त रूप हैं। यदि हम जाहें तो सुत-विभंग को 'पातिमोक्ष' का विस्तृत समय या व्याख्या कह सकते हैं, या 'पातिमोक्ष' को 'सुत-विभंग' का उपयोग के बोध्य संधिकीरण। भिक्षु-संघ में उपोसथ (उपवलय-उपवास-क्रत) नाम का एक संस्कार होता था। प्रत्येक मास की अमावस्या और पूर्णिमा को जितने भिक्षु एक गोद या सेत के पास विहरते थे, सब एक बगड़ एकशित हो जाते थे और उन सब को उपस्थिति में 'पातिमोक्ष' (प्रातिमोक्ष) का पाठ होता था। 'पातिमोक्ष' में, जैसा हम अभी कह सके हैं, पाराजिक, पाचित्तिय आदि के वर्गीकरण में विभाग २२७ अपराधों एवं तत्सम्बन्धी नियमों का विवरण है। 'पातिमोक्ष' का पाठ करते समय जैसे जैसे अपराधों के प्रत्येक वर्गीकरण का पाठ किया जाता था, उस गामा में सम्मिलित प्रत्येक भिक्षु से यह आधा की जाती थी कि वह उठ कर यदि उसने वह अपराध किया है तो उसका स्वीकरण कर ले, ताकि भविष्य के लिए सध्यम हो सके। उपवासादि रथने और पाप-प्रायशिचित्त करने की यह प्रथा प्रामुख्यकालीन भारत में अन्य सम्प्रदायों में भी प्रचलित थी। किन्तु बुद्धने उसे एक विशेष नेतृत्व अर्थ से अनुप्राणित कर दिया था। पाप को उषाड़ देने से वह छूट जाता है। चित्त-शुद्धि को लिए अपने पापों को खोल देना चाहिए। गृह्ण रथने से वे और भी लिपटते हैं। पाप-स्वीकरण, दामा-शानना और आगे के लिए कृतमंकलपता, मही प्रातिमोक्ष-विधान के प्रधान लक्ष्य थे। चूंकि ऐमा करने के बाद प्रत्येक अपराधी भिक्षु एक प्रकार अपने-अपने अपराध के बोझ को उठा पेकता था, उससे विमुक्ति पा जाता था, इसलिए 'पातिमोक्ष' ना अप्य प्रत्येक का पाप-भार को किंक देना, पाप से मुक्त हो जाना, पाप से

मोक्ष पा जाना, हो सकता है। जूँकि प्रत्येक भिक्षु अलग अपने मुख से अपने पाप का स्वीकरण कर पाप-विमुक्त होता था, अतः 'प्रातिमोक्ष' के 'प्राति' शब्द में यह 'प्रति' का भाव स्लेकर हम कह सकते हैं कि 'प्रातिमोक्ष' का अर्थ है प्रत्येक को अलग अलग मुक्ति। जूँकि पालि 'प्रातिमोक्ष' का सत्यकृत प्रतिरूप 'प्रातिमोक्ष' ही सर्वास्तिवादी आदि प्राचीन बोद्ध सम्प्रदायों ने किया है, अतः पालि 'प्रातिमोक्ष' का भी अर्थ प्रत्येक का अलग अलग पाप-मुक्त हो जाना बशूद नहीं हो सकता। आधुनिक विदान् अधिकतर इसी अर्थ को लेते हैं। किन्तु आचार्य बुद्धघोष ने 'प्रति मुख' अर्थात् प्रत्येक भिक्षु के द्वारा अपने अपने मुख से पाप-स्वीकरण, इस अर्थ पर जोर दिया है। यह 'प्रातिमोक्ष' में होता ही है। बुद्धघोष की 'प्रातिमोक्ष' की निरक्षित और सर्वास्तिवादी आदि सम्प्रदायों में 'प्रातिमोक्ष' के रूप में उसका अर्थ ग्रहण, इन दोनों में कोई असंगति नहीं है। बल्कि वे दोनों ही उसके किया और फल के त्रयम्; सूतक हैं, अतः वे एक दूसरे के पूरक भी हैं। भगवान् ने प्रातिमोक्ष-सम्बन्धी उपदेश सूतों में भी अनेक बार दिया है" १ भिक्षु शोलवान् होता है, प्रातिमोक्ष के संबंध (संबंध) में संवृत होता है, आचार्य-गोचर से सम्बन्ध होता है, शिखापदों को प्रहण कर अभ्यास करता है" २ आदि, ।

## खन्धक

विनय-पिटक का दूसरा भाग खन्धक भी दो भागों में विभक्त है, महावग्म और चूल्लवग्म। सूत-विभंग जब कि अधिकांशतः निषेधात्मक है, महावग्म उसी का विधानात्मक स्वरूप है। संग के अन्दर जिस प्रकार का जीवन विज्ञाना चाहिए उसका यहाँ निरूपण किया गया है। महावग्म में प्रथम दस खन्धक हैं। सम्बोधि-प्राप्ति से लेकर प्रथम संघ की स्थापना तक कायदाँ पुराइतिहास भी दिया गया है। यह भाग 'महावग्म' का बड़ा महत्वपूर्ण है। पहले खन्धक (विभाग, अध्याय) में भगवान् बृद्ध को बृद्धत्व-प्राप्ति एवं बारामसी में धर्म चक्र-प्रवर्तन का वर्णन है।

१. गोपक-मोगलालान् सूत (मञ्जिभम् ३।१।८); मिलाइये "भिक्षुओ ! शोल-सम्बन्ध होकर विहरो, प्रातिमोक्ष-संबंध से संवृत (रक्षित) होकर विहरो, शिखापदों को प्रहण कर उनका अभ्यास करो।" आकंसेय्य-सूत (मञ्जिभम् १।१।६)

इसके बीच उरुवेला से लेकर बाराणसी तक की उनकी यात्रा का विस्तृत विवरण है। इसी प्रसंग में मार्ग के बीच में ही तपस्सु और भल्लक नामक चण्डियों को भगवान् उपासक बनाते हैं और वे बुद्ध और धर्म की शरण में जाते हैं। उपक नामक आजीवक भी भगवान् को मार्ग में मिलता है, उसके साथ ही उनके संलाप का विवरण है। बाराणसी में धर्म-चक्र-प्रवर्तन करने के बाद भगवान् जाजा कौशिङ्ग, भट्टि, बण्ण, अस्सजि और महानाम इन पञ्चवर्षीय भिक्षुओं को जो उनके साथ पहले उरुवेला में रहे, बुद्ध-मत में प्रव्रजित करते हैं। इसके बाद यह के सन्यास का वर्णन है। उसके बाद काश्यप-बन्धुओं (बटिल काश्यप, उरुवेल काश्यप, नदी काश्यप) की प्रश्नाएँ का वर्णन है। महाराज विविसार के उपासकत्व का भी वर्णन है। "भन्ते ! मेरी पाँच वभिलापाएँ थीं—मेरा राज्य-अभियक्त होता—मेरे राज्य में सम्यक् सम्बुद्ध जाते—मैं उनकी सेवा करता—वे भगवान् मुझे धर्म-उपदेश करते—उन भगवान् को मैं जानता। भन्ते ! ये मेरी पाँचों इच्छाएँ आज पूरी हो गईं। इसलिए भन्ते ! मैं भगवान् की शरण लेता हूँ, धर्म की और भिक्षु-संघ की भी।" इसी समय उसने भिक्षु-संघ को बेण-वन दान भीकिया। सारिपुत्र और मौदगल्यायन के सन्यास का वर्णन, महाकाश्यप के सन्यास का वर्णन, नन्द और राहुल का सन्यास, अनिरुद्ध, आनन्द, उपालि आदि के सन्यास के वर्णन, सभी क्रमानुसार दिए गए हैं जो भिक्षु-संघ के बुद्धकालीन विकास को जानने के लिए तथा इन प्रथम विद्यों को जीवन-साधना से परिचित होने के लिए बड़े आवश्यक हैं। बुद्ध-स्वभाव पर प्रकाश ढालने वाले भी जनक प्रकरण बीच-बीच में मिलते ही चलते हैं। उदाहरणतः इसी वर्ग में हम भगवान् बुद्ध को एक रोमी भिक्षु की सेवा-शश्रूया करते देखते हैं। साथ में आनन्द भी भगवान् की सहायता करते हैं। यह प्रसंग वास्तविक श्रमण-धर्म को जानने के लिए अति आवश्यक है। वास्तव में अनिरुद्ध, उपालि और आनन्द के सन्यास के वर्णन चूल्लवग्म में हैं, जो महावग्म का ही आगे का भाग है। इसी वर्ग में अगे अनार्थितिक की दौका और जेतवन-दान का वर्णन और महाप्रजापती गोतमी की प्रद्युम्ना का वर्णन है। यहीं से भिक्षणी-संघ का भी आरम्भ होता है। चूल्लवग्म के अन्त में प्रथम दो बोद्ध संगीतियों के विवरण हैं। वास्तव में न केवल भिक्षु-संघ के इतिहास की दुष्टि से ही बल्कि छठी जातानन्दी ईसवी पूर्व के भारतीय समाज की अवस्था को जानने के लिए भी महावग्म और चूल्लवग्म में पर्याप्त सामग्री भरी हुई। जीवक कीमारभृत्य का विवरण जो महावग्म में आता है, तत्कालीन आयुर्वेद सम्बन्धी ज्ञान और उसके

अभ्यास का अच्छा परिचय देता है। विनिवार आदि के विवरण तत्कालीन राजनीतिक परिस्थिति और वैशाली आदि के विवरण उस समय को सामान्य सम्बन्धों और मत्तृधों के रहन-नहन के ढंग का अच्छा परिचय देते हैं। निश्चय ही इस दृष्टि ने विषय-पिटक का और विशेषतः महावग्म और चुल्लवग्म का बहा महत्व है। यही पर मूल-विभंग की विषय-वस्तु के पूरक-स्वरूप भिन्न और भिन्नाणी संघोंके आन्तरिक जीवन एवं कार्य-संचालन का भी अच्छा विवर दिया गया है। भिन्न-संघ में प्रवेश के नियम, उपोत्थ्र के नियम, वर्षावास के नियम, उसके अन्त पर 'पवारणा' सम्बन्धी नियम, संघ में फूट पहने पर उसमें एकता लाने के उपाय, भिन्नाओं के जीवन को छोटी से छोटी बातों पर भी सूक्ष्मतापूर्वक विचार, उसके करड़े और जूते पहनने तक के ढंग, सबारी में बैठने सम्बन्धी नियम, विवास-स्पान और उसकी सफाई, भरम्मत आदि सम्बन्धी नियम, किसी भी विषय को यहाँ छोड़ा नहीं गया है। चुल्लवग्म के दसवें शान्तक में केवल भिन्नाणी-जीवन सम्बन्धी नियमों और जातज्य बातों का ही विवरण है। 'शान्तक' से ही संलग्न 'कम्म वाचा' के भी विवरण हैं जो संघ सम्बन्धी विभिन्न कृत्यों और तंत्राणारोंके समय कार्य-प्रणाली के सूचक हैं। 'शान्तक' में आये हुए नियमोंके समान यहाँ विभिन्न कम्मों (कम्म) के लिए प्रयुक्त शब्दों (वाचा) का विधान किया गया है।

'परिवार' या 'परिवार-न्याठ' विषय-पिटक का अन्तिम भाग है। जैसा विटरनित्ति ने कहा है, 'परिवार' का विषय-पिटक से उही सम्बन्ध है, जो वेद की अन्तकरणी और परिचिष्टों का वेद के साथ।<sup>१</sup> 'परिवार' सम्बन्धतः वाद का भी संकलन है। वह प्रस्तोतर के रूप में है। विषय-पिटक की विषय-वस्तु की इसे एक प्रकार से 'मातिका' या विषय-सूची ही समझना चाहिए। 'परिवार' में १२ परिच्छेद हैं, जिनमें अभियम्म को शीतो पर विषय-पिटक के विषय को ही पुनरावृत्ति की गई है। 'परिवार' को अन्तिम भावाओंमें कहा गया है—“पुम्पाचरियमम्बैव पुन्नित्वा तो तन्मिति दोष नम महापञ्चो मृतवदयो विवस्त्रणी इन् वित्यार-नुसेऽसम्भवान्मोत्त नविकर्ते विनिविच्चा लिङ्गारेसि लित्यकान् सुखावहं।” इससे निश्चित है कि विषय-सम्बन्धी शिक्षा के इस भाव को 'दोष' नामक महामति भिन्न ने तिहुक में लेखबद्ध करवाया। 'लेखबद्ध करवाने' (लेखापेसि) का अर्थ

१. हिन्दू आंख इन्डियन लिटरेचर, जित्तद द्वासरी, पृष्ठ ३३

प्रणयन या संकल्प करना या करवाना नहीं है, जैसा कुछ विद्वानों ने भ्रमवश समझ लिया है। पूर्व परम्परा से मौखिक रूप में प्राप्त इस सन्दर्भ को 'दोष' नामक महामति भिक्षु मे (पुस्तकाकार) संख्यावध करवाया, इन गाथाओं का कवल यही अर्थ है। सन्दूष्ये त्रिपिटक के बटुगामणि के समय से संख्यावध किए जाने के प्रमंग (महावंस ३३। २४७९, ८०) में भी ऐसा ही कहा गया है। अतः उसे प्रणयन या संकलन का सूचक नहीं मानना चाहिए। यथापि 'परिवार' के संकलन-काल की तिथि निर्दिष्ट रूप से स्वायित नहीं की जा सकती, फिर भी शैली के साक्षय पर उसे अभिधर्म-पिटक के समकालिक माना जा सकता है, अर्थात् कम से कम तीसरी शताब्दी ईसवी पूर्वे।

इस प्रकार हमने संघ की अनुस्मृति की। जिस प्रकार धर्म की अनुस्मृति में हमने सुसंक्षेप करवाया तो उसी प्रकार भिक्षु-संघ की स्मृति करने में विनाय-पिटक ने हमारी सहायता की। बृद्ध की अनुस्मृति तो दीनों जगह समान ही रही। साव-साध हमने तत्कालीन लोक-समाज को भी देखा, बृद्ध के देश और बाल को भी देखा। इतिहास-लेखक तो इसी पर सर्वाधिक जीर देते हैं, किन्तु हमने तो प्रात्ययिक वस ही सही, पर बृद्ध, धर्म और संघ की अनुस्मृति भी जबदब बीं। निरचय ही महापुरुष (बृद्ध) का गितना बड़ा दान विश्व को 'धर्म' का था, उससे कम बड़ा दान संघ का भी नहीं था। बृद्धकालीन भिक्षु-संघ साक्षात् साधना का निवास-स्थान था। उसकी वह पवित्रता की श्रुति ही थी जो उसकी गहिमा के इतने विशाल भूख्यड़ पर विलार का कारण हई। भिक्षु-संघ के विद्यय में जो यह कहा गया है कि वह आहुनेत्य (निमंत्रण करने योग्य) था, पाहुणेत्य (पाहुना बनाने योग्य) था, दान देने योग्य था, अज्ञालि जोड़ने योग्य था, एवं लोक के लिए गुण्य बोने का अद्वितीय शेष था, वह उसकी पवित्रता और संघम-प्रियता को देखते हुए विलकूल ठीक ही था। भगवान् का श्रावक-संघ 'आमिस-दायाद' नहीं था और न वह किसी लोकिक उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अवस्थित किया गया था, यह इसी से प्रकट होता है कि ज्ञानद और महाकाशय जैसे ज्ञानी और साधक भिक्षुओं के रहते हुए भी शास्त्रा ने किसी को अपने बात संघ का संचालक नहीं बनाया। सर्व और विनय के संचालन में ही उन्होंने उसे छोड़ा। भगवान् का गोई पीटर या अली नहीं बना। कारण, यहाँ वैसा कुछ था ही नहीं जिसका किसी व्यक्ति को उत्तरा विकार सौंपा जा सके। इतनी निर्वयक्तिकर्ता विश्व के इतिहास में अन्यत्र नहीं नहीं देखी गई।

विनय-पटक के नियमों से आधारभूत विश्वजनीन तत्व कितना है अथवा कितना वह देश और काल की विशिष्ट परिस्थितियों से उद्भुत है, यह एक बड़ा महत्वपूर्ण प्रश्न है। नगर्हि ने अपने संस्कृत विनय-सम्बन्धी निबन्ध<sup>१</sup> में इस प्रश्न को उठाया है और सामाजिक परिस्थितियों के परिवर्तित स्वरूपों का विवेचन करते करते के उस हृदय तक पहुँच गए हैं, जहाँ तक स्वाविरचादी बौद्ध परम्परा तो उनके नाय जा ही नहीं सकती, यहाँ और साथना का कोई भी भारतीय विद्यार्थी भी जहाँ तक जाना पसान्द नहीं करेगा। उदाहरणतः स्त्री-संलाप आदि अनेक बातों के साथ साध भिक्ष के एकाशनिक (एकाहारी) होने सम्बन्धी द्रव्य के अभ्यास को भी नगर्हि ने इस आधुनिक दृग में असम्भव और कदाचित् अनावश्यक मान लिया है। निश्चय ही यह सीमा को अतिक्रमण कर जाता है। समाज और जीवन के बाहरी स्थिरों में परिवर्तन होने के साथ-साथ आज के मनुष्य के लिए उनके मूल्यों के अकम में भी परिवर्तन हो जुका है। वह भीतर से मूल्य अंकन करने के बजाय आज बाहर पे करने लगा है। यदि इस दृष्टि से विनय-नियमों को आज देखा जाय तब तो उनमें से अधिकांश नियमों का अभ्यास ही व्यर्थ है। मजिजम-निकाय के कौटागिरि सुत (३२) १० में हम पढ़ते हैं कि बौद्ध के कुछ विषय भिक्षु अद्विजित् और पुनर्बन्ध नामक विनयहीन भिक्षुओं से जा कर कहते हैं, “आवृसो ! भगवान् रात्रि-भोजन से विरत हो कर भोजन करते हैं। भिक्षु-संघ भी रात्रि-भोजन से विरत हो कर भोजन करता है। ऐसा करने से वे आरोग्य, उत्साह, बल और सुखपूर्वक विहार अनुभव नहरते हैं। आओ आवृसो ! तुम भी रात्रि-भोजन से विरत हो कर भोजन करो। तुम भी आरोग्य, उत्साह, बल और सुखपूर्वक विहार को अनुभव करोगे।” अद्विजित् और पुनर्बन्ध नामक विनय-भ्रातृ भिक्षुओं ने उत्तर दिया, “आवृसो ! हम तो आम दो भी खाते हैं, प्रातः भी खाते हैं, दोपहर भी खाते हैं और दोपहर बाद भी। साथ, प्रातः, मध्याह्न, विकाल (दोपहर बाद) सब समय खाते भी हम आरोग्य, उत्साह, बल और सुखपूर्वक विहार करते थूमते हैं। हम साथ भी खायेंगे, प्रातः भी, दिन में भी, विकाल में भी।” यहसा तक अद्विजित् और पुनर्बन्ध ने दिया वैसा आज कोई भी देसकता है। और आज की परिस्थिति में वह कुतक भी नहीं लगेगा। आज मनुष्य के मूल्योंका का सारा विघान ही बदल गया है।

१. ‘बृद्धिस्ट विनय डिस्प्लिन और बृद्धिस्ट कमांडमेन्ट्स,’ डोकें, बृद्धिस्टिक स्टडीज, (डा० लाहा द्वारा सम्पादित) पृष्ठ ३६५-३८३.

अतः यदि समाज के भौतिकवादी जीवनके पूरे स्वीकरण के साथ तथागत-प्रवेदित धर्म-विनय को निभाना है तो वह अशब्द है। काम-वासना को लक्ष्य मानने वाले जन-समाज के लिए तथागत ने उपदेश नहीं दिया। कम से कम उसके लिए उन्हें समझना तो अशक्य ही है। अतः विनय-नियमों को निभाने का काम नो ऐसे महान् साधकों वा ही हो सकता है जो समाज की मान्यताओंसे ऊपर उठने की पुरी शक्ति रखते हों। कम से कम सामाजिक परिस्थितियों के नाम पर जादेश को गिराना तो हमें नहीं चाहिए। स्थविरवादी परम्परा ने विनय-नियमों पर उसके पूरे शब्दों और अर्थों के साथ और दिया है, इसका यही कारण है। साधन की निष्ठा अत्यन्त आवश्यक है। निष्ठावान् के लिए कभी कुछ असम्भव नहीं है। वह समाज और परिस्थितियों को अपने अनुकूल कर सकता है, यदि उसे दृढ़ विश्वास है कि जो कुछ अभ्यास वह करता है उसके पीछे बुद्धों का सारा अनुभव और ज्ञान छिपा हुआ है और उसकी सच्चाई सामाजिक परम्पराओं या परिस्थितियों की अनुमति की अपेक्षा नहीं रखती। ही छोटे-मोटे विनय-सम्बन्धी नियमों के विषय में शास्त्र ने स्वयं ही आश्वासन दे दिया है कि उन्होंने आवश्यकतानुसार छोड़ा जा सकता है। ये छोटे-मोटे विनय-सम्बन्धी नियम क्या हैं, इसके विषय में हम जानते हैं कि पूर्वकालीन धर्मसंगीतिकार भिक्षुओं में ही बड़ा विवाद उठ खड़ा हुआ और केवल अनेक सम्प्रदायों में बैठ जाने के अतिरिक्त वे इसका कोई हल नहीं निकाल सके। बाहरत में इसका हल बाहर से हो ही नहीं सकता। जोई भी बाहरी विधान साधक को यह नहीं बतला सकता कि यह नियम छोड़ने योग्य है या नहीं। इसके लिए तो आनन्दिक साधना से प्राप्त मिमळ विवेकनुदि ही मनस्यके पास सर्वोत्तम साधन है। केवल उसी के द्वारा यह निर्णय किया जा सकता है कि क्या अनुहरन पूर्ण है और छोड़ देने योग्य है और क्या महत्वपूर्ण है और जीवन भर अनुल्लंघनीय है। इस प्रकार चाहे जो कुछ भी त्याज्य या पालनीय छहरे, किन्तु यह निश्चित है कि जो त्याज्य होगा वह देश और काल से उद्भूत तत्त्व होगा और जो पालनीय होगा वह सार्वभीम, सार्वकालिक, तत्त्व होगा, जिससे ही तथागत-प्रवेदित धर्म-विनय अधिकातर भरा हुआ है। 'धृष्टानुकूल' को छोड़ देने वाले विधान कर तथागत ने इसी देश-काल-उद्भूत तत्त्व से विमुक्त हो जाने का भिक्षु-संघ को अनिम उपदेश दिया था, ऐसा हमारा मन्तव्य है। इस प्रकार विनय-सम्बन्धी नियमों में न बाहरी कर्मकांड की गत्थ तक है और न वे साधकों के उस स्वबृद्धि-निषेध के

अधिकार को, जिसे शास्ता ने उन्हें दिया, छीनने का ही उद्योग करते हैं। यह उनकी एक भारी विशेषता है।

विनाश को मूल बातम-संयम है। संयम अर्थात् कापा का संयम, बाणी का संयम, मन का संयम। कार्यिक, चारिक और मानसिक कर्मों का नमाचारण, सम्पूर्ण आचारण, ही 'शोल' कहलाता है। शोल को समाप्ति के लिए ही विनाश-नियमों का विवास किया गया है, यद्यपि यह ठोक है कि वहाँ उभके बाहरी लघु को उत्पन्न कर के ही अधिकातर नियम बनाये गए हैं। फिर भी शास्ता के द्वारा मानसिक संयम पर जो चोर दिया गया है, वह भी उनके मूल में सुरक्षित है, ऐसा कहा जा सकता है। केवल किसी कर्म के करने या न करने से ही शील-विशुद्धि नहीं हो जाती। भगवान् ने स्वयं कहा भी है "मामान्दिय! न दृष्टि में, न अनुभव में, न ज्ञान से, न शील से, न वत से शुद्धि कहता है। अदृष्टि, अ-अृति, अ-ज्ञान, अ-शील, अ-कृत से भी नहीं!" मिश्रब्रह्म ही किसी कर्म के करने या न करने पर सदाचार उत्तमा निर्भर नहीं है जितना उत्तम कर्म-व्यवहार के अन्दर रहने वाली मानसिक प्रवृत्ति पर। इसीलिए चेतना पर भगवान् ने सर्वाधिक जोर दिया है। चक्षु, श्रोत्र, ध्वनि, जिह्वा, काष और मन के संयम का अर्थ यह नहीं है कि इन भौतिक या मानसिक इन्द्रियों में अपने आप में संयम जैसी कोई वस्तु होती है, बल्कि केवल यही है कि जिन जिन वस्तुओं की अनुभूति उनके द्वारा होती है उनको प्रति मानवीय व्यवहार में संयम पैदा होना चाहिए। 'चक्षु-इन्द्रिय में संयम को प्राप्त होता है' (चक्षु-इन्द्रिये संबंध आपज्ञति) इसका अर्थ यह नहीं है कि जापक भौतिक चक्षु को संयमित करता है, या चक्षु और लघु के संयोग को ही नियन्त करता है। यदि ऐसा होता तो जग्नि मौखिये वाला सर्वोत्तम गंगमी होता। अतः चक्षु-इन्द्रिय में संयम प्राप्त करने का अर्थ है चक्षु इन्द्रिय मात्र को ही संयमित नहीं करना (गंगमी है तो वह भी जावशक) बल्कि चक्षु के द्वारा देखे हुए वह के प्रति अपने व्यवहार की संयमित रखना। यही बात श्रोत्र और शब्द, ध्वनि और गत्वा, जिह्वा और रस, काष और स्पर्श तथा मन और धर्म (मानसिक पदार्थ) के विषय में भी जाननी नाहिए। अभिधर्म की भाषा का प्रयोग करने हुए इस नियम का बहुविद्य आचार्य बुद्धधोष ने 'विशुद्धि-मग्म' को प्रथम परिच्छेद में किया है। वास्तव में शास्ता का मत्स्यव जित को संयमित करने का ही है और उनी उद्देश्य के अनुसार हमें विनाश के नियमों की भी व्याख्या करनी चाहिए। जो बातें राग, संग्रह, असन्तोष, अनुशोग्निता और इच्छाओं को बढ़ाने वाली हैं

वे सभी अकरणीय हैं और उनके विपरीत करणीय। विनय-पिटक इन्हीं का कुछ अनुसापन हमें देता है, जो मध्ये सब काल और सब देशों के लिए परिपूर्ण नहीं कहा जा सकता, किंतु वह सदाचार के उम सार्वभौम आदर्श पर आपासित है जिसे लोक-नृ० (बृद्ध) ने आत से द्वाई हजार वर्ष पूर्व मध्य-मंडल में सिकाया था। विनय के उपदेश करने में, जैसा भगवान् ने स्वयं कहा है, वह उद्देश्य उनकी दृष्टि में है। 'मिथुओ! दस जातीं का विचार कर में भिथुओं के उपचार के लिए विनय-नियमों (शिक्षापदों) का उपदेश करता है (१) सप्त जो अच्छाइ के लिए, (२) संत्र की आसानी के लिए, (३) उच्छृङ्खल पुरुषों के निप्रह के लिए, (४) अच्छे निथुओं के सुख-विहार के लिए, (५) इन जग्म के चित्त-मतों के निवारण के लिए, (६) जन्मान्तर के चित्त-मतों के नाश के लिए, (७) अप्रसन्नों को प्रसन्न करने के लिए, (८) प्रसन्नों की प्रवलता को चढ़ाने के लिए, (९) चलने की चिरसिध्दि के लिए और (१०) विनय (संयम) की सहायता (अनुग्रह) के लिए।' ॥ इन उद्देश्यों पर ध्यानपूर्वक विचार करने से विनय-पिटक के नियमों के हा और उनके उपयोग की सौमा काफी समझ में ब्रा नकारी है। उपासकों और निथुओं के लिए नियिष्ट कमज़ः पच (हिसा, चौरी, व्यभिचार, भृत और महायान से विरति) और दस (हिसा, चौरी, व्यभिचार, भृत और महायान से विरति एव नृत्य-नीति, नाला-नाल्य-विलेपन, ऊने चलन, विकाल-भोजन एवं रुपये-योग्य सहायता जैसे गृहस्थों के समान आज तक कमज़ः गृहस्थों और प्रथजितों के लिए सार्वभौम सदाचार का कोई दूसरा आदर्श नहीं रखा गया है? विनय-पिटक के २५२ नियम इन्होंने में जत्नर्भावित हैं।

आज से द्वाई हजार वर्ष पूर्व की मध्य-मंडल की सामाजिक परिवर्तनिति में तथागत ने मिथु-मिथुणी और उपासक-उपासिकाओं के लिए सदाचार-सम्बन्धी विन नियमों का विचार किया, उन्होंने बाद में चल कर कितने देवों और कितने विशाल भूलंड हैं, भारत-भूमि से कोसों दूर, मन्यासी और गृहस्थ सब के लिए सम्मान्य सदाचार की कसीटी का काम किया, इसे देख कर आदनपोन्यत रह जाना पड़ता है। लका, बरमा और स्याम की बात जाने दें, तो भी चीन, तिब्बत और जापान आदि में जहाँ-जहाँ बीदू घर्मे गया लहाँ-लहाँ विनय-पिटक का मन्त्रवन्धी नियमों का कितना सूक्ष्म अनुशीलन किया गया, यह तत्सुम्बन्धी साहित्य से

प्रकट होता है। 'मो-मोर-थर्ना' (विनय-पिटक का तिव्यती संस्करण) 'जून्-रित्त', 'शिवुन् रित्त', 'भक्त-योगि-रित्त', 'कीर्त-योग-नेत्र-इस्मे-उद्दृ' और 'गोचुन् रित्त' (विनय-पिटक के विभिन्न चौती संस्करण) आदि किस तथ्य को प्रकट करते हैं? कित्त गावा को वे उहराते हैं? स्थाम, बरमा और लका में आज भी जो काषाय-वस्त्रों की जीतो-जागती ज्योति चमकती है, वहाँके मिशु-संघ के जीवन का जो संचालन शास्त्र के द्वारा मध्य-महल गे आज में ढाई हजार वर्ष पूर्व उपदिष्ट नियमों के अनुसार होता है, वह सब किस कहानों को कहता है? चाहे चौन, चापान और तिव्यत को ओर देखें, ताहे उक्ता, स्थाम और बरमा को ओर देखें, ताहे आर्य जातियों की ओर देखें, ताहे आपेतर मंगोलियन और तूरानी जातियों की ओर, जब उन सब से युद्ध जाय 'जिस मूँ से तुमने सदाचार को मीता है, उसका नाम क्या है? तो चारों ओर से वही ध्वनि जाती है 'अवं सो भगवा अरह सम्मासम्बुद्धो विज्ञाचरणसम्पदो लोकबिद्व अनुसारो पुरिस-दस्म सारवि सत्या देवमनस्तानं बुद्धो भगवाति ।' नियम ही पूर्ण पूर्ण, तथागत, भगवान् सम्पूर्ण सम्बुद्ध विश्व के एक वहे भूमार के सदाचार के उपदेश है, इसका सर्वोत्तम साध्य धर्म के अलावा विनय-पिटक के उन विभिन्न संस्करणों से प्राप्त होता है, जो नाना देशों में पाये गये हैं और जो इस बात के सूचक है कि किस गम्भीर मनन और चिन्तन के साथ वही विनय-नियमों की समीक्षा की गई है और उनका जीवन में ज्ञानसरण किया गया है। इस देश में उत्पन्न अप्रज्ञत्माओं से संसार के सब देशों के मनव्य अपने-अपने सदाचार की सीखते, यह तो मन् ने भी कहा था। किन्तु किस भारतीय मनोपो या ब्रह्मि में यह काम किया? उनमें से अनेक तो ज्ञानुवर्णी बृद्ध भी नहीं मिला थके, पिर विश्व का शास्त्रा बताता तो दूर की बत्त थी? जिस गौरव की ओर मन् ने स्मरण दिलाया था उसे भारतीय मूर्मि और संस्कृति को प्रदान करने वालों में भगवान् बुद्ध ही अग्र है, थोड़ है। वे सर्वोत्तम धर्षों में लोक-शास्त्रा हैं, लोकभूर है, यह विनय-पिटक के नाना देशों में विकास ने भली भाँति प्रकट कर दिया है। न केवल बीड़ देशों या बीड़ मतावलम्बियों तक ही यह प्रभाव सीमित है, बल्कि इसाई धर्म की उत्पत्ति, उसके वृत्तिस्मा-नियम तथा जर्ज-मस्वन्धी विद्वान में उन बीड़ धर्म-प्रचारकों का, जिन्हे अब्रोक से पश्चिमी एशिया और यूरोप के देशों में भेजा था, कितना प्रभाव उपलक्षित है, इसमें इतिहासवेताओं के आज दो मन्

नहीं है।' अतः विनय-पिटक के बल संघ-सम्बन्धी नियमों का संश्रह न हो कर आज हमारे लिए एक विशेष ऐतिहासिक गौरव का स्मारक है। जिस प्रकार भास्ता का यह विश्व-धर्म है, उसी प्रकार उनका विनय भी विश्व का विनय है, इसका अपने नाना रूपों में वह साक्ष्य देता है। विनय-पिटक का यह महत्व भी आज भारतीय विद्या और संस्कृति के उपासकों के लिए कुछ कम नहीं है।

१. वेलिये एनसाइक्लोपेडिया और रिलिजन एंड एथिक्स, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ४०१, वहीं जिल्द बारहवीं, पृष्ठ ३१८-३१९; बृद्धिस्तक स्टडीज (डा० लाहा द्वारा सम्पादित) पृष्ठ ६३१-६३२.

पांचवाँ अध्याय

## अभिधम्म-पिटक

### अभिधम्म-पिटक

अभिधम्म-पिटक पालि तिपिटक (त्रिपिटक) का तीसरा मूल्य भाग है। 'अभिधम्म' शब्द का प्रयोग 'अभिविनय' शब्द के साथ-साथ क्रमसः धर्म और विनय सम्बन्धी गंभीर उपदेश के अर्थ में, सुत-पिटक में भी हुआ है।<sup>१</sup> समवत् इसी के आधार पर आचार्य बुद्धशोण ने अभिधम्म का अर्थ किया है—'उच्चतर' धर्म या 'विशेष' धर्म। 'अभिधम्म' में 'अभि' शब्द को उन्होंने 'अतिरेक' या 'विशेष' का बानक भागा है।<sup>२</sup> वास्तव में यह 'अतिशयता' या 'विशेषता' धर्म

१. देविये संगोति-परिवाय-सुत (बौद्ध-३।१०); दसुत्तर-सुत (बौद्ध. ३।११); गुलिस्तानि-सुत्तन्त (मध्यम. २।२।९); किनित-सुत्तन्त (मध्यम-३।१।३); महायजित राहुल शांखत्यापन ने यहाँ इन शब्दों का अर्थ केवल धर्म-सम्बन्धी (अभिधम्म) और विनय-सम्बन्धी (अभि-विनय) किया है, जो पूरे अर्थ को व्यक्त नहीं करता।

२. अतिरेक-विसेस-न्यदीपको हि एत्य अनि-सद्यो। अट्ठसालिसो, पृष्ठ २ (पालि देवत्त सोसायटी का संस्करण); मिलाइये सुमंगल विलासिमी, पृष्ठ १८ (पालि देवत्त सोसायटी का संस्करण); प्रसिद्ध महायानी आचार्य असंग ने 'अभिधम्म' शब्द को अपूर्णता करते हुए (१) निर्वाण के अभिनृत उपदेश करने के कारण (अभिमुखतः) (२) धर्म का अनेक प्रकार से बगो-करण करने के कारण (आभीज्ञात्) (३) विरोधी सम्भावयों का खंडन करने के कारण (अभिभवत्) एवं (४) सुत-पिटक के जिद्वान्तों का ही अनुगमन करने के कारण (अभिगतिः) 'अभिधम्म' शब्द की सार्थ-करा दिलाई है। अभिमुखतोऽपानीभृत्यवभिभयगतितीऽभिधम्मः। महायानसूत्रालंकार १।१।३; आचार्य बसुबन्धु ने उपकारक स्कन्धादि से मृत, विमल प्रता को ही अभिधम्म कहा है। प्रज्ञाऽपला सामुच्चराऽभिधम्मः। अभिधम्मकोश १।२

को नहीं है। धर्म को सबंध एक रस है। किन्तु तीनों पिटकों में, उनके नाना वर्गीकरणों में, वह नाना रूप हो गया है। 'इन्द्रो मायाभिः पुमस्प दृष्टते ।' जो धर्म सूत-पिटक में उपदेश-रूप है, विनय में जो संयम-रूप है, वही अभिधर्म में तत्त्व-रूप है। इसका कारण अधिकारियों का नारतम्य ही है। प्रसवान-भेद से धर्म के स्वरूप में भी भेद हो गया है। किन्तु यह भेद सिफ़ बीली का है, आदेशना-विधि का है। सूत सबके लिए सुगम है, वर्योंकि वहाँ बुद्ध-बचन अपने यथार्थ स्वरूप में रखते हुए हैं। अभिधर्म पिटक में बुद्ध-मनुष्यों का वर्गीकरण और विश्लेषण किया गया है, तात्त्विक और मनोवैज्ञानिक दृष्टियों से उन्हें गणनाबद्ध किया गया है। अतः जब कि सूत-पिटक का निष्ठपण जन-साधारण के लिए उपयोगी है, अभिधर्म पिटक का सचियों और परिभाषाओं में वही जने हुए व्यक्तित्व सचिव सकते हैं जिन्होंने बीद तत्त्व-दर्शन को आपने अध्ययन का विषेष विषय बनाया है। इसी अर्थ में अभिधर्म पिटक को 'उच्चतर' धर्म या 'विशेष' धर्म कहा गया है।

अभिधर्म-पिटक धर्म की विधिक गहराई में उत्तरता है और अधिक साधन-सम्पद व्यक्तियों के लिए ही उसका प्रणालय हुआ है, ऐसा बोढ़ परम्परा आरम्भ ने ही मानती आई है। कहा गया है कि देव और मनुष्यों के जास्ता ने 'अभिधर्म' का उपदेश सबंध प्रश्नम जारीस्थित लोक में अपनी माता देवी महामाया और अन्य देवताओं को दिया था। बाद में उसी की पुनरावृति उन्होंने अपने महाप्राज्ञ प्राप्ति धर्मसेनापति सारिपुत्र के प्रति की थी। धर्मसेनापति सारिपुत्र ने ही उसे अन्य ५०० भिक्षुओं को सिखाया। इस प्रकार बुद्ध के जीवन-काल में ही सारिपुत्र के सहित ५०१ भिक्षु अभिधर्म के जाता थे।<sup>१</sup> इस प्रकार प्राप्त 'अभिधर्म' का ही समाधन, इस परम्परा के अनुसार, प्रथम दो संगीतियों में हुआ।<sup>२</sup> तीसरी संगीति में भी इसी की पुनरावृति की गई, किन्तु इसके सभापति स्थविर मोग्न-लिपुत तिम्म (मोदगलिपुत्र तिथ्य) ने 'कथावत्सु' तामक ग्रन्थको भी जिसकी मोटी स्वरेका भगवान् बुद्ध भविधि में उत्पन्न होने वाले मिथ्या मत-वादों का झान प्राप्त कर उनके निराकरणार्थं पूर्व ही निश्चित कर गये थे, पूर्णता देकर 'अभिधर्म'

१. अट्टसालिनी की निदान-कथा; मिलाइये धर्मपद्धतिकथा ४१२, बुद्धचर्च पृष्ठ ८३-९० में अनुवादित।

२. देखिये दूसरे अध्याय में प्रथम दो संगीतियों का विवरण।

में सम्मिलित कर दिया। इस प्रकार यह स्वविरचनाओं वौद्ध परम्परा अभिघम्म-पिटक को भी सुन्त-पिटक और विनय-पिटक के समान ही बुद्ध-बचत मानने की पश्चातिनो हैं।

### रचना-काल

उपर्युक्त अनुश्रुति अभिघम्म-पिटक की प्रगति में अर्थवाद मात्र है। बास्तव में उसो हद तक वह ठीक भी है। वैसे तो उसने भी यह स्वीकार कर ही लिया है कि अभिघम्म-पिटक का कम से कम एक ग्रन्थ 'ब्रह्मावल्मी' अशोक-कालीन रचना है और उसका चर्तवायन रुप स्वविर मोगलिपुत्र तिस्स का दिया हुआ है। बुद्ध के प्रारंभिक उपदेशों में धर्म और विनय को ही प्रधानता है। ऐसा लगता है कि उन्होंने के आचार पर संग्रहित अभिघम्म को भी उन्होंने के समान प्रमाणवत्ता देने के लिए स्वविरों ने उपर्युक्त अर्थवाद की सूचि की है। आधुनिक विद्वार्थी के लिए सबसे अधिक कठिन समस्या तो यह है कि आज जिस स्वर में अभिघम्म-पिटक हमें मिलता है, वह कहा तक सीधा बुद्ध-बचत है अथवा उसका प्रणयन-किन-हिन काल-प्रेक्षियों में बुद्ध-बचनों के आचार पर हुआ है। इन दृष्टिने से देखने पर आज जिस रूप में अभिघम्म-पिटक हमें मिलता है, उसकी प्रमाण-वस्ता सुन और विनय की जोक्या निश्चयतः कम रह जाती है और उसका प्रणयन-काल भी उतनो हो निर्दिचततापूर्वक उसके बाद का ठहरता है।

'अट्टसालिनी' की निदान-कथा में कुछ अन्य महत्वपूर्ण प्रश्नों के साथ दो प्रश्न आचार्य बुद्धघोष ने बड़े महत्व के किए हैं। पहला प्रश्न है—'अभिघम्म पिटक किसका बचन है?' दूसरा प्रश्न है—'किसने इसे एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुंचाया है?' पहले प्रश्न के उत्तर में उन्होंने कहा है 'पूर्ण पुरुष, तथागत भगवान् सम्यकसम्पद का और दूसरे के उत्तर में कहा है 'उपदेशकों की न टटने चाली परम्परा ने'। इसी परम्परा का उल्लेख करते हुए वहाँ कहा गया है "तृतीय संगोत्त तक सारिपुत्र, भद्रजि, संभित, पियबालि, पियपाल, पियदस्स, कसियपुत्र, सिग्गव, सन्देह, मोगलिपुत्र, विसुदत, अभिय, दासक, सोनक, रेवत, आदि स्वविरों की परम्परा ने अभिघम्म-पिटक का उपदेश दिया। उसके बाद उक्ती विष्णु-परम्परा ने इस काम को अपने हाथ में लिया। इस प्रकार भारतवर्षे (जम्बुद्वीप) में उपदेशकों की अविच्छिन्न परम्परा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक अभिघम्म को पहुंचाती रही। इसके बनन्तर सिहल द्वीप में भिजु महिन्द, इदिय, उतिय, भद्रलाल और सम्बल आये। यही महामतीयी भिजु अभिघम्म-पिटक को भी

भारत में लंका द्वीप में अपने साथ लाये। तब से आज तक गुरु-शिष्य परम्परा में यह अभिधम्म पिटक उसी रूप में चलता आ रहा है”। आचार्य बुद्धधोण का यह वर्णन ऐतिहासिक दृष्टि से बड़ा महत्वपूर्ण है। महिन्द्र के लंका में अभिधम्म पिटक के ले जाने के बाद से उसके स्वरूप में कुछ भी परिवर्तन हृआ हो, इसका कोई बाध्य नहीं मिलता। उसके बाद अभिधम्म-पिटक का स्वरूप निश्चित और स्थिर हो गया, ऐसा हम भान सकते हैं, परम्परा लेखबद्ध होने का कार्य तो अभिधम्म-पिटक का भी समूर्ण क्रिप्टक के साथ ही लगभग २५००० पूर्व बटुगामणि अभय के समय में सम्पादित किया गया। आन्तरिक या बाह्य साइय के आधार पर ऐसा कोई प्रभाग नहीं मिलता जिसके आधार पर अभिधम्म-पिटक के स्वरूप में त्रुटीय शताव्दी ईसवी पूर्व से प्रथम शताव्दी ईसवी पूर्व तक किए एवं किसी परिवर्तन या परिवर्द्धन का अनुमान किया जा सके। निश्चय हीं यह एक बड़े आश्चर्य की बात है कि इन्हें सुदीर्घ काल तक लंका में मौलिक परम्परा में चलते रहने पर भी अभिधम्म-पिटक में कहीं भी ऐसे एक शब्द तक का भी निर्देश नहीं दिखाया जा सकता जिससे सिहली प्रभाव की कल्पना की जा सके<sup>१</sup>। कुछ विद्वानों ने ‘कथावत्यु’ की अट्टकव्य के आधार पर यह अवश्य दिखाने का प्रयत्न किया है कि ‘कथावत्यु’ में कुछ ऐसे सम्प्रदायों के सिद्धांतों का भी निराकरण है जो अशोक के काल के बाद प्रादूर्भूत हुए थे। चूंकि ‘कथावत्यु’ में केवल सिद्धांतों का स्तंभन है, सम्प्रदायों का नामोलेख वहाँ नहीं है। अतः बहुत संभव है कि विशिष्ट संप्रदायों के साथ कालान्तर में इन सिद्धांतों का संबंध हो जाने के कारण ‘अट्टकव्या’ (पांचवीं शताव्दी ईसवी) में उनका उल्लेख कर दिया गया हो, किन्तु अशोक के काल में केवल स्फुट स्वर से ही इन सिद्धांतों की विद्यमानता पाई जाती हो। अतः ‘कथावत्यु’ में निराकृत उन सिद्धांतों को भी, जिनकी मान्यता बाद के उल्पन्न कुछ विशिष्ट संप्रदायों में चल गही, जिसका साध्य उसकी ‘अट्टकव्या’ ने दिया है, अनिवार्यतः अशोक के उत्तरकालीन मानना ठीक नहीं है। इस विषय का अधिक विवर विवेचन हम ‘कथावत्यु’ के विवेचन पर आते समय करेंगे। स्वविरचारी भिजुओं को परम्परा ने आरम्भ से ही बृद्ध-वननां को उनके मौलिक

१. किर भी आश्चर्य है कि सर चाल्स इलियट जैसे विद्वान् ने भी अभिधम्म-पिटक के लंका में रखित होने की सम्भावना को प्रश्न पूछा। देखिये उनका ‘हिन्दुइ८म एंड बृद्धिइ८म’ जिल्ड पहली, पृष्ठ २७६, पदसकेत १ तथा पृष्ठ २९१। यह भरपूर अज्ञान है।

रूप में सुरक्षित रखने का जो आग्रह दिखलाया है उसके बाधाह पर वह माना जा सकता है कि लंका में महिन्द आदि भिक्षुओं के द्वारा ले जाये जाने के बाद से अभिधम्म वही उसी विशुद्धतम् स्वरूप में सुरक्षित बना रहा जिसमें वे उसे वही ले गये थे । अब प्रश्न यही रह जाता है कि क्या महिन्द आदि भिक्षु जिस अभिधम्म को तृतीय शताब्दी ईसवी पूर्व लंका में ले गये थे क्या वह वही बृद्ध-वचन था जिसका उपदेश स्वयं शास्त्र ने मध्य-मंडल में दिया था ? कम से कम स्वविरचारी बौद्ध परम्परा तो उसे इसी रूप में उस समय से मानती आई है और भिक्षु-संघ ने भी उसे बड़े प्रयत्न से उसके बीचिक रूप में सुरक्षित रखना अपना कर्तव्य माना है । किन्तु दूसरे संप्रदायवालों (विशेषतः सर्वार्थितवादियों) ने उसके इस दावे को वेशाली की संगीति के समय से ही नहीं माना था, यह भी एक ऐतिहासिक तथ्य है । उपर्युक्त कथन से कम ने कम एक चात निश्चित रूप से हमें मिल जाती है, और वह ही अभिधम्म-पिटक के उस रूप के पाण्यन की, जिसमें वह अतिम रूप से निश्चित और स्थिर हो गया था, निचली काल-सीमा । पाटलिपुत्र की संगीति २५३ ई० पू० में हुई । उसके समाप्त होने पर ही महिन्द आदि भिक्षु लंका को भेजे गये । अतः यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि लगभग २५० ई० पू० तक अभिधम्म-पिटक अपने उस रूप में, जिसमें वह आज उपलब्ध है, पूर्णतः स्थिर हो चुका था । बाद में मिलिन्दपञ्च (१०० ई० पू०) में तो अभिधम्म पिटक के सातो ग्रन्थों का, उनकी पूरी वर्गोकरण-शीलों के संक्षिप्त निवेश के साथ, उल्लेख हुआ है ।<sup>१</sup> जिस आदर के साथ अभिधम्म-पिटक का उल्लेख यही किया गया है उससे यह स्पष्ट है कि बृद्ध-वचनों के रूप में उसकी व्याप्ति बौद्ध परम्परा में उस समय तक दृढ़ प्रतिष्ठा पा चुकी थी । यदि कम से कम सौ-दंड सौ घण्ट का काल भी इस परम्परा के निर्माण में लगा हो तो भी हम आजानी से अशोक-संगीति के समय तक पहुँच जाते हैं जब कि तेपिटक बृद्ध-वचनों का अंतिम रूप से संस्कारण हुआ था । अतः अशोक-संगीति या तृतीय शताब्दी ईसवी पूर्व का मध्यांतर अभिधम्म-पिटक के रचना-काल की निचली काल-सीमा है जिसे बहुत लंबितान कर प्रथम शताब्दी ईसवी पूर्व तक अर्थात् उसके सिलहल में लेखबद्ध होने अघवा भिलिन्दपञ्च में उसके उद्धृत होने तक के समय तक भी घटाकर लाया जा सकता है । अब हमें उसके रचना-काल को उपर्लो काल-सीमा का निर्णय करना है । विनय-पिटक—चूल्लबग्न के

१. मिलिन्दपञ्च, पृष्ठ १३-१४ (बम्बई विश्वविद्यालय का संस्करण)

प्रथम संगीति के वर्णन में हमने देखा है कि वहाँ धर्म और विनय के ही संगायन की बात कही गई है । अभिधर्म के संगायन की कोई सूचना वहाँ नहीं मिलती । किन्तु अट्ठकथा (सुमंगलविलासिनी एवं समन्तपासादिका) के वर्णन में, जैसा हम पहले देख चुके हैं अभिधर्म-पिटक के गात्रों ग्रन्थों के भी संगायन किये जाने का उल्लेख है । वूँकि त्रिपिटक के साध्य के सामने उसकी अट्ठकथा के साध्य का कोई प्रामाण्य नहीं माना जा सकता, अतः 'समन्तपासादिका' का साध्य यहाँ अपने आप प्रमाण की सीमा के बाहर हो जाता है । जैसा भद्रन्त आनन्द की सत्यायन ने कहा है 'विनय और धर्म के साथ अभिधर्म का भी पारायण इसी (प्रथम) संगीति में दुआ, यह जो समन्तपासादिका का कहना है, यह तो स्पष्ट-रूप से गलत है ।'<sup>१</sup> किन्तु 'समन्तपासादिका' के साध्य को स्पष्ट रूप से गलत मानते हुए भी उससे इतना निष्काय तो हम निकाल ही सकते हैं कि अधिक से अधिक प्रथम संगीति के समय ही अभिधर्म-पिटक का विकास होना आरम्भ हो गया था । तभी हम वैशाली की संगीति के अवसर पर इस विषय में वैशाली सर्वास्तिवादियों और स्वविरचादियों के विदोष और विवाद को समझ सकते हैं । यदि आज प्राप्त पालि विनय-पिटक का संकलन वैशाली की संगीति के अवसर पर ही हुआ हो तो उसमें विस प्रकार अलौकिक ढंग से अभिधर्म को साक्षात् बुद्ध-बचन सिद्ध करने का प्रयास किया गया है, उसका ऐतिहासिक रहस्य भी आसानी से समझा जा सकता है । इसरे संप्रदायवालों द्वारा अभिधर्म की प्रामाणिकता का निषेध कर देने पर ही उन्हें इस प्रकार के विदान को आवश्यकता पड़ी । प्रथम संगीति के पहले हम पारिभाषिक अर्थों में अभिधर्म-पिटक के वर्तमान होने की स्थापना किसी आधार पर नहीं कर सकते । उससे पहले सिफ़ 'मातिकाओं' (मात्रिकाओं) का वर्णन मिलता है । सर्वास्तिवादियों के मतानुसार भी 'मातिकाओं' (अभिधर्म) का संगायन प्रथम संगीति के अवसर पर आप्य महाकाशय ने किया था । कुछ भी हो, इन 'मातिकाओं' के आधार पर ही अभिधर्म-पिटक का विकास हुआ है । अभिधर्म-पिटक के सबंधम ग्रन्थ 'धर्मसंगणि' का प्रारंभ एक 'मातिका' से ही होता है । धोमतो रायम डेविड्स ने इसी को अभिधर्म-पिटक का मूल स्रोत माना है ।<sup>२</sup>

१. महाबंद्र, पृष्ठ ११ (परिचय)

२. ए बुद्धिस्त मेन्युबल आंव ताइकोलोजीकल एथिक्स (धर्मसंगणि का अंगेजी अनुवाद) द्वितीय संस्करण, पृष्ठ ९, १०५-११३ (भ्रमिका)

उसमें निर्दिष्ट २२ त्रिकों और १०० द्विकों के बगीकरण पर ही अभिघम्म का संपूर्ण धर्म-विवेचन आधारित है। पुगलपञ्चति और धातुकथा का भी जारी इसी प्रकार मातिकाओं से होता है। वास्तव में संपूर्ण अभिघम्म गन्धों की लैली भी पहले मातिका या उद्देश देकर बाद में उनके निर्देश (ध्यास्था) देने की है। पहले दिखाया जा चुका है कि पिटक-साहित्य में जहाँ मातिकाओं का उल्लेख हत्रा है (धर्मचरों विनयचरों मातिकाचरों पंहितो—विनय-पिटक—बुल्लवग्ग) वह! उनमें किन्हीं विधिष्ठ गन्धों का बोध न होकर केवल सिद्धान्तात्मक सूचियों का ही होता है, जिनका उपयोग भिक्षु लोग स्मरण करने की सुगमता के लिए करते थे। इसी प्रकार दोष-निकाय के समीति-परियायसूत्र और दसुत्तर-सूत्र, मञ्जिभज निकाय के सलायतनविभंग-सूत्र और धातुविभंगसूत्र, एवं अंगुत्तर-निकाय के अनेक सम्पादक सूत्र, अभिघम्म-पिटक के बगीकरणों के मूल स्रोत माने जा सकते हैं।<sup>१</sup> इन्हों के आधार पर अभिघम्म-पिटक का विकास हुआ है। यह इससे भी प्रमाणित होता है कि महायानी परम्परा के संस्कृत ध्याढ़ गन्धों में 'अभिघम्म' के लिये 'मात्रिका' शब्द का ही प्रयोग किया गया है।<sup>२</sup> अतः समन्वयासादिका के बगीन को अवश्य सत्य न मानकर हम उससे इतना निष्कर्ष तो निकाल ही सकते हैं कि मातिकाओं और उपर निर्दिष्ट सूत्र-पिटक के अंदर से अभिघम्म-पिटक के निर्माण का कार्य प्रथम समीति के समय ही आरम्भ हो गया था और दूसरी समीति के समय तक आते आते उसने ऐसा निश्चित (अन्तिम नहीं) संघ प्राप्त कर लिया था, जिसके आधार पर दूसरे संप्रदायवालों के लिये उसे बुद्ध-वचन मानने या न मानने का महत्वपूर्ण प्रयत्न उठ सकता था। अतः पांचवीं शताब्दी ईसवीं पूर्व अभिघम्म-पिटक के प्रययन की उपर्योगी काल-सीमा और २५० ई० य० (जिसे अविक सन्देहवादी विवेचक घटा कर प्रथम शताब्दी ईसवीं पूर्व तक भी ला सकते

१. अभिघम्म-पिटक के अंगुत्तर-निकाय सम्बन्धी आधार के लिये मिलाइये ६० हार्डो : अंगुत्तर-निकाय, जिन्द पौच्छी, पृष्ठ ९ (प्रस्तावना) (पालि टेक्स्ट सासायटी द्वारा प्रकाशित संस्करण)

२. वेलिये श्रीमती रायस डेविड्स : ए. बुद्धिस्ट मेन्युअल और साइकोलोजोकल एविड्स (धर्मसंग्रह का अनुवाद) द्वितीय संस्करण, पृष्ठ ९, २०५-२१३; ओलडवर्ग और रायस डेविड्स : सेकेड बुक्स और दि ईस्ट, जिल्द १३, पृष्ठ २७३; कन : मेन्युअल और बुद्धिस्ट, पृष्ठ ३, १०४।

है) निवली काल-मीमा उहरती है। इन्हीं के बीच अभिषम्म-पिटक का विकास हुआ है। विशेषतः द्वितीय और तृतीय संगीतियों के बीच का समय अभिषम्म पिटक के संग्रह और रचना का काल माना जा सकता है।

उपर्युक्त काल-मीमाएँ निर्धारित करने से अधिक अभिषम्म-पिटक के ग्रन्थों के प्रणयन के विषय में निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता। उनकी निश्चित तिथियाँ स्थापित नहीं की जा सकती। कब कोन सा प्रत्य निश्चित हप प्राप्त कर प्रकाश में आया, इसका निर्णय नहीं किया जा सकता। ही, कुछ सिद्धांतों के आधार पर अभिषम्म-पिटक के ग्रन्थों के काल-क्रम में तारतम्य अवश्य स्थापित किया जा सकता है। परम्परा से अभिषम्म-पिटक के सात ग्रन्थों का उल्लेख जिस क्रम में हमें मिलता है, वह यह है (१) घम्मसंगणि, (२) विभग (३) कथावल्य, (४) पुगलपञ्चत्रति, (५) धातुकवा, (६) यमक और (७) पट्ठान। भिलिन्दपञ्चह (प्रथम शताब्दी ईसवी पूर्व) में इसी क्रम में इन ग्रन्थों का उल्लेख किया गया है।<sup>१</sup> 'मुमगलविलासिनी' की निदान-कवा में अवश्य दृढ़वोग ने कुछ परिवर्तन के साथ एक दूसरे क्रम का जनसरण किया है,<sup>२</sup> किन्तु वह उन्द की आवश्यकता के लिए भी हो सकता है, अतः महत्वपूर्ण नहीं माना जा सकता। विटरनित्य, गायगर, ज्ञानातिलोक, भिक्ष जगदीश काशयण एव लाहा आदि विद्वानों ने अभिषम्म-पिटक के अपने विवेचनों में उपर्युक्त क्रम का हो अनुसरण किया है। विषय की दृष्टि से इससे अधिक स्वाभाविक क्रम हो भी नहीं सकता। किन्तु काल-क्रम की दृष्टि से इस क्रम को ठीक मानना हमारे लिए अवश्य हो जाता है। केसियस ए० पिरीरा का मत है कि आन्तरिक सादृश के आधार पर घम्मसंगणि, विभग और पट्ठान प्राचीनतम प्रत्य हैं और उनका संगायन, अपने वर्तमान रूप में, संभवतः द्वितीय संगीत के अवसर पर ही हुआ था। इस प्रकार इन तीन ग्रन्थों से अपना निश्चित और अंतिम स्वरूप चौथी शताब्दी ईसवी पूर्व के प्रथम चतुर्थांश या उसके पूर्व ही प्राप्त कर लिया था, ऐसा उनका मत है। धातुकवा, यमक और पट्ठान को भी उन्होंने पूर्व-अशोक-कालीन रचनाएँ माना है और कहा है कि उनका भी संगायन अपने अंतिम रूप में तृतीय संगीत के अवसर पर हुआ था। 'कथावल्य'<sup>३</sup> की रचना की निश्चित तिथि तृतीय संगीत ही है। 'कथावल्य' काल-क्रम को दृष्टि से अभिषम्म-पिटक की

१. पृष्ठ १३-१४ (बम्बई विश्वविद्यालय का संस्करण)

२. दूसरे अध्याय में प्रथम संगीत के वर्णन के प्रसंग में उद्धृत।

३. महास्वविर ज्ञानातिलोक की 'गाइड शूदि अभिषम्म-पिटक' के प्राच्करण में।

अन्तिम रचना है, इसमें कोई सन्देह नहीं हो सकता। किन्तु अन्य ग्रन्थों के तारतम्य के विषय में विभिन्न मत हो सकते हैं। डा० लाहा ने 'पुगलपञ्चति' को काल-कम की दृष्टि से अभिघम्म-पिटक का प्राचीनतम अन्य माना है। उनका कहना है कि चौंकि अभिघम्म-पिटक सुत्त-पिटक पर आधारित है, अतः जिस हृद तक अभिघम्म पिटक का कोई अन्य स्पष्ट स्पष्ट स्पष्ट से सुत्त-पिटक पर कम या अधिक अवलंबित है, उसी हृद तक उसकी आपेक्षिक प्राचीनता भी कम या अधिक है।<sup>१</sup> इसी निपात को आधार मानकर विवेचन करते हुए उन्होंने दिखाया है कि अन्य सब ग्रन्थों की अपेक्षा 'पुगलपञ्चति' ही सुत्त-पिटक पर अधिक अवलंबित है। 'पुगलपञ्चति' को गृष्ठभूमि में दोष, संयुत और अंगुतर निकायों के पुगलों के प्रकार और विश्लेषण पूरी तरह निहित है। उदाहरणत 'पुगलपञ्चति' के तथों पुगला, चतुर्णी पुगला, पञ्च पुगला आदि भाग अंगुतर निकाय के क्रमशः तिक-निपात चतुर्वर्ण-निपात और पञ्च-निपात आदि के समान ही हैं। 'पुगलपञ्चति' के कुछ अंशों और दोष निकाय के संगीतिपरियाय-सुत्त में भी अनेक समानताएँ हैं। "पुगलपञ्चति" के पालि टैक्सट् सोसायटी के संस्करण के संपादक डा० मार्लिस ने पुगलपञ्चति और सुत्त-पिटक के ग्रन्थों की इन सब समानताओं को सोझरण दिखाया है।<sup>२</sup> इससे स्पष्ट प्रकट होता है कि पुगलपञ्चति की समानता, शैली और विषय दोनों को दृष्टि से, अभिघम्म-पिटक की अपेक्षा सुत्त पिटक से अधिक है। भिक्षु जगदीश काश्यप ने तो यहाँ तक कहा है कि 'पुगलपञ्चति' के विवेचन को तिकाल देने पर भी अभिघम्म-दर्शन की पूर्णता में कोई कमी नहीं आती।<sup>३</sup> 'पुगलपञ्चति' को प्रबन्ध मातिका में अवश्य अभिघम्म-शैली का अनुसरण किया गया है, अन्यथा वह सुत्त-पिटक का ही प्रबन्ध जान पड़ता है। अतः पुगलपञ्चति को निश्चित तिथि चाहे जो कुछ ही, वह अभिघम्म पिटक के ग्रन्थों में काल-कम की दृष्टि से सबसे प्राचीन है, ऐसा डा० लाहा ने माना है।<sup>४</sup> 'पुगलपञ्चति' के समान ही डा० लाहा ने 'विभंग' की भी अभिघम्म-गृष्ठभूमि का विवेचन किया है। 'विभंग' के सच्च-विभंग, सतिपट्ठान-विभंग और धातु-विभंग, मविभम्म-निकाय

१. हिस्ट्री ऑफ पालि लिटरेचर, जिल्व पहली, पृष्ठ २२

२. पुगलपञ्चति, पृष्ठ १०-११ (भूमिका)

३. अभिघम्म किलासफो, जिल्व द्वासरी, पृष्ठ १६५

४. हिस्ट्री ऑफ पालि लिटरेचर, जिल्व पहली, पृष्ठ २३

के क्रमशः सच्चविभंग सुन्त, सतिपटान सुन्त और धातुविभंग सुन्त पर आधारित हैं। इसी प्रकार 'विभंग' के अनेक अंश खुदक-निकाय के बन्ध 'पटिसम्भिदामग' पर भी अवलंबित हैं। इसलिए काल-क्रम की दृष्टि से 'विभंग' को डा० लाहा ने 'पुण्यलपञ्चति' के बाद दूसरा ग्रन्थ माना है। 'विभंग' को उन्होंने अभिधम्म-साहित्य के विकास की उस स्थिति का सचक माना है जब कि अभिधम्म की शैली पूर्णतः निश्चित नहीं हुई थी और वह सुत्तन्त को बौली से मिश्रित थी। चैकि 'धम्मसंगणि' में अभिधम्म-शैली का विकसित रूप मिलता है, इसलिए परम्परागत अनुश्रूति के विपरीत उन्होंने 'धम्मसंगणि' को विभंग के बाद का ग्रन्थ माना है। 'धम्मसंगणि' का ही पूरक ग्रन्थ 'धातुकथा' है। अतः 'विभंग' के बाद 'धम्मसंगणि' और उसके बाद 'धातुकथा', यह क्रम डा० लाहा ने स्वीकार किया है। 'विभंग' ही 'यमक' की भी पृष्ठभूमि है। 'विभंग' के एक भाग 'पञ्चयाकार-विभंग' का ही विस्तृत निरूपण बाद में 'पटान' में मिलता है। अतः धम्मसंगणि, धातुकथा यमक और पटान ये चारों यंत्र विभंग पर ही आधारित हैं और काल-क्रम में उससे बाद के हैं, ऐसा डा० लाहा का मत है। इन सबसे बाद की रचना 'कथावत्यु' है। इस प्रकार 'पुण्यलपञ्चति' सबसे पूर्व की रचना, 'कथावत्यु' सबसे अन्तिम रचना, इन दोनों के बीच में 'विभंग' जिस पर ही आधारित 'धम्मसंगणि', 'धातुकथा', 'यमक' और 'पटान' यही अभिधम्म-पिटक के ग्रंथों के काल-क्रम के विषय में डा० लाहा का निष्कर्ष है। इसे डा० लाहा ने इस प्रकार दिखाया है।<sup>१</sup>

## १. पुण्यलपञ्चति

- २. विभंग— (अ) धम्मसंगणि—धातुकथा
- (आ) यमक
- (इ) पटान

## ३. कथावत्यु

डा० लाहा का काल-क्रम-निश्चय अंदर: ठीक जान पड़ता है। किसी भी पालि साहित्य के विद्यार्थी को इसमें सन्देह नहीं हो सकता कि 'कथावत्यु' अभिधम्म पिटक की अन्तिम रचना है। अतः अभिधम्म-पिटक के ग्रंथों का परम्परागत परि-

१. हिन्दू आंख पालि लिटरेचर, जिल्ड पहली, पृष्ठ २६

गणन जिसमें 'कथावत्यु' को सातवें स्थान के बजाय पाँचवीं स्थान प्राप्त है, काल-क्रम की दृष्टि से ठीक नहीं हो सकता, ऐसा तो अन्ततः मानना ही पड़ेगा । अतः 'कथावत्यु' को अभिधर्म-पिटक का अन्तिम चंच मानना ठीक ही जान पड़ता है । इसी प्रकार विषय और शैली दोनों की ही दृष्टि से 'पुम्पलपदव्याप्ति' को भी कालक्रमानुसार प्रथम चंच माना जा सकता है । यहाँ तक डा० लाहा के निष्कर्ष ठीक जान पड़ते हैं । किन्तु 'विभंग' को 'धर्मसंगणि' से पूर्व की रचना मानने के लिये उन्होंने दो कारण दिये हैं (१) 'विभंग' के प्रत्येक भाग में सुतन्तभाजनिय (सुतन्त-भाग) और अभिधर्मभाजनिय (अभि-धर्म-भाग) दो घटक भाग हैं, जिसमें सुतन्तभाजनिय पर ही आधारित अभिधर्मभाजनिय है । इससे डा० लाहा ने यह निष्कर्ष निकाला है कि 'विभंग' अभिधर्म-पिटक के विकास की उस अवस्था का सूचक है, जिसमें सुतन्त और अभिधर्म का भेद सुनिश्चित नहीं हुआ आ । इसके विपरीत 'धर्मसंगणि' में अभिधर्म-दोनों का पूरा अनुसरण मिलता है । अतः 'धर्मसंगणि' 'विभंग' से बाद की रचना ही हो सकती है । (२) उद्देस (साधारण कथन) के बाद निदेस (शब्दों के अर्थों का विस्तृत विवेचन) देने की अभिधर्म की प्रणाली है । 'विभंग' के 'रूपक्लवन्धविभंग' में 'हय' का मात्र 'उद्देस' ही मिलता है । उसका निदेस सिर्फ धर्मसंगणि में ही मिलता है । अतः 'धर्मसंगणि' 'विभंग' के बाद की ही रचना होनी चाहिये । १ डा० लाहा ने यहाँ समष्टि रूप से दोनों चंचों की विषय-वस्तु पर विचार नहीं किया है । केवल शैली की दृष्टि से विचार किया है और वह भी अपूर्ण है । जहाँ तक अध्यायों के 'सुत-विभाग' और 'अभिधर्म-विभाग' इन दो विभागों का सम्बन्ध है, वे तो 'विभंग' के समान धर्मसंगणि में भी मिलते हैं ।<sup>२</sup> अतः इस दृष्टि से दोनों में भेद करना अनुचित है । विषय के स्वरूप की दृष्टि से शैली में भी अन्तर हो सकता है । धर्म-संगणि का धर्म-विशेषण विभंग में प्राप्त उसके वर्णीकृत स्वरूप का पूर्वापीर संबंध

१. हिस्ट्री ऑब पालि लिटरेचर, जिल्ड पहली, पृष्ठ २४-२५

२. देखिये स्वयं विमलाचरण लाहा : हिस्ट्री ऑब पालि लिटरेचर, जिल्ड पहली, पृष्ठ ३०६

हैं, जिसके आधार पर हम अधिक निश्चित रूप से दो यथोंका या एक ही रथ के दो अवृत्तों के पूर्वापर भाव का अधिक निश्चय के साथ निर्णय कर सकते हैं। यह एक सर्व-विदित तथ्य है कि विभंग के प्रथम खण्ड में ही लेखक की धर्मसंगणि में विवेचित धर्मों की गणना से अभिज्ञता प्रकट हो जाती है, जिसमें उसने कुछ नये धर्मों का और समावेश कर दिया है।<sup>१</sup> विभंग ने धर्मसंगणि की 'मातिका' में निर्दिष्ट २२ विकों और १०० द्विकों की विवरण-प्रणाली को उद्यों का त्यों भ्रहण कर दिया है। विभंग के प्रथम तीन खण्ड स्वतंत्र, आयतन और धातुओं का विवेचन करते हैं, अतः अंदातः धर्मसंगणि के प्रति उनका भी प्रेरकत्व सुनिश्चित है।<sup>२</sup> 'धर्मसंगणि' को शीली विश्लेषणात्मक अधिक है, जब कि विभंग की संश्लेषणात्मक अधिक है।<sup>३</sup> इस तथ्य से भी विभंग धर्मसंगणि के बाद की ही रचना जान पड़ती है। धर्म-संगणि से विभंग की ओर विकास-क्रम सामान्य ते विशेष की ओर विकास क्रम है। अतः धर्मसंगणि को ही विभंग से पूर्व की रचना मानना अधिक युक्तिसंगत है। श्रीमती रायस डेविड्स ने भी माना है कि विभंग अपने पूर्व धर्मसंगणि की अपेक्षा रखती है।<sup>४</sup> गायगर<sup>५</sup> और विटरनित्ज<sup>६</sup> ने भी उसे धर्मसंगणि का पूरक रूप ही माना है। अभिधर्म-साहित्य के प्रसिद्ध भारतीय वौद्ध विद्वान् भिक्षु जगदीश काश्यप भी विभंग की विषय वस्तु की धर्मसंगणि की पूरक स्वरूप ही मानते हैं।<sup>७</sup> अतः 'धर्मसंगणि' को ही 'विभंग' की अपेक्षा पूर्वकालीन रचना मानने की ओर विद्वानों की प्रवणता अधिक है। 'विभंग' के 'स्वप्नवत्त्व विभंग' का अधिक विस्तृत विवेचन 'धर्मसंगणि' में पाया जाना 'धर्मसंगणि' के बाद की रचना होने का ही सज्जक नहीं माना जा सकता। बल्कि यह तथ्य केवल यही दिलाता है कि धर्मसंगणि में इसका सांगोषांग विवेचन हो जाने के बाद विभंग में उसके इतने विस्तार में जाने की आवश्यकता प्रतीत नहीं है। इतनी अधिक दृष्टियों से

१. विटरनित्ज : हिस्ट्री ऑफ इंडियन लिटरेचर, जिल्ड द्वासरी, पृष्ठ १६७

२. ज्ञानातिलोक : गाइड शू दि अभिधर्म-पिटक, पृष्ठ १७

३. उपर्युक्त के समान ही।

४. विभंग, भ्रमिका, पृष्ठ १३ (पालि दंडसद् सोसायटी का संलकरण)

५. पालि लिटरेचर एंड लेन्वेज, पृष्ठ १७

६. हिस्ट्री ऑफ इंडियन लिटरेचर, जिल्ड द्वासरी, पृष्ठ १६७

७. अभिधर्म फिलोसोफी, जिल्ड द्वासरी, पृष्ठ १०४

अभिधम्म-पिटक में घन्यों के विवेचण और विवेचन किये गये हैं और इतनी अधिक अवस्थाओं पर उसके संज्ञित और विस्तृत विवेचन निर्भर करते हैं कि एक दो उदाहरणों से हम किन्हीं दो घन्यों की पूर्वापरता का कोई निश्चित निणेय नहीं कर सकते। धम्मसंगणि वास्तव में संपूर्ण अभिधम्म-पिटक का आधारभूत घन्य है और विषय-वस्तु की दृष्टि से उसी पर आधारित 'विभंग' है। 'विभंग' 'धम्म-संगणि' का पूरक है और स्वयं 'धातुकथा' के लिए आधारस्वरूप है।<sup>१</sup> इस प्रकार 'धम्मसंगणि' और 'धातुकथा' के बीच वह मध्यस्थता करता है। 'यमक' और पट्ठान के विषय में जो कुछ पहले कहा जा चुका है, वह ठीक है। अतः हमारे प्रस्तुत अध्ययन के अनुसार अभिधम्म-पिटक के घन्यों का अधिक ठीक काल-क्रम यह होता चाहिए—पूर्मलपञ्जाति, धम्मसंगणि, विभंग, धातुकथा, यमक, पट्ठान, और कथावत्य्। इसे यों भी दिखाया जा सकता है—

१. पूर्मलपञ्जाति

२. धम्मसंगणि

३. विभंग

{ अ. धातुकथा  
आ. यमक  
इ. पट्ठान

४. कथावत्य्

### अभिधम्म पिटक का विषय

ऊपर अभिधम्म-पिटक के घन्यों के काल-क्रम के विषय में जो विवेचन किया गया है, उससे उसकी विषय-वस्तु पर भी काफी प्रकाश पड़ता है। अभिधम्म-पिटक के विषय में सूत-पिटक की अपेक्षा कुछ नवीनता नहीं है। जैसा हाँ० रायस डेविडस ने कहा है, अभिधम्म-पिटक सूत-पिटक का ही परिशिष्ट है।<sup>२</sup> आचार्य वृद्ध-शोण ने उसे 'धम्म' का अतिरेक या अतिरिक्त रूप कहा है।<sup>३</sup> उसका भी यही अर्थ है। सूत-पिटक में निहित वृद्ध-मन्त्रबों को ही अभिधम्म-पिटक में अधिक सूधम विस्तार के साथ समझाया गया है। पारिभाषिक शब्दावली कही कुछ नहीं

१. पार्लि लिटरेचर एंड लेबेज, पृष्ठ १७

२. अमेरिकन लैबरस ऑफ ब्रूडिक्स : इट्स हिस्ट्री एंड लिटरेचर, पृष्ठ ६२  
३. वेलिंग्टन पृष्ठ ३३४, पद संकेत २

अवश्य है, किन्तु सिद्धांतों का मूल आधार सुनना ही है। अभिघम्म के सिद्धांतों, लग्नीकारणों और विभागों के मूल व्योतों को सुनने में लोज निकालना अच्छयन का एक अच्छा विषय हो सकता है। उससे दोनों का तुलनात्मक अध्ययन होने के अतिरिक्त स्वयं अभिघम्म-पिटक के दुरुह सिद्धांतों का समझना भी सुगम हो जाता है। प्रथम बार भिन्न जगदीश काश्यप ने इस प्रकार का अध्ययन प्रस्तुत किया है।<sup>१</sup> उनके मतानुसार विभज्यवाद जिस प्रकार सुनने का दर्शन है उसी प्रकार वह अभिघम्म का भी दर्शन है। 'विभज्यवाद' का अर्थ है मानसिक और भौतिक जगत् की संपूर्ण अवस्थाओं का विश्लेषण कर चुकने पर भी उनमें कही 'बत्ता' (आत्मा) का नहीं मिलना। पहिये, खुरा, जुआ आदि सभी भागों से व्यतिरिक्त 'रख' की सत्ता नहीं है। इसी प्रकार व्यक्ति भी रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान रूपी पौच्छंडों की समटिक के अलावा और कुछ नहीं है। ये सभी द्वय-अनित्य, अनात्म और दुःख हैं। इनमें अपनाणन लोजना दुःख का ही कारण हो सकता है। यही बुद्ध का दर्शन है, जो सुन-पिटक में अनेक बार प्रस्फृटित हुआ है। उदाहरणतः संयुक्त-निकाय के इस बृहद्वचन को लीजिये, "हे गृह-पति ! यहा अशुतवान् आर्यों के दर्शन से अनभिज्ञ, अज्ञानी मनुष्य, रूप की आत्मा के रूप में देखता है, अथवा आत्मा को रूपवान् समझता है, या आत्मा में रूप को देखता है या रूप में आत्मा को देखता है। वह समझता है—मैं रूप हूं और रूप मेरा हूं। इस प्रकार 'मैं रूप हूं और रूप मेरा हूं' समझते हैं। उसके रूप में परिवर्तन होता है, किपरिणाम होता है, कुछ का कुछ हो जाता है। गृहपति ! इसी से उत्पन्न होते हैं लोक, परिदेव (रोना-धोना) दुःख, दौर्म-नस्य और मानसिक कष्ट"<sup>२</sup>। वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान को लेकर भी इसी प्रकार दुःख-समृद्धि का कम दिक्षाया गया है। व्यक्ति के उपर्युक्त पाँच

१. अभिघम्म फिलोसफी, जिल्ड द्वूसरी, पृष्ठ १९-३१

२. इव गृहपति, अस्सुतवा पुष्पुज्जनो अरियानं अवसरावो रूपं अत्तते समनु-पस्सति, रूपवन्तं वा अत्तनं, अत्तनि या रूपं, रूपस्ति वा अत्तानं। अहं रूपं, मम रूपं ति परियुद्धद्धायो होति। तत्स अहं रूपं मम रूपं ति परि-युद्धद्धतो तं रूपं परिणमति अज्ञाया होति, तत्स रूपविपरिणामज्ञाया-भावा उपर्युक्ति सोक-परिदेव-दुःख-दोमनस्सूपायासा। अभिघम्म फिलो-सको, जिल्ड द्वूसरी, पृष्ठ २० में उद्भूत।

संक्षिप्तों में विश्लेषण के अतिरिक्त अन्य प्रकार के विश्लेषण भी सुलगा में किये गये हैं। उनमें दो मुख्य हैं। पहले व्यक्ति के साथ बाह्य संसार के संबंध की व्याख्या करने के लिए १२ आयतनों का विवेचन किया गया है,<sup>१</sup> जो इस प्रकार है—

१. चक्र (चक्र)	५. जिह्वा	७. रूप	१०. रस
२. श्रोत्र (सोत)	६. काय	८. अच्छ (सह)	११. स्पष्टव्य (फोटोव्य)
३. द्वाण (धाण)	९. मन	९. गन्ध	१२. धर्म

इनमें व्यक्ति (द्रष्टा) का विश्लेषण प्रथम छः आयतनों के रूप में किया गया है, जो आश्यात्मिक आयतन (अप्सरात्मिक आयतन) कहलाते हैं। बाह्य संसार (दृश्य) का विश्लेषण बाद के छः आयतनों के रूप में किया गया है, जो बाह्य-आयतन (बाहिर आयतन) कहलाते हैं। द्रष्टा और दृश्य के संबंध और उनके उपादान ये उल्लंघन होने वाली चेतना को व्याख्या में रखकर आन्तरिक और बाह्य संसार का १८ धार्तुओं में भी विश्लेषण किया गया है,<sup>२</sup> जो इस प्रकार है—

१. चक्र (चक्र)	७. रूप	१३. चक्र-विज्ञान (चक्र-विज्ञान)
२. श्रोत्र (सोत)	८. अच्छ (सह)	१४. श्रोत्र-विज्ञान (सोत-विज्ञान)
३. द्वाण (धाण)	९. गन्ध	१५. द्वाण-विज्ञान (धाण-विज्ञान)
४. जिह्वा	१०. रस	१६. जिह्वा-विज्ञान (जिह्वा-विज्ञान)
५. काय	११. स्पष्टव्य (फोटोव्य)	१७. काय-विज्ञान (काय-विज्ञान)
६. मन	१२. धर्म (धर्म)	१८. मनो-विज्ञान (मनो-विज्ञान)

उपर्युक्त तीनों प्रकार के विश्लेषण गुरु-पिटक में सामान्यतया विलित हैं। संयुत-निकाय में पूरे संयुतों के नाम इनके विवेचन के आसार पर ही रखे गये हैं, जैसे वन्ध-संयुत, आयतन-संयुत, धार्तु-संयुत। स्वन्ध-आयतन और धार्तुओं का उपदेश भगवान् बृद्धका मूल उपदेश था, इसका सर्वोत्तम

१. वेलिये विशेषतः आयतन-संयुत (संयुत-निकाय)

२. वेलिये विशेषतः धार्तु-संयुत (संयुत-निकाय)

सात्य हम बुद्धकालीन भिक्षुणियोंके इचलगातार उदगारों में पाते हैं, जिनमें वे अपनी उपदेश करने वाली बहिनों से इस सबसी उपदेश को प्राकर कृतज्ञतापूर्वक समरण करती हैं "सा मे धर्ममदेसेति तन्धायतत्तवातुयो" १ (उसने मुझे स्कन्ध, आयतन और धातुओं का उपदेश दिया) । इस प्रकार सूतन्त में स्कन्ध, आयतन और धातुओं का उपदेश मिलता है, किन्तु वही इसका उद्देश्य केवल अनात्मवाद का उपदेश देना है, अलग-अलग सबका विश्लेषण करना नहीं । यह काम अभिधम्म में किया गया है । अभिधम्म में, जैसा हम उसकी विषय-सूत्र का विश्लेषण करते समय अभी देखें, सूत-स्कन्ध का २८ अंगों में विश्लेषण किया गया है, इसी प्रकार वेदना-स्कन्ध का पाँच, संस्कार-स्कन्ध का ५० और विज्ञान-स्कन्ध का ८० अंगों में विश्लेषण किया गया है । इन सबका आधार जैसा हम पहले कह चुके हैं, सूत-ग्रन्थ ही है । उदाहरणतः, रूप का विश्लेषण सूतन्त में केवल दो भागों में किया गया है, "भिक्षुओ ! क्या है रूप ? चार महाभूत और चार महाभूतों के उपादान से उत्पन्न हुआ रूप, भिक्षुओ ! यही कहलाता है रूप" २ रूप के इस द्विविध विभाग पर ही अभिधम्म का सारा रूप-विश्लेषण निर्भर है । इसी प्रकार वेदना-स्कन्ध का ५ भागों में विश्लेषण भी सूतन्त से ही लिया गया है, जहाँ सूत-वेदना, दुःख-वेदना सौमनस्य, दौर्मनस्य, और उपेक्षा का स्पष्टातः उल्लेख है ३ इसी प्रकार अभिधम्म के विज्ञान-स्कन्ध के १२१ विभागों में से अनेक सूतन्त में मिलते हैं और उसके आधार पर ही दूसरे अधिक मूढ़म विश्लेषण कर लिये गये हैं ४ सारांश यह कि अभिधम्म के विश्लेषण सूतन्त पर ही आधारित है ।

### शैली

अभिधम्म का आधार सूतन्त होने पर भी उसकी शैली में विभिन्नता है । सूतन्त में उदाहरण दें देकर, अनेक पार्श्वों से और अनेक उपमाओं से, धर्म को

१. घेरीगाथा, गाथाएँ ४३ एवं ६९ (बम्बई विश्वविद्यालय का संस्करण)
२. "कतमं च भिक्षुवे क्य ? चतारो च महाभूता चतुर्दशं च महाभूतानं उपादाय क्य, इदं द्वन्द्वति भिक्षुवे क्य?" संयुक्त-निकाय, अभिधम्म-फिलोसफी, जिल्ड दूसरी, पृष्ठ २३ में उद्धृत
३. देखिये अभिधम्म फिलोसफी, जिल्ड दूसरी, पृष्ठ २५
४. अभिधम्म फिलोसफी, जिल्ड दूसरी, पृष्ठ २७-३१

समझाया गया है। किन्तु अभिधर्म 'निष्ठरियाप देसना' है, अर्थात् वहाँ बिना उपमाएँ और उदाहरण दिये हुए धर्म की समझाया जाया है। इसका कारण यह है कि अभिधर्म का प्रणयन साधारण जनता के लिए नहीं हुआ है। वह देव-मनुष्यों के लिए उपदेश किया हुआ बुद्ध-वचन है। वायस्त्रिक-लोक में अभिधर्म के उपदेश करने संबंधी माया का यही मानवीय रहस्य है। अभिधर्म-पिटक में साधारण जन-समाज की भाषा का प्रयोग नहीं किया गया है। वह अज्ञान पर आश्रित है। 'वृत्त' 'मनुष्य' 'पशु' की वास्तविक सत्ता कही है? किर भी हम अवहार में इस प्रकार के प्रयोग करते हैं। इसी की पालि-बीद धर्म में सम्मुति सच्च (संवृति सत्य) कहा गया है। सूत-पिटक इसी भाषा में लिखा गया है। यहाँ यह कहना अप्रासंगिक नहीं होगा कि बौद्धों ने जिसे 'सम्मुति सच्च' कहा है, वही शक्ति का अवहार-सत्य है, जिसे उन्होंने 'अविद्याविद्विषय' कहा है। इसके विपरीत 'परमार्थ-सत्य' (पालि परमत्य-सच्च) है, जहाँ माता माता नहीं है, पिता पिता नहीं है, मनुष्य मनुष्य नहीं है। इसी भाषा में अभिधर्म लिखा हुआ है। अतः उसमें वह प्राण-प्रतिष्ठा नहीं है, जो मृतत्व में है। एक में जो बन चारों ओर हिलोरे ले रहा है, दूसरे में वह सर्वथा अनुपस्थित है। अभिधर्म-पिटक की दोनों की एक बड़ी विशेषता उसकी परिप्रेक्षणात्मक (पञ्चपरिपुच्छ) प्रणाली है। प्रश्न और उत्तर के समें विषय को समझाया गया है। 'तद्विद्वि प्रणिपातेन परिप्रेनेत सेवया'—इसका बहाँ अच्छा तिवाहि सूत-पिटक जीर अभिधर्म-पिटक दोनों में ही दिखाया गया है। 'परिप्रेक्षण' की बात तो अभिधर्म ने अपने आप पूरी कर दी है, वह हमसे 'प्रणिपात' और 'सेवा' की भी पूरी अपेक्षा रखता है। 'अट्ठसालिनी' की 'निदान-कथा' में आचार्य बृद्धघोष ने एक भार्मिक प्रश्न किया है, "अभिधर्म का उदय किस स्रोत से हुआ है?" उत्तर दिया है, "श्रद्धा से!" श्रद्धा के साथ हम अभिधर्म को लम्बो सेवा करें (जैसी वर्तमान समय में आचार्य घर्मानन्द को सम्मोहन की की)। तो उससे हम बहुत कुछ पा सकते हैं। उसके बिना तो हम कुछ युरोपीय विद्वानों को तरह निकं उकता ही जायेंगे और कहेंगे कि यही गम्भीर दर्शन कुछ नहीं

१. देखिये 'अभिधर्मत्व संग्रह' पर उनकी स्वरचित 'नवनीत टीका' का प्राच्करण (महाबोधि सभा १९४१); देखिये धर्मदूत, जितम्बर ४८ में डा० आपठ का "आचार्य घर्मानन्द को सम्मोहन की विद्वानों के लिए भी (पृष्ठ ८५-९५)

है।<sup>१</sup> श्रीमती रायस डेविड्स<sup>२</sup>, जानातिलोक<sup>३</sup>, घम्मानन्द कोसम्बी<sup>४</sup> और भिक्षु जगदीश काश्यप<sup>५</sup> की प्रणाली पर यदि अभिधम्म के अध्ययन को विकसित किया जाय तो उसमें बोढ़ संतिक मनोविज्ञान का मार्ग हमारे लिए अधिक प्रशस्त हो सकता है और हम अभिधम्म को उसकी वास्तविक विभूति में देख सकते हैं। अभिधम्म-पिटक की उद्देश (संवित्त कथन) के बाद निहेस (विस्तृत विवेचन) की वर्णन-प्रणाली, पर्यायवाची शब्दों और परिभाषाओं की अधिकता आदि प्रवृत्तियों के विषय में हम पहले कह ही चुके हैं।

### महत्व

अभिधम्म-पिटक के महत्व पर हमें दो दृष्टियों से विचार करता है, (१) स्थविरवाद परम्परा की दृष्टि से (२) अन्य बोढ़ संप्रदायों की दृष्टि से। जहाँ तक स्थविरवाद परम्परा का संबंध है, अभिधम्म-पिटक को आरंभ से ही सूच-पिटक और विनय-पिटक के समान बुद्ध-वचन माना जाता है, यह हम पहले दिखा चुके हैं। वरमा में अभिधम्म-पिटक का कितना अधिक आदर है, यह तत्संबंधी उस विस्तृत अध्ययन से ही स्पष्ट होता है जो उस देश में किया गया है। आठवें अध्याय में हम इस अध्ययन का विवेचन करेंगे। सिहल भी अभिधम्म की पूजा में वरमा से पीछे नहीं रहा है। 'महावंश' में हम बार-बार पढ़ते हैं कि किस प्रकार विद्वान् सिहली राजाओं ने अभिधम्म का आदरपूर्वक अवण किया और कुछ ने स्वयं उसका उपदेश भी किया। काश्यप प्रथम (९२९ ईसवी) ने तो संपूर्ण अभिधम्म को सोने के पत्रों पर खुदवाया और विशेषतः 'धम्मसंगणि' को बहुमूल्य रत्नों से मणित किया। इसी प्रकार स्पारहवीं शताब्दी में लंका का राजा विजयवान्

१. जैसा विट्टरनित्यन ने कह डाला है, वेलिये उनकी हिस्ट्री आव ईडियन लिटरेचर, जिल्ड दूसरी, पृष्ठ १६५-६६।
२. ए बुद्धिस्त मेनुबल और साइकोलोजीकल एथिक्स (धम्मसंगणि का अनु-वाद) की मननशील लेखिका।
३. गाइड यू दि अभिधम्म-पिटक के लेखक और प्रसिद्ध बोढ़ विद्वान् और साधक।
४. विदेश में जाकर अनेक कठिनाइयों के उपरान्त अभिधम्म का अध्ययन करने वाले प्रथम भारतीय विद्वान्।
५. अभिधम्म-फिलांसिफी (जिल्ड १, २) के लेखक, मनस्वीबोढ़ दाशंनिक और साधक।

अभिधर्म का बहु मनवशील अध्येता वा और उसने 'धर्मसंगणि' का सिहली भाषा में अनुवाद भी किया । अतः स्वविरचाद परम्परा में अभिधर्म-पिटक का सदा से बहुत सम्मान रहा है । स्वविरचाद-परम्परा से भिन्न बोड संप्रदायों में अभिधर्म-पिटक को उत्ता प्रामाणिक बुद्ध-वचन नहीं माना गया है । हम जानते हैं कि स्वयं उत्तरकालीन हीनयानी संप्रदाय में सौनान्तिक नाम का एक वर्ग था जो अभिधर्म पिटक को प्रामाणिक नहीं मानता था । उसके लिए केवल सूत-पिटक ही प्रामाणिक बुद्धवचन था । इतना ही नहीं, अत्यंत गूढ़काल में ही हम स्वविरचादियों के अन्दर ही भिन्नओं के एक ऐसे वर्ग की सुचना पात्र है जो अभिधर्म-पिटक की प्रामाणिकता को नहीं मानता था और केवल सूत-पिटक में ही अधिक विश्वास करता था । 'अट्टसालिनी' में दो भिन्नओं का संलग्न दिया हुआ है, जिससे यह जात स्पष्ट होती है—

"भन्ते ! आप ऐसी लम्बी पंक्ति को उद्धृत कर रहे हैं, जैसे कि मानों आप नुस्खे को ही पस्तिविट्ठ करना चाहते हों । भन्ते ! यह किसकी पंक्ति है ?"

"आवृत्त ! यह अभिधर्म की पंक्ति है ।"

"भन्ते ! आप अभिधर्म की पंक्ति का क्यों उद्धरण देते हैं ? यथा आपको यह उचित नहीं कि आप बुद्ध द्वारा उपदिष्ट किन्हीं दूसरी पंक्तियों का उद्धरण दें ।"

"आवृत्त ! अभिधर्म का उपदेश किसका है ?"

"निष्ठय ही बुद्ध का नहीं है ।"

"पर आवृत्त ! क्या तुमने विषय-पिटक को पढ़ा है ?"

"नहीं भन्ते । मैंने उसे नहीं पढ़ा है ।" आदि, आदि

पुनः 'दीपबंस' के वर्णन में ही हम देखते हैं कि वेशाली की सर्वोत्तम के अवसर पर और 'महासमोत्तिक' भिन्नों ने अन्य ग्रन्थों के साथ अभिधर्म-पिटक की भी प्रमाण-वत्ता स्वीकार नहीं की थी ।<sup>१</sup> इससे हमारा संदेह अभिधर्म-पिटक की प्रमाणवत्ता के विषय में अवश्य बहु जाता है । काल-क्रम और महत्ता में अवश्य अभिधर्म-पिटक को सूत और विषय पिटक के बाद मानना पड़ेगा, इसे आपः सभी निष्ठाभौद्ध विद्वान् आज भी स्वीकार करते हैं । किन्तु चूंकि अभिधर्म-पिटक का अवर्ग-नीततम पन्थ (कथावात्य) भी ईसवी पूर्व तृतीय शताब्दी की रचना है और उसके अलावा अन्य किसी ग्रन्थ के साथ किसी रचयिता का नाम जोड़ा नहीं गया है,

अतः अवेंवाद की दृष्टि से उसे बुद्धवचन भी कहा जा सकता है, इतना अवकाश इसे स्वविरवाद-परम्परा को भी अवश्य देना ही होगा। अन्ततः अभिधर्म-पिटक सुत्त-पिटक पर ही तो अवलंबित है।

### पालि अभिधर्म-पिटक की सर्वास्तिवाद सम्प्रदाय के अभिधर्म-पिटक से तुलना

स्वविरवादियों और सर्वास्तिवादियों के दो पिटकों-मुत्त और विनय—बी तुलना हम पहले कर चुके हैं। सर्वास्तिवादी संप्रदाय के अभिधर्म-पिटक के यन्य चोनी भाषा में सुरक्षित है। उनके मूल संस्कृत में थे, किन्तु आज वे प्राप्य नहीं। स्वविरवादियों के समान सर्वास्तिवादियों का भी यह दावा है, कि उनका अभिधर्म-पिटक दुड़-वचनों (सुत्त-पिटक) पर आधारित है। किन्तु जब कि स्वविरवादी (कदा-वचन को छोड़कर) अभिधर्म के यन्यों को मनुष्यों की रचनाएँ नहीं मानते, सर्वास्तिवादियों को परम्परा में उनका अभिधर्म-पिटक विचिह्नित विचारों की रचना माना जाता है। चोनी भाषा में सर्वास्तिवादियों के अभिधर्म-पिटक का नाम 'शास्त्र-कंचन' है। स्वविरवादी अभिधर्म पिटक के समान सर्वास्तिवादियों के अभिधर्म-पिटक में भी मात्र ग्रन्थ है, जिनके नाम उनके रचयिताओं के साथ, इस प्रकार हैं—

#### सर्वास्तिवादी संप्रदाय के अभिधर्म

#### उनके रचयिता

##### पिटक के यन्यों के नाम

१. ज्ञान-प्रस्तवात्मनास्त्र	आर्य काश्यायन
२. प्रकरण-पाद	स्वविर वसुमित्र
३. विज्ञान-काम-पाद	स्वविर देवशर्मा
४. धर्म-कन्द-पाद	आर्य शारिपुत्र
५. प्रश्नपि शास्त्र-पाद	आर्य मौदगल्यायन
६. धातुकाय-पाद	पुर्ण (या वसुमित्र)
७. संगीत-पर्याय-पाद	महाकोटिल (या शारिपुत्र)

पालि अभिधर्म पिटक के साथ इनकी तुलना करने पर जात होगा कि इनके नामों में पर्याप्त साम्य है, यथा—

## पालि अभिधम्म-पिटक

- |                 |                     |
|-----------------|---------------------|
| १. घम्मसंगणि    | (४) घम्मस्कन्धपाद   |
| २. विमंग        | (३) विज्ञानकायपाद   |
| ३. पुग्गलपञ्चति | (५) प्रज्ञजिपाद     |
| ४. खातुकधा      | (६) खातुकायपाद      |
| ५. पट्ठान       | (७) ज्ञान-प्रस्थान  |
| ६. यमक          | (८) संगोतिपर्यायपाद |
| ७. कथावत्युपकरण | (२) प्रकरणपाद       |

## सर्वास्तिवादी अभिधम्म-पिटक

नामों की इतनी समानता होने हुए भी विषय की समानता नहीं है।<sup>१</sup> किर भी जिन विषयों का निष्पत्तण एक पिटक में किसी ग्रन्थ में पाया जाता है दूसरे पिटक में उन्हीं का या उनके कुछ अंशों का निष्पत्तण किसी दूसरे ग्रन्थ में पाया जाता है। चूंकि दोनों के ही अभिधम्म-पिटक अपने अपने सूत्रों पर अवलंबित हैं जिनमें, जैसा हम पहले देख चुके हैं, अधिक अन्तर नहीं है, अतः दोनों में कुछ न कुछ समानताओं का पाया जाना नितांत स्वाभाविक है। हाँ, उनके त्रय में अन्तर अवश्य है। सर्वास्तिवादी अभिधम्म-पिटक के ग्रन्थों की विषय-वस्तु के संलिप्त परिचय और पालि अभिधम्म के साथ उसकी तुलना से यह स्पष्ट होगा। पहले ज्ञान-प्रस्थान-वास्त्र को हो लें। यह सर्वास्तिवादी अभिधम्म-पिटक का सबसे प्रधान ग्रन्थ है। योग छ: ग्रन्थ इसी के पाद या उपर्युक्त कहलाते हैं। उनके साथ इसका वही संबन्ध है जो वेद का उसके छ: अंगों के साथ।<sup>२</sup> ज्ञान-प्रस्थान-वास्त्र की रचना सर्वास्तिवाद सम्बद्धय के प्रतिष्ठ आचार्य आर्य कात्यायनी-पूत्र ने की। आर्य कात्यायनीपूत्र काश्मीर के रहने वाले थे। इनका समय बृद्ध-परिनिर्वाण के ३०० वर्षों बाद है। ज्ञान-प्रस्थानशास्त्र का प्रथम चौमो अनुवाद-काश्मीरी भिक्षु गीतम संघदेव ने ३८३ ईसवी में किया। उसके बाद एक दूसरा अनुवाद सन् ६१७-६० ई० में यूआन-चूआड़ के द्वारा किया गया। इसी महाप्रक

१. देलिये डा० तकाकुसु का 'द अभिधम्म लिटरेचर' शीर्षक निष्पत्तण, जनेल आंक रॉयल एशियाटिक सोसायटी, १९०५, पृष्ठ १६१

२. देलिये जनेल आंक पालि ट्रस्ट सोसायटी १९०४-०५, पृष्ठ ७५ में डा० तकाकुसु का अभिधम्म-साहित्य सम्बन्धी निष्पत्तण

पर कनिष्ठके कालमें आचार्य वसुबन्धु और ब्रह्मघोषकी अध्यक्षमें 'विभाषा' नामकएकमहाभाष्यलिखागया,जिसकाअनुसरणकरनेके कारण 'वैभाषिक'नामकबूढ़सम्प्रदायकीउत्पत्तिहुई।ज्ञान-प्रस्थानशास्त्रएकबहुतसंख्य है।इसमेंआठपरिच्छेदहैं,जिनमेंकुलमिलाकर श्लोकोंकीसंख्या १५०७२है।<sup>१</sup>जैसापहलेकहाजाचुकाहै,मूलसंस्कृततोमिलताहीमहों,इससम्पूर्णसंख्यकाअभीअंगेजीअबादभीनुप्रकाशितनहींहुआहै।अतः चीनी-भाषामेंअनभिज्ञोंकिलियेअभीतुलनात्मकअध्ययनकामार्गपराश्रितहीहोसकताहै।प्रो० तकाकुमुद्धारा प्रदत्तसूचनाकेअनुसार ज्ञान-प्रस्थान-शास्त्रके८परिच्छेदोंकेनामऔरविषयइसप्रकारहैं—

१. प्रकीर्णक—लोकोत्तरमर्म, ज्ञानपुद्गल, ब्रह्म, अनात्मआदि स्फृटविषय
२. संयोजन—अकृशलभूल, सकृदागमी, मनुष्य, दस-दारआदि
३. ज्ञान—आठ दौड़य-जड़य-धृयभियाँ, पाँच दृष्टियाँ, पर-चित्त-ज्ञान, आप-प्रजा आदि
४. कर्म—अकुशलकर्म, असम्यक् वाणी, विहिसा, व्याकृत, अव्याकृतआदि
५. चारमहाभूत—इन्द्रिय, संस्कृत, दृष्टि, सत्य, अध्यात्मआदि
६. इन्द्रियाँ—२२इन्द्रियाँ, भव, स्पर्श आदि
७. समाधि—अतीतावस्था, प्रत्यय, विमुक्ति आदि
८. स्मृत्युपस्थान—कायनुपश्यना, वेदनानुपश्यना, चित्तानुपश्यना, घमानुपश्यना, तृष्णा, संज्ञा, ज्ञान-समयआदि

उपर्युक्तविवरणसेस्पष्टहै कि ज्ञान-प्रस्थान-शास्त्रकीविषय-वस्तुइतनीविस्तृतहै कि उसमेंपालिअभिधर्म-पिटककेकईग्रन्थोंकेअंशतःविवरणउपस्थितदिखायेजासकतेहैं।विशेषतः खूहक-निकायके 'पटिसम्भदामग्म'सेइसग्रन्थकीविषय-वस्तुकीअधिकसमानताहै,ऐसामतस्वर्गीय डा० बेणीमाथवबाहुआनेप्रकाशितकियाहै,जोठीककहाजासकताहै।(२)प्रकरण-पादस्थविरवसुमित्रकीरचनाकहीजातीहै।यहवसुमित्रकनिष्ठ-कालीनप्रसिद्धसर्वांस्ति-वादीआचार्यवसुमित्रसेभिज्ञऔरउनसेपूर्वकालीनहैं।इनकाकालचुड़-

१. जनरल ऑफ पालि ट्रस्ट, लोसामटी, १९०४-०५ पृष्ठ १२४ (डा० तकाकुमुद्धारा 'दि सर्वांस्ति-वादिन् अभिधर्म चुक्स' शीर्षक निबन्ध)

परिस्तिर्वाण से ३०० वर्ष बाद माना जाता है। बतः ये आयं काल्यायनीपूत्र के नमवालीन थे, ऐसा कहा जाता है। प्रकरण-पाद में आठ वर्ग हैं, जिनमें धर्म, ज्ञान, आयतन आदि का विवेचन है। यद्यपि 'प्रकरण-पाद' के नाम का साम्य 'काव्य-प्रत्यय-वस्तु' के विषय से है, किन्तु दोनों की विषय वस्तु या वीली में कोई समानता नहीं है। विषय-वस्तु की पृष्ठ से ३० लाहा ने इस ग्रन्थ की तुलना 'विभंग' से की है।<sup>१</sup> किन्तु 'विभंग' की समानता धर्मस्कन्ध से अधिक है, यह हम अभी देखेंगे। 'प्रकरण-पाद' का पहला चौनी अनुवाद मुण्ड तथा दुद्धयश ने ४३५-४३ ई० में किया। उसके बाद एक दूसरा अनुवाद ६५९ ई० में यज्ञान-चुब्राढ के द्वारा किया गया। (३) विज्ञान-काव्य-पाद स्थविर देवशर्मी की रचना कही जाती है। एक परम्परा के अनुसार इस ग्रन्थ की रचना काल-परिस्तिर्वाण के १०० वर्ष बाद और एक दूसरी परम्परा के अनुसार ३०० वर्ष बाद हुई। दूसरी परम्परा ही अधिक ठीक हो सकती है। इस ग्रन्थ में ६ स्कन्ध हैं, जिनमें पूदगल, रेतु-प्रत्यय, ज्ञानस्वन-प्रत्यय आदि विषयों के विवेचन हैं। विषय-वस्तु अभिधम्म पिटक के 'पुग्गलपञ्चाति' और 'पट्टान' में जहाँ-नहाँ वहत कुछ मिलतो-जुलती है, फिर भी किसी एक विभिन्न ग्रन्थ से उसकी तुलना नहीं की जा सकती। इस ग्रन्थ का चौनी अनुवाद यज्ञान-चुब्राढ ने ६४९ ई० में किया। (४) धर्मस्कन्धपाद सर्वास्तिवादी अभिधम्म-पिटक का ज्ञान-प्रस्थान-आस्त्र के बाद सबसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसके कुछ अंशों को संगोति-गार्य-याद में भी प्रमाण-स्वरूप उद्धृत किया गया है। चौनी परम्परा के अनुसार धर्मस्कन्ध-पाद आयं महामौद्गल्यायन की रचना है। किन्तु यशोमित्र के मतानुसार यह आयं शारिपुत्र की रचना है। यह निश्चित है कि ये आयं शारिपुत्र और महामौद्गल्यायन बड़ के हस नाम के प्रधान विषय नहीं हो सकते। इस ग्रन्थ में २१ अध्याय हैं जिनमें चार आयं-मत्य, समाधि, बोधवर्ग, हन्त्रिय, आयतन, स्कन्ध, प्रतीत्य समत्पाद आदि का विस्तृत विवेचन किया गया है। इस ग्रन्थ का चौनी अनुवाद ६५९ ई० में यज्ञान-चुब्राढ ने किया। इस ग्रन्थ की समता विषय-वस्तु को पृष्ठ से 'विभंग' से सर्वाधिक है, यह निष्कर्ष महास्थविर शानातिलोक ने दोनों का तुलनात्मक अध्ययन करने के बाद निकाला है।<sup>२</sup> विभंग में १८ अध्याय हैं, धर्मस्कन्ध में २३ हैं। इनमें १४ एक दूसरे के विवरण समान हैं। यह समानता इस प्रकार है—

१. हिस्ट्री ऑफ पालि लिटरेचर, जिल्ड पहली, पृष्ठ ३४०

२. गाइड घूंदि अभिधम्म-पिटक, पृष्ठ २ (भूमिका)

विमंग—१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८  
 धर्मस्कन्ध—१९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ २३ ११ १२ १ २ ३ ४ ५  
 लाली छोड़ी हुई जगहों का तात्पर्य यह है कि विमंग के ११, १५, १६,  
 और १८ वें अध्याय (विमंग) धर्मस्कन्ध में नहीं मिलते।<sup>१</sup> (५) प्रज्ञप्ति-  
 पाद या प्रज्ञप्ति-शास्त्र आयं मौद्गल्यायन की रचना कही जाती है, जो निश्चयतः  
 इस नाम के बढ़ के शिष्य नहीं हो सकते। प्रज्ञप्ति-पाद का चीनी अनुवाद धर्म-  
 रक्ष ने ग्यारहवीं शताब्दी में किया। इस पन्थ का चीनी अनुवाद यूआन्-चूआङ्  
 ने नहीं किया, इसलिये इसको प्राचीनता में सन्देह किया जाता है। इस पन्थ  
 का तिब्बती अनुवाद भी उपलब्ध है। इसमें १४ वर्ग हैं। 'प्रज्ञप्ति-पाद' का पालि  
 'पुमालपञ्जन्ति' से केवल नाम का ही साम्य है। विषय में कोई समानता नहीं  
 है। इस पन्थ को कुछ समानता दीघ-निकाय के लक्षण-सूत्र से दिलाई गई  
 है। (६) शातुकाय-पाद चीनी परम्परा के अनुसार तनिष्ठ के समकालीन  
 प्रसिद्ध सर्वांस्तिवादी आचार्य वसुभित्र की रचना बतलाई जाती है। किन्तु यशो-  
 भित्र (अभिषम्बोध के व्याख्याकार) ने इस पन्थ के रचयिता का नाम पूँ  
 लिखा है। यशोभित्र का मत ही अधिक प्रामाणिक माना जाता है। इस पन्थ  
 का भी चीनी अनुवाद यूआन्-चूआङ् ने ६६३ ई० में किया। इस पन्थ की पालि  
 'धातुकथा' से कोई समानता नहीं है। ही, संयुतनिकाय के धातु-संयुत से इसको  
 विषय-वस्तु बहुत कुछ मिलती-जलती है। (७) संगीति-पर्याय-पाद के रचयिता चीनी  
 परम्परा के अनुसार आयं जारिपुत्र और यशोभित्र के बर्णनानुसार प्रसिद्ध सर्वा-  
 स्तिवादी आचार्य महाकौषिठ थे। यूआन्-चूआङ् ने इस पन्थ का चीनी अनु-  
 वाद सातवें शताब्दी के मध्य भाग में किया था। प्रोफेसर तकाकुस ने इस पन्थ के  
 विषय और दीली की समानता सब से अधिक दीघ-निकाय के संगीति-परियाय-  
 सूत्र से दिलाई है।<sup>२</sup> इस पन्थ में १२ वर्ग हैं। इसका भी अनुवाद यूआन्-चूआङ्  
 के द्वारा किया गया। सर्वांस्तिवादी सम्रदाय के अभिषम्ब-पिटक के उपर्युक्त  
 विवेचन में स्पष्ट है कि वल्पि उसमें प्राचीन परम्पराएँ निहित हैं और पालि  
 अभिषम्ब-पिटक के कई अशों से उसको आश्वयंजनक समानताएँ भी हैं, किर भी  
 सूत्र और विनय की अपेक्षा यही समानताएँ कम हैं। इसका एक प्रधान कारण  
 लम्बो परम्पराओं का एक देश से दूसरे देश में जाना और भाषा-भाष्यमों की

१. गाइड यू. डि अभिषम्ब पिटक, पृष्ठ २ (भ्रमिका)

२. जनेल ऑव पालि टेक्स्ट सोसायटी, १९०४-०५, पृष्ठ ११

अनिवार्य कठिनताएँ हैं। जब तक मूल संस्कृत उपलब्ध न हो तब तक विना उसके स्वरूप पर विचार किए पालि अभिधम्म के साथ उसके आधेनिक महत्व और प्रामाण्य के विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता। किन्तु हमारे वर्तमान ज्ञान की अवस्था में पालि अभिधम्म के सामने उसकी प्रमाणवत्ता अल्प अवश्य रह जाती है। वह स्पष्टतः आचारी की रचना है, जब कि केवल 'कथा-वल्युप्पकरण' को छोड़कर शेष पालि अभिधम्म-पिटक बुद्ध-वचन के रूप में ही स्वविरचादयनम्भारा में प्रतिष्ठित है। हाँ, सर्वालितवादी अभिधम्म-पिटक की तुलना से यह जात जबवल्य स्पष्ट हो जाती है कि गृह और विनय का अपेक्षा पालि अभिधम्म की प्रमाणवत्ता निश्चयतः कम और संकलन-काल भी उतनी ही निश्चिततापूर्वक कुछ बाद का है, जिसका विवेचन हम पहले कर आये हैं।

**अभिधम्म-पिटक के प्रन्थों की विषय-वस्तु का संक्षिप्त विश्लेषण—  
धर्म संगणि।**

पालि अभिधम्म-पिटक का सब से प्रथम और सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रन्थ 'धर्मसंगणि' है। वास्तव में वह सम्पूर्ण अभिधम्म-साहित्य की प्रतिष्ठा ही है। 'धर्मसंगणि' में मानसिक और भौतिक जगत् की अवस्थाओं का संकलन किया गया है, गणनात्मक और परिप्रश्नात्मक शैली के आधार पर।<sup>१</sup> धर्मो (पदार्थो) की कामावृत्तर, स्वावचर आदि के रूप में संगणना और संक्षिप्त व्याख्या करने के कारण ही इस प्रन्थ का यह नाम है।<sup>२</sup> 'धर्मसंगणि' के संकलन और विश्ले-

१. मागारी लिपि में प्रोफेसर बापट ने इस प्रन्थ का सम्पादन किया है (भांडार-कर औरियन्टल सीरीज़, पुना ४); रोमन लिपि में पालि टेंक्स्ट दोसायटी द्वारा प्रकाशित (लन्दन, १८८५), एवं डॉ मूलर द्वारा सम्पादित, संस्करण प्रसिद्ध है। इस प्रन्थ के बर्मी, सिहली और स्थामी संस्करण भी उपलब्ध हैं। अंग्रेजी में श्रीमती रायस डेविड्स ने 'ए बुद्धिस्ट मेनुअल जाँब साइकोलोजी-कल एविक्स' (लन्दन, १९००) शीर्षक से इस प्रन्थ का अनुवाद किया है। हिन्दी में जमी तक इस प्रन्थ का कोई अनुवाद नहीं निकला है।

२. 'संगणि' शब्द में ही यह भाव निहित है, देखिये प्रो. बापट द्वारा सम्पादित 'धर्म-संगणि' का देवनागरी-संस्करण, पृष्ठ १२ (भूमिका)

३. कामावचररूपावचरादिधर्ममें संगहा संलिपित्वा वा गणयति संखाति

यण की सब से बड़ी विशेषता है भीतर और बाहर के सारे जगत् की नैतिक व्याख्या। नैतिक व्याख्या से ताल्यं है कर्म के शुभ (कुशल) अशुभ (अकुशल) और इन दोनों से व्यतिरिक्त एवं अ-व्याख्येय (अव्याहृत) विपाकों के रूप में व्याख्या। गन्ध के मुख्य भाग में चित्त और उसमें संयुक्त अवस्थाओं (चतुर्सिक) का कुशल, अकुशल और अव्याहृत के रूप में विश्लेषण किया गया है। अतः इसे बौद्ध मनोविज्ञान की नैतिक व्याख्या ही कहा जा सकता है, या दूसरे शब्दों में बौद्ध नैतिकवाद की मनोवैज्ञानिक व्याख्या भी। गन्धकार (या मंकलनकार) ने दोनों के लिये ही पर्याप्त अवकाश दे दिया है। धर्मसंगणि के आरम्भ में 'मातिका' या विषय-सूची दी हुई है। उसमें नैतिकवाद की दृष्टि से वर्गीकरण है, किन्तु गन्ध में जो विवेचन किया गया है, उसका काण्ड-विभाग चित्त और रूप की दृष्टि से है और फिर उसे 'कुसलत्तिक', (कुशल, अकुशल, अव्याहृत) के रूप में विभाजित किया गया है। वास्तव में 'धर्मसंगणि' ने मन की अवस्थाओं की कर्म के शुभ, अशुभ आदि स्वरूपों के साथ व्याख्या करनी चाही है, जो एक दूसरे से विनिष्ठ और अनिश्चित रूप में सम्बन्धित है। इसीलिये 'धर्मसंगणि' के विवेचनों में इतनी दुर्घटता आ गई है।

फिर भी धर्मसंगणि की 'मातिका' उसकी सारी दुर्घट विषय-वस्तु को सम-  
झने के लिये एक अच्छी कुंजी है। भौतिक और मानसिक जगत् की व्याख्या धर्म-  
संगणि में जिस ढंग से की गई है, उसका वह हमें पूरा दिव्यदर्शन करा देती है। वह  
एक प्रकार की विषय-सूची है, जो उन शीर्षकों का उल्लेख कर देती है जिनमें  
भौतिक और मानसिक जगत् के नाना, पदार्थों (धर्मों) का विश्लेषण समूण  
गन्ध के अन्दर किया गया है। 'मातिका' में कुल मिलाकर १८२ वर्गीकरण हैं,  
जिनमें २२ ऐसे वर्गीकरण हैं जो तीन-चार शीर्षकों में विभक्त हैं। मे 'तिक' कह-  
लाते हैं। योष १०० ऐसे वर्गीकरण हैं जो दो-दो शीर्षकों में विभक्त हैं। ये 'दुक'  
कहलाते हैं। २२ 'तिकों' और १०० 'दुकों' में ही सारे धर्मों का विश्लेषण  
'धर्मसंगणि' में किया गया है अधिवधर्म-पिटक के अन्य गन्धों में भी इस वर्गी-  
करण-प्रणाली का पर्याप्त आध्यय लिया गया है। यहाँ 'मातिका' के अनुसार  
इन 'तिकों' और 'दुकों' का विवरण देना अत्यन्त महत्वपूर्ण होगा। इनकी गणना  
इस प्रकार है—

एत्याति धर्मसंगणि। अद्वालिनो (धर्मसंगणि की अद्वालया); मिलाइये  
चाहलडसं : पालि डिवशनरी, पृष्ठ ४४७

## २२ तिक

१. अ. जो धर्म कुशल है (कुसला)  
 आ. जो धर्म कुशल नहीं है (अकुसला)  
 इ. जो धर्म अव्याहृत है (अव्याकृता)
२. अ. जो धर्म सखि की वेदना से युक्त है (सखाय वेदनाय सम्पर्युता)  
 आ. जो धर्म दुःख की वेदना से युक्त है (दुःखाय वेदनाय सम्पर्युता)  
 इ. जो धर्म न सखि न दुःख की वेदना से मुक्त है (अदुखसमसखाय वेदनाय सम्पर्युता)
३. अ. जो धर्म चित्त की कुशल या अकुशल अवस्थाओं  
 के स्वयं परिणाम है (विषाक्ता)  
 आ. जो धर्म स्वयं चित्त की कुशल या अकुशल  
 अवस्थाओं के परिणामों को पैदा करने वाले हैं (विषाक्तधर्मधर्मा)  
 इ. जो धर्म न किसी के स्वयं परिणाम है  
 और न परिणाम पैदा करने वाले हैं (नेव-विषाक्त-न-विषाक्त-धर्मधर्मा)
४. अ. जो धर्म पूर्व कर्म के परिणाम स्वरूप प्राप्त  
 किये गये हैं और जो स्वयं भविष्य में ऐसे  
 ही धर्मों को पैदा करने वाले हैं (उपादिभूपादानिया)  
 आ. जो धर्म पूर्व कर्म के परिणाम स्वरूप तो प्राप्त नहीं किये गये हैं किन्तु  
 जो भविष्य में धर्मों को पैदा करने वाले हैं (अनुपादिभूपादानिया)  
 इ. जो धर्म न तो पूर्व कर्म के परिणाम स्वरूप प्राप्त ही  
 किये गये हैं और न जो भविष्य में धर्मों को पैदा  
 करने वाले हैं (अनुपादिभूपादानिया)
५. अ. जो धर्म स्वयं अपवित्र है और अपवित्रता के  
 आलम्बन भी बनते हैं (संकिलिट्ठ-संकिलेसिका)  
 आ. जो धर्म स्वयं अपवित्र नहीं है किन्तु  
 अपवित्रता के आलम्बन बनते हैं (असंकिलिट्ठ-संकिलेसिका)  
 इ. जो धर्म न स्वयं अपवित्र है और न  
 अपवित्रता के आलम्बन ही बनते हैं (असंकिलिट्ठ-असंकिलेसिका)
६. अ. जो धर्म चित्तके और चित्तार से युक्त है (सचितक-सचित्तारा)

- आ. जो धर्म वितक से तो नहीं किन्तु  
 विचार से युक्त है (अवितक-विचारमता)
- इ. जो धर्म न वितक और न विचार से ही युक्त है (अवितक-अविचार)
७. अ. जो धर्म प्रीति की भावना से युक्त है (प्रीतिसहगता)  
 आ. जो धर्म सूख की भावना से युक्त है (सूखसहगता)  
 इ. जो धर्म उपेक्षा की भावना से युक्त है (उपेक्षासहगता)
८. अ. दर्शन के द्वारा जिनका नाश किया जा सकता है (दर्शनन पहातब्बा)  
 आ. अभ्यास के द्वारा जिनका नाश किया जा सकता है (भावनाय पहातब्बा)  
 इ. जो न दर्शन और न अभ्यास से ही नष्ट किये  
 जा सकते हैं (नेव दर्शनन न भावनाय पहातब्बा)
९. अ. वे धर्म जिनके हेतु का विनाश दर्शन से  
 किया जा सकता है (दर्शनन पहातब्बहेतुका)
- आ. वे धर्म जिनके हेतु का विनाश अभ्यास  
 से किया जा सकता है (भावनाय पहातब्बहेतुका)  
 इ. वे धर्म जिनके हेतु का विनाश न दर्शन से  
 और न अभ्यास से ही किया जा सकता है  
 (नेव दर्शनन न भावनाय पहातब्बहेतुका)
१०. अ. वे धर्म जो कर्म-संचय के कारण बनते हैं (आचयगामिनो)  
 आ. वे धर्म जो कर्म-संचय के विनाश के  
 कारण बनते हैं (अपचयगामिनो)  
 इ. वे धर्म जो न कर्म-संचय और न उसके विनाश के  
 कारण बनते हैं (नेव आचयगामिनो न अपचयगामिनो)
११. अ. वे धर्म जो शैक्ष्य सम्बन्धी है (सेक्ष्वा)  
 (लोकोत्तर मार्ग की सात अवस्थाएँ)  
 आ. वे धर्म जो शैक्ष्य सम्बन्धी नहीं हैं, अर्थात् जिन्होंने  
 अहंत्व की पूर्णता ग्राप्त करली है (अहंत्व-फल) (असेक्ष्वा)  
 इ. वे धर्म जो उपर्युक्त दोनों प्रकारों से विभिन्न है  
 (अर्थात् उपर्युक्त आठ कोश्लोड़कर वाकीसब) (नेव सेक्ष्वा न असेक्ष्वा)
१२. अ. वे धर्म जो अल्प आकार वाले हैं (परिता)

- जा. वे धर्म जो महान् आकार वाले हैं (महगता)  
 इ. वे धर्म जो अपरिमेय आकार वाले हैं (अप्यमाणा)  
 १३. अ. वे धर्म (मन की अवस्थाएँ) जिनका आ- (परितारमणा)  
 लम्बन अल्प आकार वाला है  
 आ. वे धर्म (मन की अवस्थाएँ जिनका आल- (महगतारमणा)  
 लम्बन महान् आकार वाला है  
 इ. वे धर्म (मन की अवस्थाएँ) जिनका आल- (अप्यमाणारमणा)  
 लम्बन अपरिमेय आकारवाला है  
 १४. अ. हीन धर्म (मन की अवस्थाएँ) (हीना)  
 आ. मध्यम धर्म (मन की अवस्थाएँ) (मिडिमा)  
 इ. उत्तम धर्म (मन की अवस्थाएँ) (पर्णीता)  
 १५. अ. जो निश्चयपूर्वक बुरे हैं (मिळतनियता)  
 आ. जो निश्चयपूर्वक अच्छे हैं (सम्मतनियता)  
 इ. जिनका स्वरूप अनिश्चित है (अनियता)  
 १६. अ. वे धर्म (मन की अवस्थाएँ) जिनका (मग्गारमणा)  
 आलम्बन मार्ग है  
 आ. वे धर्म (मन की अवस्थाएँ) जिनका हेतु (मग्गहतुका)  
 मार्ग है  
 इ. वे धर्म (मन की अवस्थाएँ) जिनका मुख्य  
 उद्देश्य ही मार्ग है (मग्गाधिपतिमो)  
 १७. अ. वे मन की अवस्थाएँ जो उत्पन्न हो चुकी हैं (उपन्ना)  
 आ. वे मन की अवस्थाएँ जो अभी उत्पन्न नहीं (अनुपन्ना)  
 हुई है  
 इ. वे मन की अवस्थाएँ जो भविष्य में पैदा होनेवाली हैं (उपादिनो)  
 १८. अ. वे मन की अवस्थाएँ जो बीत गई (अतीता)  
 आ. वे मन की अवस्थाएँ जो भविष्य में पैदा (अनागता)  
 होंगी  
 इ. वे मन की अवस्थाएँ जो अभी हाल पैदा हुई  
 है और अभी वर्तमान है (पञ्चपन्ना)

१०. अ. वे मन की अवस्थाएँ जिनका आलम्बन कोई  
अतीत की वस्तु है (अतीतारम्मणा)  
 आ. वे मन की अवस्थाएँ जिनका आलम्बन  
कोई भविष्य की वस्तु है (अनागतारम्मणा)  
 इ. वे मन की अवस्थाएँ जिनका आलम्बन  
कोई वर्तमान की वस्तु है (पञ्चपद्मारम्मणा)
२०. अ. जो धर्म किसी व्यक्ति के अन्दर अवस्थित  
है (अज्ञता)  
 आ. जो धर्म किसी व्यक्ति के बाहर अवस्थित  
है (बहिद्वा)  
 इ. जो धर्म किसी व्यक्ति के अन्दर और  
बाहर दोनों तरफ अवस्थित है (अज्ञता-बहिद्वा)
२१. अ. वे धर्म (मन की अवस्थाएँ) जिनका  
आलम्बन कोई आन्तरिक वस्तु है (अज्ञतारम्मणा)  
 आ. वे धर्म (मन की अवस्थाएँ) जिनका  
आलम्बन कोई बाहरी वस्तु है (बहिद्वारम्मणा)  
 इ. वे धर्म (मन की अवस्थाएँ) जिनका  
आलम्बन दोनोंआन्तरिक और बाहरी वस्तुएँ हैं (अज्ञता-बहिद्वारम्मणा)
२२. अ. वे धर्म जो दृश्य है और इन्द्रिय और उसके (सनिद्धसन-  
विषय के संनिकर्ष में उत्पन्न होने वाले हैं नप्पटिधा)  
 आ. वे धर्म जो दृश्य तो नहीं किन्तु इन्द्रिय और उसके (अनिद्धसन-अप्प-  
सनिकर्ष में उत्पन्न होने वाले हैं टिधा)  
 इ. वे धर्म जो न तो दृश्य है और न इन्द्रिय (अनिद्धसन-अप्प-  
और उसके विषय के संनिकर्ष से उत्पन्न होने वाले हैं टिधा)

२०० छुक

(हेतु-वर्ग)

१. अ. जो दूसरों के हेतु है—(हेतु)  
 आ. जो दूसरों के हेतु नहीं है—(न हेतु)

२. अ. जो हेतुओं से युक्त है—(सहेतुका)

आ. जो हेतुओं से युक्त नहीं है—(अहेतुका)

३. अ. जिनसे हेतु सलग्न है—(हेतुसम्पर्युता)

आ. जिनसे हेतु सलग्न नहीं है—(हेतुविषयुता)

४. अ. जो स्वयं हेतु है और हेतुओं से युक्त भी है—(हेतु चेव सहेतुका च)

आ. जो स्वयं हेतु नहीं है किंतु हेतुओं से युक्त है—(सहेतुका चेव न च हेतु)

५. अ. जो स्वयं हेतु है और जिनसे हेतु सलग्न भी है—(हेतुचेव हेतुसम्पर्युता च)

आ. जो स्वयं हेतु नहीं है, किन्तु जिनसे हेतु सलग्न है—(हेतुसम्पर्युता चेव न च हेतु)

६. अ. जो स्वयं हेतु नहीं है किन्तु जो हेतुओं से युक्त है—(न-हेतु सहेतुका)

आ. जो न स्वयं हेतु है और न हेतुओं से युक्त है—(न-हेतु अहेतुका)

(मर्दिप्त मध्यवर्गीय दुक)

७. अ. जिनके प्रत्यय है—(मण्डल्या)

आ. जिनके प्रत्यय नहीं है—(अप्पल्या)

८. अ. मंसकृत—(सखता)

आ. अमंसकृत—(असखता)

९. अ. दृश्य—(सनिद्धस्सना)

आ. अदृश्य—(अनिद्धस्सना)

१०. अ. इन्द्रिय और विषय के संनिकर्ष से युक्त—(सण्टिष्ठा)

आ. इन्द्रिय और विषय के संनिकर्ष से विषुक्त—(अप्पतिष्ठा)

११. अ. जो रूप-युक्त है—(रूपिमा)

आ. जो रूप-युक्त नहीं है—(ब्रूपिनो)

१२. अ. लोकिक—(लोकिया)

आ. अलोकिक—(लोकनरा)

१३. अ. जो कुछ के द्वारा विजेय है—(केनचि विज्ञेया)

आ. जो कुछ न के द्वारा विजेय नहीं है—(केनचि न विज्ञेया)

( ३. आनन्द-वर्ग )

१४. अ. जो चित्त-मल है—(आसवा)

आ. जो चित्त-मल नहीं है—(नो आसवा)

२५. अ. जो चित्त-मल से युक्त है—(सासवा)  
 आ. जो चित्त-मल से युक्त नहीं है—(असासवा)
२६. अ. जिनसे चित्त-मल संलग्न है—(आसवसम्प्रयुक्ता)  
 आ. जिनसे चित्त-मल संलग्न नहीं है—(आसवविप्रयुक्ता)
२७. अ. जो स्वयं चित्त-मल है और चित्त-मलों से युक्त भी है—(आसवा  
 चेव सासवा चा)
- आ. जो स्वयं चित्त-मल नहीं है किन्तु चित्त-मलों से युक्त है—(सासवा  
 चेव नो च आसवा)
२८. अ. जो स्वयं चित्त-मल है और जिनसे चित्त-मल संलग्न भी है—(आसवा  
 चेव आसवसम्प्रयुक्ता च)
- आ. जो स्वयं चित्त-मल नहीं है किन्तु जिनसे चित्त-मल संलग्न है—  
 (आसवसम्प्रयुक्ता चेव नो च आसवा)
२९. अ. जो चित्त-मलों से संलग्न न रहने पर भी उनके आधार है—(आसव-  
 विप्रयुक्ता सासवा)
- अ. जो चित्त-मलों से संलग्न भी नहीं है और उनके आधार भी नहीं है—  
 (आसवविप्रयुक्ता अनासवा)

## ( ४—संयोजन-वर्ग )

३०. अ. जो चित्त के बन्धन है—(संयोजना)  
 आ. जो चित्त के बन्धन नहीं है—(नो संयोजना)
३१. अ. जो चित्त-बन्धनों की ओर ले जाने वाले हैं—(संयोजनिया)  
 आ. जो चित्त-बन्धनों की ओर नहीं ले जाने वाले हैं—(असंयोजनिया)
३२. अ. जिनसे चित्त-बन्धन संलग्न है—(संयोजन-सम्प्रयुक्ता)  
 आ. जिनसे चित्त-बन्धन असंलग्न है—(संयोजन-विप्रयुक्ता)
३३. अ. जो स्वयं चित्त-बन्धन है और चित्त-बन्धनों की ओर ले जाने वाले भी  
 है—(संयोजना चेव संयोजनिया च)
- आ. जो स्वयं चित्त-बन्धन नहीं है किन्तु जो चित्तबन्धनों की ओर ले  
 जाने वाले हैं—(संयोजनिया चेव नो च संयोजना)
३४. अ. जो स्वयं चित्त-बन्धन है और जिनसे चित्त-बन्धन संलग्न भी है—  
 (संयोजना चेव संयोजनसंप्रयुक्ता च)

आ. जो स्वयं चित्त-बन्धन नहीं है, किन्तु जिससे चित्त-बन्धन संलग्न है—  
(संयोजनसम्प्रयुक्ता चेव नो च संयोजना)

२५. अ. जिससे चित्त-बन्धन संलग्न तो नहीं है किन्तु जो चित्त-बन्धनों को  
ओर ले जाने वाले हैं—(संयोजनविषयप्रयुक्ता संयोजनिया)

आ. जिससे न तो चित्त-बन्धन संलग्न हो है और न जो चित्त-बन्धनों की  
ओर ले जाने वाले हैं—(संयोजनविषयप्रयुक्ता असंयोजनिया)  
(५—गन्ध-वर्ग)

२६. अ. जो चित्त की गाठि है—(गन्धा)

आ. जो चित्त की गाठिं नहीं है—(नो गन्धा)

२७. अ. जो चित्त की गाठिं को ओर ले जाने वाली है—(गन्धनिया)

आ. जो चित्त की गाठिं को ओर नहीं ले जाने वाली है—(अगन्धनिया)

२८. अ. जो चित्त की गाठिं को सहचर है—(गन्ध-सम्प्रयुक्ता)

आ. जो चित्त की गाठिं को सहचर नहीं है—(गन्ध-विषयप्रयुक्ता)

२९. अ. जो स्वयं चित्त की गाठि है और चित्त की गाठिं की ओर ले जाने वाली  
भी है—(गन्धा चेव गन्धनिया च.)

आ. जो स्वयं चित्त की गाठि नहीं है और न चित्त की गाठिं को ओर  
ले जाने वाली है (गन्धनिया चेव नो च गन्धा)

३०. अ. जो स्वयं चित्त की गाठि है और चित्त की गाठिं को सहचर भी है—  
(गन्धा चेव गन्धसम्प्रयुक्ता च.)

आ. जो स्वयं चित्त की गाठि नहीं है किन्तु चित्त की गाठिं को सहचर है—  
(गन्धसम्प्रयुक्ता चेव नो च गन्धा)

३१. अ. जो चित्त की गाठिं की सहचर नहीं है, किन्तु  
उनको भविष्य में पैदा करने वाली है—(गन्धविषयप्रयुक्ता गन्धनिया)

आ. जो चित्त की गाठिं की सहचर भी नहीं है और न  
उन्हें भविष्य में पैदा करने वाली ही है—(गन्धविषयप्रयुक्ता अगन्धनिया)  
(६—ओष वर्ग)

३२-३७—उपर के समान ही। केवल 'चित्त की गाठि' को जगह 'ओष' (वार)  
का प्रयोग है। (ओष वार है, काम-ओष, भव-ओष, (आत्म-)  
दृष्टि-ओष और अविद्या-ओष।

## ( ३—योग-वर्ग )

३८-४३—ऊपर के समान ही। केवल 'चित्र की गाँठ' की जगह 'योग' (आसक्ति) का प्रयोग है। (योग भी चार माने गये हैं, यथा काम-योग, भव-योग, (आत्म-) दृष्टि-योग, एवं अविद्या-योग)

## ( ४—नीवरण-वर्ग )

४४. अ. जो ध्यान के विघ्न हैं — (नीवरण)  
 आ. जो ध्यान के विघ्न नहीं हैं — (नो नीवरण)
४५. अ. जो भविष्य में ध्यान के विघ्नों को पैदा करने वाले हैं — (नीवरणिया)  
 आ. जो भविष्य में ध्यान के विघ्नों को पैदा करने वाले नहीं हैं — (अनीवरणिया)
४६. अ. जो ध्यान के विघ्नों के सहचर है — (नीवरणसम्प्रयुता)  
 आ. जो ध्यान के विघ्नों के सहचर नहीं है — (नीवरणविष्प्रयुता)
४७. अ. जो स्वयं ध्यान के विघ्न हैं और ध्यान के विघ्नों को पैदा करने वाले भी हैं — (नीवरण चेव नीवरणाण्या च)  
 आ. जो स्वयं ध्यान के विघ्न नहीं हैं किन्तु जो ध्यान के विघ्नों को पैदा करने वाले हैं — (नीवरणिया चेव नो च नीवरण)
४८. अ. जो स्वयं ध्यान के विघ्न हैं और ध्यान के विघ्नों के सहचर भी हैं — (नीवरण चेव नीवरण-सम्प्रयुता च)  
 आ. जो स्वयं ध्यान के विघ्न नहीं हैं किन्तु ध्यान के विघ्नों के सहचर है — (नीवरणसम्प्रयुता चेव नो च नीवरण)
४९. अ. जो स्वयं ध्यान के विघ्नों के सहकर नहीं है किन्तु उन्हें पैदा करने वाले हैं — (नीवरणविष्प्रयुता नीवरणिया)  
 आ. जो स्वयं ध्यान के विघ्नों के सहकर भी नहीं है और न उन्हें पैदा करने वाले ही है — (नीवरणविष्प्रयुता अनीवरणिया)

## ( ५—परामर्श-वर्ग )

५०. अ. जो मिथ्या धारणाएँ हैं — (परामासा)  
 आ. जो मिथ्या धारणाएँ नहीं हैं — (नो परामासा)

५१. अ. जो (चित की अवस्थाएँ) मिथ्या धारणाओं को पेंदा करने वाली है—(परामट्ठा)

आ. जो मिथ्या धारणाओं को पेंदा करने वाली नहीं है—(अपरामट्ठा)

५२. अ. जो मिथ्या धारणाओं को सहचर है—(परामाससम्पदता)

आ. जो मिथ्या धारणाओं की सहचर नहीं है—(परामासविष्णवृत्ता)

५३. अ. जो स्वयं मिथ्या धारणाएँ हैं और मिथ्या धारणाओं—  
को पेंदा करने वाली भी है—(परामासा चेत्र परामट्ठा च)

आ. जो स्वयं मिथ्या धारणाएँ नहीं हैं किन्तु  
मिथ्या धारणाओं को पेंदा करने वाली  
है— (परामट्ठा चेत्र नो च परामासा)

५४. अ. जो स्वयं मिथ्या धारणाओं से विमुक्त है  
किन्तु उन्हें पेंदा करने वाली है—(परामासविष्णवृत्ता परामट्ठा)

आ. जो स्वयं मिथ्या धारणाओं से विमुक्त है और  
उन्हें पेंदा करने वाली भी नहीं है—(परामासविष्णवृत्ता आपरामट्ठा)

### ( १०—विस्तृत मध्यम ढुक )

५५. अ. जो धर्म किसी आलम्बन का सहारा लेकर पेंदा होते हैं—(सातमणा)  
आ. जो धर्म किसी आलम्बन का सहारा लेकर नहीं पेंदा होते—(असातमणा)

५६. अ. जो चेतना-स्वरूप है—(चित्ता)

आ. जो चेतना-स्वरूप नहीं है—(नो चित्ता)

५७. अ. जो चित की सहगत अवस्थाएँ हैं—(चेतमिका)

आ. जो चित की सहगत अवस्थाएँ नहीं हैं—(चेतसिका)

५८. अ. जो चेतना से युक्त है—(चित्तसम्पदता)

आ. जो चेतना से युक्त नहीं है—(चित्तविष्णवृत्ता)

५९. अ. जो चेतना से समृद्ध है—(चित्तसंसट्ठा)

आ. जो चेतना से समृद्ध नहीं है—(चित्तविसंसट्ठा)

६०. अ. जो चेतना के द्वारा उत्पन्न किये जाते हैं—(चित्तसमुद्धाना)

आ. जो चेतना के द्वारा उत्पन्न नहीं किये जाते—(नो चित्तसमुद्धाना)

६१. अ. जो चेतना की उत्पत्ति के साथ उत्पन्न होने वाले हैं—(चित्त सहभूनो)  
 आ. जो चेतना की उत्पत्ति के साथ उत्पन्न होने  
 वाले नहीं है—(नो चित्त सहभूनो)
६२. अ. जो चेतना के परिवर्तन के साथ परिवर्तित  
 हो जाते हैं—(चित्तानुपरिवर्तनो)  
 आ. जो चेतना के परिवर्तन के साथ परिवर्तित  
 नहीं होते—(नो चित्तानुपरिवर्तनो)
६३. अ. जो चेतना से संयुक्त है और उसी के द्वारा पैदा  
 भी होने वाले हैं—चित्तसंसदृक्षसमृद्धाना)  
 आ. जो चेतना से संयुक्त नहीं है किन्तु उसके द्वारा  
 पैदा होने वाले हैं—(नो-चित्तसंसदृक्षसमृद्धाना)
६४. अ. जो चेतना से युक्त है, उसके द्वारा पैदा होने वाले हैं  
 और उसके साथ रहने वाले हैं—(चित्त-संसदृक्ष-समृद्धान-सहभूनो)  
 आ. जो न चेतना से युक्त है न उसके द्वारा पैदा होने  
 वाले हैं और न उसके साथ रहने वाले हैं—  
 (नो चित्त-संसदृक्ष-समृद्धान-सहभूनो)
६५. अ. जो चेतना से युक्त है, उसके द्वारा पैदा किये जाते हैं  
 और उसके परिवर्तन के साथ परिवर्तित हो जाते हैं—  
 (चित्त-संसदृक्ष-समृद्धानानुपरिवर्तिमो)  
 आ. जो न चेतना से युक्त है, न उसके द्वारा पैदा किये  
 किये जाते हैं और न उसके परिवर्तन के साथ  
 परिवर्तित होते हैं—(नो-चित्त-संसदृक्ष-समृद्धानानुपरिवर्तिनो)
६६. अ. जो किसी व्यक्ति के अन्दर स्थित है—(अङ्गभौतिका)  
 आ. जो उसके बाहर स्थित है—(बाहिरा)
६७. अ. जो पूर्व-कर्मों के परिणाम-स्वरूप अजित है—(उपादा)  
 आ. जो पूर्व-कर्मों के परिणाम-स्वरूप अजित नहीं है—(नो उपादा)
६८. अ. पूर्ववत्— (उपादिशा)  
 आ. " (अनुपादिशा)

## ( १६—उपादान-वर्ग )

६९. अ. जो धम्म उपादान (इतिव्र द्वारा भहण-स्वरूप) है—(उपादाना)  
 आ. जो धम्म उपादान नहीं है—(नो-उपादाना)
७०. अ. जो धम्म उपादान को पेदा करने वाले हैं—(उपादानिया)  
 आ. जो धम्म उपादान को नहीं पेदा करने वाले हैं—अनुपादानिया
७१. अ. जो धम्म उपादान से संलग्न है—(उपादानसम्पूर्ता)  
 आ. जो धम्म उपादान से अलग है—(उपादानविषयपूर्ता)
७२. अ. जो धम्म स्वयं उपादान है और उपादान को  
 पेदा करने वाले भी है—(उपादाना चेव उपादानिया च)  
 आ. जो धम्म स्वयं उपादान नहीं है किन्तु उपादान  
 को पेदा करने वाले है—(उपादानिया चेव नो च उपादाना)
७३. अ. जो धम्म स्वयं उपादान है और अन्य उपादानों  
 से संलग्न भी है—(उपादाना चेव उपादानसम्पूर्ता)  
 आ. जो धम्म स्वयं उपादान नहीं है (उपादानसम्पूर्ता चेव नो च  
 किन्तु अन्य उपादानों से संलग्न है— उपादाना)
७४. अ. जो धम्म स्वयं उपादानों से अलग है  
 किन्तु उन्हें पेदा करने वाले है—(उपादानविषयपूर्ता उपादानिया)  
 आ. जो धम्म उपादानों से अलग है और उन्हें  
 पेदा करने वाले भी नहीं है—(उपादानविषयपूर्ता अनुपादानिया)

## ( १७—कलेश-वर्ग )

७५. अ. जो धम्म कलेश (चित्त-भल—राग, देष, मोहादि)-स्वरूप है—(किलेशा)  
 आ. जो धम्म कलेश-स्वरूप नहीं है—(नो किलेशा)
७६. अ. जो धम्म कलेश को पेदा करने वाले है—(संकिलेसिका)  
 आ. जो धम्म कलेश को पेदा करने वाले नहीं है—(असंकिलेसिका)
७७. अ. जो धम्म कलेशों से युक्त है—(संकिलिट्ठा)  
 आ. जो धम्म कलेशों से युक्त नहीं है—(असंकिलिट्ठा)
७८. अ. जो धम्म कलेशों से संलग्न है—(किलेससम्पूर्ता)  
 आ. जो धम्म कलेशों से संलग्न नहीं है—(किलेसविषयपूर्ता)

७९. अ. जो स्वयं कलेश-रूप है और बलेशों को पैदा करने वाले भी है—(किलेसा चेव संकिलेसिका)  
 आ. जो स्वयं कलेश-रूप नहीं है किन्तु बलेशों को।  
 पैदा करने वाले हैं—(संकिलेसिका चेव नो च किलेसा)
८०. अ. जो स्वयं कलेश-रूप है और अन्य कलेशों से मुक्त भी है—(किलेसा चेव संकिलिट्ठा च)  
 आ. जो स्वयं कलेश-रूप नहीं है किन्तु  
 अन्य कलेशों से युक्त है—(संकिलिट्ठा चेव नो च किलेसा)
८१. अ. जो स्वयं कलेश-रूप है और अन्य कलेशों से संलग्न भी है—(किलेसा चेव किलेससम्पयुता च)  
 आ. जो स्वयं कलेश-रूप नहीं है किन्तु अन्य  
 कलेशों से संलग्न है—किलेससम्पयुता चेव नो च किलेसा)
८२. अ. जो स्वयं कलेश से अलग है किन्तु कलेशों की पैदा करने वाले हैं—(किलेसविष्पयुता संकिलेसिका)  
 आ. जो स्वयं कलेश से अलग है और कलेशों को
- पैदा करने वाले भी नहीं हैं—(किलेसविष्पयुता असंकिलेसिका)
८३. आ. जो घम्म 'दशंन' के द्वारा हटाये या नष्ट किये जा सकते हैं—(दस्सने न पहातब्बा)  
 आ. जो घम्म 'दशंन' के द्वारा नहीं हटाये या नष्ट किये जा सकते—(न दस्सनेन पहातब्बा)
८४. अ. जो घम्म 'भावना' के द्वारा हटाये या नष्ट किये जा सकते हैं—  
 (भावनाय पहातब्बा)  
 आ. जो घम्म 'भावना' के द्वारा हटाये या नष्ट नहीं किये जा सकते—(न भावनाय पहातब्बा)
८५. अ. जिन घम्मों के हेतु 'दशंन' के द्वारा नष्ट किये जा सकते हैं—(दस्सनेन पहातब्ब-हेतुका)  
 आ. जिन घम्मों के हेतु 'दशंन' के द्वारा नष्ट नहीं किये जा सकते—(न दस्सनेन पहातब्ब-हेतुका)
८६. अ. जिन घम्मों के हेतु 'भावना' के द्वारा नष्ट किये जा सकते हैं—(भावनाय पहातब्बहेतुका)

- आ. जिन धर्मों के हेतु 'भावना' के द्वारा नष्ट  
नहीं किये जा सकते।—(न भावनाय पहातव्व हेतुका)
८३. अ. जिन धर्मों के साथ 'वितर्क' संलग्न है—(सवितरका)
- आ. जिन धर्मों के साथ 'वितर्क' संलग्न नहीं है—(अवितरका)
८४. अ. जिन धर्मों के साथ 'विचार' संलग्न है (सविचारा)
- आ. जिन धर्मों के साथ 'विचार' संलग्न नहीं है—(अविचारा)
८५. आ. जिन धर्मों के साथ 'प्रीति' संलग्न है—(सप्रीतिका)
- आ. जिन धर्मों के साथ 'प्रीति' संलग्न नहीं है—(अप्रीतिका)
९०. अ. जो धर्म 'प्रीति' के सहचर नहीं है—(न-प्रीतिसहगता)
- आ. जो धर्म 'मुख' के सहचर है—(सुखसहगता)
९१. अ. जो धर्म 'मुख' के सहचर नहीं है—(न सुखसहगता)
- आ. जो धर्म 'उपेक्षा' के सहचर है—(उपेक्षासहचरा)
९२. अ. जो धर्म 'उपेक्षा' के सहचर नहीं है—(न उपेक्षासहचरा)
९३. अ. जिन धर्मों का सम्बन्ध कामनाओं के लोक (कामावचर) से है—  
(कामावचरा)
- आ. जिन धर्मों का सम्बन्ध कामनाओं के  
लोक (कामावचर) से नहीं है—(न-कामावचरा)
९४. अ. जिन धर्मों का सम्बन्ध रूप-लोक  
(रूपावचर) से है—(रूपावचरा)
- आ. जिन धर्मों का सम्बन्ध रूप-लोक (रूपावचर) से नहीं है—(न-  
रूपावचरा)
९५. अ. जिन धर्मों का सम्बन्ध अरूप-लोक से है—(अरूपावचरा)
- आ. जिन धर्मों का सम्बन्ध अरूप-लोक से नहीं है—(न-अरूपावचरा)
९६. अ. जो धर्म आवागमन के चक्र में निहित है—(परियापद्मा)
- आ. जो धर्म आवागमन के चक्र में निहित नहीं है—(अपरियापद्मा)
९७. अ. जो धर्म निर्वाण की प्राप्ति कराने वाले हैं—(नियानिका)
- आ. जो धर्म निर्वाण की प्राप्ति कराने वाले नहीं है—(अनियानिका)
९८. अ. जिन धर्मों के परिणाम सुनिश्चित है—(नियता)
- आ. जिन धर्मों के परिणाम मुनिश्चित नहीं है—(अनियता)

९९. अ. जिनके आगे बढ़कर भी कुछ धम्म है—(स-उत्तरा)

आ. जिनसे आगे बढ़कर और कोई धम्म नहीं है—(अनुत्तरा)

१००. अ. जो धम्म दुःखदायी पाप-कर्मों से युक्त है—(सरणा)

आ. जो धम्म दुःखदायी पाप-कर्मों से युक्त नहीं है—(वरणा)

उपर्युक्त १२२ वर्गीकरणों में धम्मों का विश्लेषण 'धम्मसंगणि' में किया गया है। वास्तव में इन वर्गीकरणों में भी प्रथम वर्गीकरण (कुशल, अकुशल, अव्याकृत) ही नैतिक दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण है। अतः धम्मसंगणि में मानसिक और भौतिक जगत् के सारे तत्त्वों को प्रधानतः इन्हीं तीन शीर्षकों में पहले विभक्त किया गया है। वहाँ पहले उपर्युक्त तत्त्वों का विश्लेषण कर यही जिज्ञासा की गई है कि इनमें से कौन से धम्म कुशल हैं, अकुशल हैं, या अव्याकृत हैं। शेष १२१ वर्गों में धम्मों के विश्लेषण को तो अन्त में प्रश्न और उत्तर के रूप में ही संक्षेप में समझा दिया गया है। अतः धम्मसंगणि का मुख्य विषय है धम्मों का कुशल, अकुशल और अव्याकृत के रूप में विश्लेषण। धम्मसंगणि की विषय वस्तु चार कांडों में विभाजित की गई है, (१) चित्तुपाद-कंड (२) रूपकंड (३) निक्तेषकंड और (४) अत्युद्धारकंड। पहले दो कांडों में मानसिक और भौतिक जगत् की अवस्थाओं का कुशल, अकुशल और अव्याकृत के रूप में विश्लेषण है। पहले कांड में कुशल, अकुशल और अव्याकृत का विवेचन है और दूसरे कांड में अव्याकृत के अधुरे विवेचन को पूरा किया गया है। तीसरे और चौथे कांडों में इनका संक्षेप है और शेष १२१ वर्गों के स्वरूप को प्रश्नोत्तर के रूप में समझाया गया है। चूंकि धम्मों की गणना कुशल, अकुशल आदि वर्गों में करने के अतिरिक्त स्वयं उनके स्वरूप का भी विश्लेषण धम्मसंगणि में किया गया है, अतः इस दृष्टि से उनके चार कांडों को चित्त, चेतासिक और रूप (जिन तीन वर्गों में उसने धम्मों को उनके स्वरूप भेद की दृष्टि से विभक्त किया है) इन तीन शीर्षकों में भी विभक्त किया जा सकता है। इस दृष्टि से प्रथम कांड

चित्त, चेतासिक और उनके नामा उपविभागों का एवं दूसरे कांड में रूप (भौतिक जगत् का समर्पित रूप) का बर्णन है। तीसरे और चौथे कांडों में यही भी संक्षेप ही है। धम्मसंगणि के इस द्विविध विभाग के कारण ही उसके विवेचन में इतनी दुर्लक्षण आ गई है। पहले हम

चित्त और उसकी सहगत अवस्थाओं (चेतासिक) के विश्लेषण और कुशल, अकुशल आदि के रूप में उसके विभाजन को, जो पहले कांड में किया गया है, लेते हैं। चित्त का अर्थ है चेतना। चेतना को बौद्ध दर्शन में वहे व्यापक अर्थ में लिया गया है। भगवान् ने स्वयं कहा है 'चेतानाहै भिक्षतवे कम्मं वदामि' अर्थात् 'भिक्षुओ! चेतना को ही में कर्म कहता है।' इस बुद्ध-वचन से ही समझा जा सकता है कि अभिधर्म में चेतना का इतना सूक्ष्म विश्लेषण क्यों किया गया है। कर्म के शुभ, अशुभ स्वरूपों का चेतना से घनिष्ठ संबंध है, अतः उसका विश्लेषण प्रत्येक पूर्ण आचरण-दर्शन के लिए आवश्यक है। धर्मसंगणि के निदेशानुसार चित्त की चार भूमियों हैं, जिन पर अध्यसर होता हुआ वह इस वहिजंगत् वी चंचलताओं से ऊपर उठकर निर्वाण की ओर अभिमुख होता है। इन चार भूमियों के नाम हैं, कामावचर-भूमि, रूपावचर-भूमि, अरूपावचर-भूमि और लोकोत्तर-भूमि। जिस जीवन और जगत् में हमारा सामान्य-जीवन-प्रवाह चालता है वह कामनाओं का लोक है। यहाँ जन्म से लेकर मृत्यु तक हम कामनाओं की पूर्ति में ही लगे रहते हैं। एक कामना दूसरी कामना को जन्म देती है और अन्त में अतृप्त कामनाओं के सम्बल को लेकर ही हम दूसरे जन्म में प्रवेश कर जाते हैं। चित्त की समता यहाँ नहीं मिलती। यही चित्त की कामावचर (कामनाओं में विचरण करने वाली) भूमि है। चित्त की दूसरी भूमि रूपावचर है। रूपावचर-भूमि से तात्पर्य है ध्यान-भूमि पर स्थित चित्त। रूपावचर पश्च ध्यान के अवै में पालि-साहित्य में रुढ़ हो गया है। चित्त की इस अवस्था में ध्यान का विषय या 'कर्मस्थान' रूपवान् पदार्थ या बाह्य जगत् का कोई दृश्य पदार्थ ही होता है, अतः इसे रूप-संबंधी चित्त का ध्यान ही कहना चाहिए। चित्त वी तीसरी अवस्था में बाह्य दृश्य-पदार्थ के चिन्तन से हटकर चित्त आन्तरिक और किसी रूप-रहित आलम्बन (कर्मस्थान) का चिन्तन करने लगता है, जैसे जाकाश की अनन्तता, ज्ञान की अनन्तता, अकिञ्चनता की अनन्तता या अन्त में ऐसी सूक्ष्म अवस्था जिसमें चेतना के भी होने या न होने का निर्धारण न किया जा सके। यही चित्त की अरूपावचर भूमि है, अर्थात् अरूप-संबंधी चित्त का ध्यान। यहाँ रूप का संबंध अस्तित्वमन हो जाता

है। चित की चौथी अवस्था का नाम है लोकोत्तर-भूमि । यहाँ आते-आते गोगी अनित्य, दुर्लभ और अनात्म का चिन्तन करते-करते निर्वाण स्थी आल-स्वनं पर ध्यान करने लगता है, जिससे उसकी सारी इच्छाएँ नाट हो जाती हैं। एक-एक करके वह अपने सारे वस्त्रों को नाट कर डालता है और उसका चित उस मर्वोत्तम भूमि में पहुँच जाता है, जो लोकोत्तर है। इस भूमि का सबंध चार आर्य-मार्गों और उसके फलों (खोत आपत्ति आदि) से है। यहाँ पहुँचकर फिर तृष्णा या अविद्या के फन्दे में पड़ना नहीं होता। चित फिर लोभ, द्वेष और मोह की ओर नहीं लौट सकता। इसीलिए यह भूमि लोकोत्तर है। चित को इन चार भूमियों को समझ लेने के बाद हमें चित के कुशल, अकुशल और अव्याकृत स्वरूप को कुछ और अधिक समझ लेना चाहिए। फिर चित के भेदों को समझना हमारे लिए आसान हो जायगा। कुशल चित वह है जो लोभ, द्वेष, मोह आदि से रहित होता है। अकुशल चित इनसे यूक्त होता है। अव्याकृत चित वह है जो इच्छा से रहित होता है। या तो यह अत्यंत स्वाभाविक रूप में पूर्ण-जन्म के कर्मों के परिणाम-स्वरूप प्राप्त होता है जिसमें इच्छा करने या न करने का कोई सावाल ही नहीं होता और इस जन्म के कर्मों से संबद्ध न होने कारण जिसका स्वरूप भी अस्पष्ट और अव्याख्यय (अव्याकृत) होता है, या यह विगत-तृष्णा उस पूर्ण पुरुष (अहंत) की चित्तावस्था का सूचक होता है जिसके इस जन्म के कुशल कर्म भी वास्तव में हेतु या इच्छा से रहित होते हैं और जो आगे के लिए विपाक भी पूरा नहीं करते। इसलिए वे भी अव्याकृत या अव्याख्यय होते हैं। इस दृष्टि से अव्याकृत चित के दो भाग किये गये हैं (१) विपाक-चित, जो पूर्णजन्म के कुशल और अकुशल दोनों प्रकार के चितों के परिणाम-स्वरूप ही सकते हैं और (२) किया-चित, जो अहंत की चित्त-अवस्था के सूचक हैं और जिनमें अहंत के चित्त की किया-मात्र ही रहती है, पर वास्तव में जो 'निष्क्रिय' होते हैं। पूर्णता-प्राप्त जानी पुरुष (अहंत) का चित्त सक्रिय चेतनात्मक होते हुए भी वह कर्म-विपाक की दृष्टि से निष्क्रिय होता है। चूंकि अहंत के सभी कर्म जाननिम द्वारा दम्ध कर दिये भयं होते हैं, जब उसका चित्त 'किया' भर करता है, उसका आगे के लिए कोई विपाक या परिणाम नहीं बनता। चित्त की उपर्युक्त

जार भूमियों और उसके तीन स्वरूपों में उसकी उन ८% अवस्थाओं का वर्गीकरण जो शम्मसगण में किया गया है वही अच्छी प्रकार समझ में आ सकता है। चित की अवस्थाएँ कुल मिलाकर ८९ हैं, जिनमें भूमियों की दृष्टि से ५४ कामावचर-भूमि से संबंधित है, १५ रूपावचर-भूमि से संबंधित है, १२ अल-पावचर भूमि से संबंधित है और ८ लोकोत्तर भूमि से संबंधित है। कुशल-चित की दृष्टि से इन ८९ चित की अवस्थाओं में से २१ अवस्थाएँ कुशल-चित से संबंधित हैं, १२ अवस्थाएँ अकुशल-चित से संबंधित हैं और ५६ अवस्थाएँ (२३ विपाक-चित + २० किया-चित) अव्याहृत-चित से संबंधित हैं। इनका भी जटिक विस्तैरण करें तो ५४ कामावचर-भूमि की चित-अवस्थाओं में से ८ कुशल-चित की अवस्थाएँ हैं, १२ अकुशल-चित की अवस्थाएँ हैं और ३४ (२३ विपाक-चित + ११ किया-चित) अव्याहृत-चित की अवस्थाएँ हैं। १५ रूपावचर-चित की अवस्थाओं में से ५ कुशल-चित संबंधी अवस्थाएँ हैं और १० (५ विपाक-चित + ५ किया-चित) अव्याहृत-चित संबंधी अवस्थाएँ हैं। रूपावचर-चित-भूमि में अकुशल-चित की अवस्थाएँ सम्भव नहीं होती। १२ अरूपावचर-भूमि की अवस्थाओं में ४ कुशल-चित की अवस्थाएँ हैं और ८ (४ विपाक-चित + ४ किया-चित) अव्याहृत-चित की अवस्थाएँ हैं। ८ लोकोत्तर-भूमि की अवस्थाओं में से ५ कुशल-चितों की अवस्थाएँ हैं और ३ अव्याहृत चित (केवल विपाक-चित) की अवस्थाएँ हैं। अरूपावचर और लोकोत्तर भूमियों में भी अकुशल-चित का होना संभव नहीं। कुशल-जटिक की दृष्टि से भी इसी प्रकार का विस्तृत विस्तैरण करें तो २१ कुशल-चितों में से ८ कामावचर-भूमि के हैं, ५ रूपावचर भूमि के हैं, ५ अरूपावचर भूमि के हैं और ४ ही लोकोत्तर भूमि के हैं। १२ अकुशल-चितों में कुल कामावचर भूमि के होते हैं, जिनकी अन्य उच्च भूमियों पर अकुशल-चित का होना संभव नहीं होता। १६ अव्याहृत-चित की अवस्थाओं में से ३४ (२३ विपाक-चित + ११ किया-चित) कामावचर-भूमि की हैं, १० (५+विपाक-चित + ५ किया-चित) रूपावचर-भूमि की हैं, ८ (४ विपाक-चित + ४ किया-चित) अरूपावचर-भूमि की हैं और ४ लोकोत्तर-भूमि (केवल विपाक-चित) की हैं। अभी यह गणना सुनोष नहीं जान पड़ेगी, किन्तु आगे के विवरण से साक हो जायगी। अन्त-

संगणि में जूँकि चित्त के उपर्युक्त ८९ प्रकारों का विवरण उसके कुशल अकुशल और अध्याहृत रूपों का मूलाधार लेकर ही किया गया है, अतः उसकी पढ़ति का ही अनुसरण करने हुए हम इस विषय को स्पष्ट करेंगे। धर्मसंगणि में सर्वप्रथम विज्ञासा की गई है 'कलमे धर्मा कुसला ?' अर्थात् कौन से धर्म कुशल है ? इसका जो उत्तर दिया गया है, उसका निष्कर्ष इस प्रकार है—

### १. कुसला धर्मा

#### (क) कामावचर-भूमि के द कुसल-चित्त ।

कामनाओं के लोक में विचरण करता हुआ मनुष्य भी अपने चित्त को कुशल बना सकता है। इसके लिए यह आवश्यक है कि वह धीरे धीरे अपने चित्त को लोभ, द्वेष और मोह से विमुक्त करे। इसके बिना उसका चित्त कुशल या सात्त्विक नहीं हो सकता। जब कोई साधक शुभ कर्म करता है जिससे उसका चित्त सात्त्विक बनता है तो कभी तो वह ऐसा अपने मन में ठानकर ज्ञान-पूर्वक करता है, अर्थात् वह ऐसा विचार-पूर्वक, सोचकर करता है कि ऐसा ऐसा करने से भविष्य के जीवन में भेरे कर्मों का विपाक कुशल बनेगा। इस प्रकार की उसकी चित्त-अवस्था ज्ञान-संप्रयुक्त या ज्ञानयुक्त कहलाती है। उदाहरणतः, एक मनुष्य दुर्घटनाकरण करता है और सोचता है कि ऐसा करने से उसका शुभ कर्म-विपाक बनेगा तो उसका चित्त उस समय ज्ञान-संप्रयुक्त है। किन्तु यदि एक बालक इसी काम को दूसरे के अनुकरण पर करता है तो उसके इस काम में इस ज्ञान की भावना नहीं है कि यह कर्म उसके लिए शुभ कर्म-विपाक का प्रसंबोधी बनेगा। अतः उसका चित्त 'ज्ञान-विप्रयुक्त' या ज्ञान से रहित है। इसी प्रकार यदि कोई कर्म दूसरे की प्रेरणा पर और निभक्षपूर्वक किया जाता है तो वह 'समांस्कारिक' (समांस्तारिक) है और यदि वह अपनी ही आन्तरिक प्रेरणा और बिना हिचकिचाहट के किया जाता है तो वह 'असांस्कारिक' (असंस्तारिक) है। इसी प्रकार कोई कर्म सीमनस्य की भावना से युक्त (सीमनस्स-सहगत) हो सकता है और कोई उपेक्षा

की भावना से युक्त (उपेक्षा-सहगत)। इतना समझ लेने पर अब धर्म-संगणि में निरिष्ट निम्नलिखित आठ कामावचर-कुशल-चित्तों को देखिए—)

यथा—

१. सौमनस्य से युक्त, ज्ञान-संप्रयुक्त, असांस्कारिक
२. सौमनस्य से युक्त, ज्ञान-संप्रयुक्त, सांस्कारिक
३. सौमनस्य से युक्त, ज्ञान-विप्रयुक्त, असांस्कारिक
४. सौमनस्य से युक्त, ज्ञान-विप्रयुक्त, सांस्कारिक
५. उपेक्षा से युक्त, ज्ञान-संप्रयुक्त, असांस्कारिक
६. उपेक्षा से युक्त, ज्ञान-संप्रयुक्त, सांस्कारिक
७. उपेक्षा से युक्त, ज्ञान-विप्रयुक्त, असांस्कारिक
८. उपेक्षा से युक्त, ज्ञान-विप्रयुक्त, सांस्कारिक

(ख) रूपावचर-भूमि के ५ कुशल-चित्त—कामावचर-भूमि से आगे बढ़कर योगी पृथ्वी जल, तेज आदि २६ रूपवान् पदार्थों को आलमन (कर्मस्थान) मानकर ध्यान करता है। इस ध्यान की पौन ऋमिक अवस्थाएँ होती हैं, जिनका मनोवैज्ञानिक स्वरूप इस प्रकार है—

१.	वितर्क,	विचार,	प्रीति,	सूक्ष्म	एकाग्रता वाला	प्रथम ध्यान
२.	"	"	"	"	"	द्वितीय ध्यान
३.	"	"	"	"	"	तृतीय ध्यान
४.	"	"	"	"	"	चतुर्थ ध्यान
५.			उपेक्षा		"	पंचम ध्यान

(समचित्तत्व)

(ग) अ-रूपावचर-भूमि के ४ कुशल-चित्त (रूपावचर-ध्यान से आगे बढ़कर योगी रूपवान् कर्मस्थानों को छोड़ देता है और कष्यनरहित बस्तुओं का ध्यान करने लगता है, जिसकी चार ऋमिक अवस्थाएँ इस प्रकार हैं (१) अनन्त आकाश का ध्यान (२) अनन्त विज्ञान का ध्यान (३) अनन्त आकिञ्चन्य (शून्यता) का ध्यान और (४) नैव-संज्ञा-नसंज्ञा (चित्त की वह सूक्ष्म अवस्था जिसमें न यह कहा जा सके कि संज्ञा है और न यह

कहा जासके कि सज्जा नहीं है) का ध्यान। इगाने को यही चार अवस्थाएँ अरुपावचर कहलाती हैं। अतः इन संबंधी चार कुशल-चित्तों के नाम हैं—

१. आकाशानन्द्यायतन कुशल-चित्त
२. विज्ञानानन्द्यायतन कुशल-चित्त
३. वाकिव्यानन्द्यायतन कुशल-चित्त
४. नैद-सज्जा-नासज्जा-यतन कुशल-चित्त

(घ) लोकोच्चर-भूमि के चार कुशल-चित्त (अरुप-ममात्रि से उठकर योगी फिर अविद्या के प्रभाव में आ सकता है। इससे बचने के लिए उसे आगे ध्यान-साधना करनी होती है। वह धीरे-धीरे चित्त के बन्धनों को हटाता है और अनित्य, दृख्य और अनात्म की भावना करता है। ऐसा करते-करते वह चित्त की लोकोत्तर अवस्था में प्रवेश कर जाता है, जिसकी निम्नलिखित चार अवस्थाएँ हैं—

१. स्रोत आपत्ति-मार्ग-चित्त (जो निर्वाण-नामी स्रोत में पड़ गया है)
२. सङ्कुदागामि-मार्ग-चित्त (जिसे एक बार और जन्म लेना है)
३. अनागामि-मार्ग-चित्त (जिसे अब लौटना नहीं है—अवतार, जो इसी जन्म में निर्वाण का साधात्मकार कर लेगा)
४. अहंत-मार्ग-चित्त (जिसने निर्वाण का पूर्ण साधात्मकार कर लिया है)

## २—अकुसला धर्मा

धर्मसंगणि की दूसरी मुख्य विजासा है, 'क्तमे धर्मा अकुसला ?' अर्थात् कौन से धर्म अकुशल है ? इसका जो उत्तर दिया मर्यादा है, उसका निष्कर्ष यह है—

(क) लोभ-मूलक आठ अकुशल-चित्त (लोभ के कारण मनुष्य अशुभ कर्म करता है। कभी ऐसा करने में उसे चित्त की प्रसङ्गता भी होती है और कभी मात्र उपेक्षा की भावना भी भी रहती है। ये बोनों क्रियाएँ, क्रमणः सौमनस्य से यक्त (सोमनस्सहगत) और उपेक्षा-यक्त (उपेक्षासहगत) कहलाती हैं, जैसा हम कुशल चित्त के विषय में भी देख चुके हैं। इसी प्रकार लोभ-मूलक कोई दुरा काम किसी मिद्या-धारणा

का सहारा लेकर किया जा सकता है, जैसे वह तो भेरा करतंव्य ही है आदि (यद्यपि भावना तो उसमें लोभ की ही रहती है) तो उस दशा में यह दृष्टिगत-युक्त (दिदितगत-सम्प्रयृत) कहलायेगा । यदि इस प्रकार की मिथ्या-धारणा का सहारा नहीं लिया गया है तो वह दृष्टिगत-विप्रयुक्त या मिथ्या-धारणा से मुक्त (दिदितगत-विप्रयृत) कहलायगा । इसी प्रकार दुसरे की प्रेरणा से, भिन्नक पुर्वक किये हुए लोभमूलक दुष्कृत्य को 'सासांस्कारिक' (सासांस्कारिक) कहेंगे और बिना किसी दुसरे की प्रेरणा के त्रोर बिना भिन्नक के साथ किये हुए कमं को 'असांस्कारिक (असांस्कारिक) कहेंगे, जैसा हम कुशल-चित्त के विवेचन में भी पहले देख चुके हैं । यह कहने की आवश्यकता नहीं कि लोभ-मूलक अकुशल-चित्त कामनाओं के लोक (कामाक्षर-भूमि) में ही हो सकते हैं । इससे आगे उनकी पहेज नहीं । आठ प्रकार के लोभ-मूलक अकुशल-चित्तों के स्वरूप का परिचय देखिए—

१. सौमनस्य के साथ, मिथ्या धारणा से युक्त, असांस्कारिक
२. सौमनस्य के साथ, मिथ्याधारणा से युक्त, सासांस्कारिक
३. सौमनस्य के साथ, मिथ्याधारणा से रहित, असांस्कारिक
४. सौमनस्य के साथ, मिथ्याधारणा से रहित, सासांस्कारिक
५. उपेक्षा के साथ, मिथ्याधारणा से युक्त, असांस्कारिक
६. उपेक्षा के साथ, मिथ्या धारणा से युक्त, सासांस्कारिक
७. उपेक्षा के साथ, मिथ्या धारणा से रहित, असांस्कारिक
८. उपेक्षा के साथ, मिथ्या-धारणा से रहित, सासांस्कारिक

### (ख) द्वेष-मूलक दो अकुशल-चित्त

१. दीर्घनस्य के साथ, द्वेष-युक्त, असांस्कारिक { चित्तकी द्वेषमयी अवस्था में सौम-
२. दीर्घनस्य के साथ, द्वेष-युक्त, सासांस्कारिक { नस्य या उपेक्षा नहीं रह सकती ।

द्वेष की चंचलतापूर्ण अवस्था में धारणाओं का भी कोई विचरण नहीं होता ।

## (ग) मोह-मूलक दो अकुशल-चित्त

१. (अज्ञानस्थ) उपेक्षा के साथ, सन्देह-युक्त मनकी मोह-युक्त अवस्था में  
 २. उपेक्षा के साथ, उद्घतता से युक्त असांस्कारिक या सांस्कारिक होने का सवाल ही नहीं उठता ।

## ३. अव्याकृता धर्मा

धर्मसंगणि की तीसरी मुख्य जिज्ञासा है "क्तमे धर्मा अव्याकृता" अर्थात् कौन से धर्म अव्याकृत है ? इसके उत्तर का निष्कर्ष प्रकार है—

## अ—विपाक-चित्त

(क) आठ कुशल विपाक-चित्त—अव्याकृत चित्त के दो भेद हैं, विपाक-चित्त और क्रिया-चित्त, यह हम पहले देख सके हैं । विपाक-चित्त पूर्व जन्म के कर्मों के परिणाम-स्वरूप होते हैं । पूर्व-जन्म के शुभ या अशुभ-कर्मों के परिणाम-स्वरूप उत्पन्न होने के कारण उनके कुशल-विपाक-चित्त और अकुशल-विपाक-चित्त ये दो स्वरूप होते हैं । आठ कुशल विपाक-चित्त, जो अनकूल पदार्थों के साथ इन्द्रियों के संतुलित होने के कारण उत्पन्न होते हैं, ये हैं—

१. चक्षु-विज्ञान	उपेक्षा (न-सूख-न-दुःख) से युक्त
२. श्रोत्र-विज्ञान	"
३. ध्याण-विज्ञान	"
४. जिह्वा-विज्ञान	"
५. काय-विज्ञान	सुख या सौमनस्य से युक्त
६. मनोधातु	उपेक्षा से युक्त
७. मनो विज्ञान-धातु	उपेक्षा से युक्त
८. मनो-विज्ञान-धातु	सुख या सौमनस्य से युक्त

संस्था ५, ७, ८ के कुशल विपाक चित्तों को क्रमशः 'सम्प्रतिच्छन्न' और 'सन्तीरण' (७, ८) 'अभिघमन्य' संगह में कहा गया है । सम्प्रतिच्छन्न (सम्प्रतिच्छन्न) का अर्थ है ग्रहणात्मक विज्ञान और 'सन्तीरण' (सन्तीरण) का अर्थ है अनुसन्धानात्मक विज्ञान । चक्षुरादि इन्द्रियों के साथ उनके विषयों

का संनिकर्प होने पर चक्र-विज्ञान आदि उत्पन्न हो जाते हैं। उसके बाद चित्त को किसी वाहय पदार्थ की सत्ता की अनुभूति होती है और वह उसे ग्रहण करने के लिए उत्सुक होता है। यही चित्त की अवस्था 'सम्प्रटिच्छाप' कहलाती है। जब उसे ग्रहण करने के लिए वह अनुसन्धान करने लगता है तो यही अवस्था 'सत्तीरण' कहलाती है। इन सब व्यापारों में दृष्टा को अपने आप की चेतना नहीं होती। ये सब व्यापार सुषुप्त चेतना या अद्वेतना की अवस्था में होते हैं। जल्द इन विज्ञानों का कोई हेतु नहीं होता। ये पूर्व जन्मों के शुभ या अशुभ कर्मों के परिणाम-स्वरूप ही उद्भूत होते हैं। इस आरम्भिक अवस्था में उनमें सुख या दुःख की वेदना का भी सवाल नहीं उठता। वे उपेक्षा (न-सुख-न-दुःख) की वेदना से युक्त होते हैं। काय-विज्ञान अवश्य सुख या दुःख की वेदना से युक्त होता है।

(ख) आठ कामावचर विपाक-चित्त (पूर्वजन्म के कुशल-चित्तों के परिणाम-स्वरूप उत्पन्न होने वाले विपाक-चित्त भी उनके समान ही स्थ्य में आठ हैं, यथा—

१. सौमनस्य से युक्त, ज्ञान-संप्रयुक्त, असांस्कारिक
२. सामनस्य से युक्त, ज्ञान-संप्रयुक्त, सासांस्कारिक
३. सौमनस्य से युक्त, ज्ञान-विप्रयुक्त, असांस्कारिक
४. सौमनस्य से युक्त, ज्ञान-विप्रयुक्त, सरांस्कारिक
५. उपेक्षा से युक्त, ज्ञान-संप्रयुक्त, असांस्कारिक
६. उपेक्षा से युक्त, ज्ञान-संप्रयुक्त, सासांस्कारिक
७. उपेक्षा से युक्त, ज्ञान-विप्रयुक्त, असांस्कारिक
८. उपेक्षा से युक्त, ज्ञान-विप्रयुक्त, सरांस्कारिक

(ग) सात अकुशल विपाक-चित्त (पूर्व जन्म के अशुभ-कर्मों के परिणाम-स्वरूप उत्पन्न)

१. चक्र-विज्ञान
२. श्रोत्र-विज्ञान
३. श्राण-विज्ञान
४. उपेक्षा (न-दुःख-न-सुख) से युक्त

५. निद्वा-विज्ञान

६. काय-विज्ञान—

६. मनोधातु (समाइच्छन)

७. मनोविज्ञान-धातु (सनीरण)

दूख या दोषेनस्य से युक्त

उपेक्षा से युक्त

(घ) पाँच रूपावचर विपाक-चित्त—हृपावचर-भूमि के पाँच कुशल-चित्तों के परिणाम- (विपाक) स्वरूप ही दूसरे जन्म में पाँच विपाक-चित्त उत्पन्न होते हैं। अतः उनका स्वरूप भी पूर्वोक्त कुशल-चित्तों के अनुरूप ही है यथा—

१.	वितर्क	विचार	प्रोति	सुख	ओर	एकाप्रता से युक्त	प्रथम विपाक-चित्त
२.	"	"	"	"	"	द्वितीय विपाक-चित्त	
३.	"	"	"	"	"	तृतीय विपाक-चित्त	
४.	"	"	"	"	"	चतुर्थ विपाक-चित्त	
५.		उपेक्षा	"	"	"	पंचम विपाक-चित्त	

(इ) चार अरूपावचर विपाक-चित्त—अरूपावचर-भूमि के चार कुशल-चित्तों के विपाक-स्वरूप उत्पन्न होने के कारण उनके समान ही है यथा—

१. आकाशानन्त्यायतन विपाक-चित्त

२. विज्ञानानन्त्यायतन विपाक-चित्त

३. आकिञ्चन्यायतन विपाक-चित्त

४. नैवसंज्ञानासंज्ञायतन विपाक-चित्त

(च) चार लोकोत्तर विपाक-चित्त—लोकोत्तर-भूमि के चार मार्ग-चित्तों के परिणामस्वरूप दूसरे जन्म में चार फल-चित्त उत्पन्न होते हैं, जो इस प्रकार हैं—

१. स्रोत आपति-फल-चित्त (स्रोत आपति के फल को प्राप्त करने की चेतना)

२. सकृदागमि-फल-चित्त (सकृदागमि-फल को प्राप्त करने की चेतना)

३. अनागामि-फल-चित्त (इसी जन्म में निवाण के साधारकार हप्ती फल को प्राप्त करने की चेतना)

४. अहंत्व-फल-चित्त (अहंत्व-फल प्राप्ति की चेतना)

## आ—क्रिया-चित्त

## (क) तीन अहेतुक क्रिया-चित्त

क्रिया-चित्त उसे कहते हैं जो न स्वयं पूर्वं जन्मों के बमों का विपाक होता है और न भविष्य के कर्मों का विपाक बनता है। उसमें केवल 'क्रिया-मात्र' (करण-मत्त) रहती है। स्वास्थ्य में तो वह 'निकिय' ही होता है, क्योंकि उसका कोई विपाक नहीं बनता। वह इतना स्वाभाविक होता है कि उसका कोई हेतु भी नहीं दिलाया जा सकता। उदाहरणतः पूर्णता-प्राप्त मनुष्य (अहंत) की होती है। इसी लिए उसे अहेतुक भी कहते हैं। इसके तीन प्रकार हैं जैसे—

१. मनोधातु—उपेक्षा से युक्त ।

२. मनोविज्ञान धातु—उपेक्षा से युक्त (सभी प्राणियों में पाया जाता है)

३. मनो विज्ञान धातु—मूल या सौमनस्य से युक्त (केवल अहंत में पाया जाता है)

'अभिधर्मसत्त्वसंह' में इन तीन क्रिया-चित्रों को क्रमशः पञ्चद्वारावज्ज्ञन चित्त (इन्द्रिय की पौच द्वारों की ओर प्रवण होने वाला, बाहरों पदार्थ से उसका संनिपाद होने पर), मनोद्वारावज्ज्ञन चित्त (मन के डार की ओर प्रवण होने वाला) और हसितुप्पाद-चित्त (अहंत के हैसने की क्रियावाला चित्त) कहा है। अहंत का हैसना नितान्त स्वाभाविक अर्थात् अहेतुक होता है। न वह स्वयं किसी का विपाक होता है और न उसका आगे कोई विपाक बनता है।

## (ख) कामावचर-भूमि के ८ क्रिया-चित्त

कामावचर-भूमि के ८ कुशलचित्तों का उल्लेख पहले हो चुका है। साधारण अवस्था में उनका विपाक भी दूसरे जन्म में होता है। किन्तु अहंत की जीवन-क्रियाएँ तो किसी विपाक को पैदा करती नहीं। उनमें बासना या तृष्णा का संबंध अभाव रहता है। अतः ये क्रियाएँ जैसे दर्श हो जाती हैं। अतः पूर्वोक्त ८ कुशल-चित्त ही अहंत की जीवन-दशा से सम्बन्धित होकर आठ क्रिया-चित्त बन जाते हैं, अर्थात् वे अपने विपाक बनने के स्वभाव को छोड़ देते हैं। उसका बाहरी स्वरूप तो यहाँ भी पहले जैसा ही है, यथा—

१. सौमनस्य से युक्त, ज्ञान-संप्रयुक्त, असांस्कारिक

२. सौमनस्य से युक्त, ज्ञान-संप्रयुक्त, सांस्कारिक

३. सौमनस्य से युक्त, ज्ञान-विप्रयुक्त, असांस्कारिक  
 ४. सौमनस्य से युक्त, ज्ञान-विप्रयुक्त, ससांस्कारिक  
 ५. उपेक्षा से युक्त, ज्ञान-संप्रयुक्त, असांस्कारिक  
 ६. उपेक्षा से युक्त, ज्ञान-संप्रयुक्त, ससांस्कारिक  
 ७. उपेक्षा से युक्त, ज्ञान-विप्रयुक्त, असांस्कारिक  
 ८. उपेक्षा से युक्त, ज्ञान-विप्रयुक्त, ससांस्कारिक  
 ९. रूपावचर-भूमि के पौच्छ क्रिया-चित्त—ये चित्त भी पूर्वोक्त रूपावचर-भूमि  
     के ५ कुशल-चित्तों और विपाक-चित्तों के समान हैं, अन्तर केवल इतना  
     है कि क्रिया-चित्त होने की अवस्था में ये अहंत् के चित्त की अवस्था के सूचक  
     हैं, अतः भविष्य में विपाक पैदा नहीं करते। अहंत् भी इन पौच्छ इनात की अव-  
     स्थाओं को प्राप्त करता है किन्तु ये उसके लिये विपाक पैदा नहीं करतीं।  
     इनका उल्लेख पहले दो बार हो चुका है, अतः यहाँ अनावश्यक है।  
 १०. अरूपावचर-भूमि के जार क्रिया-चित्त—ये चित्त भी पूर्वोक्त अरूपावचर-  
     भूमि के ४ कुशल-चित्तों और विपाक-चित्तों के समान हैं। अन्तर भी यही  
     है कि क्रिया-चित्त होने की अवस्था में ये अहंत् के चित्त की अवस्था के सूचक  
     हैं, अतः भविष्य में विपाक पैदा नहीं करते। अहंत् अकृप-ओक भी इन चार  
     अवस्थाओं को प्राप्त करता है किन्तु ये उसके लिये विपाक पैदा नहीं करतीं।  
     इनका भी उल्लेख पहले दो बार हो चुका है, अतः यहाँ पुनरावृत्ति करना  
     निर्बंधक है।

उपर्युक्त प्रकार चित्त के ८९ प्रकारों का कुशल, अकुशल और अव्याहृत  
 चित्तों के रूप में उनकी उपर्युक्त ४ भूमियों पर विश्लेषण 'धर्मसंगणि' में किया  
 गया है। अधिक सुगम बनाने के लिये इनका इस तालिका के द्वारा अध्ययन  
 किया जा सकता है—

चित्त-विभेदों का कुशल, अकुशल आदि'सीधों में विश्लेषण करने के साथ-साथ 'धर्मसंगणि' में चित्त की उन अवस्थाओं (चेतसिक) का भी विश्लेषण किया गया है, जो किसी विशेष प्रकार के चित्त के साथ ही उत्पन्न और निरुद्ध होती रहती हैं और जिनके आलम्बन और इन्द्रिय भी उसके समान ही होते हैं। इन्हें 'चेतसिक' कहते हैं। 'चेतसिक' संख्या में कुल ५२ हैं, जिनमें १३ ऐसे हैं जो सामान्य ('अन्य-समान') हैं अर्थात् जो सभी प्रकार के चित्तों में पाये जाते हैं। इन तेरह में भी ७ तो अनिवार्यतः सब चित्तों में पाये जाते हैं, और ६ प्रकीर्ण हैं, अर्थात् वे कभी पाये जाते हैं, कभी नहीं। २५ चेतसिकों का एक बग्न 'शोभन चेतसिक' कहलाता है, जिनमें १९ चेतसिक ऐसे हैं जो सभी कुशल-चित्तों में पाये हैं और ६ ऐसे हैं जो सब में नहीं पाये जाते। १४ चेतसिक 'अकुशल' हैं, अर्थात् वे केवल अकुशल-चित्त में ही पाये जाते हैं। उनमें भी ४ मूलभूत अकुशल चेतसिक हैं, जो सभी अकुशल चित्तों में पाये जाते हैं। बाकी १० अकुशल चेतसिक ऐसे हैं जो सब अकुशल-चित्तों में नहीं पाये जाते। इनका वर्गीकरण इस प्रकार आसानी से समझा जा सकता है—

#### ५२. चेतसिक वा चित्त की सहगत अवस्थाएँ

१—१३ अन्य-समान (सभी चित्तों में सामान्यतः पाये जाने वाले) चेतसिक  
अ-३ सर्व-चित्त-साधारण अर्थात् अनिवार्यतः सब चित्तों में पाये जाने वाले,  
जैसे कि

१. स्पर्श (कस्त्रो)
२. वेदना (वदना)
३. संज्ञा (सञ्ज्ञा)
४. चेतना (चेतना)
५. एकमगता (एकमगता)
६. जीवितेन्द्रिय (जीवितिन्द्रिय)
७. मनसिकार (मनसिकारो)
- आ. ८. प्रकीर्णक अर्थात् जो किसी चित्त में पाये जाते हैं, किसी में नहीं, जैसे कि
८. वितर्क (वितर्को)
९. विचार (विचारो)

## चित्र के भेद

(कुचल)

(बकुचल)

(अव्याकृत)

	(कुचल)	(बकुचल)	विपाक-निति	क्रिया-चित्र
१५ क्रमांक-भूमि	१. सौमनस्य से युक्त, ज्ञान-संप्रयुक्त, असांख्यरिक २. " , ज्ञान-संप्रयुक्त, ससांख्यरिक ३. " , ज्ञान-विप्रयुक्त, असांख्यरिक ४. सौमनस्य से युक्त, ज्ञान-विप्रयुक्त, ससांख्यरिक ५. उपेक्षा से युक्त, ज्ञान-संप्रयुक्त, असांख्यरिक ६. उपेक्षा से युक्त, ज्ञान-संप्रयुक्त, ससांख्यरिक ७. उपेक्षा से युक्त, ज्ञान-विप्रयुक्त, असांख्यरिक ८. उपेक्षा से प्रयुक्त, ज्ञान-विप्रयुक्त, ससांख्यरिक	(क-लोभमूलक) २३. सौमनस्य के साथ, मिथ्यावारणा से युक्त, असांख्यरिक २४. सौमनस्य के साथ, मिथ्यावारणा से युक्त, ससांख्यरिक २५. सौमनस्य के साथ, मिथ्यावारणा से रहित, असांख्यरिक २६. उपेक्षा के साथ, मिथ्या वारणा से युक्त, असांख्यरिक २७. उपेक्षा के साथ, मिथ्यावारणा से युक्त, ससांख्यरिक २८. उपेक्षा के साथ, मिथ्या वारणा से रहित, असांख्यरिक २९. उपेक्षा के साथ, मिथ्यावारणा से रहित, ससांख्यरिक  (ख-द्वेषमूलक) ३०. दोमनस्य के साथ, द्वेषयुक्त, असांख्यरिक ३१. दोमनस्य के साथ, द्वेषयुक्त, ससांख्यरिक  (ग-मोहमूलक) ३२. उपेक्षा के साथ, मोहेन्युक्त ३३. उपेक्षा के साथ, उद्धतता-युक्त	(क-कुचल-निति) ३४-३८. चक्र, लोच, आण, विहु और काय के विज्ञान ३९. सनाधातु  ४०. मनोविज्ञान-धातु  ४१. मनोविज्ञान-धातु  ४२-४९. = १८	७०. मनोधातु-उपेक्षा के माध्य ७१. मनोविज्ञानधातु - उपेक्षा के साथ ७२. मनोविज्ञानधातु - सुख या सौमनस्य के साथ
१६ क्रमांक-भूमि	९. वितर्क, विचार, प्रीति, सुख, एकाग्रता १०. विचार, प्रीति, सुख, एकाग्रता ११. प्रीति, सुख, एकाग्रता १२. सुख, एकाग्रता १३. उपेक्षा, एकाग्रता	x	५३. ५४. = (९-१३) ५५. ५६. ५७.	८१. ८२. ८३. = (९-१३) ८४. ८५.
१७ अव्याकृत-भूमि	१४. वाक्यावानन्त्यायतन १५. विज्ञानानन्त्यायतन १६. आकिञ्चन्यायतन १७. नैवसंज्ञानासंज्ञायतन	x	६२. ६३. = (१४-१७) ६४. ६५.	८६. ८७. (१४-१७) ८८. ८९.
१८ विपाक-भूमि	१८. स्रोत आपत्ति-मार्ग-चित्त १९. सङ्कुदागामि-मार्ग-चित्त २०. अनागामि-मार्ग-चित्त २१. अहंत्व-मार्ग-चित्त	x	६६. स्रोत आपत्ति-कल-चित्त ६७. सङ्कुदागामि-कल-चित्त ६८. अनागामि-कल-चित्त ६९. अहंत्व-कल-चित्त	x

1000

1000  
1000  
1000  
1000

1000  
1000

1000  
1000

1000  
1000

1000  
1000

1000  
1000

1000  
1000

1000  
1000  
1000  
1000

1000  
1000  
1000  
1000

1000  
1000  
1000  
1000

1000  
1000  
1000  
1000

1000  
1000  
1000  
1000

1000  
1000  
1000  
1000

1000  
1000  
1000  
1000

1000  
1000  
1000  
1000

1000  
1000  
1000  
1000

1000  
1000  
1000  
1000

1000  
1000  
1000  
1000

1000  
1000  
1000  
1000

1000  
1000  
1000  
1000

1000  
1000  
1000  
1000

1000  
1000  
1000  
1000

1000  
1000  
1000  
1000

१०. अधिमोक्ष (निश्चय) (अधिमोक्षो)
११. वीर्य (वीरियं)
१२. प्रीति (प्रीति)
१३. छन्द (इच्छा) (छन्दो)
२. २५. शोभन वेत्सिक, जो सामान्यतः कुशल-चित्त और उनके भनुष्प अव्याकृत-चित्तों में पाये जाते हैं—
- अ. १९. 'शोभन-चित्त-साधारण' अर्थात् सभी कुशल-चित्तों में पाई जाने वाली चित्त की अवस्थाएँ
१४. अद्वा (सद्वा)
१५. स्मृति (सति)
१६. ह्री (हिंग—नैतिक लज्जा, पाप-संकोच)
१७. अवश्या (ओतप्पो—पाप-भय)
१८. अलोम (अलोभो)
१९. अद्वेष (अदोसो)
२०. तत्रमध्यस्थिता (तत्र मञ्जस्तता-समचित्तत्व)
२१. काय-प्रश्वविधि (कायप्पस्सद्वि—काया की शान्ति)
२२. चित्त-प्रश्वविधि (चित्तप्पस्सद्वि—चित्त की शान्ति)
२३. कायलहुता (कायलहुता—शरीर का हल्कापन)
२४. चित्त-लघुता (चित्तलहुता—चित्त का हल्कापन)
२५. कायमृदुता (कायमृदुता)
२६. चित्तमृदुता (चित्तमृदुता)
२७. कायकमंशता (कायममंशता)
२८. चित्तकमंशता (चित्तकमंशता)
२९. कायप्रागुणता (कायप्रागुणता)
३०. चित्त प्रागुण्यता (चित्तप्रागुणता)
३१. काय-ऋजुता (कायऋजुता—काया की सरलता)
३२. चित्त-ऋजुता (चित्तऋजुता—चित्त की सरलता)
- आ. ६ शोभन-वेत्सिक जो किन्हीं कुशल-चित्तों में पाये जाते हैं किन्हीं में नहीं, यथा—

३३. सम्यक् वाणी (सम्मानात्मा-वाचिक दुश्चरितों से विरति)  
 ३४. सम्यक् कर्मान्त (सम्मानकर्मन्तो-कायिकदुश्चरितोंसेविरति)  
 ३५. सम्यक् जाजीव (सम्मा जाजीवो-जीविका सबधी दुश्चरितों  
 से विरति) { इन तीनों  
 को विरति  
 कहते हैं

३६. करुणा } इन दोनों को अ-परिमाण (परिमाण-रहित) कहते हैं  
 ३७ मुदिता } कर्मांक इन्हें किसी हद तक बढ़ाया वा सकता है।  
 ३८. प्रज्ञा-इन्द्रिय (पञ्जिकान्द्रिय—अमोह)

३. १४ अकुशल चेतसिक जो सामान्यतः अकुशल-चित्तों में पाये जाते हैं, जिनमें  
 आ. ४ मूल-भूत अकुशल चेतसिक जो सभी अकुशल-चित्तों में अनिवार्यतः  
 पाये जाते हैं। यथा

३९. मोह (मोही)

४०. अ-हो (अहिरोक्त-दुश्चरितों से लज्जा न करना)

४१. अन-अवबोध (अनोत्तमं—कुकर्मों से वास न मानना)

४२. उद्धतता (उद्धव-वंचलता)

आ. १० अकुशल-चेतसिक जो किन्हीं अकुशल-चित्तों में पाये जाते हैं,  
 किन्हीं में नहीं, यथा

४३. द्वेष (दोसो)

४४. ईर्ष्या (इस्सा)

४५. मात्स्यं (मच्छरिय-कृपणता)

४६. कौकृत्य (कुकुच्चं-दुश्चरित के बाद सन्ताप)

४७. लोभ (लोभी)

४८. मिथ्याधारणा (दिट्ठ-दृष्टि)

४९. मान (मानो-गवं)

५०. कायिक-आलस्य (धीनं-स्त्यान)

५१. मानसिक-आलस्य (मिढ़, मृढ़)

५२. विचिकित्सा (विचिकित्सा-सन्देह)

चित्त के ८१ विभेदों में से प्रत्येक में कौन कौन से चेतसिक उपस्थित रहते  
 हैं, इसका विस्तृत विवेचन, अनेक मुनरक्षितयों के साथ, 'वस्त्रसंगणि' में किया गया

है। उसको वीलों को समझने के लिये चेतानिकों की इस विस्तृत सूची को देखिये, जिसे 'धर्मसंगणि' ने कामावचर-भूमि के कुशल-चित्त के प्रथम भेद (देखिये ऊपर चित्त-विभेद की तालिका) से ही सम्बन्धित किया है। प्रथम प्रकार के चित्त को लक्ष्य कर 'धर्मसंगणि' कहती है 'जिस समय कामावचर-लोक से सम्बन्धित कुशल चित्त उत्पन्न होता है, ज्ञान और सौमनस्य से सम्प्रयुक्त, रूप, शब्द, मन्त्र, रस, स्वर्ण या घन्म के आलम्बन (विषय) को लेफर, तो उस समय<sup>१</sup> है, (१) फल्सो होति, (२) वेदना होति (३) सञ्ज्ञा होति (४) चेतना होति (५) चित्त होति ।

२. (६) वितक्को होति (७) विचारो होति (८) पीति होति (९) सुखं होति (१०) चित्तस्सेकाग्रता (चित्त की एकाग्रता) होति ।
३. (११) सद्हिन्द्रियं (अद्वा-इन्द्रिय) होति (१२) विरियन्द्रियं (वीर्य-इन्द्रिय) होति (१३) सतिन्द्रियं (स्मृति-इन्द्रिय) होति (१४) समाधिन्द्रियं होति (१५) पञ्जान्द्रियं (प्रज्ञा-इन्द्रिय) होति (१६) मनिन्द्रियं (मन-इन्द्रिय) होति (१७) सोमनस्सन्द्रियं (सौमनस्य-इन्द्रिय) होति (१८) जीविति-न्द्रियं होति ।
४. (१९) सम्मादिद्धि (सम्यक् दृष्टि) होति (२०) सम्मासकणो (सम्यक संकल्प) होति (२१) सम्मा वायायो (सम्यक् व्यायाम) होति (२२) सम्मा-सति (सम्यक् स्मृति) होति (२३) सम्मा समाधि (सम्यक् नमाधि) होति ।
५. (२४) सद्वा-बलं (अद्वा रूपी बल) होति (२५) विरिय-बलं (वीर्य रूपी बल) होति, (२६) सति-बलं (स्मृति रूपी बल) होति (२७) समाधि-बल होति (२८) पञ्जा-बलं (प्रज्ञा रूपी बल) होति (२९) हिरिबलं (नैतिक लज्जा रूपी बल) होति (३०) ओतप्पबलं (पाप-भय रूपी बल) होति
६. (३१) अलोभो होति (३२) अदोसो होति (३३) अमोहो होति (३४)

१. यस्मिं समये कामावचरं कुसलं चित्तं उपन्नं होति सोमनस्स सहगतं जाग-सम्प्रयुक्तं रूपारम्भणं वा सहारम्भणं वा गन्धारम्भणं वा रसारम्भणं वा कोट्ठबारम्भणं वा धम्मारम्भणं वा तस्मिं समये..... . . .

अनभिज्ञा (अडोह) होति (३५) अभ्यापादे (अन्वेर) होति (३६)  
सम्मादिदिक्ष होति ।

७. (३७) हिरि (हो-नेत्रिक लक्ष्या) होति (३८) ओतप्प (पाप-भव) होति
८. (३९) काय-पस्तदि (काय-प्रत्यक्षिक-काया की शान्ति) होति ।
- (४०) चित्त-पस्तदि होति (४१) काय-लहृता (काया का हल्कापन) होति
- (४२) चित्त-लहृता होति (४३) काय-मुदिता (काया की प्रकूलता) होति
- (४४) चित्त-मुदिता होति (४५) काय-कमज़ज़ता (काया के कर्मों का ज्ञान) होति । (४६) चित्त-कमज़ज़ता होति (४७) कायज़बृकता (काया की सरलता) होति (५०) चित्तज़बृकता होति ।
९. (५१) सति होति (५२) समज़जाण (सम्प्रज्ञान) होति ।
१०. (५३) समशो (यमध, शान्ति) होति (५४) विपस्सना (विपश्यना-विद्वानो-अन्तर्ज्ञान) होति ।
११. (५५) पमग्हो (निइच्छ) होति (५६) अविक्षेपी (चित्त-शान्ति का भंग न होना) होति ।

उपर्युक्त ५६ चित्त-अवस्थाओं में बहुत पुनरुक्ति की गई है । २, ९ और १७; ५ और १६; ६ और २०; १७, १४, २३-२७, ५३ और ५६; ११ और १४; १२, २१, २५ और ५५; १३, २२, २६ और ५१; ३५, १९, २८, ३३, ३६, ५२ और ५४; २९ और ३७; ३१ और ३४ तथा ३२ और ३५ संख्याओं की अवस्थाएँ समान होती हैं । अतः समान अवस्थाओं को निकाल देने पर शेष ३१ रह जाती है । 'धर्मसंगण' में इस प्रकार के विस्तार बहुत अधिक हैं और उनको संगति के बल विभिन्न दृष्टियों से किये गये वर्गीकरणों के आधार पर ही लगाई जा सकती है । कुशल-चित्त के प्रथम भेद के अलावा उसके शेष २० भेदों को सहजत-अवस्थाओं की भी गणना उसी के आधार पर की गई है । यही पद्धति बाद में कामाक्षर-भूमि के अकुशल-चित्त के १२ भेदों के विषय में तथा उसके बाद विपाक-चित्त की चारों भूमियों के ३६ भेदों के विषय में और अन्त में क्रिया-चित्त की तीन भूमियों (कामाक्षर, रूपाक्षर, और अहपाक्षर) के २० भेदों के विषय में प्रयुक्त की गई है । इन सबका विस्तृत विवरण अभिघम्म के पूरे दर्शन को समझने के लिये जावश्यक है, किन्तु पालि साहित्य के इतिहास

में तो इनका अपेक्षाकृत गीण स्थान ही हो सकता है। अतः यहाँ केवल मोटी रूप-रेखा उपस्थित कर 'धन्मसंगण' में जिस शैली में उनका निरूपण किया गया है, उसका दिग्दर्शन मात्र करा दिया गया है।<sup>१</sup> सखेप में चित्र और चेतसिकों के सम्बन्ध का स्वरूप इस नीचे दी हुई तालिका ने समझ में आ सकता है—

### अ—कुशल-चित्र

चित्रों को कम संख्या चेतसिकों को संख्या जो उनके अन्दर पाये जाते हैं  
(पहले दी हुई तालिका के अनुसार)

१ एवं २	१३ अन्य समान + २५ शोभन = ३८
३ एवं ४	उपर्युक्त ३८ में से जान को घटाकर = ३५
५ एवं ६	उपर्युक्त ३८ में से प्रीति को घटाकर = ३७
७ एवं ८	उपर्युक्त ३८ में से जान और प्रीति दोनों को घटाकर = ३६
९	उपर्युक्त ३८ में से ३ विशेषियों (समक्. वाणी, सम्यक्. कर्म, सम्यक्. आजीव) को घटाकर = ३५
१०	उपर्युक्त ३५ में से वित्कं को घटाकर = ३४
११	उपर्युक्त ३४ में से विचार को घटाकर = ३३
१२	उपर्युक्त ३३ में से प्रीति को घटाकर = ३२
१३	उपर्युक्त ३२ में से करणा और मुदिता (दो अ-प्रमाण) को घटाकर = ३०
१४-१५	उपर्युक्त के समान ही = ३०

१. चित्र और चेतसिकों के सम्बन्ध के विस्तृत और कमबढ़ निरूपण के लिए देखिये भिक्षु जगदीश काश्यप : अभिधर्म फिलोसोफी, जिल्ड, पहली, पृष्ठ ६८-११०; जिल्ड दूसरी, पृष्ठ ६८-८७; महात्मविर ज्ञानातिलोक (गाइड अ० व अभिधर्म पिटक, पृष्ठ ६-१३) ने विशेषतः निरूपण-शैली की दृष्टि से ही विवरण दिया है, अतः वह पूर्ण और कम-बढ़ नहीं है, किन्तु उनकी दी हुई सूचियों और तालिकाएँ बड़ी महस्तपूर्ण हैं।

१८०२१

प्रथम ३८ में से करता और  
मुदिता को घटाकर

= ३६

## आ—अकुशल—चित्त

लोभ-मूलक	२२	१३ अन्य-समान + ६ मूलभूत
	२३	अकुशल—लोभ—मिथ्या-दृष्टि = १९
	२४	उपर्युक्त १९ + स्त्यान और मूढ़ (कार्यिक और मानसिक बालस्थ) = २१
	२५	उपर्युक्त १९ + मान—मिथ्या-दृष्टि = १९
	२६	उपर्युक्त २१ + मान—मिथ्या-दृष्टि = २१
	२७	उपर्युक्त संख्या २२ के १९—प्रीति = १८
	२८	उपर्युक्त १९—प्रीति—मिथ्या-दृष्टि + मान = १८
उपर्युक्त	२९	उपर्युक्त १९—प्रीति—स्त्यान + मूढ़ = २०
	३०	उपर्युक्त १९—प्रीति—लोभ—मिथ्या-दृष्टि + दृष्टि + ईर्ष्या + मात्सर्य + कौरुक्त्य (चिना) = २०
	३१	उपर्युक्त २० + स्त्यान + मूढ़ = २२
गोह-मूलक	३२	१० अन्य-समान (प्रीति, अधिमोक्ष, छन्द ये तीन कुल संख्या में से छोड़ दी गई है) + मोह + अहीरिक + अनोत्तण + उद्दृच्छ + विचिकित्ता = १५
	३३	उपर्युक्त १५—विचिकित्ता + अधिमोक्षो = १५

## इ-अव्याकृत-चित्त

## (क) कर्म-विपाक

३४-३८	१	५ सर्वेचित्त-साधारण
		= ५
४८	१	उपर्युक्त ५ + वितर्क + विचार +
		अधिमोक्ष
४०-५५ भी	१	१३ अन्य समान में से छन्द और प्रीति को घटाकर = ११
४९ एवं ५९	१	
एवं		
४१ और ५६ भी	१	
४०	१	

४२-४९	=	१-८, किन्तु—करणा—मुदिता—सम्यक्वाणी— सम्यक् कर्म—सम्यक् कर्म—सम्यक् आजीव
५७-६९	=	१-२१

## (ख) क्रिया-चित्त

७०	=	३९
७१-७२	=	१३ में से छन्द और प्रीति को घटाकर = ११
७३-८०	=	१-८, किन्तु सम्यक् वाणी, सम्यक् कर्म एवं सम्यक् आजीव को घटाकर
८१-८९	=	१९-१३*

'धर्मसंगणि' के प्रथम अध्याय या कांड (चित्तुप्पादकंड) की विषय-वस्तु और शैली का परिचय ऊपर दिया गया है। वास्तव में 'धर्मसंगणि' का यही भाग सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। दूसरा अध्याय 'रूप-कांड' एक प्रकार इसी का पूरक है। प्रथम कांड में कुशल, अकुशल और अव्याकृत का वर्णन है। रूप भी अव्याकृत के अन्दर ही आता है। इसका वर्णन इस दूसरे कांड में किया गया है। रूप का अर्थ है चार महाभूत और उनसे निर्मित सारा वस्तुजगत्। 'धर्मसंगणि' में कहा गया है 'वसारी च महाभूता चतुशंच महाभूतान् उपादाय रूपं, इदं वृच्छति सर्वं रूपं' अर्थात् चार महाभूत और चार महाभूतों के उपादान से उत्पन्न सारा दृश्य रूपात्मक जगत्, यही कहलाता है रूप। इस प्रकार निर्दिष्ट रूप का वर्णकरण ही इस कांड का प्रधान विषय है। १०४ प्रकार के दुक, १०३ प्रकार के त्रिक, २२ प्रकार के चतुष्क और इसी प्रकार ग्यारह तक अन्य अनेक प्रकार के वर्णकरणों में दृश्य जगत् को वही बोटा गया है।\* इन वर्णकरणों में कुछ ऐसी प्रभावशीलता या मीलिकता नहीं है, जिसके लिए यही इनका उद्दरण आवश्यक हो। शैली प्रायः वैसी ही है जैसी प्रथम कांड में।

जैसा पहले कहा जा चुका है, 'धर्मसंगणि' के तीसरे और चौथे कांडों में पूर्व विवेचित वस्तु के ही संक्षेप है और अधिकतर प्रश्नोत्तर के रूप

१. देखिये जानातिलोक : गाइड चू. दि अभिधर्म-पिटक, पृष्ठ १२ के सामने वी हुई तालिका

२. देखिये अभिधर्म फिलोसफी, जित्तद दूसरी, पृष्ठ १०-१४

में धर्मों के स्वरूप को उन वर्गीकरणों में भी, जिनको पहले नहीं लिया जा सका है, समझा दिया गया है। तीसरे कांड (निक्खेप कांड) और चौथे कांड (अत्युदारकांड) में शेष २१ विकारों और १०० द्विकारों में धर्मों का व्यापक स्वरूप होगा, इसी को प्रश्नोत्तर के द्वारा समझाया गया है। 'निक्खेप-कांड' के कुछ प्रश्नोत्तरों को लीजिये—

(१) कतमे धर्मा सूखाय वेदनाय सम्युक्ता ?

यस्मि समये कामावचर कुसलं चिन्त उत्पन्नं हीति सोमनस्मासहर्षत वाणसम्युक्तं कषारम्मणं वा सदारम्मणं वा गंधारम्मणं वा, रसारम्मणं वा फोटठव्वारम्मणं वा धर्मारम्मणं वा ये वा पन तस्मि समये अङ्गब्रेपि पटिच्छसमूलद्वा अरुपिनो धर्मा ठपेत्वा वेदनावचरन्त्य, इसे धर्मा सूखाय वेदनाय सम्युक्ता ।<sup>१</sup>

(२) कतमे धर्मा कुसला ?

तीणि कुसलमूलान्ति—अलोमो, अदोमो, अमोहो, तंसम्युक्तो वेदनावचरन्तो, सञ्ज्ञाक्षतन्तो, संखारक्षतन्तो, निक्खाणक्षतन्तो, तंसमृटात्मं कायक्षमं, वशीक्षमं, मनोक्षमं, इसे धर्मा कुसला ।<sup>२</sup>

(३) कतमे धर्मा सप्तचत्वया ?

पञ्चक्षतन्तो, स्पष्टक्षतन्तो, वेदनावचरन्तो, सञ्ज्ञाक्षतन्तो, संखारक्षतन्तो, विज्ञाणक्षतन्तो, इसे धर्मा सप्तचत्वया ।<sup>३</sup>

१. कौन से धर्म (पदार्थ) सूख की संवेदना से युक्त है? जिस समय कामावचर-भूमि में कुशल-चिन्त उत्पन्न होता है, सौमनस्य और ज्ञान से युक्त, एवं रूप, शब्द, गत्य, रस, स्पृश्य और धर्म का आलम्बन ले कर, तो उस समय वह और अन्य भी प्रतीत्यसमृत्यम अरुपवान् पदार्थ, वेदना-स्कन्ध को छोड़ कर, जो उस समय पेंदा होते हैं, वे सभी सूख की संवेदना से युक्त धर्म (पदार्थ) हैं। पालि-पाठ, अभिधर्म-फिलोसोफी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १५ में उद्धृत ।

२. कौन से धर्म कुशल है? तीन कुशल-भूमि, पदा अलोम, अदोम, अमोह, इनसे युक्त तीन स्कन्ध, पदा वेदना-स्कन्ध, संखा-स्कन्ध, संस्कार-स्कन्ध, इनसे उत्पन्न तीन प्रकार के कर्म यथा कायिक कर्म, वाचिक कर्म, मानसिक कर्म, यही सब धर्म कुशल हैं।

३. कौन से धर्म प्रत्ययों वाले हैं? पांच स्कन्ध, जैसे कि रूप-स्कन्ध, वेदना-स्कन्ध, संखा-स्कन्ध, संस्कार-स्कन्ध, विज्ञान-स्कन्ध, यही धर्म प्रत्ययों वाले हैं ।

(४) कतम धर्मा अप्यच्छया ?

असंख्यता धातु । इसे धर्मा अप्यच्छया ।

'अस्युद्गार-कंड' के भी कुछ उदाहरण देखिये—

(५) कतमे धर्मा हेतु चेव महेतुकाच ?

य स्थदे तयो हेतु एकत्र उपजनिति, इमे धर्मा हेतु चेव महेतुकाच ।

निःसन्देह 'धर्मसंगणि' की शणानात्मक दैली इतनी विचित्र है कि साहित्य का सामान्य विचारी उसमें लिखि नहीं सकता । उसमें तो 'कमे' और 'अकमे' के स्वरूप का गवेषी और उसके तत्वों को गूढ़ चेतना की तह और उसकी सारी भूमियों में झूँडने को उच्चत कोई साहित्यिक भिन्न ही प्रवेश कर सकता है । क्या कुशल है और क्या अकुशल है, इनमें से किसी को भी स्वीकार कर लेने पर चित्त की क्या प्रगतियाँ अथवा अघोमतियाँ होती हैं, उनके क्या मानसिक निदान और लक्षण होते हैं, क्या प्रतिकार होते हैं, उनमें से क्या हेय है या क्या ग्राह्य है, इन सब की निष्पत्ति और मनोवैज्ञानिक गवेषणा मनुष्य को किसी भावी नीतिक चेतना-प्रवानयुग में जब अभिप्रत होगी तो 'धर्मसंगणि' को पंक्तियों के आलवालों में फिर मणियों और मीतियों के थाले बनेंगे । अभी तो हमने जहाँ कहीं से चुने हुए कुछ पुण्यों से उसकी अचंना की है, जो भी इस कि-कुशल-गवेषणा-विहीन घुग में कहीं अविक है ।

### विभंग<sup>१</sup>

विभंग अभिधर्म-पिटक का दूसरा ग्रन्थ है । 'विभंग' का अर्थ है विस्तृत रूप से विभाजन या विवरण । इसी अर्थ में यह शब्द गदेकरत-मुताना (मणिम

१. कौन से धर्म प्रत्ययों वाले नहीं हैं ? असंख्यता धातु । यहीं धर्म प्रत्ययों वाले नहीं हैं ।
२. कौन से धर्म स्वर्व हेतु भी हैं और अन्य हेतुओं से युक्त भी हैं ? जहाँ दो-तीन हेतु एक जगह उत्पन्न होते हैं, तो यहीं धर्म स्वर्व हेतु भी हैं और अन्य हेतुओं से युक्त भी हैं ।

उपर्युक्त तथा अन्य पालि उद्धरणों के लिए देखिये भिन्न जगदीशकाल्यम् अभिधर्म फिल्डसफी, जिल्ड दूसरी, पृष्ठ ९५-१०३

३. श्रीमती रायस डेविड ने इस ग्रन्थ का सम्पादन दोमन लियि में पालि टैक्स्ट

३।४।१) में प्रयुक्त किया गया है। "भिजुओ ! तुम्हें भड़ेकरत (भड़ेकरत) के उद्देश (नाम-कथन) और विभंग (विभाग) का उपरेक्षा करता हूँ, उसे मुनो, अच्छो तरह मन में करो ।" विभंग में धर्मसंगणि के ही बृहद् विश्लेषण को लगें-बढ़ किया गया है, अतः यह उसका पूरक ग्रन्थ ही माना जा सकता है। धर्मसंगणि में, जैसा हम अभी देख चुके हैं, धर्मों का अनेक द्विकों और त्रिकों में विश्लेषण किया गया है और यही उसका प्रधान विषय है। किन्तु धर्मों के स्वरूप को स्पष्टरूप से समझाने के लिए वहाँ इस प्रकार के भी प्रयत्न किये गये हैं, जैसे किन-किन धर्मों में कौन कौन से स्कन्ध, आयतन, धातु, इन्द्रिय आदि संनिविष्ट हैं। इस प्रकार के प्रयत्नों का उद्देश्य वहाँ स्कन्ध आयतन और धातु आदि के संबंध के साथ धर्मों के स्वरूप को समझाना ही है, न कि स्वयं स्कन्ध, आयतन और धातु आदि के स्वरूप का विनिश्चय करना। यह दूसरा काम विभंग में किया गया है। धर्मसंगणि का प्रधान विषय धर्मों का विश्लेषण मात्र कर देना है, उनका स्कन्ध, आयतन, और धातु आदि के रूप में संश्लिष्ट वर्गीकरण करना विभंग का विषय है। यद्यपि धर्मसंगणि ने धर्मों का विश्लेषण करने के बाद अपूर्ण डग से यह दिलाने का प्रयत्न किया है कि उनमें कौन कौन से स्कन्ध, आयतन और धातु आदि संनिविष्ट हैं, किन्तु विभंग ने यही से उसके सूत्र को पकड़कर उसके सारे गलतव्य मार्गों को ही जैसे उलटा भीड़ दिया है। विभंग में इन स्कन्ध, आयतन और धातु आदि को ही प्रस्ताव दिन्दु मानकर यह दिलाया गया है कि स्वयं इनमें कौन कौन से धर्म संनिविष्ट हैं। अतः वस्तु पूरक होते हुए भी वस्तु का विन्यास यही धर्मसंगणि के ठीक विपरीत है। यही यह कह देना भी अप्रासंगिक न होगा कि धर्मसंगणि की १०० द्विकों और २२ त्रिकों बाली वर्गीकरण की प्रणाली को भी जिसका निर्देश उसको 'मातिका' और निर्वाह सारे ग्रन्थ में हुआ है, विभंग ने आवश्यकतामुसार ज्यों का त्यों ले लिया है। अतः

सोसायटी, लंदन के लिए किया है, जिसे उक्त सोसायटी ने सन् १९०४ई० में प्रकाशित किया है। इस प्रत्यक्ष के बरसी, सिहली और स्पामी संस्करण उपलब्ध हैं। सिहली लिपि में हेवाचितरण-संस्करण अधिक ध्यान देने योग्य है। हिन्दी में कोई संस्करण या अनुवाद उपलब्ध नहीं।

इस दृष्टि से भी वह उस पर अवलंबित है। इन्हीं सब कारणों से विभंग का अध्ययन-क्रम बोढ़ प्रस्तुता में सदा घम्मशंखणि के बाद हो माना जाता है।

विभंग की विषय-वस्तु १८ विभागों या विभंगों में विभक्त को गई है, जिनमें से प्रत्येक अपने आप में पूर्ण है। विभंग के १८ विभागों या विभंगों के नाम इस प्रकार हैं—

- ( १ ) खन्ध-विभंग—(स्कन्ध-विभंग)
- ( २ ) आयतन-विभंग—(आयतन-विभंग)
- ( ३ ) धातु-विभंग—(धातु विभंग)
- ( ४ ) सच्च-विभंग—(सत्य-विभंग)
- ( ५ ) इन्द्रिय-विभंग—(इन्द्रिय-विभंग)
- ( ६ ) पञ्चयाकार-विभंग—(प्रत्ययाकार-विभंग)
- ( ७ ) सतिपट्टान-विभंग—(स्मृतिप्रस्थान-विभंग)
- ( ८ ) सम्मानचान-विभंग—(सम्यक्-प्रधान-विभंग)
- ( ९ ) इद्धिपाद-विभंग—(ऋद्धिपाद-विभंग)
- ( १० ) बोड्डंग-विभंग—(बोध्यंग-विभंग)
- ( ११ ) मग-विभंग—(मार्ग-विभंग)
- ( १२ ) भान-विभंग—(ध्यान-विभंग)
- ( १३ ) अप्पमञ्ज-विभंग—(अ-परिमाण-विभंग)
- ( १४ ) सिक्कापद-विभंग—(शिक्षापद-विभंग)
- ( १५ ) पटिसम्भदा-विभंग—(प्रतिसम्भिद्-विभंग)
- ( १६ ) ज्ञाण-विभंग—(ज्ञान-विभंग)
- ( १७ ) शुद्धक-वस्तु-विभंग—(शुद्धक-वस्तु-विभंग)
- ( १८ ) धम्म-हृदय-विभंग—(धम्म-हृदय-विभंग)

प्रत्येक विभंग का नाम उसकी विषय-वस्तु के स्वरूप का सूचक है। प्रायः प्रत्येक ही विभंग तीन अंगों में विभक्त है, (१) सुत्तन्तभाजनिय, (२) अभिधम्म-भाजनिय, (३) पञ्च-पुच्छक। सुत्तन्त-भाजनिय में विश्वक्त की जाने वाली

विषय-वस्तु का सुनन आधार दिलाया गया है, अर्थात् जिस विषय का वर्णन करता है वह किस सीमा तक या किस स्वरूप में सूचनिटक में पाया जाता है, इसका निर्देश किया गया है। अभिधम्म-भाजनिय में उसकी अभिधम्म वा उसके आधार-स्वरूप 'मातिका' के अनुसार व्याख्या है। 'पञ्च-गुच्छक' में 'द्विक' 'विक' आदि शब्दों के रूप में प्रश्नोत्तर हैं, जिनमें संपूर्ण निरूपित विषय का सिहावलोकन एवं संक्षेप है। अब हम प्रत्येक विभंग की विषय-वस्तु का संक्षिप्त विवरण देने।

## १—खन्द-विभंग ( पाँच स्कन्धों का विवरण )

जिसे हम व्यक्तिगत सत्ता (जीवात्मा, पुद्गल) कहते हैं, वह रूप, बेदना, सज्जा, संस्कार और विज्ञान की समष्टि के सिवा और कुछ नहीं है, ऐसी बीद दर्शन को मान्यता है। रूप स्वयं संपूर्ण भौतिक विकारों और अवस्थाओं की समष्टि है। बेदना संपूर्ण संबेदनों की समष्टि है। संज्ञा संपूर्ण संजानन मा जानने की किया की, वस्तु और इन्द्रिय के संयोग से उत्पन्न चित्त की उस अवस्था की, जिसमें उसे वस्तु की सत्ता की सूचना मिलती है, दूसरे शब्दों में समप्र प्रत्यक्षों की, समष्टि है। इसी प्रकार संस्कार बाह्य और आनतरिक स्पर्शों (इन्द्रिय-विषय-सनिकषणों) के कारण से उत्पन्न समप्र मानसिक संस्करणों की और विज्ञान चक्षुरादि इन्द्रियों के, तत्संबंधी रूपादि विषयों या आलमवनों-आपत्तों के साथ संयुक्त होने पर उत्पन्न, चक्षुविज्ञान आदि विज्ञानों पर आधारित समप्र चित्त-भेदों की समष्टि है। रूप, बेदना, सज्जा, संस्कार और विज्ञान का ही सामूहिक नाम 'पञ्च-स्कन्ध' है। इन पाँचों स्कन्धों में ही संपूर्ण नाम-रूप-मय जगत् के मूल तत्व निहित हैं, ऐसा बीद दर्शन मानता है। 'पञ्च-स्कन्ध' के विषय को उपन्यस्त करते हुए विभंग के आरम्भ में ही कहा गया है—पञ्चवस्त्राः रूपवस्त्राः, बेदनावस्त्राः, सञ्चारवस्त्राः, संस्कारवस्त्राः, विष्णुपास्त्राः। इन पञ्चस्कन्धों का सुनन आधार दिलाते हुए सुनन-भाजनिय में उस बुद्ध-बचन को उद्धृत किया गया है, जिसमें इन पाँच स्कन्धों में से प्रत्येक के विषय में यह साधारण कथन किया गया

है कि वह भूत, वर्तमान या भविष्य का भी हो सकता है, व्यक्ति के बाहर या भीतर का भी हो सकता है, स्थूल या सूक्ष्म भी हो सकता है, शुभ या अशुभ भी हो सकता है, दूर का या समीप का भी हो सकता है । रूप-विषयक उद्धरण यह है, "जो कुछ भी रूप है, भूत (अतीत) का, या वर्तमान (प्रत्युत्पन्न) का, या भविष्यत् (अनामत) का, व्यक्ति के बाहर का (बहिदा) या भीतर (अन्तर्मत) का, स्थूल (ओल्डरिक), या सूक्ष्म (सुखुम), शुभ (कुशल), या अशुभ (अकुशल), दूर का (दूरे), या समीप का (सन्ति के), उस सब की समिटि ही रूप-स्कन्ध है ।" वेदनादि स्कन्धों के विषय में भी कुछ योड़-बहुत अन्तर से इती कम का अनुसरण किया गया है । अभिघम्भ-भाजनिय में पञ्च-स्कन्ध की व्याख्या है । क्षय के विवेचन में २२ दिकों और १०० दिकों को लिकर अक्षरणः वही प्रणाली बरती रही है जो घम्मसंगणि में । अतः उसमें कुछ नवीनता नहीं है । शेष चार स्कन्धों के विवरणों में भी यद्यपि विषय और शैली की दृष्टि से कुछ नवीनता नहीं है, किन्तु इनके अलग अलग विवरण घम्मसंगणि की विषय-वस्तु को अधिक स्पष्ट कर देते हैं । वेदना के विषय में बताया गया है कि वह सदा स्पर्श (फस्सो-इन्ड्रिय-विषय संनिकये) पर आधारित है । वह लोकिक भी हो सकती है और अलोकिक भी, वितर्कादि से युक्त भी और उनसे रहित भी, सुख से युक्त भी, दुःख से युक्त भी, न-सुख न-दुःख से युक्त भी । कामावचर-भूमि या अह-पावचर-भूमि की भी हो सकती है, चक्षु-संस्पर्श से भी युक्त हो सकती है, श्रोत्र-संस्पर्श से भी, आदि, आदि । एक संस्था से लेकर दस संस्थातक के वर्गीकरणों में वेदना-स्कन्ध का विस्तृत विवरण इस प्रकार किया गया है—

## ?—वेदना-स्कन्ध

२. (१) सहेतुक (२) अहेतुक
३. (१) कुशल (२) अकुशल (३) अव्याहृत
४. (१) कामावचर (२) रूपावचर (३) अरूपावचर (४) अपरियाप्त (व्यक्तिगत जीवन-सत्ता से असम्बन्धित)

५. (१) सुखेन्द्रिय (२) दुःखेन्द्रिय (३) सौमनस्येन्द्रिय (४) दीर्घनस्येन्द्रिय (५) उोक्तेन्द्रिय

६. (१) चक्र-संस्पर्शजा (२) ओत्र-संस्पर्शजा (३) ग्राण-संस्पर्शजा (४) जिह्वा-संस्पर्शजा (५) काय-संस्पर्शजा (६) मनो-संस्पर्शजा

७. (१) चक्र-संस्पर्शजा, (२) ओत्र-संस्पर्शजा (३) ग्राण-संस्पर्शजा (४) जिह्वा-संस्पर्शजा, (५) काय-संस्पर्शजा (६) मनोधातु-संस्पर्शजा (७) मनोविज्ञानधातु-संस्पर्शजा

८. (१) चक्र-संस्पर्शजा (२) ओत्र-संस्पर्शजा (३) ग्राण-संस्पर्शजा (४) जिह्वा-संस्पर्शजा (५) सुखाकाय-संस्पर्शजा (६) दुःखाकाय-संस्पर्शजा (७) मनोधातु-संस्पर्शजा (८) मनोविज्ञानधातु-संस्पर्शजा

९. (१) चक्र-संस्पर्शजा (२) ओत्र-संस्पर्शजा (३) ग्राण-संस्पर्शजा (४) जिह्वा-संस्पर्शजा (५) काय-संस्पर्शजा (६) मनोधातु-संस्पर्शजा (७) कुशला मनोविज्ञानधातु-संस्पर्शजा (८) अकुशला मनोविज्ञानधातु-संस्पर्शजा (९) अव्याकृता मनोविज्ञानधातु-संस्पर्शजा

१०. (१) चक्र-संस्पर्शजा (२) ओत्र-संस्पर्शजा (३) ग्राण-संस्पर्शजा (४) जिह्वा-संस्पर्शजा (५) काय-संस्पर्शजा (६) सुखा मनोधातु संस्पर्शजा (७) दुःखा मनोधातु संस्पर्शजा (८) कुशला मनोविज्ञानधातु संस्पर्शजा (९) अकुशला मनोविज्ञानधातु संस्पर्शजा (१०) अव्याकृता मनोविज्ञानधातु संस्पर्शजा ।

उपर्युक्त मूच्छी में कई संख्याएँ अनेक बार संगृहीत हैं । अभिव्यम्म के परिणामों में यह बात नई नहीं है । गणनाओं के पीछे पड़ जाने की प्रवृत्ति का ही यह परिणाम है । संज्ञा, संस्कार, और विज्ञान स्कल्पों का विवरण भी जहाँ-तहाँ अल्प परिवर्तनों के साथ वेदना-स्वरूप के समान ही दिया गया है । पञ्च-पञ्चलक विभाग में प्रश्न है, जैसे पञ्चानं खन्धानं कति कुसला ? कति अकुसला ? कति अव्याकृता ? अर्थात् यौन स्कल्पों में से कितने कुशल हैं ? कितने अकुशल ? कितने अव्याकृत ? इसी प्रकार कति सुखाय वेदनाय सम्प्रयुक्ता ? कति दुखाय वेदनाय संस्पर्शुता ? कति अदुखमसुखाय वेदनाय सम्प्रयुक्ता ? अर्थात् कितने सुख की

वेदना से युक्त है, किन्तु दुःख की वेदना से युक्त है, और किन्तु न-दुःख-न-सुख की वेदना से युक्त है ? इनके फिर उत्तर दिये गये हैं । उदाहरणतः ऊपर उद्दृत प्रथम विक-प्रश्नावली का उत्तर दिया गया है—हृषकस्वन्धो अव्याकर्ता । चलारी स्वन्धा सिया कुमला, सिया अकुमला, सिया जकुसला, सिया अव्याकर्ता, अव्याकर्ता रूप-स्वन्ध अव्याकृत है । थेव चार स्वन्ध (वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान) कुशल भी हो सकते हैं, अकुशल भी और अव्याकृत भी । ऊपर उद्दृत द्वितीय विक-प्रश्नावली का उत्तर इस प्रकार दिया गया है—द्वे स्वन्धा न वत्सव्या मुख्या वेदनाय सम्प्रयुता ति पि, दुक्खाय वेदनाय सम्प्रयुता ति पि । तथों स्वन्धा सिया सूखाय, दुक्खाय जद्वस्त्वमसूखाय वेदनाय सम्प्रयुता । इसका अर्थ यह है—दो स्वन्धों (रूप और वेदना) के विषय में तो न तो ऐसा ही कहा जा सकता है कि वे सूख की वेदना से युक्त हैं और न यह कि वे दुःख की वेदना से युक्त हैं । थेव तीन स्वन्ध (संज्ञा, संस्कार, विज्ञान) सूख की वेदना में भी युक्त ही सकते हैं, दुःख की वेदना में भी और न-सूख-न-दुःख की वेदना में भी । ये उदाहरण निको शब्दों का दिग्दर्शन मात्र करने के लिए दिये गये हैं । अन्यथा इस प्रश्नोत्तरी में एक-एक कारके वे सभी २२ विक और १०० द्विक के वर्गीकरण संनिहित हैं, जिनका उल्लेख पहले ही चुका है । उत्तरों की यह विशेषता है कि वे संक्षिप्त होने के साथ-साथ स्वन्धों का नाम ले ले कर निर्देश नहीं करते, बल्कि उनको केवल संख्या दिना देते हैं ।

## २.—आयतन-विभंग

( १२ आयतनों या आधारों का विवरण )

मुक्तन्त-भाजनिय में १२ आयतनों का उल्लेख है, जैसे कि

- |                |                   |
|----------------|-------------------|
| १. चक्रु-आयतन  | ७. विहू-आयतन      |
| २. रूप-आयतन    | ८. रस-आयतन        |
| ३. शोत्र-आयतन  | ९. काय-आयतन       |
| ४. शब्द-आयतन   | १०. सूट्टव्य-आयतन |
| ५. ध्राण-आयतन  | ११. मन-आयतन       |
| ६. स्वन्ध-आयतन | १२. धर्म-आयतन     |

ये सब आयतन अभिनव, हुँस और अनात्म हैं, इतना ही कहकर मृतम्-भाजनिय समाप्त हो जाता है। अनिधम्भ भाजनिय में उपर्युक्त १२ आयतनों के स्वरूप की व्याख्या भी गई है। “यहा है चक्र-आयतन ? यह चक्र, जो चार महाभूतों से उत्पन्न, व्यक्तिगत तत्त्व में अभिनव रूप से संबंधित, अनुभूति (प्रमाद) की इच्छावाली, प्रत्यक्ष का अविषय (अनिदिस्त—क्योंकि प्रत्यक्ष दो किंवद्ध रंग, प्रकाश आदि के अनुभवों का होता है) किन्तु साथ ही इन्द्रिय अनुभवों पर प्रतिक्रिया करनेवाली (मण्डिष्ठ) है—यही अद्वैत चक्र, जिसकी इन्द्रिय अनुभवों पर प्रतिक्रिया के कारण व्यक्ति अनुभव करता है कि उसने किसी दृश्य पदार्थ को देखा है, उसना है, या देखेगा, यही कहलाता है चक्र-आयतन !” इसी प्रकार ओत्र, घ्राण, जिह्वा और काष-संबंधी आयतनों की भी व्याख्या की गई है। चक्र, ओत्र, घ्राण, जिह्वा और काष संबंधी विज्ञानों, मनोधातु और मनोविज्ञानधातु के ममान्तर स्वरूप को ही ‘मन-आयतन’ कहा गया है। चार महाभूतों से उत्पन्न संपूर्ण भौतिक व्यापार, जो रंग आदि के रूप में दिखाई पड़ता है, ‘हृषयतन’ कहा गया है। बास्तव आयतनों में से पाँच इन्द्रिय आयतनों (चक्र, ओत्र, घ्राण, जिह्वा, काष) और पाँच विषय-आयतनों (रूप, शब्द, गन्ध, रस, स्पृष्टव्य), इन दस आयतनों को भौतिक कहा गया है और मन-आयतन को मानसिक ! धर्म-आयतन भौतिक भी हो सकता है और मानसिक भी, अतोत का भी, वर्तमान का भी, और भविष्यत् का भी, बास्तविक भी, और काल्पनिक भी। ‘पञ्च पुच्छक’ में एकन्त-विभंग के नमूने पर ही प्रश्न है, यहाँ (१) दादसायतनाम कति दुमला ? कति अकुसला ? कति अव्याकृता ? अर्थात् १२ आयतनों में से कितने कुशल हैं, कितने अकुशल, कितने अव्याकृत ? (२) कति सुखाय वेदनाय सम्पूर्ता ? कति दुखाय वेदनाय सम्मयुक्ता ? कति अदुक्षलमसुखाय वेदनाय सम्पृक्ता ? अर्थात् कितने सुख की वेदना से युक्त हैं ? कितने दुःख की वेदना से युक्त हैं ? कितने न-दुःख-न-सुख की वेदना से युक्त है ? अदि, आदि ! इनके उत्तर भी कमज़ो देखिए, (१) दस आयतन (चक्र, रूप, ओत्र, शब्द, घ्राण, गन्ध, जिह्वा, रस, काष, स्पृष्टव्य) अव्याकृत हैं। दो आयतन (मन और धर्म) कुशल भी हो सकते हैं, अकुशल भी और अव्याकृत भी—‘सिया कुनला, सिया अकुसला, सिया अव्याकृता !’ (२) दस आयतनों के विषय में त नी निश्चयपूर्वक

यही कहा जा सकता है कि वे सुख की वेदना से युक्त हैं, न यह कि वे दुःख की वेदना से युक्त हैं और न यही कि वे न सुख-दुःख की वेदना से युक्त हैं। मन-आयतन सुख की वेदना से युक्त भी हो सकता है, दुःख की वेदना से युक्त भी और न-सुख-न-दुःख की वेदना से युक्त भी। इसी प्रकार घर्म आयतन सुख की वेदना से भी युक्त हो सकता है, दुःख की वेदना से भी और न-सुख-न-दुःख की वेदना से भी। उसके विषय में निश्चयपूर्वक यह नहीं कहा जा सकता कि वह सुख की वेदना से ही युक्त है, या दुःख की वेदना से ही, आदि।

### ३.—धातु-विभंग

(१८ धातुओं का विवरण)

सूलस्त-भाजनिय में छह-छह के तीन वर्गीकरणों में १८ धातुओं का विवरण इस प्रकार किया गया है—

(अ) पृथ्वी-धातु, जल-धातु, तेज-धातु, वायु-धातु, आकाश-धातु, विज्ञान-धातु

(आ) सूख-धातु, दुःख-धातु, सौमनस्य-धातु, दोमनस्य-धातु, उपेक्षा-धातु, अविद्या-धातु

(इ) काम-धातु, व्यापाद-धातु, विहिसा-धातु, निष्कामता-धातु, अव्यापाद-धातु, अ-विहिसा धातु।

अभिष्टम-भाजनिय में १८ धातुओं की गणना दूसरे प्रकार से की गई है, जो इस प्रकार है—

१. चक्	७. ग्राण	१३. काय
२. रुदा	८. गम्य	१४. स्तुष्टव्य
३. चक्षु-विज्ञान	९. ध्राण-विज्ञान	१५. काय-विज्ञान
४. श्वोद	१०. जिह्वा	१६. मन
५. शब्द	११. रस	१७. घर्म
६. श्वोत्र-विज्ञान	१२. जिह्वा-विज्ञान	१८. मनोविज्ञान

इन अठारह धातुओं में चक्षु, कृप, थोत्र, शब्द, ध्यान, गन्ध, जिह्वा, रस, काय और स्फृष्टव्य, में दस धातुएँ भौतिक हैं। अतः वे लप्पस्कर्य में नर्मिलित हैं। चक्षु-विज्ञान, थोत्र-विज्ञान, ध्यान-विज्ञान, जिह्वा-विज्ञान, काय-विज्ञान, मन, और मनो-विज्ञान, ये सात धातुएँ मानसिक हैं। धर्म-धातु अशतः मानसिक और अंशतः भौतिक है। चक्षु और कृप के संयोग से उत्पन्न चित्त की अवस्था का नाम चक्षु-विज्ञान है। इसी प्रकार थोत्र-विज्ञान आदि के विषय में भी नियम है। मनो-धातु, चक्षु-विज्ञान आदि विज्ञानों के बाद, द्रुखा और दृश्य के संयोग के ठोक अनन्तर, उत्पन्न दृई चित्त की अवस्था का नाम है। मनोविज्ञान-धातु मन और घर्मों के संयोग से उत्पन्न चित्त की उस अवस्था का नाम है, जो मनो-धातु के बाद उत्पन्न होती है। 'पञ्चहृषुच्छक' में फिर उसी क्रम से प्रवृत्त है, जैसे प्रथम दो विभंगों में, यथा (१) १८ धातुओं में से कितनी कुशल है, कितनी अकुशल और कितनी अव्याकृत? (२) कितनी मुख की वेदना से युक्त है? कितनी दुख की वेदना से युक्त है? कितनी न-मुख-न-दुख की वेदना से युक्त? आदि, आदि। इनके उत्तर भी ध्यान देने योग्य हैं (१) १६ धातुएँ (धर्म और मनोविज्ञान को छोड़ कर शेष सब) अव्याकृत हैं। दो धातुएँ (धर्म और मनोविज्ञान) कुशल भी ही सकती हैं, अकुशल भी, और अकुशल भी 'सिया कुमला, सिया अकुमला, सिया जल्याकाता'। (२) दस धातुओं (चक्षु, थोत्र, ध्यान, जिह्वा, काय, कृप, शब्द, गन्ध, रस, स्फृष्टव्य) के विषय में निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि के मुख की वेदना से युक्त है, या दुख की वेदना से युक्त है या न-मुख-न-दुख की वेदना से युक्त है। पाँच धातुएँ (चक्षु-विज्ञान, थोत्र-विज्ञान, ध्यान-विज्ञान, काय-विज्ञान, मन) न-मुख-न-दुख की वेदना से युक्त हैं। काय-विज्ञान-धातु मुख की वेदना से भी युक्त ही सकती है और दुख की वेदना से भी। मनोविज्ञान-धातु मुख, दुख और न-मुख-न-दुख, इन तीनों वेदनाओं से किसी से भी युक्त हो सकती है। इसी प्रकार धर्म-धातु भी इन तीनों वेदनाओं में से किसी से युक्त हो सकती और उनके विषय में यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि या तो यह मुख की वेदना से ही युक्त है, या दुख की वेदना से या न-मुख-न-दुख की वेदना से, आदि, आदि।

## ४—सच्च-विभंग

( चार आर्य-सत्यों का विवरण )

एहले, सुतान्त-भाजनिय में सृष्टां (विशेषतः दीप्ति-निकाय के महासनि-पद्धान-सृत एवं इस प्रकार के अन्य बुद्ध-वचनों) की भाषा में चार आर्य-सत्यों की प्रस्तावना करते हुए कहा गया है—‘चत्तारि अरिय-सच्चानि : दुःखं अरिय-सच्चं, दुःखसमृदयं अरियसच्चं, दुःखनिरोधं अरियसच्चं, दुःखनिरोधगमिनो पटिपदा अरियसच्चं’ अर्थात् ये चार आर्य-सत्य हैं—दुःख आर्य-सत्य, दुःख-समृदय आर्य-सत्य, दुःख-निरोध आर्य-सत्य, दुःख-निरोध-गमी मार्ग आर्य-सत्य। अभिघाम-भाजनिय में इनकी अभिघाम के अनुसार व्याख्या है। तृष्णा और चित्त-मलों को दुःख-समृदय का प्रधान कारण माना गया है और इनके निरोध को दुःख-निरोध का भी प्रधान कारण। दुःख-निरोधी-गमी मार्ग को व्याख्या निर्वाण-सम्बन्धी ध्यान के रूप में की गयी है, जिसकी भूमियों का निष्पत्त धर्म मंगणि में हो चुका है। ‘पञ्चपुच्छक’ में चार आर्य सत्यों के विषय में उसी प्रकार के प्रश्न किये गये हैं, जैसे पूर्व के विभंगों में, यथा (१) चार आर्य सत्यों में कितने कुशल हैं? कितने अकुशल? कितने अव्याकृत? (२) कितने सूख की वेदना से युक्त हैं, कितने दुःख की वेदना से युक्त, कितने न-सूख-न-दुःख की वेदना से युक्त? इनके उत्तर इस प्रकार है (१) समृदय-सत्य अकुशल हैं। मार्ग-सत्य कुशल हैं। निरोध-सत्य अव्याकृत है। दुःख-सत्य, कुशल भी हो सकता है, अकुशल भी और अव्याकृत भी। (२) दो सत्य सूख की वेदना से भी युक्त हो सकते हैं और न-सूख-न-दुःख की वेदना से युक्त भी। निरोध-सत्य के विषय में निष्वच्यपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि वह तीनों प्रकार की वेदनाओं में से किससे युक्त है। दुःख-सत्य सूख की वेदना से भी युक्त हो सकता है, दुःख की वेदना से भी और न-सूख-न-दुःख की वेदना से भी। उसके विषय में निष्वच्यपूर्वक यह नहीं कहा जा सकता कि वह सूख की वेदना से युक्त है, या दुःख की वेदना से न-सूख-न-दुःख की वेदना से। दुःख-सत्य को सूख की वेदना से भी युक्त मानकर ‘विभंग’ ने उसको वह विस्तृत अर्थ दिया है जिसकी सूति भगवान् बुद्ध के साध-साध महापि पतञ्जलि ने भी दिलाई है “परिणामतापसंस्कारदुर्ज्ञ-शुणवृत्तिविरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः” (२१५)

## ५—इन्द्रिय-विभंग

( २२ इन्द्रियों का विवरण )

इस विभंग में २२ इन्द्रियों का सूतन्त के आचार पर विवरण हैं जिनकी संख्या इस प्रकार है—

१. चाह		छह इन्द्रिय
२. श्रोत्र		
३. ग्राण		
४. लिङ्गा		
५. ताम्र		
६. मन		
७. द्वीपत्र		पाँच प्रकार को वेदनाएँ
८. पुरुषत्र		
९. जीवित-इन्द्रिय		
१०. सुख (भास्त्रिक)		
११. दुःख (मानसिक)		
१२. चित्त की प्रसन्नता (सौमनस्य)		
१३. चित्त की विश्रता (दौमनस्य)		
१४. उरोड़ा,		
१५. अड़ा		पाँच नेतिक इन्द्रियों
१६. तीर्थ		
१७. स्मृति		
१८. समाधि		
१९. ग्रन्था		तीन लोकोत्तर इन्द्रिय
२०. "मेरे अज्ञात को जानूमा" यह संकल्प (अनश्वारत जास्यामीतिन्द्रिय)		
२१. पर्णिष्ठ ज्ञान (अज्ञान)		
२२. "जिसने जान प्राप्त कर लिया" तत्त्वाभ्यन्तरी इन्द्रिय (अज्ञाताविन्द्रिय)		

उपर्युक्त २२ इन्द्रियों को व्याख्या और अन्त में (पञ्चहृष्टयक) ज्ञोतरों के रूप में उनका कुशल, अकुशल और अव्याकुश आदि के रूप में विभाजन, इसना ही इस विभंग का विषय है ।

## ६—पञ्चव्याकार-विभंग

(प्रतीत्य समृद्धाद का विवरण)

इस विभंग में प्रतीत्य समृद्धाद का वर्णन है। सुतन्त-भाजनिय में यहले सुतन्त का यह उद्धरण है “अविद्या के प्रत्यय से संकार-नेतना की उत्पत्ति, संकार-नेतना के प्रत्यय ने विज्ञान की उत्पत्ति, विज्ञान के प्रत्यय से नाम और रूप की उत्पत्ति, नाम और रूप के प्रत्यय से छः आयतनों की उत्पत्ति, छः आयतनों के प्रत्यय से स्थानों की उत्पत्ति, स्थानों के प्रत्यय से वेदना की उत्पत्ति, वेदना के प्रत्यय से तृष्णा की उत्पत्ति, तृष्णा के प्रत्यय से उपादान की उत्पत्ति, उपादान के प्रत्यय से जब की उत्पत्ति, भव के प्रत्यय से जन्म की उत्पत्ति, जन्म के प्रत्यय से जरा-भरण, दुख, शोक आदि की उत्पत्ति” प्रतीत्य समृद्धाद में प्रयुक्त १२ निदानों की व्याख्या यही निदान-संयुक्त के समान ही की गई है। अभिघम्म-भाजनिय में मैं उन २४ प्रत्ययों का उल्लेख है, जिनके आधार पर भौतिक और मानसिक जगत् में उत्पत्ति और निरोध का व्यापार चलता है। इन प्रत्ययों का विस्तृत विवेचन आगे चल कर पूरे ग्रन्थ ‘पट्टान-प्रकरण’ में किया गया है। इस विभंग के अन्त में प्रश्नोत्तर रूप में प्रतीत्य समृद्धाद के विभिन्न छंगों में कौन कुशल, अकुशल आदि हैं, इसका विवेचन पूर्ववत् ही किया गया है।

## ७—सतिपट्टान-विभंग

(चार स्मृति-प्रस्थानों का विवरण)

काया में कायानुपश्यी होना, वेदना में वेदनानुपश्यी होना, चित में चितानु-पश्यी होना और धर्मों में धर्मानुपश्यी होना, यही चार स्मृति-प्रस्थान हैं, जिनका विस्तृत उल्लेख सतिपट्टान-सूत (भाजिभम, ११।१०) जैसे सुन्नत के अद्यो में दिया गया है। इस विभंग के सुतन्त-भाजनिय में इसी का संक्षेप कर दिया गया है। अभिघम्म-भाजनिय में यह दिखाया गया है कि इनकी भावना लोकोत्तर ध्यान में चित प्रकार होती है। ‘पठ्ह पुक्षुक्षु’ में इनका विभाजन कुशल, अकुशल जागि के हय में किया गया है। इनमें अकुशल कोई नहीं है। चारों स्मृति-प्रस्थान या तो कुशल होते हैं या अव्याहृत। अहंत् की चित-जवस्था में आगे के

निये कर्म-विधाक नहीं बनते । अतः उस हालत में वे दोद पारिभाषिक शब्दों में 'किञ्चित्' (किया-मात्र) होते हैं ।

### ८—सम्प्रधान-विभंग

(चार सम्प्रकृत्यानों का विवरण)

(१) अकुशल अवस्थाओं से बचना (२) उन पर विजय प्राप्त करना  
 (३) कुशल अवस्थाओं का विकास करना (४) विकसित कुशल अवस्थाओं को बचाये रखना, यही चार सम्प्रकृत्यानों का विवरण है । सतिपट्टान-सूत (मठिभम-११।१०) के आधार पर इनका वर्णन किया गया है और अभिधम्म-भाजनिय में केवल यह अधिक दिखला दिया गया है कि लोकोत्तर-व्यान की अवस्था में ये किस प्रकार विद्यमान रहते हैं ।

### ९—इद्धिपाद-विभंग

(४ इद्धियों का विवरण)

चार इद्धियाँ हैं, दृढ़ संकल्प की एकाग्रता (छन्द-समाधि), वीर्य की एकाग्रता (विरिय-समाधि), चित्त की एकाग्रता (चित्त-समाधि) और गवेषणा की एकाग्रता (वीमसा-समाधि) । यही यह भी दिखाया गया है कि चार इद्धियों का चार सम्प्रकृत्यानों से व्यो पारस्परिक सम्बन्ध है ।

### १०—बोज्मझ-विभंग

(बोधि के सात अंगों का विवरण)

बोधि के सात अंग हैं, स्मृति (सति), धर्म की गवेषणा (धर्म-विचय), वीर्य (विरिय), प्रीति (पीति), चित्त-शान्ति या प्रश्वच्छि (पस्तिदि), समाधि और उपेक्षा (उपेक्षा) । मठिभम-निकाय के आनापान-सति-सूत के समान ही इनका यही निर्देश है । अभिधम्म-भाजनिय में अवश्य इन विभिन्न अंगों की अभिधम्म की गवेषणाली में व्याख्या की गई है और बाद में कुशल आदि के रूप में उनका विभाजन किया गया है ।

## ११—मग्न-विभंग

(आयं अष्टाङ्गिक मार्ग का विवरण)

आयं अष्टाङ्गिक मार्ग का विवरण यहाँ सतिपट्टान-सूत (मञ्जिमम् ११११०) के अनुसार ही है। सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् ताणी, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् आजीविका, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति और सम्यक् समाधि का निर्देश करने के बाद प्रत्येक को व्याख्या की गई है और फिर अन्त में प्रश्नोत्तर के रूप में उन्हें कुशलादि के वर्गीकरणों में बाठा गया है।

## १२—भान-विभंग

(चार ध्यानों का विवरण)

मन-प्रथम सूतन्त-भावनिय में चूलहतिष्ठपदोपम-सूत (मञ्जिमम् १३१३) के उस बुद्ध-वचन को उद्धृत किया गया है जिसमें चार ध्यानों का विस्तृत वर्णन उपलब्ध होता है। अधिक महत्वपूर्ण होने के कारण हम उसे यहाँ उद्धृत करेंगे। 'भिक्षुओ ! भिक्षु इस आयं-सदाचार से युक्त हो, इस आयं इन्द्रिय-संयम से युक्त हो, स्मृति और ज्ञान से युक्त हो, किसी एकान्त-स्थान में रहता है जैसे अरण्य, वृक्ष की छाया, पर्वत, कन्दरा, गुफा, दमशान, बंगल, लुले आकाश के नीचे या पुआल के ऊपर पर। वह पिङ्गपाल से लौट भोजन कर चुकने के बाद आसनी मार शरीर को सोधा रख स्मृति को सामने कर बैठता है . . . . वह चित्त के उपरक्षेत्र, प्रज्ञा को दुर्वल करने वाले, पौच बन्धनों को छोड़, काम-वित्तके से रहित हो, बुरे विचारों से रहित होकर, प्रथम ध्यान को प्राप्त कर विचरता है। इस ध्यान में वित्तके और विचार रहते हैं। एकान्त-धारा से यह ध्यान उत्पन्न होता है। इसमें प्रीति और सूख भी रहते हैं . . . . फिर भिक्षुओ ! भिक्षु वित्तके और विचारों के उपरामन से अन्दर की प्रसन्नता और एकाप्रता रूपी द्वितीय ध्यान को प्राप्त करता है। इसमें न वित्तके होते हैं, न विचार। यह समाधि से उत्पन्न होता है। इसमें प्रीति और सूख रहते हैं . . . . फिर भिक्षुओ ! भिक्षु प्रीति से भी विरक्त हो, उपेक्षावान् बन कर विचरता है। वह स्मृतिमान्, ज्ञानवान् होता है और शरीर से सूख का अनुभव करता है। वह तृतीय ध्यान को प्राप्त करता है जिसे पंडित बन 'उपेक्षावान्, स्मृतिमान् सूखपूर्वक विहार करने वाला' कहते हैं।

फिर भिज़बो ! मिल दुख और सुख-दोनों के व्यापार से, सौमनन्ध और ब्रौम-नस्य दोनों के पहले से ही अस्त हुए रहने से, चतुर्थ-ध्यान को प्राप्त करता है । इसमें न दुख होता है न सुख । केवल उपेक्षा तथा स्मृति को परिशुद्धि यही होती है ।” इसी बुद्ध-वचन के आधार पर अभिशम्म-भावनिय में यह दिखलाया गया है कि प्रथम ध्यान के पाँच अवश्यक होते हैं, यथा, वित्त, विचार, प्रीति, सुख और समाधि । द्वितीय ध्यान के तीन, यथा प्रीति, सुख और समाधि । तृतीय ध्यान में केवल दो रह जाने हैं, सुख और समाधि और चौथे में भी केवल दो, उपेक्षा और समाधि । ‘पञ्च-पुच्छक’ में यही दिखलाया गया है कि ध्यान कुशल भी हो सकते हैं और अव्याहृत भी । चार स्मृति-प्रस्थानों की तरह ये भी अहंत के चित के लिये भविष्य का कर्म-विपाक बनाते बाले नहीं होते । दूसरे शब्दों में वे उसके लिये ‘किरिया-चित’ होते हैं ।

### १३—अप्यगव्य-विभंग

( चार अपरिमाण अवस्थाओं का विवेचन )

मैत्री (मेता), करुणा, मूदिता और उपेक्षा, इनको अपरिमाण बालों अवस्थाएं कहा गया है । इसका कारण यह है कि इन्हें कहीं तक बढ़ाया जा सकता है, इसकी कोई हद नहीं । इन्हीं को ‘बहु-विहार’ भी कहते हैं । पठंजलि की भाषा में इन्हें ‘सार्वभौम महावत’ भी कहा जा सकता है । पातंजल योग-दर्शन (११३) में इन चार अवस्थाओं के विकास का उपदेश दिया गया है । इस विभंग में इन चार अवस्थाओं का विवरण और चार ध्यानों के साथ उसका सम्बन्ध दिखलाया गया है ।

### १४—सिक्खापद-विभंग

( पाँच शिदापदों का विवरण )

हिंसा, चोरी, व्यभिचार, असत्य और मध्यपान, इनसे विरत रहना ही सदाचार के पाँच सार्वजनीन नियम है, जिनका यही विवरण और विवेचन प्रस्तुत किया गया है ।

## १५—पटिसम्भिदा-विभंग

( चार प्रतिसंविदों का विवरण )

चार प्रतिसंविदों या विश्लेषणात्मक ज्ञानों का इस विभंग में वर्णन किया गया है, यथा ( १ ) अवै-सम्बन्धी ज्ञान ( अत्यं पटिसम्भिदा ) ( २ ) धर्म-सम्बन्धी ज्ञान ( धर्म पटिसम्भिदा ) ( ३ ) शब्द-व्याकरण-सम्बन्धी ज्ञान ( निरूपि पटि-सम्भिदा ) और ( ४ ) ज्ञात-दर्शन-सम्बन्धी ज्ञान ( पटिभान पटिसम्भिदा ) ।

## १६—आण-विभंग

( नाना प्रकार के ज्ञानों का विवरण )

इस विभंग में नाना प्रकार के ज्ञानों का विवरण है, यथा लौकिक ज्ञान, अलो-किक ज्ञान, आदि, आदि । इस विभंग का तीन प्रकार का ज्ञान-विवरण विशेष कारण से घ्यात देने योग्य है । प्रजा की यही तीन क्रमिक अवस्थाएँ बतलायी गयी हैं, यथा शुतमधी प्रजा ( शुतमया पञ्जा ) चिन्ता-मधी प्रजा ( चिन्तामया पञ्जा ) और भावना-मधी प्रजा ( भावनामया पञ्जा ) । यास्त्रादि पन्थों के अवश पा पठनादि से उत्पन्न ज्ञान 'शुतमधी प्रजा' है । वह सुना हुआ है, स्वयं का अनुभव या चिन्तन उसमें नहीं है । इसके बाद चिन्ता-मधी प्रजा है, जिसमें अपनी चांडि का चिन्तन सम्भिलित है । चिन्तु इससे भी ऊँचा एक ज्ञान है, जिसका नाम है 'भावना-मधी प्रजा' । यह प्रजा न केवल यास्त्रीय या चांडिक आधारों पर उत्तिष्ठित है, बल्कि इसमें सम्पूर्ण सदाकार-समृह के पालन से उत्पन्न चित की उत्तमाधि को गम्भीरता भी समिहित है, जो कुशल चित से ही प्राप्त की जा सकती है । यह तीन प्रकार का ज्ञान-वर्गकिरण निश्चय ही बड़ा भास्मिक है ।

## १७—तुहक-वस्तु-विभंग

( छोटी-छोटी जातों का विवरण )

इस विभंग में आख्यातों ( चित-सलों ) आदि के अनेक प्रकारों का वर्णन किया गया है ।

## १८—धर्म-हृदय-विभंग

( धर्म के हृदय का विवरण )

अब तक के विभंगों में जो कुछ वर्णन किया जा चुका है, उसी का प्रधनोत्तर

के रूप में यहाँ सिहावलोकन है। जैकि इसमें धर्म के सब तत्त्व अपने आप आ गये हैं, इसीलिये इसे 'धर्म का हृदय' कहा गया है। कुछ प्रश्नों की बानगी देखिये— कितने धर्म काम-धातु में प्राप्त होते हैं? कितने रूप-धातु में? कितने अरूप-धातु में? कितने कामावचर हैं? कितने रूपावचर? कितने अरूपावचर? कितने छोड़ने योग्य? कितने भावना करने योग्य? आदि, आदि। यीतोकत भगवान् की विभूतियों की तरह इनका कही अन्त ही नहीं दिखाई पड़ता। इसीलिये इनका संज्ञेष देने का भी यहाँ प्रयत्न नहीं किया गया।

### धातुकथा ।

विभंग के १८ विभंगों में से स्कन्ध, आयतन और धातु, इन प्रथम तीन विभंगों को सुनकर उनका विशेष अध्ययन धातुकथा में किया गया है। स्कन्ध आयतन और धातु, यही धातुकथा के विषय हैं। अतः उसका पूरा नाम ही, जैसा महास्थविर जानातिलोक ने कहा है, 'स्कन्ध-आयतन-धातु-कथा' होना चाहिये। धातुकथा के विषय-प्रतिपादन की एक विशेष शैली यह है कि यहाँ स्कन्ध, आयतन और धातुओं का सम्बन्ध धर्मों के साथ दिखलाया गया है। इन धर्मों को सब्दा उसकी 'मातिका' के अनुसार १२५ है, जो इस प्रकार है, १. स्कन्ध, १२ आयतन, १८ धातुएँ, ४ सत्य, २२ इन्द्रिय, प्रतीत्य समूपाद, ४ स्मृति-प्रस्तावन ४ सम्यक् प्रधान, ४ कृदिषाद, ६ ध्यान, ४ अपरिमाण, ५ इन्द्रिय, ५ चल, ७ बोध्यंग, ८ आयं-मार्ग के अंग, स्पर्श, वेदना, संज्ञा, चेतना, चिन, अधिमोक्ष और मनसिकार। किस-किस स्कन्ध, आयतन या विभंग में कौन-कौन धर्म सम्मिलित (संगहित), अ-सम्मिलित (असंगहित), संयुक्त (सम्प्रयुक्त) या विषयक (विषयक) आदि हैं, इसी का विवेचन १४ अध्यायों में प्रवर्णोत्तर ढंग से किया गया है, जिसका रूपरेखा इस प्रकार है—

१. ई० आर० गुणरत्न द्वारा अट्ठकवा-सहित पालि ट्रैकमट् सोसायटी के लिए सम्पादित। उक्त सोसायटी द्वारा सन् १८९२ में रोमन लिपि में प्रकाशित। इस प्रथम के सिहली, बर्मी एवं स्पामी संस्करण उपलब्ध हैं। हिन्दी में न संस्करण है और न अनुवाद !

१. सम्मिलन और अ-सम्मिलन (संगहो असंगहो) : इस अध्याय में यह दिखलाया गया है कि कितने स्कन्ध, आयतन और धातुओं में कौन-कौन से धर्म सम्मिलित है या अ-सम्मिलित है ।
२. सम्मिलित और अ-सम्मिलित (संगहितेन असंगहित) : यहाँ वह दिखलाया गया है कि कितने स्कन्ध, आयतन और धातुओं में वे धर्म असम्मिलित हैं, जो कुछ अन्य धर्मों के साथ समान स्कन्ध में सम्मिलित हैं, किन्तु समान धातु और आयतन में सम्मिलित नहीं हैं ।
३. अ-सम्मिलित और सम्मिलित (असंगहितेन संगहित) : कितने स्कन्ध, आयतन और धातुओं में वे धर्म सम्मिलित हैं, जो कुछ अन्य धर्मों के साथ समान स्कन्ध में सम्मिलित नहीं हैं, किन्तु समान आयतन और समान धातु में सम्मिलित हैं ।
४. सम्मिलित और सम्मिलित (संगहितेन संगहित) : कितने स्कन्ध आयतन और धातुओं में वे धर्म सम्मिलित हैं, जो कुछ अन्य धर्मों के साथ उन समान स्कन्ध, आयतन और धातुओं में सम्मिलित हैं जो पुनः अन्य धर्मों के साथ उनमें (स्कन्ध आयतन और धातुओं में) सम्मिलित हैं ।
५. अ-सम्मिलित और अ-सम्मिलित (असंगहितेन असंगहित) : कितने स्कन्ध आयतन और धातुओं में वे धर्म अ-सम्मिलित हैं जो कुछ अन्य धर्मों के साथ उन्हीं स्कन्ध आयतन और धातुओं में असम्मिलित हैं जो पुनः अन्य धर्मों के साथ उनमें (स्कन्ध, आयतन और धातुओं में) असम्मिलित हैं । यह अध्याय चौथे अध्याय का ठोक विपरीत है ।
६. संयोग और वियोग (सम्प्रयोगो विष्प्रयोगो) : कितने स्कन्ध, आयतन और धातुओं के साथ धर्म संयुक्त है, या कितने के साथ वे वियुक्त हैं ।
७. संयुक्त ने वियुक्त (सम्प्रयुक्तेन विष्प्रयुक्तं) : कितने स्कन्ध, आयतन और धातुओं से वे धर्म वियुक्त हैं, जो उन धर्मों से, जो अन्य धर्मों के साथ संयुक्त हैं, वियुक्त हैं ।
८. वियुक्त से संयुक्त (विष्प्रयुक्तेन सम्प्रयुक्तं) : कितने स्कन्ध, आयतन और धातुओं से वे धर्म संयुक्त हैं, जो उन धर्मों से, जो कुछ अन्य धर्मों से वियुक्त हैं, संयुक्त हैं ।

९. संदृशत से संदृशत (सम्प्रयुक्तेन सम्प्रयुक्तं) : कितने स्कन्ध, आयतन और धातुओं से वे घर्म संदृशत हैं, जो उन धर्मों से जो अन्य धर्मों से संदृशत हैं, संदृशत है ।
१०. विष्वकृत से विष्वकृत (विष्प्रयुक्तेन विष्प्रयुक्तं) : कितने स्कन्ध, आयतन और धातुओं से वे घर्म विष्वकृत हैं, जो उन धर्मों से जो अन्य धर्मों से विष्वकृत है, विष्वकृत है ।
११. सम्मिलित से संदृशत और विष्वकृत (संगहितेन सम्प्रयुक्तं विष्प्रयुक्तं) :
- (अ) कितने स्कन्ध, आयतन और धातुओं से वे घर्म संदृशत हैं जो समान स्कन्ध में सम्मिलित नहीं, किन्तु समान आयतन और धातु में कुछ अन्य धर्मों के साथ सम्मिलित हैं, (आ) कितने स्कन्ध, आयतन और धातुओं से वे घर्म विष्वकृत हैं जो समान स्कन्ध में सम्मिलित नहीं किन्तु समान आयतन और धातु में कुछ अन्य धर्मों के साथ सम्मिलित हैं ।
१२. मंग्युक्त से सम्मिलित और असम्मिलित (सम्प्रयुक्तेन संगहितं असंगहितं) :
- (अ) कितने स्कन्ध, आयतन और धातुओं में वे घर्म सम्मिलित हैं जो कुछ अन्य धर्मों से संदृशत है (आ) कितने स्कन्ध, आयतन और धातुओं में वे घर्म असम्मिलित हैं जो कुछ अन्य धर्मों से संदृशत है ।
१३. असम्मिलित से संदृशत और विष्वकृत (असंगहितेन सम्प्रयुक्तं विष्प्रयुक्तं) :
- (अ) कितने स्कन्ध, आयतन और धातुओं से वे घर्म संदृशत हैं, जो किन्हीं अन्य धर्मों के साथ समान स्कन्ध, आयतन और धातुओं में सम्मिलित नहीं है (आ) कितने स्कन्ध, आयतन और धातुओं से वे घर्म विष्वकृत हैं जो किन्हीं अन्य धर्मों के साथ समान स्कन्ध, आयतन और धातुओं में सम्मिलित नहीं है ।
१४. विष्वकृत से सम्मिलित और असम्मिलित (विष्प्रयुक्तेन मंगहितं असंगहितं) : कितने स्कन्ध, आयतन और धर्मों में वे घर्म सम्मिलित हैं, जो कुछ अन्य धर्मों से विष्वकृत है, (आ) कितने स्कन्ध, आयतन और धर्मों से वे घर्म सम्मिलित नहीं हैं, जो कुछ अन्य धर्मों से विष्वकृत है ।

उपर्युक्त अध्यायों के विषय और वैली को अच्छी तरह हृदयगम करने के लिए प्रत्येक में से एक-एक दो-दो प्रश्नोत्तरों को भी दे देना उपर्युक्त होगा । अतः क्रमसः-

(१) (अ) कितने स्कन्धों, आयतनों और धातुओं में रूप-स्कन्ध सम्मिलित है ? १ स्कन्ध, ११ आयतन और ११ धातुओं में रूप-स्कन्ध सम्मिलित है ।

(आ) कितने स्कन्धों, आयतनों और धातुओं में रूप-स्कन्ध सम्मिलित नहीं है ? चार स्कन्ध, एक आयतन और सात धातुओं में रूप-स्कन्ध सम्मिलित नहीं है ।

(इ) कितने स्कन्धों, आयतनों और धातुओं में वेदना-स्कन्ध सम्मिलित है ? एक स्कन्ध, एक आयतन और एक धातु में वेदना-स्कन्ध सम्मिलित है ।

(ई) कितने स्कन्धों, आयतनों और धातुओं में वेदना-स्कन्ध सम्मिलित नहीं है ? चार स्कन्ध, स्पारह आयतन और १७ धातुओं में वेदना-स्कन्ध सम्मिलित नहीं है । आदि, आदि

(२) (अ) कितने स्कन्धों, आयतनों और धातुओं में वे धर्म सम्मिलित नहीं है, जो चक्र-आयतन . . . . स्पृष्टव्यापत्ति और चक्र-धातु . . . . स्पृष्टव्य-धातु धर्मों के साथ समान स्कन्ध में सम्मिलित हैं, किन्तु समान धातु और आयतन में सम्मिलित नहीं है ?

चार स्कन्धों, दो आयतनों और आठ धातुओं में वे सम्मिलित नहीं हैं ।

(३) (अ) कितने स्कन्धों, आयतनों और धातुओं में वे धर्म सम्मिलित है, जो वेदना-स्कन्ध, संज्ञा-स्कन्ध, संस्कार-स्कन्ध, समृद्धय-सत्य, मार्ग-सत्य धर्मों के साथ समान स्कन्ध में सम्मिलित नहीं है, किन्तु समान आयतन और समान धातु में सम्मिलित है ?

तीन स्कन्धों, एक आयतन और एक धातु में वे सम्मिलित है, निर्वाण को छोड़कर !

(४) (अ) कितने स्कन्धों, आयतनों और धातुओं में वे धर्म सम्मिलित है, जो समृद्धय-सत्य, मार्ग-सत्य धर्मों के साथ उन समान स्कन्ध, आयतन और धातुओं में सम्मिलित हैं जो पुनः रामृद्धय-सत्य, मार्ग-सत्य के साथ उनमें (स्कन्ध, आयतन और धातुओं में) सम्मिलित हैं ।

एक स्कन्ध, एक आयतन और एक धातु में वे सम्मिलित हैं।

(१) (अ) कितने स्कन्धों, आयतनों और धातुओं में वे धर्म सम्मिलित नहीं हैं जो अन्य धर्मों के साथ उन्हीं स्कन्ध, आयतन और धातुओं में असम्मिलित हैं जो पुनः उन्हीं धर्मों के साथ उनमें (स्कन्ध, आयतन और धातुओं में) असम्मिलित हैं?

एक स्कन्ध, एक आयतन और सात धातुओं में वे असम्मिलित हैं।

(६) (अ) कितने स्कन्धों, आयतनों और धातुओं के साथ रूप-स्कन्ध संयुक्त हैं?

किसी के साथ नहीं (व्योमि स्वयं अपने साथ वह संयुक्त हो नहीं सकता और अन्य धर्म मानसिक है)

(आ) कितने स्कन्धों, आयतनों और धातुओं के साथ रूप-स्कन्ध नंयुक्त नहीं हैं?

चार स्कन्ध, एक आयतन और सात धातुओं के साथ वह संयुक्त नहीं है

(७) (अ) कितने स्कन्धों, आयतनों और धातुओं से वे धर्म वियुक्त हैं, जो उन धर्मों से, जो अन्य धर्मों के साथ संयुक्त हैं, वियुक्त हैं?

चार स्कन्धों, एक आयतन और सात धातुओं से वे वियुक्त हैं, अतः एक आयतन और एक धातु से भी।

(८) (अ) कितने स्कन्धों, आयतनों और धातुओं से वे धर्म महूक्त हैं, जो उन धर्मों से जो रूप-स्कन्ध से वियुक्त हैं, संयुक्त हैं?

किसी से नहीं।

(९) (अ) कितने स्कन्धों, आयतनों और धातुओं से वे धर्म मगूक्त हैं, जो उन धर्मों से जो वेदना-स्कन्ध, संज्ञा-स्कन्ध, सरकार-स्कन्ध से महूक्त हैं, संयुक्त हैं?

तीन स्कन्धों, एक आयतन और सात धातुओं से वे संयुक्त हैं, अतः एक आयतन और एक धातु से भी।

(१०) (अ) कितने स्कन्धों, आयतनों और धातुओं से वे धर्म वियुक्त हैं, जो उन धर्मों से जो रूप-स्कन्ध से वियुक्त हैं, वियुक्त हैं?

चार स्कन्धों, एक आयतन और सात धातुओं से वे विद्युक्त हैं, अंशतः एक आयतन और एक धातु से भी ।

(११) (अ) कितने स्कन्धों, आयतनों और धातुओं से वे धर्म संदूक्त हैं जो समान स्कन्ध में सम्मिलित नहीं हैं किन्तु समृदय-सत्य और मार्ग-सत्य के साथ समान आयतन और धातुओं में सम्मिलित हैं ?

तीन स्कन्ध, एक आयतन और सात धातुओं से वे संपूर्ण हैं, अंशतः एक स्कन्ध, एक आयतन और एक धातु से भी ।

(आ) कितने स्कन्धों, आयतनों और धातुओं से वे धर्म विद्युक्त हैं जो समान स्कन्ध में सम्मिलित नहीं किन्तु समृदय-सत्य और मार्ग-सत्य के साथ समान आयतन और समान धातुओं में सम्मिलित हैं ? एक स्कन्ध, दस आयतन और दस धातुओं से वे विद्युक्त हैं, अंशतः एक आयतन और एक धातु से भी ।

(१२) (अ) कितने स्कन्धों, आयतनों और धातुओं में वे धर्म सम्मिलित हैं जो वेदनास्कन्ध, मंजा-स्कन्ध और संस्कार-स्कन्ध से संदूक्त हैं ?

तीन स्कन्धों, दो आयतनों और आठ धातुओं में वे सम्मिलित हैं ।

(आ) कितने स्कन्धों, आयतनों और धातुओं में वे धर्म सम्मिलित नहीं हैं जो वेदना-स्कन्ध से संपूर्ण हैं ?

दो स्कन्धों, दस आयतनों और दस धातुओं में वे सम्मिलित नहीं हैं ।

(१३) (अ) कितने स्कन्धों, आयतनों और धातुओं से वे धर्म संदूक्त हैं जो रूप-स्कन्ध के साथ समान स्कन्ध, आयतन और धातुओं में सम्मिलित नहीं हैं ?

तीन स्कन्धों और अंशतः एक आयतन और एक धातु से वे संपूर्ण हैं ।

(आ) कितने स्कन्धों, आयतनों और धातुओं से वे धर्म विद्युक्त हैं जो रूप-स्कन्ध के साथ समान स्कन्ध, आयतन और धातुओं में सम्मिलित नहीं हैं ?

एक स्कन्ध, दस आयतन और दस धातुओं से वे विद्युक्त हैं, अंशतः एक आयतन और एक धातु से भी ।

(१४) (अ) कितने स्कन्धों, आयतनों और धातुओं में वे धर्म सम्मिलित हैं जो रूप-स्कन्ध से विद्युक्त हैं ?

चार स्कन्धों, दो आयतनों और धातुओं में वे सम्मिलित हैं ।

(आ) कितने संवधों, आयतनों और धातुओं में वे घर्म सम्मिलित नहीं हैं जो रूप स्कन्ध से विद्युक्त हैं ?

एक स्कन्ध, दस आयतनों और दस धातुओं में वे सम्मिलित नहीं हैं। पुग्गलपञ्चज्ञाति ।—

'पुग्गलपञ्चज्ञाति' (पृदग्ज-प्रज्ञित) शब्द का अर्थ है पृदग्जों या व्यक्तियों संवधों ज्ञान या उनको पहचान। 'पुग्गल-पञ्चज्ञाति' में व्यक्तियों के नामा प्रकारों का वर्णन किया गया है। विषय या वणेन-प्रणाली की दृष्टि से इस ग्रन्थ का अभिव्यक्ति की अपेक्षा मूलता से अधिक चिनित सबूत है। व्यक्तियों का निर्देश वहाँ घम्मों के माध्य उनके संबंध की दृष्टि से नहीं किया गया है, जो अभिव्यक्ति का विषय है। बल्कि अनुसार-निकाय की दौली पर, बुद्ध-वचनों का आधार लेकर, या कहीं उनको अधिक स्पष्ट करने की दृष्टि से, या उनको व्याख्या-स्वरूप, गुण, कर्म और स्वभाव के विभाग के अनुसार व्यक्तियों के नामा स्वरूपों को वर्णबद्ध किया गया है, जो मूल बुद्ध-घर्म के नेतृत्वके दृष्टिकोण को समझने के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। संपूर्ण ग्रन्थ में दस अध्याय हैं, जिनमें प्रखर में एक-एक प्रकार के व्यक्तियों का निर्देश है, दुसरे में दो-दो प्रकार के और इसी प्रकार कमशः बहुते हुए दसवें अध्याय में दस-दस प्रकार के व्यक्तियों का निर्देश है। चार आर्य-आचक, पृथग्जन, सम्यक् सम्बद्ध, प्रस्त्रेण बुद्ध, शोक्य, अशोक्य, जाय, अनाय, नोत आपन्न, सकुदामामी, अनामामी अहंत, आदि के रूप में व्यक्तियों का विवाजन, जो सूतों में जीवन-एवं दि के स्वरूप और उसके विकास को दिखाने के लिए किया गया है, यही कमिक वणानावद्ध रूप में समृहोत कर दिया गया है। कुछ-एक उदाहरण पर्याप्त होते हैं—

१. डा० मौरिस द्वारा रोमन लिपि में सम्पादित एवं पालि टैक्सट सौमायटी (१८८३) द्वारा प्रकाशित। इसका अंग्रेजी अनुवाद 'वि डैजिग्नेशन आंव हच्चूसन दाइस्स' शीर्षक से डा० विमलाचरण लाहा ने किया है, जो पालि टैक्सट सौमायटी, लखनऊ (१९२३) द्वारा प्रकाशित किया गया है। नामरो-संस्करण और हिन्दी अनुवाद भी होने वाली है। इस ग्रंथ के बरसी, सिहली और स्पामी संस्करण उपलब्ध हैं। महास्पविर ज्ञानातिलोक ने इस ग्रन्थ का अमर्न भावा में अनुवाद किया है, ज्ञेसलो, १९१०।

### एक-एक प्रकार के व्यक्तियों का वर्गीकरण

१. कौनसा व्यक्ति 'पृथग्भजन' (पृथुञ्जली-प्राकृत मनुष्य-मांसारिक मनुष्य) है ?

जिसके प्रथम तीत संयोजन (मानसिक बन्धन) प्रहीण नहीं हुए और न जो उनके प्रहीण करने के मार्ग में ही संलग्न है, वही व्यक्ति 'पृथग्भजन' है ।

२. कौन सा व्यक्ति अनामामी है ?

जो व्यक्ति प्रथम पौच संयोजनों का विनाश करने के बाद किसी उच्चतर लोक में जन्म लेता है जहाँ उसकी निर्वाण-प्राप्ति निश्चित हो जाती है और जहाँ से वह लौटकर फिर इस लोक में नहीं होता, वही व्यक्ति अनामामी है ।

### दो-दो प्रकार के व्यक्तियों का वर्गीकरण

१. कौन सा व्यक्ति भीतरी संयोजनों से बंधा हुआ है ?

जिसके प्रथम पौच संयोजन अभी नाट नहीं हुए, वही व्यक्ति भीतरी संयोजनों से बंधा हुआ है ।

२. कौन सा व्यक्ति बाहरी संयोजनों से बंधा हुआ है ?

जिसके अंतिम पौच संयोजन अभी नाट नहीं हुए, वही व्यक्ति बाहरी संयोजनों से बंधा हुआ है ।

### तीन-तीन प्रकार के व्यक्तियों का वर्गीकरण

१. कौन सा व्यक्ति काम-वासना संबंधी आसक्ति और भव-वासना संबंधी आसक्ति से विमुक्त नहीं है ?

सोत आपने और सकृदागामी, ये दो व्यक्ति काम-वासना संबंधी आसक्ति और भव-वासना संबंधी आसक्ति से विमुक्त नहीं हैं ।

२. कौन सा व्यक्ति काम-वासना संबंधी आसक्ति से विमुक्त है, किन्तु भव-वासना संबंधी आसक्ति से विमुक्त नहीं है ?

अनामामो—यह व्यक्ति काम-वासना संबंधी आसक्ति से विमुक्त है, किन्तु भव-वासना संबंधी आसक्ति से विमुक्त नहीं है ।

३. कौन सा व्यक्ति काम-वासना संबंधी आसक्ति और भव-वासना संबंधी आसक्ति, इन दोनों प्रकार को जासक्तियों से विमुक्त है ?

जहेंत्—यह व्यक्ति काम-वासना संबंधी आसक्ति और भव-वासना-संबंधी आसक्ति इन दोनों जासक्तियों से विमुक्त है ।

### चार-चार प्रकार के व्यक्तियों का वर्गीकरण

१. कौन सा व्यक्ति उस बादल के समान है जो गरजता है पर बरसता नहीं ?

जो कहता बहुत है पर करता कुछ नहीं—यही व्यक्ति उस बादल के समान है जो गरजता है पर बरसता नहीं ।

२. कौन सा व्यक्ति उस बादल के समान है जो बरसता है, पर गरजता नहीं ?

जो करता है, पर कहता नहीं, ऐसा व्यक्ति उस बादल के समान है जो बरसता है पर गरजता नहीं ।

३. कौन सा व्यक्ति उस बादल के समान है जो गरजता भी है और बरसता भी है ?

जो कहता भी है और करता भी है, वही व्यक्ति उस बादल के समान है जो गरजता भी है और बरसता भी है ।

४. कौन सा व्यक्ति उस बादल के समान है जो गरजता भी नहीं और बरसता भी नहीं ?

जो न कहता है और न करता है, वही व्यक्ति उस बादल के समान है जो गरजता भी नहीं और बरसता भी नहीं ।

इसी वर्गीकरण का एक और मुन्दर उपमा के द्वारा व्यक्तियों के चार प्रकार का विभाजन देखिए—

१. कौन सा व्यक्ति उस चूहे के समान है जो अपने बिल तो लोदकर तैयार करता है, किन्तु उसमें रहता नहीं ?

जो व्यक्ति सूत, गाढ़ा, उदान, जातक आदि प्रथ्यों का अभ्यास तो करता है किन्तु चार जामें सत्यों का स्वयं सावालकार नहीं करता, वही व्यक्ति उस चूहे के समान है जो अपना बिल तो लोदकर तैयार करता है, किन्तु उसमें रहता नहीं ।

२. कौन सा व्यक्ति उस चूहे के समान हैं जो बिल में रहता है किन्तु उसे स्वयं स्रोदकर तैयार नहीं करता ?

जो सूत, गाथा आदि का अभ्यास तो नहीं करता, किन्तु चार आवें सत्यों का साक्षात्कार कर लेता है वही व्यक्ति उस चूहे के समान हैं जो बिल में तो रहता है, किन्तु उसे स्वयं स्रोदकर तैयार नहीं करता ।

३. कौन सा व्यक्ति उस चूहे के समान हैं जो बिल को स्वयं स्रोदकर तैयार भी करता है और उसमें रहता भी है ?

जो सूत, गाथा आदि का अभ्यास भी करता है और चार आवें सत्यों का साक्षात्कार भी करता है ।

४. कौन सा व्यक्ति उस चूहे के समान हैं जो न बिल की स्रोदता है न उसमें रहता है ?

जो न सूत, गाथा आदि का अभ्यास करता है और न चार आवें सत्यों का साक्षात्कार भी करता है ।

इसी प्रकार आगे के अध्यायों में क्रमशः पौच्छाच, छै-छै, सात-सात, आठ-आठ, नौ-नौ और दस-दस के वर्गीकरणों में व्यक्तियों का वर्णन किया गया है । यद्यपि सुल-पिटक से नवीन या मौलिक तो यही कुछ नहीं है, फिर भी उपमाएँ कहीं-कहीं बड़ी सुन्दर हुई हैं । सब्यावद वर्गीकरणों की क्षरी-कृतिमत्ता होते हुए भी 'पुग्गल-पञ्जात्ति' के विवरण नैतिक तत्वों की भित्ति पर आधित हैं, अतः वे आधुनिक विद्यायों के लिए भी अध्ययन के अच्छे विषय हैं ।

### कथावस्था<sup>१</sup>

जैसा हूसरे अध्याय में दिखाया जा चुका है, अशोक के समय (तीसरी शताब्दी ईस्वी पूर्व) तक आते-आते मूल बुद्ध-धर्म १८ भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों या सिकायों में बट चुका था । अशोक ने लगभग २४६ ई० पू० जब पाटलिपुत्र की सभा को

१. ए० सौ० डेलर द्वारा सम्पादित एवं पालि टंकस्ट् सोसायटी, लंदन, द्वारा सन् १८९४ एवं १८९७ में रोमन लिपि में प्रकाशित । 'पॉइन्ट्स ऑफ कन्ट्रोवर्सी' और 'सब्जेक्ट्स ऑफ डिस्कोर्स' शीर्षक से शाँ जैन आगे एवं श्रीमती रायस

बुलाया तो उसके समाप्ति स्वविर मोमलिपुत्र तिस्स ने इन्हीं १८ सम्प्रदायों में मे एक (धेरवाद-स्वविरवाद) को मूळ बुद्ध-धर्म मान कर बाकी १७ के दार्शनिक सिद्धांतों का निराकरण किया और अपने समाजानों को 'कवावत्य-वकरण' नामक ग्रन्थ में रख दिया जो उसी समय से अभिघम्म-पिटक का एक अङ्ग माना जाने लगा। कवावत्य में केवल दार्शनिक सिद्धांतों का वर्णन है। किन्तु किन सम्प्रदायों के बैं दार्शनिक सिद्धांत थे, इसका उल्लेख वही नहीं किया गया है। यह कभी उसकी अट्ठकथा (पांचवीं शताब्दी) ने पूरी कर दी है। इस अट्ठकथा के बर्णनानुसार भगवान् बुद्ध के महापरिनिर्वाण के १००वर्ष बाद वज्रपुत्रक भित्रुओं ने संघ के अनुशासन को भेंग कर 'महासंघिक' नामक सम्प्रदाय की स्थापना की। इसी सम्प्रदाय को पांच शाखायें बाद में और हो गईं। इस प्रकार कुल मिलाकर महासंघिकों के ६ सम्प्रदाय हो गए, जिनके नाम थे, महासंघिक, एकव्योहारिक, गोकुलिक, यज्ञत्रिवादी, बाहुलिक और चेतियवादी। प्रथम संघीत में स्वविरों (बुद्ध भित्रुओं) ने मूळ बुद्ध-धर्म के जिस स्वरूप को स्वीकार किया था उसका नाम 'धेरवाद' (स्वविरवाद) वह समा या और इस धेरवाद के भी अधीक के समय तक आते-आते कुल मिलाकर १२ सम्प्रदाय हो गये थे, जो इस प्रकार थे, धेरवादी, महिंसासक, वज्रपुत्रक, सखवत्यवादी, धम्मगतिक, धम्मतरिक, छग्रागरिक, नद्यानिक, सामितिय, कास्सपिक, संकर्मिक, और सुसवादी। कवावत्य-अट्ठकथा के अनुसार यह शाम्बा-मेद इस प्रकार दिखाया जा सकता है। —

देविहस् द्वारा अंद्रेजी में अनुवादित एवं पालि टंकसृष्टि सोसायटी (लंदन, १९१५) द्वारा प्रकाशित। बरसी, सिहली एवं स्पासी संस्करण उपलब्ध हैं। देवनागरी में न संस्करण हैं और न अनुवाद।

१. देविये जानातिलोक : गाइड बु० वि अभिघम्म-पिटक, पृष्ठ ३६; राहुल सांकृत्यायन : विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद) भूमिका, पृष्ठ १, उन्हों की पुरातत्व निबन्धावली, पृष्ठ १२१; 'दीपवंस' के अनुसार और 'महावंस' ५१२-११ के अनुसार भी विलकुल यही विभाग है, देविये राहुल सांकृत्यायन द्वारा द्वारा सम्पादित अभिघम्म-कोष, भूमिका, पृष्ठ ४; देविये जनेल आंव दौवल एशियादिक सोसायटी १८९१, तथा जनेल आंव पालि टंकसृष्टि सोसायटी (१९०४-०५) (वि सैक्स ऑव वि चुड्डिस्ट्स)

महासंघिक (कुल ६)

( १ )

( २ )

( ३ )

( ४ )

( ५ )

एकव्यावहारिक  
(एकव्योहारिक)गोकुलिक  
(गोकुलिक)प्रजन्तिवादी  
(प्रजन्तिवादी)बाहुदतिक  
(बाहुलिक)( ६ ) चेत्यवादी  
(चेतियवादी)

थेरवादी (कुल १२)

( १ )

( २ )

महोशासक

( ८ ) वाल्मीपुर्वाय या

वृच्छिपुरुष

(वृच्छिपुत्रक)

( ३ ) सर्वास्तिवादी (सर्वत्विवादी) ( ३ )

( ९ )

( ४ ) काश्यपीय (कस्मपिक) धर्मगुणिक धर्मोत्तरीय (धर्मूत्तरीय)

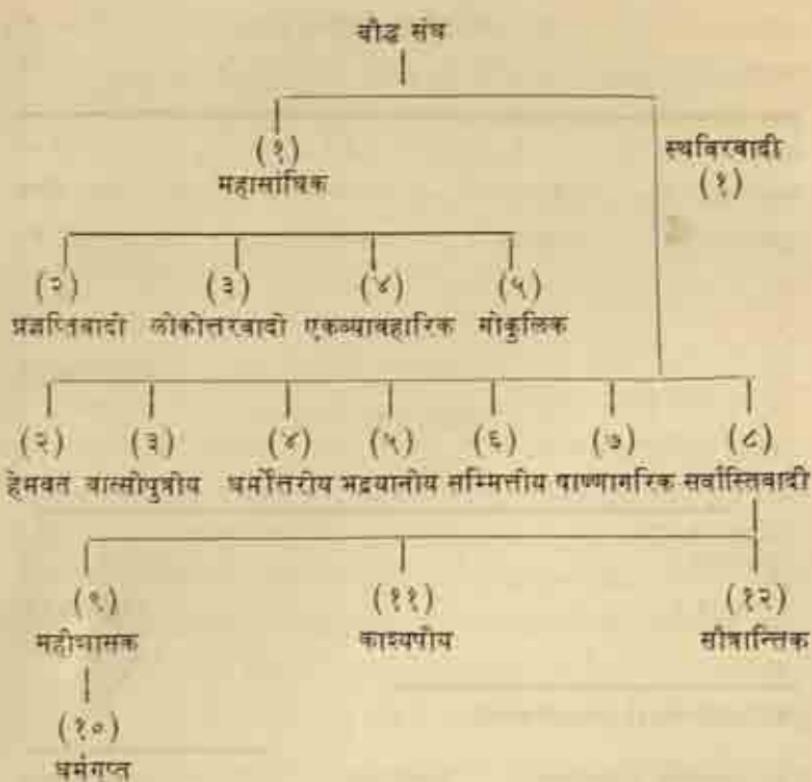
( ५ ) साक्षितिक (सक्षितिक) (धर्मगुणिक) ( १० ) छन्दागारिक ( ११ )

( ६ ) सूत्रवादी या सौत्रान्तिक (सुलवादी) (छन्दागरिक) भद्रपानिक

( १२ ) साम्मितिय

सर्वास्तिवादी परम्परा में इन सम्प्रदायों का विकास कुछ विभिन्न तरफ से दिखाया गया है। उदाहरणतः बसुभित्ति-प्रणीत 'अष्टादशा-निकाय-शास्त्र' के अनुसार १८ सम्प्रदायों का विभागोकरण इस प्रकार है—

१. देविये राहुल सांकृत्यायन द्वारा सम्पादित 'अभिघमंकोश', भूमिका, पृष्ठ ५, एवं उन्हों का विनय-पिटक (हिन्दी-अनुवाद), भूमिका, पृष्ठ १-२; नागार्जुन के माध्यमिक सूत्रों के भाष्यकार, चन्द्रकोटि के पूर्वगामी, आचार्य भव्य के वर्णनानुसार भी १८ सम्प्रदायों के विकास का यही फल है। केवल उन्होंने



उपर्युक्त दोनों परम्पराओं की विभिन्नताएँ वास्तव में इन सम्प्रदायों के अनिश्चित इतिहास के कारण हैं। यदि कथावस्थ में इन सम्प्रदायों के विषय में भी कुछ कह दिया जाता तो बौद्ध धर्म के इतिहास-जिजासुओं का काम सरल हो जाता। किन्तु धर्मवादी स्थविर भोगलिपुत्र तिस्सा ने इसके लिए अवकाश नहीं दिया।

गोकुलिक (कुकुलिक) शास्त्र को महासाधिकों से तथा वाण्णागारिक (छान्नागारिक) शास्त्र को स्थविरवादियों को परम्परा से वियुक्त कर दिया है। देखिये बुद्धिस्तक स्टडीज, पृष्ठ ८३१-३२; 'महावेस', 'कथावस्थ', बसुमित्र और भद्र इन चारों लोगों के आधार पर १८ सम्प्रदायों के शास्त्र-भेद के तुलनात्मक अध्ययन के लिए देखिये बुद्धिस्तक स्टडीज, पृष्ठ ८२७ पर दी हुई महत्त्वपूर्ण तालिका।

उनके लिए विचार व्यवितर्योगा सम्प्रदायी सेविक महत्वपूर्ण थे। भारतीय ज्ञानियों की परम्परा के यह अनुकूल ही है। किन्तु इस अभाव के कारण इन सम्प्रदायों का इतिहास भी अनिश्चित ही रह गया है। स्थविरवादी परम्परा की मान्यता, जैसा उपर दिखाया जा चुका है, कथावत्यु को अट्ठकथा पर आश्रित है जो स्वयं पौच्छी शताब्दी ईसवी की रचनाहोने के कारण उत्तरी प्रामाणिक नहीं मानी जा सकती। फिर भी जो बस्तु निश्चित मानी जा सकती है वह यह है कि अशोक के बांद्र धर्म ग्रहण कर लेने के समय उपर्युक्त अठारह सम्प्रदाय विद्यमान थे। अशोक के द्वारा पूजित किये जाने पर ये और भी बढ़ने लगे। शास्त्र का वास्तविक उपदेश क्या था, यह कुछ भी जान न पड़ने लगा। परिणामतः पाटलिपुत्र में एक समानित बृलाई गई। इस सभा के सभापति थे स्थविर मोगलिपुत्र तिस्स। उन्होंने उपर्युक्त सम्प्रदायों में से केवल विशुद्ध स्थविरवाद को तो बुद्ध का मन्तव्य अथवा 'विभज्जवाद' माना और शेष को बुद्ध के मत से बाहर माना। इसी समय से सर्वास्तिवाद जादि सम्प्रदाय, जो अब तक स्थविरवादियों की ही जाता माने जाते थे, अब अलग ही गये। अतः हम कह सकते हैं कि अशोक के समय तक बुद्ध-मन्तव्य अथवा 'विभज्जवाद' जिस नाम से व्यवहृत होता रहा, वह और उसकी परम्परा 'स्थविरवाद' में निहित है। इसी स्थविरवाद के समर्थन की दृष्टि से शेष १७ सम्प्रदायों के मन्तव्यों का बंडन 'कथावत्यु' में किया गया है।

'कथावत्यु' में विरोधी १७ सम्प्रदायों के सिद्धान्तों को प्रश्नारम्भ किए से पहले पूर्वोपका के रूप में उपलिखित किया गया है, फिर स्थविरवादी दृष्टिकोण से उनका बंडन किया गया है। सिद्धान्तों के पूर्वोपक-मन्तव्यों निर्वाचन में किसी निश्चित नियम का पालन नहीं किया गया। सिद्धान्तों को मानने वाले सम्प्रदायों का लो उसमें नामोल्लेख भी नहीं है, यह हम पहले ही कह चुके हैं। कुल मिलाकर 'कथावत्यु' में विरोधी सम्प्रदायों के २१६ सिद्धान्तों का बंडन है, जो २३ अध्यायों में विभक्त किये गये हैं। कुछ सिद्धान्तों का कथन है कि इस संघ में केवल अशोक-कालीन सिद्धान्तों का ही बंडन है, बल्कि कुछ बाद के सम्प्रदायों और सिद्धान्तों का भी बंडन सम्मिलित है। अतः उनके मत में इस संघ में कई अशा ईसा की पहली शताब्दी तक जोड़े जाते रहे। इस संघ में प्राचीन अर्थात् अशोक के समय में प्रच-

१. देखिये राहुल सांकेतिकायन : पुरातत्त्व निवादावली, पृष्ठ १३०; ज्ञानातिलोक ; गाइड घू. वि अभिधम्म पिटक, पृष्ठ ३३-३८

लित सिद्धान्तों में से तो आठ का संदर्भ प्रस्तुत किया गया है, जिनमें से दो तो महासाधियों के सम्प्रदाय हैं, यथा (१) महासाधिक (चतुर्थं शताब्दी ईसवी पूर्व) तथा गोकुलिक (चौथी शताब्दी ईसवी पूर्व) और छह सम्प्रदाय स्वयं स्थविरवादियों के हैं, यथा (२) भद्रयातिक (तीसरी शताब्दी ईसवी पूर्व) (३) महीशासक (चौथी शताब्दी ईसवी पूर्व) (४) बाल्मीयुक्तीय (चौथी शताब्दी ईसवी पूर्व) (५) मर्वास्तिवादी (चौथी शताब्दी ईसवी पूर्व) (६) साम्मतिय (चौथी शताब्दी ईसवी पूर्व), तथा (७) वजिजपुत्रक (चौथी शताब्दी ईसवी पूर्व) । इनके अलावा कुछ जबोचीन सिद्धान्तों का भी खड़न कथावत्यमें मिलता है। ये सम्प्रदाय भी अधृ हैं, यथा, (१) अन्धक (२) अपरश्चालीय (३) पूर्वशालीय (४) राजगिरिक (५) सिद्धार्थक (६) वैपुल्य (वेतुल्ल) (७) उत्तराप्रथक और (८) इतुवादी । यदि स्वयं कथावत्यमें इन सम्प्रदायों का नामोल्लेख होता तब तो यह माना जा सकता था कि उसके जो अंश इम जबोचीन सम्प्रदायों के सिद्धान्तों का खड़न करते हैं वे जशीक के काल के बाद की रचना हैं। किन्तु वहाँ तो सिर्फ सिद्धान्तों का खड़न है, सिद्धान्तों को निश्चित सम्प्रदायों के साथ वहाँ नहीं जोड़ा गया है। यह कामतों तीव्रीं शताब्दी में लिखो जाने वाली उसकी अट्ठकथा ने ही किया है। अतः इससे यही निश्चित निष्पत्ते निकल सकता है कि जब कथावत्य के विचारक ने विरोधी सिद्धान्तों का संदर्भ किया था तब वे बौद्ध वायु-मण्डल में विचिह्न जाङ्कार्यों के रूप में प्रवाहित लक्ष्य हो रहे थे, किन्तु निश्चित सम्प्रदायों के माध्यमें उनका अभी संबंध स्थापित नहीं हुआ था। संभव है कहीं कहीं व्यक्ति इनका उपदेश दे रहे हों या शकाओं के रूप में उपस्थित कर रहे हों। बाद में चलकर इन्होंमें से निश्चित सम्प्रदायों का अविर्भाव हो गया, जैसा थमं और दर्शन के इतिहास में अस्तर होता है। विस समय कथावत्यको अट्ठकथा लिखोगई ।

१. ज्ञानातिलोक : गाइड श्रू दि अभिधम्म-पिटक, पृष्ठ ३८; राहुल सांकृत्यायन : पुरातत्त्व निबन्धावली, पृष्ठ १३०
२. महावंस ५। १२-१३ में भी हूँमवत, राजगृहिक, सिद्धार्थक, पूर्वशालीय, अपरश्चालीय और बाजिरीय, इन छः सम्प्रदायों को अशोक के उत्तरकालीन माना गया है। अतः ज्ञानातिलोक : गाइड श्रू दि अभिधम्म-पिटक, पृष्ठ ३८ एवं राहुल सांकृत्यायन : पुरातत्त्व निबन्धावली, पृष्ठ १२०, का इनको उत्तरकालीन ठहराना युक्त-युक्त ही जात पड़ता है।

पौच्छी शताब्दी ईसवी) उस समय तक इन संप्रदायों का स्वरूप निश्चित हो चुका था और वे बौद्ध परम्परा में प्रतिष्ठा पाचुके थे। यही कारण है कि अट्ठकथाकार (महास्थविरबृद्धघोष) ने कथावल्य में खड़न के लिए प्रस्तुत जिन जिन सिद्धांतों की समता अपने काल में प्रचलित या परम्परा से प्राप्त संप्रदायों की मान्यताओं के साथ देखी, उन्हें उनके साथ सम्बंधित कर दिया है। लेकिन हम उन विद्वानों (विशेषतः राहुल संकृत्यायन और ज्ञानातिलोक) के मत से महमत नहीं है जो कथावल्य के कठिनय अशोक के काल से बाद की रचना मानते हैं। जैसा हम अभी साप्त कर चुके हैं, सिद्धांत संप्रदायों की उपेक्षा अधिक प्राचीन है और संप्रदायों का नामोलेख कथावल्य में है नहीं। अतः वह निश्चय ही अपने संपूर्ण रूप में अशोककालीन रचना है और उस काल के मिल-संघ में स्फुटरूप से प्रचलित नामा मिथ्या धारणाओं और शंकाओं के निराकरण के द्वारा मूल बृद्ध-धर्म के स्वरूप को साप्त करने का वह प्रयत्न करती है। बाद में इसी (स्थविरवादो दृष्टिकोण से) मिथ्या धारणाओं और शंकाओं ने विकसित होकर विभिन्न निश्चित संप्रदायों और उपसंप्रदायों का स्पष्ट घारण कर लिया, जिनका साधारण उसकी अट्ठकथा देती है।

'कथावल्य' के २१६ शंकासमाचारन ०३ अध्यायों में विभक्त है, यह अभी कहा जा चुका है। इनमें से कई समाधान दार्शनिक दृष्टिसे बड़े महत्व के हैं। बृद्ध के दर्शन की मनमानी व्याख्या पहले के दर्शनों में भी बहुत भी जा चुकी है और आज भी बहुत की जाती है। तथाकथित शास्त्राण-दार्शनिक यदि इस दिशा में मार्ग-आप्त हुए हैं तो उनसे कम बौद्ध-दार्शनिक भी नहीं। महारंगित राहुल संकृत्यायन ने ठीक ही वर राधाकृष्णन के उस प्रयत्न की हीसी उड़ाइ है और उसे 'बाल-धर्म' (भारी मूलता) निश्चित कर दिया है जो उन्होंने बृद्ध को उपनिषद् के ज्ञानवाद का प्रचारक सिद्ध करने के लिए किया है।<sup>१</sup> यदि मनीषी राधाकृष्णन कथावल्य के प्रधम अध्याय के प्रधम शंकासमाचारन में ही स्पष्ट इस विषयक स्थविरवादी दृष्टिकोण की सम्यक् अवधारणा कर लेते तो वे मूल बृद्ध-दर्शन के साथ आत्मवाद या अन्य ऐसी किसी

१. देखिये महारंगित राहुल संकृत्यायन का दर्शन-विश्वासन, पृष्ठ ५३०-३२

चोर को इस प्रकार अनधिकृत व्य से मिलाने का प्रयत्न नहीं करते । इसी प्रकार यदि मनीषी महापडित भी इस बात की सम्पूर्ण अनुभूति कर लेते कि 'महाशून्यवादी' वेत्तुल्यकां (वैपुल्यकां) की स्थविरवादियों ने 'कथावत्यु' में क्या सबर ली है, तो वे नामार्जुन आदि उत्तरकालीन बीढ़ दार्शनिकों को, जिन्होंने निषेचात्मक दिशा में ही अधिक पदापर्ण किया है, बुद्ध-मन्त्रव्यों के एकमात्र सच्चे अपार्थाता होने का ध्येय प्रदान नहीं करते । बुद्ध-मत सभी अतिवादों से बाहर जाता है, सभी मतवादों में ऊपर उठता है । आत्मवाद और अनात्मवाद, ईश्वरवाद और अनौश्वरवाद, भौतिकवाद और विज्ञानवाद, शादवतवाद और अशादवतवाद सभी इन अतिवादों और मतवादों के ही स्वरूप हैं । बुद्ध की दार्शनिक परिस्थिति संबंधी हमारी बहुत सी शंकाओं का निर्मलन स्वयं बुद्ध-वचनों के बाद 'कथावत्यु' में वहे अच्छे ढंग से होता है । बाद में मिलिन्द-पञ्च (प्रथम शताब्दी ईसवी पूर्व) में भी इस प्रकार का प्रयत्न किया गया है, किन्तु उसका महत्व 'कथावत्यु' के बाद ही है । अब हम कथावत्यु में निश्चित विषय-वस्तु का संक्षेप से दिखाना करेंगे ।

### कथावत्यु में निराकृत सिद्धान्तों की सूची

#### पहला अध्याय

१. क्या जीव, सत्त्व या आत्मा की परमार्थ-सत्ता है ? विज्ञानवादक और सम्मतिय भिन्नओं का विश्वास या कि 'है' । स्थविरवादी दृष्टिकोण से इसका विस्तृत वर्णन किया गया है ।

२. क्या अहंत्व को अवस्था ने अहंत् का पतन संभव है ? सम्मतिय, विज्ञानवादक, सत्त्वविचादी और कुछ महासंधिक भिन्नओं का विश्वास या कि नह संभव है । स्थविरवादियों ने लोत आग्न, सहृदामार्मी और अनामार्मी के विषय में तो यह माना है कि वे अपनी-अपनी अवस्थाओं में पतित होतार फिर सामाजिक बन सकते हैं, किन्तु अहंत् का पतन तो असंभव है ।

३. क्या देवताओं में ब्रह्मचर्य की प्राप्ति संभव है ? सम्मतिय भिन्न कहते थे कि 'नहीं' । स्थविरवादी दृष्टिकोण से कहा गया है कि सम्मतिय भिन्नओं

को ब्रह्मचर्य का अर्थ समझने में ही भ्रम हो गया है। भिशु-जीवन (ब्रह्मचर्य) के स्वर्ग में न होते हुए भी पवित्र-जीवन (ब्रह्मचर्य) का अभ्यास करने में तो देवता स्वतंत्र हो जाते हैं। अतः स्थविरवादियों के अनुसार देवताओं में भी ब्रह्मचर्य की प्राप्ति समव है।

५. क्या चित्त-नायोजनों (मानसिक-बन्धनों) का विश्वास विभागशः होता है? सम्मतियों का विश्वास था कि स्रोत आपने व्यक्ति दुःख और दुःख-समृद्धि का ज्ञान प्राप्त कर, प्रथम तीन चित्त-बन्धनों के केवल कुछ अंशों को उच्छिष्ठ करता है और वाकों अंशों को अधिक ऊंची अवस्थाओं तो प्राप्त करने के बाद उच्छिष्ठ करता है। स्थविरवादियों का इसके विपरीत तक यह है कि इस प्रकार एक ही व्यक्ति को विभागशः स्रोत आपने और विभागशः स्रोत आपने नहीं भी मानना पड़ेगा। सम्मतियों ने अपनी स्थिति के समर्थन के लिए बृह्द-बन्धन को उद्धृत किया है, किन्तु स्थविरवादियों ने दूसरा बृह्द-बन्धन उद्धृत कर उनकी स्थिति को स्वीकार नहीं किया है।

६. क्या संसार में रहते हुए भी कोई मनुष्य राग और द्वेष में मुक्त हो सकता है? सम्मतियों का विश्वास था कि हो सकता है। स्थविरों ने इसे स्वीकार नहीं किया।

७. क्या सब कुछ है? (सब्ब अंतिम?) सब्बत्यवादियों (सब्बस्तिवादियों) का विश्वास था कि भूत, वर्तमान और भविष्यत् के सभी भौतिक और मानसिक घटनों की सत्ता है। स्थविरवादियों के मतानुसार अतीत समाप्त हो चुका, भविष्यत् जर्भी उत्पन्न नहीं हुआ, केवल वर्तमान ही की सत्ता है।

८. सिद्धान्त छह का ही पूरक है।

९. क्या यह सत्य है कि भूत, और भविष्यत् की कुछ वस्तुओं का अस्तित्व है और कुछ का नहीं? कस्मापिक भिशु कहते थे कि अतीत भी अशत् वर्तमान में विद्यमान है और जिन भविष्य के पदार्थों के होने का हम दृढ़ निश्चय कर सकते हैं उनकी भी सत्ता मान सकते हैं। स्थविरों ने इसे स्वीकार नहीं किया है।

१०. क्या सभी पदार्थ स्मृति के आलम्बन हैं? अन्यकों का ऐसा विश्वास था, किन्तु स्थविरों ने इसका विवरण किया है।

१०. क्या भूत, वर्तमान और भविष्यत् के पदार्थों का अस्तित्व एक प्रकार से है और दूसरे प्रकार से नहीं ? अन्यकों का ऐसा विश्वास, किन्तु स्थिरों द्वारा नहीं ।

### दूसरा अध्याय

११. क्या अहंत् का बोध-पतन सम्भव है ? पूर्वशैलीय और अपशैलीय भिन्न-भिन्न का विश्वास या कि भोजन-पान के कारण वह सम्भव है । स्थिरों ने इसे नहीं माना है ।

१२-१३. क्या अहंत् के अज्ञान और संशय हो सकते हैं और दूसरों से वह पराजित किया जा सकता है ? पूर्वशैलीय भिन्न-ओं का विश्वास या कि लौकिक ज्ञान के विषय में यह सर्वथा सम्भव है । स्थिरों ने इसका विरोध नहीं किया, किन्तु अहंत् को कभी भी अविद्या या विचिकित्सा हो सकती है । इसे उन्होंने नहीं माना ।

१४. क्या ध्यानावस्था में बाणी-व्यापार भी सम्भव है ? पूर्वशैलीय भिन्न-ओं का ऐसा विश्वास, किन्तु उसका निराकरण ।

१५. क्या 'दुःख' 'दुःख' कहने से स्रोत आपत्ति आदि चार व्रहचर्य की अवस्थाओं को प्राप्ति हो सकती है ? पूर्वशैलीय भिन्न-ओं के इन मिथ्या विश्वास का निराकरण ।

१६. क्या कोई चित्त-अवस्था सम्पूर्ण दिन भर रह सकती है ? अन्यकों के इस विश्वास का निराकरण ।

१७. क्या सभी संस्कार तप्त, दहकते हुए अंगारों के समान हैं ? भगवान् के एक वचन के असुसार गोकुलिक भिन्न सभी संस्कारों को दुःख-मय ही मानते थे । स्थिरवादियों ने धर्मिक सुखमय संस्कारों की भी सत्ता मानती है ।

१८. क्या व्रहचर्य को चार अवस्थाओं (स्रोत आपत्ति आदि) का साधात्म्यान विभागया होता है । अन्यक, सब्बत्विवादी, सम्मतिय और भड्यानिक भिन्न-ओं का ऐसा हो विश्वास । स्थिरवादियों का मत सिद्धान्त-समाप्ति के समान ।

२०. क्या बृह का लोकोत्तर आवहार (बोहार-वाणी) जैसी कोई चीज है ? अन्धक मिश्र मणिकम-निकाय के एक वचन के आवार पर ऐसा ही मानते थे । स्वविरवादी भत्तात्मार ब्रह्मवर्य-संलग्न चित्त और निर्वाण ही लोकोत्तर है ।
२१. क्या दुःख-विमुक्ति भी दो ही और निर्वाण भी दो ? महोशासक और अन्धक मिश्र कहते थे कि ऐसा ही है । एक दुःख-विमुक्ति है चित्ततन या प्रतिसंख्यान (पटिसत्त्वा) के द्वारा प्राप्त की हुई । और दूसरी उसके बिना । इसी प्रकार एक निर्वाण है प्रतिसंख्यान के द्वारा प्राप्त किया हुआ और दूसरा उसके बिना । इसका निराकरण किया गया है ।

### तीसरा अध्याय

- २२-२३. क्या तथागत के दस बल उनके शिष्यों को भी प्राप्त हो सकते हैं ? अन्धकों को मान्यता इसके पश्च में ।
२४. क्या विमुक्त होता हुआ मन लोभ-प्रस्त होता है ? अन्धकों का विश्वास या कि अहंक प्राप्त कर लेने पर ही लोभ से पूर्णतः विमुक्ति मिलती है ।
२५. क्या विमुक्ति क्रमशः किया के रूप में होने वाली वस्तु है ।
२६. क्या स्रोत आपने का मत-बाद सम्बन्धी बन्धन नष्ट हुआ रहता है । अन्धक और सम्मितियों को ऐसी ही मान्यता थी । स्वविरवादी भत्ता मध्यमार्गीय दृष्टिकोण के लेता है, अर्थात् उसकी मान्यता है कि स्रोत आपने का मत-बाद सम्बन्धी बन्धन दूरने लगता है किन्तु पूर्णतः दूर नहीं होता ।
२७. क्या स्रोतापन की अद्वेन्द्रिय आदि इनियों (जीवन-दक्षितयों) को प्राप्त हो जाती है ? अन्धकों का ऐसा ही विश्वास ।
- २८-२९. क्या चमं-चश्म दिव्य-चश्मओं में परिवर्तित हो सकते हैं, यदि उनका आवार कोई मानसिक घर्म हो । अन्धकों की ऐसी ही मान्यता ।
३०. क्या दिव्य-चश्म प्राप्त कर लेना कर्म के स्वरूप को समझ लेना ही है ?
३१. क्या देवताओं में संयम पाया जाता है ?
३२. क्या अचेतन प्राणी (असञ्जन-सत्ता) भी विज्ञान (चित्त) से युक्त होते हैं ?

अन्धकों का विश्वास या कि विना चित के पुनर्जन्म नहीं होता। बतः कम से कम मृत्यु और पुनर्जन्म के लिए में अनेतर प्राणियों के भी विज्ञान होता है।

३३. क्या नैवसंज्ञानासंज्ञायतन में विज्ञान उपस्थित नहीं रहता? अन्धकों का विश्वास कि नहीं रहता।

### चौथा अध्याय

३४. क्या गृहस्थ भी अहंत् बन सकता है? उत्तरापयकों का विश्वास। स्थविरवादी मतानुसार अहंत् होने पर मनुष्य गृहस्थात्रम् में नहीं रह सकता।
३५. क्या जन्म के अवसर पर ही कोई अहंत् बन सकता है? उत्तरापयकों का भ्रम।
३६. क्या अहंत् को प्रत्येक उपयोग-सामग्री भी गवित्र (जनासत्र—मल-रहित) है? उत्तरापयकों का मत।
३७. क्या अहंत् होने के बाद भी मनुष्य को चार मार्ग-फलों की प्राप्ति बनी हुई रहती है? उत्तरापयकों का विश्वास।
३८. क्या ६ प्रकार की उपेक्षाओं को अहंत् एक ही लक्षण में एक ही साथ घारण कर सकता है? किस सम्बद्धाय की यह मान्यता थी, इसका उल्लेख नहीं है। स्थविरवादी मतानुसार ऐसी अवस्था सम्भव नहीं है।
३९. क्या बोधि-मात्र से बुद्ध हो जाता है? उत्तरापयकों का ऋमात्मक विश्वास, 'बोधि' का अर्थ त समझने के कारण।
४०. क्या ३२ महापुरुष-लक्षणों से मुक्त प्रत्येक मनुष्य बोधिसत्त्व है? उत्तरापयकों का विश्वास।
४१. क्या बोधिसत्त्व को बुद्ध काशप की मिथ्यता में ही सम्यक् मार्ग की प्राप्ति हो गई थी? अन्धकों का ऐसा ही विश्वास था।
४२. ३७ के समान।
४३. क्या संयोजनों (चित-बन्धनों) के ऊपर विजय प्राप्त कर लेने का नाम हो अहंत्व है? अन्धकों का विश्वास।

## पांचवाँ अध्याय

४४. क्या विमुक्ति और विमुक्ति-ज्ञान दोनों एक ही वस्तु हैं ? अन्धकों की यही मान्यता ।
४५. क्या शेषय (जिसे अभी सीखना चाही है, या जिसने अहंत्व को अवस्था अभी प्राप्त नहीं की है) को अशेषय (अहंत्)-सम्बन्धी ज्ञान भी उपस्थित रहता है ? उत्तरापथकों का विश्वास ।
४६. पृथ्वी-वस्तु के द्वारा ध्यान करने वाले का ज्ञान क्या मिथ्या-ज्ञान ही है ? अन्धकों का विश्वास ।
४७. क्या 'अ-नियत' (चार आयं-मार्गों में जो प्रतिष्ठित नहीं हुआ है) को 'नियाम' (आयं-मार्ग की चार अवस्थाएँ, यथा शोत आपत्ति, सकुदागामी, अनागामी और अहंत्व) सम्बन्धी ज्ञान उपस्थित रहता है ? उत्तरापथकों का ऐसा ही विश्वास ।
४८. क्या सभी ज्ञान प्रतिसम्बिद्धा-ज्ञान हैं ? अन्धकों का विश्वास ।
४९. क्या यह सत्य है कि संवृति-ज्ञान (सम्मुति ज्ञाण-व्यावहारिक ज्ञान जिसके अनुसार हम मनुष्य, वृक्ष आदि जैसी वाते कहते हैं जिनका परमार्थतः कोई अस्तित्व नहीं) का विषय भी सत्य ही है ? अन्धकों का ऐसा ही विश्वास ।
५०. क्या परमित्त-ज्ञान का आधार चेतना ही है ? अन्धकों का ऐसा ही मत ।
५१. क्या सम्पूर्ण भविष्य का ज्ञान सम्भव है ? अन्धकों के अनुसार सम्भव था ।
५२. क्या एक साथ सम्पूर्ण चेतना का ज्ञान सम्भव है ? अन्धकों के अनुसार सम्भव था ।
५३. क्या साधक को दूसरों की मार्ग-प्राप्ति का भी ज्ञान हो सकता है ? अन्धक कहते थे 'हाँ' ।

## छठा अध्याय

५४. क्या चार मार्गों के द्वारा आश्वासन मिल सकता है ? अन्धकों का विश्वास ।
५५. क्या प्रतीत्य समुत्पाद अ-संस्कृत (अ-कृत) और शाश्वत है । पूर्वशोलीय और महीशासक भिन्नबों का ऐसा ही विश्वास था ।
५६. क्या चार आयं-सत्य अ-संस्कृत और शाश्वत है ? पूर्वशोलीय भिन्नबों का यही मत ।

५७. क्या आकाशमन्त्यायतन (आकाश अनन्त है, ऐसे वायतन की मान्यता) अन्सर्कृत है ?
५८. क्या निरोब-समाधि (निरोब-समाधि, जिसमें चित्त को दृष्टियों का पूर्णतः निरोब हो जाता है) अन्सर्कृत है ? अध्यक्षों और उपराष्ट्रपत्रकों की मान्यता ।
५९. क्या आकाश अन्सर्कृत है ? उत्तरापाथक और महीशासुकों की मान्यता ।
- ६०-६१. क्या आकाश, चार महाभूत, पाँच इन्द्रिय और कायिक काम दृश्य है ? अन्धकों की मान्यता ।

### सातवां अध्याय

६२. क्या कुछ वस्तुओं का दूसरी वस्तुओं के साथ वर्गीकरण करता असम्भव है ? राजगृहिक और सिद्धार्थक भिन्नताओं का ऐसा ही मत था ।
६३. क्या ऐसे चेतात्मिक वर्मन नहीं हैं, जो दूसरे चेतात्मिक घमों के साथ संयुक्त हो ? राजगृहिक और सिद्धार्थक भिन्न कहते थे नहीं हैं ।
६४. क्या 'चेतात्मिक' नाम की कोई वस्तु-ही नहीं है ? 'नहीं है' वह भी कहते थे राजगृहिक और सिद्धार्थक भिन्न ही ।
६५. क्या दान देना भी चिन्ता की एक अवस्था का ही नाम है ? राजगृहिक और सिद्धार्थक भिन्नतों का ऐसा ही विश्वास ।
६६. क्या दान-उपभोग के साथ दान का पुण्य भी बहता है ? राजगृहिक, सिद्धार्थक और सम्मतिय भिन्नतों का विश्वास ।
६७. क्या यहाँ दिया हुआ दान अन्यथा (पितरों के डारा) उपभोग किया जा सकता है ? यह प्रश्न बड़ा महत्वपूर्ण या जिस पर बोल्डों को भी उस यूग में सोचना पड़ा । 'प्रत्यक्ष' और 'खड़क-गाठ' के विवेचनों में हम पहले इसका कुछ निर्देश कर लुके हैं । राजगृहिक और सिद्धार्थक भिन्नतों का विश्वास या कि यहाँ दिये हुए भोजन का उपभोग पितर उपने लोक में करते हैं । स्पर्शविवादियों के अनुसार भोजन का साधारू उपभोग तो उनके लिये असम्भव नहीं है, किन्तु यहाँ दिये हुए दान के कारण प्रेतों के मन पर अच्छा प्रभाव अवश्य पड़ता है और वह उनके कल्याण के लिये होता है ।

६८. क्या पृथ्वी भी कर्म-विपाक है ? अन्धकों का विश्वास ।
६९. क्या जरा और मृत्यु कर्म-विपाक है ? अन्धकों का विश्वास ।
७०. क्या चार आदि-मार्गों से संगुत चित्र की अवस्थाएँ कर्म-विपाक पैदा नहीं करती ? अन्धकों का विश्वास ।
७१. क्या एक कर्म-विपाक दूसरे कर्म-विपाक को पैदा करता है ? अन्धकों का ऐसा ही विश्वास ।

### आठवीं अध्याय

७२. क्या जीवन के छह लोक हैं ? अन्धक और उत्तरापयकों की मान्यता । स्थविरचारी केवल पाँच लोक मानते थे, मनुष्य-लोक, पशु-लोक, नरक-लोक, यथा-लोक, और देवलोक । अन्धक और उत्तरापयक एक छठे लोक, असूर-लोक, की भी मानते थे ।
७३. क्या दो जन्मों के बीच में कूछ व्यवहार होता है ? पूर्वजीलीय और सम्मिलित भिन्नओं के अनुसार होता था ।
७४. क्या काम-धातु का अर्थ केवल काम-वासना-सम्बन्धी पाँच विषयों का उपभोग ही है ? पूर्वजीलीय भिन्न मानते थे कि काम-धातु से तात्पर्य केवल पाँच इन्द्रियों (चक्षु-, श्रोत्र, ध्याण, जिह्वा, काष्ठ) सम्बन्धी विषय भीगों से है । स्थविरचारी परम्परा में इसका विस्तृत अर्थ लिया गया है, अर्थात् कामनाओं से प्रवर्तित होने वाला सारा जीवन-लोक, इच्छाओं की दौड़-घण में लगा हुआ सारा जीव-जगत् ।
७५. क्या 'काम' का अर्थ है इन्द्रिय-वेतना का आवार ? पूर्वजीलीय भिन्नों का मत ।
- ७६-७७. क्या रूप-धातु का तात्पर्य है केवल रूप वाले पदार्थ (रूपितो वस्त्रा) ? और व-रूप धातु का अर्थ है केवल अ-रूप वाले पदार्थ ? अन्धकों का मत ।
७८. क्या रूप-लोक का प्राणी ६ इन्द्रियों वाला होता है ? अन्धकों और सम्मिलियों की मान्यता ।
७९. क्या अहान्तोक में भी रूप है ? अन्धकों का विश्वास ।

८०. कुशल चित्त से संयुक्त कार्यिक-कर्म भी क्या कुशल है ? महोदासक और सम्मितियों का मत ।
८१. क्या 'रूप-जीवितेन्द्रिय' (रूप-जीवितिन्द्रिय) जैसी कोई वस्तु नहीं ? 'नहीं' कहते थे पूर्व शैलीय और सम्मितिय भिन्न !
८२. क्या पूर्व के वृत्त कर्म के कारण अहंत् का भी पतन हो सकता है ? पूर्वशैलीय और सम्मितिय भिन्न कहते थे कि यह सम्भव है ।

## नवीं वध्याय

८३. क्या इस संयोजनों से विमुक्ति विना घरों के अनित्य, दुःख और अनात्म स्वरूप को चिन्तन किये भी प्राप्त हो सकती है ? अन्धकों की मिथ्याधारणा ।
८४. क्या निवाण का चिन्तन भी एक मानसिक वस्तु है ? पूर्वशैलीय भिन्नओं का ऐसा ही मत ।
८५. क्या रूप आलम्बन-युक्त है ? उत्तरापथकों का 'आलम्बन' का ठोक अर्थ न जानने के कारण यह भ्रम ।
८६. क्या सात अनुशयों (चित्त-मलों) के मानसिक आधार नहीं होते ? अन्धकों और कुछ उत्तरापथकों का यही मत ।
८७. क्या अन्तर्ज्ञान का भी मानसिक आधार नहीं होता ? अन्धकों का यही मत ।
८८. क्या भूत या भविष्यत् की चेतना का भी कोई मानसिक आधार नहीं होता ? उत्तरापथक भिन्नओं का ऐसा मत ।
८९. क्या प्रत्येक चित्त की अवस्था में चित्तक रहता है ? उत्तरापथक भिन्नओं की यही मान्यता ।
९०. क्या शब्द भी केवल वित्तक का ही बाहरी विस्तार (विप्तार) है । पूर्व-शैलीय भिन्नओं की यही मान्यता ।
९१. क्या बाणी सदा चित्त से सम्बन्धित नहीं है ? 'नहीं है' कहते थे पूर्वशैलीय, क्यों कि भूल में हमारे मुँह से कभी-कभी ऐसी बातें निकल जाती हैं जिन्हें हम कहना नहीं चाहते ।

९२. क्या कार्यिक-कर्म सदा चित्त से सम्बन्धित नहीं है ? पूर्वोत्तरीय भिक्षुओं का उपर्युक्त के समान मत ।

९३. क्या भूत और भविष्यत् की भी प्राप्तियाँ सम्भव हैं ? अन्धक कहते थे 'हाँ' ।

#### दसवाँ अध्याय

९४. क्या पुनर्जन्म को प्राप्त कराने वाले स्तर्ण्यों के निरोध से पूर्व ही पञ्चस्कन्धों की उत्पत्ति हो जाती है ? अन्धकों का ऐसा ही मत ।

९५. क्या आयं अष्टाङ्गिक मार्ग का अभ्यास करते समय व्यक्ति का हप उसमें संनिविष्ट रहता है ? सम्मितिय, महीशासक और महासाधिकों का ऐसा ही विश्वास ।

९६. क्या पांच इन्द्रिय-चेतनाओं (जैसे देखना, सुनना आदि) का उपयोग करते हुए मार्ग की भावना की जा सकती है ? महीशासकों का यही विश्वास ।

९७. क्या पांच प्रकार की इन्द्रिय-चेतनाएँ कुशल हैं ? महीशासकों को मान्यता ।

९८. क्या पांच प्रकार की इन्द्रिय-चेतनाएँ अ-कुशल भी हैं ? उपर्युक्त के समान ही ।

९९. का आयं-अष्टाङ्गिक-मार्ग का अभ्यास करने वाला व्यक्ति दो प्रकार के शील (लौकिक और अलौकिक) का आचरण कर रहा है ? महासाधिकों का यही मत ।

१००. क्या शील कभी-कभी अ-चेतसिक भी होता है ? महासाधिकों का ऐसा ही विश्वास ।

१०१. क्या शील चित्त से सम्बन्धित नहीं है ? ९१, ९२ के समान

१०२. क्या मात्र प्रहण करने से शील का विकास होता है ? महासाधिकों का ऐसा ही विश्वास ।

१०३. क्या केवल शरीर या वाणी से विज्ञप्ति कर देना भी शील है ? महीशासक और सम्मितियों का ऐसा ही मत ।

१०४. क्या नैतिक उद्देश्य की अविज्ञप्ति अकुशल है ? महासाधिकों का यही मत ।

#### यारहवाँ अध्याय

१०५. क्या सात अनुशास अव्याहृत हैं ? महासाधिकों की यह मान्यता थी ।

१०६. क्या ज्ञान से असंयुक्त चित्त की अवस्था में भी किसी को अविदा से विमुक्त

और विद्या से युक्त कहा जा सकता है ? महासांघिक कहते थे, 'कहा जा सकता है' ।

१०७. क्या अन्तर्गति चित्त से अयुक्त भी हो सकता है । पूर्ववैलीय भिक्षु कहते थे कि हो सकता है ।

१०८. क्या दुःख आर्थ-सत्य का ज्ञान मात्र यह कहने से ही जाता है 'यह दुःख है' ? अन्धकों का ऐसा ही विश्वास था ।

१०९. क्या योग की विभूतियों से युक्त मनुष्य कल्प भर तक रह सकता है ? महासांघिक भिक्षु-कहते थे 'हाँ' ।

११०. क्या चित्त-प्रवाह (चित्त-सन्तति) समाचिं में भी रहता है ? सर्वास्तिवादी और उत्तरापथकों का विश्वास ।

१११. क्या पदार्थों का नियमित स्वरूप स्वयं निष्ठन् (निष्ठकर) है ? अन्धकों का विश्वास ।

११२. क्या अनित्यता स्वयं निष्ठन् है, जैसे अनित्य पदार्थ ? यह मत भी अन्धकों का था ।

### बारहवाँ अध्याय

११३. क्या केवल संयम और अ-संयम ही कुण्डल और अकुण्डल कर्मों की उत्पत्ति करने वाले हैं ? महासांघिकों का ऐसा ही विश्वास ।

११४. क्या प्रत्येक कर्म का विपाक अवश्य होता है ? महासांघिकों का ऐसा ही विश्वास था । स्वविरतवादियों के मत के अनुसार अव्याकृत कर्म का विपाक नहीं होता ।

११५-११६. क्या वाणी और शरीर की इन्द्रियों भी पूर्व-जन्म के कर्म के परिणाम स्वरूप है ? महासांघिकों का ऐसा ही विश्वास था ।

११७. क्या वे लोत आपने व्यक्ति जो अधिक मे अधिक सात बार आवागमन में घूमने के बाद निर्वाण प्राप्त करते हैं (सत्तवलतु-परम), उस काल के अन्त हीने पर ही निर्वाण प्राप्त करते हैं ? उत्तरापथकों का ऐसा ही मत ।

११८. क्या वे खोतापन व्यक्ति जो एक कुल से दूसरे कुल में जन्म लेने के बाद (कोलकोल) या सिंके एक ही बार और जन्म लेने के बाद (एकबीजी)

निवाग प्राप्त करते हैं, उस काल के अन्त होने पर ही निवाग प्राप्त करते हैं ? उत्तरापथकों का ही मत ।

११९. क्या सम्बद्ध दृष्टि-सम्पद्ध व्यक्ति जानन्वय कर हस्ता कर सकता है ? पूर्वशीलीय मिथु कहते थे कि ऐसा मनुष्य अभी कोष-मुक्त नहीं हुआ, अतः कोष के आवेदन में उसके लिये ऐसा करना असम्भव नहीं है ।

१२०. क्या सम्बद्ध-दृष्टि-सम्पद्ध व्यक्ति दुर्गतियों से विमुक्त हो जाता है ? उत्तरापथकों का यह मत था । स्थविरवादियों के मतानुसार दुर्गति के दो अर्थ हैं, पशु-पांचि आदि दुर्गतियाँ और इच्छा-आसक्ति आदि दुर्गतियाँ । उपर्युक्त व्यक्ति उनके मतानुसार केवल प्रथम दुर्गति से विमुक्त हो जाता है ।

१२१. क्या श्रोत आपने व्यक्ति अपने सातवें जन्म में दुर्गतियों से विमुक्त हो जाता है ? उपर्युक्त के समान ।

### तेस्हवर्ण अध्याय

१२२. क्या जीवन-काल (कल्प-कर्त्त्व) के लिये दंड भोगेगा ? 'कल्प' का अर्थ न समझने के कारण राज-पुहिक मिथुओं का यह भ्रम था ।

१२३. क्या नरक में यातना पाता हुआ ग्राणी कुशल-चित्त की भावना नहीं कर सकता ? 'नहीं कर सकता' कहते थे उत्तरापथिक । स्थविरवादियों के अनुसार वह डग जवस्था में भी कुछ कुशल कर्म कर सकता है ।

१२४. क्या पितृ-वध आदि दुष्कृतियों को करने वाला भी कभी आगे चल कर शुभ कर्म-पथ पर आ सकता है ? उत्तरापथक कहते थे 'आ सकता है' । स्थविरवादियों के अनुसार वह उसी अवस्था में आ सकता है जब कि विना निश्चय किये हुए और दूसरे की आज्ञानुसार उसने ऐसा किया हो ।

१२५. क्या व्यक्ति का भाग्य उसके लिये पहले से ही निश्चित (नियत) है ? पूर्वशीलीय और लापरशीलीय मिथुओं का ऐसा ही विद्वास था ।

१२६-२७. क्या ५ नीवरणों (चित्त के जावरणों) और १० सयोजनों (चित्त-दन्धनों) को जीतते समय भी व्यक्ति इनसे युक्त हो सकता है ? उत्तरापथक मिथुओं का विवास था कि हो सकता है ।

१२८. क्या ध्यान के अन्दर ध्यान का आस्वाद होता है और ध्यान की इच्छा ही उसका आलम्बन (विषय) है ? अन्धकों का ऐसा ही विश्वास ।

१२९. क्या अनुश्वासकर वस्तु के लिये भी ज्ञातवित हो सकती है ? उत्तरापथकों का ऐसा ही विश्वास ।

१३०. क्या मन के विषयों की नृणा (धर्म-तथा) अव्याहृत है, और

१३१. क्या वह दुःख का कारण नहीं है ? वे दोनों मत पूर्वशीलीय भिन्नताओं के थे ।

### चौदहवां अध्याय

१३२. क्या कुशल-मूल (अ-नोम, अ-देष, अ-मोह) अ-कुशल मूलों (लोभ, देष, मोह) के बाद पैदा होते हैं ? महासांघिकों का मिथ्या विश्वास था ।

१३३. माता के पेट में गर्भ-में आते समय क्या है इन्द्रियों (चक्षु, श्रोत्र, ध्राण, जिह्वा, काय, मन) साथ-साथ ही उत्तम होती है ? पूर्वशीलीय भिन्नताओं का ऐसा ही विश्वास था ।

१३४. क्या एक विज्ञान (चक्षु-विज्ञान आदि) किसी दूसरे विज्ञान के बाद उत्पन्न हो सकता है ? उत्तरापथक भिन्नताओं का ऐसा ही विश्वास था ।

१३५. क्या वाणी और शरीर का पवित्र भौतिक कायं चार महाभूतों से ही नहीं उत्पन्न होता है ? उत्तरापथकों का यही विश्वास था ।

१३६. क्या काम-वासना-सम्बन्धी अनुशय और उसका प्रकाशन दो विभिन्न वस्तुएँ हैं ? अन्धकों का यही विश्वास था ।

१३७. क्या अनुशयों का प्रकाशन चित्त से असंयुक्त (विषयूत) है ? अन्धकों का यही मत था ।

१३८. क्या रूप-राग, श्वर-धारा में ही अन्तर्भूत और सम्मिलित है ? अन्धक और सम्मिलिय भिन्नताओं का यही विश्वास था ।

१३९. क्या मिथ्या मत-बाद अ-व्याहृत है ? अन्धक और सम्मिलिय भिन्नताओं का यही मत था । वे 'अव्याहृत' शब्द के ठीक अर्थ को नहीं समझते थे ।

१४०. क्या मिथ्या मत-बाद, लौकिक शेष से असम्बन्धित, साधकों के लोकोत्तर धोत्र में भी पाये जाते हैं ? पूर्वशीलीय भिन्नताओं का यह मिथ्या विश्वास था ।

## पञ्चहवाँ अध्याय

१४१. क्या 'प्रतीत्य समुत्पाद' का प्रत्येक धर्म (अवस्था) के बल एक ही प्रत्यय का सूचक है ? महासांघिक भिक्षुओं का ऐसा ही मत था ।
१४२. क्या यह कहना गलत है कि 'संस्कारों के प्रत्यय से अविद्या की उत्पत्ति होती है', जैसे कि 'अविद्या के प्रत्यय से संस्कारों की उत्पत्ति होती है ?' महासांघिकों के मतानुसार यह कहना गलत ही था । स्थविरवादियों ने इसे 'सहजात-प्रत्यय' या 'अन्योन्य-प्रत्यय' के आधार पर व्याख्यात किया है और गलत नहीं माना ।
१४३. क्या काल परिनिष्ठन (परिनिष्पक्ष) है ?
१४४. क्या काल के सभी क्षण परिनिष्ठन हैं ?
१४५. क्या आत्मव (काम-आत्मव, भवात्मव, दृष्टि-आत्मव, अविद्यात्मव) दूसरे आत्मों से असंलग्न है ? हेतुवादी भिक्षुओं का यही मत था ।
१४६. क्या लोकोत्तर भिक्षुओं के जरा और मरण भी लोकोत्तर होते हैं ? महासांघिकों का यह मत था । स्थविरवादियों के मतानुसार इनकी भीतिक या मानसिक सत्ता ही नहीं है, अतः न ये लोकिक हैं, न लोकोत्तर ।
१४७. क्या निरोध-समाप्ति (निरोध-समाधि) लोकोत्तर है ? हेतुवादियों का मत ।
१४८. क्या वह लोकिक (लोकिय) है ? पूर्वोत्तर के समान ।
१४९. क्या निरोध-समाधि की अवस्था में मृत्यु भी हो सकती है । राजगृहिक कहते थे कि हो सकती है । स्थविरवादी भिक्षुओं के मतानुसार नहीं हो सकती ।
१५०. क्या निरोध-समाधि के बाद सज्जा-हीन प्राणियों (असञ्जासत्त) के लोक में उत्पत्ति होती है ? हेतुवादियों का यही मिथ्या विश्वास था ।
१५१. क्या कर्म और कर्म-संबंध दो विभिन्न वस्तुएँ हैं ? अन्यक और सम्मिलियों का ऐसा ही विश्वास ।

## सोलहवाँ अध्याय

१५२. क्या कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति के मन को नेतृत्व व्यप से शिक्षित कर सकता है या उसे सहायता पहुँचा सकता है ? महासांघिकों का यह मत था ।

१५४. क्या एक व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति के मन में सुख उत्पन्न कर सकता है ? हेतुवादियों का ऐसा विश्वास था ।

१५५. क्या एक ही समय अनेक वस्तुओं की ओर हम आग दे सकते हैं ? पूर्वशैलीय और अपरशैलीय भिन्नजों के मतानुसार यह सम्भव था ।

१५६-१५७. क्या रूप भी एक हेतु है ? क्या यह हेतुओं से पूछत है ? ये दोनों मत उत्तरापयकों के थे ।

१५८. क्या रूप कुशल या अकुशल हो सकता है ? महीशासक और सम्मतिय भिन्नजों का यह विश्वास था ।

१५९. क्या रूप कर्म-चिपाक है ? अन्वक और सम्मतियों की मान्यता ।

१६०. क्या रूपावचर और अरूपावचर लोकों में भी रूप है ? अन्वकों का ऐसा ही विश्वास था ।

१६१. क्या रूप-राग और अरूप-राग, कमशः रूप-धातु और अरूप-धातु में सम्मिलित हैं ? अन्वकों की यही मान्यता थी ।

### सत्रहवाँ अध्याय

१६२. क्या अहंत् भी पुण्यों का संचय करता है ? अन्वकों की मान्यता ।

१६३. क्या अहंत् की अकाल मृत्यु नहीं हो सकती ? नहीं हो सकती, ऐसा राज-गृहिक और सिद्धार्थक भिन्न भासते थे ।

१६४. क्या हर वस्तु कमों के कारण है ? राजगृहिक और सिद्धार्थक भिन्न ऐसा ही विश्वास रखते थे ।

१६५. क्या दुःख इन्द्रिय-अनुभूतियों तक ही सीमित है ? हेतुवादियों की यह मान्यता थी ।

१६६. क्या आद्य-मार्ग को छोड़कर सभी वस्तुएं और संस्कार, दुःख (हृत) है ? हेतुवादियों का ऐसा ही विश्वास था ।

१६७. क्या यह कहना गलत है कि संघ दान यहण करता है । यह मत वैतुल्यक नामक महाशूलतावादियों का था । संघ की भार आद्य-मार्गों और उनके फलों के रूप में व्याख्या करना इनका मुख्य सिद्धान्त था । इनके सिद्धान्तों में हम महाधात-धर्म के बीज पाते हैं ।

१६८-९१. क्या मह कहना गलत है कि संघ दान को पवित्र करता है; या स्वयं उने ज्ञाता, पीता है, या संघ को दान की हुई वस्तु बड़ा पूज्य पूर्वा करती है, या बृद्ध को दान की हुई वस्तु बड़ा पूज्य पूर्वा करती है ? ये सब सिद्धान्त वैतुल्यक नामक महाशून्यतावादियों के थे। इन्हीं से बाद में महायान-सम्प्रदाय का विकास हुआ ।<sup>१</sup>

१७२. क्या दान देने वाले के द्वारा ही पवित्र मिया जाता है, अहण करने वाले के द्वारा नहीं ? उत्तरापथकों का यही विवाद था ।

### अठारहवाँ अध्याय

१७३-७४. क्या यह कहना गलत है कि बृद्ध मनुष्यों के लोक में रहे ? क्या यह भी गलत है कि उन्होंने उपदेश दिया ? 'ही गलत ही है' ऐसा वैतुल्यक (वैपुल्यक) कहते थे। बाद में चल कर महायान-बमं ने भी यही कहा "भगवान् तत्त्वागत मौन है। भगवान् बृद्ध ने कभी किसी को कुछ नहीं सिखाया" (मीना: हि भगवन्तस्तथागतः न मोनेस्तथागतं भास्तिम्)

इस सब के बीज हम यहीं पाते हैं ।

१७५. क्या बृद्ध को करणा उत्पन्न नहीं हुई ? 'नहीं हुई', कहते थे उत्तरापथक, क्योंकि करणा को भी वे आसक्ति का ही रूप मानते थे ।

१७६. क्या यह सत्य है कि भगवान् बृद्ध के मल में से भी अद्वितीय सुगन्ध आती थी ? अन्यक और उत्तरापथकों का यही भत था ।

1. मिलाइये, ज्ञानातिलोक "According to my opinion वैतुल्य is a distortion of वैपुल्य and the वैपुल्य sutras of the Mahayana refer to the above-mentioned heretics (Vetulyakas known as महाशून्यतावादिनः) whose ideas, too, appear to be perfectly Mahayanistic." गाइट शुद्धि अभिधम्म-पिटक, पृष्ठ ६०; राहुल सांख्यत्यागन : "वैपुल्य ही वह नाम है जिससे महायान बारात्मक काल में प्रसिद्ध हुआ" पुरातत्व निबन्ध-बली, पृष्ठ १३१। 'शून्यता' (सुज्ञता) के विचार का निर्वेश संयुक्त-निकाय के ओपम्म-बग्म में तबा अंगूतर-निकाय के जनागतमय-सूत्रों (चतुर्क और पंचक निपात) में हुआ है। इस विषय सम्बन्धी अधिक निरूपण के लिए देखिये श्रीमती रायस डेविड्स : ए बुद्धिस्त मेनूभल ऑब साइकोलोजीकल एचिक्स (धम्मसंगण का अनुवाद) पृष्ठ ४२ (मूर्मिका)

१३७. क्या केवल एक आयं-मार्ग के अभ्यास से चारों आयं-मार्गों (स्रोताणि आदि) के फलों को प्राप्त किया जा सकता है ?
१३८. क्या एक ध्यान के ठीक बाद दूसरे ध्यान में साधक प्रवेश कर जाता है ? महीशासकों का ऐसा ही विश्वास था ।
१३९. ध्यानों के पञ्चविधि विभाजन में जिसे द्वितीय ध्यान कहा जाता है वह क्या केवल प्रथम और द्वितीय ध्यान के बीच की अवस्था है ? सम्मिलित और कुछ अन्यकों का ऐसा ही विश्वास था ।
१४०. क्या साधक ध्यान में शब्दों को सुन सकता है ? पूर्वशीलीय भिक्षुओं की यही मान्यता थी ?
१४१. क्या दृश्य पदार्थ आदि से ही देखे जाते हैं ? महासाधिकों के मतानुसार (प्रसाद-पञ्चस्तु) जो केवल भौतिक विकार है, देखती है। स्वविरचादियों के मतानुसार वह केवल देखने का आधार या आवश्यक है और है जो देखता है वह तो वास्तव में बझू-विज्ञान है ।
१४२. क्या हम भूत, वर्तमान और भविष्यत् के मानसिक क्लेशों पर विजय प्राप्त कर सकते हैं ? उत्तरापवकों के अनुसार कर सकते हैं ।
१४३. क्या शून्यता संस्कार-नक्षत्र में सम्मिलित है ? अन्यकों के अनुसार सम्मिलित है ।
१४४. क्या मार्ग-फल अ-संस्कृत है ? पूर्वशीलीय भिक्षुओं का मत ।
१४५. क्या किसी वस्तु की प्राप्ति स्वयं अ-संस्कृत है ? पूर्वशीलीय भिक्षुओं का मत ।
१४६. क्या 'तथता' (वस्तुओं का निश्चित स्वरूप) अ-संस्कृत है ? उत्तरापवकों में से कुछ का यह विश्वास था । बाद में उल कर अश्वघोष के 'भूततयता' के सिद्धान्त का यही बीज पाया जाता है । यह सिद्धान्त उपनिषदों के घृ आन्मवाद के अधिक समीप पहुँच जाता है ।
१४७. क्या निर्वाण-आतु कुशल है ? अन्यकों का मत । कुशल को सामान्यतः 'निर्दोष' या 'पवित्र' मानकर वे निर्वाण को भी 'कुशल' कहते थे ।
१४८. क्या नायारिक मनुष्य (पृथग्जन) में भी अत्यन्त नियमवत्ता (अच्छन्त-नियामता) हो सकती है ? उत्तरापवकों में से कुछ के मतानुसार हो सकती थी ।
१४९. क्या ऐसी अद्वेन्द्रिय आदि इन्द्रियों नहीं हैं जो लीकिक हों और जिन्हे

साधारण आदमी (पृथग्जन) भी प्राप्त कर सके ? नहीं है, ऐसा महीशासुक और हेतुवादी भिक्षु कहते थे ।

### बोक्सवाँ अध्याय

१९०. क्या विना जान-बूझ कर किये हुए पितृ-वध आदि अपराधों के कारण भी नरक में जन्म लेना पड़ता है ? उत्तरापथक ऐसा मानते थे ।
१९१. क्या साधारण सांसारिक मनुष्य (पृथग्जन) को सम्यक् ज्ञान नहीं हो सकता ? नहीं हो सकता, कहते थे हेतुवादी ।
१९२. क्या नरक में फौसी लगाने वाले या चौकीदार नहीं हैं । 'नहीं है' कहते थे अन्धक ।
१९३. क्या देवताओं के पशु भी होते हैं ? अन्धकों के अनुसार होते थे ।
१९४. क्या आद्यं अष्टागिक मार्ग वास्तव में पौन अंगों वाला ही है ? महीशासुक ऐसा ही मानते थे । सम्यक् वाणी, सम्यक् कर्मान्ति और सम्यक् जाजीव को वे मानसिक दण्ड न मान कर उनका अन्तर्भूत केवल सम्यक् व्यायाम में कर देते थे ।
१९५. क्या चतुरार्थ सत्य-सम्बन्धी १२ प्रकार के ज्ञान लोकोत्तर हैं ? पूर्वशीलीय भिक्षु उन्हें ऐसा ही मानते थे ।

### इक्कीसवाँ अध्याय

१९६. क्या बृद्ध-उपदेशों में कोई संस्कार किया गया है ? क्या उनमें फिर संस्कार किया जा सकता है ? इन दोनों बातों की सम्भावना उत्तरापथक भिक्षु मानते थे । स्थविरवादिगों ने दोनों बातों का विरोध किया है । बृद्ध की विज्ञानों का संस्कार या सुधार सम्भव नहीं है ।
१९७. क्या सांसारिक मनुष्य की पहुँच एक ही व्यक्ति में काम-लोक, धर्म-लोक और ब्रह्म-लोक की वस्तुओं में हो सकती है ? हो सकती है, ऐसा कुछ विरोधी सम्प्रदाय के लोग मानते थे, किन्तु उनके नाम का निदेश अट्ठकथा में नहीं किया गया है ।
१९८. क्या विना कुछ संयोजनों का विनाश किए भी अहंत्व प्राप्ति हो सकती है ? महाराधिकों का ऐसा ही विश्वास था ।
१९९. क्या बृद्ध और उनके कुछ शिष्यों को प्रत्येक वस्तु के सम्बन्धमें योग की शक्तियाँ प्राप्त हुई रहती हैं । अन्धकों का विश्वास ।

२००. क्या चिभित्र दुर्दो में भी कुछ श्रेणी का तारतम्य है ? अन्धक सम्प्रदाय के कुछ भिन्नओं का ऐसा ही मत था ।

२०१. क्या समार के चारों भागों में दुर्दो का निवास है । महासाधिकों का यह विश्वास था। बाद के महायानी संघ 'मुखानती व्यूह' में इसी विश्वास का प्रतिपादन किया गया है। 'मुखानती व्यूह' में प्रत्येक भाग में रहने वाले दुर्द का नाम भी दिया हुआ है, जैसे पच्छाती भाग में भगवान् अमिताय चूड रहते हैं, पूर्वी भाग में अमितायु आदि। महासाधिकों को अभी इसका पता नहीं है ।

२०२.-३. क्या सभी वस्तुएँ और कर्म नियत हैं ? अन्धक और कुछ उत्तरापयक भिन्नओं का ऐसा ही विश्वास था ।

### बाईसवाँ अध्याय

२०४. क्या विना कुछ संयोजनों का विनाश किए भी निवाणी की प्राप्ति हो सकती है । अन्धकों का विश्वास था कि ही सकती है। यह मत १९८ के प्रायः समान ही है ।

२०५. क्या अहंत के शरीर त्याग करते समय उसका चित्त 'कुशल' रहता है । अन्धकों का यह भ्रमात्मक कथन था। 'कुशल' के दार्शनिक अर्थ को वे ठोक-ठोक न समझते थे ।

२०६. क्या निश्चल (आनेक) ज्याति की अवस्था में भी दुर्द या किसी अहंत की मृत्यु हो सकती है ? उत्तरापयक सम्प्रदाय के कुछ भिन्नों की यही मिथ्या धारणा थी ।

२०७.-८. क्या गर्भ की अवस्था में या स्वप्न की अवस्था में सत्य का अन्तर्गत (धर्माभिसमय) या अहंत की प्राप्ति सम्भव है ? उत्तरापयक भिन्न इसकी सम्भावना मानते थे ।

२०९. क्या स्वप्न की अवस्था में चित्त 'अव्याहृत' रहता है ? उत्तरापयक सम्प्रदाय के कुछ भिन्नों की ऐसी ही मान्यता थी। स्वविरचादियों के मतानुसार, कुशल और अकुशल अवस्थाएँ भी उत्पन्न हो सकती हैं ।

२१०. क्या शुभ और अशुभ मात्रसिक अवस्थाओं की पुनरावृत्ति सम्भव नहीं है ? ऐसी मान्यता उत्तरापयक भिन्नों की थी ।

२११. क्या सभी पदार्थ (धर्म) एक भण तक ही रहते हैं ? ऐसी मान्यता पूर्वीयों  
और अपरदीलीय भिन्नओं की थी ।
२१२. क्या (पुरुष और स्त्री के) समूकत विचार के साथ मैथुन-सम्बन्ध म्यापित  
किया जा सकता है ? यह बात बेतुल्यकों ने उठाई है, किन्तु उन्होंने यह  
नहीं कहा कि उनका तात्पर्य भिन्नओं से है या गृहस्थों से । स्वविरचादियों  
ने इसका कहा प्रतिवाद किया है ।
२१३. क्या ऐसे अ-मानवी जीव हैं जो भिन्नओं का रूप घारण कर मैथुन  
सेवन करते हैं ? उत्तरापथक सम्प्रदाय के कुछ भिन्नओं की ऐसी  
मान्यता थी ।
२१४. क्या बृद्ध ने अपनी शक्ति और इच्छा से ही बोधिसत्त्व होते समय पश्च आदि  
योगियों में प्रवेश किया, कहीं तपस्याएँ की और एक दूसरे उपदेशक के लिए  
तपस्या की ? अन्यकों की यह मान्यता थी ।
२१५. क्या ऐसी वस्तु है जो स्वयं काम नहीं, किन्तु कामके समान है । (दया,  
महानुभूति, आदि) । इसी प्रकार पृणा नहीं, किन्तु पृणा के समान है  
(ईर्ष्या, मात्स्य) आदि । अन्यकों की ये मान्यताएँ थीं ।
२१६. क्या यह कहना ठीक है कि पञ्च-स्कन्ध, १२ आषतन, १८ धातु और  
२२ इन्द्रियों, 'असंख्य' हैं और केवल दुसरे 'संख्य' या परिनिष्पत्ति  
(परिनिष्पत्ति) है ? उत्तरापथक और हेतुवादी भिन्नओं की ऐसी ही  
मान्यता थी ।

अपर हम कथावल्यु में निराकृत २१६ मतवादों का संक्षिप्त विवरण दें चुके हैं । इनमें से बहुत कुछ अन्य महस्त्र के हैं, परन्तु अधिकांश मतवाद वडे महस्त्र के हैं । उनसे बोढ़ धर्म के उत्तरकालीन विकास पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है । वास्तव में इसी दृष्टि से उन्हे ऊपर उद्भूत भी किया गया है । कथावल्यु की अद्विक्षा ने जिन सम्प्रदायों के साथ उपर्युक्त मतवादों में से प्रत्येक को संलग्न किया है (कुछ को विना संलग्न किए भी लोड दिया है जैसे २५, ३०, ३१,  
३८, १४३, १४४, १७७, और १९७) । उनकी दृष्टि से मतवादों का संकलन करने पर निम्नलिखित सूची बनेगी, जो बोढ़ धर्मके ऐतिहासिक विकास के विद्यार्थीके लिए बड़ी आवश्यक हो सकती है—

ब्रजियपुस्तक	१, २
महिमासक	२१, ५५, ५९, ८०, ९५, १०३, १५८, १७८, १८९, १९४ (महीमासक)
महासंधिक	१५-१००, १०२, १०४-६, १०३, ११३-१६, १३२, १४२, १४२, १४३, १५२, १५३, १८१, १९८, २०१
गोकुलिक	१८
सम्बलितवादी	२, ६, ७, ११, ११० (सर्वान्वितवादी)
सम्मितिय	१-५, १९, २६, २८, २९, ६६, ७३-७८, ८०-८२, ९५, १०३, १३८, १३९, १५१, १५८, १५९, १६१
भद्रयानिक	१९
कस्सपिक	८ (कादयापिक)
हेतुवादी	१४५, १४६-८८, १५०, १५४, १६५-६६, १८७, १९१, २१६
उत्तरापथक	२४-२७, ३१, ४०, ४५, ४७, ५८, ५९, ७२, ८५, ८६, ८८, ८९, ११०, ११५-१८, १२०, १२३-२४, १२६-२७, १३१, १३४-३५, १५०-१७, १६२, १७५-३६, १८२, १८६, १८८, १९०, १९६, २०२-३, २०६-९, २१०-१६
अन्वक	१, १०, १३, १९-२४, २६, २८, २९, ३२, ३३, ४३-५५, ५६, ५८-५९, ५८, ६०, ६१, ६८-७२, ७६-७९, ८३, ८६, ८७, ९३, ९४, १०८, १११-१२, १२८, १३६-३७, १५१, १६१-६२, १७६-७७, १७९, १८३, १८७, १९२-९३, १९९, २००, २०४-५, २१७, २१४, २१६
पुरवसेलिय	११-१६, ५५, ५६, ७३-७५, ८१, ८२, ८४, ९०-९२, १०७, ११७, १२५, १३०, १३१, १३३, १४०, १४४, १५०, १८४, (पुरवसेलीय) १८५, १९५, २११
अपरसेलिय	११, १२५, १३५, २११ (अपरवसेलीय)
राजगिरिक	६२-६५, ६७, १२२, १४९, १६३-६४

सिद्धांशिक (सिद्धांशिक) ६२-६७, १६३-१६४

वेतुल्पक १७३-७५, २१२

महागृन्थतावादो १६३-७५<sup>१</sup>

वेतुल्पक

उपर के विवरण से स्पष्ट है कि बौद्ध धर्म के ग्रांथिक विकास को समझते के लिए 'कथावत्यु' की सभीकार्यों का कितना अधिक महत्व है। किन्तु ये सभीकार्ये केवल एक सम्प्रदाय (स्थविरवाद) की है, यह भी हमें नहीं मूलना चाहिए। जिस प्रकार 'कथावत्यु' में स्थविरवादी दूषिकोण से अन्य विरोधी सिद्धांश्टों का खंडन किया गया है, उसी प्रकार अन्य सम्प्रदायों की परम्परा में शेष सम्प्रदायों (जिनमें स्थविरवादी भी सम्मिलित हैं) का खंडन किया गया है। उदाहरणातः बसुमित्र के 'अष्टावश-निकाय घास्त्र'<sup>२</sup> में सर्वास्तिवादी दूषिकोण से शेष १७ सम्प्रदायों का खंडन किया गया है। इसी प्रकार तिब्बती और चीनी अनुवादों में कुछ अन्य सम्प्रदायों की दूषियों से भी खंडन-मंडन मिलते हैं।<sup>३</sup> चूंकि हमारे विषय से ये सौंपे सम्बन्धित नहीं हैं, अतः इसके तुलनात्मक अध्ययन में पड़ना हमारे लिए अप्रासाधिक होगा। 'कथावत्यु' की दूषिट से इतना कह देना ही आवश्यक जान पड़ता है कि अन्य बौद्ध सम्प्रदायों की परम्पराओं में प्राप्त सिद्धांश्टों के विवरणों से उनके विवरणों की विभिन्नता नहीं है। केवल समालोचना-दूषिट का भेद अवश्य है, जो सम्प्रदाय-विभेद के कारण आवश्यक हो गया है। अहीं तक आपेक्षिक ग्रामाण्य का सवाल है निश्चय ही 'कथावत्यु' का परम्परा प्राचीन है और उसी का अनुवर्तन चाद में 'दीपवंस' और 'महावंस' में भी मिलता है। बसुमित्र और भव्य के वर्णन अपेक्षाकृत अर्वाचीन हैं। सरकृत बौद्ध धर्म की परम्परा का उसके मूल स्रोत से कई बार ऐतिहासिक उल्ट-मुल्टों के कारण विच्छेद भी हो

१. जानतिलोक : गाइड अ० दि अभियम्म-पिटक, पृष्ठ ३८

२. इस ग्रन्थ का मूल संस्कृत उपलब्ध नहीं है। केवल चीनी अनुवाद मिलता है, जिसका अपेक्षी अनुवाद जापानी विहान् प्रो० मसूदा ने किया है। बसुमित्र द्वारा दिये गये कुछ सम्प्रदायों के परिचय हें लिये देखिये दूषिकोण स्टडीज, पृष्ठ ८२८-३१।

३. देखिये जन्तु औंव रायल एशियाटिक सोसायटी, १९१०, पृष्ठ ४१३

चुका है। अतः पालि वर्णन ही अधिक प्रामाणिक और समाधयणीय है। अतः 'कथावस्थ' के नामा सम्प्रदायों के सिद्धान्त-विवरण प्रामाणिक माने जा सकते हैं और बोल्ड घर्म के एतिहासिक विकास के प्रारम्भिक स्वरूप को समझने के लिए आज भी उसका पर्याप्त महत्व है, इसमें सन्देह नहीं।

### यमक'

'यमक' का शास्त्रिक अर्थ है जोड़ा या जुड़वाँ पदार्थ। 'यमक पक्करण' में प्रश्नों को जोड़ों के रूप में रखकरा गया है, यथा (१) क्या सभी कुशल-धर्म कुशल-मूल हैं? क्या सभी कुशल-मूल कुशल-धर्म हैं? (२) क्या सभी रूप रूप-स्कन्ध हैं? क्या सभी रूप-स्कन्ध रूप हैं? (३) क्या सभी अ-रूप अ-रूप-स्कन्ध हैं? क्या सभी अ-रूप-स्कन्ध अ-रूप हैं? आदि, आदि। प्रश्नों के अनुकूल और विपरीत व्याख्यों का यह जोड़ा बनाना इस ग्रन्थ में आदि से अल्प तक देखा जाता है। इसीलिए इसका नाम 'यमक' पड़ा है। 'यमक' का मूल्य विषय है अभिधर्म में प्रयुक्त शब्दावली की निश्चित व्याख्या। अतः उसका अभिधर्म-दर्शन के लिए वही महत्व और उपयोग है, जो एक निश्चित पारिभाषिक-शब्द-कोश का किसी पूर्ण दर्शन-प्रणाली के लिए। उसकी बहुत कुछ शुक्रता का भी यही कारण है। 'यमक' इस अध्यायों में विभक्त है, जिनमें निर्दिष्ट विषयों के साथ धर्मों के संबंधों को दिखाना ही उसका लक्ष्य है? अध्यायों के विषय उनके नामों से ही स्पष्ट हो जाते हैं, यथा

- (१) मूल-यमक—कुशल, अकुशल और अव्याहृत, ये तीन 'मूल' धर्म या पदार्थ।
- (२) स्वन्ध-यमक—पञ्च-स्कन्ध।
- (३) आयतन-यमक—१८ आयतन।
- (४) धातु-यमक—१८ धातुएँ।
- (५) सच्च-यमक—४ सत्य।
- (६) संखार-यमक—संखार, कार्यिक, वाचिक और मालासिक।
- (७) अनुसंध-यमक—३ अनुशय (वित के अन्दर सुपृष्ठ बुराइयाँ)।

१. श्रीमती रायस डेविड्स एवं अन्य तीन सहायक सम्पादकों द्वारा रोमन लिपि में सम्पादित एवं पालि टैक्सट सोसायटी (लन्दन, १९११ एवं १९१३) द्वारा दो जिल्डों में प्रकाशित।

- (८) नित्य-यमक—नित्य-संबंधी प्रश्नोत्तर ।  
 (९) धर्म-यमक—धर्मो संबंधी प्रश्नोत्तर ।  
 (१०) इन्द्रिय-यमक—२२ इन्द्रियों ।

प्रत्येक अध्याय को विषय-प्रतिपादन शैली भाष्यः समान है । प्रायः प्रत्येक अध्याय तीन भागों में विभक्त है (१) पञ्चात्ति-वार (शब्द-प्रज्ञापन-विभाग) (२) पवत्ति-वार (प्रतिया-विभाग) और (३) परिज्ञान-विभाग । प्रथम भाग के भी दो उपविभाग हैं (अ) 'उद्देस-वार (प्रश्न-कथन) और निदेस-वार (व्याख्या-स्थष्टि) । 'उद्देसवार' में प्रश्नों का कथन जोड़े के रूप में किया गया है, यथा क्या सभी रूप को रूप-स्कन्ध कहा जा सकता है ? क्या सभी रूप-स्कन्ध को रूप कहा जा सकता है ? आदि । 'निदेस-वार' में इसकी व्याख्या की गई है । द्वितीय मुख्य भाग 'पवत्ति-वार' के तीन भाग है, यथा (अ) उप्पाद-वार (उपत्ति-विभाग) (अ) निरोध-वार (विनाश-विभाग) और उप्पाद-निरोध-वार (उत्पत्ति और विनाश संबंधी विभाग) 'उप्पाद-विभाग' में यह विलाया गया है कि भिन्न भिन्न धर्मों की किस प्रकार उत्पत्ति होती है ? प्रश्नों का डग तो वही जुड़वाँ नमूने का है, यथा 'क्या वेदना-स्कन्ध उसको भी उत्पन्न होता है जिसको रूप-स्कन्ध उत्पन्न होता है ? क्या रूप-स्कन्ध उसको भी उत्पन्न होता है जिसको वेदना-स्कन्ध उत्पन्न होता है ?' 'क्या वेदना-स्कन्ध उस जीवन-भूमि में भी उत्पन्न होता है जिसमें रूप-स्कन्ध उत्पन्न होता है ? क्या रूप-स्कन्ध उस जीवन-भूमि में भी उत्पन्न होता है जिसके अन्दर रूप-स्कन्ध का निरोध हो जाता है ?' 'क्या वेदना-स्कन्ध उस जीवन-भूमि में भी उत्पन्न होता है जिसके अन्दर वेदना-स्कन्ध उत्पन्न होता है ?' 'क्या रूप-स्कन्ध का निरोध हो जाता है ?' आदि, आदि । 'निरोध-वार' में इसी प्रकार धर्मों के विनाश या अस्तंगमन संबंधी प्रश्न किये गये हैं, यथा 'क्या वेदना-स्कन्ध का भी उसके अन्दर निरोध हो जाता है जिसके अन्दर रूप-स्कन्ध का निरोध हो जाता है ?' 'क्या रूप-स्कन्ध का भी उसके अन्दर निरोध हो जाता है जिसके अन्दर वेदना-स्कन्ध का निरोध हो जाता है ?' 'क्या वेदना-स्कन्ध उस जीवन-भूमि में भी निरुद्ध हो जाता है जिस जीवन-भूमि में रूप-स्कन्ध निरुद्ध हो जाता है ?' 'क्या रूप-स्कन्ध उस जीवन-भूमि में भी निरुद्ध हो जाता है जिस जीवन-भूमि में वेदना-स्कन्ध निरुद्ध हो जाता है ?' आदि, आदि । 'उप्पाद-निरोध-वार' में इस त्रय को उल्टा कर दिया गया है । उसके प्रश्न इस प्रकार के हैं—'क्या वेदना-स्कन्ध उसके अन्दर निरुद्ध हो जाता है, जिसके अन्दर रूप-स्कन्ध उत्पन्न होता है ? क्या रूप-स्कन्ध उसके अन्दर निरुद्ध हो जाता है, जिसके अन्दर वेदना-स्कन्ध उत्पन्न होता है ?' 'क्या वेदना-स्कन्ध उस जीवन-

भूमि में निरुद्ध हो जाता है जिस भूमि में रूप-स्कन्ध पंदा होता है ? क्या रूप-स्कन्ध उस जीवन-भूमि में निरुद्ध हो जाता है, जिस जीवन भूमि में वेदना-स्कन्ध उत्पन्न होता है ?" आदि, आदि । तृतीय मुख्य भाग 'परिच्छा-वार (अन्तज्ञान-भाग) में प्रश्नोत्तर के रूप में यह विख्याने की चेष्टा को शब्द है कि धर्मों का अन्तज्ञान जिस प्रकार पंदा होता है । इसके प्रश्न इस प्रकार है — 'क्या जिसने रूप-स्कन्ध का ज्ञान प्राप्त कर लिया है, उसे वेदना-स्कन्ध का भी ज्ञान प्राप्त हो जाता है ? क्या जिसने वेदना-स्कन्ध का ज्ञान प्राप्त कर लिया है, उसे रूप-स्कन्ध का भी ज्ञान प्राप्त हो जाता है ?' आदि, आदि ।

इससे अधिक 'यमक' की विद्यायों में भ्रमण करना "सूखी हड्डियों की घाटी" में भ्रमण करना ही होगा, जैसा श्रीमती रायस डेविड्स ने उसे कहा है<sup>१</sup> । बास्तव में यह किसी भी अधिकारिक शब्द-कोश के लिए कहा जा सकता है । 'यमक' भी अभिधर्म वा शब्द-कोश ही है । अतः उसका सुखापन भी अभिधर्म के विद्यायियों के लिए एक सतत उपयोग और महत्व की बस्तु है ।

पट्ठान<sup>२</sup>

अभिधर्म-दर्शन धर्मों (पदार्थ-अवस्थाओं) का एक परिपूर्ण दर्शन है । धर्म-संगणि में धर्मों का विश्लेषण, विभेद में उनका वर्णकरण, धातुकथा में उस वर्गीकरण के कुछ विधियों पर अधिक प्रकाश, पुगलपञ्चांति में इस धर्म-दर्शन की पृष्ठ-भूमि में व्यक्तियों के प्रकारों का निह्यण, कथावल्यु में अभिधर्म-दर्शन संबंधी मिथ्या

१. इस प्रथ्य को विलक्ष छोलो और दुरुह विषय-वस्तु के कारण श्रीमती रायस डेविड्स जैसी महाप्राज्ञा एवं अभिधर्म-दर्शन की मननशोरील अध्येत्री को भी उनके विप्रितपत्तियों में पढ़ जाना पड़ा । उनको कठिनाइयों और सन्देहों का निवारण प्रसिद्ध वर्षी बोडु विहान् स्पष्टिर लेदि सदाव ने किया था । लेदि सदाव के विचार एक पालि निबन्ध के रूप में 'यमक' के पालि टैक्सू तोसायटी हारा प्रकाशित संस्करण के परिशिष्ट में निहित हैं । ऐतिहासिक गोरव को प्राप्त यह निबन्ध पालि-साहित्य के विद्यायियों द्वारा द्रष्टव्य है ।

२. श्रीमती रायस डेविड्स ने इस प्रथ का अंशतः सम्पादन पालि टैक्सू तोसायटी के लिए किया है । दुक-पट्ठान, भाग प्रथम (१९०६) एवं तिक-पट्ठान, भाग १-३ (१९२१-२३) । इस प्रथ के बरमी, तिहली एवं स्पामी संस्करण उपलब्ध हैं । हिली में न अनुवाद है, न मूल संस्करण ।

धारणाओं के निरसन के द्वारा उसके विमल, मौलिक स्वरूप का प्रकाशन, यमक में अभिधम्म-गृहीत पारिभाषिक शब्दावली की सदा के लिए अम निवारण करने वाली निश्चित व्याख्या, अभिधम्म-दर्शन का इतना विकास जिसी हम उनके छह ग्रन्थों में देख चुके हैं। सातवें ग्रन्थ (पट्टान) में अब हम अभिधम्म-दर्शन की एक सबसे अधिक महत्वपूर्ण भूमि पर आते हैं। यही वह भूमि है जहाँ से वह नित्य, धूत पदार्थ के गवेषक अन्य भारतीय दर्शनों का साथ छोड़ देता है। कम से कम उनकी सी गवेषणा में तो वह प्रवृत्त नहीं होता। निरस्तर परिणामी 'धर्मो' का विश्लेषण करने के बाद उनकी तह में किसी अ-परिणामी 'धर्मो' को भी क्या अभिधम्म ने देखा है? ऐसी जिज्ञासा हम अमरता के लालची अवश्य करेंगे। किन्तु लालच (तृष्णा) को अबकाश तथागत ने कब दिया, फिर जाहे वह अमरता का ही क्यों न हो? हमारा प्रश्न ही गलत है, ऐसा ही उत्तर यहाँ तो हम पायेंगे। अतः बुद्ध-अनुगामी स्थविरों ने भी धर्मों या पदार्थों की अवस्थाओं का ही अध्ययन किया है, प्रवाहों और पठनाओं (जिनमें ही संपूर्ण नाम (विज्ञान-तत्त्व) और रूप (भौतिक-तत्त्व) संनिहित हैं, के अनित्य, दुःख और अनात्म स्वरूप पर ही जोर दिया है। उनमें अन्तर्हित किसी कूटस्थ, नित्य, धूत पदार्थ की अस्तित्व की सिद्धि पर उन्होंने जोर नहीं दिया। क्यों? क्योंकि उनके शास्त्र के शब्दों में "यह न बहुचर्य के लिए उपयोगी है और न निर्वेद, धान्ति, परमज्ञान और निर्वाण के लिए ही आवश्यक है।" इस उद्देश्य को समझ लें तो पालि बुद्ध-दर्शन ने अपनी जिज्ञासाओं की जो मर्यादा बोधिली है, उसको हृदयगम करना आसान हो जाता है। फिर भी अनात्मवादी बुद्ध-मत भौतिकतावादी नहीं है।

जहाँ तक दार्शनिक परिस्थिति की पूर्णता का सबाल है, उसके लिए भी तथागत ने पर्याप्त अबकाश और आश्वासन दिया है। जिसे उन्होंने 'अनला' (ब्रनात्मा) के रूप में निरिद्ध किया है, उसे ही उन्होंने 'निव्वाण' (निवरण) के रूप में प्रतिष्ठित किया है। सभी भौतिक और मानसिक अवस्थाएं, अनित्य, दुःख और अनात्म हैं, सापेक्ष हैं, कार्य और कारण की प्रृथक्कला से बढ़ जाते हैं। किन्तु निवरण असंस्कृता धारा है। वह कार्य-कारण भाव से बढ़ नहीं है। वह उससे ऊपर है। अनपेक्ष है, परमार्थ है। किन्तु दुःख-निवृत्ति की साधना तो भव-प्रवाह में ही करनी है, जो हार्य-कारणभाव से संचालित है। अतः उसी की गवेषणा प्रधान रूप से करनी इष्ट है। भगवान् बुद्ध ने समय मानसिक और भौतिक जगत् में यदि किसी

नियमक को नहीं तो नियम को तो अवश्य ही देखा है, यदि किसी ऋत-धारी वरण को नहीं तो स्वयं ऋत को तो अवश्य देखा ही है। प्रसरण से भी महसूलप्राप्ति को प्राप्त करने वाले प्राप्ति को लेकर नौहारिकाओं तक और दृश्य इन्द्रिय-व्यापारों से लेकर सूक्ष्म अन्तर्श्वेतना की गहरी अनुभूतियों तक, इस सारे संसार-वक्त को तथागत ने नियम और ऋत से बंधा हुआ अवश्य देखा है। भगवान् को इस सत्य का ज्ञान सम्बन्ध-नाम्बोधि-प्राप्ति के समय ही हुआ था, इसके लिए विपिटक में प्रभूत प्रमाण है।<sup>२</sup> क्या है वह ऋत, क्या है वह नियम, जिसका ज्ञान भगवान् बुद्ध ने सम्बन्ध-नाम्बोधि प्राप्ति करने के समय ही किया? यही है वह मम्भीर<sup>३</sup> प्रतीत्य सम्मताद (पटित्व सम्पूर्णाद) अथवा प्रत्ययों से उत्पत्ति का नियम। यह कोई कोरा दार्शनिक सिद्धांत नहीं है, बल्कि यह है सम्यक् सम्बूद्ध की प्रत्यक्षतम अनुभूति। यदि वह कोरा दार्शनिक सिद्धांत होता तो तथागत के लिए इसका उपयोग करना ही अनावश्यक होता। उस हालत में तथागत भी अकलात्, अरहत्, शक्त या नागार्जुन की समकोटि के ही दार्शनिक होते। वे 'करणा के देव' किस प्रकार होते, जिस रूप में मानवता को उनका एकमात्र सहारा मिला है? बास्तव में प्रतीत्य सम्मताद भगवान् की करणा का ही ज्ञानस्य परिणाम है। भगवान् ने अवेष जीव-जगत् को हुख की चक्की में पिसते देखा। जहाँ बुद्ध-नेत्रों से देखा, अविल लोक में जरा, मरण, शोक, रोग-पीटना, हुख, दीमनस्य और उपायासों का ही अखंड साम्राज्य देखा। जिजाता है यह किसके कारण? सूख कारण अनेक थे जिन्हें साधारण आदमी आज भी देखते हैं और कुछ उन्हीं पर अविक जोर भी देते हैं। किन्तु बुद्ध-नेत्रों से देखा गया कि जन्म ही इन हुखों का मूल कारण है। जन्म का कारण क्या? भव। भव का कारण क्या? उपादान। उपादान का कारण क्या? तृष्णा ! तृष्णा का कारण क्या? वेदना ! वेदना का कारण क्या? स्पर्श ! स्पर्श का कारण क्या? वडायतन ! वडायतन का कारण क्या? नाम-स्वयं। नाम-स्वयं का कारण क्या? विज्ञान। विज्ञान का कारण क्या? संस्कार। संस्कार का कारण क्या? अविद्या। 'भिजुओ! अविद्या और तृष्णा से संचालित, भटकते-फिरते प्राणियों के जारीमें

२. वेदिये विज्ञेयतः विनय-पिटक—महावग्ग १, उदान, प्रथम (बोधि) चर्चा।

३. महानिवान-सूत (दीप्त. २१२) में भगवान् ने स्वयं इसकी मम्भीरता का वर्णन सारिपुत्र के प्रति किया है।

का पता नहीं चलता ।” आवागमन के चक्र को अविद्या ही गति प्रदान करती है । यदि अविद्या का निरोध कर दिया जाय तो संस्कारों का निरोध । संस्कारों का निरोध कर दिया जाय तो विज्ञान का निरोध । विज्ञान का निरोध कर दिया जाय तो शह आचरणों का निरोध । शह आचरणों का निरोध कर दिया जाय तो संर्वों का निरोध ।  
 ..... बेदना का निरोध ! ..... तुष्णा का निरोध ! ..... उपादान का निरोध ! ..... भव का निरोध ! ..... जन्म का निरोध ! ..... जरा, मरणशोक, रोदन-विलाप, दुःख, मानसिक कष्ट एवं सारे दुःख-नज़र का निरोध ! यही बद्धोक्त प्रतीत्य समुत्पाद है, जिसे दुःख के आगमन और अस्तंगमन की हेतु-पूर्वक दिखाने के लिए भगवान् ने कहणापूर्वक उपदेश किया ।

इस प्रतीत्य समुत्पाद का ही पुरे विस्तार के साथ विवेचन ‘पट्ठान’ में में किया गया है । किन्तु सुतन्त की अपेक्षा पट्ठान की विवेचन-पढ़ति की एक विशेषता है । जैसा प्रतीत्य समुत्पाद के उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है, प्रतीत्य समुत्पाद की कारण-कार्य परम्परा में १२ कड़ियों हैं, जो एक दूसरी से प्रत्ययों के आधार पर जुड़ी हुई हैं । सुतन्त में अधिकांश इन कड़ियों की व्यालया मिलती है । पट्ठान में इन कड़ियों की व्यालया पर जोर न देकर उन प्रत्ययों पर जोर दिया गया है, जिनके आधार से वे पैदा होती और निश्चिह्न होती रहती हैं । पट्ठान में इस प्रकार के २४ प्रत्ययों का विवेचन किया गया है । यही उसकी एक-मात्र विषय-वस्तु है । जैसा उसके नाम से स्पष्ट है, ‘पट्ठान’ (पञ्चय-ठान) वास्तव में प्रत्ययों का स्थान ही है ।

आकार और महत्त्व की दृष्टि से पट्ठान अभिव्यम्म-गिटक का एक महायन्व है । महत्त्व में उसका स्थान धम्मसंगणि के बाद ही है । स्थानी संस्करण को ६ जिल्डों में ३१२० पृष्ठ है । यह हालत तब है जब ग्रन्थ के चार मूल्य भागों में से अन्तिम तीत अत्यंत संविप्त कर दिये गये हैं । यदि उसका भी विवरण प्रथम भाग के समान ही किया जाता तो महास्वविर जानातिलोक का यह अनुमान ठीक है कि कुल संख्या का आकार १४००० पृष्ठ से कम न होता । जैसा अभी कहा जा चुका है, संपूर्ण ग्रन्थ चार बड़े भागों में विभक्त है, यथा

२. देखिये विशेषतः महानिदान-सुत (बीघ. २११५), महाहायपदोपम-सुत (मञ्जिलम्. ११३१८) आदि

( १ ) अनुलोम-पट्ठान—घम्मों के पारस्परिक प्रत्यय-संबंधों का विधानात्मक अध्ययन ।

( २ ) पच्चनिय-पट्ठान—घम्मों के पारस्परिक प्रत्यय-संबंधों का नियेष्वात्मक अध्ययन ।

( ३ ) अनुलोम-चन्ननिय पट्ठान—घम्मों के पारस्परिक प्रत्यय-संबंधों का विधानात्मक और नियेष्वात्मक अध्ययन ।

( ४ ) पच्चनिय-अनुलोम पट्ठान—घम्मों के पारस्परिक प्रत्यय-संबंधों का नियेष्वात्मक और विधानात्मक अध्ययन ।

रन्ध्र के आधार में एक भूमिका है, जिसका नाम 'पञ्चय-निहेस' (प्रत्यय निदेश) है। इसमें उन २४ प्रत्ययों का उल्लेख और संक्षिप्त विवरण है, जिनके आधार पर घम्मों का उदय और अस्तंगमन सारे रन्ध्र में दिखाया गया है। स्थामी संस्करण की पहली जिल्द में यह भूमिका-भाग ही आया है। मूल प्रथम के उपर्युक्त ६ भागों में से प्रत्येक की विषय-प्रतिपादन शैली समान ही है। केवल प्रथम भाग के आधार पर ज्ञेय तीन में विषय-विवरण संक्षिप्त अवश्य दिया गया है। स्थामी संस्करण की २, ३, ५, और ६ जिल्दों में केवल प्रथम भाग आया है। लेकि तीन भाग छठी जिल्द में हैं। प्रथम भाग की अध्याय-संख्या इस प्रकार है—२२+८९+१३२+१४+४२+४=३२९। इससे पट्ठान के बहुत आकार की कुछ कल्पना की जा सकती है।

उपर्युक्त चार भागों में विधानात्मक आदि अध्ययन-क्रम से २४ प्रत्ययों का संबंध घम्मों के साथ दिखाया है। प्रत्येक भाग में यह अध्ययन-क्रम छह प्रकार से प्रयुक्त किया गया है। इसका अर्थ यह है कि इन चार भागों में से प्रत्येक छह-छह उपविभागों में और भी बटा हुआ है, जैसे कि

( १ ) तिक-पट्ठान—घम्मसंगणि में प्रयुक्त २२ त्रिकों के वर्गीकरण को लेकर घम्मों के साथ २४ प्रत्ययों का संबंध निरूपण ।

( २ ) दुक-पट्ठान—घम्मसंगणि में प्रयुक्त १०० द्विकों के वर्गीकरण को लेकर घम्मों के साथ २४ प्रत्ययों का संबंध निरूपण ।

( ३ ) दुक-तिक-पट्ठान—उपर्युक्त १०० द्विकों और २२ त्रिकों को लेकर पूर्ववत् अध्ययन ।

( ४ ) तिक-दुक-पट्ठान—उपर्युक्त २२ त्रिकों और १०० द्विकों को लेकर पूर्ववत् अध्ययन ।

(५) तिकन्तिक-पट्ठान—परस्पर मिथित २२ दिकों को लेकर पूर्ववत् अध्ययन ।

(६) दुक-दुक-गट्ठान—परस्पर मिथित १०० दिकों को लेकर पूर्ववत् अध्ययन ।

इस प्रकार संपूर्ण महाग्रन्थ तीव्रीस भागों में बटा हुआ है, जिनमें से प्रत्येक 'पट्ठान' कहलाता है । इसीलिए 'पट्ठान' को अट्ठकथा में कहा गया है—चतुर्वीसति-समस्त-पट्ठान-समोधान-पट्ठान-महाप्रकरण नामाति । अर्थात् 'पट्ठान' महाप्रकरण में कुल मिलाकर २४ 'पट्ठान' या प्रत्यय-स्वान है ।

'पट्ठान' के दीर्घ आकार को देखते हुए उसके विषय या शीली का लघु से लघु संक्षेप देना भी कितना कठिन है, यह आसानी से समझा जा सकता है । जिन्हें जैसा पहले कहा जा चुका है, उसकी भूमिका (पञ्चव-निदेश) में उन २४ प्रत्ययों का उल्लेख और संक्षिप्त विवेचन है, जिसके आधार पर संपूर्ण ग्रन्थ में प्रतीत्य सम्प्लाद को समझाया गया है । प्रत्यय-दर्शन का विवेचन पट्ठान की एक मूल्य विशेषता है । जैसा श्रीमती रायस डेविड्स ने कहा है, संपूर्ण अभिधर्म दर्शन सम्बन्धी ज्ञान के लिये वह एक महत्व पूर्ण रचनात्मक दात है ।<sup>१</sup> हमारा उद्देश्य यहीं इन २४ प्रत्ययों का संक्षिप्त विवरण देना ही है । इनके नाम इस प्रकार हैं—

- |                      |                        |
|----------------------|------------------------|
| १. हेतु-प्रत्यय      | ८. निःश्रव्य-प्रत्यय   |
| २. आलम्बन-प्रत्यय    | ९. उपनिषद्य-प्रत्यय    |
| ३. अधिष्ठिति-प्रत्यय | १०. पुरुषोत्तम-प्रत्यय |
| ४. अनल्लत-प्रत्यय    | ११. पश्चात्जात-प्रत्यय |
| ५. समनन्तर-प्रत्यय   | १२. आसेवन-प्रत्यय      |
| ६. सहजात-प्रत्यय     | १३. कर्म-प्रत्यय       |
| ७. अन्योन्य-प्रत्यय  | १४. विपाक-प्रत्यय      |

<sup>१</sup>. देखिये तिक-पट्ठान, प्रथम भाग (श्रीमती रायस डेविड्स द्वारा सम्पादित, पालि टैक्स्ट सोसायटी से प्रकाशित, लन्दन १९२१-२३) पृष्ठ ५ (भूमिका) एवं तिक-पट्ठान, द्वितीय भाग को सम्पादकीय टिप्पणी ।

१५. आहार-प्रत्यय	२०. विप्रयुक्त-प्रत्यय
१६. इन्द्रिय-प्रत्यय	२१. अस्ति-प्रत्यय
१७. ध्यान-प्रत्यय	२२. नास्ति-प्रत्यय
१८. मार्ग-प्रत्यय	२३. विगत-प्रत्यय
१९. सम्बन्धकर्ता-प्रत्यय	२४. अविगत-प्रत्यय <sup>१</sup>

प्रत्येक प्रत्यय का क्या अर्थ है और किस प्रकार उसका आवश्य लेकर किसी एक धर्म या धर्मों की उत्पत्ति और निरोध किसी दूसरे धर्म या धर्मों की उत्पत्ति और निरोध-पर आधारित है, इसका भी कुछ दिव्यज्ञान कराना यहाँ आवश्यक होगा ।

१. हेतु-प्रत्यय (हेतु पञ्चवयो) — हेतु का अर्थ है मूल कारण या आधार । अभिधर्म-दर्शन से लोभ, द्वेष, मोह एवं उनके विपक्षो बलोभ, अद्वेष और अमोह को मूल कारण या हेतु कहा गया है । इनमें से पहले तीन कर्म-विपाक की दृष्टि से अकुशल हैं और चाद के तीन कुशल हैं । और कहीं कहीं (जैसे कि अहंत के सबूध में) अव्याहृत अर्थात् अनिहत (नितान्त स्वाभाविक या कर्म-विपाक उत्पन्न करने में निष्क्रिय) भी । जितनी भी कुशल या अकुशल ज्वलयाएँ, मात्रिक या भौतिक जगत् में हो सकती हैं, उनके मूल आधार या हेतु त्रिमत्रः उपर्युक्त कुशल या अकुशल धर्म ही हैं । इन मूल आधारों या हेतुओं की उपस्थिति या अनुपस्थिति पर ही अनिवार्यतः सब कुशल और अकुशल धर्मों की उपस्थिति या अनुपस्थिति मिलती है । पट्ठान की भाषा में, "हेतुओं से संपूर्ण धर्म और इन्हीं से उत्पन्न होने वाली भौतिक जगत् की सारी अवस्थाएँ, हेतुओं पर हेतु-प्रत्यय के रूप में अवलम्बित हैं ।" उत्पन्न होने वाली वस्तु (पञ्चद्युपद्धत्र—प्रत्ययोत्पन्न) तो यहाँ धर्म और भौतिक जगत् की अवस्थाएँ हैं । जिनसे

२. इन चौबीस प्रत्ययों में अनेक एक दूसरे में सम्बद्धित हैं । अभिधर्मपत्यसंग्रह में इनको चार मूल्य भागों में विभक्त कर दिया गया है, यथा आलम्बन, उपनिःशय, कर्म और अस्ति । आरम्भणपनिस्यकमस्तिथपठचयेत् च सच्चेपि पञ्चया समोचानं गच्छन्ति । पृष्ठ १५१ (धर्मानन्द कोसम्बो का हस्करण, नवनीत टीका सहित )

वे उत्तम होती हैं (पञ्चव-धर्म) वे 'हेतु' पा कुशलादि मूल धर्म हैं। जिन प्रत्यय (पञ्चव) से वे पैदा होती हैं, वह हेतु-प्रत्यय (हेतु-पञ्चव) है। शेष प्रत्ययों में भी कमानसार हम इन तीन बातों का उल्लेख करेंगे यथा (१) उत्तम होने वाली वस्तु (पञ्चवपुण्ड्र) क्या है ? (२) जिस वस्तु से वह उत्तम होती है (पञ्चव-धर्म) वह क्या है ? (३) प्रत्यय क्या है ?

२. आलम्बन प्रत्यय (आरम्भण पञ्चवयो) — आलम्बन का अर्थ है विषय या आधार। जिस वस्तु के आधार से कोई दूसरी वस्तु पैदा होती है तो उस दूसरी वस्तु के प्रति पहली वस्तु का संबंध आलम्बन प्रत्यय का होता है। उदाहरणतः चक्र-विज्ञान और उससे संयुक्त धर्मों की उत्पत्ति रूप-आयतन पर आधारित है। अतः रूप-आयतन आलम्बन है चक्र-विज्ञान और उससे संयुक्त धर्मों का। दूसरे शब्दों में, हर आयतन आलम्बन-प्रत्यय के रूप में चक्र-विज्ञान और उससे संयुक्त धर्मों का प्रत्यय है। इसी प्रकार शब्दायतन, मन्त्रायतन, रसायतन और स्पृष्टव्यायतन कमशः श्रोत्र-विज्ञान, धारण-विज्ञान, जिह्वा-विज्ञान, काष-विज्ञान और उनसे संयुक्त धर्मों के आलम्बन-प्रत्यय के रूप में प्रत्यय हैं। इसी प्रकार उपर्युक्त पाँचों आयतन (रूप, शब्द, गन्ध, रस, स्पृष्टव्य) मिलकर मनो-धातु और उससे संयुक्त धर्मों के तथा सब धर्म मिलकर मनो-विज्ञान-धातु और उससे संयुक्त धर्मों के आलम्बन-प्रत्ययको रूप में प्रत्यय है। संशेष में, जो जो धर्म जित्त और चेतासिक धर्मों के आलम्बन हैं, वे सभी उनके प्रति आलम्बन-प्रत्यय के रूप में प्रत्यय हैं। यहाँ (१) चक्र (२) श्रोत्र (३) धारण (४) जिह्वा और (५) काष-संबंधी विज्ञान एवं उनसे संयुक्त धर्म तथा (६) मनोधातु और (७) मनो-विज्ञान-धातु और इनसे संयुक्त धर्म 'पञ्चवपुण्ड्र' अर्थात् प्रत्ययों से उत्पन्न होने वाली वस्तुएँ हैं। इनके 'पञ्चव-धर्म' अर्थात् वे वस्तुएँ जिनसे ये प्रत्ययों के आधार पर उत्पन्न होती हैं, कमशः में हैं (१) रूप (२) शब्द (३) गन्ध (४) रस और (५) स्पृष्टव्य संबंधी आयतन और इनसे संयुक्त धर्म तथा (६) इन पाँचों आयतनों का सम्मिलित रूप और (७) संपूर्ण धर्म। जिस प्रत्यय के आधार पर यह उत्पत्ति होती है, वह आलम्बन-प्रत्यय (आरम्भण-पञ्चवयो) है।

३. अधिपति-प्रत्यय (अधिपति पञ्चयो) — किसी वस्तु की उत्पत्ति में अन्य की अपेक्षा जब इन चार पदार्थों यथा (१) इच्छा (छन्द) (२) उच्चोग (विरिय) (३) चित्त और (४) मीमांसा (वीमसा) की सहायता की अधिकता होती है तो इन चार धर्मों में से जिस किसी को अधिकता होती है, वही उत्पन्न होने वाली वस्तु के साथ अधिपति-प्रत्यय के संबंध से संबंधित होता है। उदाहरणतः, जो धर्म इच्छा (छन्द) से संयुक्त है या उससे उद्भृत है, वह इच्छा-अधिपति (छन्दाधिपति) के साथ अधिपति-संबंध से संबंधित है। इसी प्रकार वीर्य, चित्त और मीमांसा अधिपतियों से जो धर्म संयुक्त है, वे क्रमशः इनके साथ अधिपति-संबंध से संबंधित हैं। यहाँ इच्छा, वीर्य, चित्त और मीमांसा से संयुक्त धर्म, उत्पन्न होने वाली वस्तुएँ 'पञ्चवृण्ण' हैं। क्रमशः इच्छा-अधिपति (छन्दाधिपति), वीर्याधिपति (विरियाधिपति), विज्ञानाधिपति, और मीमांसाधिपति (वीमसाधिपति) इनके 'पञ्चव-धर्म' हैं अर्थात् ये वे वस्तुएँ हैं जिनमें उपर्युक्त धर्म उत्पन्न होते हैं। प्रत्यय-अधिपति प्रत्यय है।

४. अनन्तर-प्रत्यय (अनन्तर पञ्चयो) — यदि कोई वस्तु अपने ठीक पीछे होने वाली वस्तु की उत्पत्ति में सहायक होती है, तो वह उसके साथ अनन्तर प्रत्यय के संबंध से संबंधित होती है। 'पट्टान' में कहा गया है 'येस येसं धम्मान् अनन्तारा ये ये धम्मा तेसं धम्मान् अनन्तरपञ्चयेन पञ्चयो' अर्थात् जिन जिन धर्मों के अनन्तर जो जो धर्म होते हैं, तो पूर्व के धर्म पञ्चात् के धर्म के प्रति अनन्तर-प्रत्यय के रूप में प्रत्यय होते हैं। उदाहरणतः, पौच विज्ञान-धातुओं (जड़, शोल, धाण, जिट्टा और काय सब धी विज्ञान-धातुओं) और उनसे संयुक्त धर्मों के अनन्तर मनो-धातु और उससे संयुक्त धर्म मनो-धातु और उससे संयुक्त धर्मों के प्रति अनन्तर-प्रत्यय के रूप में प्रत्यय हैं। इसी प्रकार मनो-धातु और उससे संयुक्त धर्मों मनो-विज्ञान-धातु और उससे संयुक्त धर्मों के लिये, कुशल-धर्म, कुशल और अव्याहृत धर्मों की उत्पत्ति के लिए, और अकुशल धर्म, अकुशल और अव्याहृत धर्मों की उत्पत्ति के लिए, अनन्तर-प्रत्यय के रूप में प्रत्यय होते हैं। यहाँ मनो-धातु, मनो-विज्ञान-धातु, कुशल और अव्याहृत धर्म, अकुशल और अव्याहृत-

बर्म तथा इनमें संयुक्त धर्म 'पञ्चयुपास' अर्थात् पञ्चधर्मो के कारण उत्पन्न होने वाले धर्म हैं। जिन धर्मों से इनकी उत्पत्ति होती है, वे हैं जमशः (१) श्रीच विज्ञान-धारा और उनसे संयुक्त धर्म (२) मनो-धारा और उनसे संयुक्त धर्म (३) कुशल-धर्म (४) अकुशल-धर्म। अतः ये प्रत्यय-धर्म हैं। जिन प्रत्यय के कारण उनको उत्पत्ति होती है, वह है अनन्तर-प्रत्यय।

५. समन्तर-प्रत्यय (समन्तर पञ्चधर्मो) — विलकुल अनन्तर-प्रत्यय के समान ।

६. सहजात-प्रत्यय—(सहजात पञ्चधर्मो) — जब कोई धर्म किन्हीं अन्य धर्मों के साथ-साथ उत्पन्न होते हैं तो उनके बीच सहजात-प्रत्यय का सम्बन्ध होता है। उदाहरणतः, संज्ञा, वेदना, संस्कार और विज्ञान एक दूसरे के साथ सहजात-प्रत्यय के रूप में सम्बन्धित हैं, क्योंकि इनकी उत्पत्ति एक ही साथ होती है।

७. अन्योन्य-प्रत्यय—(अन्योन्य पञ्चधर्मो) — एक दूसरे के आधाय से उत्पन्न होने वाले वर्म इस प्रत्यय के द्वारा आपस में सम्बन्धित होते हैं। यहाँ भी पूर्वोक्त उदाहरण ही दिया जा सकता है, क्योंकि संज्ञा, वेदना, संस्कार और विज्ञान आपस में एक दूसरे के आधाय से ही उत्पन्न होते हैं।

८. निःशब्द-प्रत्यय—(निःशब्द पञ्चधर्मो) — निःशब्द का अर्थ है आधार। पृथकी वृक्ष का निःशब्द है। इसी प्रकार जिन धर्मों की उत्पत्ति जिन धर्मों के आधार पर होती है, उनके प्रति उनका निःशब्द-प्रत्यय का सम्बन्ध होता है। उदाहरणतः चक्र-आपत्तन, श्रोत्र-आपत्तन, ध्याण-आपत्तन, जिङ्गा-आपत्तन और काय-आपत्तन के आधार पर ही जमशः चक्र-विज्ञान, श्रोत्र-विज्ञान, ध्याण-विज्ञान, जिङ्गा-विज्ञान और काय-विज्ञान की उत्पत्ति होती है, अतः उनके बीच निःशब्द-प्रत्यय का सम्बन्ध है।

९. उपनिःशब्द-प्रत्यय—(उपनिःशब्द पञ्चधर्मो) — उपनिःशब्द का अर्थ है ब्रह्मवान् आधार। कुशल-धर्मों के दृढ़ आधार पूर्वगामी कुशल-धर्म ही होते हैं। अतः उनके बीच का सम्बन्ध उपनिःशब्द-प्रत्यय का है। अन्य अनेक उदाहरण भी मूल पालि में दिये हुए हैं।

१०. पुरेजात-प्रत्यय—(पुरेजात पञ्चधर्मो) — जिस धर्म से किसी धर्म की उत्पत्ति पहले हुई ही तो उनके बीच पुरेजात-प्रत्यय का सम्बन्ध होता है।

उदाहरणतः चक्षु-विज्ञान-धारा आदि की उत्पत्ति से पहले चक्षु-आपत्तन आदि की उत्पत्ति हो चुकी होती है। अतः उसके प्रति वह पुरेजात-प्रत्यय से सम्बन्धित है।

११. पश्चात्-जात-प्रत्यय—(पश्चात्-पञ्चयो) —शरीर की उत्पत्ति पहले हो जाती है। उसके बाद उसमें चिल और भेत्सिक पैदा होते हैं। अतः दोनों के बीच का सम्बन्ध पश्चात्-जात-प्रत्यय का है।

१२. आसेवन-प्रत्यय—(आसेवन पञ्चयो) —आसेवन का अर्थ है बार-बार अचूति। किसी धर्म का बार-बार अभ्यास जिस किसी दूसरे धर्म को जन्म देने का कारण बनता है, तो उसके साथ उसका आसेवन प्रत्यय का सम्बन्ध होता है। उदाहरणतः, प्रत्येक कुशल-धर्म की उत्पत्ति किसी पूर्वगामी कुशल धर्म के आसेवन या सतत अभ्यास से होती है। अतः दोनों के बीच आसेवन-प्रत्यय का सम्बन्ध होता है।

१३. कर्म-प्रत्यय—(कर्म-पञ्चयो) —किसी भी कर्म-विपाक के पूर्व-गामी कुशल या अकुशल धर्म होते हैं, अतः उनके बीच का सम्बन्ध कर्म-प्रत्यय का होता है।

१४. विवाक-प्रत्यय—(विवाक पञ्चयो) —वेदना, संज्ञा, सम्झार और विज्ञान, इन चार स्कन्धों की उत्पत्ति पूर्व के वेदना, संज्ञा, सम्झार और विज्ञान स्कन्धों के विपाक-स्वरूप होती है, अतः इनके बीच विवाक-प्रत्यय का सम्बन्ध होता है।

१५. आहार-प्रत्यय—(आहार पञ्चयो) —भोजन से यह हमारा शरीर बनता है। अतः शरीर का भोजन के प्रति आहार-प्रत्यय का सम्बन्ध है।

१६. इन्द्रिय-प्रत्यय—(इन्द्रिय पञ्चयो) —चक्षु-विज्ञान आदि की उत्पत्ति चक्षरादि इन्द्रियों के प्रत्यय से है। अतः पहले का दूसरे के प्रति इन्द्रिय-प्रत्यय का सम्बन्ध है।

१७. ध्यान-प्रत्यय—(ध्यान पञ्चयो) —ध्यान से संयुक्त अवस्थाओं (धर्मों) की उत्पत्ति ध्यान के अर्गों के प्रत्यय से हैं। अतः पहले का दूसरे के साथ ध्यान-प्रत्यय का सम्बन्ध है।

१८. मार्ग-प्रत्यय—(मार्ग पञ्चयो) —उपर्युक्त के समान मार्ग से संयुक्त

व्यवस्थाओं की भी उत्पत्ति मार्ग के अंगों के प्रत्यय से है, अतः उनके बीच मार्ग-प्रत्यय का सम्बन्ध है ।

**१९. संयुक्त-प्रत्यय—(सम्युक्त पञ्चयो)**—पुरोत्त के समान ही संज्ञा वेदना, आदि से संयुक्त धर्मों की उत्पत्ति क्रमशः संज्ञा, वेदना आदि के अंगों के प्रत्यय से ही है, अतः उनके बीच का सम्बन्ध संयुक्त-प्रत्यय का ही है ।

**२०. विष्युक्त-प्रत्यय—(विष्युक्त-पञ्चयो)**—भौतिक धर्म मानसिक धर्मों के साथ और मानसिक धर्म भौतिक धर्मों के साथ विष्युक्त-प्रत्यय के सम्बन्ध से सम्बन्धित है, क्योंकि दोनों का स्वभाव एक दूसरे से विष्युक्त रहने का है ।

**२१. अस्ति-प्रत्यय—(अस्ति पञ्चयो)**—जिस धर्म की उपस्थिति या विद्यमानता पर दूसरे धर्म की उत्पत्ति अनिवार्यतः निर्भर होती है तो दोनों के बीच अस्ति-प्रत्यय का सम्बन्ध होता है, यथा सम्पूर्ण भौतिक विकारों की उत्पत्ति के लिये चार महाभूतों की उपस्थिति, अनिवार्यतः आवश्यक है, अतः चार महाभूतों के साथ अस्ति-प्रत्यय के सम्बन्ध के द्वारा सम्पूर्ण भौतिक विकार सम्बन्धित हैं ।

**२२. नास्ति-प्रत्यय—(नास्ति पञ्चयो)**—अपनी अनुपस्थिति या अविद्यमानता से ही जो कोई धर्म किसी दूसरे धर्म की उत्पत्ति में सहायक हो तो वह उत्पत्ति होने वाले धर्म के प्रति नास्ति-प्रत्यय के सम्बन्ध से सम्बन्धित होता है । जो चित और चेतासिक अभी निरुद्ध हो चुके हैं, वे अपनी अविद्यमानता से ही अभी उत्पत्ति होने वाले चित और चेतासिक धर्मों के प्रति नास्ति-प्रत्यय के सम्बन्ध से सम्बन्धित होते हैं ।

**२३. विगत-प्रत्यय—(विगत पञ्चयो)**—उपर्युक्त (२२) के समान ।

**२४. अविगत-प्रत्यय—(अविगत-पञ्चयो)**—उपर्युक्त (२१) के समान ।

उपर अभिधाम-पिटक के ग्रन्थों के विषय और शैली का संक्षिप्त विवरण दिया गया है । सुत्तन्त में निहित बृह-वचनों के प्रति उनका वही सम्बन्ध है, जो उत्तरकालीन वेदान्त-ग्रन्थों का उपनिषदों के प्रति । अन्तज्ञान और अपरोक्ष-अनुभूति पर प्रतिलिप्त, जल और वायु के समान सब के लिये सुलभ, बृहों (ज्ञानियों) के वचन भी, पंडितवाद और शास्त्रीय विवेचनों के फन्दे में फैसले कितने सुखे, आकर्षण-विहीन और जन-साधारण के लिये कितने दुरुह हो जाते

हैं, इसके लिये अभिधर्म-पिटक के समान ही उत्तरकालीन वेदान्तियों एवं वौकु  
और वैदिक परमारा के आचार्यों के प्रश्नान अच्छे उदाहरण हैं। जहाँ नागार्जुन  
असंग, ब्रह्मवन्नु, दिढ़्-नाग और भ्रमेंकीति हों, जाहे वास्त्यामन, कुमारिल,  
वाचस्पति, उदयन और ओहर्णि हों, सब एक समान होते हैं। बृद्ध और उपनिषदों  
के ज्ञापिताओं को सरलता, स्वाभाविकता और मार्त्तिकता एक में भी नहीं है। अभि-  
धर्म-पिटक अति प्राचीन होते हुए भी बृद्ध-मन्त्रव्य को इसी ओर ले गया है।  
सन्तोष की बात यह है कि वहाँ बृद्ध के मौलिक मिदान्तों में कोई परिवर्तन या  
परिवर्द्धन नहीं किया गया है, सजोधन की तो कोई बात ही नहीं। अतः मूल बृद्ध-  
दर्शन को जानने के लिये उसका उपयोग बच रहता है। बृद्ध-मन्त्रव्य स्वयं एक  
विस्मयकारी वस्तु है। यदि उसके कुछ विस्मयोंको जोड़ना है तो अभिधर्म-पिटक  
का अध्ययन नितान्त आवश्यक है। यदि यह देखता है कि निरस्तर परिवर्तनशील,  
अनित्य, दुर्जन और अनात्म वर्मी (पदार्थों) के प्रवर्तनमान रहने पर भी संसार के सर्व-  
थेष्ठ साधक और ज्ञानी पुरुषोंने चित की निश्चल समाधि किस प्रकार भिन्न है,  
नियामक को न मान कर भी नियम को किस प्रकार प्रतिष्ठित किया है, इवर-  
प्रणिधान न होने पर भी समाधि का विद्यान किस प्रकार किया है, प्राथेना न होने  
पर भी ध्यान को किस पर टिकाया है, 'तत्त्व' (आत्मा) न होने पर भी पुनर्जन्म-  
बाद को किस पर बल्लभित किया है, परम सत्ता के विषय में मौन रखकर  
भी गम्भीर आश्वासन किस प्रकार दिया है, यदि यह सब और इसके साथ  
आरम्भिक बौद्ध धर्म के भग्नान् भनोवेजानिक अध्ययन सम्बन्धी दान को उसको  
पूरी विभूति के साथ देखता है, तो अभिधर्म की वीर्धियों में भ्रमण करना ही  
होगा। किन्तु वीर्धियों नदी के मनुष्य के लिये, जो कामावचर-लोक (कामनाओं  
के लोक) की अभाव पूर्तियों के प्रमल में ही अभी संलग्न और सन्तुष्ट है, इतना  
अवकाश मिल सकेगा, यह कहना सन्देह से खाली नहीं है।

## छठा अध्याय

# पूर्व-बुद्धघोष-युग (१००ई० पूर्व से ४०० ई० तक)

तेपिटक बुद्ध-वचनों का अन्तिम संकलन तृतीय शताब्दी ईसवीं पूर्व किया गया। तब से उनका रूप मूर्णतः निश्चित हो गया। इसकी चौथी-पाँचवीं शताब्दी में बृद्धदत्त, बुद्धघोष और घम्मपाल ने उन पर अपनी प्रसिद्ध अट्ठकथाएँ लिखीं। पालित्रिपिटक के मुत्तिहिच्छित रूप धारण कर लेने और इन अट्ठकथाओं के रचना-काल के बीच जिस साहित्य की रचना हुई, उसमें नेतिपकरण, पेटको-पदेस और मिलिन्दपञ्च अधिक प्रसिद्ध हैं। इनका विवरण हम इस परिच्छेद में देंगे।

### नेतिपकरण

'नेतिपकरण' का संक्षिप्त नाम 'नेति' भी है। इसी को 'नेतिग्रन्थ' (नेति-ग्रन्थ) भी कहते हैं। जैसा उसके नाम से स्पष्ट है, 'नेतिपकरण' सद्धम्म की सम्भन्ने के लिये नेतृत्व या मार्ग-दर्शन का काम करता है। 'नेति' का अर्थ है मार्ग-दर्शक। बास्तव में बुद्ध-वचन इनमें सरल और हृदयस्पर्शी हैं कि उनकी सम्भन्ने के लिये उनसे व्यतिरिक्त अन्य किसी सहायक की आवश्यकता नहीं। एकान्त-चिन्तन ही, बुद्ध-वचन ही, उनके बीच मध्यस्थिता करने की किसी को आवश्यकता नहीं। किन्तु पड़ितवाद बुद्ध-धर्म में भी चल पड़ा। सरल बुद्ध-उपदेशों का वर्गीकरण किया गया, उनके पाठ का नियमबद्ध ज्ञान प्राप्त करने के लिये शास्त्रीय नियम बनाये गये, उनके मन्त्रव्याप्ति को भिन्न दृष्टियों से भूचीबद्ध किया गया, उनके शब्दों को व्यालया और उनके तात्पर्य का निर्णय करने के लिये घन्य-वचनों की गई। इस प्रवृत्ति के प्रथम लक्षण हम अभिधम्म-पिटक में ही देखते हैं। उसी का प्रत्यावर्तन हमें 'नेतिपकरण' और 'पेटकोपदेस' जैसे ग्रन्थों में मिलता है। 'नेतिपकरण' का सम्बन्ध एक प्रकार से तेपिटक बुद्ध-वचनों से वही है जो यास्क-कृत निरुक्त का वेदों से। किर भी निरुक्त की एक विशेष साधेकता भी है, क्योंकि आठवीं शताब्दी ईसवीं पूर्व ही वेदों की भाषा इतनी प्राचीन हो चुकी थी और

उसमें रहतात्मक जान ('आनन्दिय-मुट्ठि') भी इतना अधिक रखता हुआ बताया जाता था कि उसके उद्घाटन के लिये शब्द-व्यूत्पत्ति-परक एक प्रत्य 'को आवश्यकता थी भी। इसके विपरीत बुद्ध-बचनों की लोकोत्तर सरलता ने किसी भी व्यूत्पत्ति-जास्त्र या निरुचित-जास्त्र को अपेक्षा प्रारम्भ से ही नहीं रखती। यह उसकी एक बड़ी विशेषता है। चौथी-पौच्छर्णी शताब्दी ईसवी से जो अट्ट-कथाएं भी लिखी गई, उन्होंने भी विशेषतः बुद्ध-बचनों की ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमि को ही पूरा किया है, उत्तरकालीन संस्कृत भाष्यकारों या टोकाकारों की तरह बड़-बोड़एं नहीं कीं। फलतः बुद्ध-बचनों पर निरुचित-परक साहित्य पालि में अधिक नहीं पता पाया। केवल 'नेतिपकरण' और 'पेटकोपदेस' यही दो सब्ज इस सम्बन्ध में मिलते हैं और उन्होंने भी बुद्ध-बचनों की मीलिक सरलता को अधिक सुरक्ष बना दिया हो, या सद्गम्म को समझने वाले के लिये अधिक मात्र विश्वस्त कर दिया हो, ऐसा नहीं कहा जा सकता। जैसा अभी कहा गया, उनका उद्देश्य केवल चिपिटक के पाठ और उसके तात्पर्य-निर्णय-सम्बन्धों नियमों या मुनितयों का जास्तीय विवेचन मात्र करना है।

'नेतिपकरण' की विषय-वस्तु और शैली बहुत मुछ अभिव्यक्ति-पिटक से मिलती है। सुगमता के लिये उसे इस प्रकार तालिका-बद्ध किया जा सकता है—

## नेतिपकरण

संगहवार (संग्रह-खड़—सम्पूर्ण ग्रन्थ की समिटिगत विषय-सूची)	विभागवार (विभाग-खड़—गत दो हुई विषय-सूची का विभिन्न वर्गीकरणों में विभाजन)	
उद्देशवार (विषय-वस्तु का संक्षिप्त कथन) यथा— १. १६ हार २. ५ नय ३. १८ मूलपद	निहेसवार (उद्देशवार में संक्षिप्त रूप से निर्दिष्ट १६ हारों, ५ नयों तथा १८ मूलपदों की परिभाषाएँ)	पटिनिहेसवार (उद्देशवार में निर्दिष्ट १६ हारों, ५ नयों, तथा १८ मूल पदों की विस्तृत व्याख्याएँ, इन चार वर्गीकरणों में विभक्त, यथा, १. हार-विभंग (हारों का अलग-अलग वर्गीकरण करने के उनका विवेचन) २. हार-सम्पाद (हारों का समिटि-गत विवेचन) ३. नय-सम्पाद (नयों का विवेचन) ४. सासन-पट्टान (बूढ़ा-नासन एवं १८ मूलपदों का विवेचन)

इस तालिका में स्पष्ट है कि नेति-ग्रन्थ का विषय १६ हार (गुणे हुए विषयों की मालाएँ), ५ नय (तात्पर्य-निर्णय करने की युक्तियाँ) और १८ मूल पदों (मुख्य नेतिक विषयों) का विवेचन करना ही है। अधिक विस्तार में न जाकर यही इन तीनों वर्गीकरणों में निर्दिष्ट तत्वों का नाम-परिगणन मात्र कर देता ही

पर्याप्त होगा। नेतिपक्षम में विवेचित १६ हार में है, (१) देसनाहार-इस हार में बताया गया है कि बुद्ध-देसना (धर्मोपदेश) की विधि छह प्रकार की होती थी (अ) शौल अद्वि का सुपरिणाम दिखाने वाली (अस्साई) (आ) विषय-भोगों का दृष्ट्यरिणाम दिखाने वाली (आदिनव), (इ) संसार से निकलने का मार्ग दिखाने वाली (निस्सरण), (ई) व्यामध्य के कल का वर्णन करने वाली (कल), (उ) निर्बोध-प्राप्ति का उपाय बताने वाली (उपाय) और (ऊ) नैतिक उद्देश्य दिखाने वाली (आनन्दि)। यही भूतमयी (सृतमयी—जनन्यव पर अधिक), चिन्तामयी—बौद्धिक चिन्तन पर अधिक) और भावनामयी (पवित्र जीवन के विकास पर अधिक), इन तीन प्रकारों (जानों) का भी निर्देश किया गया है। (२) विचय-हार या धर्म-चिन्तन और पर्यवेक्षण (३) युतिहार (युक्तिहार) अथवा युक्तियों के द्वारा धर्म-विश्लेषण कर उसके अर्थ को समझना, (४) पदद्रावहार, मौलिक लक्षणों से पदोंकी व्याख्याकरना, (५) लक्षण-हार, लक्षणों से अर्थ को समझना, यथा कहीं रूप शब्द के बा जाने से हो, वेदना आदि को भी समझना। (६) चतुर्पूह-हार (चतुर्ब्धू-हार) अर्थात् पाठ, शब्द, उद्देश्य और ज्ञान से अर्थ को समझना, (७) आवत्तहार, 'किस प्रकार बुद्ध-उपदेशों में सभी विषय किसी न किसी प्रकार अविद्या, चार आर्थ सत्य, आर्थ अट्टागिक मार्ग आदि जैसे मूल-भूत सिद्धान्तों में संनिविष्ट हो जाते हैं। वेदान्त-जास्त्र के तात्पर्य-निर्णय में जिसे 'बन्धवस' कहा गया है, उसकी इसमें विशेष समानता है। (८) विभृतिहार) अर्थात् विभाजन या वर्गीकरण का ढंग (९) परिचत्तन-हार) अथवा बुद्ध का अशुभ को शुभ के रूप में परिवर्तित करने का ढंग। (१०) वेदवचन-हार अथवा शब्दों के अन्य अनेक समानांयवाची शब्द देकर अर्थ को स्पष्ट करने का ढंग। (११) पञ्जातिहार (प्रज्ञपित्तिहार)—एक ही घट्टम को अनेक प्रकार से रखने का ढंग। (१२) ओतरण-हार अथवा इन्द्रिय, प्रटिच्छ-समुप्पाद, पञ्च स्कन्ध आदि के ह्य में सम्पूर्ण बुद्ध-मन्तव्य का विश्लेषण। (१३) सोधन-हार, ग्रन्थों को शुद्ध करने का ढंग, जिसे बुद्ध प्रयुक्त करते थे। (१४) अविट्ठान-हार अथवा सत्य के आवाह का निर्णय करना। (१५) परिकला-हार अथवा हेतुओं और प्रत्ययों सम्बन्धी जान। यह 'हार' विलकृत अभियम्पिटक, विशेषतः पट्ठान, का ही एक अंग जान पड़ता है। (१६) समारोपन-

हार अथवा चार प्रकार से बुद्ध का समझाने का होग, यथा (अ) मूल-भूत विचारों के द्वारा (आ) समानार्थवाची शब्दों के द्वारा (इ) चिन्तन के द्वारा (ई) अनुभव वृत्तियों के निरोध द्वारा । जिन पाँच नयों का विवेचन 'नेत्रिपकरण' में किया गया है, उनके नाम ये हैं (१) नन्दियावत् (२) तीषुपुक्षल (३) सीहविक्षीलित (४) दिसालोचन, तथा (५) अकृत । १८ मूल-पद इस प्रकार हैं (१) तष्णा (तृष्णा), (२) अविज्ञा (अविद्या), (३) लोभ, (४) दोस (द्वेष), (५) मोह (६) सुभ सञ्ज्ञा (जृभ-सञ्ज्ञा) (७) निष्व सञ्ज्ञा (नित्यसञ्ज्ञा), (८) अन्तसञ्ज्ञा (आत्म सञ्ज्ञा), (९) सुख-सञ्ज्ञा (सुख-सञ्ज्ञा), तथा इन नीं के क्रमशः विपरीतयथा (१०) समय (शमय-आन्तरिक शान्ति) (११) विपस्तसना (विपद्यना-विदर्थना), (१२) अ-लोभ (१३) अ-दोस (अ-द्वेष), (१४) अ-मोह (१५) असुभ सञ्ज्ञा (अजृभ-सञ्ज्ञा) (१६) अनिष्व सञ्ज्ञा (अनित्य-सञ्ज्ञा) (१७) अन्तस-सञ्ज्ञा (अनात्म-सञ्ज्ञा), तथा (१८) दुखव-सञ्ज्ञा (दुःख-सञ्ज्ञा) । विषय की दृष्टि से बुद्ध-उपदेशों को कितने भागों में बांटा जा सकता है, इसका भी निरूपण 'नेत्रि पकरण' में किया गया है । इस दृष्टि से विवेचन करते हुए उसने बुद्ध-वचनों को इन मुख्य सौलह भागोंमें बांटा है, यथा (१) संकिलेस-भागिय, अर्थात् वे बुद्ध-उपदेश जो वासना या तृष्णा का विवेचन करते हैं (२) निष्वेष-भागिय, अर्थात् वे बुद्ध-उपदेश जो घर्म की तह का विवेचन करते हैं (३) असेव-भागिय, अर्थात् अहंतों की अवस्था का विवेचन करने वाले (४) संकिलेस-भागिय तथा वासना-भागिय (५) संकिलेस-भागिय तथा निष्वेषभागिय (६) संकिलेस-भागिय तथा असेव-भागिय (७) संकिलेस, असेव तथा निष्वेष-भागिय, (८) संकिलेस-वासना-निष्वेष-भागिय (१०) वासना-निष्वेष भागिय (११) तष्णासंकिलेस भागिय (१२) दिट्ठ-संकलेस-भागिय (१३) दुर्ज्वरित-संकिलेस-भागिय (१४) तष्णाबोदान-भागिय (तृष्णा की विशुद्धि का उपदेश करने वाले बुद्ध-वचन) (१५) विट्ठबोदान भागिय (दृष्टि या मिथ्या मतवादों की विशुद्धि का उपदेश करने वाले बुद्ध-वचन) तथा (१६) दुर्ज्वरित-बोदान-भागिय अर्थात् दुराचरण की शुद्धि या उपदेश करने वाले बुद्ध-वचन ।

उपर विषयों के अनुसार बुद्ध-वचनों का जो वर्गीकरण किया गया है उसमें पहले संक्षिप्त विवेचन कर के फिर उनमें निर्दिष्ट धर्मों को एक दूसरे से मिलाकर कर अन्य अनेक वर्गीकरण करने की प्रवृत्ति दिखलाई पड़ती है। संक्लेश, वासना, तथा और असेव के आधार पर ऐसे ही वर्गीकरण उपर किये गये हैं। निश्चयतः यह अभिधर्म की प्रणाली है, यह हम अभिधर्म-पिटक के विवेचन में देख चुके हैं। उसी का अनुबंधन इस सन्धि में किया गया है, जैसा उसकी ऊपर दो हुई विषय-तात्त्विका से स्पष्ट है। इतना ही नहीं, सिद्धान्तों के विवेचन में भी अभिधर्म का प्रभाव स्पष्ट है। दिखलाई पड़ता है। जैसा ऊपर दिखाया जा चुका है, परिक्षारहार के विवेचन में पट्ठान के हेतुओं और प्रत्ययों की स्पष्ट प्रतिध्वनि है। यहाँ 'नेति' के लेखक ने उसे पूरी तरह न लेकर अपने निश्चित सम्बन्धी प्रयोजन के अनुसार ही लिया है। इसीलिये 'हेतु' और 'प्रत्यय' का विभेद यहीं इतना स्पष्ट नहीं हो पाया। लौकिक और अलौकिक का विभेद भी 'नेतिपकरण' में किया गया है। यह भी अभिधर्म के प्रभाव का सूचक है। नेतिपकरण और अभिधर्म की दोनों के इस पारस्परिक सम्बन्ध का ऐतिहासिक अर्थ क्या है? स्पष्टतः यही कि नेतिकारण की रचना अभिधर्म-पिटक के बाद हुई। किन्तु ओमती रायस डेविड्स ने इसके विपरीत यह निष्कर्ष निकाला है कि 'नेतिपकरण' कम से कम 'पट्ठान' से पूर्व की रचना है।<sup>१</sup> उनके इस मत का मूल्य आधार यहीं है कि नेति-पकरण में अभी हेतु और प्रत्यय का भेद उतना स्पष्ट नहीं हुआ है जितना 'पट्ठान' में। किन्तु क्या यह 'नेतिपकरण' के जावश्यकता के अनुकूल नहीं हो सकता? क्या इस कारण नहीं हो सकता कि 'नेतिपकरण' के लेखक को यहाँ अभिधर्म को सूझता में न जाकर केवल उसके निश्चित-सम्बन्धी प्रयोजन को ग्रहण करता था? अभिधर्म-पिटक के संकलन या प्रश्नायन के बाल के सम्बन्ध में जो विवेचन हम पहले कर चुके हैं, उसकी पृष्ठभूमि में नेतिपकरण को उसके बाद

१. जनंल औब रॉयल प्रिंसियाटिक सोसायटी, १९२५, पृष्ठ १११-११२; चिट्रनित ने भी उनके इस साध्य को स्वीकार किया है। देखिये उनका हिस्ट्री ऑब हंडियन लिटरेचर, जिल्ब दूसरी, पृष्ठ १८३।

की रचना ही माना जा सकता है। ई० हार्डीने, जिन्होंने इस सम्बन्ध का सम्पादन पालि ट्रैक्स्मट सोसायटी के लिए किया है, आन्तरिक और बाह्य साध्य का विवेचन कर यह निष्कर्ष निकाला है कि 'नेतिपकरण' ईसवी सन् के आसपास की रचना है।<sup>१</sup> गायगढ़ ने इस मत को स्वीकार किया है।<sup>२</sup> श्रीमती राधस डेविड्स के मत को अपेक्षा यही मत अधिक उपयुक्त जान पड़ता है। 'गन्धवंस' के वर्णनानुसार 'नेतिपकरण' के रचयिता भगवान् बुद्ध के परम ऋद्धिमान् विद्य महाकल्पन या महाकल्पन (महाकाल्पन) ही थे।<sup>३</sup> स्वयं मजिस्ट्रेस-निकाय के मधुपिङ्क-सुत (१२१८) में महाकल्पन के अर्थ-विभाग की प्रशंसा की गई है 'यह आयुष्मान् महाकाल्पन, बुद्ध द्वारा प्रसिद्ध, सब्ब्रह्मारियों द्वारा प्रशंसित और शास्त्रा द्वारा संक्षेप में कहे हुए उपदेश का विस्तार से अर्थ-विभाग करने में समर्थ है।'

सम्भवतः इसी आधार पर 'नेतिपकरण' को गौरव देने के लिए उसे इन आर्य महाकाल्पन की स्वता बतलाया गया है। किन्तु इन शास्त्रीय विवेचनों में पड़ने की बुद्ध के उन प्रथम शिष्यों को आवश्यकता नहीं थी, यह निश्चित है। यह तो उत्तरकालीन वैदिक परम्परा से प्राप्त प्रभाव का ही परिणाम था। जिस प्रकार कल्पन और मोमगल्लान व्याकरणों का सम्बन्ध बुद्ध के प्रथम शिष्यों के साथ किया जाता है, उसी प्रकार 'नेतिपकरण' के रचयिता महाकल्पन के विषय में भी हमें जानना चाहिए। बास्तव में 'नेतिपकरण' ईसवी सन् के आसपास की रचना है और उसके रचयिता कोई कल्पन नामक भिक्षु थे, जिसके विषय में अधिक हमें कुछ जात नहीं है। पांचवीं शताब्दी ईसवी में अम्पाल ने 'नेतिपकरण' पर 'नेतिपकरणस्स अस्य संबोधना' (नेतिपकरण का अर्थ-विवरण) नाम की एक अट्ठकथा भी लिखी, जिसका निवेद द्वारा हम आगे के अध्याय में अट्ठकथा-नाहित्य का विवरण देने समय करेंगे। ब्रह्मा और सिंहल की भाषाओं में इस सन्थ का अनुवाद हूँजा है, और इसके कई संस्करण भी निकले हैं।

१. नेतिपकरण (ई० हार्डी द्वारा सम्पादित, लन्दन १९०२), पृष्ठ ८ (भूमिका)

२. पालि लिटरेचर एंड सोसायटी, पृष्ठ २६

३. पृष्ठ ४९

## पेटकोपदेस

'पेटकोपदेस' भी 'नेतिपकरण' के समान विषय-वस्तु वाली एक दूसरी रचना है। मंविल बोह ने हमें बताया है कि बरसा में इन दोनों ग्रन्थों का आदर त्रिपिटक के समान ही होता है।<sup>१</sup> 'पेटकोपदेस' का उद्देश्य त्रिपिटक के विहाचियों को उसी प्रकार का उपदेश या शिक्षा देना है जैसा हम 'नेतिपकरण' में देख आये हैं। 'नेतिपकरण' को ही विषय-वस्तु को यहाँ एक दूसरे ढंग से उपन्यस्त कर विवेचित किया गया है। कहीं जो कुछ बातें 'नेतिपकरण' में दुरुहृ रह गई हैं, उनको यहाँ स्पष्ट हृप से समझा दिया गया है। 'पेटकोपदेस' की एक मुख्य विशेषता यह भी है कि यहाँ विषय का विन्यास प्रधानतः चार आये सत्यों की दृष्टि से किया गया है, जो बुद्ध-शासन के मूल उपादान हैं। 'पेटकोपदेस' के भी रचयिता 'नेतिपकरण' के लेखक महाकल्पान ही माने जाते हैं। अतः उनके काल और वृत्त के सम्बन्ध में भी वही जानना चाहिए, जो 'नेतिपकरण' के रचयिता के सम्बन्ध में।

## मिलिन्दपञ्चः

'मिलिन्द पञ्चः' 'मिलिन्द पञ्चो' या 'मिलिन्दपञ्चहा' (वयोःकि इन तीनों प्रकार महाप्रन्यालिका जाता है) <sup>२</sup> इस युग की सब से अधिक प्रसिद्ध रचना है। सम्पूर्ण अनुपिटक साहित्य में इस प्रन्याली की समता अन्यकोई ग्रन्थ नहीं कर सकता। बुद्धधर्म ने इस प्रन्याली को अपनी अदृढ़कथाओं में विपिटक के समान ही आदरणीय

१. दि पालि लिटरेचर ऑब बरसा, पृष्ठ ४

२. रोमन लिपि में सन् १८८० में ट्रोकनर का प्रसिद्ध संस्करण त्रिकाला या। आज तो नामारी लिपि में भी सौभाग्यवश इसके मूल पाठ और अनुवाद दोनों उपलब्ध हैं। मिलिन्द-पञ्चोः आर.डो.बदेकर द्वारा सम्पादित, बम्बई विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित, १९४०; भिक्षु जगदीश काशयप द्वारा हिन्दी में अनुवादित, प्रकाशक भिक्षु उ० कित्तिमा, सारनाथ, बनारस, १९३७। इस प्रथ के स्थानी, सिहली तथा बरसी अनेक संस्करण उपलब्ध हैं।

३. सिहल में तो विशेषतः मिलिन्दपञ्चो ही कहा जाता है। हिन्दी में 'मिलिन्द-प्रस्तु' के आधार पर 'मिलिन्दपञ्च' ही कहना हमने अधिक उचित समझा है।

मानते हुए उद्दृत किया है,<sup>१</sup> यह उसको महत्ता का सबौतम सूचक है। साहित्य और दर्शन दोनों इटियों से 'मिलिन्द पञ्च' स्वविरचार बौद्ध धर्म का एक बड़ा गीरव है। पाण्डितात्म विद्वान् तक उसके इस गीरव पर इतने अधिक मुख्य हुए हैं कि उन्हें इस में गीक प्रभाव और विशेषतः अफलातु के संवादों की मन्त्र आने लगी है। 'मिलिन्द पञ्च' (मिलिन्द प्रश्न) जैसा उसके नाम से स्पष्ट है 'मिलिन्द' के 'प्रश्नों' के विवरण के रूप में लिखा गया है। 'मिलिन्द' शब्द यीक 'मेनान्दर' नाम का भारतीयकरण है। मेनान्दर के प्रश्नों का विवरण मात्र इस मन्त्र में नहीं है। मेनान्दर के प्रश्नों का समाधान इस ग्रन्थ का मुहूर्य विषय है। यह समाधान भद्रन्त नागसेन नामक बौद्ध मिद्दु ने किया। अतः मेनान्दर और भद्रन्त नागसेन के संवाद के रूप में यह ग्रन्थ लिखा गया है। मेनान्दर या मिलिन्द और भद्रन्त नागसेन का यह संवाद ऐतिहासिक तथ्य था, इसके लिए प्रभुत इतिहास-नाम्बरी सामग्री उपलब्ध है। 'मिलिन्द पञ्च' में ही मिलिन्द को व्यतक (यीस)-प्रदेश का राजा कहा गया है ('योनकानं राजा मिलिन्दो') और उसकी राजधानी सागल (वर्तमान स्यालकोट) को बतलाया गया है। हम जानते हैं कि दूसरी शताब्दी ईसवी पूर्व भारत का उत्तर-पश्चिमी भाग गीक शासकों के हाथ में चला गया था। गीक शासक मेनान्दर या मेनान्द्रोम ही 'मिलिन्द पञ्च' का 'मिलिन्द' है, यह इतिहासवेनाओं का निश्चित मत है। किन्तु इस में नान्द्रोम के शासन-काल की निश्चित तिथि बया है, इसके विषय में अभी एक मत नहीं हो सका है। स्मृति के अनुसार १५१ ई० पूर्व मेनान्दर ने भारत पर आक्रमण किया।<sup>२</sup> राज चौधरी<sup>३</sup> तथा ब्राह्मण<sup>४</sup> के मतानुसार मेनान्दर का

१. अठसालिनी, पृष्ठ ११२, ११४, ११९, १२०, १२२, १४२ (पालि देवसूट सोमाधटो का संस्करण) में बुद्धघोष ने 'आयुष्मान् नागसेन' (आयुष्मा नागसेन स्वविर) 'नागसेन स्वविर' (नागसेन येर) 'आयुष्मान् नागसेन स्वविर' (आयुष्मा नागसेन येर) आदि कह कर मिलिन्द-पञ्च के लेखक को स्मरण किया है।

२. अलो हिस्ट्री ऑब इंडिया, पृष्ठ २२७, २३९, २५८

३. पालिटिकल हिस्ट्री ऑब एन्डियन्ट इंडिया, १९२३, पृष्ठ २०४

४. कलकत्ता रिप्पो, १९२४, पृष्ठ २५०

शासन-काल प्रथम शताब्दी ईसवी पूर्व है। डा० रमेशचन्द्र मेनान्दर का मत है कि १० वर्ष ईसवी पूर्व से पहले मेनान्दर का समय नहीं हो सकता।<sup>१</sup> अधिकतर विद्वानों की जाज मान्यता है कि मेनान्दर का शासन-काल प्रथम शताब्दी ईसवी पूर्व है। जब अपने मूल कल्प में 'मिलिन्द पञ्च' इसी समय लिखा गया, यह निश्चित है। चूंकि श्रीक-शासन मेनान्दर के बाद बीद्र भारत में छुप हो गया था और उसकी कोई स्थायी स्मृति भारतीय इतिहास में अकिञ्चन नहीं है, जब यदि 'मिलिन्द पञ्च' की रचना को मिलिन्द और नागसेन के संवाद के आधार पर एक बाद के युग में लिखी हुई भी मानें तो भी वह युग बहुत बाद का नहीं हो सकता। हर हालत में 'मिलिन्द पञ्च' की रचना ईसवी सन् के पहले ही हो गई थी<sup>२</sup>, और उसका आधार था श्रीक राजा मेनान्दर और भद्रन्त नागसेन का ऐतिहासिक संवाद। 'मिलिन्द पञ्च' की इस विषयक ऐतिहासिकता को प्रमाणित करने के लिए एक और दृढ़तर सादृश भी विद्यमान है। भारत के करीब २२ स्थानों में (विशेषतः मध्यराज्य में) श्रीक राजा मेनान्दर के सिक्के मिले हैं, जिन पर खुदा हुआ है "वेसिलियस नोटिरस मेनान्द्रोस"। एक ओर वर्ष की बात यह है कि इन सिक्कों पर घर्म-चक्र का निशान बना हुआ है, जो उसके बीद्र घर्मांकलम्बी होने का प्रकार प्रमाण देता है। 'मिलिन्द पञ्च' में भी हम पड़ते हैं कि भद्रन्त नागसेन के उत्तरों से सन्तुष्ट हो कर राजा मिलिन्द उससे अपने को उपासक (बीद्र गृहस्थ-शिष्य) के रूप में स्वीकार करने की प्राप्तता करता है— "उपासक में भन्ते नागसेन सारेत्य"।<sup>३</sup> बाद में हम वही यह भी देखते हैं कि राजा

१. विटरनित्यः हिस्ट्री ऑब इंडियन लिटरेचर, जिल्ड द्वितीय, पृष्ठ १७४, पद-संकेत ३ में उद्धृत

२. मिलाइये रायस डेविड्स—विवशासन ऑब किंग मिलिन्द (मिलिन्द प्रदेश का अंग्रेजी नामबाद), भाग प्रथम (सेकेंड बुक्स ऑब दि ईस्ट, जिल्ड ३५) पृष्ठ ४५ (भूमिका); विटरनित्यः हिस्ट्री ऑब इंडियन लिटरेचर, जिल्ड द्वितीय, पृष्ठ १७५

३. पृष्ठ ४११ (बम्बई विश्वविद्यालय का संस्करण)

मिलिन्द ने बाद में अपने राज्य को अपने पुत्र को देकर प्रवृत्त्या यहण कर ली और विद्याना-ज्ञान की बुद्धि करते हुए उसने अहंत्व प्राप्त किया।<sup>१</sup> शीक इतिहास-लेखक एडुटाके का कहना है कि मेनान्डर के मरने के बाद अनेक भारतीय नगरों में उसकी अस्तियों के ऊपर समाधिया बनाइ गईं। स्पष्टतः यह मेनान्डर के बोड्ड होने का साध्य देता है और 'मिलिन्द पञ्च' के वर्णनका समर्थन करता है। भगवान् दुर्द (महापरिनिवाण सूत) और अनेक अहंतों की अस्तियों पर ऐसा ही हुआ था। आचार्य बुद्धधोष के परिनिवर्ण पर इसी प्रकार का वर्णन 'बुद्धधोमुपतिः' पृष्ठ ६६ (जैम्य ग्रन्थारा सम्पादित) में मिलता है। अतः पूर्वोक्त विवरण, एडुटाके का साध्य और सब से अधिक राजा मेनान्डर के सिक्कों पर धर्म-नक्क के चिह्न का पाया जाना, इन सब बातों के प्रकाश में हम 'मिलिन्द पञ्च' के इस साध्य को अस्वीकार नहीं कर सकते कि मेनान्डर बोड्ड हो गया था। इतने ठोस प्रमाणों के होते हुए भी कुछ पाश्चात्य विद्वानों ने यह स्वीक्षार नहीं किया कि मेनान्डर बोड्ड हो गया था।<sup>२</sup> सम्भवतः पाश्चात्य संस्कृति की गौरव-नद्या के अन्तहित भाव ने ही उन्हें इस स्पष्ट सत्य को स्वीकार करने से उम्मुख या उदासीन रकमा है। शीक राजा मेनान्डर और भद्रन्त नागसेन के संवाद के रूप में 'मिलिन्द पञ्च' का लिखा जाता एक निवित प्रतिहासिक तथ्य होते हुए भी वह किसके द्वारा लिखा गया, किस रूप में लिखा गया, बाद में उसमें क्या परिवर्तन या परिवर्द्धन किए गए, आदि समस्याएँ बाकी ही बच रहती हैं। इन समस्याओं पर आजे से पूर्व हमें इतना तो

१. पुस्तक रज्जन निष्पादेस्वा अगारस्मा अनगारियं पश्चजित्वा विष्पस्सनं बड्डेत्वा अरहतं पापुणोति । पृष्ठ ४११ (बन्वई विश्वविद्यालय का संस्करण)

२. मिलाइये रायस डेविड्स : मिलिन्द पञ्च का अंगेजो अनुवाद (किंवदन्स और किं मिलिन्द), भाग प्रथम (सेकेड बुक्स ऑफ वि ईस्ट, जिल्ड ३५) पृष्ठ १९ (भूमिका); स्मिय : अर्ली हिस्ट्री ऑफ हिंदिया, पृष्ठ १८७, २२६; गायगरः पालि लिटरेचर एंड लेंग्वेज, पृष्ठ २७; मे चिड्डाम् इतना तक तो स्वीकार करते हैं कि बोड्डों से उसकी सहानुभूति थी। इससे कुछ अधिक विंटरनिस्त ने इंडियनलिटरेचर, जिल्ड बूसरी, पृष्ठ १७५, पद-कंकेत १ में कहा है। परन्तु स्पष्ट साहस तो सत्य बात कहने का वह भी नहीं कर सके।

निश्चयपूर्वक समझ ही लेता चाहिए कि मूल हृष में 'मिलिन्द पञ्च' का प्रश्नमन, उत्तर-प्रश्नमी भारत में, द्वितीय या प्रथम शताब्दी ईसवी पूर्व हुए, भद्रत नामसे और और अंगीक राजा मेनास्त्र के संवाद के आधार पर, उसी समय या कम से कम प्रथम शताब्दी ईसवी पूर्व के तिकट, बौद्ध धर्म सम्बन्धी शंकार्जी के निवारणात्म हुआ। उसके रचयिता भी भद्रत नामसे ही माने जा सकते हैं। महास्थविर दुःख शोषणात्म की भी यही मान्यता थी। यन्य के नायक होने के साथ साथ उनके इस ग्रन्थ के रचयिता होने में कोई विरोध नहीं है। ऐसी निर्वायकितकता भारतीय साहित्य में अनेक बार देखी जाती है। कम से कम औमती रायस डेविड्स ने जो 'मिलिन्द पञ्च' के रचयिता का नाम 'माणव' बतलाया है<sup>१</sup>, उसके लिए तो कोई ऐतिहासिक आधार नहीं मिलता और उसे उनकी कल्पना से प्रसूत ही समझना चाहिए।

अवसर (विषेषतः पश्चिमी विद्वानों द्वारा) यह कहा जाता है कि 'मिलिन्द पञ्च' एक इकाई-बद्ध रचना नहीं है और उसका प्रणयन भिन्न-भिन्न लेखकों द्वारा भिन्न-भिन्न युगों में आहूँ। परिच्छेदों की एक दूसरे से भिन्नता पूर्व शीली और विषय-वस्तु की भी विभिन्नता के कारण यह मान लिया गया है कि मौलिक हृष में ग्रन्थ बहुत छोटा होगा, सम्भवतः वह मिलिन्द और नामसे ने संवाद के संविप्त विवरण के रूप में था, और बाद में स्वविवरण बौद्ध धर्म को दृष्टि से जो विषय महत्वपूर्ण थे उनको प्राचीन नमूनों के आधार पर इसमें जोड़ा जाता रहे। ग्रन्थ का प्रस्तुत रूप इसी परिवर्द्धन का परिणाम है। 'मिलिन्द पञ्च' के अनेकांशपतामय आन्तरिक साध्य के जलावा एक और प्रभावशाली बाह्य साध्य इस मत के प्रतिपादन में दिया गया है कि प्रस्तुत पालि 'मिलिन्द पञ्च' एक मौलिक रचना में होकर अनेक परिवर्द्धनों का परिणाम है जबवा स्वयं मौलिक हृष से संस्कृत में लिने हुए ग्रन्थ का पालि स्थान्तर है। वह है इस ग्रन्थ का जीनो अनुवाद, जो सन् ३१७ और ४२० ई० के बीच किया गया। पालि 'मिलिन्द पञ्च' में ७ अध्याय हैं, यथा (१) चाहिर कथा, (२) लक्षण पञ्चों, (३) विमतिच्छेदन पञ्चों, (४) मण्डक पञ्चों, (५) अनुमान पञ्चों, (६) घृतंग कथा, तथा (७)

ओपरम्मक्षापन्है। उपर्युक्त चीती अनुवाद में, जिसका नाम वही 'नागसेन सूत्र' दिया गया है, चीते अध्याय से लेकर सातवें अध्याय तक नहीं है। इससे स्वाभाविक तौर पर विद्वानों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि 'मिलिन्द पञ्च' के गहले तीन अध्याय हो गन्ध के मौलिक स्वरूप के परिचयक हैं और बाकी बाद के परिवर्द्धन मात्र हैं। सेवा और बाच्य आदि अनेक विद्वानों के अलावा साधगर<sup>१</sup> और विटरनित्ज<sup>२</sup> भी इसी मत के मानने वाले हैं। उन्होंने इसी के ममर्थन में अन्य कारण भी दिये हैं। एक सब से बड़ा कारण तो यही है कि हमारे प्रस्तुत पालि 'मिलिन्द पञ्च' में ही तृतीय अध्याय के अन्त में लिखा है 'मिलिन्दस्य पञ्चनं पृच्छाविसर्वज्ञा निदित्ता अर्थात्' 'मिलिन्द के प्रश्नों के उत्तर समाप्त हुए।' इतना ही नहीं बाये चीते अध्याय के प्रारम्भ में जो गाथाएं आती हैं, वे एक तरफ ही प्रकार से विषय की प्रस्तावना करती हैं। 'ब्रह्मा, तर्कप्रिय, अत्यन्त बुद्धि-विशारद (राजा) मिलिन्द ज्ञान-विवेचन के लिए नागसेन के पास आया।'<sup>३</sup> जब पहले मिलिन्द के प्रश्न समाप्त ही कर दिये गए तो फिर इस प्रकार विषय का दुबारा अवतरण करने की क्षमा आवश्यकता थी? निश्चय ही निष्पक्ष समालोचकों को इस चीते अध्याय के बाद के भाग की मौलिकता और प्रामाणिकता में सन्देह होने लगता है। यह भी किसने आइये की बात है कि आत्माये ब्रह्मघोष ने भी 'मिलिन्द पञ्च' के जिन अवतरणों को उद्भूत किया है वे प्रायः प्रथम तीन अध्यायों से हो हैं। अतः उन्हीं को अपेक्षाकृत अधिक प्रामाणिक मानना पड़ता है। जहाँ तक इन प्रथम तीन अध्यायों की भी प्रामाणिकता का सवाल है, उनके विषय में भी कुछ विद्वानों ने सन्देह प्रकट किया है। स्वयं विटरनित्ज ने प्रथम अध्याय के कुछ अंशों को मौलिक नहीं माना है। उनके मतानुसार ग्रन्थ को मौलिक प्रस्तावना अपेक्षाकृत कुछ छोटी थी।<sup>४</sup> गाथगर भी इस मत में उनके साथ सहमत है।<sup>५</sup> इसी प्रकार तृतीय अध्याय (विमतिब्लृद्धेन पञ्चो) में भी निरन्तर परिवर्द्धनों की सम्भावना स्वीकार की गई है। इस परिच्छेद

१. पालि लिटरेचर एंड लॉखेज, पृष्ठ २७

२. हिस्ट्री ऑफ इंडियन लिचरेचर, जिल्ड दूसरी, पृष्ठ १७६-१७७

३. भस्साप्पदेवी बेतंडी अतिबुद्धिविचक्षणोः मिलिन्दो ज्ञानभेदाय नागसेनमुपागम्भी॥

४. ५. ऊपर उद्भूत छमतः २ एवं १ पद्म-संकेतों के समान

में मिलिन्द के सन्देहों का निवारण किया गया है। जो-जो सन्देह स्थविरवाद बोढ़ धर्म की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं उन सब का समाधान-सहित समावेश इस परिच्छेद में कराया गया है, ऐसा इन विद्वानों ने मान लिया है। गांधी और थेडर ने तो इस पुरे अचार्य तक को बाद की जोड़ा हुआ मान लिया है, १ जो ठीक नहीं है। पालि 'मिलिन्द पञ्च' और चोनो भाषा में प्राप्त 'नागसेन-मूर्त' में विभिन्नता होने के आधार पर तथा अन्य उपर्युक्त आत्मरिक और बाह्य साक्षों के आधार पर यह मान लिया गया है कि पालि 'मिलिन्द पञ्च' के अध्याय ५ से लेकर ७ तक बाद के परिवर्णन हैं। एक दूसरा निष्कर्ष यह भी निकाला गया है कि 'मिलिन्द पञ्च' के प्रारम्भिक काल से ही अनेक संस्करण या पाठ-भेद हैं। उसने विद्वान् थेडर ने उसके सात पाठ-भेदों का उल्लेख किया है। निश्चय हीं ये सब बातें कल्पना पर आधित हैं और केवल चोनो अनुवाद से पालि 'मिलिन्द पञ्च' की विभिन्नता के आधार पर निकाले हुए अनु-मान मात्र हैं। यह एक अत्यन्त आश्चर्य की बात है कि 'मिलिन्द पञ्च' के प्रृष्ठ को लेकर डा० गायगर जैसे विद्वान् को भी भ्रम में पड़ जाना पड़ा है। उन्होंने यह मान लिया है कि पालि 'मिलिन्द पञ्च' मौलिक रूप से संस्कृत में लिया गया था और इसी सन् के करीब उसका अनुवाद पालि में किया गया। उन्होंने यह भी मान लिया है कि यह अनुवाद लंका में किया गया और प्राचीन नमूनों के आधार पर उसमें अनेक परिवर्णन भी कर दिये गए, मवा पूरण कल्पना, मवखलि गोताल आदि की क्वार्ट-टो-ट्रिनिकाय के सामञ्ज्ञानिक-तुत के आधार पर और रोहण और नागसेन के सम्बन्ध की कथा भावावसं ५११३१ में निर्दिष्ट सिमाव और तिस्स को कथा के आधार पर जोड़ी गई। २ परिवर्तनों की सम्भावना को स्वीकार करते हुए भी (यद्यपि पूरण कल्पना और मवखलि गोताल जादि को 'मिलिन्द-पञ्च' में इवित्तयों का बाचक न समझकर उनके सम्बन्ध के आवायों या पदों का सूचक मान कर उन सम्बन्धों विवरणों को बाद का परिवर्णन मानने को भी अपेक्षा नहीं) 'मिलिन्द पञ्च' का मौलिक संस्कृत से लंका में पालि में रूपान्तरित किया

१. देविये विटरनितक : इंडियन लिटरेचर, जिल्ड दूसरी, पृष्ठ १७७, पद-संकेत २
२. पालि लिटरेचर एंड सोश्योलॉजी, पृष्ठ २७, पद-संकेत २

जाना स्वीकार नहीं किया जा सकता। त्रुटि यह भल डॉ गायगर जैसे विद्वान् को और से आया है, इसलिए इसका उल्लेख यही कर दिया गया है। अन्यथा वह इस योग्य भी नहीं है। 'मिलिन्द पञ्च' निश्चयतः अपने मौलिक पालि रूप में उत्तर-पश्चिमी भारत की प्रथम शताब्दी ईसवी पूर्व की रचना है। सम्भव है उसमें बाद में भी परिवर्तन हुए हो। किन्तु उसका मौलिक रूप आज का सासाठ परिच्छेदों वाला ही रहा हो, इसके लिए भी कम अवकाश नहीं है, क्योंकि जैसाडा० टी० इन्हू० रायस डेविड्स ने सुभाव रखा है सम्भवतः चीनी अनुवादक ने ही अपने अनुवाद में अनितम चार अध्यायों को छोड़ दिया हो।<sup>१</sup> यद्यपि विटरनिल्जन ने उनके इस भल को स्वीकार नहीं किया है<sup>२</sup> हमें चौथी शताब्दी ईसवी में (जिससे पहले चीनी अनुवाद नहीं हुआ था) बृहदीष्य के इस ग्रन्थ के प्रति आदर और अद्भुत-भाव को देख कर सत्य की इसी ओर प्रवणता दिखाई पड़ती है।

जैसा ऊपर कहा जा चुका है, 'मिलिन्द पञ्च' की विषय-सत्त्व सात भागों या अध्यायों में विभक्त है (१) बाहिर कथा, (२) लक्खण पञ्च, (३) विमति-स्थुतेन पञ्च, (४) मेषटक पञ्च, (५) अनुमान पञ्च, (६) श्रुतग कथा और (७) ओपम्मकथा पञ्च। 'बाहिर कथा', 'मिलिन्द पञ्च' को भूमिका है। सर्व प्रथम लेखक ने नामसेन को इस विचित्र कथा (नित्रा नामसेनकथा) को जो, अभिधर्म, विनय और सुत्तों पर समाधित है, और जिसमें विचित्र उपमाएँ और बृक्षितयाँ प्रकाशित की गई हैं, साक्षात् हो कर, जानपूर्वक, बुद्ध-जासन सम्बन्धी सचेहों के निवारणार्थ, सुनने की आद्वान किया है—

अभिधर्मविनयोगात्म्हा सुतजालसमत्यता ।

नामसेनकथा चित्रा ओपम्मेहि नयेहि च ॥

तत्य ब्राण पणिवाय हासयित्वान मानसं ।

मुगाव निरुणे पञ्चे कढखाठानविदालनेति ॥

उसके बाद श्रीक राजा मिलिन्द (मेनान्डर) की राजधानी सागल का रम-शीर्य, काव्यमय बणीन है। "अथ यं अस्तिय योनकानं नानापुटभद्रं सागलं नाम न शरं

१. ऐन्साइक्लोपेडिया ऑफ रिलिनजन एंड एथिक्स, जिल्ड आठवीं, पृष्ठ ३६२,

२. हिस्ट्री ऑफ इंडियन लिटरेचर, जिल्ड द्वासरी, पृष्ठ १७७ पद-संकेत १

नदीपञ्चतसोभितं रमणीयभूमिप्पदेसनामं आरामध्यानोपवनतडागप्रोक्तरलो  
सम्पर्शं नदोपच्चतरामणेष्टकं” आदि । उसके बाद उपर्युक्त सात भागों में गत्य की  
विवरण-सूची तथा फिर नामसेन और मिलिन्दके पूर्व-नाम की कथा है । यह एक  
बड़े आश्वर्यको बात है कि भद्रन्त नामसेन ने अपने और अपने प्रतिबादी मिलिन्द  
के पूर्वनाम (पुच्छयोग, पुच्छकाम) के बर्णन में तो इतनी तत्परता दिखाई  
है, फिर भी अपने वर्तमान जन्म और कर्म के विषय में अधिक जानने का  
हमें अवकाश नहीं दिया । सम्भवतः जिसे हम इतना ठोस समझते हैं वह उसके लिये  
इतना आवश्यक नहीं था और जो कुछ हमें अपने विषय में वह बताना आवश्यक  
समझते थे उसे उन्होंने बहाँ बता भी दिया है । स्थविर नामसेन का जन्म मध्ये  
देश की पूर्वी सीमा पर स्थित, हिमालय पर्वत के सभी पवर्ती कञ्जगढ़ नामक  
प्रसिद्ध कस्बे में हुआ था । उनके पिता का नाम नोगृतर था, जो एक बाध्यक  
थे । तांनों बेदों, इतिहासों और लोकाध्यत वास्त्र का ज्ञान प्राप्ति कर नाम-  
सेन ने स्थविर रोहण से बुद्ध-ज्ञान सम्बन्धी शिक्षा प्राप्त की एवं बौद्ध धर्म  
में प्रवेश किया । तदनन्तर वे बत्तनिय सेनासेन के स्थविर असमगृह (अद्विगृह)  
के पास गये और उनसे शिक्षा प्राप्त की । यहीं उनको सोलापन्न (सोत बापन्न)  
फल की प्राप्ति हुई । तदनन्तर उन्हें पाटलिपुत्र भेज दिया गया, जहाँ उन्होंने  
ने स्थविर धर्मसंरक्षित से बौद्ध धर्म का विशेष अध्ययन किया । यहीं उन्होंने अहंस्व-  
फल की प्राप्ति हुई । इसके बाद वे सागल (सियालकोट) के संस्कैष्य परिवेष  
में गये, जहाँ राजा मिलिन्द से उनको भेट हुई । मिलिन्द की शिक्षा का  
बर्णन करते हुए उसे ‘श्रुति, स्मृति, संख्यायोग (सांख्य योग), नीति, वैशेषिक  
(विसेसिका) आदि १९ वास्तवों का भननशील विद्यार्थी बतलाया गया है । वह  
पूरा तक्तावादी, वित्तावादी और वाद-विवाद में अजेय था, यह भी दिखाया गया  
है । मिलिन्द को दार्शनिक वाद-विवाद से बड़ा प्रेम था और उसने ‘लोकाध्यत’  
सम्बद्ध आदि के अनुयायी मधी विचारकों को परास्त कर दिया था । उसने  
बुद्धकालीन ६ प्रधान आचार्यों की गद्दियों पर प्रतिष्ठित उनके ही समान नाम  
घारण करने वाले छह प्रधान आचार्यों, यथा पूरणकस्मण, मक्षवलि, मोसाल, निर्गुड़,  
माटपुत्र, सञ्जवय वेलदिठपूल, अजित कस कम्बली और पकुष्य-कल्पायन  
के नाम भी अपने मन्त्रियों से मूल रूपों थे, और प्रथम दो से वह मिला भी

वा, १ किन्तु उसकी शान्ति उनसे नहीं हुई थी। अन्त में श्रीक राजा को यह अभिमान होने लगा “तुच्छो वत भो जम्बुदीपो पलापो वत सो जम्बुदीपो । नरिय कोचि-समणो वा ब्राह्मणो वा यो मया सदिं सल्लिपितुं सवकोति कंलं पठिविनोदेतुति ।” “तुच्छ है भारतवर्ष ! प्रलाप मात्र है भारतवर्ष ! यहाँ कोई ऐसा अमण या ब्राह्मण नहीं है जो मेरे साथ, मेरे साथेहो के निवारणाथं संलाप भी कर नके ।” मिलिन्द के इन शब्दों में हम तुच्छिवारी ग्रीक ज्ञान की गौरवमय दृक्कार देखते हैं। भारतीय राजा का मौरव भदन्त नामसेन के रूप में अपनी सारी सचित ज्ञानगरिमा को लिये हुए अन्त में उसे मिल गया। नामसेन के ज्ञान की प्रवर्णना में कहा गया है कि उन्होंने अपनी अल्पावस्था में ही निर्षटु आदि के सहित तीनों देवों को एड़ लिया था, और वे इतिहास, व्याकरण, लोकायत आदि शास्त्रों में पूर्ण निष्ठापात थे।<sup>१</sup> उसके बाद प्रत्रजित हो कर उन्होंने अभिधर्म के सात प्रकरणों तथा अन्य तेपिटक बुद्ध-वचनों को अपने गुह रोहण से पदा था। पहले उन्होंने घमंरक्षित नामक भिन्न के साथ गाटिलपुत्र में निवास किया। बाद में आयुपाल नामक भिन्न के निमंशन पर वे हिमाचल-प्रदेश के संस्कृत्य परिवेश नामक विहार में बढ़े गये। वही राजा मिलिन्द उनसे मिलने के लिए गया। ‘अद्य खो मिलिन्दो राजा येनायस्मा नामसेवो देनोपसंगमि’ (उदनन्तर राजा मिलिन्द जहाँ आयुपाल नामसेन थे, वहाँ गया ।)

कुशल-प्रदेश पूर्णे और परिचय प्राप्त करने में ही दार्शनिक संलाप छिह्न गया। संवाद भी उस प्रदेश पर जो बुद्ध-दर्शन की आधार-भूमि है। अनात्म लक्षण। राजा मिलिन्द नामसेन के पास जा कर बैठ जाता है और उनसे पूछता है—

१. यूरोपीय विद्वानों ने पूरण कस्तप, मक्षलि गोसाल आदि के नाम देख कर ही यह समझ लिया है कि यहाँ ‘मिलिन्द पञ्च’ के लेखक ने इन बुद्धकालीन आचारों का उल्लेख किया है। यह एक भ्रम है। देखिये मिलिन्द प्रश्न, (हिन्दी अनुवाद) को बोधिनी में भिन्न जगत्वों का विषय का बनाये तिप्पणी

२. तीसू वेदेत् सनिर्वाङ्केदुभेत् माक्षरप्पमेदेत् इतिहासपञ्चमेत् पदको वेद्याकरणो लोकायतमहायुरिसलक्षणेत् अनवयो जहोति । पृष्ठ ११ (बम्बई विद्यविद्यालय का संस्करण)

"भन्ते ! आप किस नाम से पुकारे जाते हैं ? आपका नाम क्या है ?"

(कि नामोसि भन्तेति)

"महाराज ! मे 'नागसेन' नाम से पुकारा जाता है। सब्रह्मचारी भिन्न मुझे यही कह कर बुलाते हैं। माता-पिता अपने बच्चों के इस प्रकार के नाम रखते हैं, जैसे 'नागसेन', 'सूरसेन' आदि। लेकिन ये सब नाम केवल व्यवहार के लिए हैं। तात्त्विक दृष्टि से इस प्रकार का कोई व्यक्ति उपलब्ध नहीं होता ।

(न हेत्य पुगालो उपलब्धतोति)

यस, संप्रश्न और सवाद का पूरा क्षेत्र खुल गया ।

"भन्ते ! नागसेन ! यदि यथार्थ मे कोई व्यक्ति है ही नहीं तो आपको अपनी आवश्यक वस्तुएँ कौन देता है ? उन वस्तुओं का उपभोग कौन करता है ? पुण्य कौन करता है ? ध्यान कौन लगाता है ? आद्य-मार्ग और उसका फल निर्वाण कौन प्रत्यक्ष करता है ? . . . . . भले-बुरे का फिर तो कोई कर्ता ही नहीं ? आपका कोई गुरु भी नहीं ? आप उपसम्पद भी नहीं ? आप कहते हैं आपको लोग 'नागसेन' नाम से पुकारते हैं। नागसेन है क्या ?

"क्या केवल नागसेन है ?"

"केवल किस प्रकार नागसेन हो सकते हैं ?"

"तो क्या नख, दौत, चमड़ी, मास, शरीर नागसेन है ?"

"रुजन् ! ये भी नहीं ।"

"तो क्या पञ्च स्कन्धों का संयोग नागसेन है ?"

"नहीं महाराज !"

"तो क्या फिर हङ्ग, वेदना, सज्जा, सत्कार, विज्ञान, इन पांच स्कन्धों से कोई व्यतिरिक्त वस्तु नागसेन है ?" (कि पन भन्ते अञ्जन व्यवेदनासंज्ञा-संखारविज्ञान नागसेनोति)

"नहीं महाराज !" (नहि महाराजाति)

मिलिन्द राजा चक जाता है। उसकी बुद्धि आसे संप्रश्न करना नहीं चान्ती ।

"भन्ते ! मे पूछते पूछते हार गया, फिर भी मे यह त जान सका कि 'नागसेन' क्या है ? तो क्या 'नागसेन' केवल एक नाम ही है ? अनतः 'नागसेन' है क्या

वास्तव में ? भन्ते ! आप असत्य बोल रहे हैं कि 'नामसेन' नाम का कोई व्यक्तित्व यथार्थ में विचमान नहीं है ! "

बिंदाकादी मिलन्द की बुद्धि को परिश्रान्त बानकर भवन्त नामसेन उसे कुछ आसान मार्ग से समझाना चाहते हैं।

"महाराज ! आपका जन्म तो धात्रिय-कुल में हुआ है। इसलिए स्वभावत आप सुकुमार हैं। फिर भी आप इतनी गर्भी में दोपहर को यहाँ चले ही आये। मुझे विश्वास है कि आप जरूर यक गये होगे। आप पैदल आये हैं या रथ पर ? "

"भन्ते ! मैं पैदल नहीं चलता हूँ। मैं रथ पर आया हूँ।"

"महाराज ! यदि आप रथ पर आये हैं तो कृपया मुझे यह बताइये कि रथ है क्या ? "

"क्या रथ के बास रथ है ? "

"नहीं भन्ते ! रथ के बास रथ नहीं हो सकते।"

"तो क्या शूरा, पहिये, रस्से, जुबा, पहियों के ढंडे, अथवा बैल हौकने की लाठी, रथ हैं ? "

"नहीं भन्ते ! "

"तो फिर कहिये कि क्या रथ इनसे अलग कोई वस्तु है ? "

"नहीं भन्ते ! यह कैसे हो सकता है ? "

"राजन् ! मैं पूछ पूछ कर हार गया। उस पर भी मैं त बात सकता कि यथार्थ में रथ क्या है ? तो फिर क्या आपका रथ केवल एक नाममात्र है ? राजन् ! आप असत्य बोल रहे हैं कि आप रथ पर आये हैं। आप इस सारे जन्मद्वीप (भारतवर्ष) में सब से प्रतापी राजा हैं। तो फिर आप किसके डर से असत्य बोल रहे हैं ? "

"भन्ते ! मैं असत्य नहीं बोल रहा हूँ। रथ के बास, पहिये, रथ का ढींचा, पहियों के ढंडे, हौकने की लकड़ी, इन भिज्ज मिज्ज हिस्सों पर 'रथ' का अस्तित्व निर्भर है। 'रथ' एक शब्द है जो केवल व्यवहार के लिये है। "रथोति संखा समञ्जा पञ्जाति बोहारो नाममत्तं पवतीति ।"

"ठीक है महाराज ! आपने यथार्थ 'रथ' को समझ लिया। ठीक हमी प्रकार व्यक्ति की भी हालत है। रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान, इन पाँच स्कंधों पर मेरा अस्तित्व निर्भर है। 'नामसेन' शब्द केवल व्यवहारमात्र है। यथार्थ मे

'नागसेन' नाम का कोई व्यक्तित्व विद्यमान नहीं है। परमार्थ रूप से व्यक्ति की उपलब्धि नहीं होती। "परमस्त्वतो परमेत्य पुमालो नूपलङ्घति ।"

भद्रन्त नागसेन की यह अनात्मवाद की व्याख्या बड़ी महत्त्वपूर्ण है। इसके उद्दरण के बिना मूल बृद्ध-वर्णन सम्बन्धी अनात्मवाद का कोई भी विवेचन पूरा नहीं माना जा सकता। कहीं तक भद्रन्त नागसेन ने बृद्ध-मन्त्रव्य निषेधात्मक दिशा में बढ़ाया है, अबवा कहीं तक उन्होंने उसके यथावैरुप्य का ही विवरण किया है, इसके विषय में विभिन्न मत हो सकते हैं। पहले मत का प्रतिपादन योग्यतापूर्वक डा. राधाकृष्णन ने किया है,<sup>१</sup> जबकि इसी कारण महापंडित राम्ल सांकुलायन ने भारतीय दर्शन-शास्त्र का इतिहास लिखने की उनकी योग्यता को ही सदेह की दृष्टि से देता है।<sup>२</sup> इस विवाद में भाग न लेकर हम इतना ही कह देता अपने प्रस्तुत उद्देश्य के लिये पश्चित् समझते हैं कि चाहे नागसेन की अनात्मवाद की व्याख्या बृद्ध-मन्त्रव्य का यथावृत् निर्देशन करती ही या चाहे उन्होंने उसे निषेधात्मक दिशा में बढ़ाया हो, वह अपने आप से महत्त्वपूर्ण अवश्य है। न बोल स्थविरवादी बौद्ध साहित्य में ही, अपितु सम्पूर्ण बौद्ध साहित्य में, बृद्ध-वचनों को छोड़कर, अनात्मवाद का उससे अधिक सुन्दर, उससे अधिक आकर्षक और उससे अधिक गम्भीर विवेचन कहीं नहीं मिल सकता। अतः बौद्ध दर्शन और बौद्ध साहित्य के विषयी के लिये हर हालत में उसका जानना आवश्यक है।

अनात्मवाद की उपर्युक्त व्याख्या मान लेने पर पूनर्जन्मवाद के साथ उसकी संरक्षिति किस प्रकार लगाई जा सकती है, यह भी समस्या मिलिन्द के सिर में चढ़कर लगती है। वह भद्रन्त नागसेन से पूछता है

"भन्ते नागसेन कौन उत्पन्न होता है ? क्या उत्पन्न होने पर व्यक्ति वही रहता है या अन्य हो जाता है ? यो उप्पज्जति सो एव सो उदाहृ अञ्जोति ।"

"न तो वही और न अन्य ही—न च सो न च अञ्जोति" स्थविर कहते हैं।

१. इंडियन फिलासफो, जिल्ड पहली, पृष्ठ ३८२-९०; कीर्ति, श्रीमती रायस डेविड्स और विदरनिलत की भी कुछ कुछ इसी प्रकार की मान्यता है, वेत्तिये विदरनिलत : इंडियन लिटरेचर, जिल्ड द्विसरी, पृष्ठ १७८, यद-संकेत ३।

२. दर्शन दिग्दर्शन, पृष्ठ ५३१-५३२।

राजा की समझ में यह उत्तर नहीं आता । स्थविर उदाहरण देकर समझाते हैं कि जब पुरुष बच्चा होता है और जब वह तरुण युवा होता है, तब क्या वह बालक और युवा एक ही होता है ? नहीं ऐसा नहीं होता । बालक अन्य होता है और वह तरुण युवा अन्य होता है । किन्तु यदि यही मान लिया जाय कि बालक अन्य होता है और तरुण अन्य होता है तो फिर न कोई किसी की माता रहेगी, न कोई किसी का पिता रहेगा, न आचार्य रहेगा..... ! फिर तो ऐसी ही प्रतीति होगी कि यह मर्म की प्रथम अवस्था की माता है, यह दूसरी अवस्था की माता है, यह तीसरी अवस्था की, जो सब आपस में भिन्न भिन्न है, अन्य से अन्य हो गये हैं । क्या एक ही व्यक्ति के बालकपन की माँ भिन्न है उसको युवावस्था की माँ से ? अज्ञा खुद-कर्त्ता माता अज्ञा महृत्तम माता ! विद्यार्थी जब पाठशाला में पढ़ने जाता है तब क्या वह अन्य ही है ? और जब वह विद्यालयमें समाप्त करता है अन्य ही है ? 'अज्ञो सिष्यं निकलति अज्ञो सिक्षितो भवति— अन्य ही शिल्प सीखता है, अन्य ही शिखित होता है ? अन्य ही पाप करता है और अन्य के ही अपराध-स्वरूप हाथ-पैर काटे जाते हैं ? राजा बबड़ा जाता है क्योंकि वह पहले स्वयं ही स्वीकार कर कुका है कि बालक अन्य होता है और तरुण अन्य । अतः कुछ समझ नहीं सकता कि उसे क्या कहना चाहिए । विदेश होकर वह भद्रन्त मामसेन से कहता है "मन्ते ! आप ही मुझे बताइये कि क्या बात है ? त्वं पन भन्ते एवं बुते कि बदेश्यसीति । भन्ते ! ऐसा पूछने पर आप स्वयं क्या कहेंगे ? स्थविर उसे समझाते हैं कि "धर्मों के लगातार प्रवाह से, उनके संघात रूप में आजाने से, एक चरपन्ह होता है, दूसरा निश्च द्वारा होता है, और यह तब ऐसे होता है जैसे मानो युगपत्, एक-साथ हो । इसलिए, न तो सर्वधा उसी की तरह और न सर्वधा अन्य की तरह, वह जीवन की अनितम चेतनावस्था पर आता है ।" १ फिर भी मिलिन्द पूरी तरह सन्तुष्ट नहीं हो पाता और वह पूछता है

१. एवमेवं शो भृत्याज धर्मसन्ति सन्दहति, अज्ञो उप्पज्जति, अज्ञो निसञ्जति, अपुब्बं अचरितं विषय सन्दहति, तेन न च सो न च अज्ञो पुरिस-

"मत्ते नामसेन ! पर क्या है वह जो जन्म ग्रहण करता है ? मत्ते नामसेन को पटिसन्दहति ?

"हे महाराज ! नाम-रूप जन्म ग्रहण करता है । नाम-रूप स्तो महाराज पटिसन्दहति ।"

"क्या यही नाम-रूप<sup>१</sup> जन्म ग्रहण करता है ?" "महाराज ! यह नाम-रूप जन्म ग्रहण नहीं करता, किन्तु इस नाम-रूप के द्वारा जो शुभ या अशुभ कर्म किये जाते हैं और उन कर्मों के द्वारा जो अन्य नाम रूप उत्पन्न होता है, वही जन्म ग्रहण करता है, ॥<sup>२</sup> आगे समझाते हुए स्थविर कहते हैं "हे राजन् ! मृत्यु के समय जिसका अन्त होता है वह तो एक अन्य नाम-रूप होता है और जो पुनर्जन्म ग्रहण करता है वह एक अन्य होता है । किन्तु द्वितीय (नाम-रूप) प्रथम (नाम-रूप) में से ही निकलता है<sup>३</sup>.....अतः हे राजन् ! असंसन्तति ही संसारण करती है, जन्म ग्रहण करती है—एवमेव स्तो महाराज घम्मसन्तति सन्दहति ।"

इस प्रकार भद्रन्त नामसेन ने अनात्मबाद के साथ पुनर्जन्मबाद की संभवति मिलाने का प्रयत्न किया है, जो बीढ़ दर्शन की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है । द्वितीय परिच्छेद (लक्षण पञ्चो) की मूर्ख विषय-कस्तु इतनी ही है ।

तृतीय परिच्छेद (विमतिच्छेदन पञ्चो) में राजा के सन्देहों (विमति) का, जो उसे अनेक छोटे छोटे विषयों पर हुए थे, भद्रन्त नामसेन द्वारा निवारण किया गया है । इस प्रकार के अनेक सन्देहों को इस परिच्छेद में विवरण किया गया है, जिसमें से कुछ का ही निवारण यहाँ किया जा सकता है । उदा-

विज्ञाने पञ्चमविज्ञाण संगहं गच्छतीति । मिलिन्दपञ्चो, लक्षणपञ्चो,  
पृष्ठ ४२ (बन्धई विश्वविद्यालय का संस्करण)

१. नाम अर्थात् सूक्ष्म चित और चेतातिक धर्म । रूप अर्थात् चार महाभूत और उनका विकार ।

२. न स्तो महाराज इस येव नामरूपं पटिसन्दहति । इमिना पन महाराज नामरूपेन कर्म करोति सोभनं वा पापकं वा, तेन कर्मेन अज्ज नामरूपं पटिसन्दहतीति । ३. एवमेव स्तो महाराज किञ्चापि अञ्जनं मरणान्तिकं नामरूपं अञ्जं पटिसन्धित्वम् नामरूपं अपि व ततो येव तं निवारति ।

हरणतः मिलिन्द पूछता है "भन्ते नागसेन ! क्या तुम्ही लोक मिलिन्द प्राप्त कर लेते हैं (भन्ते नागसेन सब्बेव लभन्ति निष्पाणति) ? भन्ते नागसेन ! क्या बुद्ध अनुत्तर है ? 'भन्ते नागसेन ! क्या बुद्ध सर्वज्ञ, सर्वविजी है ?' 'क्या बुद्ध ब्रह्मचारी है ?' 'क्या उपसंपदा (मिथु-संस्कार) ठीक (मूल्दर) है ? 'भन्ते नागसेन ! कितने आकारों से स्मृति उत्पन्न होती है ? 'भन्ते नागसेन ! आप कहते हैं इवास-प्रद्वास का निरोध किया जा सकता है । कौसे भन्ते ?'" "भन्ते नागसेन ! भगवान् ने क्या कार्य अत्यंत दुष्कर किया है ?" आदि, आदि । भद्रन्त नागसेन ने इन सब प्रश्नों और सन्देहों का अत्यंत मनोरम बीकी में उत्तर दिया है । प्रश्नकर्ता और उत्तरदाता दोनों ही अपने अपने प्रश्नों तरंगों से अन्त में संतुष्ट दिखाई पड़ते हैं । राजा मिलिन्द को ऐसा लगता है "जो सब मैंने पूछा, मध्यका भद्रन्त नागसेन ने मुझे उत्तर दिया (सब्बं मया पुच्छितं ति सब्बं भद्रन्तेन नागसेनेन विस्तज्जितं ति । भद्रन्त नागसेन को भी ऐसा होता है "जो सब राजा मिलिन्द ने मुझसे पूछा उस सब का मैंने उत्तर दे दिया (सब्बं मिलिन्देन रक्त्रा पुच्छितं, सब्बं मया विस्तज्जितंति ।"

उठकर मिथु संघाराम में चले गये । राजा मिलिन्द भी अपने साथियों के साथ छोट गया । यह तीसरे परिच्छेद की विषय-वस्तु का संधेष है ।

कुछ दिन बाद राजा मिलिन्द फिर भद्रन्त नागसेन के दर्शनार्थ आता है । इस बार वह उन विरोधों को भद्रन्त नागसेन के सामने रखता है जो उसे त्रिपिटक बुद्ध-वचनों के अन्दर मालूम पड़े हैं । मिलिन्द ने सनतपूर्वक एक बुद्धिवादी की तरह त्रिपिटक के विभिन्न बन्धों को पढ़ा है । उसे उनके अन्दर अतेक गारस्तरिक विरोधी वातें दिखाई पड़ी हैं । उन्हें वह भद्रन्त नागसेन के सामने एक-एक करके रख रहा है । भद्रन्त नागसेन उनका उत्तर देते हैं । 'मिलिन्द-पञ्च' का चौथा परिच्छेद, जो इस मन्त्र का सबसे लम्बा परिच्छेद है, इन्ही सबधी प्रश्नोंतरों का विवरण है । ऊपर से विरोधी दिखाई देने वाले त्रिपिटक के विभिन्न विवरणों या बुद्ध-वचनों के विरोध का परिहार और उनमें समन्वय-स्थापन, यही इस परिच्छेद का लक्ष्य है, जो त्रिपिटक के विद्यार्थियों के लिए सदा महत्वपूर्ण रहेगा । इस प्रकरण में राजा मिलिन्द ने जो प्रश्न पूछे हैं या सुलभाते के लिए विरोधी वाक्य रखते हैं, वे इतने नाना

प्रकार के हैं कि उनका संझेप देना बड़ा कठिन है। केवल कुछ उदाहरण देकर हम उनके स्वरूप और जीली की ओर संकेत भर कर सकेंगे। भद्रत के चरणों में गिर रखकर, हाथ जोड़कर राजा ने कहा, “भन्ते नागसेन, !! भगवान् ने यह कहा ‘आनन्द ! पाँच सौ वर्ष तक सदर्म ठहरेगा ।’ पुनः जब परिनिधिंश के समय सुभद्र परिव्राजक ने भगवान् गे पूछा तो उन्होंने कहा ‘सुभद्र ! यदि भिजु ठोक तरह विहार करेंगे तो यह लोक अहंता से कभी शून्य नहीं होगा ।’ यदि भन्ते नागसेन ! तथागत से यह कहा कि सदर्म पाँच सौ वर्ष ठहरेगा तब तो यह बचन कि यह लोक कभी अहंता से शून्य नहीं होगा, मिथ्या ठहरता है। और यदि तथागत ने यह कहा कि यह लोक कभी अहंता से शून्य नहीं ठहरेगा, तो फिर यह बचन कि सदर्म पाँच सौ वर्ष ठहरेगा, मिथ्या ठहरता है ? भन्ते नागसेन ! यह दोनों ही ओर से कठिनता पैदा करने वाला, गहन से भी गहनतर, बलवान् से भी बलवत्तर, जटिल से भी जटिलतर, प्रश्न आपकी सेवा में उपस्थित है ।” “भन्ते नागसेन ! भगवान् ने यह कहा है ‘भिजुओ ! मे जानकर ही घर्मोपदेश करता है, विना जाने नहीं ।’ पुनः उन्होंने विनय प्रज्ञाप्ति के समय यह भी कहा ‘आनन्द ! यदि संघ चाहे तो मेरे बाद छोटे-मोटे (बुद्रानुभद्र) शिक्षापदों को छोड़ दे । भन्ते नागसेन ! क्या भुद्रानुभद्र शिक्षापद विना जान बुभकर ही दिये हुए उपदेश हैं जो भगवान् ने उन्हें अपने बाद छोड़ देने के लिए कहा । भन्ते नागसेन ! यदि भगवान् का यह कहना ठोक है कि मे जान बुभकर ही उपदेश करता हूँ, विना जाने-बूझे नहीं, तो भगवान् का यह बचन मिथ्या है ‘यदि संघ चाहे तो मेरे बाद भुद्रानुभद्र शिक्षापदों को छोड़ दे, और यदि सचमूच ही भगवान् ने यह कहा कि मेरे बाद सच भुद्रानुभद्र शिक्षापदों को छोड़ दे, तो उनका यह कहना मिथ्या है कि मे जान बुभकर ही उपदेश करता हूँ, विना जाने बूझे नहीं । वह भी दोनों ओर से कठिनता पैदा करने वाला सूधम, निपुण, गम्भीर और उलझन है जो आपकी सेवा में उपस्थित है । आप मुझे समझावें ।” “भन्ते नागसेन ! भगवान् ने कहा है ‘तथागत को घर्मी में आकाशं-मुण्डि (न बताने योग्य बात) नहीं है ।’ किन्तु जब मालुक्षपृष्ठ ने उनसे प्रश्न पूछा तो भगवान् ने उसकी व्याख्या नहीं की, उसे नहीं

बताया । क्या भगवान् जानते नहीं थे, इसलिए नहीं बताया, या भगवान् को वह रहस्य ही रखना था, इसलिए नहीं बताया । भन्ते नागसेन ! यदि भगवान् ने यह ठीक ही कहा था कि तथागत को रहस्य रखना नहीं है तो फिर वहा उन्होंने न जानने के कारण ही (अजानन्तेन) ही उसे नहीं बताया । यदि जानने पर भी नहीं बताया, तब तो फिर तथागत की आचार्य-मुट्ठि (रहस्य-रखना) है ही । यह भी दोनों ओर कठिनता पैदा करने वाला प्रश्न आपकी सेवा में उपस्थित है । "भन्ते नागसेन ! आप कहते हैं कि तथागत को भोक्ता, वस्त्र, निवास-स्वान, पश्य-ओषधादि सामग्री सदा मिल जाती थी । फिर आप कहते हैं एक बार पञ्चशाल नामक ब्राह्मण-साम-में से भगवान् विना भिक्षा प्राप्त किये ही धुले-धुलाये भिक्षापात्र को लेकर लौट आये । . . . भन्ते नागसेन यह भी दोनों ओर कठिनता पैदा करनेवाला प्रश्न आपकी सेवा में उपस्थित है ।" "भन्ते नागसेन ! भगवान् ने यह कहा 'आनन्द ! तुम तथागत के शरीर को पूजा की चिन्ता मत करो ।' पुनः उन्होंने यह भी कहा 'पूजनीय पुरुष की धातुओं को पूजा करो ।' . . . दोनों ओर कठिनता पैदा करने वाला प्रश्न आपकी सेवा में उपस्थित है ।" इस प्रकार के असेक विरोधाभास-मय प्रश्न राजा मिलिन्द ने भद्रन्त नागसेन के सामने रखे हैं, जिनका उन्होंने अपनी अद्भुत धौली में उत्तर दिया है । प्रत्येक बौद्ध दर्शन के विचारी के लिए उनका पड़ना अनिवार्य है । साहित्य की दृष्टि से भी वे जपने भृत्य में अद्वितीय है ।

'मिलिन्द पञ्चह' के पाँचवें परिच्छेद का नाम है 'अनुमान पञ्चो' (अनुमान प्रश्न) । एक बार फिर मिलिन्द राजा भद्रन्त नागसेन के दर्शनार्थ जाता है । वह उनसे पूछता है "भन्ते नागसेन ! क्या आपने बृद्ध को देखा है (कि पन बृद्धो तथा दिट्ठीति) "नहीं महाराज" (नहिं महाराजाति) "क्या आपके

आत्माओं ने बुद्ध को देखा है (कि पन ते आवश्यक हिंदुओं दिट्ठीति) " "नहीं महाराज ! " "भन्ते नागसेन ! यदि आपने भी बुद्ध को नहीं देखा, आपके आत्माओं ने भी बुद्ध को नहीं देखा, तो भन्ते ! मे समझता हूँ बुद्ध है ही नहीं, बुद्ध का कुछ पता ही नहीं ।" यदि निसी आधुनिक विद्वान् के सामने यह प्रश्न रखता जाता तो वह उन ऐतिहासिक कालगणों का उल्लेख करता जिनके आधार पर बुद्ध का अस्तित्व प्रमाणित किया जाता है । किन्तु नागसेन कालवादी नहीं है । वे धर्मवादी हैं । उनके लिए बुद्ध का धर्म ही बुद्ध के अस्तित्व को प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त है । 'धर्म' के अस्तित्व से ही बुद्ध के अस्तित्व का अनुमान कर लेना चाहिए, यही इस संपूर्ण परिच्छेद की मूल ध्वनि है । "महाराज ! उन भगवान् सम्बद्ध द्वारा प्रयुक्त ये वस्तुएँ जैसे कि चार स्मृति-प्रस्तावन, चार सम्बद्ध-प्रधान, चार अद्विपाद, पांच इन्द्रिय, पांच बल, सात बोध्यग और बार्य अष्टांगिक मार्ग अभी विद्यमान हैं । उनको देखकर ही पता लगा लेना चाहिए कि भगवान् बुद्ध अवश्य हुए हैं ।" "बहुत जनों को तारकर उपाधि(आवागमन-कारण) के मिट जाने से भगवान् निर्बाण को प्राप्त कर चुके । इस अनुमान से ही जान लेना चाहिए कि वे पुरुषोत्तम हुए हैं ।" "संसार के मनुष्य और देवताओं ने धर्मामृत को प्राप्त किया है, यही देखकर पता लगा लेना चाहिए कि धर्म की वही लहर अवश्य वही होगी ।" "उत्तम गन्ध की महक पाकर लोग पता लगा लेते हैं कि जैसी गन्ध वह रही है उससे मालूम होता है कि कूल पुण्यित अवश्य हुए होंगे । जैसे ही यह शील की गन्ध जो देवताओं और मनुष्यों में वह रही है, इसी से समझ लेना चाहिए कि लोकोत्तर बुद्ध अवश्य हुए होंगे । आदि, आदि । इसी प्रसंग में 'धर्म-नगर' (धर्म रूपी नगर) के सून्दर सांगोपांग रूपक का भी वर्णन किया गया है ।

छठे परिच्छेद में फिर राजा मिलिन्द भद्रन्त नागसेन के पास जाता है और इस बार वह उनसे फिर एक महत्वपूर्ण प्रश्न पूछता है "भन्ते नागसेन ! क्या कोई मुहस्य विना घर को छोड़े, विषय का भोग करते हुए, स्त्री-पूत्रादि से विरा हुआ, माला-गन्ध-विलेपन को धारण करता हुआ, सोन-चादी का बास्वादन लेता हुआ, . . . शान्त, निर्बोधपद को साक्षात्कार कर सकता

है ?" इसी के उत्तर में आगे बढ़ने वाले भद्रत नागरेन १३ अवधूत नियमों (धूतग) के विवेचन पर आ जाते हैं। इस परिच्छेद का नाम ही 'धूत-ज्ञ कथा' अर्थात् 'अवधूत-ज्ञता का विवरण' है। वास्तव में 'मिलिन्द-पञ्चल' की विषय-वस्तु की अपेक्षा यह 'विसुद्धि-माण' (द्वितीय परिच्छेद) की विषय-वस्तु का अधिक अभिल्प अंग है। अतः इन अवधूत-ज्ञता की अधिक विवरण न देकर यहाँ उनके नाम निर्देश कर देना ही आवश्यक होगा। अवधूत-ज्ञता की संख्या १३ है, जो इस प्रकार है— (१) पांशुकूलिक (फटे-युराने वस्त्रों को साफ कर उनसे सीधे हुए लम्ब धूतने का नियम (पांशुकूलिकंग) (२) तीन चौबर (भिक्षु-वस्त्र) पहनने का नियम (ते चौबरिकंग) (३) भिक्षाग्र मात्र पर ही निर्वाह करने का नियम (पिण्डपातिकंग) (४) एक घर से दूसरे घर, विना किसी घर को छोड़े हुए, भिक्षा मांगने का नियम (सपदानवारिकंग) (५) भोजन के लिए दूसरी बार न चैठने का नियम (एकासनिकंग), (६) केवल एक भिक्षापात्र में जितना भोजन आ जाय उतना ही भोजन करने का नियम (पत्तपिदिकंग) (७) एक बार भोजन समाप्त कर लिने पर किछु कुछ न खाने का नियम (खलूपच्छाभति कंग) (८) बनवासी होने का नियम (आरचिक्रकंग) (९) वृद्ध के नीचे रहने का नियम (गवत्तमूलिकंग) (१०) खुले आकाश के नीचे रहने का नियम (बद्धोका-निकंग) (११) धमशान में बास करने का नियम (सोसानिकंग) (१२) यथा-प्राप्त निवास-स्थान में रहने का नियम (यथासन्धतिकंग) और (१३) न लेटने का नियम (नेसजिजकंग)।

सातवें परिच्छेद (ओपम्मकान्नापञ्चल) में उपमाओं के द्वारा यह बताया गया है कि ब्रह्मत्व को साक्षात्कार करने की इच्छा करने वाले व्यक्ति को किस प्रकार नाना गुणों का सम्पादन करना चाहिये। किस प्रकार उसे कछुए के पांच गूण ग्रहण करने चाहिये, कौए के दो गूण ग्रहण करने चाहिये, हिरन के तीन गूण ग्रहण करने चाहिये, आदि, आदि। संवाद के आरम्भ से लेकर अन्त तक भद्रत नागरेन के गीरव की रक्षा की गई है। आरम्भ से ही उन्होंने राजा से तथ्य कर लिया है कि संवाद 'पहिलवाद' के दृग से होता, 'राजवाद' के दृग से नहीं। राजा सदा उनसे नीचे आसन पर बैठता है। प्रथम बार ही उनके उत्तर से सन्तुष्ट होकर वह उनका भवत बन जाता है। वह उनके गौरों में अपने सिर को रख देता है और विनाशता पूर्वक ही

प्रत्येक प्रश्न को पूछता है। अन्त में तो, जैसा हम पहले देख चुके हैं, वह उनका उपासक ही बन जाता है, और बुद्ध की, घम्म की ओर संघ की ओर जाता है, जो इतिहास के साथ के ढारा भी प्रमाणित है।

'मिलिन्द पञ्च' वाचनिक और वाचिक दृष्टि से तो एक महाप्रथा है ही। साहित्यिक और ऐतिहासिक महत्व भी उसका अल्प नहीं है। यद्यपि स्थविरवाद वौद्ध-धर्म का वह कण्ठहार है, जिसकी प्रतिष्ठा वही बुद्ध-चरनों के समान ही मान्य है, वह भारतीय साहित्य की भी अमूल्य निधि है। यद्यपि लंका, बरमा और न्याम के समान भारत में उसकी आधुनिक लोक-भाषाओं में 'मिलिन्द पञ्च' संबंधी प्रचुर साहित्य नहीं लिखा गया, किन्तु इस कारण उसे उस गौरव से, जो 'मिलिन्द पञ्च' ने भारतीय साहित्य को दिया है, वर्चित कर देना ठीक नहीं होगा। 'मिलिन्द पञ्च' प्रब्रह्म शताब्दी ईसवी पूर्व की प्रभावशाली भारतीय गद्य-शैली का सर्वोत्तम नमूना है। विवेचनात्मक विषयों के लिए उपयुक्त हिन्दी की नव शैली का तो विकास हमारे साहित्य में अभी हुआ है। अंग्रेजी साहित्य की भी इस संबंधी परम्परा १००-२०० वर्ष से पहले नहीं जाती। बाण और दण्डी का गद्य भी निश्चय ही इसके लिए उपयुक्त नहीं था। इस दृष्टि से 'मिलिन्द पञ्च' की विचारात्मक गद्य-बद्ध शैली कितनी महत्वपूर्ण है, इसका सम्यक् अनुमापन ही नहीं किया जा सकता। लेखक का ग्रन्थाधिकार और उसकी शैली की प्रबाहरीता, उसका अनुवाद शब्दज्ञन, प्रभावशाली कथन-प्रकार, उपमाओं और युक्तियों के द्वारा उसका स्वाभाविक अलंकार-विवाह, सबसे बड़ा कर उसकी सरलता और प्रसारगुण, ये सब गुण उसे साहित्यिक गद्य के निर्भाताओं की उस श्रेणी में बैठा देते हैं, जहाँ उसका तेज़ सर्वोग्रहि है।<sup>१</sup> प्राचीन भारतीय गद्य-साहित्य में 'मिलिन्द पञ्च' के समान कोई रचना न पाकर ही

१. पुष्ट श्लोक डॉ रायस डेविड्स 'मिलिन्द पञ्च' की गद्य शैली के बड़े प्रशंसक थे।

देखिये उनके मिलिन्दपञ्च के अंग्रेजी अनुवाद, (वि विद्यास ऑफ किंग मिलिन्द, सेकेन्डरेक्स ऑफ वि ईस्ट, जिल्ड ३५ वीं का भूमिकांता तथा एन्साइक्लोपेडिया ऑफ रिलिजन एंड एथिक्स जिल्ड ८, पृष्ठ ६३१; मिलाइये विटरनित्या : इंडियन लिटरेचर, जिल्ड दूसरी, पृष्ठ १७६।

**संभवतः** कुछ पाश्चात्य विद्वानों ने यह अनुमान लगा लिया है कि 'मिलिन्द पञ्च' की दौली पर योग प्रभाव उपलक्षित है। यह एक बड़ा भ्रम है। भारतीय पराश्रीनता के युग में अधिकांश पश्चिमी विद्वान् यह विश्वास ही नहीं कर सकते ऐसे कि भारत ने भी विश्व-संस्कृति को कुछ मीलिक योग-दात दिया है। इसी कारण उन्होंने अनेक प्राचीन भारतीय विशेषतापूर्ण वातों पर भी पश्चिमी प्रभाव की काल्पना कर ली है। अफलात् के संबादों के प्रभाव को 'मिलिन्द पञ्च' की दौली पर बताने के समान और कोई निरर्थक बात नहीं कही जा सकती। पहले तो योग भाषा और विज्ञान से नागरेन के परिचित होने का साक्ष नहीं दिया जा सकता, फिर जब उनके सामने प्राचीन उपनिषदों और स्वयं बृहद-वचनों के काम में गम्भीर संबादों की परम्परा प्रस्तुत थी, तो वे उसे छोड़कर विदेश से उसे धरण करने वालों जाते? वह समय तो भारतीय संस्कृति के गोरव का आ और हम समझते हैं भारतीय ज्ञान का वह गोरव ही 'मिलिन्द पञ्च' में प्रतिष्ठित हुआ है, जिससे नमित होकर ही बृहदिवादी मिलिन्द राजा बृहद-वचन में उपासकत्व प्रहरण करता है। यह भारतीय ज्ञान की महान् विजय का खोतक है—उस योग ज्ञान पर जिसकी पाश्चात्य जगत् बड़ी दम भरता है और जिससे ही उसने अपना सारा ज्ञान बास्तव में प्राप्त भी किया है। 'मिलिन्दपञ्च' उस ज्ञान-विजय अवश्या यस्म-विजय का स्मारक और परिचायक है, जिसे भारत ने उस समय के, अपने अलावा, सबसे विधिक ज्ञान-संपद देश पर प्राप्त किया था। इस दृष्टि से वह भारतीय बाह्यमय के अमर रत्नों में से एक है। जहाँ नह 'मिलिन्द पञ्च' की दौली के स्रोतों या उसकी प्रेरणा का भवाल है, वह निश्चय ही तेपटिक बृहद-वचनों में ही निहित है। दीष-निकाय के 'पायामि-सुन' जैसे सुनों की जीवित संवाद-दौली उसकी प्रेरणा-स्वरूप मानी जा सकती है। 'कथावस्थ' के अप्रतिम आचार्य मोग्गलिपुत्र तिस्स के भी भद्रन्त नागरेन कम ज्ञानी नहीं है। यद्यपि इन दोनों ग्रन्थों का तुलनात्मक अध्ययन हम एहों विस्तार-भ्रम के कारण नहीं कर सकते, किन्तु यह तो निश्चित ही है कि मोग्गलिपुत्र के समाधानों पर ही नागरेन के अधिकांश 'प्रदन-अयाकरण' (प्रश्नों के उत्तर) आवारित हैं और जिस मन्त्रव्य को वही 'स्पविरवाद' के रूप में अपनाया गया है, वही मन्त्रव्य 'मिलिन्द पञ्च' का भी है। यद्यपि

उपनिषदों की दौली वा कोई स्पष्ट प्रभाव 'मिलिन्द पञ्च' पर उपलक्षित नहीं होता, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि श्वेतकेतु आगण्ड्य और प्रबाहण जैवलि (जिनके सबाद आन्दोग्य १।८।३ और बृहदारण्यक ६।२।१ में आते हैं), आरणि और पार्वतक्षय (जिनके सबाद बृहदारण्यक ३।७।१ में आते हैं), आरणि और श्वेतकेतु (आन्दोग्य (६।१)), आदि अनेक कृषियों के संबाद अपनी विजित दिशेपता रखते हुए भी मिलिन्द और नागसेन के प्रभावशाली संबादों में अपनी पूर्णता प्राप्त करते हैं । इतिहास की दृष्टि से, विशेषतः पालि साहित्य के इतिहास की दृष्टि ने, 'मिलिन्द पञ्च' का यह महत्व है कि उसमें पालि विषिटक के नाना ग्रन्थों के नाम दे देकर, पौच्छ निकायों, अभिधर्म पिटक के सात ग्रन्थों, और उनके भिन्न भिन्न अंगों के निर्देशपूर्वक अनेक अथ उद्दृत किये गये हैं, जिनसे वह स्पष्ट प्रमाणित होता है कि पालि विषिटक प्रबन्ध शास्त्री इसकी पूर्व अपने उसी नाम-स्वर में विद्यमान था, जिसमें वह आज है ।<sup>१</sup> इस प्रकार 'मिलिन्द पञ्च' का साहित्य अशोक के अभिलेखों द्वारा प्रदत्त साहित्य का समर्पन करता है । 'मिलिन्द पञ्च' में अनेक स्थानों के वर्णन हैं, जैसे अल-सन्द (अलेक्जेन्ड्रिया) यथन (युनान, वैष्टिया) भरुकल्ल, (भड़ोच) चीन (चीन-देश), गान्धार, कालिग, कठगमला, कोसल, भधुरा (भधुरा) मागान-साकेत, सौराष्ट्र (सोरदठ) वाराणसी, वांग, तक्कोल, उज्जेनी, आदि । इनसे तलालोन भारतीय भूगोल पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है । सारांश यह कि घरम, दर्जन, साहित्य, इतिहास, भूगोल, तभी दृष्टियों से 'मिलिन्द पञ्च' का भारतीय वाङ्मय के इतिहास में एक महत्वपूर्ण स्थान है और पालि अनुषिटक-साहित्य में तो उसके समान भहत्वपूर्ण कोई दूसरा स्वतन्त्र ग्रन्थ है ही नहीं, परह तो निविवाद ही है ।

### अन्य साहित्य

पालि विषिटक के संकलन और अट्ठकवा-साहित्य के प्रणयन के बीच के गुग में उपर्युक्त तीन ग्रन्थों (नेत्रिपकरण, पेटकोणदेश, मिलिन्दपञ्च)

१. देखिये रायस डेविड्स : वि विशान्स आंव किंग मिलिन्द (मिलिन्दपञ्च का अंगेजी अनुवाद), सेफेड बुक्स आंव वि इंस्ट, जिल्ड ३५वीं, पृष्ठ १४ (भूमिका).

के अतिरिक्त एक महत्वपूर्ण प्रन्थ (दोग्वस) भी है। यह भी प्राम्बुद्धधारा-  
कालीन पालि साहित्य की एक प्रमुख रचना है। 'वंश-साहित्य' का विवरण देते  
समय हम इस महत्वपूर्ण प्रन्थ का परिचय देंगे। इसी प्रकार सिहली अट्ठ-  
कथाएँ और पुराणाचार्यों (पोराणाचरिय) के प्रन्थ आदि भी इन शताव्दियों  
में लिखे गये, जिनका विवरण अट्ठकथा-साहित्य के प्रकरण में ही दिया जायगा।  
इसी युग के साहित्य के रूप में गायगर ने 'सुत्त संग्रह' की भी चर्चा की है, जो किसी  
अन्नात लेखक के द्वारा किया हुआ सुत्तों का संग्रह है और 'विमानवत्तु' आदि  
के समान अल्प महत्व की रचना है। वरमो परम्परा इसे 'खुद्दक-निकाय' के  
अन्तर्गत मानती है, फिन्तु इसके प्रणेता या प्रणयन-काल के विषय में कुछ  
ज्ञात नहीं है।

सातवीं अध्याय

## बुद्धघोष-युग

(४०० ई० से ११०० ई० तक)

अर्थ कथा-साहित्य का उद्भव और विकास

बीद अनुश्रुति के अनुसार स्थिविर महेन्द्र और उनके माती भिक्षु पालि-त्रिपिटक के साथ-साथ उसकी 'अट्ठकथा' को भी अपने साथ लेका में दिये ।<sup>१</sup> यह निश्चित है कि जिस रूप में यह 'अट्ठकथा' लंका में ले जाई गई होगी वह पालि-त्रिपिटक के समान मौखिक ही रहा होगा । प्रथम शताब्दी ईसवी पूर्व जब लंकाविगति बटुगामणि अभय के समय में पालि-त्रिपिटक लेख-बढ़ किया गया, तो उसकी उपर्युक्त 'अट्ठकथा' को कोई सूचना हम नहीं पाते । अतः महेन्द्र द्वारा लंका में पालि-त्रिपिटक की 'अट्ठकथा' भी ले जाये जाने का कोई ऐतिहासिक आधार हमें नहीं भिलता । उन अट्ठकथाओं का कोई अंग आज किसी रूप में सुरक्षित नहीं है । हाँ, एक दूसरी प्रकार की 'अट्ठकथाओं' के अस्तित्व का साक्षय हम सिहले के इतिहास में अत्यन्त प्रारम्भिक काल से ही पाते हैं । ये प्राचीन सिहली भाषा में किसी त्रुटि अट्ठकथाएँ हैं । जैसा हम आगे अभी इसी प्रकरण में देखेंगे, आचार्य बुद्धघोष इन्हीं प्राचीन सिहली अट्ठकथाओं का पालि रूपान्तर करने के लिये लंका गये थे । चौथी-पाँचवीं शताब्दी ईसवी में न केवल बुद्धघोष, तुद्ददत्त और वस्मपाल आदि के द्वारा रचित विस्तृत अट्ठकथा-साहित्य, बल्कि प्राच्य-बुद्धघोषकालीन लंका का इतिहास-ग्रन्थ 'दीपचंद' और बाद में उसी के आधार-स्वरूप रचित 'महावंस' भी, अपनी विषय-वस्तु के मूल आधार और स्रोतों के लिये इन्हीं प्राचीन सिहली अट्ठकथाओं के झणी हैं । महावंस-टीका (६३।५४९-५५०) के आधार पर गोप्यगर ने यह सिद्ध घरने का

१. देखिये समन्तपासादिका की बहिरनिदानवर्णना ।

प्रयत्न किया है कि ये प्राचीन सिहली अट्ठकथाएँ बारहवीं शताब्दी ईसवीं तक प्राप्त थीं। आज इनका कोई अंश सुरक्षित नहीं है।

जैसा अभी कहा गया, बुद्धोप महास्थविर प्राचीन सिहली अट्ठकथाओं का पालि रूपान्तर करने के लिये ही लका गये थे। उन्होंने अपनी विभिन्न अट्ठकथाओं में जिन प्राचीन सिहली अट्ठकथाओं का निर्देश किया है, या उनसे उद्धरण दिये हैं, उनमें ये मूल्य है (१) महा-अट्ठकथा (२) महा-पञ्चवरी या महा-पञ्चरिय (३) कुरुन्दी या कुरुन्दिय (४) अनधट्ठकथा (५) संखेप-अट्ठकथा (६) आगमट्ठकथा (७) आत्रियान् समानट्ठकथा। दीघ, मणिकम, संयुत और अंगुत्तर, इन चारों निकायों की अपनी 'अट्ठकथाओं' के अन्त में आचार्य बुद्धोप ने अलग अलग कहा है "सा हि महा-अट्ठकथाय सारमादाय निदित्तता एसा" अर्थात् "इसे मैंने महा-अट्ठकथा के सार को लेकर पूरा किया है"। इससे निश्चित है कि बुद्धोप-कृत 'सुमंगल विलासिनी' 'पञ्चमूदनी' 'सारत्थ पकासिनी' और 'मनोरथपूरणी' (अमण्ड: दीघ, मणिकम, संयुत और अंगुत्तर निकायों की अट्ठकथाएँ) प्राचीन सिहली अट्ठकथा जिसका नाम 'महा जट्ठकथा' वा, पर आधारित है। उपर्युक्त कथन के साथ यह 'सद्भम संगह' (१३वीं शताब्दी) का यह कहना कि 'महा-अट्ठकथा' सुन्त-पिटक की अट्ठकथा थी,<sup>१</sup> ठीक मालूम पहला है। इसी प्रकार 'सद्भम संगह' के अनुसार 'महापञ्चवरी' और 'कुरुन्दी' कमण्ड: अभिधम्म और विनय की अट्ठकथाएँ थीं।<sup>२</sup> 'कुरुन्दी' 'विनय-पिटक' की ही अट्ठकथा थी, इसे आचार्य बुद्धोप की अट्ठकथाओं से पूरा समर्थन प्राप्त नहीं होता, क्योंकि विनय-पिटक की अट्ठकथा (समान्तरासादिका) के आरम्भ में उन्होंने अपनी इस अट्ठकथा के मूल्य आधार के रूप में 'कुरुन्दी' का उल्लेख नहीं किया है। वहाँ उन्होंने केवल यह कहा है कि ये तीनों अट्ठकथाएँ (महा-अट्ठकथा, महापञ्चवरी, एवं कुरुन्दी) प्राचीन अट्ठकथाएँ थीं और सिहली भाषा में लिखी गई थीं। 'मन्त्रवंस' में भी उपर्युक्त तीनों अट्ठकथाओं का उल्लेख किया गया है। वहाँ 'महा-अट्ठकथा' (सुन्त-पिटक की अट्ठकथा) को इन सब में प्रधान

१, २. सद्भम संगह, पृष्ठ ५५ (जनेल औब पालि टंकस्ट सोसायटी १८९० में प्रकाशित संस्करण)

बताया गया है और उसे पुराणाचार्यों (पोराणाचरिया) की रचनाएँ बतलाया गया है, जब कि अन्य दो अट्ठकथाओं को प्रत्याचार्यों (गन्धाचरिया) की रचनाएँ बतलाया गया है<sup>१</sup>। इसमें स्पष्ट कि 'गन्धवंस' के अनुसार 'महा-अट्ठकथा' की प्राचीनता और प्रामाणिकता अन्य दो की अपेक्षा अधिक थी। 'अन्धट्ठकथा' और 'संखेपट्ठकथा' तथा इनके साथ साथ 'बूलपञ्चरी' और 'पणवार' नाम की प्राचीन सिहली अट्ठकथाओं का उल्लेख 'समन्तपासादिका' की दो टीकाओं 'विविर्वृद्धि' और 'सारत्यदीपनी' में भी किया गया है<sup>२</sup>। किन्तु इनके विषय में भी हमारी कोई विशेष जानकारी नहीं है<sup>३</sup>। 'आचरियान् समानट्ठकथा' जिसका उल्लेख बूद्धघोष ने 'अट्ठसालिनी' के आदि में किया है, किसी विशेष अट्ठकथा का नाम न होकर केवल अनेक अट्ठकथाओं के समान सिद्धान्तों का सूचक है, यही समन्ता अधिक समीचीन जान पड़ता है। 'आगमट्ठ-कथा', जिसका उल्लेख आचार्य बूद्धघोष ने 'अट्ठसालिनी' और 'समन्तपासादिका' दोनों के आदि में किया है, समूर्ण आगमों वा निकायों की एक सामान्य अट्ठकथा ही रही होगी। कुछ भी हो, बूद्धघोष ने जिन प्राचीन सिहली अट्ठकथाओं का उल्लेख किया है, वे किन्हीं लेखकों की अक्षितगत रचनाएँ न होकर महाविहार-वासी भिक्षुओं की परम्पराग्राह्य कृतियाँ थीं जो उसकी सामान्य सम्पत्ति के रूप में बली आ रही थीं। आचार्य बूद्धघोष ने इन महाविहारवासी भिक्षुओं की आदेशना-विधि को लेकर ही अपनी समस्त अट्ठकथाएँ और 'विसुद्धिमग्न' लिखे, यह उन्होंने सब जगह स्पष्ट कर दिया है। 'विसुद्धि-मग्न' के साथ का हम पीछे विवरण देंगे, अभी केवल 'समन्तपासादिका' और 'अट्ठसालिनी' के इस साध्य को देखें—

"महाविहारवासीन् दीप्यन्तो विनिच्छयं

अरुचं एकायसविस्सामि आगमट्ठकथासु पि"

१. पृष्ठ ५९ एवं ६८ (जिनेल और पालि दंकसूत्र सोसायटी, १८८६, में प्रकाशित संस्करण)

२. देखिये गायगर : इंडियन लिटरेचर एंड सोसायेटी, पृष्ठ २५

३. इनके कुछ अनुमानात्मक विवरण को लिए देखिये लाहा : पालि लिटरेचर, जिन्द दूसरी, पृष्ठ ३७६; श्रीमती रायस डेविड्स : ए बुद्धिस्ट मेनूबल और साइको-लोडीकल एथिक्स, पृष्ठ २२ (भ्रमिका)

आगे बुद्धधोष के बीचन-विवरण से भी यही स्पष्ट होता कि 'महाविहार' की परम्परा पर आधित सिद्धान्तों के अनुसार ही उन्होंने अपने विग्राह अट्ठकथा साहित्य की रचना की है। यही यह भी कह देना अप्रासंगिक न होता कि 'महाविहार' के अलावा 'उत्तर विहार' नामक एक अन्य विहार के भिन्नओं की परम्परा भी उस समय प्रचलित थी। बुद्धदत्त का 'उत्तरविनिच्छय' उसी पर आधारित है।

प्राचीन सिंहली अट्ठकथाओं को अपनी रचनाओं का आधार स्वीकार करने के अतिरिक्त आचार्य बुद्धधोष ने 'प्राचीन स्थविरों' (पोराणकत्वेरा) या 'प्राचीनों' 'पुराने लोगों' (पोराणा) के मतों के उद्धरण अनेक बार अपनी अट्ठकथाओं में दिये हैं<sup>१</sup>। ये 'प्राचीन स्थविर' या 'पुराने लोग' कौन थे? 'गन्धवंस' के मतानुसार प्रथम तीन धर्म-संगीतियों के आचार्य भित्ति, आर्य महाकाश्यायन को छोड़कर, 'पोराणा' या 'पुराने लोग' कहलाते हैं<sup>२</sup>। सम्भवतः प्राचीन सिंहली अट्ठकथाओं में इन प्राचीन आचार्यों के मतों का उल्लेख था। वही से उसका पालि रूपान्तर कर आचार्य बुद्धधोष ने अपनी अट्ठकथाओं में ले लया है। इन 'पोराणों' के उद्धरणों की एक बड़ी विशेषता यह है कि ये प्रायः पद्ध-मेय हैं और अनेक उद्धरण जो बुद्धधोष की अट्ठकथाओं में मिलते हैं, विलकृत उन्हीं शब्दों में 'महावंस' में भी मिलते हैं। इससे इस मान्यता को दृढ़ता मिलती है कि बुद्धधोष की अट्ठकथाएँ और 'महावंस' दोनों के मूल स्रोत और आधार प्राचीन सिंहली अट्ठकथाएँ ही हैं। 'यथाहु पोराणा' (जैसा पुराने लोगों ने कहा) या 'तेन वे पोराणकत्वेरा' (इसी प्रकार प्राचीन स्थविर) आदि शब्दों से आरम्भ होने वाले इन 'पोराण' आचार्यों के उद्धरणों को बुद्धधोष की अट्ठकथाओं और 'विसुद्धिमग्न' से यदि संग्रह किया जाय और 'दीपवंस' आदि के इसी प्रकार के साथों से उसका मिलान किया जाय तो प्राचीन बौद्ध परम्परा सम्बन्धी एक व्यवस्थित

१. 'पोराणों' को कुछ उद्धरणों के लिए देखिये विमलाचरण लाहा : वि लाइफ एंड वर्क ऑफ बौद्ध कोश, पृष्ठ ६५-६७

२. देखिये आगे नवों आचार्य में गन्धवंस को विषय-विस्तु का विवेचन।

और अत्यन्त मूल्यवान् सामग्री हाथ लग सकती है, जिसका ऐतिहासिक महत्व भी अल्प न होगा ।

प्राचीन मिहणी अट्ठकथाओं और पुराने आचारों के अतिरिक्त आचार्य बुद्धघोष ने अपने पूर्वगमी सभी स्रोतों से प्रेरणा प्रहरण की है । 'दोपवंस' और 'मिलिन्द पञ्च' तो प्राम्बुद्धघोषकालीन रचनाएँ हैं ही, बुद्धघोष ने अपनी व्याख्याओं के लिये सब से अधिक मूल्यवान् सामग्री तो बुद्ध और उनके प्रारम्भिक शिष्यों के वचनों के स्वकीय मन्त्रन से ही प्राप्त की है । इसी में उनकी मौलिकता भी है । बृकि इसमें उन्हें इतनी अधिक सफलता मिली है, इसीलिये पालि-साहित्य में उनका दान अमर हो गया है । स्वयं विषिटक-साहित्य में ऐसी अमूल्य सामग्री भरी पड़ी है, जिससे बुद्धघोष जैसे अगाध विद्वान् चाहे जितनी सहायता ले सकते थे । स्वयं भगवान् बुद्ध के सडायतन विभंग (मजिभम. ३।४।३) वरुण विभंग (मजिभम. ३।४।६) धातु विभंग (मजिभम. ३।४।१०) एवं दिग्भिराविभंग (मजिभम. ३।४।१२) आदि सूतों में निहित व्याख्यात्मक उपदेश, तथा उनके प्रधान शिष्यों यथा मारिपुत्र, महाकात्यायन, महाकोटित आदि के व्याख्यापरक निवेचन, अभिधम्म-पिटक और उसके अन्तर्गत विशेषत: 'कथावत्य' की विवेचन-प्रणाली, ये सभी स्रोत और साधन बुद्धघोष के लिये खुले पड़े थे, जिनका पूरा उपयोग कर उन्होंने पालि-साहित्य में उस विशाल अट्ठकथा-साहित्य का प्रबन्धन किया, जो अपनी विशालता और गम्भीरता में भारतीय साहित्य में उपलब्ध समान कोटि के प्रत्येक साहित्य से बढ़कर है ।

**अट्ठकथा-साहित्य की संस्कृत भाष्य और टीकाओं से तुलना—  
अट्ठकथाओं की कुछ सामान्य विशेषताएँ**

वास्तव में पालि के अट्ठकथा-साहित्य के समान भारतीय भाष्य-साहित्य में अन्य कुछ नहीं है । संस्कृत में भाष्य और टीकाएँ अबश्य हैं, किन्तु उनकी तुलना सर्वोत्तम में पालि अट्ठकथाओं से नहीं की जा सकती । भाष्य की परिभाषा संस्कृत में इस प्रकार की गई है—

"सूत्रार्थो वर्णते यत्र वाचये: सूत्रानुसारिभिः ।

स्वपदानि च वर्णने भाष्यं भाष्यविदो विदुः ।" शब्द-कल्पद्रुम

इस परिभाषा से स्पष्ट है कि भाष्य का मुख्य उद्देश्य सूत्र के अर्थ का वर्णन करना है और इसी की पूर्ति के लिये वह कुछ स्व-कथन भी करता है जिसकी भी व्याख्या में वह प्रवृत्त होता है। संस्कृत के भाष्य इस परिभाषा पर पूरे उत्तरते हैं। किन्तु यदि पालि अट्ठकथाओं का सम्बन्ध त्रिपिटक या बुद्ध-वचनों से उसी प्रकार का माना जाय जैसे भाष्यों का सूत्रों से, तो वह पालि के अट्ठकथा-साहित्य की एक प्रमुख विशेषता को व्यक्त न करेगा। अर्थ की व्याख्या के साथ साथ पालि अट्ठकथाओं का एक बड़ा उद्देश्य उनकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को भी स्पष्ट रूप से विवृत कर देना है। किसी संस्कृत के भाष्यकार ने ऐसा किया हो, यह हम नहीं कह सकते। कम से कम जिस ऐतिहासिक बृहदि का परिचय पालि अट्ठकथाकारों ने दिया है, वह संस्कृत के भाष्यकारों में तो उपलब्ध नहीं होती। संस्कृत भाष्यों में अर्थ की व्याख्या पर जोर होता है। यही काम उनकी टीकाएँ भी करती हैं। अनेक निदानों या विचार-धाराओं के विवरण वहाँ आते हैं, किन्तु 'इत्येके' 'इत्यपरे' कह कर ही छोड़ दिये जाते हैं। कौन सा सिद्धान्त कब उत्पन्न हुआ, अबता वह किन का था, आदि की विवेचणा वहाँ नहीं की जाती। वहाँ केवल सिद्धान्त का ही अर्थ-विवेचन अधिकतर किया जाता है। इसके विपरीत पालि-अट्ठकथाओं में पूरे विवरण की मूली रहती है। 'कथावस्था' की अट्ठकथा को इस दृष्टि से देखें तो आश्वर्यान्वित रह जाना पड़ता है। वहाँ निराकृत २१६ सिद्धान्तों में से कौन किस सम्बन्धाय का सिद्धान्त या और वह कब उत्पन्न हुआ, आदि का पूरा विवरण वहाँ दिया गया है। वेदों के भाष्यों में वृश्यियों की जीव-नियमों के विषय में उतना भी नहीं कहा गया, जितना पालि अट्ठकथाओं में बुद्ध और उनके शिष्यों के विषय में कहा गया है। निश्चय ही उन्होंने जो ऐतिहासिक व्यापे दिये हैं वे पूरे भारतीय साहित्य के लिये एक दम तई चीज़ हैं और उनकी इस विशेषता को हमें उनका महत्वांकन करते समय सदा ध्यान में रखना चाहिये।

**पालि साहित्य के तीन बड़े अट्ठकथाकारः बुद्धदत्त, बुद्धघोष और धम्मपाल**

पालि-साहित्य में अट्ठकथा-साहित्य का प्रारम्भ चौथी-पाँचवीं शताब्दी ईसवी में होता है। इस प्रकार बुद्ध-युग से लगभग एक हजार वर्ष बाद ये अट्ठ-कथाएँ किसी गई। निश्चय ही काल के इस इतने लम्बे व्यवधान के कारण इन

अट्ठकथाओं को प्रामाणिकता उतनी सबल नहीं होती, यदि ये परम्परा से प्राप्त प्राचीन सिहली अट्ठकथाओं पर आधारित नहीं होती। चूंकि ये उनकी ऐतिहासिक परम्परा पर आधारित हैं, अतः इन्हीं आचारिक होते हुए भी बुद्धया के सम्बन्ध में इनका प्रामाण्य मान्य है, यद्यपि स्वयं त्रिपिटक के बाद। चौथी-माँचवीं शताब्दी में प्राप्त; समकालिक ही तीन बड़े अट्ठकथाकार पालि साहित्य में हुए हैं, बुद्धदत्त, बुद्धघोष और अम्मपाल। इनके बाद कुछ और भी अट्ठकथाकार हुए, जिनका विवरण हम बाद में देंगे। अभी हम इन तीन आचार्यों के जीवन और कार्य पर विवरण दृष्टि डालें।

### बुद्धदत्त की जीवनी और रचनाएं

बुद्धदत्त और बुद्धघोष समकालिक थे, यह 'बुद्धघोषसुप्ति' (बुद्धघोष की जीवनी) और 'गत्वर्वस' तथा 'सासनवंस' (१२वीं शताब्दी के वंश-ग्रन्थ) के बर्णनों से ज्ञात होता है। 'बुद्धघोषसुप्ति' के बर्णनानुसार आचार्य बुद्धदत्त, बुद्धघोष से पहले लंका में बुद्ध-वचनों के अध्ययनार्थ गये थे। अपने अध्ययन को समाप्त कर जिस नाव से लौट कर वे भारत (जम्बुदीप) आ रहे थे, उसका मिलान उस नाव से हो गया जिसमें बैठकर इधर से आचार्य बुद्धघोष लंका को जा रहे थे। दोनों स्वविरों में धर्म-संलग्न हुआ। कुशल-मंगल और एक दूसरे का परिचय प्राप्त करने के बाद, आचार्य बुद्धघोष ने उन्हें बताया "बुद्ध-उपदेश सिहली भाषा में है। मेरे उनका मागधी रूपान्तर करने लंका जा रहा है"। बुद्धदत्त ने उनसे कहा "आवुस बुद्धघोष ! मैं भी तुमसे पूर्व इस लंका द्वीप में भगवान् के जासन को निहली भाषा से मागधी भाषा में रूपान्तरित करने के उद्देश्य से आया था। किन्तु मेरी आगु घोड़ी रही है। मैं अब इस काम को पूरा नहीं कर सकूंगा।"<sup>१</sup> जब इस प्रकार दोनों स्वविरों में आगस्ते बातचीत चल रही थी तभी दोनों नाव एक हूसरी

१. "आवुसो बुद्धघोस अहं तथा पुञ्चे लंका दीपे भगवतो सासनं कातुं जागतेऽम्भि  
ति वस्त्रा अहं अप्यायुको . . ." बुद्धघोषसुप्ति, पृष्ठ ६० (जेम्स ये का संस्करण), यही बर्णन विलकुल 'सासनवंस' में भी है, देखिये पृष्ठ २९-३०  
मेदिल घोड़ का संस्करण)

को छोड़कर चल दी।<sup>१</sup> इस विवरण से दो बातें स्पष्ट हो जाती हैं। एक तो यह कि बुद्धदत्त बृद्धघोष से पहले लंका गये थे और दूसरी यह कि वे आगे में बुद्धघोष से बड़े थे, क्योंकि उपत संलाप में उन्होंने बृद्धघोष को 'आच्चास' कह कर पुकारा है जो बड़ों के द्वारा छोटों के लिये प्रयुक्त किया जाता है।<sup>२</sup> बुद्धदत्त ने अपने विनय-विनिच्छय (विनय-गिटक की अट्ठकथा) के जारम्भ में ही बृद्धघोष के साथ अपने मिलन और संलाप का वर्णन किया है। उससे प्रकट होता है कि बुद्धदत्त ने बृद्धघोष से यह प्रारंभना की थी कि जब वे अपनी अट्ठकथाएँ समाप्त कर ले तो उनकी प्रतियोगी उनके पास भी भेज दें, ताकि वे उन्हें संक्षिप्त रूप प्रदान कर सकें। आचार्य बृद्धघोष ने उनकी इस प्रारंभना के अनुसार बाद में अपनी अट्ठकथाएँ उनके पास भेज दी। आचार्य बुद्धदत्त ने आचार्य बृद्धघोष-कृत अनिष्टम-गिटक की अट्ठकथाओं का संक्षेप 'अभिषमावतार' में और विनय सम्बन्धी अट्ठकथा का संक्षेप 'विनय-विनिच्छय' में किया। इस सूचना में उन्नेह करने की कोई आवश्यकता ही नहीं, क्योंकि यह स्वयं बुद्धदत्त द्वारा दी हुई है। हाँ, 'बृद्धघोसुप्ति' के बर्णन के साथ उसका कुछ विरोध अवश्य है, क्योंकि लंका से लौटने के समय ही वे 'अल्पाय' तक जीने की आशा रखते थे, फिर इतने काल तक बृद्धघोष की अट्ठकथाओं के संक्षेप लिखने के लिये किस प्रकार बीचित रहे? किर भी इसमें कुछ वैमा विरोध नहीं है, जिस पर विश्वास ही नहीं किया जासके। हर हालत में 'बृद्धघोसुप्ति' के बर्णन की अपेक्षा 'विनय-विनिच्छय' का बर्णन ही अधिक प्रामाणिक है, और यदि दोनों स्थविरों को हम प्रायः समवयस्क मान सकें, तब तो उनमें कुछ ऐसा अन्तर भी नहीं है। आचार्य बुद्धदत्त चोल-राज्य में उरगपुर (वर्तमान उरगपुर) के निवासी थे। आचार्य बृद्धघोष के समान उन्होंने

१. एवं तेस हिन्द्रे वेरानं अञ्जमञ्जं सललपन्तानं येव ह्व नावा सर्व एव अपनेत्वा गच्छन्तु। बृद्धघोसुप्ति एवं सासनवंस, ऊपर उहृत के समान।

२. मिलाइये बुद्धदत्त के घन्यों के सम्पादक उसी नाम के आधुनिक सिंहली भिक्षु (बुद्धदत्त) का यह कथन "अयं पन बुद्धदत्ताचरियो बृद्धघोसाचरियेन समानवस्तिको वा वोकं बुद्धदत्तो वा ति सल्लक्षेम" (अचार्य बुद्धदत्त बृद्धघोष के समवयस्क याकुछ ही बहे थे, ऐसा लगता है)

भी लंका के अनुराधपुर-स्थित महाविहार में जाकर भगवान् (बुद्ध) के शासन-सम्बन्धी उच्च शिक्षा प्राप्त की थी। लंका से लौट कर उन्होंने अपने ग्रन्थों की रचना कावेरी नदी के तट पर दक्षिण के कण्ठदास (कण्ठदास) या विष्णुदास (वेण्ठदास) नामक वैष्णव द्वारा निर्मित विहार में बैठ कर की,<sup>१</sup> जो वैष्णवों और बौद्धों के मध्यर सम्बन्ध के रूप में पालि-सात्त्वि में सदा स्मृत रहेगी।

बृद्धदत्त द्वारा रचित भन्य या अट्ठकथाएँ इस प्रकार हैं (१) उत्तरविनिच्छय (२) विनयविनिच्छय (३) अभिधम्मावतार (४) रूपाहपविभाग और मधुरत्थविलासिनी (बुद्धवंस की अट्ठकथा)। 'उत्तरविनिच्छय' (उत्तर विनिश्चय) और 'विनय-विनिच्छय' दोनों बुद्धधोषकृत समन्त-पासादिका (विनय-पिटक की अट्ठकथा) के पश्चवद् संक्षेप हैं। विनय-विनिच्छय में ३१ और उत्तर विनिच्छय में २३ अध्याय हैं। उत्तर-विनिच्छय के २३ अध्यायों में १६९ मात्राएँ हैं। विनय-पिटक की विषय-सूची का अनुसरण करते हुए इसमें भी पहले महाविभग या भिक्खु-विभग सम्बन्धी नियमों का विवरण है, यथा पाराजिक-कथा, पटिदेसनिय कथा, सेविय कथा, आदि। इसके बाद भिक्खुनी-विभग के विषय है, यथा पाराजिक-कथा, संघादिसेस कथा, निस्समिय कथा, अधिकरण पञ्चवय कथा, लन्धक पञ्चवय, आपत्ति सम्मृद्धान कथा, आदि। 'उत्तर-विनिच्छय' सिहूलके 'उत्तर विहार' की परम्परा के आधार पर लिखी गयी अट्ठकथा है, यह पहले कहा जा सका है। विनय-विनिच्छय के ३१ अध्यायों में कुल मिलाकर ३१८३ मात्राएँ हैं। इसकी भी विषय-सूत्र उत्तर-विनिच्छय से ही मिलती जूलती है। केवल व्याहरा में कहीं कुछ अन्तर है। पहले महाविभग (भिक्खु विभग) के अन्तर्गत पाराजिक-कथा, संघादिसेस कथा, अनिश्चय कथा, निस्समिय पाचित्तिय कथा, पटिदेसनिय कथा तथा सेविय-कथा का विवरण है। इसी प्रकार भिक्खुनी-विभग के अन्तर्गत पाराजिक-कथा, संघादिसेस कथा, निस्समिय-पाचित्तिय कथा और पटिदेस-

१. 'अभिधम्मावतार' में उन्होंने स्वयं कहा है "विनय-विनिच्छयो चोलरद्धेभूतमंगलगामे वेण्ठदासस्त जारामे वसन्तेन कावेरीपट्टने रम्मे नानारामो-पसोभिते कारिते कव्लदासेन इसनीये मनोरमे!"

निय कथा के विवेचन है।<sup>१</sup> फिर स्वन्धक-कथा, कम्म कथा, पक्षिणक कथा, कम्मटङ्गन-कथा आदि के विवेचन है। इस प्रकार उत्तर-विनिच्छय<sup>२</sup> और विनय-विनिच्छय<sup>३</sup> दोनों ही अटठकथाएँ विनय-पिटक की विषय-वस्तु का समन्त-पासादिका के आधार पर, पद्म में विवेचन करती हैं। इन पर क्रमशः 'उत्तरलीनत्य दीपनी' और 'विनय सारत्य दीपनी' नामक दीकाएँ भी बाद में जल कर वाचि-स्तर महासामि (वाचीश्वर महास्वामी) डारा लिखी गई, जिनका उत्तेज हम आगे जल कर टीका-साहित्य के विवेचन में करेंगे। 'अभिधम्मावतार' गद्य-पद्म-मिथित रचना है। बुद्धघोष की अभिधम्म-सम्बन्धी अटठकथाओं के आधार पर इसका प्रणयन हुआ है। किन्तु बुद्धघोष का अन्धानुकरण लेखक ने नहीं किया है। बुद्धघोष ने रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान के रूप में घर्मी (पदार्थों) का विवेचन किया है, जब कि बुद्धदत्त ने 'अभिधम्मावतार' में चित्त, चेतसिक, रूप और निर्वाण, इस चार प्रकार के वर्गीकरण को लिया है। श्रीमती रायस डेविडस ने बुद्ध-दत्त के वर्गीकरण को अधिक उत्तम माना है।<sup>४</sup> 'अभिधम्मावतार'<sup>५</sup> के समान 'स्पाहप-विभाग'<sup>६</sup> भी अभिधम्म-सम्बन्धी रचना है। इसका भी विषय रूप, अरूप, चित्त, चेतसिक आदि का विवेचन करना है। 'मधुरत्य विलासिनी' 'बुद्ध-वंस' की अटठकथा है, जिसका साहित्यिक दृष्टि से कुछ अधिक महत्व नहीं है।

### बुद्धघोष की जीवनी

अब हम पालि-साहित्य के युग-विभायक आज्ञायं बुद्धघोष पर आते हैं।

१. इन विभिन्न शब्दों के अर्थों के लिए देखिये पीछे विनय-पिटक का विवेचन (चौथे अध्याय में)

२. ३. इन दोनों का रोमन लिपि में सम्पादन स्थविर बुद्धदत्त ने किया है, जिसे पालि दैक्षिण्य सोसायटी ने प्रकाशित किया है। इन प्रम्भों के सिहली, बरमी और स्पामी संस्करण भी उपलब्ध हैं, जो क्रमशः कोलम्बो, रंगून और चंकाक से प्रकाशित हुए हैं।

४. बुद्धिस्त साइकोलोजी, पृष्ठ १७४

५. ६. इसका भी रोमन लिपि में सम्पादन स्थविर बुद्धदत्त ने किया है, जिसे पालि दैक्षिण्य सोसायटी ने प्रकाशित किया है।

‘बुद्धघोष’ अनुपिटक साहित्य का सब से बड़ा नाम है। आजार्य बुद्धघोष ने बुद्ध-वासन की सेवा और उत्तरी चिरस्थिति के लिये जितना अधिक काम किया है, उतना शायद ही अन्य किसी व्यक्ति ने किया हो। पालि साहित्य की जो कुछ उन्होंने दिया है वह आकार और महत्व दोनों में ही इतना महान् है कि वह समझना कठिन हो जाता है कि एक जीवन में इतना काम कैसे कर लिया गया। इन महापुरुष की जीवनी की पावन अनुस्मृति पहले हम करें। आजार्य बुद्धघोष ने अन्य अनेक भारतीय मनोविदियों की तरह अपने जीवन के विषय में हमें जीविक महीन बताया है। केवल अपनी अट्ठकथाओं के आदि और अन्त में उन्होंने कुछ नूचनाएँ दी हैं, जो उनकी रचना आदि पर ही कुछ प्रकाश डालती है अथवा जिनकी प्रेरणा पर, और जिस उद्देश्य से वे लिखी गईं, उनके विषय में वे कुछ संक्षेप से कहीं हैं, किन्तु मनुष्य रूप में बुद्धघोष के विषय में हमें उनसे कुछ सामग्री नहीं मिलती। यह पक्ष सम्भवतः बुद्धघोष के लिये इतना अमहत्वपूर्ण था कि उसे उन्होंने अपने महत् उद्देश्य में ही लो दिया है। उपनिषदों के अधिपियों ने भी ऐसा ही किया है और भारतीय मनोविदों की यह एक निश्चित परम्परागत प्रणाली ही रही है कि अपने साधारण अवित्तगत जीवन के विषय में उन्होंने कुछ कहना उचित नहीं समझा है। उनकी यह निर्वैयक्तिकता उनके सन्देश को निश्चय ही एक अधिक बल प्रदान करती है, इसमें सन्देह नहीं, किन्तु मनुष्य होने के नाते हम उनके मानवन्तरप को भी जानना चाहते ही हैं। और उससे इस अवस्था में जानने का अवकाश नहीं रह जाता। बुद्धघोष की जीवनी को जानने के लिये उनकी अट्ठकथाओं में दी हुई थोड़ी बहुत सामग्री के अतिरिक्त प्रधान साधन हैं (१) महावंस या ठीक कहें तो ‘चूलवंस’ के सेतासवं परिच्छेद की २१५-२४६ गाधाएँ (२) बुद्धघोष-प्रति या महाबुद्धघोसस्स नियानवत्य् (३) मन्त्रवंस (४) सासनवंस (५) सद्गम्म संग्रह। ‘महावंस’ का उपर्युक्त परिच्छित अंश जिसमें बुद्धघोष की जीवनी वर्णित है घम्मकिति (घमंकीति) नामक भिक्षु की रचना है, जिसका काल तेरहवीं शताब्दी का मध्य-भाग है। चूंकि बुद्धघोष का जीवन-काल नीर्वा-पांचवी

४. ३७१५० तक महावंस है। उसके बाद का परिच्छित अंश चूलवंस के नाम से प्रसिद्ध है। देखिये आगे नवे अध्याय में बंश-साहित्य का विवेचन।

शताब्दी ईसवी है, अतः उनके आठसी नौ सौ वर्ष बाद लिखी हुई उनकी जीवनी सर्वोत्तम में प्रामाणिक नहीं मानी जा सकती, यह तो निश्चित ही है। फिर भी सब से अधिक प्रामाणिक वर्णन जो हमें बुद्धघोष की जीवनी का मिलता है वह यही है। 'गन्धवंस' और 'सासन वंस' तो ठीक उभीसरी शताब्दी की रचनाएँ हैं, अतः उनका इस सम्बन्ध में प्रामाण्य नहीं माना जा सकता। 'बुद्धघोष-व्याप्ति' घम्मकिति महासामि ( घम्मकीति महास्वामी ) नामक भिक्षु की चौदहवीं शताब्दी के अन्तिम भाग की रचना है, जो महावंस के उपर्युक्त अथ के बाद किन्तु गन्धवंस और सासन वंस से पहले की रचना है। इस रचना में इतनी अतिशयोक्तियाँ भरी पही है कि इसके भी प्रामाण्य को सर्वोत्तम में नहीं माना जा सकता। केवल महावंस के उपर्युक्त अथ का वर्णन हो प्रायः इस सम्बन्ध में अधिक प्रामाणिक माना जाता है। उसके अनुसार बुद्धघोष की जीवनी की स्पष्टता यह है—आत्माय बुद्धघोष का जन्म गया के तमीप बोचिवृक्ष के पास हुआ। बाल्यावस्था में ही जिल्प और तीनों बेंदों में पारगत होकर यह ब्राह्मण विद्यार्थी बाद-विवाद के लिये भारतवर्ष भर में घूमने लगा। ज्ञान की बड़ी उत्कट जिज्ञासा थी। योगाभ्यास में भी वही रुचि थी। एक दिन रात में किसी विहार में पहुँच गया। वहाँ पातंजल मत पर बहु अच्छा प्रवचन दिया। किन्तु रेवत नामक बोद्ध स्थानिर ने उन्हें बाद में पराजित कर दिया। इन बोद्ध भिक्षु के मुख से बृद्ध-शासन का वर्णन सुनकर बुद्धघोष को विश्वास हो गया 'निश्चय ही ( मोक्ष का ) यही एक मात्र मार्ग है' ( एकायनो अथ ममो ) और उन्होंने प्रवर्ज्या ले ली। प्रवर्जित होकर उन्होंने पिटक-वैय का अध्ययन किया। बास्तव में भिक्षु होने से पहले बुद्धघोष एक ब्राह्मण विद्यार्थी ( ब्राह्मणमाणवो ) मात्र थे। बाद में भिक्षु-संघ ने उनके घोष को बुद्ध के समान गम्भीर ज्ञानकर उर्वरे 'बुद्धघोष' की गदवी दे दी।<sup>१</sup> जिस विहार में उनकी प्रवर्ज्या हुई थी वही उन्होंने ज्ञाणोदय ( ज्ञानोदय ) नामक गम्भ की रचना की। इसके बाद यही उन्होंने 'घम्मसंगणि' पर 'अट्ठसालिनी' नाम की अट्ठकथा भी लिखी

१. बुद्धस्स विष्य गम्भीरघोसत्ता न विष्याकर्त्ता।

बुद्धघोस ति सो सोमिं बुद्धो विष्य महीतले ॥

और अन्त में विपिटक पर एक संक्षिप्त अट्ठकवा लिखने का उपक्रम किया, जिसे देख कर उनके गुरु महास्वविर रेवत ने उनसे कहा है, "लंका से यही भारत में केवल मूल गालि-विपिटक ही लाया गया है। अट्ठकवाएँ यहीं नहीं हैं। विभिन्न आचार्यों की परम्पराएँ भी यहीं उपलब्ध नहीं हैं। हाँ, लंका-दीप में महास्पविर महेन्द्र (महिन्द) द्वारा संगृहीत सिहली भाषा में प्रामाणिक अट्ठकवाएँ सुरक्षित हैं। तुम वहाँ जाकर उनका श्रवण करो, और बाद में मागधी भाषा में उनका स्वानुतर करो, ताकि वे सब के लिये हितकारी हों।"<sup>२</sup> इस प्रकार अपने गुरु से आज्ञा पाकर आचार्य बुद्धबोध लंकाधिपति महानाम के शासन-काल में लंका में गये। अनुराधपुर के महाविहार के महापवान नामक भवन में रह कर उन्होंने संघ-पाल नामक स्वविर से सिहली अट्ठकवाओं और स्वविरवाद की परम्परा को सुना। बुद्धबोध को निश्चय हो गया कि धर्म-स्वामी (बुद्ध) का यही ठीक अभिप्राय है।<sup>३</sup> तब उन्होंने महाविहार के भिक्षु-संघ से प्रार्थना की "मेरे अट्ठकवाओं का (मागधी) स्वानुतर करना चाहता हूँ। मुझे अपनी पुस्तकों को देखने का अनुमति दे।"<sup>४</sup> इस पर भिक्षुओं ने उन्हें दो गाढ़ाएँ परीक्षा-स्वरूप व्याख्या

१. तत्य आणोदयं नाम कर्त्वा यकरणं तदा ।

धर्मसंगणियाकासि कण्ठं सो अट्ठसालिनि ॥

परित्तट्ठकवं चेव कातुं आरभि बुद्धिमा ।

तं दिस्वा रेवतो थेरो इदं बचनं अद्विदि ॥

२. पालिमत्तं इवानीतं नत्य अट्ठकवा इथ ।

तथाचरियवादा च भिन्नरूपा न विज्ञारे ॥

सोहलट्ठकवा सुद्धा महिन्देन मतीमता ।

संगीतित्यं आकृद्धं सम्मासम्बुद्धेसितं ॥

कता सोहलभासाय सीहलेसु पवत्ति ।

तं तत्य गन्त्वा सुत्वा त्वं मागधानं निरुत्तिया ।

परिवत्तेहि सा होति सम्बलोकहितवहा ॥

३. धर्मसा मिस्त एसो च अधिष्पायो ति निचिद्व]

४. कातुं अट्ठकवं धर्म पोत्यके देव ।

करने के लिये दी । बुद्धघोष ने उनकी व्याकरणस्वरूप 'विसुद्धि मम' की रचना की । 'विसुद्धिमम' की विद्वता को देख कर भिक्षुओं को इतनी प्रसन्नता हुई कि उन्होंने बुद्धघोष को साक्षात् भगवान् मंत्रेय बुद्ध (भावी बुद्ध) ही मान लिया और उन्हें अपनी सब पुस्तकों देखने की अनुमति दे दी ।<sup>१</sup> अनुराधपुर के गन्धकार (गन्धकार) विहार में बैठ कर बुद्धघोष ने सिहली अट्ठकथाओं के मानधी व्याख्यान लेतर करने सम्बन्धी अपने कार्यों को पूर्ण किया ।<sup>२</sup> इसके बाद वे अपनी जन्मभूमि भारत लौट आये और यहाँ आकर बोधिवृक्ष की पूजा की ।<sup>३</sup> इस वर्णन में एक बड़े महत्व की बात यह निश्चित हो जाती है कि बुद्धघोष महास्वतिर लंका के राजा महानाम के समय में लंका में गये । यह राजा महानाम चौथी शताब्दी के अनिम और पाँचवीं शताब्दी के आदि भाग में लंका में शासन करता जा । अतः निश्चित है कि बुद्धघोष का जीवन-कार्य इसी समय किया गया । बुद्धघोष ने किसी भी ऐसे ग्रन्थ आदि का उद्धरण नहीं दिया है जो उस काल के बाद का हो । वरमी परमार भी यही मानती है कि आचार्य बुद्धघोष ने पाँचवीं शताब्दी के प्रारंभिक भाग में लंका द्वीप में गमन किया । चूंकि उस समय उनकी अवस्था कम से कम तदण तो रही ही होगी, अतः उनका जीवन-काल चौथी-पाँचवीं शताब्दी कहा जा सकता है । ही 'महावस' के उत्तर्युक्त परिवर्द्धित अंश में आचार्य बुद्धघोष का जन्मस्थान बुद्ध गया के समीप बतलाया गया है ।<sup>४</sup> आचार्य धर्मानन्द को सम्भी का कहना है कि बुद्धघोष महास्वतिर संभवतः उत्तर भारत के नहीं हो सकते थे । उनकी किसी भी कथा को पृथभूमि उत्तर भारत में नहीं रखती गई है । इसके अतिरिक्त विसुद्धि-मम १८६ ( (धर्मानन्द को सम्भी का संस्करण) में 'वन-दाह' की उनके द्वारा व्याख्या तथा मञ्जिभम-निकाय के बोपालक-सुत की व्याख्या में

१. निस्तंसंसर्य स मेत्तेऽयो ति वस्त्वा पुनर्पुनं ।

सहि अट्ठकथायादा पोत्यके पिटकत्तये ॥

२. गन्धकारे वसन्तो सो विहारे दूरसंकरे ।

परिवत्सेसि सज्जा पि सीहलट्ठकथा तदा ॥

३. वन्दितं सो महाकोर्षि जग्मुदीर्पं उपागमि ॥

४. बोधिमण्डसमीपमिह जा तो ज्ञाहुणमाणवो ।

उनके द्वारा किया हुआ मंगा का विवरण, तब यही दिखलाते हैं कि जिस बन-दाह का उन्होंने बर्णन किया है वह भी दक्षिण की बस्तु है और जिस मंगा का उन्होंने बर्णन किया है वह उत्तर भारत की मंगा न होकर दक्षिण भारत की महाबली मंगा है। इस प्रकार आन्तरिक साध्य के आधार आचार्य धर्मानन्द कोसम्बी ने यह दिखाते का प्रयत्न किया है कि आचार्य बुद्धघोष उत्तरी भारत की भीगोलिक परिस्थिति से परिचित नहीं थे, अतः वे वहाँ के निवासी नहीं हो सकते। आचार्य धर्मानन्द कोसम्बी ने उस ब्रह्मी धरम्पत्र को प्रामाणिक माना है जो बुद्धघोषको दक्षिण भारत का ब्राह्मण मानने की प्रक्रियता है। 'विसुद्ध-गम' के निगमन (उपसंहार) में अपना परिचय देते हुए आचार्य बुद्धघोष ने अत्यन्त निर्विकित-करता पूर्वक कहा है 'बुद्धघोषो ति गह्यहि गहित नामधेयेन व्येरेन मोरण्डखेटक वत्तव्येन कतो विसुद्धिमणी नाम' (वहाँ के द्वारा 'बुद्धघोष' नाम दिये हुए मोरण्ड खेटक के निवासी, स्थविर (बुद्धघोष) ने इस विशुद्ध-मार्ग को लिखा।) इसके आधार पर आचार्य धर्मानन्द कोसम्बी ने यह सत प्रकट किया है कि आचार्य बुद्धघोष दक्षिण-भारत के मोरण्ड नामक खेटक (मोरण्ड नामक खेटक, खेड़ा) नामक गाँव के निवासी थे। आचार्य बुद्धघोष कुछ दिन, जैसा उन्होंने अपनी मणिभूम-निकाया को अट्ठकथा में कहा है मयूरसुत्पट्टन या मयूरस्त्वपट्टन में भी रहे थे और वही बुद्धिमत नामक स्थविर के साथ रहते हुए उनकी प्रार्थना पर इस अट्ठ-कथा को लिखा था। आचार्य धर्मानन्द कोसम्बी की धारणा है कि यह मयूरसुत्पट्टन या मयूरस्त्वपट्टन कहीं तेलगु प्रदेश में था। इसी प्रकार आचार्य बुद्धघोष का चीपुर आदि दक्षिण के नगरों में भी रहे थे, जैसा उनके अंगुत्तर-निकाय की अट्ठकथा के अन्त में इस वाक्य से प्रकट होता है—

१. आयाचितो सूमतिना व्येरेन भवन्त-बुद्धमितेन ।

पुच्चे भवूरसुत्पट्टनमिह सर्दि वसन्तेन ॥

यमहं पपञ्चसूदनिमट्ठकं कातुमारदो ॥

"स्थविर ऋतिपाल के साथ काञ्चोपुर तथा अन्य स्थानों में रहते हुए ये ने उनकी प्रार्थना पर इस अट्ठकथा को लिखा आरम्भ किया"।<sup>१</sup> इस प्रकार बुद्धोपयोग ने नूकि अपने जीवन का मन्त्रसे अधिक महत्वपूर्ण कार्य दक्षिण के इन नगरों में ही किया, अतः वे दक्षिण के ही निवासी थे, ऐसा निष्कर्ष आचार्य घर्मातन्द कोसम्बी ने उनकी अट्ठकथाओं के साक्ष्य पर निकाला है,<sup>२</sup> जो उस हृदयक रूप से कहा जा सकता है। फिर भी उनका जन्म-स्थान भी दक्षिण-प्रान्त था, वह उपर्युक्त विवरणों ने प्रमाणित नहीं हो जाता। अधिक से अधिक हम यही कह सकते हैं कि उनका जीवन-कार्य अधिकतर दक्षिण-भारत में किया गया। 'महावर्स' के ऊपर उद्दृत अंश और 'बुद्धोपासुप्ति' आदि में भी बुद्धोपासार्थ को ब्राह्मण कहा गया और उन्हें तीनों वेद, माना शिल्पों तथा पातंजल मीण आदि मतों का पारम्परिक कहा गया है।<sup>३</sup> आचार्य घर्मातन्द कोसम्बी ने उनके ब्राह्मण होने में भी सन्देह किया है और इसी प्रकार उनके वेद तथा पातंजल मत आदि शास्त्रों में पारंगत होने के में भी सन्देह प्रकट किया है। बुद्धोपयोग के ब्राह्मण न होने के विषय में जाचार्य घर्मातन्द कोसम्बी ने यह तर्क दिया है कि बुद्धोपयोग को वेद के पुरुष-सूक्त जैसे महत्वपूर्ण अंश से भी जानकारी नहीं थी, क्योंकि इस सूक्त की एक वृहत्ता में शत्रिय को बहाने के बाहुसे उत्पन्न बताया गया है, जब कि बुद्धोपयोग न इसी सूक्त की ओर संकेत करते हुए उसे हृदय से उत्पन्न बता डाला है।<sup>४</sup> नूकि वाहु और हृदय दोनों ही साहस-

१. आपाचितो सुमतिना थेरेन भदन्त-जोतिपालेन।

कञ्चोपुरादिसु मणा पुष्पे संडि वसन्तेन॥

अट्ठकर्थं वंगुलरमहानिकः परस्त कानुमारद्दो॥

२. वेलिये उनके द्वारा सम्पादित 'विसुद्धिमण' का अंग्रेजी-प्राक्कथन,  
पृष्ठ १५-१८।

३. मिलाइये बुद्धोपासुप्ति "सत्तवस्तिक्काले सो तिष्ठे वेदानं पात्तू अहोस्ति"  
(सत्त वर्ष की अवस्था में ही वह (बुद्धोपयोग) तीनों वेदों का पारंगत हो गया)

४. पुरुष सूक्त में शब्द है—वाहु राजन्यः कृतः। जब कि बुद्धोपयोग ने लिखा है 'खतिया उरतो निष्कान्ता' (अत्रिय हृदय से निकले)। विसुद्धिमण (कोसम्बीजो द्वारा

के प्रतीक है अतः सम्भव है आचार्य बुद्धघोष से, जो सूति में लिख रहे होंगे, दोनों के नामन्यं के कारण यह गलती हो गई हो। यदि इस गलती को गलतों के रूप में स्वीकार कर भी लिया जायतो भी यह उनके ब्राह्मण या अ-ब्राह्मण होने से किस प्रकार सम्बन्धित हो सकता है? यह सूक्त-विषयक अनभिज्ञता तो बुद्धघोष के ब्राह्मण या अ-ब्राह्मण दोनों के ही होते हुए हो सकती थी। अतः इसके कारण आचार्य को सम्बी का बुद्धघोष को अ-ब्राह्मण ठहराना ठीक नहीं जान पड़ता। इसी प्रकार चूंकि बुद्धघोष ने 'गृहपति' या कृषक-ब्रां की प्रशंसा की है, उनको किसी किसान के पर उत्पन्न हुआ मानना भी ठीक नहीं होगा, जैसा मानने का आचार्य को सम्बी ने प्रस्ताव किया है।<sup>१</sup> संस्कृत शास्त्रों का बुद्धघोष का ज्ञान अपूर्ण या, यह भी उद्धरण देकर आचार्य धर्मानन्द को सम्बी ने दिखाने का प्रयत्न किया है।<sup>२</sup> उपर दा० विमलावरण लाहा ने कोई ऐसा भारतीय ज्ञान-शास्त्र ही नहीं छोड़ा है जिस पर बुद्धघोष का पूर्ण अधिकार न दिखा दिया हो।<sup>३</sup> हम समझते हैं कि सत्य इन दोनों कोटियों के बीच में है। आचार्य बुद्धघोष को संस्कृत-साहित्य से अवगति अवश्यकी, किन्तु वह उस अगाध पादित्य के रूप में नहीं या जिसे हम एक वेदज्ञ ब्राह्मण के साथ संयुक्त कर सकते हैं। वरमो परम्परा को यह मात्यता है कि आचार्य बुद्धघोष वरमा में भी बुद्ध-धर्म के प्रतारार्थ गये थे। किन्तु इसका अब तक कोई निश्चित एतिहासिक प्रमाण नहीं मिला। उसके अभाव में हम यही मान सकते

सम्पादित) के प्राक्कथन, पृष्ठ १३ में उद्धृत।

१. विसुद्धिमण (कोसम्बीजी द्वारा सम्पादित) पृष्ठ १३ एवं १६ (प्राक्कथन)
२. विसुद्धिमण (धर्मानन्द कोसम्बी का संस्करण,) के प्राक्कथन में पृष्ठ १३-१४
३. उन्होंने अपने पन्थ 'दि लाइक एंड वर्क बुद्धघोष' में एक पूरा परिच्छेद (छठा) ही आचार्य बुद्धघोष की विश्व-कोश जैसी बहुज्ञता के विवरण को लिए दिया है, पृष्ठ १०४-१३५।

४. उन्होंने पाणिनि के नियम के अनसार अनेक पालि शब्दों की व्युत्पत्ति की है। देखिये आगे दसवें अध्याय में पालि व्याकरण-साहित्य का विवेचन। बुद्धघोष-प्यति (पृष्ठ ६१, ये का संस्करण) के अनुसार सिहली भिक्षुओं ने भी बुद्धघोष के संस्कृत-ज्ञान के विषय में सन्देह किया था, जिसका उन्होंने एक प्रभावशाली भाषण दे कर निराकरण भी कर दिया था। देखिये लाहा : दि लाइक एंड वर्क ऑफ बुद्धघोष, पृष्ठ ३८-३९।

है कि बुद्धोग की रचनाओं के अत्यधिक प्रसार और आदर के कारण ही उनके नाम के साथ इतनी शास्त्रीयता वहाँ प्रचलित हो गई है । आचार्य बुद्धघोष के निवाणि के चित्रम में भी कुछ जात नहीं । किन्तु कम्बोडिया के निवासियों का यह विश्वास है कि बुद्धोग महात्मविरका परिनिर्वाण उनके देश में ही हुआ था । वहाँ 'बुद्धोग विहार' नामक एक अल्पन्त प्राचीन विहार आज तक उनकी स्मृति को संडहर के रूप में खड़ा रह कर सूरक्षित बनाये हुए है । हमें कम्बोडिया-निवासियों के विश्वास में सन्देह करने का कोई कारण दिखाई नहीं पड़ता ।

### बुद्धघोष की रचनाएँ

आचार्य बुद्धघोष की रचनाएँ ये हैं—

१. विसुद्धिमग्न — संपूर्ण-निकाय की दो गाथाओं की व्याख्या के रूप में एक मौलिक कृति
  २. समन्वयादिका — विनय-पिटक की अट्ठकथा
  ३. क्षवाचितरणी — पातिमोक्ष की अट्ठकथा
  ४. सुमंगलविलासिनी — दीप-निकाय की अट्ठकथा
  ५. पपञ्चसदनी — मणिभूम-निकाय की अट्ठकथा
  ६. सारत्वपालिनी — संयुक्तनिकाय की अट्ठकथा
  ७. मनोरच्युतरणी — अंगुष्ठरनिकाय की अट्ठकथा
  ८. परमत्वज्ञातिका — शुद्धक-निकाय के शुद्धक-पाठ और सुत्त-निपात की अट्ठकथा
  ९. लट्ठसालिनी — धर्मसंगण की अट्ठकथा
  १०. सम्मोहनिदनी — विभंग की अट्ठकथा
- ११-१२. यन्त्रपाकरणदृक्षया — धर्मसंगण और विभंग को छोड़ कर शेष ५ अभिघम्म संघों की अट्ठकथाएँ
१३. जातकट्टव्यग्रन्थ — जातक की अट्ठकथा

१. वैश्विये विमलावरण लाहा : दि. लाइफ एंड ट्रॉप ऑफ बुद्धघोष, पृष्ठ ४२, पद-संकेत २

१३. धर्मपदाद्वयाः — धर्मपद की अद्वयकथा  
 १४. अन्य ग्रन्थ — ज्ञानोदय आदि (जो प्राप्त नहीं)  
 इनका कुछ संशिष्ट परिचय देना यहाँ आवश्यक होगा ।

### विसुद्धिमग्मः

'विसुद्धिमग्म' या 'विसुद्धिमग्मो' (विशुद्धि-मार्ग) सम्भवतः आचार्य बुद्धघोष का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है । इसे बुद्ध-वर्म का विश्वकोश ही समझता चाहिये । बौद्ध वर्म या साधना सम्बन्धी कोई ऐसा महत्त्वपूर्ण विषय नहीं है जिसका विस्तृत विवेचन इस ग्रन्थ में न किया गया हो । अपने पूर्वगामी सम्पूर्ण पिटक और अनुपिटक साहित्य का मत्यन ही जैसे आचार्य बुद्धघोष ने इस ग्रन्थ में किया है । आचार्य बुद्धघोष ने भी अपनी रचनाओं में इस ग्रन्थ को विशेष महत्त्वपूर्ण माना है । दीघ, मञ्जिभ्रम, संयुत और अंगुतर इन चारों निकायों की अपनी अट्ठकथाओं की प्रस्तावनाओं में उन्होंने पुनरुक्तिपूर्वक यह कहा है "चारो आगमों (निकायों) के बीच में स्थित होकर यह 'विसुद्धि-मग्म' उनके यथार्थ अर्थ को प्रकाशित करेगा ।"<sup>१</sup> ऐसा मालूम पड़ता है उन्होंने पहले 'विसुद्धि मग्म' की रचना की और फिर चार निकायों की अट्ठकथाओं की । इसीलिए जिस विषय का विस्तृत निरूपण उन्होंने पहले 'विसुद्धि मग्म' में कर दिया है, उसे

१. इस ग्रन्थ का देव-नामरो लिखि में सम्पादन आचार्य धर्मानन्द को सम्मी ने किया है, जो भारतीय विद्या भवन, बम्बई, (१९४०), से प्रकाशित भी हो चुका है । इस महत्त्वपूर्ण संस्करण का उल्लेख कर देने के बाद अन्य किसी संस्करण के उल्लेख करने को अपेक्षा नहीं रह जाती । निश्चय ही यह इतना ही महत्त्वपूर्ण सम्पादन है और हिन्दी का तो विशेष गीरत्य है । 'विसुद्धि-मग्म' का अभी हिन्दी अनुवाद प्रकाशित नहीं हुआ । इस लेखक ने इसके 'शील-स्कन्ध' का अनुवाद किया है, जो 'स्तुता साहित्य मंडल' से प्रकाशित है । इसी प्रकार त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्म-रक्षित का भी इस सम्पूर्ण ग्रन्थ का अनुवाद ज्ञान-मंडल, काशी से छपने वाला है ।

२. मञ्ज्ञे विसुद्धिमग्मो एस चतुर्मिष्य आगमानं हि  
 ठत्वा पकासयिस्सति तत्त्वं यत्वाभासितं अत्यं ॥

फिर निकायों की अट्ठकथाओं में नहीं दुहराया है। इसके विषय में भी उन्होंने प्रत्येक निकाय की अट्ठकथा के आरंभ में कहा है “चूंकि मैंने इस सबका शुद्ध निरूपण ‘विसुद्धि-मग्न’ में किया है, इसलिए उसके संबंध में फिर यहाँ दुबारा विचार नहीं करेंगा।”<sup>१</sup> निश्चय ही आचार्य बुद्धघोष ? ‘विसुद्धि मग्न’ को अपनी संपूर्ण रचनाओं का मध्यस्थ बिन्दु मानते थे और अपनी अट्ठकथाओं के अध्ययन से पहले पाठक से वे उसके अध्ययन की अपेक्षा रखते थे।

यद्यपि ‘विसुद्धि-मग्न’ (विशुद्धि मार्ग) पूरे अर्थों में एक मौलिक रचना है, किन्तु वह दो गाथाओं की व्याख्या के रूप में ही लिखी गई है। वे दो गाथाएँ हैं—

“अन्तो जदा बहि जदा जटाय जटिता पजा। तंतं गोतम पुच्छामि को इम विजटये जटं ति।”

दूसरी गाथा है—

“सोले पतिटाय नरो समञ्जो चित्तं पञ्जञ्च भावये।

आतापो निष्पको निकलु तो इमं विजटये जटं ति।”

पहली गाथा प्रश्न के रूप में है और दूसरी गाथा उसका उत्तर है। विसुद्धि-मग्न के प्रारंभ में ही कहा गया है कि एक बार जब भगवान् शावस्ती में विचरते थे तो किसी देवपुत्र ने उनके पास आकर उनसे प्रश्न गाथा के रूप में प्रश्न पूछा जिसका अर्थ है “अन्दर भी उलझन है, बाहर भी उलझन है। यह जनता उलझन में जकड़ी हुई। अतः हे गोतम ! मैं तुमसे पूछता हूँ—कौन इस उलझन को सुलझा सकता है ?” भगवान् ने दूसरी गाथा के द्वारा इसका उत्तर दिया, जिसका अर्थ यह है “शील में प्रतिष्ठित होकर प्रजावान् मनुष्य जब समाधि और प्रज्ञा की भावना करता है, तो इस प्रकार उद्घोषी और ज्ञानवान् भिक्षु होकर वह उस उलझन को सुलझा देता है।” वस इस भगवान् के उत्तर को लेकर ही आचार्य बुद्धघोष ने संपूर्ण बौद्ध गान और दर्शन को एक एक निश्चित उद्देश्य के सूत्र में पिरो दिया है। वह उद्देश्य क्या है ? साधना के मार्ग के उत्तरोत्तर विकास का स्पष्ट-

१. इति पन सब्द यस्मा विसुद्धिमग्नो मया सुपरिसुद्धं।

बुत्तं तस्मा भिष्यो न तं इथ विचारयिस्तसमि ॥

तम निर्देश कर देना । दूसरे शब्दों में 'विसुद्धिमग्न' बोह योग को एक अत्यन्त कमचढ़ हंग से उपस्थित करने का प्रयत्न करता है । हम यहले देख चुके हैं कि आचार्य वृद्धघोष वृद्ध-मत में प्रवर्जित होते से पहले पातंजल-योग-दर्शन में निष्ठात थे । निष्ठय ही उन्होंने 'विसुद्धिमग्न' के स्वर में बोहों के योगदर्शन को ही साथकों के कल्पाण के लिए प्रकाशित किया है । पातंजल योग-दर्शन की ओरेशा 'विसुद्धिमग्न' अधिक सुध्यवस्थित और नियम-बद्ध है,<sup>१</sup> वह कहा जाय तो वह अतिरेकना नहीं होगा । वृद्धघोष महास्वाविर ने साथकों के कल्पाण के लिए ही इस महाग्रन्थ का रचना की है, इसे उन्होंने इस ग्रन्थ के प्रत्येक परिच्छेद के अन्त में यह कहकर दुहराया है 'साधुजनपामुज्ज्ञत्वय एते विसुद्धिमग्न' साधुजनों की प्रसन्नता के लिये रचित 'विशुद्धिमग्न' में आदि । इसी प्रकार इस ग्रन्थ के आदि में भी उन्होंने कहा है 'मे विशुद्धि के मार्ग का भ्राष्टण कर्हमा । सभी साधु पुरुष, जिन्हें पवित्रता की इच्छा है, मेरे कहे हुए को आदरपूर्वक सुने'<sup>२</sup> (विसुद्धिमग्न भासिस्तं तं मे सक्षक्त्वा भासतो । विशुद्धिकामा सख्ये पि निसामपभ साध्वो ति) । मह ग्रन्थ महाविहारवासी भिक्षुओं की उपदेशविधि पर ही आधारित है, इसे भी वृद्धघोष ने यही दिला दिया है 'महाविहारवासी भिक्षुओं की उपदेश-विधि पर आधारित 'विशुद्धिमग्न' का मे कथन करेंगा (महाविहारवासीनं देसनामयनिस्सिंहं विशुद्धिमग्न भासिस्तं)

जैसा अभी कहा गया, 'विशुद्धिमग्न' साधना-मार्ग की नामा भूमियों का कमचढ़ वर्णन करता है । 'विशुद्धि' का अर्थ किया है आचार्य वृद्धघोष ने 'सर्वमल-रहित, अत्यन्त परिशुद्ध निर्बाण' और 'मग्न' या मार्ग का अर्थ किया है 'प्राप्ति का उपाय' । जल्द 'विशुद्धिमग्न' का अर्थ है 'सर्वमल-रहित,

१. देखिये भिक्षु जगदीश काश्यपः पालि महाव्याकरण, पृष्ठ सेतालोस (वस्तुकथा)  
२. 'विशुद्धिमग्न' के अन्त में उन्होंने फिर अपनी इसी अभिलाषा को दुहराया है

'तस्मा विशुद्धिकामेहि सूखुपञ्चमेहि योगिहि । विशुद्धिमग्ने एतस्मि करणीयो ब आदरो ति' (विशुद्धि के इच्छुक, सूख जान चाले योगी इस विशुद्धिमग्न में आदर-वृद्धि करे) पृष्ठ ५०६ (धर्मग्रन्थ कोसान्बो का संस्करण)

अत्यन्त पीरजुद्द, निर्वाण की प्राप्ति का उपाय”। इस उपाय की मुख्य तीन भूमिकाएँ हैं, जो उत्तरोत्तर क्रमिक साधन के द्वारा प्राप्त की जाती हैं। इन तीन भूमिकों के नाम हैं, शील, समाधि और प्रज्ञा। भगवान् बृद्ध के शब्दों में यही तीन धर्म-स्थान्त्र अर्थात् धर्म के आचार हैं। शील, समाधि और प्रज्ञा के रूप में साधन के पूरे मार्ग का विवरण लाना ही ‘विसुद्धि-मग्म’ का लक्ष्य है।<sup>१</sup> इस महाधर्म में कुल मिलाकर २३ परिच्छेद हैं, जिनमें प्रथम दो परिच्छेदशील या सदाचार का निरूपण करते हैं। १—१३ परिच्छेद समाधिका निरूपण करते हैं। १४—२३ परिच्छेद प्रज्ञा का निरूपण करते हैं। शील का निरूपण करने वाले प्रथम दो परिच्छेदों के नाम हैं क्रमशः ‘शील-निर्देश’ (शीलनिर्देशी) और ‘बवधूत-शतों का निर्देश’ (धूतंग निर्देशी)। प्रथम परिच्छेद में आचार्य बृद्धघोष ने अपने विवेच्य विषय को प्रश्नों के रूप में वर्णित किया है—

- (१) शील क्या है ?
- (२) किस बाये से ‘शील’ है ?
- (३) शील के लक्षण, सार, प्रकटित स्वरूप और आसन कारण क्या है ?
- (४) शील का सुपरिणाम क्या है ?
- (५) शील कितने प्रकार का है ?
- (६) शील का मेला होता क्या है ?
- (७) शील का निर्मल होना क्या है ?

इन प्रश्नों के उत्तर ब्रो बृद्धघोष ने दिये हैं, उनका यदि यहां संक्षेप भी दिया जाय तो वह भी कई पृष्ठ लेगा। फिर इनके साथ साथ अतेक अवान्तर विषय भी ‘विसुद्धि-मग्म’ में सम्मिलित है—जिनका साधकों के लिए अपना महत्व है, किन्तु पालि साहित्य के इनिहास में विच्छेदितार-मग्म से उद्भूत नहीं किया जा

१. ‘विसुद्धि-मग्म’ को विषय-वस्तु का विवाद विश्लेषण भिक्षु जगदीश काश्यप ने अपनी अभियन्त्र-फिलोसोफी, जिस दूसरो, पृष्ठ २१८-२५७ में किया है। त्रिपिटकाभास्यं भिक्षु पर्मरक्षित ने भी “धर्म ब्रह्म” अप्रैल -मई १९४७ पृष्ठ ६१-६६ में इसका सुन्दर विश्लेषण किया है।

सकता । उदाहरणतः बुद्धधोष द्वारा शील की प्रशंसा,<sup>१</sup> ब्रह्मचर्य के उच्चतम अवधि का प्रकाशन,<sup>२</sup> और सबसे बड़कर कुछ बोढ़ साधकों के पवित्र-जीवन मध्यमी अभ्यास के उदाहरण,<sup>३</sup> आदि बड़े मार्मिक प्रसंग हैं । तेरह अवधूत व्रतों (जो दूसरे परिच्छेद के विषय हैं) के नामों का विवरण हम 'मिलिन्ड पञ्च' का विवरण करते समय दे चुके हैं । उन्हीं का यहाँ भी विस्तृत विवरण है । प्रत्येक अवधूत-नियम के विषय में यहाँ इतनी दृष्टियाँ से विचार किया गया है (१) अर्थ (२) लक्षण (३) प्रहण की विधि (४) विभिन्न प्रकार, यथा उत्तम, मध्यम, हीन (५) भंग होना (६) व्रत-रक्षण की प्रशंसा (७) कुपाल-विक के रूप में वर्गीकरण (८) समाप्तिगत विवरण (९) व्याप्तिगत विवरण । अल्पेच्छुता, सन्तोष आदि गुणों की दृष्टि के लिए ही इन नियमों के अभ्यास का विधान किया गया है । वास्तव में ये चित्त के मैल को शुद्ध करने के लिए ही हैं । अतः इनका अभ्यास भव के लिए अनिवार्य नहीं है । आचार्य बुद्धधोष ने इन कठिन नियमों के विवेचन में तथागत के मध्यम मार्ग को कभी दृष्टि से ओमल नहीं होने दिया है । इसीलिए उन्होंने एक महत्वपूर्ण प्रश्न किया है 'कस्स धूतंगसेवना सप्याया ति' अर्थात् किसका अवधूत-व्रतों का अभ्यास अनुकूल है? उत्तर दिया है 'रामचरितस्स चेव मोहचरितस्स च' अर्थात् उस व्यक्ति का जिसके आचरण में अभी राम वर्तमान है, मोह वर्तमान है । उन्होंने स्वीकार किया है 'धूतंगसेवना हि दुर्लभा पटिपदा चेव सल्लेखविहारो च' अर्थात् अवधूत-व्रतों का अभ्यास दुर्लभ का मार्ग है और तपश्चर्या का जीवन है । उनका उपयोग साधक के लिए केवल इसीलिए है कि वे चित्त-मलों को नष्ट कर देते हैं और इस प्रकार वे भिलु के अंग ही बन जाते हैं । दुर्लभ-मार्ग के आवश्य लेने वाले का राम शान्त हो जाता है, तपश्चर्या से रहने वाले अप्रमादी व्यक्ति का मोह नष्ट हो जाता है<sup>४</sup> । इसीलिए राम

१. पृष्ठ ६-७

२. पृष्ठ ३४-३५

३. वेलिये विशेषतः पृष्ठ १४, २१, २६-२८, ३१-३२ आदि, आदि

४. दुर्लभापटिपदं च निस्साय रामो बूपसमति । सल्लेखं निस्साय अप्पमत्स्स मोहो पहोचति । पृष्ठ ५४-५५

देपादियुक्त व्यक्तियों का चित्त-शुद्धि के लिए स्वेच्छापूर्वक इन ब्रतों को स्वीकार करना आवश्यक है। इस प्रकार उनके दोष मान्त हो जाते हैं।

शील या सदाचार के बाद विशुद्धि-मार्ग उस दूसरी ऊँची भूमिका का बर्णन करता है, जिसका नाम समाधि है। समाधि की परिभाषा करते हुए आचार्य बृद्धघोष ने कहा है 'कुसलचित्तेकगता समाधि' अर्थात् कुशल चित्त की एकाग्रता ही समाधि है। किसी एक आलम्बन (विषय) में चित्त और चेतनिक कर्मों को समान और सम्पूर्ण से बिना विक्षेप और विकीर्णता के रखना ही चित्त की समाधि या समाधान (सम्पूर्ण आधान) कहलाता है।<sup>१</sup> समाधि के विषय में भी आचार्य बृद्धघोष ने वही प्रश्न किये हैं जो शील के विषय में, यथा (१) समाधि क्या है? (२) किस अर्थ में 'समाधि' है? (३) समाधि के लक्षण, सार, प्रकटित रूप और आसन्न कारण क्या है? (४) समाधि कितने प्रकार की है? (५) समाधि का मलिन होना क्या है? (६) समाधि का निर्मल होना क्या है? और (७) समाधि की भावना किस प्रकार करनी चाहिए? इनके उत्तरों का संक्षेप देना तो यहाँ असंभव ही होगा। केवल कुछ मोटी बातें ही कही जा सकती हैं। आचार्य बृद्धघोष ने समाधि का प्रधानतः दो भागों में विवरण किया है, यथा उपचार समाधि (२) अपेणा समाधि। चार भागों में भी, यथा—

- (१) दुख्ला पटिपदा दन्धाभिज्ञा।
- (२) दुख्ला पटिपदा खिप्पाभिज्ञा।
- (३) सूख्ला पटिपदा दन्धाभिज्ञा।
- (४) सूख्ला पटिपदा खिप्पाभिज्ञा।

जैसा अभी कहा गया, समाधि-स्फूर्त्य का विवरण 'विसुद्धिमग्म' के ३—१३ परिच्छेदों में है। इन परिच्छेदों के नाम-विवरण के अलावा उनकी विषय-बस्तु का तो संक्षिप्त निवेदन भी यही प्राप्त: असंभव ही है, अतः हम उनके नाम देकर उनकी विषय-बस्तु को इनित मात्र करेंगे।

१. एकारमणे चित्तचेतनिका सम सम्मा च अविविष्टप्रमान अविष्टकिणा च हृत्वा तिद्धन्ति, इवं समाधानं ति वेदितव्यं (पृष्ठ ५७)

### समाधि-स्कन्ध (परिच्छेद ३-१३)

३. कर्मस्थानों (समाधि के जालस्वर्गों) को प्रहण करने का निर्देश (कर्मदानवहण निर्देशो)—समाधि-जालना की दश जाग्राओं<sup>१</sup> (पलियोवा) को छोड़ने का उपदेश ।

४. पृथ्वी कृत्स्न (ध्यान-विशेष) का निर्देश (पृथ्वीकसिणनिर्देशो)—पृथ्वी-कृत्स्न नामक ध्यान का विवरण । समाधि के वयोंगे १८ स्थानों को छोड़ने का आदेश एवं चार ध्यानों का विस्तृत विवरण ।

५. क्षेत्र कृत्स्नों (ध्यान विशेषों) का निर्देश (सेसकसिणनिर्देशो)—पृथ्वी-कृत्स्न से अतिरिक्त थोष आणो-कृत्स्न (जल-कृत्स्न) आदि ९ ध्यानों का विवरण ।

६. अशुभ कर्मस्थान का निर्देश (अशुभकम्मट्ठान निर्देशो)—शरीर की गन्धगिरों के ध्यान के द्वारा आंगन-समाधि की प्राप्ति का उपाय ।

७. छह अनुस्मृतियों का निर्देश (छ अनुस्सति निर्देशो)—दुद, घर्म, संघ, शील, त्याग और देवताओं की अनुस्मृतियाँ ।

८. अनुस्मृति और कर्मस्थान का निर्देश (अनुस्सति कम्मट्ठान निर्देशो)

१. यथा जावास, कुल, लाभ, गण, काम, मार्ग, जाति-वस्तु, रोग, एवं (-रचना) और छढ़ि (योग-विभूति)

२. यथा (१) बहुत बड़ा विहार, (२) मिलकुल नवा विहार, (३) बहुत पुराना विहार, (४) सड़क के किनारे स्थित, (५) तालाब के किनारे स्थित, (६-८) येड़, कूल और फसलों वाले बागों से युक्त, (९) अति प्रसिद्ध, (१०) नगर के बीच में स्थित, (११) अधिक येड़ों के बीच स्थित, (१२) खड़ी फसलों वाले जंत के समीप, (१३) भगड़ाल भिष्ट जहाँ रहते हों, (१४) जहाँ के व्यापित अ-व्यापिक हों, (१५) सीमा-ग्रान्त में अवस्थित, (१६) अ-रक्षित स्थान में स्थित और (१८) जहाँ कल्याण-मित्र (जाप्यास्तिक गुरु या मार्ग इष्टा) न मिल सके ।

परण, कायगतासति, आनापान-सति और उपदाम इन चार अनुस्मृतियों तथा योग-आलम्बनों का विवरण ।

१. ब्रह्मविहार का निर्देश (ब्रह्मविहार निर्देशो) — मैत्री, करुणा, मुद्रिता और उपेक्षा यही चार भावनाएँ 'ब्रह्म-विहार' कहलाती हैं । इनका विवाद विवरण । इन भावनाओं का निर्देश पतंजलि ने भी अपने योग-दर्शन में किया है ।

२०. अरूपता का निर्देश (अरूप निर्देशो) — अरूपता-सम्बन्धी ध्यानों का विवरण, यथा आकाशाननन्त्यायतन, विज्ञानानन्त्यायतन, जाकिङ्यन्यायतन तथा नैवसंज्ञानासंज्ञायतन ध्यानों का विवरण ।

२१. समाधि का निर्देश (समाधि निर्देशो) समाधि-भावना का उपदेश एवं शरीर की अशुभता आदि पर ध्यान । आहार में प्रतिकूल-संज्ञा आदि का विवेचन भी ।

२२. ऋद्धविधि का निर्देश (इद्धविधिनिर्देशो) — दिव्यश्रोत्र, परचित्त-ज्ञान, पूर्वजन्म की स्मृति और दिव्य चशु इन चार योग-विभूतियों का विवरण ।

२३. अभिज्ञा (उच्चतम ज्ञान) का निर्देश (अभिज्ञा निर्देशो) — पूर्वजन्म की स्मृति आदि का ही विस्तृत विवरण ।

प्रजा की परिभासा करते हुए आचार्य बृहदेश ने कह दे 'कुसलचित्तसम्युक्तं विपस्तनाज्ञाणं पञ्चान्' अर्थात् कुशल-चित्त से युक्त विपश्यना-ज्ञान ही प्रजा है । प्रजा-नक्षय के परिच्छेदों की विषय-बस्तु इस प्रकार है—

२४. स्कन्ध-निर्देश (स्कन्ध-निर्देशो) — पञ्च-स्कन्धों (रूप, वेदना, संज्ञा संस्कार और विज्ञान) का विवेचन ।

२५. आयतन और धातुओं का निर्देश (आयतन-धातु निर्देशो) — १२ आयतन और अठारह धातुओं का विवरण ।

२६. इन्द्रिय और सत्त्वों का निर्देश (इन्द्रिय-सत्त्वनिर्देशो) — पाँच इन्द्रिय और चार आमं-सत्त्वों का विवरण ।

२७. प्रजा की मूर्मियों का निर्देश (पञ्चानुमिनिर्देशो) — स्वरूप, जायतन, धातु, इन्द्रिय, सत्त्व और प्रतीत्य समुत्पाद ये प्रजाकी मूर्मियाँ हैं । प्रथम पाँच का वर्णन पहले हो चुका है । यहीं प्रतीत्य समुत्पाद का विस्तृतम विवरण उपलब्ध होता है ।

१८. दुष्टि की विशुद्धि का निर्देश (दिटिंडिसुद्धि निहेसो) —नाम और रूप का यथावत् दर्शन ही दुष्टि-विशुद्धि है—इसका विस्तृत विवरण ।

१९. संशय को पार करने के रूप में विशुद्धि का निर्देश (कंखावितरण-विसुद्धि निहेसो) —यथाभूत ज्ञान, सम्पर्क दर्शन और संशय को पार करना, यह सब एक ही वस्तु है, केवल शब्द नामा है ।

२०. मार्ग और ब्रमार्ग के ज्ञान और दर्शन के रूप में विशुद्धि का निर्देश (मग्नामग्नाणदस्सनविसुद्धि निहेसो) पदार्थों के उदय और अवयव की देखना एवं विषयनान-प्रज्ञा की भावना करना ।

२१. प्रतिपदा (मध्यम-मार्ग) के ज्ञान और दर्शन के रूप में विशुद्धि का निर्देश (पटिपदाज्ञाणदस्सनविसुद्धि निहेसो) —‘न मैं, न मेरा, न मेरा आत्मा,’ अर्थात् अनात्म तत्त्व की भावना का विवरण ।

२२. ज्ञान और दर्शन रूपी विशुद्धि का निर्देश (ज्ञाणदस्सनविसुद्धि निहेसो) —खोतापति, सङ्कायामी, जननामी और अहंत्, इन चार मार्गों सम्बन्धी ज्ञान का विवरण । बोधिपक्षीय धर्मों का भी इन्हीं के अन्दर समावेश ।

२३. प्रज्ञा की भावना के सुपरिणामों का निर्देश (पञ्ज्ञा भावनानिसंस-निहेसो) —नाना चित्त-मलों का विघ्नांस, जायं-फल के रस का अनुभव, निरोध-समाधि को प्राप्त करने की योग्यता और लोक में पूज्य होने की पात्रता, प्रज्ञाकी भावना के इन चार सुपरिणामों का विवरण ।

उपर्युक्त विषय-सूची के संकेत-मात्र से स्पष्ट है कि ‘विशुद्धि-मार्ग’ का क्षेत्र कितना अधिक विस्तृत है । अतः यदि इतने निष्पत्ति से हम केवल यह भी इग्नित करने में सफल हो सके कि ‘विशुद्धि-मार्ग’ बुद्ध-धर्म सम्बन्धी महान् ज्ञान-कीश को संचित किये हुए हैं, तो भी हमने यालि साहित्य की दुष्टि से अपना कर्तव्य पूरा कर दिया । विवरण में आगे चले जाने पर तो इस विषय का अन्त ही नहीं हो सकता, क्योंकि पातंजल योग के साथ इसका तुलनात्मक अध्ययन किये जिना कोई इस सम्बन्धी विवेचन पूरा नहीं माना जा सकता । अब हम बुद्ध योग की अटठकवाबों पर आते हैं ।

### समन्वयासादिका

समन्वयासादिका पूरे विनय-पिटक की अटठकथा है । आचार्य बुद्धघोष की रक्षी हुई यह सम्भवतः प्रथम अटठकथा है । बुद्ध वी (बुद्धसिर) नामक

स्थविर की प्रारंभना पर उन्होंने यह अट्ठकथा लिखी थी। प्राचीन भारत को सामाजिक, राजनीतिक, और धार्मिक अवस्था का इस अकेले ग्रन्थ से ही एक पूरा इतिहास निर्मित किया जा सकता है। प्रथम तीन बौद्ध संगीतियों के विवरण में हमने इस ग्रन्थ से कितनी सहायता ली है, यह पूर्व के विवरणों से स्पष्ट हो गया होगा। भगवान् बुद्ध और उनके शिष्यों के जीवन-सम्बन्धी अनेक विवरणों के अतिरिक्त तत्कालीन अन्य प्रसिद्ध ऐतिहासिक व्यक्तियों और भौगोलिक स्थानों के विवरण जो हमें यहाँ मिलते हैं, वहें ही महत्वपूर्ण हैं। इस अट्ठकथा के बाद ही बृद्धघोष ने सूत-पिटक के निकायों पर अट्ठकथाएँ लिखीं।

### कंखावितरणी

'कंखावितरणी' 'पाति मोक्ष' पर अट्ठकथा है। इस अट्ठकथा में हमें न केवल बृद्धकालीन भिद्यु-संघ के जीवन की ही भलक मिलती है, अपितु उसके उत्तरकालीन विकास का भी पर्याप्त ज्ञान होता है।

### सुमंगलविलासिनी

'सुमंगल विलासिनी' दीघ-निकाय की अट्ठकथा है। संघस्थविर दाठानाग नामक भिद्यु की प्रारंभना पर आचार्य बृद्धघोष ने यह अट्ठकथा लिखी, ऐसा उन्होंने स्वयं कहा है।<sup>१</sup> बृद्धकालीन भारत की राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक परिस्थिति के अनेक चित्रों एवं अनेक प्रकार के आच्यानों से यह अट्ठकथा भरी पड़ी है। सुन्तों के अनेक प्रकार के विवेचन, बृद्ध और उनके शिष्यों के जीवन सम्बन्धी अनेक विवरण, इस अट्ठकथा में भी भरे पड़े हैं। उदाहरणतः भगवान् बृद्ध 'तथागत' क्यों कहलाते हैं, उनकी दैनिक चर्चा क्या थी, आदि अनेक महत्वपूर्ण विवरण इस अट्ठकथा में हैं। इसी प्रकार बृद्धकालीन महत्वपूर्ण व्यक्तियों यथा जीवक कौमार भूत्य, तिष्य आश्वर्णेर, ब्रह्मदृठ आदि के विषय में अधिक जानकारी यहाँ दी गई है। इसी प्रकार भौगोलिक दृष्टि से अंग-भग्ध, दक्षिणा-

१. आयाचितो सुमंगलपरिवेणनिवासिना विरगुणेन

दाठानाग संघटवेरेन घेर वंसन्वयेन।

यं आरभि सुमंगलविलासिनि नाम नामेन।

पथ, पापिताराम, कोशल, राजगृह आदि के प्राचीन वास्त्यान-बुद्ध इतिहास और उनके विषय में अन्य महत्वपूर्ण विवरण दिये गये हैं, जो पालि-विग्रहिक में नहीं मिलते। इन सब के अलावा 'सुमगलविलासिनी' में अध्य-निकाय के कठिन मत्तों की विवितयाँ और उनके अध्य-निवेदन भी हैं, जो अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। उसका सब से अधिक आकर्षक महत्व तो ऐतिहासिक ही है, इसमें संदेह नहीं।

### पपञ्चसूदनी

'सुमगलविलासिनी' को ही शैली में लिखित पपञ्चसूदनी मणिभूम-निकाय की विस्तृत अट्ठकथा है। यह अट्ठकथा आचार्य बुद्धघोष ने बुद्धमित्र नामक स्वविर की प्रारंभा पर लिखी थी।<sup>१</sup> ऐतिहासिक और भौगोलिक दृष्टि से इस अट्ठकथा का भी प्रभूत महत्व है। कुरु-प्रदेश, आवस्ती (सावत्य), हिमवन्त-प्रदेश आदि के महत्वपूर्ण विवरण इस अट्ठकथा में मिलते हैं। विषय-विन्यास मणिभूम-निकाय के समान ही है और उसी के अन्तर्सार बुद्ध-वचनों की क्रमानुसार आव्याय भी यहीं की गई है, जो उस दृष्टि से भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

### सारत्थपकासिनी

जदोत्तिपाल नामक भिन्न की प्रारंभा पर आचार्य बुद्धघोष ने सारत्थपकासिनी या समृद्ध-निकाय की अट्ठकथा लिखी।<sup>२</sup> अर्थ और ऐतिहासिक तथा भौगोलिक दृष्टियों से यह अट्ठकथा भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसके अलावा यहीं इसके विषय में और कुछ नहीं कहा जा सकता।

### मनोरथपूरणी

मनोरथपूरणी या अंगुत्तर-निकाय की अट्ठकथा आचार्य बुद्धघोष ने भद्रन नामक स्वविर की प्रारंभा पर लिखी। इस अट्ठकथा की एक बड़ी विशेषता यह है कि इसमें भगवान् बुद्ध के विषय अनेक निश्च और भिन्नियों की ज्ञान-प्राप्ति का वर्णन किया गया है। उदाहरणतः पिंडोल भारद्वाज, पुण्ड्र मन्तानिषुत, भग-

१. आवाचितो सुमतिना येरेन भद्रन बुद्धमित्तेन, आदि।

२. आवाचितो सुमतिना येरेन भद्रन-जोतिपालेन।

कंवीपुराविदु मया पुच्छे संद्व वसन्तेन, आदि ॥

कच्चान, सोण कोलिब्रीस, राहुल, रट्ठपाल, बंगीस, कुमार कस्सप, उपरालि, उरुवेल कस्सप जादि के महत्त्वपूर्ण विवरण दिये हुए हैं। इसी प्रकार महाप्रजापती गोतमी, संघमित्रा तथा अन्य अनेक भिक्षुणियों के भी विवरण हैं। भगवान् बृद्ध के वर्णवासों का भी बड़ा अच्छा विवरण यहाँ दिया गया है। बृद्धत्व-प्राप्ति से लेकर महापरिनिर्वाण तक के ४५ वर्णवासों की भगवान् ने कहाँ-कहाँ विताया, इस ऐतिहासिक महत्त्वपूर्ण तथ्य के विषय में यहाँ कहा गया है—“तथागत प्रथम शोषि में बीस वर्ष तक अस्थिरवास हो, जहाँ जहाँ ठीक रहा वहाँ जाकर वास करते रहे। पहली वर्षों में जपितन में अमं-चक्र प्रवर्तन कर वाराणसी के पास अधिष्ठन में वास किया। दूसरी वर्षों में राजगृह वेणुवन में। तीसरी और चौथी में भी वहाँ। पाँचवीं वर्षों बैशाखी में महावन कुटागार-शाला में। छठवीं वर्षों में मंकुल-पर्वत पर। सातवीं वायस्त्रिंश भवन में। आठवीं भग्न-देश में मंसुमार-निरि के भेस कलावन में। नवीं कौशाम्बी में। इसवीं पारिलेखक बनखड़ में। घ्यारहवीं नाला ब्राह्मण-ग्राम में। वारहवीं कंरेजा में। तेरहवीं चालिय-पर्वत पर। चौदहवीं जेतवन में। पन्द्रहवीं कपिलवस्तु में। सोलहवीं आलवीं में। सतहवीं राजगृह में। अठारहवीं चालिय पर्वत पर। उशीसवीं भी वहाँ। बीसवीं वर्षा राजगृह में। इस प्रकार तथागत ने बीस वर्ष, जहाँ जहाँ ठीक हुआ, वहाँ वयोवास किया। इससे आगे दो ही निवासन्स्वान सदा रहने के लिये लिये। कौन से दो? जेतवन और पूर्वाराम . . . . .”<sup>१</sup> अतः इस अट्टकणा के अनुसार, बृद्ध के वर्णवासों का यह प्रामाणिक व्योरा इस प्रकार होगा।

वर्ण-वास	जहाँ विताया
१	अूषि पतन
२-४	राजगृह
५	बैशाखी
६	मंकुलपर्वत
७	वायस्त्रिंश

१: महापंडित राहुल सांकृत्यायन द्वारा बृद्धवर्षा पृष्ठ ७५ में अनुवायित।

८	सुसुमार गिरि
९	कौशास्त्री
१०	पारिलेखक
११	नाला
१२	बेरंजा
१३	चालिय पर्वत
१४	आवस्ती (जेतवन)
१५	कपिलवस्तु
१६	बालबी
१७	राजगृह
१८-१९	चालिय पर्वत
२०	राजगृह
२१-२५	आवस्ती (जेतवन)
४६-	बैशाली (पूर्वोराम)

### परमत्थजोतिका

परमत्थजोतिका खुदक-निकाय के खुदक-पाठ और सुत्त-निपात की अट्ठकथा है। इसमें लिच्छवियों की उत्पत्ति की मनोरंजक कथा है, जिसका विवरण हम यहाँ विस्तार-भय के काण्ड नहीं दे सकते। परमत्थजोतिका के अन्तर्गत खुदक-पाठ की अट्ठकथा के प्रसंग में अनारायिडिक के आराम जेतवन, राजगृह के १८ विहारों, सप्तपर्णी गुफा और बैशाली आदि के विशेष में विशेष सूचना दी गई है। महाकाश्यप, आनन्द और उपालि आदि भिक्षुओं तथा विद्याला, धर्मदिना आदि भिक्षुणियों के विषय में भी कुछ अधिक सूचना दी गई है।

### धर्मपदट्ठकथा

धर्मपदट्ठकथा या धर्मपद की अट्ठकथा में जातक के डंग की कहानियों का प्राधान्य है। जार निकायों और जातक आदि से ही मेर कहानियाँ संगृहीत की गई हैं। जातक की अनेक गाथाएँ यहाँ उदृत की गई हैं और उसकी कहानियों

में से अनेक यहाँ उसी रूप में रखी हुई हैं। वास्तव में धर्मपद्धकथा कहानियों का एक संग्रह ही है। वासवदत्ता और उदयन की कथा भी इस अट्ठकथा में एक जगह मिलती है। अनेक कथाएँ जातक के अलावा विनय-पिटक से भी ली गई हैं, जैसे देवदत्त, बोधिराजकुमार, छन्द जादि की कथाएँ। निश्चय ही जातक और धर्मपद्धकथा का पारस्परिक सम्बन्ध पालि साहित्य के इतिहास की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। धर्मपद्धकथा आचार्य बुद्धघोष की रचना है या नहीं, इसके विषय में सन्देह प्रकट किया गया है। डा० गायगर ने इसे आचार्य बुद्धघोष की रचना नहीं माना है।<sup>१</sup> उन्होंने धर्मपद्धकथा को जातकट्टबण्णना में भी बाद की रचना माना है, क्योंकि दोनों में अनेक कहानियाँ समान हैं। यह एक आश्चर्य की बात है कि जो कहानियाँ यहाँ दी गई हैं और जिनके आधार पर धर्मपद की प्रत्येक गाथा को समझाया गया है, उन्हें भी साक्षात् बुद्धोपदेश (बुद्ध-देसना) ही यहाँ बताया गया है, जो ऐतिहासिक रूप से ठीक नहीं हो सकता। कुछ भी हो धर्मपद्धकथा की कहानियों में जातक के समान ही प्राचीन भारतीय जीवन, विशेषतः सामान्य जनता के जीवन, की पूरी भलक मिलती है और भारतीय कथा-साहित्य में उसका भी एक स्थान है।

### जातकट्टबण्णना

जातकट्टबण्णना का जातक-गाथाओं की अट्ठकथा है। इसके भी बुद्धघोष-कृत होने में सन्देह किया गया है। डा० गायगर ने इसे किसी सिहली भिन्न की रचना माना है, फिर वह भले ही बुद्धघोष न्यों न हों।<sup>२</sup> प्राचीन सिहली अट्ठकथाओं से लेखक ने अपनी सामग्री का संकलन किया है। इन कहानियों मा आस्थानों की व्येदा धर्मपद्धकथा की कहानियाँ अपने स्वरूप में बुद्ध-उपदेशों की भलक अधिक मिलती हैं। भूत और वर्तमान के (बुद्ध-) जीवन की कहानियों

१. उन्होंने इसे किसी भीलिक सिहली अट्ठकथा का पालि अनुवाद माना है।

वेलिये उमका पालि लिटरेचर एंड लेखेज, पृष्ठ ३२

२. पालि लिटरेचर एंड लेखेज, पृष्ठ ३१

की पृष्ठभूमि से बहुत कुछ अन्तर पाया जाता है, अतः उत्तरकालीन धोपकों और परिवर्द्धनों को भी इस सत्य में जारीका को मई है। भारतीय कवानक-साहित्य के प्राचीन लोग जानने के लिये जातक के समान उसकी इस अट्ठकथा को भी पढ़ना अत्यन्त जावश्यक है, इसमें सत्येह नहीं।

### अभिघम्म-पिटक सम्बन्धी अट्ठकथाएँ

आचार्य बुद्धघोष की अभिघम्म-पिटक सम्बन्धी अट्ठकथाएँ भी बड़ी महत्वपूर्ण हैं। इनमें सब से पहला स्थान 'अट्ठसालिनी' का है, जो 'धम्मसंगणि' की अट्ठकथा है। वास्तव में इसके समान गम्भीर और दुर्लभ दूसरी रचना अनुपिटक साहित्य में नहीं है। जैसा हम पहले देख चुके हैं, 'महाबंस' के धम्मकिति-विरचित परिवर्द्धित अंग के अनुसार आचार्य बुद्धघोष ने 'अट्ठसालिनी' की रचना लंका से प्रस्थान करने के पहले ही की थी। यह बात ठीक नहीं हो सकती। लंका जाकर बुद्धघोष महास्थविर ने 'विसुद्धिमग्ग' लिखा, यह तो निश्चित ही है। उसके बाद ही 'अट्ठसालिनी' लिखी गई, यह हमें जानना चाहिये। इसका कारण यह है कि 'अट्ठसालिनी' के आरम्भ की गाथाओं में न्ययं आचार्य बुद्धघोष ने कहा है "सब इमं-स्थान (समाधि के आलम्बन) चर्या, अभिज्ञा और विपश्यना का प्रकाशन में विसुद्धि-मग्ग" में कर चुका है, इसलिये फिर उनका यही विवरण नहीं करूँगा"<sup>१</sup> आदि। अतः 'अट्ठसालिनी' और 'विसुद्धिमग्ग' के बाद की ही रचना मानना चाहिये। यह ही सकता है कि उसकी एक प्राचीनिक लपरेता आचार्य बुद्धघोष ने यही बताई हो। प्रस्तुत रूप में तो वह निश्चित रूप से 'विसुद्धिमग्ग' से बाद की रचना है। अभिघम्म के जिनासुओं के लिये 'अट्ठसालिनी' का कितना अधिक महत्व है, यह बताने की जावश्यकता नहीं। यह बड़ी प्रसन्नता की बात है कि प्रो॰ वापट ड्वारा समादित इस अट्ठकथा का देव-नामरी संस्करण भी प्रकाशित हो चुका है, जो राष्ट्र-भाषा हिन्दी के लिये एक मंगलकारी चिन्ह है। 'अट्ठसालिनी' के बलावा 'सम्मोह-विनोदगी' नाम की अट्ठकथा आचार्य बुद्धघोष ने विभंग

१. कम्मट्टामानि सञ्चानि चरियाभिज्ञा विपश्यना ।

विसुद्धिमग्गे पनिंदे यस्मा सञ्चं पकासित ॥ आदि ।

पर लिखी। अन्य पाँच अभिवाम-ग्रन्थों पर भी उन्होंने अट्ठकथाएँ लिखीं, जिनके नाम हैं कमधा: धातुकथापकरणट्ठकथा, पुमाल-पञ्चतिपकरणट्ठकथा, कथावत्यु-पकरण-अट्ठकथा,<sup>१</sup> यमकापकरणट्ठकथा और पट्ठान पकरणट्ठकथा। यह पाँचों अट्ठकथाएँ मिलकर पञ्च-पकरणट्ठ कथा, भी कहलाती है।

### अन्य रचनाएँ

जैसा बुद्धघोष की जीवनी के प्रसंग में कहा जा सका है, लंका-गमन से पूर्व आचार्य बुद्धघोष ने 'ज्ञानोदय' (ज्ञानोदय) नामक ग्रन्थ और समूलं विपिटक पर एक संक्षिप्त अट्ठकथा लिखी थी। ये रचनाएँ आज नहीं मिलतीं। 'सासन-वंस' के अनुसार आचार्य बुद्धघोष 'पिटकतथलक्षण ग्रन्थ' (पिटकत्रयलक्षण ग्रन्थ) नामक ग्रन्थ के भी रचयिता थे, किन्तु यह ग्रन्थ भी आज नहीं मिलता। महाकाव्य की शैली पर बुद्ध-जीवनी के रूप में लिखित 'पद्मचूडामणि' नामक ग्रन्थ भी जिसे मद्रास दरकार ने प्रकाशित करवाया था, उसके सम्पादक कुप्प-स्वामी शाली के द्वारा अट्ठकथाचरिय बुद्धघोष की रचना बतलाया गया है। उसकी भिन्न शैली के साध्य पर डा० विमलानन्द लाहा ने उसे पालि अट्ठकथाकार बुद्धघोष की रचना नहीं माना है।<sup>२</sup> हमें भी यही मत समीचीत जान पड़ता है।

### पालि-साहित्य में बुद्धघोष का स्थान

इस प्रकार आचार्य बुद्धघोष के विशाल ज्ञान की कुछ झलक हम ने देखी है। वास्तव में पालि साहित्य के एक पूरे सुग के बे विषयक हैं जिसका प्रभाव अभी भी निःशेष नहीं हुआ है। उनके 'विसुद्धि-मणि' की ज्ञान-गरिमा पालि-साहित्य

१. इस अट्ठकथा के अनुसार अशोक के काल तक उत्पन्न १८ बौद्ध सम्प्रदायों और उनके मतों का उल्लेख हम पाँचवें अध्याय में 'कथावत्यु' के विश्लेषण के प्रसंग में कर जा सकते हैं।

२. पद्म-चूडामणि को विषय-वस्तु और शैली के विवरण तथा डा० लाहा के तत्सम्बन्धी निष्कर्ष के लिए देखिये उनका 'दि लाइफ एंड वर्क ऑफ बुद्धघोष', पृष्ठ ८५-९१।

म हो नहीं सम्पूर्ण भारतीय दार्शनिक इतिहास में अपना एक विशेष स्थान रखती है। इसी प्रकार उनकी अट्ठकथाओं का अर्थ-सम्बन्धी महत्व तो है ही, उनमें जो महान् ऐतिहासिक और भीगोलिक सामग्री भरी पड़ी है, जिसने सम्पूर्ण प्राचीन भारतीय सामाजिक और राजनीतिक जीवन पुनरुज्जीवित हो उठाया है, वह तो भारतीय इतिहास के विद्यार्थी के लिये निरन्तर उपयोग की वस्तु ही है। आचार्य बुद्धघोष उन प्राचीन भारतीय आचारों को परम्परा में से ये जो ज्ञान के धोर को मौलिक ज्ञान देते हुए भी भाष्यकार के विनीत रूप में रहना ही उसन्द करते थे। आचार्य बुद्धघोष ने हमें बहुत कुछ नया आलोक दिया है, ज्ञान के धोर को अपने दण से काफी विस्तृत किया है, किर भी सदा अपने को महाविहारवासी भिक्षुओं की आदेशना-विधि का अनुगामी ही बताया है। यह उनकी विनाशका का सूचक है। बुद्धघोष महास्थविर ने सद्गम की विरस्थिति के लिये जो काम किया है, उसी के कारण हम आज बुद्ध और उनके युग की इतनी सजीवता के साथ समझ सके हैं। बुद्धघोष की अट्ठकथाओं से लुम्बिनी, कौशाम्बी, राजगृह, उरवेला और कपिलवस्तु की स्मृतियों को आज भी नया बनाया जा सकता है और चित्र को राग, ट्रैप और मोह से मुक्त किया जा सकता है। जब तक 'विसुद्धिमग्न' और 'अट्ठ-सालिनी' जैसे गम्भीर दार्शनिक ग्रन्थ और 'सुर्मगल विकासिनी' और 'समन्त-पासादिका' जैसी ऐतिहासिक सामग्री-परिपूर्ण अट्ठकथाएँ पालि में विद्यमान हैं, तब तक ज्ञान और इतिहास के गवेषक सदा उसके दरवाजे पर आते रहेंगे और प्रसंगवश उस विनीत, साक्षात् मैत्रेय, महास्थविर की अनुसमृति करते भी रहेंगे, जो ज्ञान-गियासावद भारत से लिका दौड़ा गया था और जिसने वही महापधान-भवन में बैठकर दिन-रात बुद्ध-वासन का चिन्तन किया था और उसके मध्य को भी पाया था। हम आचार्य बुद्धघोष की इसी अनुसमृति के साथ इस प्रक-रण को समाप्त करते हैं।

### धर्मपाल और उनकी अट्ठकथाएँ

आचार्य बुद्धघोष के समकालिक बुद्धदत (जिनका विवरण पहले दिया जा चुका है) के अलावा एक अन्य प्रतिष्ठ अट्ठकथाकार धर्मपाल है। वास्तव में बुद्धदत और धर्मपाल दोनों ने बुद्धघोष के काम को ही पूरा किया है। धर्मपाल

का जन्म तामिल-प्रदेश में काञ्चीपुर में हुआ था । इनको भी शिक्षा सिहूल के महाविहार में हुई थी । आचार्य धर्मपाल की रचनाएँ ये हैं—

१. परमत्यदीपनी बृहदकनिकाय के उन पन्थों की अट्ठकथा है जिन पर बुद्धोपासने अट्ठकथा नहीं लिखी । इस प्रकार धर्मपाल को इस अट्ठकथा के अन्तर्गत उदास, इतिवृत्तक, विमानवत्य, प्रेतवत्य, घेरनाया, घेरोगाया एवं चरिया पिटककी अट्ठकथाएँ समिलित हैं । इनमें विशेषतः घेरोगेरी गाधाओंकी अट्ठकथाएँ ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं क्योंकि यहीं लेखक ने भगवान् बृद्ध के शिष्य भिक्षु-भिक्षुणियों की जीवनियों को अनुविद्ध किया है ।<sup>१</sup>

२. नेतिपकरण-अट्ठकथा या नेतिपकरणस्स अत्यसंवर्णना (नेति पकरण की अट्ठकथा )

३. नेतित्य कथाय टीका या लीनत्यवर्णना (उपर्युक्त नेतिपकरण-अट्ठकथा की टीका )

४. परमत्यमञ्जसा या महाटीका—विस्त्रितमग्न की अट्ठकथा ।

५. लीनत्याकासिनी—प्रथम चार निकार्यों की बुद्धोपासन-हठ अट्ठकथाओं की टीका ।

६. जातकट्ठकथा की टीका (जिसका भी नाम लीनत्य पकासिनी है)

७. बुद्धदत्त-हठ मध्यरत्नविलासिनी की टीका ।

धर्मपाल-हठ उपर्युक्त पन्थों में सब से अधिक प्रसिद्ध परमत्यदीपनी है । ये पन्थ में से कुछ प्राप्त भी नहीं हैं । कुछ ऐसों भी हैं जिनके विषय में यह निश्चय नहीं किया जा सकता कि से किस धर्मपाल की है, क्योंकि इस नाम के कई भित्ति कई शताविदियों में हो चुके हैं । बुद्धदत्त, बुद्धोपास और धर्मपाल की उपर्युक्त प्रायः सभी अट्ठकथाओं के रोमन, वरमी, सिहूली और स्वामी संस्करण भिलते हैं । विशेषतः हेवावितरणेनिधि की ओर से प्रकाशित सिहूली संस्करण उल्लेखनीय है । नागरी लिपि में अभी कोई संस्करण नहीं हुए, अनुवादों की तो कोई बात ही नहीं !

**बुद्धोपास-युग के अन्य पालि अट्ठकथाकार**

बुद्धदत्त, बुद्धोपास और धर्मपाल के अलावा इस युग के अन्य पालि अट्ठकथाकारों

१. प्रस्तुत लेखक ने अपने घेरोगाया-अनुवाद जो सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली, द्वारा प्रकाशित हुआ है, परमत्यदीपनी के आधार पर भिक्षुणियों की जीवनियों को प्रतित किया है ।

में इनके नाम मूल्य हैं— (१) जानन्द (२) चूल्ल घम्पाल (३) उपसेन (४) महानाम (५) काश्यप (कस्तप) (६) वज्रवुद्धि (वज्रिर वुद्धि) (७) धैम (धम) (८) अनिरुद्ध (अनुरुद्ध) (९) धर्म श्री (धर्मसिंहि) और (१०) महास्वामी (महासामि)। जानन्द भारतीय भिक्षु थे और सम्भवतः यह बृद्धबोध के समकालीन थे। इन्होंने बृद्धबोध की अभिधर्म-सम्बन्धी अट्ठकथाओं की सहायक स्वरूप 'मूल-टीका' या 'अभिधर्म-मूल टीका' लिखी है। यही इनकी एक मात्र प्रसिद्ध और महत्वपूर्ण रचना है। चूल्ल घम्पाल इन्हीं जानन्द के विषय थे और इन्होंने 'सद्गत-संखेप' (सत्य संबोध) लिखा है। उपसेन 'सद्गमणज्ञोतिका' या 'सद्गम-टृटीका' नामक निदेस की टीका के लेखक हैं। महानाम ने पटिसम्बिदामग्न की अट्ठकथा 'सद्गमणकासिनी' शीर्षक से लिखी। काश्यप ने गोहविच्छेदनी और विमतिच्छेदनी नामक विवेचनात्मक ग्रन्थों की रचना की। वज्रवुद्धि ने 'वज्र-वुद्धि' नाम की ही टीका 'समन्वयासादिका' पर लिखी। धैम ने 'धैमणकरण' नामक ग्रन्थ की रचना की। अनिरुद्ध अभिधर्म-साहित्य सम्बन्धी प्रसिद्ध ग्रन्थ 'अभिधर्मत्वसंग्रह' के रचयिता है। अनिरुद्ध ने ही अभिधर्म-सम्बन्धी दो ग्रन्थ और लिखे हैं (१) परमत्व-विमिळ्य और (२) नामरूप-परिच्छेद। अनिरुद्ध के ग्रन्थों पर बाद में एक बड़ा सहायक साहित्य लिखा गया, जिसका विवरण हम आगे टीकाओं के युग में देखेंगे। धर्म श्री ने विनय-सम्बन्धी अट्ठकथा-साहित्य को 'खुदक सिक्षा' (खुदक शिक्षा) नामक ग्रन्थ दिया और महास्वामी ने इसी विषय सम्बन्धी 'मूल सिक्षा' (मूल विद्या)

बृद्धदत्त, बृद्ध बोध और घम्पाल के बाद जिस अट्ठकथा-साहित्य का ज्ञान उल्लेख किया गया है उसमें अनिरुद्ध-कृत 'अभिधर्मत्वसंग्रह' का एक अपना स्थान है। पालि-साहित्य के इतिहास की किसी भी योजना में वह एक स्वतन्त्र परिच्छेद का अधिकारी है। उतना अवकाश तो इस कृति को यद्यपि हम यहाँ नहीं दे सकते, फिर भी अन्य की अपेक्षा इसका कुछ अधिक विस्तृत विवरण यही अपेक्षित है। वह भी न केवल इसकी स्वतन्त्र सत्ता की दृष्टि से ही बल्कि इसकिये भी कि इसकी विषय-वस्तु का उल्लेख या विवेचन करते समय न केवल सम्पूर्ण अभिधर्म-पिटक की ही विषय-वस्तु बल्कि उसकी अट्ठकथाओं का भी बहुत कुछ सारांश यहाँ स्वतः आ जाता है।

## अभिधम्मत्थसंग्रह के सिद्धान्तों का संचिप्त विश्लेषण

‘अभिधम्मत्थसंग्रह’<sup>१</sup> में परमार्थ रूप से चार पदार्थों (धर्मों) की सत्ता मानी गई है, यथा चित्त, चेतनिक, रूप और निवाणि<sup>२</sup>। हेतुओं से युक्त चित्त को ‘सहेतुल’ और उनसे विद्युक्त चित्त को ‘अ-हेतुक’ कहते हैं। हेतु का अर्थ है अभिधम्ममें लोभ, द्वेष, मोह याद-राग, अ-दृष्टि और अमोह। इन मूल प्रवृत्तियों को लेकर ही मनुष्य किसी भी कार्य में प्रवृत्त होता है, अतः यही ‘हेतु’ कहलाते हैं। सहेतुक चित्त तीन प्रकार के होते हैं धधा, कुशल, अकुशल और अव्याहृत। कुशल, अकुशल और अव्याहृत से अभिधम्म में क्या तात्पर्य लिया जाता है, यह हम अभिधम्म-ग्रन्थ के अन्तर्गत धर्मसंग्रह के विवेचन में देख नुक्ते हैं। अव्याहृत सहेतुक चित्त दो प्रकार का होता है ‘विपाक-चित्त’ और ‘किया-चित्त’। विपाक और किया (किरिया) चित्तों से क्या तात्पर्य है, यह भी हम विस्तार-यूक्त धर्मसंग्रह के विवेचन में दिखा नुक्ते हैं। ‘विपाक-चित्त’ अव्याहृत इसलिये है कि पहले किये हुए कर्म का कल होने के कारण उसे न ‘कुशल’ ही कहा जा सकता है और म ‘अकुशल’ ही। ‘किया सहेतुक चित्त’ वह चित्त है जिसमें ‘अ-लोभ’, ‘अ-द्वेष’, और ‘अमोह’ वे तीन हेतु रहते तो हैं किन्तु सूक्ष्मा के धर्य के कारण इतका ‘विपाक’ नहीं यसतः अर्थात् ये पुनर्जन्म के लिये कारण-त्वरूप नहीं बनते। ‘किया सहेतुक चित्त’ अहंत् का ही ही सकता है। वह जाहे अ-लोभ, अ-द्वेष, और अमोह के कारण कुछ कुशल कर्म भले ही सम्पादन करे, किन्तु असाक्षत होने के कारण उसका वह सब कर्म केवल ‘किया’ मान ही होता है। वह जामे के लिये विपाक पैदा नहीं करता।

१. अभिधम्मत्थसंग्रह, मूल पालि तथा आचार्य धर्मनिन्द कोतम्बी-रवित उसकी पालि टीका ‘नवनीत टीका’ के सहित, देव नगरी लिपि में महाबोधिसभा द्वारा प्रकाशित, सारनाथ, १९४१। मिथु जगदीश काश्यप ने अभिधम्म फिलोसफी, जिन्द पहली में अभिधम्मत्थ संग्रह की विषय-वस्तु का अत्यन्त विशदतापूर्वक विश्लेषण किया है। साथ में रोमन-लिपि में पालि-पाठ भी दे दिया गया है।
२. तथ्य वृत्त्याभिधम्मत्था चतुर्धा परमत्थतो। चित्त, चेतनिक रूप निव्वानभित्ति सम्बन्धा। अभिधम्मत्थसंग्रहो।

चित्त के साथ उत्पन्न और निरुद्ध होने वाले एवं एक ही विषय (आलम्बन) और इन्द्रिय वाले चित्त के कभी को 'अभिघम्मत्यसंगह' में 'चेतसिक' कहा गया है।<sup>१</sup> इनकी संख्या ५२ है। चेतसिक धर्मों को तीन मुख्य भागों में विभक्त किया गया है, यथा (१) १३ 'अन्य समान' (२) १४ 'जकुवल' और (३) २५ 'शोभन'<sup>२</sup>। फिर इनका भी विश्लेषण किया गया है। जब कोई 'चेतसिक' या चित्त-कम्ते 'शोभन-चित्त' से युक्त होता है, तब वह 'अशोभन' वे ये अन्य होता है, और जब वह 'अशोभन' से युक्त होता है, तब शोभन से अन्य होता है। इसीलिये उसे 'अन्य समान' कहते हैं। इस 'अन्य समान' चेतसिक का भी द्विविध विभाजन है, यथा (१) साधारण चेतसिक (२) प्रकीर्ण चेतसिक। साधारण चेतसिक धर्म जै है जो सभी चित्तों में साधारण रूप से रहते हैं और ये संख्या में सान है (१) स्पर्श (२) वेदना (३) संज्ञा (४) चेतना (५) एकाग्रता (६) जीवितेन्द्रिय और (७) मनसिकार<sup>३</sup>। प्रकीर्ण चेतसिक धर्म जै है जो केवल जब कभी होने वाले हैं। ये संख्या में छह हैं यथा (१) वितर्क (२) विचार (३) अधिमोत्त, (४) वीर्य (५) प्रीति और (६) छन्द (इच्छा)<sup>४</sup>। विषयों को स्पर्श करनेवाले चेतसिक-धर्म को स्पर्श, विषयों के स्वाद भोगने वाले को वेदना, विषयों के स्वभाव को प्रहृण करने वाले जो संज्ञा, विषयों में प्रेरणा करने वाले को चेतना, विषय में स्थिर रहने वाले को एकाग्रता, प्राप्त विषयों की मन में रक्षा करनेवाले को 'मनसिकार' कहते हैं। इसी प्रकार विषय-चिन्तन करनेवाले चेतसिक को वितर्क, उस पर बार बार सोचने वाले को विचार, विषयों में प्रवेश कर मिश्वय करने वाले

१. एकुप्पादिनिरोधा च एकालम्बनवत्युक्ता । चेतोयुक्ता द्विपञ्चासा यम्भा चेतसिका मता । अभिघम्मत्य-संगहो, चेतसिक कण्ठो ।
२. तेरसङ्ग्रामसमाना च चृद्धसा कुसला तथा । सोभना पञ्चवीमाति द्विपञ्चास पञ्चवरे । अभिघम्मत्यसंगहो, चेतसिक कण्ठो ।
३. कस्तो वेदना सञ्ज्ञा चेतना एकाग्रता जीवितेन्द्रिय मनसिकारो चेति सन्ति में चेतसिका सञ्चित-साधारणा नाम । उपर्युक्त के समान हो ।
४. वितर्को विचारो अधिमोक्षो वोरियं पीति छन्दो चेति छयिमे चेतसिका पक्षिणका नाम । उपर्युक्त के समान हो ।

को अधिमोह, उत्साह करने वाले को बीमर्य, विषयों में आनन्द लेने वाले को प्रीति और उनकी इच्छा करने वाले चेतसिक धर्मों को 'छन्द' कहते हैं। पूर्वोक्त १४ अकुशल चेतसिक इस प्रकार है, मोह, निलंजनता (अही), अ-पाप-भयता (अनवपा), औद्यत्य, लोभ (मिथ्या-) दृष्टि, मान, द्वेष, ईर्ष्या, मात्सर्य, पश्चात्ताप-कारी कृत्य (कौकृत्य), स्त्यान (मन को भारी करनेवाला) मृद (चेतसिकों को भारी करनेवाला) और विचिकित्सा (संशय)। जीभन-चित्त २५ है, यथा (१) श्रद्धा (२) स्मृति, (३) ही, (४) अपत्रपा (पाप-कर्म में भय होना) (५) जलोभ, (६) अद्रेष (७) मध्यस्थता (८) काय-प्रश्वचित्व (कायिक शान्ति) (९) चित्त-प्रश्वचित्व (चित्त-शान्ति) (१०) काय-लघुता (११) चित्त लघुता (१२) काय-मृदुता (१३) चित्त-मृदुता (१४) (१५) काय कर्मजता (१६) चित्त-कर्मजता (१७) काय प्रागृष्ट (काया का समर्थ भाव) (१८) चित्त प्रागृष्ट (चित्त का समर्थ भाव) (१९) काय अजृता (२०) चित्त-अजृता (२१) सम्यक् वाणी (२२) सम्यक् कर्मान्त, (२३) सम्यक् आजीव। (इन अंतिम तीन अवश्यक सम्यक् वाणी, सम्यक् कर्मान्त और सम्यक् जाजीव को 'धर्म संगणि' में 'तीन विरतियाँ' कह कर पुकारा गया है।) (२४) करणा (२५) मुदिता और (२६) अमोह (प्रज्ञा)। इस प्रकार ५२ चेतसिक धर्मों की कुशल, अकुशल और अव्याकृत कर्म-भवी व्याख्या अभिघाममत्य संगह में की गई है। किन्तु यह सब तो दिग्दर्शन मात्र है और बहुत कुछ अस्पष्ट भी। अभी तो हमने केवल 'सहेतुक चित्त' के इन तीन प्रकारों यथा 'कृशाल' 'अकुशल' और 'अव्याकृत' चेतसिकों के साथ संबंध को व्यापत किया है। किन्तु जिस गहनता और मनोवेजानिक सूक्ष्मता एवं अन्त-दृष्टि के साथ इनका विश्लेषण और व्याख्यान 'अभिघाममत्यसंगह' में किया गया है उसकी तो यह एक प्रतिच्छाया भी नहीं है। कहाँ चित्त के चार प्रकार के वर्गीकरण, कामावचर, व्यावचर, अस्तपावचर और लोकोत्तर ! कहाँ फिर इनमें भी कामावचर-चित्त के ५४ प्रकार ! कहाँ फिर उनकी भी व्याख्या और उसमें भी यह निर्णय कि इनमें से १२ अकुशल चित्त (जिसमें से भी

१. देखिये पौच्छवे अध्याय में अभिघाम-पिटक के अन्तर्गत धर्मसंगणि का विवेचन।

८ लोभ-मूलक, २ द्वेष-मूलक-और २ मोह-मूलक), १८ अहेतुक-चित्त (जिनमें भी फिर ३ अकुशल-विपाक, आठ कुशल-विपाक और ३ अहेतुक-चित्त) और २४ सहेतुक चित्त (जिनके भी फिर वेदनाविज्ञान और संस्कार के भेद से वर्णी-करण)। इतना ही नहीं, इन्हीं कामावचर भूमि में हीने वाले चित्तों में फिर २३ विपाक चित्त, २० कुशल और अकुशल एवं ११११ किया-चित्तों का विभाजन। ऊपर निर्दिष्ट द्वितीय भूमि के चित्त अवर्ति॑ रूपावचर चित्त के फिर १५ प्रकार, जिसमें ५ कुशल-चित्त, ५ विपाक-चित्त और पाँच किया-चित्त। इसके ताद तृतीय भूमि के चित्त अवर्ति॑ अरूपावचर-चित्त के बारह विभागों का निश्चाण, जिनमें चार-कुशल-चित्त, चार विपाक-चित्त और चार किया-चित्त। अस्त ते चतुर्थ भूमि के चित्त अवर्ति॑ लोकोत्तर चित्त के इसी प्रकार ८ भेद, जिनमें चार कुशल चित्त और चार विपाक चित्त। इस प्रकार कुल ५४ कामावचर, २५ रूपावचर, १२ अरूपावचर और लोकोत्तर चित्तों अवर्ति॑ कुल ८९ प्रकार के चित्तों की परिभाषा, व्याख्याएँ, और 'कर्म' के न्यूनप के साथ उनके संबंध का निश्चय यह सब 'अभिघम्मत्वसंगह' की संव्याख्याओं में भरने का प्रयत्न किया गया है। चित्त और चेतनिक घटों के इस निश्चयण में कितनी मूढ़मता, कितनी चिल्लेतारा-प्रियता 'अभिघम्मत्वसंगह' ने अभिघम्म का अनुगमन कर दिया है, उसे देख-कर साधारण विद्यार्थी का माहस छूट जाता है। फिर भी 'अभिघम्मत्वसंगह' के महत्व का यह कुछ कम बड़ा साध्य नहीं है कि अभिघम्म-ग्रिट्क पर बृद्धघोष जैसे आचार्य की अट्टकथाएँ रहते हुए भी वो विद्यालयों में अभिघम्म का अध्ययन प्रायः इसी ग्रन्थ के द्वारा होना आया है और विशेषतः वरमा में तो इसके चारों ओर एक बहायक साहित्य की अट्ट परम्परा ही १५ की जाताज्वी में बनती जली आ रही है जिसका वर्णन हम ११०० ई० से बाँमान समय तक के पालि के व्याख्यापरक साहित्य का विवरण देने ममय अभी आठवें अध्याय में करेंगे।

बृद्धघोष-युग में अट्टकथाओं और व्याख्यापरक साहित्य के अतिरिक्त वर्ण-संबंधी कई ग्रन्थ भी लिखे गये, और इसी प्रकार काव्य और व्याकरण-संबंधी पर्याप्त रचनाएँ भी हुईं। इनका विवरण हम अपनी योजना के अनुसार करेंगे और दसवें अध्यायों में करेंगे।

## आठवाँ अध्याय

### बुद्धधोष-युग की परम्परा अथवा टीकाओं का युग

(११०० ई० से वर्तमान समय तक)

#### विषय-प्रवेश

लकाविराज पराक्रमवाहु प्रथम (११५३-११८६ ई०) का शासन-काल पालि-साहित्य के उत्तरकालीन विकास के इतिहास में बड़ा गौरवमय माना जाता है। इसी समय में पालि अट्ठकथाओं के ऊपर टीकाएँ लिखने की वह महत्वपूर्ण परम्परा चल पड़ी जो ठीक उच्चीसंवै और बीसंवै शताब्दी तक अप्रतिहत स्थिति रही। न केवल टीकाओं के स्थान में ही बल्कि, काल्प, व्याकरण, कोश, छन्द, शास्त्र एवं 'वश' (इतिहास) में वैवर्ती साहित्य भी इन शताब्दियों में प्रभृति मात्रा में लिखा गया। इस सथि साहित्यिक प्रगति के द्वेष प्रधानतः लंका और बर्मा ही रहे। बारहवीं शताब्दी से लेकर बारहवीं शताब्दी तक साहित्य-मूलन के शेष में लंका का प्रमुख स्थान रहा। पन्द्रहवीं शताब्दी से लेकर उच्चीसंवै शताब्दी तक बर्मी पालि-साहित्य का युग कहा जा सकता है। टीकाओं तक ही अपने को सीमित रखकर इस विशाल साहित्य-रचना का विवेचन हम इस अध्याय में करेंगे।

#### सिहली भिन्न सारिपुत्त और उनके शिष्यों की टीकाएँ

पराक्रम वाहु प्रथम के शासन-काल में लंका में एक बीढ़ सभा (संगीत) बुलवाई गई। इस सभा का उद्देश्य अट्ठकथाओं पर मानवी (पालि) भाषा में टीकाएँ लिखवाना था। इस सभा के संयोजक प्रसिद्ध सिहली स्वविर महाकस्त्रप थे। इस सभा के प्रयत्नों के परिणाम-स्वरूप बुद्धधोष की अट्ठकथाओं पर पालि-भाषा में टीकाएँ लिखी गई, जिनका विवरण इस प्रकार है—

१. सारत्थ दीपनी—समन्वयासाधिका (विनयनिपिटक की अट्ठकथा) की टीका

२. पठम-सारत्थमंजूसा—सुमंगल विलासिनी (दीप-निकाय की अट्ठकथा) की टीका

३. त्रितीय-सारत्थमंजूसा—पपञ्चसूदनी (मणिभ्रम-निकाय की अट्ठकथा) की टीका

४. त्रितीय-सारत्थमंजूसा—सारत्थप्यकासिनी (संयुक्त-निकाय की अट्ठकथा) की टीका

५. चतुर्थ-सारत्थमंजूसा—मनोरथ पूर्णी (अंगूतर-निकाय की अट्ठकथा) की टीका

६. पठम-परमत्वप्यकासिनी—अट्ठसालिनी (धर्मसंगणि की अट्ठकथा) की टीका

७. त्रितीय-परमत्वप्यकासिनी—सामोहविनोदनी (विभंग की अट्ठकथा) की टीका

८. त्रितीय परमत्वप्यकासिनी—पञ्चप्यकरण्टकथा (धातुकथा, पुरागल-पञ्जानि, कथावच्छ, यमक और पद्धान की अट्ठकथा) की टीका

उपर्युक्त टीकाओं में मे केवल 'सारत्थ दीपनी' आज उपलब्ध है। यह तत्कालीन सिहली भिन्न सारियुत की रचना है। इस रचना के जटिरिक्त इन स्थविर को तोन कृतियों और प्रसिद्ध हैं। (१) लीनत्व पकासनी—बुद्धोप-कृत मणिभ्रम-निकाय की अट्ठकथा की टीका (२) विनय संगह—विनय-संबंधी नियमों का संग्रह। इस रचना का दूसरा नाम 'पालिमुत्तक विनयसंगह' (पालिमुत्तक विनयसंग्रह) या 'महाविनय संगह-प्यकरण' (महाविनयसंग्रह प्रकरण) भी है। (३) सारत्थ मञ्जूसा—बुद्धवीषकृत अंगूतर-निकाय की अट्ठकथा की टीका। स्थविर सारियुत के शिष्यों ने भी इस टीका-रचना-कार्य में बहा योग दिया। उनके शिष्यों में ये प्रधान थे—(१) संघरविलत, (२) बुद्धमाग, (३) वाचिस्सर (४) सुमंगल, (५) सद्गम्मजोतिपाल या छपद (६) धर्मकिन्ति, (७) बुद्धरविलत और (८) मेघकर। स्थविर संघरविलत की एकमात्र रचना 'बुद्धक सिवसा-

'टीका' है जो धर्मसिद्धि (धर्मशी) रचित 'खुदक-सिक्खा' की टीका है। स्थविर संघरक्षित से पहले महायास ने भी 'खुदक-सिक्खा' पर 'खुदक सिक्खा-टीका' नाम से ही एक टीका लिखी थी। इन दोनों में भेद करने के लिए स्थविर संघरक्षितकृत टीका को 'अभिनव-खुदक सिक्खा-टीका' और महायास कृत टीकाको 'पोराण-खुदक-सिक्खा टीका' भी कहा जाता है। ये दोनों टीकाएँ हस्तलिखित प्रतियों के रूप में आज भी सिहल में सुरक्षित हैं। स्थविर बुद्धनाम की रचना 'विनयत्य मंजूसा' है, जो कंसा वितरणी (पातिमोक्ष पर बुद्धघोष कृत अट्ठकथा) की टीका है। यह टीका भी सिहल में हस्तलिखित प्रति के रूप में सुरक्षित है। प्रसिद्ध भिक्षु वाचिस्सर (वाचीश्वर) अनेक ग्रन्थों के रचयिता थे। 'गम्भवस' में उनके १८ ग्रन्थों का उल्लेख किया गया है। प्रसिद्ध वेदान्ती जाचार्य वाचस्पति मिथ्य और इन स्थविर (वाचिस्सर) के नाम या उपनाम में समानता होने के साथ साथ दोनों की विद्वता भी प्राप्त: समान रूप से गहरी और विस्तृत है। स्थविर वाचिस्सर की प्रधान रचनाएँ ये हैं—(१) मूलसिक्खा-टीका—यह टीका महास्वामी (महासामी) कृत 'मूल-भिक्खा' की टीका है। वाचिस्सर से पहले विमलसार ने भी इसी (मूलसिक्खा टीका) नाम की एक टीका 'मूल-सिक्खा' पर लिखी थी। अतः विमलसार कृत टीका 'मूल सिक्खा-पोराण टीका' कहलाती है और वाचिस्सर-कृत टीका 'मूल-सिक्खा-अभिनव टीका'

(२) सीमालंकार संगह (विनय-संबधी ग्रन्थ, जिसमें विहार की सीमा का नियंत्रण किया गया है। जहाँ तक के भिक्षु विशेष संस्कारों में सम्मिलित होने के लिए किसी एक विहार में एकत्रित हों, वह उस विहार की सीमा कहलाती है)। (३) गोमप्यकरणटीका—यह टीका भिक्षु लेम (लेम) कृत 'गोमप्यकरण' की टीका है। (४) नामरूप परिच्छेद टीका—यह अनिश्चद (पाति अनुश्चद) कृत 'नाम कर्त्ता परिच्छेद' की टीका है। (५) सच्चसंसेप टीका—यह स्थविर आनन्द के शिष्य चूल धर्मपाल-कृत 'सच्च संसेप' की टीका है। (६) अभिधम्मावतार-टीका—यह रचना बुद्धदत्त-कृत 'अभिधम्मावतार' की टीका है। (७) 'रूपारूप-

१. इस विषय पर फन्दहवी शताब्दी में बरमी भिक्षु-संघ में एक बड़ा विवाद उठ रहा हुआ। देखिये आगे इसके अध्याय में कल्याणी-अभिलेश का विवरण।

विभाग'—यह अभियान सम्बन्धी रचना है। (८) विनय, विनिलक्षण-टीका—यह टीका दृढ़दत्त कृत 'विनय विनिलक्षण' की टीका है। (९) उत्तरविनिलक्षण-टीका—यह रचना दृढ़दत्त-कृत 'उत्तर विनिलक्षण' की टीका है। (१०) सुमंगलप्रसादिनी—यह रचनाओं के अलावा 'योग विनिलक्षण', 'पञ्चव संग्रह' जैसे अनेक प्रथा भी वाचिस्मर द्वारा लिखित बनाये जाने हैं। चूंकि 'वाचिस्मर' उत्तरविभाग अनेक भिन्न मिहल के ही मध्ये है, अतः निश्चयपूर्वक यह नहीं कहा जा सकता कि कौन सी रचनाएँ किस 'वाचिस्मर' की हैं। फिर भी कारण जिन प्रधान दस रचनाओं का उल्लेख किया जा सकता है, वे सिहली भिन्न सारियुत के शिष्य 'वाचिस्मर' की ही मानी जाती है। सुमंगल-कृत तीन रचनाएँ हैं। (१) अभियानस्थविभावनी, जो अनिश्चित-कृत अभियानस्थविभावनी की टीका है। (२) अभियानस्थविकासिनी, जो दृढ़दत्त अभियानवाकार की टीका है। (३) सच्चसंवेष-टीका है—जो चूल धर्मस्पाल-कृत सच्चसंवेष की टीका है। ये तीनों प्रथा हस्त लिखित प्रतिपादों के रूप में सिहल में सुरक्षित 'अभियानस्थविभावनी' का महावोचि प्रेस कोलम्बो से सन् १९३३ में सिहली अध्यरोपी में प्रकाशन भी हो सका है। सद्दर्भजोतिपाल या छपक का नाम सारियुत के शिष्यों में विशेषतः प्रसिद्ध है। ये वरसा-निवासी भृत्ये जिन्होंने दौद्ध धर्म की विजयादि सिहल में प्रवास किया था। सारियुत के शिष्य-स्वर में वे बहों ११३० से ११८० ई० तक रहे। उन्होंने ये रचनाएँ अधिक प्रसिद्ध हैं। (१) विनय समृद्धान दीपनी (विनय सम्बन्धी टीका-नाम्य) (२) पातिमोक्ष विचो-धनी (३) विनय गृह्णता दोषनी विनय पिटको कठिन शब्दोंकी व्याख्या (४) सीम-लङ्घकार संग्रह-टीका, जो वाचिस्मर-कृत सोमालंकार संग्रह की टीका है। इस प्रकार चार रचनाएँ हृष्टदको विनय-सम्बन्धी हैं। अभियान साहित्य को भी इन्होंने पाठ्य टीका-नाम्य प्रदान किये हैं। (५) मातिकल्प दीपनी (६) पट्टान-नाणनानाय (७) नाम-चार दीप (८) अभियानस्थविभावनी कृत अनिश्चित-कृत अभियानस्थविभावनी की टीका है और (९) गम्धगार, विसमें लिपिटक के गव्यों का सार है। धर्म-शिल्प की रचना 'दावावंस' है जिसका विवेचन हम वेद-नाहिय का विवरण देने समय करेंगे। इसी प्रकार वाचिस्मर (उपर्युक्त सारियुत के शिष्य ही) के धूप-वंस हैं, जिसका विवेचन भी हम वही करेंगे। दृढ़दत्तविभावनी और मेधकार की रचनाएँ

उम्मदः 'जिनालंकार' और 'जिनचरित' हैं, जो काव्य-नाम हैं। इनका विवरण हम पालि-काव्य का विवेचन करते समय दसवें अध्याय में देंगे। सारिपुत्र और उनके शिष्यों का यह उपर्युक्त साहित्य पराक्रमबाहु प्रथम के शासन-काल में लिखा-गया, अतः इसका समय बारहवीं शताब्दी का उत्तर भाग ही है। इसी समय 'वंसत्वदीपनी' नामकी 'महावंस' की टीका भी लिखी गई। किन्तु उसके रचयिता का नाम अभी अज्ञात ही है।

### तेरहवीं शताब्दी का पालि-साहित्य

तेरहवीं शताब्दी के पालि-साहित्य के प्रसिद्ध नाम वैदेह स्थविर 'वैदेह थेर' वृद्धिप्रय और घम्मकिति हैं। वैदेह थेरकीदो प्रसिद्ध रचनाएँ 'समन्त कृट बण्णना'<sup>१</sup> और 'रसवाहिनी' हैं।<sup>२</sup> वृद्धिप्रय की रचना 'पञ्चमधु' है। यह एक काव्य-नाम है। इसका विवेचन हम दसवें अध्याय में करेंगे। इस शताब्दी की सम्भवतः सबसे अधिक महस्त्वपूर्ण रचना 'महावंस' का 'चूलवंस' के नामसे परिच्छेद है। 'महावंस' का इस प्रकार प्रथम परिच्छेद तेरहवीं शताब्दी में और दूसरा परिच्छेद १८ वीं शता ब्दीके मध्यभाग में किया गया। बारहवीं शताब्दी में इस परिच्छेद को करने वाले 'घम्मकिति' नामक भिल् थे। सिंहल और बरमा में इस नामके अनेक शताब्दियों में इन्हें अधिक निश्च हुए हैं कि यह घम्मकिति उनमें से कौन से थे, इसका सम्बन्ध से निर्णय नहीं किया जा सकता। सम्भवतः यह वही स्थविर घम्मकिति थे, जिन्होंने महावंश ८४।१२ के अनुसार बरमा से लका में जाकर बौद्ध धर्म का अध्ययन किया था इसप्रकार जिनका काल तेरहवीं शताब्दी का मध्य-भाग है। इसी समय 'अत्तनगलु विहारवंस' नामक वंश भी लिखा गया, जिसके लेखक का नाम अभी अज्ञात ही है। तेरहवीं शताब्दी के अंतिम या चौदहवीं शताब्दी के आदि भाग के पालि-साहित्य के इतिहास में सिद्धत्य और घम्मकिति महासामी (धर्मकीति महास्वामी) इन दो भिजुओं के नाम प्रसिद्ध हैं। सिद्धत्य 'पञ्चमधु' के रचयिता वृद्धिप्रय के लिये थे। इनकी रचना 'सारसंगह' है जो गच्छ-पद्म-मिथित वृद्ध-धर्म-सम्बन्धी प्रस्तु है। घम्मकिति महास्वामी वीरी रचनाका नाम 'सद्गमसंगह' है। इसमें चालोंसे अध्याय

१. २. इनके विवरण के लिए वेलियेआगे दसवें अध्याय में पालि-काव्य का विवरण।

है। पहाँ लेखक ने बुद्धकाल से लेकर तेरहवीं शताब्दी तक भिक्षु-संघ के इतिहास का वर्णन किया है। कोई नवीन सूचना न देने पर भी लेखक ने जितने विस्तृत साहित्य का उपयोग किया है, वह उस समय तक के पालि-साहित्य की प्रगति की दृष्टि ने उसके इतिहास में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है, इसमें सन्देह नहीं।

### चौदहवीं शताब्दी का पालि-साहित्य

इस शताब्दी की पाँच रचनाएँ हैं, जिसमें चार काव्य ग्रंथ हैं, और एक वंश-ग्रन्थ। इनका विशेष विवरण तो हम कमशः दसवें और नवें अध्यायों में करेंगे, किन्तु यहाँ नामोलेख करना आवश्यक है। चार काव्य-ग्रन्थ हैं (१) तिहल-प्रवासी तर्मी भिक्षु भेषकर-हृत लोकपरदोपसार या लोकदीपसार (२) पञ्चगतिदीपन, जिसके लेखक का पता नहीं (३) सद्दमोगायन, जिसके भी लेखक का ठीक पता नहीं, और (४) तेलकटाहगाचा, जिसके भी लेखक का नाम अज्ञात है। वंश-ग्रन्थ, भिक्षु महामंगल-हृत 'बुद्धोपमूणिति' है, जिसमें बुद्धोप की जीवनी का वर्णन किया गया है।

### वरमी पालि-साहित्य—पन्द्रहवीं शताब्दी का पालि-साहित्य

जैसा पहले दिक्षाया जा चुका है, पन्द्रहवीं शताब्दी से वरमी पालि-साहित्य के अध्ययन और ग्रन्थ-रचना का प्रधान केन्द्र हो गया। जिस विषय की ओर वरमी बौद्ध भिक्षुओं की विशेष दृष्टि गई वह था अभिषम्भ। वास्तव में यह उनके अध्ययन और ग्रन्थ-रचना का एक मात्र मुख्य विषय ही बन गया। फलतः एक लंबी परम्परा हम इस साहित्य संबंधी रचना की बहाँ देखते हैं। पन्द्रहवीं शताब्दी के वरमी पालि-साहित्य के इतिहास के प्रसिद्ध नाम हैं अरियवंस, सद्दमसिरि (सद्दमें श्री) सीलवंस और रट्ठसार। अरियवंस की रचनाएँ ये हैं (१) मणिसारमञ्जूसा—सुमंगल-हृत अभिषम्भत्यविभावनी की टीका (२) मणिदीप—बुद्धोपहृत अट्ठसालिनी की टीका (३) जातक-विसोधन—जातक-संबंधी रचना। सद्दमसिरि अरियवंस के ही समकालिक थे। इनकी एकमात्र प्रसिद्ध रचना 'नेतिभावनी' है जो नेतिपक्षरण की टीका है। सीलवंस का काल अरियवंस और सद्दमसिरि से कुछ बाद का है किन्तु है पन्द्रहवीं शताब्दी ही। इनकी प्रसिद्ध रचना 'बुद्धालंकार' है।

जो निदान-कथा की सुमेह-कथा का काव्यमय रूपान्तर है। रद्धसार ने कुछ जातकों के काव्यमय स्थापनार किये हैं। पन्द्रहवीं शताब्दी की ही एक रचना 'काव्यविरतिगाथा' है, किन्तु उसके लेखक के नाम आदि का अभी पता नहीं चला है।

### सोलहवीं शताब्दी का पालि-साहित्य

सोलहवीं शताब्दी के पालि-साहित्य के इतिहास में सद्भमालंकार और महानाम, इन दो भिक्षुओं के नाम अधिक प्रसिद्ध हैं। सद्भमालंकार की रचना 'पट्ठान-दीपनी' है, जो पट्ठानप्तकरण की टीका है। महानाम ने 'मधुसारत्यदीपनी' लिखी, जो बृद्धबोध के समकालिक भिक्षु आनन्द द्वारा लिखित 'अभिधम्ममूलटीका' या संखेपतः 'मूल-टीका' की अनुटीका है।

### सत्रहवीं शताब्दी का पालि-साहित्य

तिपिटकालंकार, तिलोकगृह, सारदस्ती और महाकस्तप, ये चार भिक्षु सत्रहवीं शताब्दी के पालि-साहित्य के इतिहास के प्रकाश-स्तम्भ हैं। तिपिटकालंकार (त्रिपिटकालंकार) की ये तीन रचनाएँ हैं (१) चीसतिवर्णना—अट्ठसालिनी के आरम्भ की २० गाधाओं की टीका (२) यसवड्डनवर्त्त (३) विनयालंकार—सारिपुत्र-कठ 'विनय-संग्रह' की टीका। तिलोकगृह की चार रचनाएँ प्रसिद्ध हैं, त्रिनमें दोनों बातु-कथा की ही टीका और अनुटीका स्वस्तप है, यथा (१) धातुकवाटीका—वर्णना (२) धातुकवा-अनुटीका—वर्णना। ये दो रचनाएँ हैं (१) यमकवर्णना (२) पट्ठान-वर्णना। सारदस्ती की रचना 'धातुकवा-योजना' है जो धातु कथा को टीका है। महाकस्तप की प्रसिद्ध रचना 'अभिधम्मत्य गणितपद' है जो अभिधम्म के कठिन शब्दों की व्याख्या है।

### अठारहवीं शताब्दी का पालि-साहित्य

इस शताब्दी के एकमात्र प्रसिद्ध लेखक ज्ञाणाभिवस (ज्ञानाभिवस) है जो वरमा के संघराज थे। इसकी तीन रचनाएँ अधिक प्रसिद्ध हैं (१) वेटकालंकार—तेत्तिपकरण की टीका (२) साधुविलासिनी—दीर्घ-निकाय की आशिक

व्याख्या (३) राजाधिनायक-दिलसिनी—काव्य-गन्धि । इन्हीं ज्ञानभिंवन संघराज ने 'चतुरामणेरवत्य्' और 'राजवादवत्य्' नामक भाव-मयी रचनाएँ भी लिखी हैं । अठारहवीं शताब्दी में ही 'मालालकारवत्य्' नामकी बृद्ध-जीवनी भी लिखी गई, किन्तु उसके लेखक के नाम के विषय में हमारी कोई जानकारी नहीं है ।

### उम्रीसर्वी शताब्दी का पालि-साहित्य

ललाटधातुवंस, छकेसधातुवंस, सन्देसकथा और सीमा-विवाद-विज्ञ-च्छय उम्रीसर्वी शताब्दी की रचनाएँ हैं, जिनके लेखकों के विषय में हमें कुछ जात नहीं हैं । इस शताब्दी की दो बड़ी महत्वपूर्ण रचनाएँ 'गन्धवंस' और 'मामत-वंस' हैं । चूंकि ये दोनों वंश-गन्धि हैं, इनका विस्तृत विवरण हम नवे अध्याय में इस सम्बन्धी साहित्य का विवेचन करते समय करेंगे । उम्रीसर्वी शताब्दी में लंका और बरमा में पालि-साहित्य सम्बन्धी अन्य अनेक गन्धि भी लिखे गये, जिनके नाम-परिचयन मात्र से कोई विशेष उद्देश्य मिथ नहीं हो सकता । ही, प्रसिद्ध बरमी गिरु लेदि सदाव की 'परमत्वदीपनी' नामक अभिवृमत्व समह की टोका और उग्रका यमक-सम्बन्धी पालि निवारण जो उन्होंने अमर्ती रायस डिविड की कुछ शंकाओं के निवारण में लिखा था, अबश्य महत्वपूर्ण रचनाएँ हैं और उम्री-सर्वी शताब्दी के पालि-साहित्य के इतिहान में अपना एक विशेष स्थान रखती है ।<sup>१</sup> इसी प्रकार लंका में समरसेकर श्री धम्मरत्न, विक्रम सिह, स्वचिर नारद, और युगिरल पञ्जानन्द महायेर आदिने जो महत्वपूर्ण कार्य आज तक किया है, वह भी उतना ही महत्वपूर्ण है ।

### बीसर्वी शताब्दी की कुछ महत्वपूर्ण टीकाएँ

बीसर्वी शताब्दी में भी पालि-भाषा में टोकाओं का लिखा जाना कुछ आवश्य-मय अवश्य लगता है, किन्तु वह एक तथा है । वह एक ऐसी परम्परा का सूचक है जो अभी विच्छिन्न नहीं हुई है । भारत में पालि-अध्ययन का यो दुरबरस्था है,

१. देखिये दसवें अध्याय में पालि-काव्यप्रम्भों का विवेचन ।

२. देखिये पौछे पाँचवें अध्याय में 'यमक' का विवरण ।

वह लंका, बरमा और स्याम जैसे देशों की परिस्थिति की भी वहाँ बोढ़ अमं आज एक जीवित धर्म के रूप में विद्यमान है, सूचक नहीं है। वहाँ पालि का अध्ययन आज भी उसी उत्साह के साथ किया जाता है, जैसा उच्चीसवीं या उसकी पूर्व की शताब्दियों में। फिरभी भारतकी ओरसे मह आश्वासन है कि वहाँ ज्ञानकी ज्योति धीण भले ही हो गई हो किन्तु वुझी फिरभी नहीं है। आचार्य धर्मानन्द कोसम्बी के रूप में हम फिर भी कुछ गौरव अनुभव कर सकते हैं। उन्होंने पालि साहित्य को, जैसा हम पहले भी कह चुके हैं, दो अमूल्य टीका-ग्रन्थ प्रदान किये हैं ( १ ) विसुद्धिमग्नदीपिका, जो विसुद्धिमग्न पर विद्याधियों के उपयोग के लिये लिखी गई उत्तम टीका है, और ( २ ) अभिधर्मत्वसंग्रह की 'नवनीत-टीका'। अपने वर्षों के प्रयास के परिणाम-स्वरूप प्राप्त ज्ञान यहाँ आचार्य धर्मानन्द कोसम्बी ने अभिधर्म के जिज्ञासुओं के लिये अत्यन्त सुरक्षा भाषा में प्रस्तुत किया है। अभिधर्म का अध्ययन करने वालों के लिये इससे अधिक अच्छा सहायक ग्रन्थ नहीं बताया जा सकता। इसी के प्रसाद-स्वरूप भिक्षु जगदीश काश्यप ने इस विषय का निरूपण अपने अंग्रेजी ग्रन्थ 'अभिधर्म-फिलोसोफी' में किया है, किन्तु वह इस विषय से सम्बन्धित नहीं है।

### इस युग की अन्य रचनाएँ

उपर्युक्त विवरण से त्पष्ट है कि पालि-स्वाध्याय की जो परम्परा बुद्धोग, बुद्धदत्त और धर्मपाल ने पाँचवीं शताब्दी में छोड़ी वह अविच्छिन्न रूप से बीसवीं शताब्दी तक चलती आरही है। यद्यपि उसमें मौलिकता न हो, किन्तु वह एक सतत साधना की सूचक तो है ही। यहाँ हमने बारहवीं शताब्दी से लेकर बीसवीं शताब्दी तक के टीका-साहित्य का ही प्रधानतः दिग्दर्शन किया है। कहीं कहीं काव्य सम्बन्धी ग्रन्थों का भी उल्लेख किया है और इसी प्रकार वंश-सम्बन्धी ग्रन्थों की ओर भी संकेत माझ कर दिया है। उनका विवरण हमें काल-न्यम और विकास की दृष्टि से अलग देना इष्ट है। व्याकरण-सम्बन्धी प्रभूत साहित्य का निर्माण इन्हीं शताब्दियोंमें अर्थात् १२वीं शताब्दीसे लेकर उच्चीसवींया बीसवीं शताब्दी तक लंका और बरमा दोनों देशों में किया गया। उसका हमने बिलकुल उल्लेख इस प्रकरण में नहीं किया है। उसके विकास की परम्परा को हम अलग से (दसवें

अध्याय में) लेगे, क्योंकि वह काफी विस्तृत है और अलग विवेचन की ही अपेक्षा रक्खती है। पालि में इन्हीं शताव्दियों में ही धर्म-शास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थों की रचना हुई। तेरहवीं शताव्दी में बरमी भिक्षु नारिपुत ने 'धर्मविलास-धर्मसत्त्व' नामक ग्रन्थ की रचना की जो वहाँ संविधान-सम्बन्धी मामलों में अत्यन्त प्रामाणिक माना जाता है। इसी के आधार पर सोलहवीं शताव्दी में 'मनु-नार' की रचना हुई, जिसके आधार पर अठारहवीं शताव्दी में 'मनु-वण्णना' की रचना हुई। पुनः इसी के आधार पर उक्तीसवीं शताव्दी में 'मोह-विच्छेदनी' लिखी गई। पालि के इन धर्म-शास्त्र सम्बन्धी विकास का इतिहास पालि और बरमी द्वादृ धर्म के द्वयन को समझने के लिये महत्वपूर्ण होने के साथ साथ इस दृष्टि से भी बहुत महत्वपूर्ण है कि वह द्वादृ सामाजिक और साहित्यिक क्षेत्र में मनुस्मृति के प्रभाव का माध्य देता है, जिस पर ही सम्पूर्ण बरमी धर्म-शास्त्र साहित्य, जो अंशतः बरमी भाषा और असतः पालि में निबद्ध है, आधारित है। काण्डा, व्याकरण, वृश और धर्मशास्त्र के अलावा द्वन्द्वशास्त्र, काव्य-शास्त्र, कोश आदि पर इन शताव्दियों में लिखे गये साहित्य का भी इस प्रकरण में विवेचन नहीं किया गया है। उसका मंकेपतः नियर्थन हम आगे के प्रकरणों में करेंगे।

## नवाँ अध्याय वंश-साहित्य

'वंश' शब्द का अर्थ और इतिहास से भेद

'वंश' साहित्य पालि साहित्य की एक मुख्य विशेषता है। यद्यपि 'वंश' (पालि 'वंम') नाम से कोई ग्रन्थ संस्कृत भाषा या अन्य किसी प्राचीन आयं-भाषा के साहित्य के इतिहास में नहीं मिलता, किन्तु जिसे छान्दोग्य-उपनिषद् में 'इति-हास-पुराण' कहा गया है, उसकी तुलना विषय और शैली की दृष्टि से पालि 'वंश' ग्रन्थों से को जा सकती है। 'इतिहास-पुराण' या ठीक कहें तो 'पुराण-इति-हास' ग्रन्थों के सर्वोत्तम उदाहरण संस्कृत भाषा में महाभारत और अष्टादश पुराण जैसे ग्रन्थ ही हैं। इनके विषयों में धर्म-वृत्त और कथाओं के साथ साथ प्राचीन भारतीय इतिहास का भी संनिवेश है। इनका निश्चित आवार ऐति-हासिक होते हुए भी वर्णन-शैली प्रायः इतनी अतिरिक्तनामयी और नैतिक उद्देश्यों से (कहीं कहीं साम्प्रदायिक मतवादों से भी-जैसा कि उत्तरकालीन पुराणों में) अोत्प्रोत होती है कि उनमें से निश्चित इतिहास को निकालना बड़ा कठिन हो जाता है। पांचिंठ आदि विद्वानों को उनका वास्तविक ऐतिहासिक मूल्यांकन करने में कितना परिश्रम करना पड़ा है, यह इसी से जाना जा सकता है। जो बात संस्कृत के पुराण-इतिहासों के बारे में ठीक है, वहो बात पालि के 'वंश' ग्रन्थों के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। कुछ अन्तर, केवल मात्रा का यह अवश्य है कि पालि 'वंश'-कारों ने भारतीय 'पुराण'-कारों को अपेक्षा कुछ अधिक ऐतिहासिक दृष्टि का परिचय दिया है। संस्कृत में केवल 'राजतरंगिणी' को छोड़कर और कोई ग्रन्थ उनकी कीट का नहीं है। निश्चय ही उनके वर्णनों में निश्चित इतिहास की सामग्री संस्कृत पुराण-इतिहासों से तो बहुत अधिक मात्रा में और अधिक स्फूर्त रूप में मिलती है। भारतीय परम्परा के अनुसार इतिहास-पुराण के पौत्र लक्षण

कहे गये हैं, सर्वं (सृष्टि-क्रम-वर्णन) प्रतिसर्वं (प्रलय के बाद पुनः सृष्टि-क्रम-का वर्णन), वर्ण, मन्त्रवर्तर और वंशानुचरित। इनमें वंश और वंशानुचरित हमारे प्रस्तुत विषय की दृष्टि से वह महत्व के हैं। राजाओं की विस्तृत वंशावलियाँ विष्णु, वायु, मत्स्य, भागवत आदि पुराणों में दी हुई हैं। पालि का वंश-साहित्य भी प्रधानतः राजाओं की वंशावलियों का ही वर्णन करता है, यद्यपि महाभारत और पुराणों की तरह उसमें भी इनके अलावा बहुत कुछ है। धर्म-वृत्त और कथाएँ दोनों के ही महत्वपूर्ण अग्र हैं। इतने सामान्य कथन के बाद अब हम पालि के वंश-साहित्य की विशेषताओं में प्रवेश कर सकते हैं।

### पालि 'वंश'-ग्रन्थ

पालि में 'वंश'-साहित्य की परम्परा बृद्धघोष-युग के पहले से ही चली आती है और उसका अविच्छिन्न प्रवर्तन तो ठीक उप्रोसवी या बीसवीं शताब्दी तक मिलता है। पालि के मूल्य वंश-ग्रन्थ में है, (१) दीपवंस (२) महावंस (३) चूलवंस (४) बृद्धघोषप्रतिवेद (५) महाम्भसंगह (६) महावोधिवंस (७) घृणवंस (८) अत्तनगलुविहारवंस (९) दाठावंस (१०) छकेसधातुवंस (११) गन्धवंस और (१२) सासनवंस। इनका अलग अलग संक्षिप्त परिचयात्मक विवेचन आवश्यक होगा।

### दीपवंस<sup>१</sup>

'दीपवंस' पालि वंश-साहित्य की सर्व-प्रथम रचना है। यह लंका-द्वीप का इतिहास है। लंका-द्वीप की ऐतिहासिक परम्परा का आधार एवं आदि स्रोत यही ग्रन्थ है। 'दीपवंस' प्राम्बृद्धघोषकालीन रचना है। इसके लेखक का नाम जभी अज्ञात ही है। आरम्भिक काल से लेकर राजा महासेन के शासन-काल (३२५-३५२ ई०) तक का लंका का इतिहास इस ग्रन्थ में वर्णित है। बृद्धघोष ने इस ग्रन्थ को अपनी अट्ठकथाओं में कई चर्चा (विशेषतः कथावल्यप्रकरण की

१. रोमन लिपि में ओल्डनवर्ग द्वारा सम्पादित, पालि ट्रैक्स्ट सोसायटी द्वारा प्रकाशित, लन्दन १८७९। हिन्दी में अभी तक इस ग्रन्थ का कोई मूल संस्करण या अनुवाद नहीं निकला। इस ग्रन्थ के बरमी और सिहूली संस्करण उपलब्ध हैं।

अट्ठकथा में) उद्भृत किया है। बुद्धघोष का समय चौथी-पाँचवीं शताब्दी है। अतः यह निश्चित है कि 'दीपवंस' का प्रणयन -काल ३५२ ई० (महासेन के शासन-काल की अन्तिम साल, जब तक का वर्णन 'दीपवंस' में मिलता है) और ४१० ई० के बीच ही होना चाहिये। 'दीपवंस' की ऐतिहासिक परम्परा और विषय-वस्तु प्राचीन सिहली अट्ठकथाओं के ऐतिहासिक अंशों पर आधारित है। ये सिहली अट्ठकथाएँ अत्यन्त प्राचीन काल में सिहल में लिखी गई थीं। इनकी भाषा मिहली गल थी, किन्तु बीच बीच में कहीं कहीं पालि-माधारे भी इनमें सम्मिलित थीं। इन्हीं अट्ठकथाओं पर बुद्धघोष की पालि-अट्ठकथाएँ आधारित हैं और इन्हीं पर 'दीपवंस' भी। 'महा-अट्ठकथा' 'महापञ्चरी' 'कुरुन्दी' 'चुल्ल-पञ्चरी' 'अन्वट्ठकथा' आदि जिन सिहली अट्ठकथाओं से बुद्धघोष ने सामग्री ली, उन्होंने पर 'दीपवंस' भी आधारित है। विशेषतः जिसे 'महावंस-टीका' में 'सीहलट्ठकथा-महावंस' कहा गया है, उससे भी सम्भवतः 'दीपवंस' में अधिक वहायता ली गई है। अनेक स्रोतों से सहायता लेने के कारण और उनमें निरिष्ट परम्पराओं को उनके मीलिक रूप में ही रख देने की प्रवृत्ति के कारण, 'दीपवंस' में अनेक पुनरावृत्ति भिलती है। विभिन्न स्रोतों से सामग्री संकलित की गई है, किन्तु उस संकलन को व्यवस्थित एवं एकात्मतापूरक रूप प्रदान नहीं किया गया। एक ही घटना का वर्णन एक जगह संभिप्त रूप से कर दिया गया है। दूसरी जगह उसी घटना का वर्णन विस्तृत रूप से दे दिया गया है। यह विभिन्न स्रोतों से संकलित सामग्री को व्यवस्थित रूप न दे सकने के कारण ही है। अतः साहित्यिक कला की दृष्टि से यह ग्रन्थ उतना महत्वपूर्ण नहीं हो पाया। भाषा और छन्द दोनों ही इस ग्रन्थ के निर्दोष नहीं हैं। जबकि ऐतिहासिक सामग्री इस ग्रन्थ ने उपर्युक्त सिहली अट्ठकथा-माहित्य से ली है, भाषा और शैली की दृष्टि से यह ग्रन्थ निपिटक पर भी आधारित कहा जा सकता है। बुद्धवंस, नरियापिटक, जातक, परिवार-पाठ आदि ग्रन्थों की शैली की 'दीपवंस' की भाषा-शैली से पर्याप्त समानता है। फिर भी, जैसा अभी निरिष्ट किया जा चुका है, भाषा पर लेखक का अधिक अधिकार दिलाई नहीं पहता। साहित्यिक दृष्टि से 'दीपवंस' एक अव्यवस्थित, पुनरावृत्ति-मय, भाषा और शैली के दोनों से परिपूर्ण एवं नीरस ग्रन्थ-पद्धात्मक (विशेषतः पद्धात्मक) रचना है।

किन्तु साहित्यिक दृष्टि से दोष-मय होते हुए, भी ऐतिहासिक दृष्टि से 'दीप-वंस' एक महत्वपूर्ण घन्थ है। फ़िक जैसे कुछ-एक विद्वानों ने उसकी साहित्यिक अपूर्णताओं के कारण या उनसे अधिक प्रभावित होकर ही उसे एक प्रामाणिक ऐतिहासिक घन्थ के गौरव से भी वंचित रखना चाहा है।<sup>१</sup> निश्चय ही पह सन्तुलन को खो देना है। 'दीपवंस' के ऐतिहासिक रूप से प्रामाणिक घन्थों होने में सन्देह की गुजारण नहीं, यह डा० गायगर की इस सम्बन्धी सोचों ने अन्तिम रूप से निश्चित कर दिया है।<sup>२</sup> 'दीपवंस' में एक प्राचीन ऐतिहासिक परम्परा मिलती है, जिसको सिंहल में सदा आदर और विश्वास की दृष्टि से देखा गया है। यह इसी से जाना जा सकता है कि पाँचवीं शताब्दी ईसवी में सिंहल के राजा भातुमेन ने इस घन्थ का पाठ राष्ट्रीय गौरव के साथ एक वार्षिक उत्सव के अवसर पर करवाया था। सिंहली इतिहासों में निश्चय ही इस घन्थ को पहला और अत्यन्त ऊँचा स्थान प्राप्त है। यन्हि की विषय-वस्तु, जैसा पहले कहा जा चुका है, लंका के प्रारम्भिक इतिहास से लेकर वहाँ के राजा महासेन के शासन-काल (३२५-३५२ ई०) तक है। यद्यप्रत्येक बुद्ध के तीन बार लंका-गमन का वर्णन किया गया है, और उनके बंध के आदि पुरुष का नाम महासम्मत बतलाया गया है। फिर प्रथम दो बौद्ध संगीतियों का का वर्णन है। यहीं विनय-पिटक—चूल्लवग्म आदि के वर्णनों से कोई विशेष विभिन्नता नहीं है। वही मगधराज अजातशत्रु के तत्त्वावधान में, महाकाश्य के समाप्तित्व में, प्रथम संगीति का हीना, एवं आनन्द और उपालि के द्वारा क्रमशः घम्म और विनय का संगायन किया जाना, यहीं भी प्रथम संगीति के विवरण में दिया गया है। इसी प्रकार द्वितीय संगीति के प्रसंग में विजयपुत्र के

१. यथा स्मित्य : हॉटियन एटिक्वेरी, ३२, १९०३, पृष्ठ ३६५; फ़िक : जर्नल ऑफ पालि टैक्स्ट सोसायटी, १९०८, पृष्ठ १

२. देखिये विशेषतः उनका महावंस (अप्रेज़ी अनुवाद) पृष्ठ १०-२०; गायगर से पहले मंससमूलर तथा डा० रायस डेविड्स ने भी सिंहली इतिहास घन्थों की प्रमाणवत्ता को प्रतिपादित किया था। देखिये क्रमशः सेकेड बुक्स ऑफ विस्ट, जिल्ड १० (१), पृष्ठ १३-२५ (भूमिका); बुद्धिस्ट इंडिया, पृष्ठ २७४

भिन्नों का अलग होकर 'महासचिवों' के रूप में विकसित हो जाना आदि बणित है। अशोक के काल तक, स्पविरवाद सम्प्रदाय की सम्मिलित कर, बृद्ध-धर्म १८ सम्प्रदायों में विभक्त हो गया था, यह भी 'दीपचंस' का बणित अन्य इस सम्बन्धी खोलों के साक्ष से अनुमत है, यह सब हम द्वितीय अध्याय में बौद्ध समीक्षियों के विवरण में देख सकते हैं। प्रथम दो संगोष्ठियों का बणित करने के बाद 'दीपचंस' तीसरी समीक्षित के बणित पर आता है। किन्तु यही सम्बन्ध मिलने के लिये वह पहले लङ्घा-डीप के उस समय तक के इतिहास को अद्वित करता है। लङ्घा-डीप की स्थापना एक भारतीय उपनिषद्धेश के रूप में लाल-नरेश मिहवाहु के विद्रोही पुत्र विजय ने की। वह अपने पिता के डारा अपने उच्छृङ्खल व्यवहार के कारण देश से बाहर निकाल दिया गया था। अपने तृतीय साधियों को लेकर विजय लङ्घा-डीप आया। यात्रा के प्रसंग में सुप्तारक, भटकच्छ आदि बन्दरगाहों का भी बणित कर दिया गया है, जो प्रथ्यकार की ऐतिहासिक दृष्टि का पर्याप्त साक्ष देता है। किन्तु साथ ही यह भी दिखाया गया है कि लङ्घा में उस समय यद्य, दानव और राजस रहते थे, जो 'पुराण-इतिहास' शैली का एक अच्छा नमूना कहा जा सकता है। विजय सिहूल का व्रथम अभिगिष्ठ राजा हुआ। उसके बाद अनेक राजा हुए। जिस समय भारत में अशोक राजा राज्य करता था, मिहूल में विजय का वंशधर देवानंपिय तिस्स नामक राजा था। अशोक ने तृतीय संगोष्ठि के बाद अपने पुत्र और पुत्री महेन्द्र और संघमित्रा को बृद्ध-धर्म का सन्देश लेकर लङ्घा में भेजा। वे अपने साथ बोधि-बृक्ष की शाखा भी ले गये। देवानंपिय तिस्स ने उनका स्वागत किया और बृद्ध-धर्म को स्वीकार किया। इस प्रकार देवानंपिय-तिस्स के शासन-काल में बौद्ध धर्म सर्व प्रथम लङ्घा में प्रविष्ट हुआ। बोधि-बृक्ष की शाखा, जिसे महेन्द्र और संघमित्रा अपने साथ ले गये थे, बड़े सम्मान के साथ अनुराधपुर में लगाई गई और वही 'महाविहार' नामक विहार की स्थापना की गई। देवानंपिय तिस्स के बाद लङ्घा के ऊपर एक बड़ी विपत्ति आई। दधिण

२. प्राचीन लाट अर्थात् गुजरात-प्रदेश। गायगढ़ ने इसे वंग-प्रदेश माना है, जो निश्चय ही गलत है। देखिये महाचंस, पृष्ठ ६ (परिचय) (भद्रत आनन्द कौसल्यायन का अनुवाद)

भारत ने द्रविड़ों (दमिल) ने वहाँ जा कर उसकी राष्ट्रीय एकता को भग करना आरम्भ कर दिया और बहुत सा भाग अपने अधिकार में कर लिया। द्रविड़ों के द्वारा निचन्तर तंग किमे जाने पर भी सिहल के मैथी-भावना-परायण बोद्ध राजाओं ने उनसे युद्ध करने की नहीं सोची। जो भाग द्रविड़ों ने अपने अधिकार में कर लिया वह उस प्रदेश की सिहली जनता उनके अत्याचारों से दुखी थी। अत ये उन्हें 'दुट्ठगामणि' के रूप में उपयूक्त नेता मिला। दुट्ठगामणि का वास्तविक नाम 'गामणि' था। वह तलकालीब बोद्ध लङ्घाधिपति काकवण्ण तिस्म का पुत्र था। वहा उड़त और बीर स्वभाव का था। सोलह वर्ष की अवस्था में ही उसने द्रविड़ों से लड़ने के लिये अपने पिता से आज्ञा मिली। अहिसक बोद्ध पिता ने नर-हिसामय युद्ध की आज्ञा नहीं दी। गामणि उसी समय से विद्रोही हो गया। पिता के आदेश को न मानने के कारण उसके नाम के साथ इसी कारण 'दुष्ट' (दुट्ठ) शब्द भी लगने लगा। बाद में पिता के मरने के बाद वह शोषित सिहली जनता का स्वाभाविक नेता हुआ। उसने एक सुसंगठित सेना तैयार कर द्रविड़ों को परास्त किया और सिहल को एक सूत्र में बोधा। दुट्ठगामणि सिहल का सब से बड़ा भासक नाम जाता है। उसने बोद्ध वर्म की भी बड़ी सेवा की। नी मंजिलों का 'दीह प्रासाद' नामक विहार उसने बनवाया। 'महाधूप' ('महामूर्ति') तथा अन्य अनेक स्तूप और विहार भी उसने बनवाये। दुट्ठगामणि के बाद उसके बंशधरों में कई राजाओं के बाद प्रसिद्ध सिहली राजा बट्टगामणि हुआ। उसी के समय में पालि त्रिपिटक को लेखबद्ध किया गया। अतः उसका शासन-काल (प्रथम शताब्दी ईसवी पूर्व) पालि-साहित्य के इतिहास में बड़ा महत्वपूर्ण है। बट्ठगामणि के बाद अनेक राजाओं और उनकी बंशावलियों का वर्णन करता हुआ 'दीएवंस' लङ्घाधिपति महासेन (३२५-३५२ ई०) के शासन-काल तक आकर समाप्त हो जाता है।

'दीएवंस' के वर्णनों का वास्तविक ऐतिहासिक महत्वाङ्कुन क्या है, लङ्घा के निश्चित इतिहास के रूप में वह कहीं तक मात्र है, भारतीय इतिहास की परमाराजों से उसके वर्णनों का क्या और कहीं तक सामज्जन्य या विरोध है, पालि साहित्य और बोद्ध वर्म के विकास के इतिहास में उसके क्या महत्वपूर्ण साक्ष्य हैं, इन सब समस्याओं का विवेचन हम यही अलग से न कर 'दीएवंस' पर ही आधित

और सम्भवतः उसकी व्याव्यास्त्रहप लिखित एक अन्य बंश-ग्रन्थ के साथ करेंगे, जिसका नाम 'महावंस' (महावंश) है।

### महावंस'

'महावंस' भी 'दीपवंस' के समान ही लक्ष्य का एक सुव्यवस्थित इतिहास-क्रन्ति है। उसकी न केवल विषय-वस्तु किन्तु वर्तमान भी विलकुल 'दीपवंस' के समान ही है। सम्भवतः 'दीपवंस' के आसार पर ही वह लिखा गया है। उसके स्रोत विलकुल 'दीपवंस' के समान ही है। 'दीपवंस' और अन्य प्राचीन सिंहली बट्टकथाओं के अलावा 'सीहलट्टकथा-महावंस' नामक अट्टकथा का भी उसने अधिक व्याख्या दिया है, यह हमें उसकी ठीका जिसका नाम 'महावंस-ठीका' (बाहरकी शताव्दी) है, से विदित होता है। 'महावंस' की विषय-वस्तु 'दीपवंस' के समान होते हए, भी उससे अधिक विस्तृत है। एक बड़ी भारी विशेषता यह है कि 'दीपवंस' की सी व्यवस्थित भाषा या नीरस शब्दों यहाँ विलकुल नहीं मिलती। 'महावंस' सच्चे अर्थों में एक ऐतिहासिक काव्य है। उसे 'ऐतिहासिक महाकाव्य' भी कहा जा सकता है। उसकी भाषा और शब्दों में वही उदात्तता है, जिसे हम महाकाव्यों की शब्दी से सम्बन्धित करते हैं। देवानंपिष्यतिस्त (२४३ ई० पू० से २०३ ई० पू० तक) और दुट्टगामणि (१०१ ई० पू० से ३७ ई० पू० तक) के विस्तृत, उदात्त शब्दों निष्क्रिय ही महाकाव्योचित प्रभावशीलता से ओतप्रोत है। 'महावंस' अपने मौलिक रूप में ३७ वें परिच्छेद की ५०वीं गाथा पर समाप्त हो जाता है। उसके बाद ही 'महावंसो निदित्तो' (महावंश समाप्त), इस प्रकार के शब्द लिखित हैं। किन्तु बाद में इस प्रन्थ का कई शताव्दियों तक परिवर्द्धन किया गया। ३७वें परिच्छेद की ५०वीं गाथा से आगे के परिवर्द्धित स्वरूप

१. डाक्टर गायगर द्वारा सम्पादित, पर्याल टेक्स्ट सोसायटी द्वारा प्रकाशित, सन्दर्भ १९०८। इस प्रन्थ के अनेक सिंहली संस्करण हो चुके हैं। बन्धु विश्वविद्यालय ने इस प्रन्थ का देवनागरी-संस्करण भी प्रकाशित किया है। हिन्दी में भवन्त जानन्द कौसलयाधन ने इस प्रन्थ का अनुवाद किया है। हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग द्वारा १९४२, में प्रकाशित

का नाम 'बूलवंस' है। इस परिवर्द्धित संस्करण के ६८वें परिच्छेद की उनमठ्यों गाथा में यह प्रसिद्ध पाठ आता है 'दत्ता महसं दीपंत' दीपवंसं समाविष्टि। इसका अर्थ इस प्रकार किया गया है, "उसने सोने की एक सहस्र मुद्राएँ देकर 'दीपवंस' पर एक दीपिका लिखवाने की आज्ञा दी।" जिस राजा के विषय में ऐसा कहा गया है, वह धातुसेन है। इस धातुसेन का काल ईसा की पाँचवीं शताब्दी का अन्तिम या छठी शताब्दी का आदि भाग है। जिस दीपिका की ओर उपर्युक्त पाठ में संकेत किया गया है, उसे वही 'महावंस' ही मान लिया गया है। यह मान्यता पहले फ़रीट नामक विडान् ने प्रचारित की।<sup>१</sup> गायमर<sup>२</sup> और उनके बाद विमलाचरण लाहा<sup>३</sup> महोदय ने भी इसे स्वीकार कर लिया है। विटरनिंज अवश्य इसे मानने की प्रस्तुत नहीं।<sup>४</sup> यदि बास्तव में 'दीपवंस' पर लिखित उपर्युक्त 'दीपिका' से तात्पर्य 'महावंस' से ही हो तो इसमें यह प्रमाणित ही जाता है कि 'महावंस' की रचना का काल पाँचवीं शताब्दी का अन्तिम या छठी शताब्दी का ग्रारम्भिक भाग ही है। विटरनिंज ने उपर्युक्त 'दीपिका' की 'महावंस' न मान कर भी 'महावंस' का रचनाकाल पाँचवीं शताब्दी का अन्तिम भाग ही माना है। कुछ भी ही, 'महावंस' का 'दीपवंस' पर आधित होना एक निश्चित तथ्य है। अनेक पद्ध दोनों में समान है। समान उपादानों का अबलम्बन कर के भी 'महावंस' कार ने अपनी रचना को अपनी उन्नतर भाषा और शैली से एक विशेष गोरख दे दिया है, इसमें सन्देह नहीं। 'महावंस' के रचयिता का नाम महावंस-टीका के अनुसार महानाम था। स्थविर महानाम दीपसन्द मेनाप्ति द्वारा निमित्त विहार में रहते थे,<sup>५</sup> यह भी वही कहा गया है। इसमें अधिक 'महावंस' के रचयिता और उनके काल के विषय में कुछ जात नहीं।

१. जनेल आंव रौद्रल एशियाटिक सोसायटी १९०९, पृष्ठ ५, पद संकेत १

२. पालि लिटरेचर एंड सेमेज, पृष्ठ ३६

३. हिस्ट्री आंव पालि लिटरेचर, जिल्ड दूसरी, पृष्ठ ५२२ एवं ५३६

४. हिस्ट्री आंव इंडियन लिटरेचर, जिल्ड दूसरी, पृष्ठ २१२, पद संकेत ४

५. उद्धरण के लिए देखिये महावंग, पृष्ठ २ (परिचय) (भदन्त आनन्द कौसल्यायन का अनुवाद)

## दीपवंस और महावंस की तुलना

'दीपवंस' और 'महावंस' का विषय एक समान है, यह पहले दिलाया जा चुका है। पौन्जी शताब्दी ईसवी पूर्व से लेकर भीसी शताब्दी ईसवी तक के लगुनों के इतिहास का वर्णन दोनों का विषय है। किन्तु 'दीपवंस' की अपेक्षा 'महावंस' की विषय-वस्तु अधिक विस्तृत, अधिक व्यवस्थित और अधिक काव्यमय है। 'महावंस' के आदि में ही इस कवि-इतिहासलेखक ने कहा है "पुराने लोगों ने भी इस (महावंस) का वर्णन किया है। उसमें कही अति विस्तार, कही अति सङ्केप और पुनरुत्थित की अधिकता है। उन समूह दोषों से मुक्त, समझते और समरण रखने में सरल, सुनने पर प्रसन्नता और वैराग्य को देने वाले, परमार्थ-गत, प्रसाद-जनक स्वलों पर प्रसाद और वैराग्य-जनक स्वलों पर वैराग्य उन्मत्त करने वाले, इस महावंश को सुनो।"<sup>१</sup> महावंस-टीका ने भी इसी का अनुमोदन करते हुए स्वीकार किया है "आचार्य (महानाम) ने पुरानी चिह्न अट्टकथा में से अति विस्तार तथा पुनरुत्थित दोषों को छोड़ सरलता में समझ में आने वाले 'महावंस' को लिखा।"<sup>२</sup> महावंस का लेखक निश्चय ही एक कवि-हृदय का अविनियत था। उसने जिस स्थल को स्पष्ट किया है, प्रत्येक को रसात्मकता प्रदान की है। इस 'महावंस' या महान् गुरुओं (राजाओं, आचार्यों) के वंश-इतिहास<sup>३</sup> लिखने में उसका मन्तव्य उनके उदय-व्यय को दिखाकर गाढ़ों के हृदय में निर्वद प्राप्त करना भी था, यह उसने प्रत्येक परिच्छेद के अन्त में स्पष्ट कर दिया है। 'महावंस' का प्रत्येक परिच्छेद इन शब्दों के साथ समाप्त होता है "सुजनों के प्रसाद और वैराग्य के लिये निति 'महावंस' का . . . परिच्छेद समाप्त।" 'दीपवंस' के साथ 'महावंस' के वर्णित विषयों की तुलना करना के लिये यहाँ 'महावंस' की विषय-सूची का दिग्दर्शन मात्र करा देना आवश्यक होगा। ऊपर दीपवंस के

१. महावंस १-२-४ (भद्रन आनन्द कौसल्यायन का अनुवाद)

२. "अयं हि आचार्यो एत्य पोराणकम्भि सीद्धलट्ठकथा महावंसे अतिवित्पार-पुनरुत्थितोसभावं पहायतं सुखमाहणादिपयोजन सहितं कत्वा कथेति। महावंस, पृष्ठ १ (परिचय) में उढ़त।

३. "महन्तातं वंसो तन्ति पवेणि महावंसो", महावंस-टीका।

विषय का जो संभिप्त वर्णन कर दिया गया है, उसकी पृष्ठभूमि में वह स्पष्ट भी हो जायगा। 'महावंस' के प्रथम परिच्छेद में बुद्ध के तीन बार लक्ष्मा में आगमन का वर्णन है। विशेष विस्तार के अलावा 'दीपवंस' के वर्णन से इसकी कुछ भी विभिन्नता नहीं है। दूसरे परिच्छेद में भगवान्-बुद्ध के पूर्वतम कुल-मुख्य महासम्मत का वर्णन-वर्णन है। यह भी 'दीपवंस' के आधार पर और उसके समान ही है। तीसरे, चौथे और पाँचवें परिच्छेदों में, क्रमशः प्रथम, द्वितीय और तृतीय वर्म-संगीतियों का वर्णन है। इन वर्णनों में कोई उल्लेखनीय विभिन्नता नहीं है। चूंकि इनका विस्तृत विवरण हम दूसरे अध्याय में दे चुके हैं, अतः फिर 'महावंस' के आधार पर उसी वर्णन को दुहराना उपयुक्त न होगा। अन्य छोटों से जो कुछ भी अन्य विभिन्नताएँ पहरी हैं, वे वही (द्वितीय अध्याय में) निर्दिष्ट कर दी गई हैं। 'महावंस' के छठे परिच्छेद में विजय के लक्ष्मा-आगमन का तथा सातवें में उसके राज्याभिषेक का वर्णन है, जो भी 'दीपवंस' के इस सम्बन्धी वर्णन का विस्तृत और कम-बढ़ वर्णन ही है। आठवें, नवें और दसवें परिच्छेदों में विजय के वंशानुक्रम का वर्णन है, जिसमें अनेक राजाओं के नाम और शासन-काल आते हैं। ग्राहरहवें अध्याय में देवानं पिय तिस्स के अभिषेक का वर्णन आता है। इसी समय बृद्ध-धर्म का प्रवेश लक्ष्मा में होता है। 'दीपवंस' की अपेक्षा 'महावंस' में विस्तार बहुत अधिक है और उसकी सूचना भी उसकी अपेक्षा बहुत अधिक है। 'महावंस' के वर्णनानुसार 'देवानं पिय तिस्स और घम्मासोक (घम्माशोक-अशोक राजा) दोनों राजा एक दूसरे को न देखने पर भी चिरकाल से मिथ्र चले जा रहे।<sup>१</sup> देवानं पिय तिस्स ने अपने राज्याभिषेक के समय अनेक नीलम, हीरे, लाल, मणि आदि की भेंट अशोक के पास भेजी। 'महावंस' के वर्णनानुसार 'राजा (देवानं पिय तिस्स) ने अपने भानवे महारिष्ठ प्रधान मंत्री, पुरोहित, मन्त्री और गणक, इन चार व्यक्तियों को दूत बना, बहूमूल्य रत्नादि . . . . देकर सेना सहित वहीं (पाटलि पुत्र) भेजा।'<sup>२</sup> इन दूतों के मार्ग का वर्णन भी महावंस में किया गया है 'जम्बुकोल (लक्ष्मा के उत्तर में सम्बलहुरि नामक स्थान से भाव

१. महावंस १११९ (भद्रत आनन्द को सल्लायन का अनुवाद)

२. महावंस ११२०-२२ (भद्रत आनन्द को सल्लायन का अनुवाद)

“पर चढ़कर सात दिन में वेबन्दरगाह पहुँचे। वहाँ से फिर एक मात्राह में पाटलि-  
मुद्रा पहुँचे। वही जाकर राजा को भेट समर्पित की, जिसे देख कर वह प्रसन्न हुआ।”<sup>१</sup>  
अशोक राजा ने अन्य प्रभृत भेट-सामग्री के साथ सदमं की मह मेट भी  
भेजी, “मैंने बुद्ध, धर्म और संघ की शरण प्रहृण की है और शाक्य-पूत्र के शासन  
में उपासक हुआ हूँ। हे नरोत्तम! आप भी आनन्दपूर्वकअद्वा के साथ इन उत्तम रत्नों  
की शरण प्रहृण करें।”<sup>२</sup> तृतीय धर्म-संगीति के बाद देश-विदेश में बुद्ध-धर्म  
के प्रचार के लिए अशोक ने जो कार्य किया उसका बर्णन ‘महावंस’ के एक अलग  
परिच्छेद में ही किया गया है। बारहवें परिच्छेद का शीर्षक है ‘नाना देश-प्रचार।’  
इस नाना देश-प्रचार की योजना के अन्तर्गत ही आगे चल कर तेरहवें परिच्छेद  
में महेन्द्र के लंका-अग्रगमन का वर्णन है। ‘नाना-देश-प्रचार’ के वर्णन में हम पढ़ते  
हैं, “संगीत समाप्त कर के बुद्ध-धर्म के प्रकाशक स्थविर मोदगलिपुत्र तिस्ता  
(मोगलिपुत्र तिस्ता) ने भविष्य को देखते हुए, प्रत्यन्त-देशों (पड़ीसी देशों) में  
(धर्म) शासन की स्थापना का विचार कर, कातिक मास में स्थविर  
मञ्जभन्तिक को काश्मीर और गन्धार को भेजा और महादेव स्थविर को महिप-  
महाल भेजा। रक्षित नामक स्थविर को बनवास (मेसुर का उत्तरी भाग) की ओर  
भेजा और यवन (शीक) धर्मरक्षित को अपरान्त (बम्बई से सूरत तक का प्रदेश)  
देश में भेजा। महाधर्मरक्षित स्थविर को महाराष्ट्र में तथा महारक्षित स्थविर को  
यवन देशों में भेजा। हिमालय-प्रदेश में मतिभ्रम स्थविर को भेजा और स्वर्णभूमि  
(चरमा) में सोण और उत्तर नामक दो स्थविरों को भेजा। अपने शिष्य महा-  
महेन्द्र स्थविर तथा इटिठ्य, उत्तिय, सम्बल और भद्रसाल—इन पाँच स्थविरों  
को यह कर लंका भेजा—तुम मनोज्ज लंकाद्वीप में, मनोज्ज बुद्ध-धर्म की स्थापना  
करो।”<sup>३</sup> इन सब भिक्षुओं के अलग अलग कार्य का वर्णन करने के बाद महेन्द्र के

१. महावंस ११।२३-२४ (भद्रन्त आनन्द को स्थापन का अनुवाद)

२. महावंस १।३४-३५; मूल इस प्रकार है—अहं बुद्धं च धर्मं च संघं च सरणं गतो  
उपासकत्त वेदेऽसं साक्ष्यपुत्तस्स सासने  
स्वपि मानि रत्नानि उत्तमानि नवत्तम  
चित्तं पसादयित्वान् सद्वाय सरणं भज

३. महावंस १२।१-८

लंका-समन का बर्णन वडे चमत्कृत और काल्प-मय इंग से 'महावंस'-कारने किया है "अन्तिम शास्य पर सोये हुए लोक-हितेषी मूर्ति (बूद्ध) ने लंका के हित के लिये जिनके बारे में भविष्यवाणी की थी, वही लंका के लिए दूसरे बुद्ध, लंकावासी देवताओं द्वारा पूजित, महेन्द्र, लंका के हितार्थ वही पश्चारे।"<sup>१</sup> जौदहवें अध्याय में उनके नगर-प्रवेश का बर्णन है। राजा वेवानंपिय तिस्स को अपना परिचय देते हुए स्वविर महेन्द्र उन्हें कहते हैं "महाराज ! हम खंभंराज (बूद्ध) के अनुयायी भिन्न हैं। आप पर ही अनुग्रह करने के लिए हम भारत (जन्मदीप) से यहाँ (लंका में) आये हैं।"<sup>२</sup> पन्द्रहवें अध्याय में लेकर बौसवें अध्याय तक क्रममः महाविहार-निर्माण, चैन्यपवंत-विहार-प्रतिप्रहण, महाबोधि-प्रहण, बोपिं-आगमन, एव स्वविर-परिनिवाण आदि के बर्णन हैं, जो उस काल तक लंका में बौद्ध धर्म को प्रसाति के जरण-चिन्ह हैं। इकोसवें अध्याय में वेवानंपिय तिस्स के बाद और दुट्ठगामणि से पहले आने वाले पौँच राजाओं का बर्णन है। बाईसवें परिच्छेद में लेकर चत्तीसवें परिच्छेद तक अर्थात् पूरे म्यारह परिच्छेदों में दुट्ठगामणि का इतिहास बणित है, जब कि 'दीपवंस' में इस बर्णन को केवल १३ गायांदे दी गई है। दुट्ठगामणि ने किस प्रकार सैनिक बल का संग्रह कर इविहों वा निष्कासन किया, यह हम पहले देख चुके हैं। युद्ध में विजय प्राप्त करने के बाद उसने बौद्ध धर्म की सेवा भी की और 'लोह-प्रासाद' 'महा-प्रासाद' नामक अनेक विहार और स्तूप भी बनवाये। इस विजेता राजा को इस प्रकार बूद्ध-धर्म का उपासक दिला कर उसे एक राष्ट्रीय नेता और महापुरुष के रूप में 'महावंस' में चित्रित किया गया है और उसके आधार पर म्यारह परिच्छेदों में एक महाकाल्प की ही सूचिट कर दी गई है। बाईसवें अध्याय से ३२वें अध्याय तक की विषय-सूची उसके इन विभिन्न क्रियाकलापों को अच्छी प्रकार दिला सकती है। वह इस प्रकार है (२०) ग्रामणी कुमार का जन्म (२१) योद्धाओं की प्राप्ति (२४) दो भाइयों का युद्ध (२५) दुष्ट ग्रामणी की विजय (२६) मरिचबट्टि-विहार-पूजा (२०) लोह-प्रासाद-पूजा, (२८) महास्तूप की साधन-प्राप्ति, (२९) १. महावंस १३।२१  
२. महावंस १४।८; मूल पालि-पाठ इस प्रकार है—समणा मयं महाराज धर्म-राजस्स सावका । तत्रेव अनुकम्भाय जन्मदीपा इवागता ।

महास्तुप का आरम्भ (३०) बातुगर्मे की रवना, (३१) घातु-निधान और (३२) तुषितपूरणमन। दुट्ठगामणि के जीवन का सब से बड़ा काम उसकी विजयों के बाद उसके द्वारा ९ मंजिलों वाले लोह-प्रासाद तथा मरीच बट्टी और महास्तुप आदि विहारों और स्तूपों का बनवाना था। लोह-प्रासाद के पूर्ण होने के पहले ही उसे मरणान्तक रोग उत्पन्न हुआ और उसे निश्चय हो गया कि उसका अमृत काल समीप है। अपने छोटे भाई तिस्स को बुलवा कर स्तुप के बचे हुए काम को समाप्त करवाने का आदेश दिया, जिसे उसने पूरा किया। मृत्यु से पूर्व अश्रवत होने पर भी इस अद्वालु राजा ने पालकी में बैठ कर इस चैत्य की प्रदक्षिणा की और दक्षिण-द्वार पर आ कर बुढ़-बन्दना की। “फिर भिक्षु-संघ से घिरे हुए राजा ने बाईं करवट लेटे हुए उसम सहास्तुप को और बाईं करवट लेटे हुए उसम लोह-प्रासाद की देख कर चिन प्रसन्न किया।”<sup>१</sup> मरण-चूड़ा पर पड़ा हुआ राजा जान पूर्व के युद्ध के साधियों को सम्बोधित कर कहने लगा, “पहले मैंने तुम दम पोद्धारों को साथ ले कर युद्ध किया था, अब मृत्यु के साथ अकेले ही युद्ध आरम्भ कर दिया। इस मृत्यु रूपी शब्द को मैं पराजित नहीं कर सका।”<sup>२</sup> शरीर छोड़ने से पहले दुट्ठगामणि ने अपने छोटे भाई तिस्स को आदेश दिया “हे तिस्स ! असमाप्त महास्तुप का शेष सब कुत्य आदरपूर्वक समाप्त करवाना। स्वयं प्रातःकाल उस पर पूण्य चढ़ाना। प्रति दिन तीन बार उसकी पूजा करना। बुढ़-शासन के सत्कार-सम्बन्धी जो कुत्य मैंने निश्चय किए हैं, उन सभी कुत्यों को हे तात ! तुम अविच्छिन्न रूप से चलाते रहना। संघ-सम्बन्धी कायं मैं हे तात ! कभी प्रमाद (आलस्य) न करना।”<sup>३</sup> धर्म-शब्द करने के बाद, रथ पर सड़े होकर तीन बार महास्तुप की प्रदक्षिणा कर, स्तुप और संघ को प्रणाम कर, दुट्ठगामणि तुषित-न्योक को गया। इस प्रकार दुट्ठगामणि की जीवन-नाशा को यहाँ एक पूरे राष्ट्र के जीवणों से व्याप्त महाकाव्य-नात महत्ता और प्रभावशीलता दी गई है, यह उसकी उपर्युक्त शैली से ही स्पष्ट हो जाता है। दुट्ठगामणि के बाद

१. महाबंस ३२१२-३

२. महाबंस ३२१६-१७

३. महाबंस ३२५९-६-२

उसके उत्तराधिकारी राजाओं की एक कमबहुलम्बी कमशा 'दश राजा' एकादश राजा' 'द्वादश राजा' 'त्रयोदश राजा' इस प्रकार कमशा, तेतीसवें, चौतीसवें, पेतीसवें और छतीसवें परिच्छेदों में दो हैं हैं, जब कि 'दीपवंस' में इस सम्बन्धी संविल्प वर्णन ही उपलब्ध है। सौतीसवें परिच्छेद की पचासवीं गाथा तक (जहाँ तक ही मौलिक 'महावंस' की विषय-सीमा है) 'राजा महासेन के शासन-काल का वर्णन है। इस प्रकार 'शीपवंस' और 'महावंस' दोनों एक ही जगह से प्रारम्भ कर महासेन के शासन-काल (३२५-३१२ ई०) तक आ कर लंका के इतिहास को समाप्त कर देते हैं। 'महावंस' से कम से कम देह सौ वर्ष पूर्व की रचना होने के कारण 'दीपवंस' जब कि अपने सीरों अवान् शिहली अट्ठकथाओं के अधिक समीप है, 'महावंस' ने उसे विस्तृत काल्यात्मक स्वरूप प्रदान कर उसकी भाषा और शैली में भी अधिक परिष्कार और व्यवस्थापन कर दिया है। दोनों के द्वारा वर्णित विषयों के विवरणों में अद्भुत समानता होती है भी कही कुछ वक्षावलियों के कालानुक्रमों में अन्तर भी है, जिस पर हम अभी जायेंगे। 'महावंस' को जाहे 'दीपवंस' की अर्जकथा मा टीका स्वीकार किया जाय या नहीं, उसकी शैली अपनी एक मौलिक विशेषता रखती है, यद्यपि उसकी विषय-वस्तु अन्ततोर्गत वार्दीपवंस' पर ही आधारित है।

### क्या 'दीपवंस' और 'महावंस' इतिहास हैं ?

'दीपवंस' और 'महावंस' दोनों ही इतने अतिरजनामय और अलीकिक वर्णनों से भरे हुए बन्ध है कि उन्हें शब्दया तो इतिहास नहीं माना जा सकता। पालिप्रिपिटक से हम जानते हैं कि शास्त्र मध्य-मंडल को छोड़कर ज्ञायद ही कही गये। किन्तु 'महावंस' में तथा उससे पूर्व 'दीपवंस' में भी उनका तीन बार लंका-नगर दिखाया गया है, जो कलाना-प्रसूत ही हो सकता है। विजय का उसी दिन लंका पहुँचना जिस दिन भगवान् का परिनिर्वाण हुआ, यह भी वास्तविक घटनाभित नहीं दीखता। नाता चयत्कार-मय वर्णन जो 'दीपवंस' और 'महावंस' में भरे चढ़े हैं, उनको तो कोई इयत्ता ही नहीं। महेन्द्र और उनके साथी भिक्षुओं का आकाश से उड़ कर लंका में पहुँचना, लोह-प्रासाद और महा-स्तूप के निमीण के समय अनेक प्रकार के नगरकारों का होना, आदि बातें निश्चित घटनापरक

ऐतिहासिक घटना को व्यक्त नहीं करती। यदि इन सब बातों को उचित अवकाश देकर 'वीणवंस' और 'महावंस' की मूल विषय-वस्तु का परीक्षण किया जाए तो वहाँ से हम निश्चय ही बहुत कुछ निश्चित इतिहास का निर्माण कर सकते हैं। न केवल लंका के धार्मिक और राजनीतिक इतिहास में ही वस्त्रिक भारतीय इतिहास की अनेक समस्त्याओं के मूलभाने में भी, विशेषतः उसके काल-क्रम की समस्त्या के मूलभाने में, इस प्रकार के अध्ययन से काफी सहायता मिल सकती है। नाहे 'वीणवंस' और 'महावंस' के अन्य विवरण कितने ही अधिक अतिरेजनामय हों, कालानुक्रम के सम्बन्ध में उनका प्रामाण्य और महत्व निविवाद है। उनकी इसी विशेषता की ओर लक्ष्य करते हुए प्रो० रायस डेविड्स ने कहा है कि सिंहल के इतिहास-प्रन्थों की कालानुक्रमणिका इंगरेज और फ्रांस के उन सर्वोत्तम प्रन्थों की कालानुक्रमणिकाओं से भी, जो उन देशों में बहुत जाताधियों वाल तक लिखे गये, किसी भी प्रकार कम महत्व वाली नहीं है।<sup>१</sup> यथापि विषय से लेकर देवानंपिय तिस्स तक की कालानुक्रमणिका के विषय में तो उतना निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता, किन्तु देवानंपिय तिस्स और हर हालत में दुट्ठगामणि से लेकर महासेन तक की कालानुक्रमणिका तो प्रामाणिक ही मानी जा सकती है। 'महावंस' में दी हुई इस पूरी कालानुक्रमणिका को हम यहाँ विस्तार-भव्य से उद्धृत नहीं कर सकते।<sup>२</sup> यहाँ केवल इतना ही कहना आपेक्षित है कि चूंकि बृद्ध-परिनिवारण से काल-गणना कर यहाँ विभिन्न राजाओं के शासन-काल की गणना की गई है, जब उससे न केवल बुद्ध के परिनिवारण अपितु बन्य अनेक भारतीय ऐतिहासिक घटनाओं के लिखित-विनिश्चय में भी पर्याप्त सहायता मिली है। इस विषय का अधिक विवेचन करना तो यहाँ पूरे प्राचीन भारतीय इतिहास की एक अत्यन्त विवाद-प्रस्तुत समस्त्या में ही प्रवेश करना होगा, जो हमारे प्रस्तुत प्रयोजन को देखते हुए अप्राप्तिका

## १. सुदिस्ट इंडिया, पृष्ठ २७४

२. 'महावंस' के आधार पर विषय से लेकर महासेन तक के लंका के ६१ राजाओं की तथा विभिन्नार से लेकर अद्विक तक के १३ भारतीय राजाओं की कालानुक्रमणिकाओं के उद्धरण के लिए देखिये महावंश (भवन्त जातन्व कौसल्याधन का हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ७-९ (भूमिका)

होगा। काठ-वर्म के बलावा भारतीय इतिहास के लिए इन लंका के इतिहास-ग्रन्थों का और भी प्रभुत महत्व है। भारतीय इतिहास को अनेक पठनाओं का ते अद्भुत हाथ से समर्पण करते हैं। उदाहरणतः अशोक के पहले के राजाओं द्वाया नदीं, चन्द्रगुप्त (चन्द्रगुप्त) और विम्बिसार के वर्णन, विम्बिसार और अजात-शम्भु के पादस्थारिक सम्बन्ध और दुड़ के नाम उनका समकालिक होना, भगवान् दुड़ का विम्बिसार से आयु में पौष्ट वर्ष बड़ा होना; चन्द्रगुप्त और उसके ग्रान्थण मन्त्री चामक्य (चामक्य) के विवरण, और सब से अधिक अशोक का दुड़-परिनिवारण के २१८ वर्ष बाद अभियन्त होना, आदि तथ्य ऐसे हैं जो इन सिहली इतिहास-ग्रन्थों ने भारतीय इतिहास के समर्पण स्वरूप दिये हैं। 'महावर्म' में वर्णित तृतीय बीड़ संगति के समाप्ति मोगलियुत तिस्स और उनके द्वारा देश-विदेश भेजे हुए मञ्जिभम (हिमवन्त-प्रदेश के धर्मोपदेशक) आदि धर्मोपदेशकों की बात मही है, इसे सौंची स्तूप में प्राप्त वालु-डिल्वियों के ऊपर उत्कीर्ण केत्रों से समर्पण प्राप्त होता है। वहाँ प्राप्त एक विविधा पर लिखा हुआ है 'सपुरिसस मञ्जिभमस' (सत्पुरुष मञ्जिभम का) और एक दूसरी पर लिखा है 'सपुरिसस मोगलियतस' (सत्पुरुष मोगलियुत का)। सौंची-स्तूप की एक पापाणवेष्टनी पर उष्णवेला से लंका को बोधिन-वृक्ष की ढहनी ले जाये जाने का चित्र वर्णित है। उससे भी 'महावर्म' में वर्णित महेन्द्र द्वारा धर्म-प्रचार के कार्य को ऐतिहासिक समर्पण प्राप्त होता है। इसी प्रकार पुरातत्त्व सम्बन्धी खोजों तथा चीनी यात्रियों के कागों से अशोक तथा देवतन्त्रिय तिस्स का समकालिक होना भी प्रमाणित होता है। तीन बीड़ नगीतियों का विवरण भी जो 'महावर्म' और 'दीपवर्म' में दिया हुआ है, तस्वतः ऐतिहासिक प्राचार पर ही आधित है। अतः इन इतिहास-ग्रन्थों के वर्णन ऐतिहासिक दृष्टि से भी समावेशीय हैं। विशेषतः उत्तरकालीन इतिहास के सम्बन्ध में तो इनका साक्ष अधिक स्पष्ट और प्रामाणिक है ही। 'महावर्म' का विशेष महत्व तो लंका के वार्षिक इतिहास के कान में ही है। सर्व-प्रवर्म तो उपालि से लेकर महेन्द्र तक के विनाय-वरों की जौ कालानुक्रम-यूर्वक परम्परा यहाँ दी हुई है, वह लंका और भारत दोनों देशों में दुड़-धर्म के विकास की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यह परम्परा इस प्रकार है, (१) उपालि, (२) दासक, (३) सोणक, (४) मिमांव, (५) मोगलियुत तथा (६) महिन्द। सर्वास्त्रिवादियों के मतानुसार

एक दूसरी परम्परा है,<sup>१</sup> जो उनके सम्प्रदाय के अनुसार प्रामाणिक मानी जाती है। चैकि भिन्न भिन्न सम्प्रदायों ने अपने अपने सम्प्रदायों के अनुसार इन परम्पराओं का उल्लेख किया है, अतः उनमें कम या अधिक प्रामाणिक होने का सबाल ही नहीं उठता। वे सब अपनी अपनी दृष्टि से प्रामाणिक हैं और आदिम स्रोत तो हर हालत में बृद्ध और उनके पात्रमिक शिष्य हैं ही। सिहुल के स्तुप, विहार और चेत्यों के तो बड़े ही विस्तृत विवरण 'महावंस' में उपलब्ध हैं। महाविहार, अभयगिरि विहार, शूपाराम, महामेघवण्णाराम, लोहपासाद आदि विहारों के बर्णन लंका में बीदू घमं के विकास पर बड़ा अच्छा प्रकाश डालते हैं और पुरातत्व के विद्यार्थी के लिए अध्ययन के बच्चे विषय हैं। इसी प्रकार शार्मिक उत्सवों के भी बड़े चित्रमय बर्णन उपलब्ध हैं। सब से बड़ी बात तो भारत और सिहुल के शताविंशी तक के पारस्परिक जात्यान-प्रदान का इन ग्रन्थों में बड़ा सुन्दर चित्रण है। तत्कालीन भारतीय इतिहास और भूगोल मानो इन ग्रन्थों में पुनराज्ञीचित हो उठता है। राजगृह, कोशाम्बी, वैशाली, उच्चावली, पुष्पपुर, नालन्दा आदि भारतीय सांस्कृतिक केन्द्रों की स्मृति 'दीपवंस' और 'महावंस' में कितनी हरी-भरी है, मह उन्हें पहले ही देख बनता है। कपिलवस्तु, कुण्डावती, कृषीनारा, गिरिधज, जेतवन, मधुरा (मधुरा), उरुवेला, काशी, अ॒पि॑पत्न (इतिपत्न), पाटलिपुत्र, वाराणसी आदि बृद्ध-स्मृति से अकिंत भारतीय नगरों, तथा इसी प्रकार अंग, मगध, चम्पा, भल्ल, वेलुवन, दण्डप्रस्थ, भरकच्छ, सुप्पारक, तद्धिला, सामल (स्मालकोट), अवन्ती, मद्र, प्रवाग (पवाग) आदि स्थानों तथा उनसे ही अधिक लंका-द्वीप के सांस्कृतिक केन्द्रों और स्थानों से, जो इन ग्रन्थों में वर्णित हैं, तत्कालीन भूगोल का ही निर्माण किया जा सकता है। पालि साहित्य के इतिहास में भी इन ग्रन्थों का साक्ष्य चिपिटक की प्राचीनता सम्बन्धी उस परम्परा का समर्थन करता है जिसके द्वायें हम पहले अशोक के अभिलेखों और 'मिलिन्द पञ्च' में करते हैं। इन दोनों ग्रन्थों में ही तीनों पिटकों, पाठों निकाओं और उनके विभिन्न ग्रन्थों के नाम ले लेकर, उनके वर्णों, पञ्जासकों, संयुक्तों और वगों के पूरे व्योरे दे देकर

१. जिसके उद्धरण के लिए देखिये राहुल सांकुस्त्यायन : अभिधर्मकोश पृष्ठ ८ (भूमिका)

उद्भृत किया गया है। इससे यह स्पष्ट रूप से प्रमाणित होता है कि पालि त्रिपिटक [इनके प्रणयन-काल में उसी नाम और वर्गोंकारण में विद्यमान था, जिसमें वह आव है।

### चूलवंस'

जैसा पहले कही जा चुका है, 'महावंस' ३७वे परिच्छेद की ५० वीं गाथा पर समाप्त हो जाता है और वह लंका के इतिहास का महासेन के शासन-काल (३२५-३५२ई०) तक वर्णन करता है। उसके बाद का लंका का क्रमबद्ध इतिहास भी इसी प्रथम के परिवर्द्धित अंश के रूप में बाद में उसके साथ ही जोड़ दिया गया। यह जुड़ा हुआ अंश अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक अववायदि उसके आधुनिकतम रूप को भी उसी के साथ संयुक्त माने तो ठीक १९३५ ई० तक लंका के इतिहास का क्रम-बद्ध निरूपण करता है। 'महावंस' के ३७ वे परिच्छेद की ५० वीं गाथा के बाद का यह परिवर्द्धित अंश 'चूलवंस' के नाम से प्रसिद्ध है। 'चूलवंस' सन् ३५२ई० (महासेन के शासन-काल को अन्तिम साल) से लेकर ठीक आधुनिक काल तक (उसके आधुनिकतम विकसित रूप को गम्भीरता कर) लंका के इतिहास का वर्णन करता है। यह रचना याचि भिन्न भिन्न व्यक्तियों द्वारा भिन्न भिन्न कालों में हुई है, जिसका क्रमानुसार विवरण इस प्रकार है—

- (१) सिहल प्रवासी स्थविर घम्मकिति (घमकीर्ति) नामक लरमी निझुने, जो प्रसिद्ध सिहली राजा पराक्रमबाहु द्वितीय के समकालिक थे, तेरहवीं शताब्दी के मध्य भाग में संवेदनश्च महानाम द्वारा ३७ वे परिच्छेद की ५० वीं गाथा पर छोड़े हुए 'महावंस' का परिवर्द्धन किया। सेतीसवें अध्याय में १९८ गाथाएँ जोड़ कर उसे 'सात राजा' शीर्षक दिया और किर ३९ परिच्छेद तक ग्रन्थ-रचना की। राजा महासेन के पुत्र सिरिमेषवर्ण (श्री मेषवर्ण) से इन्होंने अपने विषय का प्रारम्भ किया और उसे पराक्रमबाहु प्रथम (१२४०-१२७५) के शासन-काल तक छोड़ा। इस बीच में उन्होंने ७८ राजगांडों का कालानुक्रम-पूर्वक वर्णन किया, जो

१. रोमन लिपि में डा० गायगार द्वारा सम्पादित, पालि टैक्स्ट सोसायटी द्वारा प्रकाशित, १९३५; इस प्रथम के तिहली और बरमो संस्करण भी उपलब्ध हैं।

निश्चिततम् इतिहास ही है। अकेले पराक्रमबाहु प्रथम का ही वर्णन इस भाग में १८ अध्यायों में किया गया है। पराक्रमबाहु ने द्रविड़ों को हराया था और बीढ़ घर्म के स्तूपों, विहारों आदि के निर्माण के ढारा बड़ी भेवा की थी। महानाम ने जिस प्रकार दुट्ठगामणि के वर्णन से एक ऐतिहासिक महाकाव्य की रचना कर डाली है, उसी प्रकार यहाँ पराक्रमबाहु को एक महाकाव्याचित्र प्रभावशील वर्णन का विषय बनाया गया है।

- (२) 'चूलवंस' का द्वितीय परिवर्द्धन बृद्धरक्षित नामक भिखु ने किया। इन्होंने ८० वें परिच्छेद से लेकर ९० वें परिच्छेद तक रचना की। पराक्रमबाहु द्वितीय से आरम्भ कर इन्होंने अपना विषय पराक्रमबाहु चतुर्थ पर छोड़ा। इस भाग में इन्होंने २३ राजाओं का वर्णन किया।
- (३) 'चूलवंस' का तृतीय परिवर्द्धन सुमंगल स्थविर ने किया। इन्होंने ११ वें परिच्छेद से १०० परिच्छेद तक रचना की। भुवनेकबाहु तृतीय के काल से ले कर इन्होंने अपने विषय को कीर्ति श्री राजसिंह (किंति सिरिराजसीह) की मृत्यु (१७८५ ई०) तक छोड़ा। इस बीच में उन्होंने २४ राजाओं का वर्णन किया। इसी अंश में हमें ईसाई घर्म प्रचारकों के लंका में आने की सूचना भी मिलती है।
- (४) 'चूलवंस' का चौथा परिवर्द्धन सुमंगलाचार्य तथा देवरक्षित ने किया। यह परिवर्द्धन केवल १०१ वें परिच्छेद के रूप में लिखा गया। इसमें लंका के दो अन्तिम राजा सिरि राजाधिराज सीह (श्री राजाधिराज सिंह) और सिरि विक्रम राज सीह (श्री विक्रमराज सिंह) का वर्णन है, और लंका के अंग्रेजों के हाथ में जले जाने की भी सूचना है। यह अंश १७८५ और १८१५ ई० के बीच के लंका के इतिहास का वर्णन करता है।
- (५) तन्त्र १८१५ से १९३५ ई० तक का लंका का इतिहास सिंहली भिखु स्थविर युग्मिरल पञ्चामन्द नायक पाद-द्वारा लिखा गया है। यदि चाहे तो इसे भी 'चूलवंस' का ही परिवर्द्धन स्वरूप कह सकते हैं, और चाहे तो अलग स्वतंत्र गत्य भी मान सकते हैं। प्रकाशित (१९३५) तो यह स्वतंत्र प्रन्थ के रूप में ही है। सिंहल की आधुनिक पालि-रचना की प्रगति पर इस गत्य से पर्याप्त प्रकाश पड़ता है।

## बुद्धघोसुप्पत्ति ।

‘बुद्धघोसुप्पत्ति’ (बुद्धघोषोत्तरति) बुद्धघोष की जीवनी के रूप में लिखी गई रचना है। इसके प्रणेता महामंगल नामक सिहली भिक्षु थे, जो ‘मनवट्ठि’ नामक (उपसर्गसम्बन्धी) व्याकरण-ग्रन्थ के भी रचयिता थे<sup>१</sup>। इनका काल जीदहरीं शताब्दी है। ‘बुद्धघोसुप्पत्ति’ में अलीकिक विधान इतना अधिक है कि उसका बाल्त्रिक ऐतिहासिक महत्वांकन नहीं किया जा सकता। बुद्धघोष की बाल्य-वस्त्रा और प्रारंभिक शिक्षा तथा धर्म-परिवर्तन का वर्णन करते समय ऐसा मालूम पड़ता है मानो ‘भिलिन्द पञ्च’ के नामसेन और रोहण तथा ‘महावंश’ (परिच्छेद ५) के सिम्यव तथा मोगलेतुल तिस्स मम्बन्धी प्रकरणों के तमनों को ही लगान्तर कर के रख दिया गया है<sup>२</sup>। यद्यपि लेखक ने बुद्धघोष के जन्म, बाल्यावस्था, प्रारंभिक शिक्षा, धर्म-परिवर्तन, ग्रन्थ-रचना आदि सभी का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है, किन्तु ऐतिहासिक बुद्धि का उसने अधिक परिचय नहीं दिया है। बुद्धवत्-हत ‘विनय-विनिच्छय’ के अनुसार बुद्धवत् ने बुद्धत्राण-कृत विनय और अभिधर्म पिटक सम्बन्धी अट्टकाशाओं को ही जमशः अपने ‘विनय विनिच्छय’ और ‘अभिधर्मावतार’ के रूप में संवित्पन कर दिया था। किन्तु ‘बुद्धघोसुप्पत्ति’ में बुद्धवत् का प्रथम लक्ष्य-गमन दिक्षा कर बुद्धघोष की जगता अपूर्ण काम पूरा करने का आदेश देते दिखाया गया है। निश्चय ही ‘विनय विनिच्छय’ का ही प्रमाण यहीं दृढ़तर माना जा सकता है। इस प्रकार की एक-दो ऐतिहासिक भूलें ‘बुद्धघोसुप्पत्ति’ के रचयिता ने और भी की हैं।<sup>३</sup> वास्तव में बात यह है कि स्पविर

१. जेम्स ये हारा रोमन लिपि में सम्पादित, लन्दन १८९२
२. देलिये मेविल बोड़ : दि पालि लिटरेचर ऑंड बरसा, पृष्ठ २६, ते जाँचता । केटेलाग , पृष्ठ २३; देलिये आगे दसवें अध्याय में व्याकरण-साहित्य का विवेचन भी ।
३. देलिये विमलाचरण लाहा : दि लाइफ एंड वर्क ऑंड बुद्धघोष, पृष्ठ ४४-४५; देलिये उन्हों का ‘हिस्ट्री ऑफ पालि लिटरेचर’, जिल्ड दूसरी, पृष्ठ ५५९; मिलाइये जेम्स ये हारा सम्पादित एवं अनुवादित ‘बुद्धघोसुप्पत्ति’ की भ्रमिका भी ।
४. देलिये विमलाचरण लाहा : दि लाइफ एंड वर्क ऑंड बुद्धघोष, पृष्ठ ४३-४४ ।

महाराजगत ने केवल अनुद्योग के जागरूक पर चीड़हवी गतावृद्धि में इस रचना को प्रशिल किया था, बल्कि माध्यात् जीवन से प्राप्त मौलिकता या सच्चाई उसकी रचना में भी आवासी थी। 'महावस' के २७ वें परिच्छेद के परिच्छित संस्करण में सिहल-प्रबासी चरमी भिक्षु धर्मकिति (१३ वीं शतावदी) ने भी गवापि बुद्धधोष से ज्ञातिशयों वाल अपने वर्णन को ग्राहित किया था किन्तु उसकी प्रामाणिकता किर भी 'बुद्धधोमुपति' से अधिक है। 'महावस' (या ठीक कहे तो चूलवस्य) के इस प्रकारण को तुलना में बुद्धधोमुपति जा वर्णन कम ऐतिहासिक मूल्य का ही मानना पड़ेगा। 'महावस' के उपर्युक्त विवरण का सारांश बुद्धधोष और बुद्धदत्त जादि को अद्वक्यवादी के कलिपय वर्णनों से भिन्न जाता है, जबकि बुद्धधोमुपति के वर्णनों से उनका कही नहीं विशेष भी है, जैसा एक उदाहरण में हम उपर देख चुके हैं। अतः ऐतिहासिक वप से वह उतना विश्वसनीय नहीं माना जा सकता। जो तथ्य उसके प्रामाणिक भी है, वे भी 'महावस' के वर्णन पर ही आधारित हैं, यह उनकी शैली से ही स्पष्ट हो जाता है। स्वग लेखक ने भी स्वीकार किया है कि उसका वर्णन 'पूर्वावादी' (पूर्वाचरिया) पर आधारित है। उत्तरकालीन वश-ग्रन्थों यथा मध्यवस्तु<sup>१</sup> सासम वस्तु<sup>२</sup> तथा सद्गमसंगह<sup>३</sup> में भी बुद्धधोष की जीवनी के माध्यमात्र सम्बन्ध का भी उल्लेख हुआ है (विशेषतः सासमवस्तु में)। ये सभी 'महावस' के उपर्युक्त परिच्छित अंश पर इसने आधारित है कि इनमें कोई नई जात ही नहीं व्यर्थ है। 'बुद्धधोमुपति' का दूसरा नाम 'महाबुद्धधोमस्सनिदानवस्तु' (महावृद्धधोपस्य निदानवस्तु) भी है।

### सद्गमसंगह<sup>४</sup>

'सद्गमसंगह' एक गद्य-पद्य मिथित रचना है, जिसमें बुद्ध-ज्ञानसन के संश्लेषण के माध्यमात्र प्रारम्भिक काल से लेकर २३ वीं शताव्दी तक के भिन्न-सभ के इतिहास का वर्णन है। दोष, मजिभास, मंदूत, अग्नतर और बुद्धक-निकायों का निर्देश इस

१. जनेल आंब पालि टंकसृट सोसायटी १८८६ में प्रकाशित संस्करण, पृष्ठ ६६

२. पृष्ठ ३० (मेविल बोड द्वारा सम्पादित, पालि टंकसृट सोसायटी, १८९३)

३. जनेल आंब पालि टंकसृट सोसायटी, १८९० में प्रकाशित संस्करण, पृष्ठ ५९

४. सडानन्द द्वारा जनेल आंब पालि टंकसृट सोसायटी, १८९० में सम्पादित।

ग्रन्थ में हुआ है। अभिवर्म-पिटक के ग्रन्थों का भी उल्लेख हुआ है। तीन बौद्ध संगीतियों के वर्णन में कोई नई बात यही नहीं कही गई है। चूल्ल वग्ग (विनय-पिटक), बुद्धघोष की अट्ठ कथाओं और दीपचंस, महावंस के आधार पर संकलित सामग्री का उपयोग कर के ही इन वर्णनों को ग्रथित कर लिया गया है। तृतीय संगीति के बाद धर्म-प्रचार कार्य का विस्तृत विवरण इस ग्रन्थ में भी दिया गया है और दीपचंस, महावंस तथा समन्तपासादिका के समान उन भिक्षुओं के नामों का उल्लेख भी किया गया है जिन्हें धर्म-प्रचार के लिए देश-विदेश में भेजा गया था। इस प्रकार 'सद्गमसंग्रह' के वर्णनानुसार थेर मज्जभन्तिक काश्मीर और गन्धार को भेजे गए, महादेव थेर महिष मंडल को भेजे गये, रक्षित थेर बनवासी-प्रदेश को, योनक (योगी) धर्मरक्षित थेर अपरात्मक को, महाधर्मरक्षित थेर महाराट्ठ (महाराष्ट्र) को, महारक्षित थेर योनक (यवनक-यीस) प्रदेश को, मरिन्नम थेर हिमालय-प्रदेश को, सोणक और उत्तर सूवर्णभूमि (सूवर्णभूमि-पेग-बर्मी) को, और महेन्द्र (महिन्द्र) तथा इत्यिय, उत्तिय, सम्बल और भद्रमाल भिक्षु लोकों को भेजे गये। यह वर्णन महावंस के समान ही है। 'सद्गमसंग्रह' में कुल ४० जग्याय हैं। नवे अध्याय में अनेक ग्रन्थों और उनके रचयिताओं का वर्णन है। 'सद्गमसंग्रह' धर्मकिति महासामी (धर्मकीर्ति महास्वामी) नामक भिक्षु की रचना है, जिनका काल चौदहवीं शताब्दी का उत्तर भाग है। बालाकतार-व्याकरण को ग्रन्थवस में वाचिस्सर की रचना बताया गया है, किन्तु एक अन्य परमारा के अनुसार उसके भी रचयिता सद्गमसंग्रह के रचयिता धर्मकिति महासामी नामक स्वविर ही है।

### महावोधिवंस'

'महावोधि वंस' या 'वोधिवंस' अनुराधपुर में आरोपित वोधिवृक्ष की कथा है। यह ग्रन्थ गच्छ में है। लेखक ने वोधि-नृक के इतिहास के रूप में बुद्ध-धर्म के

१. रोमन लिपि में एस० ए० स्ट्रॉग द्वारा सम्पादित, पालि टैक्स्ट सोसायटी द्वारा प्रकाशित, लन्दन १८९१; इस ग्रन्थ का सिंहली संस्करण, इसके लेखक के नाम के भिक्षु (उपतिष्ठ) द्वारा सम्पादित किया गया है किया गया है कोलम्बो १८९१।

प्राचीनिक इतिहास का वर्णन किया है, जो निदान-कथा, दीपवंस, महावंस आदि प्राचीन स्मृतियों पर आधारित है। बुद्ध दीपकर से प्रारम्भ कर, जैसा वंश-ग्रन्थकारों ने अवसर किया है, तोन बौद्ध समीतियों का विवरण महेन्द्र का लंकागमन, महाविहार, चेतिगिरि विहार आदि का प्रतिप्रहण, इन सब वातां का विवरण इस ग्रन्थ में भी किया गया है। 'महाबोधिवंस' के रचयिता सिहली भिक्षु उपतिस्म (उपतिष्ठ) थे, जिनका समय डा० गायगर के मतानुसार ख्यारहवीं शताब्दी का मध्य भाग है।<sup>१</sup> एस० ए० स्टूग ने इनका समय बुद्धकोष के समकालिक माना है,<sup>२</sup> जिसका प्रतिचाद डा० गायगर ने किया है।<sup>३</sup> वर्णन-दैली को देखते हुए, 'महाबोधिवंस' की समानता उत्तरकालीन वंश-ग्रन्थों से ही अधिक दिखाई पड़ती है, अतः गायगर के मत को ठीक मानना अधिक युक्ति-युक्त जान पड़ता है।

### थूपवंस<sup>४</sup>

'थूपवंस' मिहली भिक्षु सारिपुत्र के शिष्य वाचिस्मर की रचना है। इन वाचिस्मर के विषय में हम आठवें अध्याय में काफी कह आये हैं। 'गन्धवंस' में इस ग्रन्थ का तो उल्लेख है<sup>५</sup> किन्तु इसके लेखक का कोई नाम वहाँ नहीं दिया हुआ है। यह ग्रन्थ गदा में है। निदान-कथा, समन्त पासादिका, महावंस तथा महावंस-टीका आदि से यहाँ सामग्री संकलित की गई है। 'थूपवंस' की रचना

१. दीपवंस एंड महावंस, पृष्ठ ७९ (कुमारस्वामी का अपेक्षी अनुवाद); देखिये उनका पालि लिटरेचर एंड लेखज, पृष्ठ ३७

२. देखिये उनके द्वारा सम्पादित 'महाबोधिवंस' की प्रस्तावना।

३. पालि लिटरेचर एंड लेखज पृष्ठ ३७, पद-संकेत १।

४. इस ग्रन्थ का सम्पादन डा० लाहा ने किया है जिसे पालि टैक्स्ट सोसायटी ने सन् १९३५ में प्रकाशित किया है। सिहली लिपि में यह ग्रन्थ घम्मदत्त द्वारा सम्पादित है, कोलम्बो १८९६। डा० विमलाचरण लाहा ने इस ग्रन्थ का अपेक्षी अनुवाद भी किया है जो विवलियोथेका इंडिका सीरीज (१९४५) में प्रकाशित हुआ है।

५. पृष्ठ ७०

१६ वीं शताब्दी के आदिम भाग में हुई थी। तेरहवीं शताब्दी में ही इस घन्य का सिहली राजान्तर भी किया गया था।<sup>१</sup>

जैसा उसके नाम से लगत है, 'बूपबंस' (स्त्रूपबंश) भगवान् बृद्ध को खातुओं पर स्मारक रूप से निर्मित 'स्त्रूपों' का इतिहास है। 'महाराजनिवाला-सुत' में ही हमने देखा है कि भगवान् बृद्ध के परिनिर्वाण के बाद उसके शरीर के अवशिष्ट चिन्हों पर आठ बड़े स्त्रूपों का निर्माण किया गया था। 'महाबंस' के विवरण में भी हम देख सकते हैं कि किस प्रकार लका के राजा दुष्टगामणि ने 'महा स्त्रूप' भादि कई विशाल स्त्रूपों का निर्माण किया था। बृद्ध-परिनिर्वाण-काल से लेकर दुष्टगामणि के समय तक निर्मित स्त्रूपों का कमबद्ध इतिहास बर्णन करना ही इस प्रणय का विषय है। बृद्ध-भक्ति ने प्रेरित हो कर लका के अनेक राजाओं ने विशाल विहारों और स्त्रूपों का निर्माण कराया था, अतः उसके इतिहास में उसका भी एक विशेष महत्व है, उसमें सन्देह नहीं। स्त्रूपों का वर्णन करना ही केवल एक मात्र विषय 'बूपबंस' का नहीं है। उसने इसे आगाम मान कर बृद्ध घर्म के पूरे इतिहास का ही वर्णन दुष्टगामणि के समय तक कर दिया है। इस घन्य के तीन मूर्ख भाग हैं। पहले भाग में गौतम बृद्ध के पूर्ववर्ती २४ बृद्धों का वर्णन किया गया है। दोस्रे भाग में भगवान् गौतम बृद्ध की जीवनी है। जन्म से लेकर महाराजनिवाणि तक भगवान् बृद्ध की जीवनी यहाँ लड़ी व्रभावधानी लीला में वर्णित की गई है। तीसरे भाग में, जिसे घन्य के 'दीर्घं' को देखते हुए उसका प्रधान अंश ही कहा जा सकता है, भगवान् बृद्ध की खातुओं पर निर्मित स्त्रूपों का और उसके डारकालीन इतिहास का

१. कहीं कहीं इस सिहली रूपान्तर को, पाल 'बूपबंस' से अल्प विभिन्नता भी है। उदाहरणतः सिहली 'बूपबंस' में 'धम्मचक्रपवत्त-सुत' के उपदेश का विवरण है जब कि पाल 'बूपबंस' में केवल 'धम्मचक्रपवत्त-सुतो' कह कर उसका निर्देश कर दिया गया है। मौत्तिक रूप से दोनों समान हैं। देखिये 'महाबोधि' मई-जून १९४६, पृष्ठ ५७-६० में डा० विमलाचरण लाहा का 'बूपबंस' दीर्घं के लेख।

वर्णन किया गया है। जैसा अभी कहा जा सकता है 'धूपवंस' में 'महावंस', 'ममन्त-पात्रादिका', 'निदान-कथा' आदि को अपेक्षा नवीन कुछ नहीं है। देखाने पर तिस के काल से लेकर तुट्ठायामणि के काल तक का वर्णन तो प्राप्त शब्दवाच 'महावंस' पर ही आधारित है। लेलक ने (स्तुपों के बारे ओर) आवस्थित कर उसे एक नया काप लक्षण दे दिया है। उसको विषय-वस्तु का कुछ संशिलित विवरण यही अधित होगा।

यस्य के बारम में लेलक ने बताया है कि पूर्ववर्ती पालि वर्णनों को पूर्णता देने के लिए ही उसने इस सत्य की रखना की है। उसके बाद उसने बताया है कि नार-प्रकार के व्यक्ति स्तुपाह है, यथा तथामत, प्रत्येक बृह (व्यक्तिमत ना से ज्ञानो, किन्तु लोकों के उपदेष्टा नहीं) तथामत के शिष्य, और राज-वृद्धवर्ती। जिस चैत्य में इनमें से किसी के शरीर के अवग्रिष्ट चिन्ह रखने जाये तबही 'स्तुप' (धूप) है। इसके बाद गीतम बृह के पूर्ववर्ती बृहों का विस्तृत वर्णन है। उसके सम्बन्ध में जो स्तुप बनाये गये उनका भी वर्णन है। वह सब इतना प्रोत्ताक है कि इसका वर्णन करना वही अप्रासंगिक होगा। यस्य के दूसरे भाग में लेलक ने बृह-जीवनी का वर्णन किया है और तीसरे या अल्पिम भाग में उसके पठनीय चिन्हों के उत्तर निर्मित स्तुपों का। भगवान् बृह के महापरिनिर्वाण के बाद उसके अवारोह का बाहु संस्कार-जिस प्रकार किया गया उसका महीं दिलकुल उसी प्रकार वर्णन है जैसा महापरिनिर्वाण-सूत्र में। अतः उसकी यही पूर्मावृति करने की आवश्यकता नहीं। महापरिनिर्वाण-मूल के मूल आधार पर ही वही बताया गया है कि भगवान् की भावुकों को बौद्धने के लिए कृशीनारा के मल्लों, मगध के अवालम्बन, वैशाली के लिङ्गद्विषयों, कपिलवस्तु के शालयों, अल्लकाष्य के बुलियों, रामगाम के कोलियों, बेठवीषक के एक ब्राह्मण और पाचों के मल्लों जापता में भगड़ा होने ही बाला था कि द्रोण नामक ब्राह्मण के सामयिक मध्यों (पास्ता जागितवादी थे, उसके भावुकों पर इस प्रकार का भगड़ा उचित नहीं) को मानकर उन्होंने उन्हें आठ भागों में विभासत कर लिया, जिन पर आठ महास्तुपों का निर्माण राजगृह, वैशाली, कपिलवस्तु, अल्लकाष्य, रामगाम, बेठवीष, पाचा और कृशीनारा, इन आठ स्थानों में किया गया। रामगाम के स्तुप में भित्ति भावुक ही बाद में सिंहल ले जाई गई। उसका इतिहास इस प्रकार है। स्पष्टिर

महाकाश्यप के आदेश पर धर्मधराज अजातशत्रु ने वैदाची, कपिलवस्तु, अल्ल-कण, वेठदीप, पावा और कुणोनारा से बुद्ध की धातुओं को इकट्ठा करवाकर उन्हें राजगृह की धातुओं के साथ ही राजगृह के दक्षिण-पूर्वी भाग में एक महास्तूप में स्थापित किया। धर्मधराज अशोक के समय में इन्हीं धातुओं के विभक्त अंशों पर ८४ हजार चौथों का निर्माण हुआ। अशोक की राज्य-प्राप्ति, अभियेक, धर्म-परिवर्तन आदि का भी उल्लेख यहाँ, 'महावंस' के वर्णन के अनुसार ही किया गया है। धामणेर न्यूपोष से उपदेश ग्रहण कर सम्प्राट् अशोक ने ८४००० नगरों में ८४००० धर्म-स्कन्धों की स्मृति में ८४००० विहारों का निर्माण करवाया। राजगृह में अजातशत्रु द्वारा पूर्व स्थापित धातुओं के विभक्त अंशों पर ही इन ८४००० विहारों का निर्माण हुआ था, यह हम पहले कह ही चुके हैं। तृतीय बौद्ध संगीत के बाद स्थविर मोगलिपुत तिस्स द्वारा देश-विदेश में नाना धर्मो-प्रदेशों का भिजवाना जना दिलाया गया है। भिजुओं के नामों की सूची तथा जिन-विन प्रदेशों में वे भेजे गये थे, 'महावंस' से किसी भी प्रकार जिज्ञ नहीं है। हम पहले देख ही चुके हैं कि 'सद्धर्मसंगह' और महावीरविंश' जैसे ग्रन्थों की भी यही स्थिति है। 'दीपवंस' महावंस 'समन्त पासीदिका' 'महावंस-टीका' आदि में कही हुई बातों को ही यहाँ बार बार दुहराया गया है। स्थविर मोगलिपुत तिस्स के आदेशानुसार थेर मञ्जन्तिक काश्मीर और गान्धार को, थेर महादेव महिमक मंडल को, थेर रक्षित बनवासी-प्रदेश को, थेर योनक (यीक) धर्मरक्षित अपरान्तक को, महावध्मरक्षित महाराष्ट्र को, थेर महारक्षित योनक लोक को, थेर मजिभम हिमवन्त प्रदेश को, थेर सोण और उत्तर सुवर्णभूमि को और थेर महिन्द (महेन्द), इत्तिय और भद्रमाल तम्बपणिदीप (लक्ष्मीदीप) को भेजे गये। 'दीपवंस' और 'महावंस' के समान 'थूपवंस' में भी इस धर्म-प्रचार का अध्यय स्थविर मोगलिपुत तिस्स को ही दिया गया है और इस प्रसङ्ग में अशोक के नाम का उल्लेख नहीं किया गया है। इसके विपरीत अशोक ने अपने दूसरे और तेरहवें शिलालेखों में अपने द्वारा किये हुए धर्म-प्रचार-कार्य का उल्लेख किया है और वही स्थविर मोगलिपुत तिस्स का कोई उल्लेख नहीं है। सम्भवतः भिजु-संघ और धर्म-राजा दोनों की ओर से ही स्वतन्त्र रूप से धर्म-प्रचार-का कार्य आरम्भ किया गया था। इस समस्या का विवेचन हम 'महावंस' का वर्णन करते समय कर

चुके हैं। किस प्रकार 'दोपवंस' 'महावंस' आदि के धर्म-प्रचार-कार्य का विवरण, जिसके बाबार पर ही इन उत्तरकालीन-ब्रह्म-ग्रन्थों ने अपने वर्णन दिया है, सांची और भारहृत के स्तूपों से समर्पित प्राप्त करता है, यहाँ हम वहाँ दिखा चुके हैं। अशोक और उसके समकालीन लङ्काधिपति देवानं पियतिस्स के बीच पार-स्परिक भेटोंके आदान-प्रदानका वर्णन करने के बाद 'धूपवंस' में महेन्द्रादि भिक्षुओं में धर्म-प्रचार कार्य का वर्णन किया गया है। देवानं पियतिस्स के बीच धर्म स्वीकार कर लेने के बाद उसकी भतीजी अनुलादेवी को प्रदर्श्या घृण्ण करने की इच्छा हुई। इस विधि को सम्पन्न कराने के लिये सम्राट् अशोक की प्रदर्जित पुत्री संघभित्रा भारत से बूलाई गई। वह बोधिवृक्ष की डाली लेकर वहाँ पहुँची है। अनुला देवी की प्रदर्श्या के बाद देवानं पिय तिस्स सम्पूर्ण लङ्का द्वीप (तम्ब-पण्डि द्वीप) में एक एक घोड़न के कासले पर स्तूपों का तीता फैला दिया। इन स्तूपों में रखने के लिए तथागत के शरीर में अवशिष्ट चिन्हों को उसने आम-धेर सुमन को भेज कर अपने मित्र देव-प्रिय राजा अशोक ने मँगाया जिसे उसने चुद द्वारा प्रयुक्त भिक्षा पत्र में रखकर अपने कल्याणमित्र के पास आदर पूर्वक भेजा था। देवानं पिय तिस्स के बाद दमिलों द्वारा लङ्का के सामाये जाने का वर्णन है। यह वर्णन 'महावंस' के समान ही है। लङ्का के इतिहासों-ग्रन्थोंमें इसकी निरन्तर पुनरावृत्ति इसकी सत्यता को सूचक है। राजा दुट्ठगामणि इन दमिलों को परास्त कर लङ्का को एक अभियं राजनीतिक और सांस्कृतिक नूत्र में बौध दिया है। 'लङ्कानीय एकछत्तमकासि'। लङ्का-द्वीप में उसने एक छत्र राज्य की स्थापना की। जिस प्रकार 'महावंस' के दुट्ठगामणि को एक राष्ट्रीय नेताके रूप में चिह्नित किया गया है, वही बात यहाँ भी पाई जाती है। दमिलों और उसके नेता एलार की दुट्ठ-गामणि के हाथ पराजय आदिके ऐतिहासिक वर्णनोंके लिए इस ग्रन्थ का 'महावंस' आदि की अपेक्षा भी अतिरिक्त महत्व है, इसमें सन्देह नहीं। राजा दुट्ठगामणि ने ११ विहार बनवाये, जिनमें मरीचवट्ठि, लोहाप्रासाद और महास्तूप बहु निमोण-कार्य थे। किस प्रकार महास्तूप पर छत्र बहुने से पूर्व ही उसकी मृत्यु हो गई और अपने छोटे भाई को उसे पूरा करने का आदेश दे कर, भिक्षु संघ को विहार को समर्पित कर तथा रोग-शम्या पर पहुँच ही स्तूप की तीन बार प्रदर्जिता

कर, दुर्द, धर्म और संसार को बन्दना करते हुए इस अद्वालु राजा ने तुषित-लोक में गमन किया, यह हम 'महावंस' के वर्णन में देख चुके हैं। उसी के समान यह यहाँ वर्णित है। महास्त्रूप का निर्मण दुट्ठगामणि ने वहे प्रयास और रुचि से करवाया था। उसके अन्दर भगवान् दुर्द के जीवन सम्बन्धी अनेक चित्र यथा धर्म-नक्षप्रवर्तन महापर्टि-निर्वाण-ग्राहित आदि दिवाये गये थे। महास्त्रूप में रखने के लिये दुर्द-शरीर के अवशिष्ट चिन्ह वही थे जिन्हे रामगाम के कोलियों ने जपने यहाँ स्थापित किया था और जो बाद में लङ्घा में लाये गये थे। दुट्ठगामणि द्वारा निर्मित नृपों के वर्णन के साथ ही 'धूपवंस' का वर्णन समाप्त हो जाता है।

अपर के विवरण से स्पष्ट है कि लङ्घा के धार्मिक इतिहास में 'धूपवंस' का बड़ा महत्व है। आज लंडहरों के रूप में भग्न या आधुनिक शहरों के नीचे विलीन प्रभुत पुरातत्व-सम्बन्धी सामग्री का वह परिचय पेता है। लङ्घा की दुर्द-भवित का भी वह परिचायक है। भारत और लङ्घा के मध्य, धर्म-निःधित सम्बन्धों की भी वह याद दिलाता है। दधिलां द्वारा लङ्घा पर किये गये व्याकरणों की याद दिला कर वह इस परिच्छेद को कुछ दुःखानुचिद्ध भी करता है, भारतीय सम्झौते के अ-शोषणक तर्क की कटु व्याख्या भी करता है। फिर भी मनुष्यों के लोभ ने जिसे नष्ट किया, शत विद्वात किया, धर्म ने उसे पुनरुज्जीवित किया, यह आपवासन भी हमें यहाँ मिलता है। लङ्घा के राजा और उनकी जनता आध्यात्मिक प्रेरणा के लिये सदा भारत की ओर देखते रहे। अनुलादेवी की प्रव्रज्या के लिये संघ-मित्रा बुलाई गई। बोधि-नृथ की डाल रोपी गई। तब से दोनों देश एक हो गये। भारत के देश-काल का, उसके गांधार, कारमीर और महिण-मेडल का, बनवासी, प्रपरान्तका, महाराष्ट्र और सुवर्ण भूमि का, उसके विदिशा, रामगाम, पावा, राजगृह, वैशाली और कपिलवस्तु का, लङ्घा के इस धर्म में निरन्तर स्मरण यही दिखाता है कि दुर्द की स्मृति के साथ इस देश की स्मृति की भी लङ्घातासियों ने अपने इतिहास में कभी भूला नहीं है।

### अत्तनगलुविहार वंस

'अत्तनगलु विहार वंस' का दूसरा नाम 'हल्लवनगल्लविहारवंस' भी है।

सिहली संस्करण में वह इसी नाम से लिपा है। तेरहवीं शताब्दी के मध्य भाग की यह गद्य-नवा मिथित रचना है। इसमें ११ अध्याय है और इसकी सबसे बड़ी विशेषता इसकी सरल, स्वाभाविक वर्णन-शैली है। प्रथम आठ परिच्छेदों में लंकाखिपति सिरिसबोधि (श्रीसबोधि) का वर्णन है। अन्तिम तीन परिच्छेदों में उन अनेक विहारों के निर्माण का वर्णन है, जो उपर्युक्त राजा के अन्तिम निवासस्थान पर बनाये गये थे। 'अत्तमगल्ल' या 'अत्तनगलु' नामक स्थान पर निर्मित विहार इनमें अधिक प्रसिद्ध होने के कारण, इसी के आधार पर इस ग्रन्थ का नाम 'अत्तनगलुविहारवंस' पड़ा है। मिथु अनोमदस्सी के अनुरोध पर, जिन्हें पराक्रमबाहु द्वितीय (१२२१-१२४६ ई०) ने, महावंस ८६-८७ के अनुसार, यह विहार समर्पित किया था, यह रचना लिखी गई थी।<sup>१</sup> इसके लेखक के नाम आदि का कुछ पता नहीं चलता।

### दाठवंस<sup>२</sup>

'दाठवंस' को रचना तेरहवीं शताब्दी के आदि भाग में सिहली मिथु सारिपुत के शिष्य महास्वविर घर्मकोति (घर्मकिति महायेर) ने की।<sup>३</sup> यह मिथु संस्कृत, मायवी भाषा (पालि), तक्षशास्त्र, व्याकरण, काव्य और आगम आदि में निष्ठात थे। इनका छन्दों पर अग्राह अधिकार था, यह 'दाठवंस' में प्रयुक्त नाना छन्दों से विदित होता है। 'दाठवंस' बुद्ध के दौत-वातु की कथा है। इसका दूसरा नाम 'दस्तवातुवंस' भी है। 'दाठवंस' की विषय-वस्तु बहुत कुछ 'धूपवंस' के समान ही है। उसके समान यहाँ वर्णपि गीतम बुद्ध के

१. गायगर : पालि लिटरेचर एंड लेबेज, पृष्ठ ४४

२. रोमन लिपि में डा० रायस डेविड्स द्वारा जनल ऑब पालि टैक्स्ट सोसायटी १८८४, में सम्पादित। देवनागरी लिपि में डा० विमलाचरण लाहा द्वारा सम्पादित एवं अपेक्षी में अनुवादित, पंजाब संस्कृत सीरीज १९२५। सिहली लिपि में असमतिस्स द्वारा सम्पादित, कोलनिय १८८३।

३. वेलिये जनल ऑब पालि टैक्स्ट सोसायटी, १८८६, पृष्ठ ६२।

पूर्ववर्ती बुद्धों का विस्तृत वर्णन नहीं किया गया है, किन्तु अन्य वर्णन प्राप्त: समान ही है। 'धूपवंस' में कथा का अन्त दुट्ठगामणि पर लाकर करदिया गया है जब कि 'दाठावंस' में वह लंकाधिपति कित्तिसिरि मेषवर्ण (बोति श्री मेषवर्ण) तक चलती है। बुद्ध के दौत के इतिहास के चारों ओर वही बौद्ध घम के विकास के इतिहास का वर्णन किया गया है, जैसे "धूपवंस" में स्तूपों की कथा के चारों ओर। कलिय के राजकुमार द्वारा लंका में बुद्ध के दौतों का लाया जाता और वही कीर्ति श्री मेषवर्ण द्वारा उनका आदर-पूर्वक ग्रहण करना तथा अनुराषपुर में लंका के राजा, भिक्षु संघ और उपासक जनता के द्वारा उसकी पूजा किया जाना आदि तथ्यों का वर्णन इस ग्रन्थ की मूल्य विषय-वस्तु है।

### छकेसधातुवंस

'छकेसधातुवंस' १० वीं शताब्दी की रचना है। यह किसी वरमी भिन्न की रचना है, जिसके नाम का पता नहीं। इसमें भगवान् बुद्ध के छँ केशों के ऊपर बनवाये हुए स्तूपों का वर्णन है। यह एक गदा-वदा भिधित रचना है और इसकी शैली सरल है।

### ग्रन्थवंस

'ग्रन्थवंस' (ग्रन्थ-वंश) उत्त्रोसवीं शताब्दी में वरमा में लिखा गया। इसकी उत्तरकालीन रचना होते हुए भी इसी कोटि के अन्य वंश-ग्रन्थों के समान इसका अत्यं महत्व नहीं है। पालि-साहित्य के इतिहास-लेखक के लिए तो यह एक बड़ा संहायक ग्रन्थ है। जैसा इसके नाम से विदित है, यह पालि-ग्रन्थों का इतिहास है। पालि ग्रन्थकारों और उनके ग्रन्थों का विवरण देना ही इसका मुख्य लक्ष्य है। पुस्तकों और उनके रचयिताओं की तुच्छी, रचना-स्थान और रचना के उद्देश्य वहीं दिये गये हैं। यहाँ विपि-टक का चिलेषण दिया गया है। फिर ग्रन्थकारों को तीन श्रेणियों में

१. जनेल और पालि डैक्सट लोसायटी १८८५ में मिलेक द्वारा सम्पादित।

२. मिलेक द्वारा रोमन लिपि में जनेल और पालि डैक्सट लोसायटी, १८८६ में सम्पादित।

विभक्त किया गया है जो कालानुक्रम-ग्रन्थ की है, (१) पौराणाचरिय (२) अटठकथाचरिय और (३) गन्धकाचरिय। पौराणाचरिय (पुराणाचार्य) घरमें संगीतकार प्राचीन भिन्न वे जिन्होंने बृद्ध-चर्चनों का समायन और संकलन किया। अटठकथाचरिय (अर्वकप्राचार्य) वे भिन्न वे जिन्होंने अत्यंत प्राचीन काल में पालि विपिटक पर अटठकथाएँ लिखीं। उसके बाद गन्धकाचरियों (ग्रन्थकानार्यों) का समय आता है जिनमें पहले कुरुन्दी और महापञ्चरी आदि सिहली अटठकथाओं के लेखक और बाद में बृद्धदत्त, बृद्धघोष, घम्मपाल आदि आते हैं। जिन गन्धों के लेखकों का पता नहीं है, उनकी भी सूची 'गन्धवंस' कार ने दी है। लेखकों में कौन से भारत-वासी थे, या कौन से लंका-वासी थे, किसने रचना अपनी प्रेरणा से की, या किसने दूसरों के अनुरोध से की, इस प्रकार का भी विवरण देकर रचनाओं के रचना-स्थान और रचनाहेतु पर प्रकाश डाला गया है। 'गन्धवंस' में निर्दिष्ट ग्रन्थकारों और उनके ग्रन्थों की सूची इस प्रकार है—

## ग्रन्थकार

## रचित ग्रन्थ

१. महाकच्छायन— (१) कच्छायनगन्धो, (२) महानिरुतिगन्धो (३) चूल्लनिरुति गन्धो (४) नेत्रिगन्धो, (५) पेटकोपदेस-गन्धो, (६) बण्णनीतिगन्धो ।
२. बृद्धघोष— (१) विसुद्धिमण्गो, (२) सुमंगलविलासिनी, (३) पात्र सूदनी (४) सारत्वपकासिनी (५) मनोरथपूरणी, (६) समंतपासादिका, (७) परमत्वकावा (८) कल्पावितरणी (९) घ्रम्मपद्मद्वकथा (१०) जात-कल्पवण्णना, (११) सुहृकपाठ्ठ कथा (१२) अपादानपद्मद्वकथा ।
३. बृद्धदत्त— (१) विनियविनिच्छयो (२) उत्तरविनिच्छयो, (३) अभिष्वम्मावतारो (४) मधुरत्वविलासिनी ।
४. आनन्द— मूलटीकं
५. घम्मपाल— (१) नेत्रिपकरणद्वठ कथा (२) इतिवृत्तक-अटठकथा (३) उदानद्वठकथा (४) चरियापिटक-अटठकथा

(५) वेरगाथा-अट्ठकथा, (६) विमानवत्थुस्स विमलविलासिनी नाम अट्ठकथा (७) पेतवत्यस्स विमलविलासिनो नाम अट्ठकथा (८) परमत्थमजूसा (९) दीधनिकावट्ठकथादीन चतुष्प्र अट्ठकथान लीनत्थपकासिनी नाम टीका (१०) जातक ट्ठकथाय लीनत्थपकासिनी नाम टीका, (११) परमत्थदीपनी (१२) लीनत्थबण्णना ।

विनयनगच्छि ।

६. महाविरबुद्धि—

(महाविष बुद्धि)

७. विमलबुद्धि— मुखमत्थदीपनी ।

८. चुल्लविरो— अत्थव्याख्यातं ।

९. दंपत्करो— (१) रूपसिद्धिपकरण (२) रूपसिद्धिटीक (३) सम्मपञ्चसुतं

१०. चुल्लवस्मपालो— सच्चवसंखेप

११. कस्तपो— (१) मोह विच्छेदनो (२) विमतिच्छेदनो, (३) बुद्धवंस, (४) अनागतवंस

१२. महानाम— (१) सद्ममपकासिनी (२) महावंस (३) चुल्लवंस

१३. उपसेन— सद्ममट्ठटीक ।

१४. मोग्गलान— मोग्गलान व्याकरण ।

१५. संघरणित— सूबोधलङ्कार

१६. वृत्तोदयकार— (१) वृत्तोदय, (२) गंवध-चिन्ता (३) नवटीके ।

१७. अम्मसिरि— चुद-सिरि ।

(धर्मशी)

१८. अनुरुद्ध— चुद सिरि ।

१९. अनुरुद्ध— (१) पमरमत्थविनिच्छयं (२) नाम-रूप-परिच्छेद (३) अभिच्छमत्थसंगहृष्पकरण

२०. खेम— खेम

११. सारिपुत्र— (१) सारथ्यदीपनी (२) विनयसंगहपकरण, (३) (४) सारथ्यमञ्जूसं (५) पञ्चकं ।
२२. बुद्धनाम— विनयत्थमञ्जूसं ।
२३. नव मोगलाल— अभिधानप्यदीपिकं ।
२४. वाचिस्तरो— (१) संवर्ण्यचिताटीका (२) मोगलाल व्याकरण-टीका (३) नामव्यपरिच्छेदटीका (४) पदरूप-विभावनं (५) लोमण्यकरणस्तटीका (६) मूलसिक्षायटीका (७) बुतोदयविवरणं (८) सुमंगलपसादनी (९) वालावतार (१०) योगविनिच्छयो (११) (११) सीमालकार (१२) रूपारूपविभाग (१२) पच्चयसगहो ।
२५. सुमंगल— (१) अभिधम्मत्यविकासनी (२) अभिधम्मत्य-विभावनी
२६. धम्मकिति— दलतधातुपकरण ।
२७. मेघकारो— जिनचरितं ।
२८. सद्धर्मसिद्धि— सद्धर्मभेदचिन्ता ।
२९. देवो— सुभणकृटवण्णना ।
३०. चूल्ल बुद्धघोषो— (१) जाततानीनिदान (२) सोततानीनिदान ।
३१. रट्ठपाल— मधूरसवाहिनी ।
३२. अग्नवेद— सद्दीतिपकरणं ।
३३. विमलबुद्धि— महाटीकं ।
३४. उत्तम— (१) वालावतारटीकं (२) लिङ्गत्थविवरणटीकं ।
३५. क्षयच्चामरज्ञी— (१) सहविन्दु (२) परमत्थविन्दुपकरण (राजा क्षयच्चा—धर्मी)
३६. सद्धर्मगृह— सद्दबुद्धिपकासनम् ।
३७. अग्नापेडित— लोकुप्यति ।
३८. सद्धर्मजोतिपाल— (१) सीमालकारस्तटीका (२) मातिकत्थदीपनी (३) विनयसमृद्धान दीपनी (४) गन्धसारो (५)

पट्ठानगणनात्यो (६) संलेपदण्णना (७) मुत-  
निहेसो (८) पातिमोक्षविसोधिनी ।

- |  |   |
|--|---|
| ३९. नव विमलबुद्धि—अभिधम्मपाणरसद्भावं । |   |
| ४०. बेपुलबुद्धि                        | (१) सहसारत्व जालिनिया टीका (२) बुद्धोदयटीका,<br>(३) परमत्वमंजूसा (४) दसगण्डवण्णना (५)<br>मगधभूताविदम्भा, (६) विदधिमूखमंडनटीका |
| ४१. अरियवंस—                           | (१) मणिसारमंजूस, (२) मणिदीप, (३) गण्डाभरण<br>(४) महानिस्सरं (५) जातक विसोधनं  |
| ४२. चीवरो—                             | जंघदासस्स टीके ।  |
| ४३. नवमेष्ठकरो—                        | लोकदीपसारं ।  |
| ४४. सारिपुत्रो—                        | सहवृत्तिपकाससस्स टीके ।   |
| ४५. सद्बुद्धमगृह—                      | सद्बुद्धिपकासन  |
| ४६. घम्ममेनापति—                       | (१) कारिक, (२) एतिमासमिदीपक (३) मनोहरं  |
| ४७. ब्राणसामरो—                        | लिङ्गत्वविवरणपकासनं ।<br>(ज्ञानसामर)  |
| ४८. अभय—                               | सहत्वभेदचित्ताय महाटीके ।   |
| ४९. गुणसामरो—                          | मुखमत्तसारं तट्टीके ।   |
| ५०. सुभूतवन्दन—                        | लिङ्गत्वविवरणपकरण ।   |
| ५१. उदुम्बरनामाचरियो—                  | गेटकोपदेसस्स टीके ।   |
| ५२. उपतिस्साचरिय—                      | अनामतवसस्स अट्टकला ।  |
| ५३. बुद्धिय—                           | सारवत्वं गहनाम गन्धो ।  |
| ५४. घम्मातन्दाचरिय—                    | (१) कञ्चायनसारो (२) कञ्चायनभेद (३)<br>कञ्चायनसारस्स टीका ।  |
| ५५. गन्धाचरियो—                        | कुरुदिग्रन्थ ।  |
| ५६. नागिताचरिय—                        | सहसारत्वजालिनी ।  |

उपर्युक्त ग्रन्थकारों और उनके ग्रन्थों के अलावा नीचे लिखे गन्ध मीनिदिप्त है, जिनके ग्रन्थकारों के नाम आदि के विषय में कुछ नहीं कहा गया।

(१) महापञ्चरिय (२) पुराणटोका (३) मूलसिकताटीका (४) लोन-  
त्यपकासिनी (५) निसन्देहो (६) धम्मानुसारियो (७) अद्यासन्दति (८)  
अद्यासन्दतिय टीका (९) सुमहावतारो (१०) लोकपञ्जातिपकरण (११)  
तथागतपतिपकरण (१२) नलातवातुबण्णना (१३) सीहलबत्यु (१४)  
धम्मदीपको (१५) पटिपति सगहो (१६) विसुद्धिमग्निष (१७) अभि-  
धम्मगन्धि (१८) नेतिपकरणगन्धि (१९) विसुद्धिमग्नुल्लनवटीका (२०)  
सोतप्तमालिनी (२१) पसाद जननी (२२) सुवोधालंकारस्स नवटीका (२३)  
गुद्धवटीक (२४) बालप्पबोधन (२५) सहत्यभेदविन्ताय मदिभमटीक  
(२६) कारिकाय टीक (२७) एतिमासमिदीपिकाय टीक (२८) दीपवंस  
(२९) थूपवंस तथा (३०) बोधिवंस । उपर्युक्त ग्रन्थों और ग्रन्थकारों में  
से अधिकाश का विवेचन पिछले पृष्ठ में किया जा चुका है और कुछ का आगे  
किया जायगा । निश्चय ही 'गन्धवंस' की सूचीबद्ध सामग्री पालि-साहित्य के इति-  
हासकार के लिए बड़ी सहायक है ।

### सासनवंस'

'सासनवंस' (शासन-वंश) भी 'गन्धवंस' के समान महत्वपूर्ण रचना  
है । उसका प्रणयन उद्दीपिती शताब्दी में बरमा में हुआ । यह बरमी  
भिषु पञ्जासामी (प्रजात्यामी) की रचना है । प्राचीन पालि साहित्य  
पर आधारित होने के कारण इसका बड़ा महत्व है । 'सासनवंस', जैसा उसके  
शीर्णक से स्पष्ट है, बुद्ध-शासन का इतिहास है । बुद्ध-काल से लेकर उद्दीपिती  
शताब्दी तक स्थविरवाद बौद्ध धर्म के विकास का इस ग्रन्थ में वर्णन है । 'सासन-  
वंस' में दस अध्याय हैं । विशेषतः छठा अध्याय अधिक महत्वपूर्ण है । इस अध्याय  
में बरमा में बौद्ध धर्म के विकास का वर्णन किया गया है । 'सासन वंस' का सबसे  
अधिक महत्वपूर्ण भाग यही है । वैसे इस ग्रन्थ में बृद्ध की जीवनी तथा अजात-  
शत्रु, कालाशोक और धर्मशोक के समय में हुई तीन बौद्ध संगोतियों आदि  
का भी वर्णन है । तृतीय बौद्ध संगीति के बाद मोगलिपुत्र तिसस द्वारा

धर्मोपदेशकों को देश-विदेश में भेजने का भी विवरण यही किया गया है। 'सासनवंस' के बण्णनानुसार तृतीय संगीति के बाद सुवर्णभूमि (बरमा) में धर्मोपदेशकों के जाने से पहले भी स्वयं मोगलिपुत्त तिस्त वही धर्मोपदेश करने गये थे, जो उतना पूर्व परम्परा पर आधारित नहीं है। इसी प्रकार कुछ अन्य भी बातें उन्होंने बरमी बौद्ध संघ के गौरव को बढ़ाने वाली कहीं हैं, जो उतनी इतिहास पर आधारित नहीं है। बरमी राजा चिरमहासीह नूरसुखम्मराजा (श्री महासिंह नूर सुखमराज) के समय में भिक्षु-संघ में हुए पारपत (चीवर को दोनों कन्धों को ढँककर ओड़ना) और एकांसिक (एक कन्धे को लौलकर रखते हुए चीवर को ओड़ना) संबंधी विवाद हुआ। वसका निर्देश इस प्रथा में किया गया है। इसी प्रकार विहारनीमा संबंधी विवाद का उल्लेख किया गया है। संघेप में, बरमी बौद्ध धर्म के विकास एवं बरमी राजाओं और भिक्षु-संघ के पारस्परिक संबंध आदि को जानने के लिए 'सासन-वंस' का आज के विवरणी के लिए भी प्रभूत महत्व है। बूद्ध-नीतिकी और संगीतियों तथा अशोक के काल में मोगालिपुत्त तिस्त के द्वारा किये गये धर्म-प्रचार आदि के विवरण के लिए वह दीपवंस, महावंस तथा समन्तपासादिका आदि पर आधारित है, इसमें संदेह नहीं। तृतीय संगीति के बाद जिन जिन देशों में भारतीय बौद्ध भिक्षु उपदेश करने के लिए भेजे गये, उनके विवरणों में 'दीपवंस' और 'महावंस' की अपेक्षा यही कुछ विभिन्नता भी है। उदाहरणातः अपरान्त राष्ट्र (अपरान्त-रट्ठ) को यहाँ इरावदी नदी का पञ्चमी भाग बतलाया गया है। उसी प्रकार महाराष्ट्र (महाराष्ट्र) को अहो स्वविर महाधर्मरक्षित उपदेशाद्य गये थे 'महानगर-राष्ट्र' (महानगर-रट्ठ) या स्याम बतलाया गया है। इसी प्रकार मजिकम स्वविर को चीन-राष्ट्र में धर्म-प्रचार करते बतलाया गया है, जबकि 'दीपवंस' और 'महावंस' के बण्णनानुसार वे 'हिमवन्त' प्रदेश के धर्म-प्रचारक थे। इसी प्रकार कुछ अन्य भी विभिन्न बण्णन हैं, जो उन्हें प्रामाणिक नहीं माने जा सकते। बरमी भिक्षु-संघ के इतिहास की दुष्टि से इस प्रत्यक्ष का बड़ा महत्व है, इसमें सन्देह नहीं।

## दसवाँ अध्याय

### काव्य, व्याकरण, कोश, छन्दशास्त्र, अभिलेख आदि

#### पालि काव्य

पालि का काव्य-साहित्य उत्तमा विस्तृत, प्रीढ़ और समृद्ध नहीं है, जितना संस्कृत का या बौद्ध संस्कृत साहित्य का भी। कालिदास या अश्वघोष की सौ काव्य-परम्परा यहाँ नहीं मिलती। निश्चय ही यदि काव्य का अर्थ मानव-जीवन के व्यापक, गहन और मार्मिक अनुभवों की, शब्द और अर्थ की निर्वाजि सुन्दरता के साथ (साथं सत्यव्यजनं) 'वहुजन हिताय' अभिव्यक्ति ही है, तब तो सम्पूर्ण त्रिपटिक 'बुद्ध-वचन' ही सर्वोत्तम काव्य है। यह भगवान् बुद्धदेव का वह शास्त्रत और अनन्त सौन्दर्यमय काव्य है, जिसका जीवन में साक्षात्कार कर लेने पर मनुष्य के लिये जरा और मरण ही नहीं रह जाते। 'देवस्य काव्यं पश्यन् न जजार न मीयते।' जो पवित्र सौन्दर्य हिमगिरि में नहीं है, जो निष्पापता उपा में नहीं है, जो गहनता महासमृद्ध में नहीं है, संक्षेप में जो काव्यत्व विद्व में अन्यथा कहीं नहीं है, वह ज्ञानी (बुद्ध) के एक स्मित में है, तथागत के एक ईर्यापथ में है, सम्यक् सम्बुद्ध के एक शब्द में है। पालि ने इस सब को ही तो प्रस्फुटित किया है। अतः वह काव्यत्व में हीन है, ऐसा कौन कहेगा? जब हम पालि के काव्य-साहित्य का विवेचन करते हैं और उसे संस्कृत की अपेक्षा कम उत्तम कहते हैं, तो हमारा तात्पर्य त्रिपटिक-गत काव्य या भाव्यत्व से नहीं होता, बल्कि काव्य-शिलिंगों की उन रचनाओं से होता है जो उन्होंने बौद्ध विषयों को आधार मान कर पालि भाषा में की हैं। इस प्रकार की रचनाएँ प्रधानतः लक्ष्मा और अशतः वरमा में इसीं शताब्दी से लेकर पन्द्रहवीं शताब्दी तक और उसके बाद तक भी होती रहीं। इन रचनाओं की विषय-वस्तु त्रिपटिक से ही ली गई है। त्रिपटिक में प्राप्त नमूनों का ही कुछ संशोधन और परिवर्ढन के साथ छन्दोवद्ध संस्करण

कर देना यहाँ कवियों का प्रधान व्यवसाय रहा है। वैसे तो पालि काव्य-ग्रन्थ है हो अला और जो है भी उनमें भी किसी महत्वीय काव्य-परम्परा का प्रबत्तन नहीं मिलता। सब से बड़कर तो कला के उस सृजनात्मक सौंदर्य एवं कल्पना के दर्शन यहाँ नहीं होते जो किसी साहित्य को विजेषता प्रदान किया करता है। सम्भवतः यह इस कारण भी हो कि कल्पनात्मक मनोरागों के प्रदर्शन को स्थविरबादी द्वाद्ध परम्पराने आरम्भ से ही अपनी साधना का अंग नहीं बनाया है। इतना ही नहीं, उसने इसे हेयता की दृष्टि से भी देखा है। इसलिये काव्य-प्रतिभा को वहाँ इतना प्रोत्साहन नहीं भिल सका है। भाषा की दृष्टि से भी पालि के इस काव्य-साहित्य का अधिक महत्व नहीं है। पालि साहित्य की प्राचीन मौलिकता के स्थान पर वह साहित्य संस्कृतायेकी अधिक हो गया है। अतः पालि साहित्य के इतिहास में उसके काव्य-साहित्य का विवेचन एक मीण स्थान का ही अधिकारी हो सकता है।

### काव्य-ग्रन्थ

विषय की दृष्टि से पालि काव्य-ग्रन्थ दो भागों में विभक्त किये जा सकते हैं, (१) वर्णनात्मक काव्य-ग्रन्थ, (२) काव्य-आव्यान। यह भेद सिफ़ विषय के बाह्य स्वरूप का है। मुख्य प्रवृत्ति और शैली तो सब जगह एक सी ही है—नेतिक आदर्शबाद और नीरस इतिवृत्तात्मक शैली। ही, कहीं कहीं रसात्मकता के भी पर्याप्त दर्शन होते हैं। मुख्य वर्णनात्मक काव्य-ग्रन्थ ये हैं (१) अनागतवस (२) तेलकटाहगाथा (३) जिनालङ्घार (४) जिनचरित (५) पञ्जमधु (६) सद्गमोपायन (७) पञ्चगतिदीपन और (८) लोकप्रदीपसार या लोकदीप-सार। प्रधान काव्य आव्यान, जिनमें कुछ गच्छ में भी हैं, ये हैं (१) रसवाहिनी (२) वृद्धालङ्घार (३) सहस्रवत्सुप्यकरण, और (४) राजाधिराजविलासिनी। इनका कुछ संदिधि परिच्छात्मक विवरण देना यहाँ आवश्यक हो गया।

### अनागतवस<sup>१</sup>

जैसा उसके नाम से स्पष्ट है, 'अनागत वंस' भविष्य (अनागत) में उत्पन्न

१. मित्रेक द्वारा जनल आंख पालि डैक्सट सोसायटी, १८८६, में रोमन अक्षरों में सम्पादित।

जाने वाले भगवान् बुद्ध मैत्रेय के जीवन-इतिहास (वंस) के रूप में लिखा गया है। 'अनागत वंस' का वास्तविक स्वरूप अभी बहुत कुछ अनिदिच्छत है। वरमी हस्तलिखित प्रतियों में उसके तीन रूप मिलते हैं, (१) गच्छ-पद्म-मिथित रूप जो सूतों की शैली में लिखा गया है। इसका विषय बुद्ध मैत्रेय की जीवन-गाथा का वर्णन करना नहीं है। बल्कि यह भविष्य में संघ पर आने वाले भवों का वर्णन करता है। बुद्ध और सारियुक्त के संबाद के रूप में यह गच्छ लिखा गया है। साथ ही इसके अन्त में उन दस भावी बुद्धों के नाम भी दिये हुए हैं, जो भविष्य में कमज़ोधि प्राप्त करेंगे।<sup>१</sup> डा० विमलाचरण लाहा का यह कहना कि 'अनागतवंस' का यह संस्करण पालिश्रिपिटक के अनागत-भव सूत्रों और उन सूत्रों, जिनमें दस भावी बुद्धों का निर्देश हुआ है, के पूरक रूप में लिखा गया है,<sup>२</sup> ठीक मालूम पड़ता है। (२) गच्छ-मय रूप, जिसमें दस अव्याय हैं और जिसका विषय इन भावी बुद्धों की जीवनी का वर्णन करना है। (३) पद्म-मय रूप, जो १४२ गाथाओं में केवल बुद्ध मैत्रेय की जीवन-गाथा का वर्णन करता है। यह संस्करण भी भगवान् बुद्ध और उनके शिष्य धर्मसेनापति सारियुक्त के संबाद के रूप में लिखा गया है। भगवान् बुद्ध भावी बुद्ध मैत्रेय के विषय में भविष्यवाणी करते दिखाये गये हैं। 'अनागतवंस' का यह संस्करण ही उसका प्रामाणिक और वास्तविक रूप माना जाता है। अपने इस रूप में 'अनागत वंस' 'बुद्धवंस' का परिवर्द्धित और पूरक रूप माना जा सकता है। 'बुद्धवंस' पूर्व के चौबीस बुद्धों का वर्णन करता है। उच्चीसवें बुद्ध अर्थात् गोतम बुद्ध की जीवन-गाथा के साथ ही वही वर्णन समाप्त कर दिया गया है। अतः स्वाभाविक रूप से 'अनागतवंस' जो उच्चीसवें बुद्ध, बुद्ध मैत्रेय, की जीवन-गाथा को अपना विषय बनाता है, 'बुद्धवंस' की कथावस्तु

१. मेत्तेय्यो उत्तमो रामो पर्सेनदि कोसलोभिभु ।

दीषसोणि च संकच्चो सुभो तोदेय्य जाहूणो ॥

नालागिशिप्ललेय्यो बोधिसत्ता इमे दस ।

अनवक्कमेण सम्बोधि पापुजिस्सनितनामतेति ॥

जन्मल जांब पालि टेक्स्ट सोसायटी, १८८६, पृष्ठ ३७

२. हिस्ट्री जांब पालि लिटरेचर, जिल्ड दूसरी, पृष्ठ ६१२

को पूर्णता देने की दृष्टि से ही लिखा गया जान पड़ता है। दोनों की बौली में भी पर्याप्त समानता है।<sup>१</sup> दीघ-निकाय के चक्रवर्ति सीहनाद-सूत (३१३) में भी बुद्ध मंत्रेय के भावी आविर्भाव के विषयमें उल्लेख किया गया है। वहाँ कहा गया है कि जब भगवान् बुद्ध मंत्रेय उत्पन्न होंगे तो मनुष्य ८०,००० वर्ष की आयु में तरुण हुआ करेंगे और कुमारियाँ ५०० वर्ष की आयु में विवाह-योग्य हुआ करेंगी। 'अनागतवंस' के भी वर्णनों की यही बान्धी समझी जा सकती है। बुद्ध मंत्रेय जन्मदीप (भारतवर्ष) में केतुमती नामक नगरी में ब्राह्मण-वंश में उत्पन्न होंगे। उनकी माता का नाम ब्रह्मवती और पिता का नाम सुब्रह्मा होगा। उनका आरम्भ का नाम अवित होगा। वे बड़े समृद्धशाली होंगे। ८००० वर्ष तक गृहस्थ-सूत्र का उपभोग करेंगे। उनके बाद प्रव्रज्या लेंगे। बुद्ध के ऐतिहासिक जीवन-वृत्त के आधार पर ही ये अतिशयोक्तिमय वर्णन गढ़ लिये गये हैं, जिनमें काव्यत्व या विचार की अपेक्षा हम बोद्ध पौराणिकलाल के ही अधिक दर्शन करते हैं।

'अनागतवंस' की रचना कब और किसके द्वारा हुई, इसके विषय में निश्चित नहीं है। रायसविड्स ने इस प्रन्थ को बहुत प्राचीन माना है—यहाँ तक कि बुद्धधोष से भी प्राचीन। इसका कारण उन्होंने मह दिवा है कि 'विसुद्धिमग्म' में बुद्धधोष ने बुद्ध मंत्रेय का वर्णन करते हुए उनके माता-पिता के विषय में कहा है 'सुब्रह्मा नामस्स ब्राह्मणो पिता भविस्मति, ब्रह्मवती नाम ब्राह्मणी माताति'<sup>२</sup>। 'अनागतवंस' में भी चिलकुल इन्हीं शब्दों में बुद्ध मंत्रेय के माता-पिता का वर्णन मिलता है।<sup>३</sup> अतः रायस डेविड्स ने बुद्धधोष के शब्दों को 'अनागतवंस' से उद्धरण मानकर 'अनागतवंस' को प्राक्-बुद्धधोषकालीन ठहराया है।<sup>४</sup> विन्टर-

१. कुछ उद्धरणों के लिए देखिये लाहा हिस्ट्री और पालि लिटरेचर, जिल्ला दूसरी, पृष्ठ ६१३

२. विसुद्धिमग्म १३।१२७ (धर्मानन्द कोसम्बी का संस्करण), देखिये अट्ठसालिनी पृष्ठ ४१५ (पालि टैक्स्ट सोसायटी का संस्करण)।

३. पृष्ठ ९६ (जनेल और पालि टैक्स्ट सोसायटी, १८८६, में प्रकाशित संस्करण)

४. विसुद्धिमग्म, पृष्ठ ७६१, ७६४ (रायस डेविड्स का संस्करण)

नित्य ने यह स्वीकार नहीं किया कि बुद्धोप के उपर्युक्त शब्द 'अनागतवंस' से ही उद्भूत किये गये हैं।<sup>१</sup> अतः उनको 'अनागतवंस' की इतनी प्राचीनता मान्य नहीं है। जूँकि बुद्धोप ने अपने उपर्युक्त शब्दों में केवल बुद्ध भैश्रेय के माता-पिता के नाम का ही उल्लेख किया है, अतः यह कोई इतना विशेषतापूर्ण संदर्भान्तिक या अन्य दृष्टि से महत्वपूर्ण तथ्य नहीं है कि बुद्धोप जैसे आचार्य को 'अनागतवंस' से इसका उद्धरण देने की आवश्यकता पड़ती। यह तो बीद परम्परा की एक अति सामान्य मान्यता थी जो 'अनागतवंस' के रचयिता के समान बुद्धोप को भी मालूम हो सकती थी, फिर कालानुक्रम से कोई किसी का पूर्ववर्ती क्यों न रहा हो, शब्द-साम्य इस सम्बन्ध में अधिक महत्वपूर्ण नहीं माना जा सकता। अतः हम बुद्धोप के उपर्युक्त शब्दों को 'अनागतवंस' से उद्धरण मानने को बाध्य नहीं। 'गन्धवंस' में 'अनागतवंस' के रचयिता का नाम कस्सप (काश्यप) कहा गया है।<sup>२</sup> 'गन्धवंस' के वर्णन के अनुसार 'अनागतवंस' पर एक अट्ठकथा भी लिखी गई, जिसके लेखक उपतिस्स (उपतिष्ठ) नामक भिक्षु थे। जूँकि कस्सप और उपतिस्स नाम के अनेक भिक्षु अनेक समयों में लंका और बरमा में हो गये हैं, अतः निश्चित रूप में यह कह सकना कठिन है कि कौन से कस्सप और उपतिस्स कमश 'अनागतवंस' के रचयिता और अट्ठकथाकार हैं। ज्ञान की वर्तमान अवस्था में यही जानना पर्याप्त है कि डॉ. गायगर ने 'अनागतवंस' के रचयिता कस्सप और 'मोहविच्छेदनी' और 'विमतिच्छेदनी' नामक दोन्हों के रचयिता कस्सप को एक ही व्यक्ति माना है।<sup>३</sup>

### तेलकटाहगाथा<sup>४</sup>

१८ गाथाओं में लिखी हुई एक परिष्कृत, प्रोड और रमणीय काव्य-रचना है। 'तेलकटाहगाथा' का अर्थ है (तौलते हुए) तेल की कढ़ाई में लिखी हुई गाथाएं।

१. हिस्ट्री ऑफ इंडियन लिटरेचर, जिल्ड दूसरी, पृष्ठ २२१, पद-संकेत १।

२. पृष्ठ ६१, ७२ (जनंल ऑफ पालि टैक्सॉट सोसायटी १८८६ में प्रकाशित संस्करण)

३. पालि लिटरेचर एंड सोसायेटी, पृष्ठ ३६

४. ई० आर० मुशर्रल द्वारा जनंल ऑफ पालि टैक्सॉट सोसायटी १८८४ में रोमन

(पालि इलोक) । ये गाथाएँ चौदह अनुश्रुति के अनुसार कल्पाणिय नामक भिक्षु के द्वारा लिखी गई थीं । अनुश्रुति है कि कल्पाणी (पेगू-नरमा) के राजा तिष्य (ई० पू० ३०६—ई० पू० २०७) ने उपर्युक्त भिक्षु को अपनी रानी के साथ किसी पद्धयन्त्र में सम्मिलित होने के सन्देह में बन्दी बना लिया था और खोलते हुए तेल को कडाई में डाल देने की आज्ञा दी थी ।<sup>१</sup> भिक्षु निरपराध थे, किन्तु यह असत्य दुःख उन्हें चढ़ना हो चड़ा । खोलते हुए तेल की कडाई में ही उनकी मृत्यु हो गई । किन्तु मृत्यु से पूर्व उन्होंने बृद्ध-गासन का चिन्तन किया और ९८ गाथाओं को गाया । ये गाथाएँ कथा हैं, सासार की अनित्यता, जीवन की असारता और वैराग्य को महत्ता पर नम्भीर प्रबन्धन हैं । उपर्युक्त अनुश्रुति में सत्याशा कितना है, यह कह सकता कठिन है । ही, स्वयं 'तिलकटाहगाथा' में इसका कोई उल्लेख नहीं है । किन्तु 'महावन' में इस कथा का निर्देश भिलता है ।<sup>२</sup> बाद में 'रसवाहिनी' में भी इस कथा का सविस्तर वर्णन किया गया है ।<sup>३</sup> सिहली ग्रन्थ 'सद्घम्मालंकार' में भी इस कथा का वर्णन मिलता है ।<sup>४</sup> सिहली साहित्य में यह कथा इतनी प्रसिद्ध है कि इसकी सत्यता पर सन्देह करना कठिन हो जाता है । फिर भी 'तिलकटाहगाथा' को मार्मिक गाथाओं को पढ़ जाने के बाद और कही भी उनमें उपर्युक्त घटना का निर्देश न पाने पर यही लगने लगता है कि यही भिक्षुकल्पाणिय ने खोलते हुए तेल बालों किसी विशेष कडाई से उत्तप्त होकर ही नहीं बल्कि इस 'महामोहमय' संसार रूपी उस खोलती हुई कडाई से व्यक्ति होकर ही अपने

अक्षरों में सम्पादित । इस ग्रन्थ का मूल पालि-सहित हिन्दी-अनुवाद त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित ने किया है, जो सन् १९४८ में पुस्तकाकार रूप में महाबोधि सभा, सारनाथ से प्रकाशित हो चुका है ।

१. मललसेकर : दि पालि लिटरेचर ऑब सिलोन, पृष्ठ १६२ ।

२. २२।१२-१३ (गायगर का संस्करण)

३. २।५७ (सिहली संस्करण)

४. देविये जनेल ऑब पालि टैक्स्ट सोसायटी, १८८४, पृष्ठ ४९; देविये गायगर : पालि लिटरेचर एंड लेखेज, पृष्ठ ४६, पद-संकेत ४ भी ।

अन्तर्मन को इन गाथाओं में प्रवाहित किया है, जिसके विषय में भगवान् भारतकार ने कहा है—

अस्मिन् महामोहमये कटहे सूर्यामिना राजिदिवेन्धनेन,  
मासतुं दर्वीपरिघट्टनेन भूतानि कालः पचतीति वार्ता ।

‘तेलकटाहगाथा’ शतक-काव्य की दौली पर लिखी गई रचना है । अतः उसमें नेतिक ध्वनि प्रधान है । फिर भी काव्यमयता का उसमें अभाव नहीं है । वह एक सुन्दर रचना है जो बृद्ध-धर्म के मूल सिद्धान्तों को एक भावनामय भिक्षु की पूरी तन्मयता और मार्मिकता के साथ उपस्थित करती है । १८ गाथाएँ १ वर्गों या भागों में विभक्त हैं, जिनके नाम हैं, (१) रत्नत्रय (तीन रत्न—बृद्ध, धर्म, संघ) (२) मरणानुस्तति (मरण की अनुस्मृति) (३) अनित्यलक्षण (अनित्यता का लक्षण) (४) दुक्ष्वलक्षण (५) अनात्म लक्षण (अनात्म का लक्षण) (६) असुभ लक्षण (७) दुष्चरित-आदीनवा (दुराचार के दुष्परिणाम) (८) चतुराचारवा (चार आरक्षाएँ) (९) पटिच्छ समुप्पाद (प्रतीत्य समुप्ताद) इस विषय-सूची से यह देखा जा सकता है कि बृद्ध-धर्म के सभी महत्वपूर्ण विषय इन गाथाओं में आ गये हैं । किन्तु सब से बड़ी बात तो ग्रन्थकार की अपने विषय के साथ तल्लीनता है, जिसके दर्शन प्रत्येक गाथा में होते हैं । अनात्म-सज्जा पर यह उकित देखिये—

पोसो यथा हि कदलीम् विनिव्युजन्तो,  
सारं तदपामपि नोपलभेय्य कार्म ।  
वन्धेम् पञ्चस् छळायतनेम् तेम्,  
सुञ्जस् किञ्चिदपि नोपलभेय्य सारं ॥ गाथा ६०

(जिस प्रकार केले के तने को उधेहते हुए मनुष्य उसमें कुछ भी सार न पाये, उसी प्रकार इन शून्य पंचस्तन्धों और छळायतनों में भी कुछ सार नहीं है)

प्रतिकूल-मनसिकार (गीता के शब्दों में ‘दुःखशोषणानुदर्शनं’) पर,

गंधूपमे विविधरोगनिवासभूते,  
काये सदा रघिरमुतकरोसपूणे ।

यो एत्य नन्दति नरो संसिगालभक्ते ,  
कामं हि सोचति परत्वं स बालवृद्धिः ॥गाथा ६९.

(जो मूर्ख आदमी फोड़े के समान, विविध वीमारियों के घर, खून, पेशाब और पालाना से भरे हुए, नीदहों के भव्य, इस वरीर को देखकर आनन्दित होता है, वह अबश्य ही यहाँ से जाकर परलोक में दुःख पाता है)

उपर्युक्त गाथाएँ 'तेलकटाहगाथा' की काव्य-नाम सुन्दरता का परिचय देने में अल्प है। प्रथम बार पढ़ने पर ही उनमें भट्टहारि के वैराग्य-सम्बन्धी पदों का सा निवेद प्रकाशित होने लगता है। भाषा और शैली की दृष्टि से इस तीसरी गाथा को देखिये—

सोपानमालं अमलं	तिदसालयस्स
संसारसागरसमृतरणाय	सत् ।
सव्वागतीभय	विवज्जितखेममम्,
धम्मं नमस्तथ तदा मुनिता पणीतं ॥	

मुनि (बुद्ध) द्वारा प्रणीत उस धर्म की बचना करो, जो स्वर्ग की विमल तीक्ष्णी के समान है, जो संसारखणी सामर को तरने के लिये पुल के समान है और जो सम्पूर्ण आपत्तियों और भयों से रहित एवं कल्याण का मार्ग है।

'सोपानमालं अमलं' एवं 'संसारसागरसमृतरणाय' जैसे पदों में अनुप्राप्त की छठा तो देखने ही योग्य है, 'सव्वागतीभयविवज्जितखेममम् धम्मं नमस्तथ तदा मुनिता पणीतं' तो विलकुल संस्कृत श्लोक का अश सा ही जान पड़ता है। संस्कृत का यह बड़ता हुआ प्रभाव 'तेलकटाहगाथा' की वासेषिक अर्वाचीनता का सूचक है। विटरनित्त ने कहा है कि यह ग्रन्थ बारहवीं शताब्दी ईसवी ने पूर्व को रचना नहीं हो सकता।<sup>१</sup> कम से कम ई० पू० तीसरी शताब्दी की रचना तो 'तेल कटाहगाथा' मानी ही नहीं जा सकती। किर भी भाषा और शैली का साक्ष

१. हिस्ट्री ब्रॉव इंडियन लिटरेचर, जिल्ड द्वासरी, पृष्ठ २२३; गायगर ने इस ग्रन्थ का वास्तविक रचना-काल अज्ञात भान्ते हुए तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी की रचनाओं में इसका उल्लेख किया है। देखिये उनका पालि लिटरेचर एंड लॉबेज, पृष्ठ ४६

किसी भी अवस्था में इतना दृढ़ और अन्तिम नहीं हुआ करता कि उसके आधार पर हम किसी गन्ध की तिथि असंदिग्ध रूप से निश्चित कर सकें। अतः विटर-नित्ज द्वारा निश्चित बारहवीं शताब्दी ईसवी भी 'तेलकटाहगाया' की प्रामाणिक रचना-तिथि नहीं मानी जा सकती। विटरनित्ज की स्वापना केवल अनुमान पर आधित है। जब तक कोई और महत्वपूर्ण बाह्य साक्ष न मिले, 'तेलकटाहगाया' के रचयिता और रचना-काल का सुनिश्चित ज्ञान हमारे लिये अज्ञात ही रहेगा।

### जिनालङ्कार'

पालि काव्य-साहित्य की उसी कोटि की रचना है जिस कोटि के संस्कृत में किरातार्जुनीय और विशुपाल-वध जैसे महाकाव्य हैं। काव्य-चमत्कार की प्रवृत्ति यही बहुत अधिक उपलक्षित होती है और शैली में भी पर्याप्त कृतिमता है। 'जिनालङ्कार' की रचना बारहवीं शताब्दी में बुद्धरक्षित (बृद्धरक्षित) नामक भिक्षु के द्वारा हुई। प्रथ का विषय ज्ञान-प्राप्ति तक बुद्ध-जीवनी का वर्णन करना है। गन्ध के अन्त में लेखक ने उसका रचना-काल बुद्ध-परिनिवारण से १७०० वर्ष बाद दिया है।<sup>१</sup> इसका अर्थ यह है कि इसकी रचना ११५६ ई० में हुई। यह तिथि विद्वानों को मान्य है। उत्तरकालीन संस्कृत काव्यों की शैली का इस गन्ध पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। एक पश्च में सिफ़ 'नू' व्यंजन का ही प्रयोग किया गया है। यह प्रवृत्ति किरातार्जुनीय जैसे संस्कृत-काव्यों में भी दृष्टिगोचर होती है। इस प्रकार के चमत्कारमय प्रयत्न जाहं भाषा सम्बन्धी विद्वत्ता के परिणाम भले ही हों, किन्तु संस्कृत काव्य-विवेचकों ने उन्हें 'अधर्म काव्य' ही माना है। यही बात हम 'जिनालङ्कार' की इस प्रवृत्ति के सम्बन्ध में भी कह सकते हैं। सम्पूर्ण गन्ध में २५० गाथाएँ हैं। गन्ध की मुख्य विशेषता उसकी कृतिम शैली, पौराणिक अतिरंजनासमीकृतान्तर्गताली

- 
१. जेम्स पे द्वारा अंग्रेजी अनुवाद सहित रोमन लिपि में सम्पादित (लन्दन १८९४)। तिहली लिपि में इस गन्ध का दीर्घकर और धम्पाल का उत्कृष्ट संस्करण (गैले, १९००) उपलब्ध है।
  २. पृष्ठ २७१ (ये का संस्करण); देलिये गन्धवंस, पृष्ठ ७२ (मिन्येफ़ द्वारा सम्पादित); सद्गमसंग्रह १२१ (सद्गमन्द द्वारा सम्पादित)

एवं विद्वता -प्रदर्शक प्रवृत्ति ही है । महायानी प्रभाव भी कहीं कहीं उपलक्षित है । बुद्धरचित ने अपने इस गम्भीर पर एक टीका भी लिखी थी । 'जिनालंकार' नाम का एक अन्य गम्भीर भी है, जिसकी रचना प्रसिद्ध अट्टकब्राकार बुद्धदत्त (बौद्ध भगतावदी ईसवी) ने की थी । प्रस्तुत 'जिनालंकार' से वह भिन्न है । 'गम्भवंस' के वर्णनानुसार बुद्धदत्त द्वारा लिखित 'जिनालंकार' पर बुद्धरचित ने एक टीका भी लिखी थी ।<sup>१</sup> कुछ भी हो, हमें उपर्युक्त दोनों रचनाओं को मिलाने की गलती नहीं करनी चाहिये ।

### जिनचरितः

'जिनालंकार' के समान 'जिनचरित' का भी विषय बुद्ध-जीवनी का वर्णन करता है । 'जिनालंकार' में, जैसा कहर कहा जा चुका है, सम्बोधि प्राप्ति तक बुद्ध-जीवनी का वर्णन किया गया है । किन्तु 'जिनचरित' में भगवान् बुद्ध के उपदेश-कार्य का भी वर्णन किया गया है और उनके ४५ वर्षोंवासों का व्याप्रेरवार वर्णन किया गया है । जहाँ तक विषय-वस्तु का सम्बन्ध है, 'जिनचरित' में कोई नवीनता नहीं है । बुद्ध-जीवन के विषय में उसने कोई नई बात हमें नहीं बताई है । उसके मारे वर्णन जातक-निदानकथा पर आधारित है । एक हृद तक तो वह जातक निदान-कथा का छन्दोवच्छ संस्करण ही जान पड़ता है । चालस डुरोइसिल का यह कथन ठीक है कि जहाँ कवि इस अन्यानुकरण में बच सका है और उसने अपनी प्रेरणा से लिखा है, वहीं उसके काव्य में कुछ रसात्मकता भी आ सकी है ।<sup>२</sup> यद्यपि काव्य-गृणों की दृष्टि से 'जिनचरित' की 'बुद्ध-चरित' से कोई तुलना नहीं की जा सकती, किंतु भी यह कहना ठीक है कि पालि-साहित्य में 'जिन-चरित' का वही स्थान है जो बीद संस्कृत साहित्य में 'बुद्धचरित' का । 'जिन-

१. पृष्ठ ६९, ७२ (मिनयोफ द्वारा सम्पादित, जनेल और पालि टैक्स्ट सोसायटी, १८८६)

२. उक्तपृष्ठ १८० छोरो राउद्रा द्वारा जनेल और पालि टैक्स्ट सोसायटी, १९०४-०५ में अंग्रेजी अनुवाद-सहित सम्पादित । चालस डुरोइसिल द्वारा भी अंग्रेजी-अनुवाद सहित रोमन लिपि में सम्पादित, रंगून १९०६ ।

३. जिनचरित (चालस डुरोइसिल द्वारा सम्पादित) पृष्ठ १-२ (भूमिका)

'चरित' पर संस्कृत काव्यों का भी कुछ प्रभाव पड़ा है। चालते दूरोधिसिल ने 'जिन-चरित' पर अश्वघोष और कालिदास के प्रभाव की आत कही है। उन्होंने 'जिन-चरित' और 'महाभारत' की कुछ पंक्तियों की भी तुलना की है।<sup>१</sup> यह सम्बन्ध है कि 'जिनचरित' के रचयिता को संस्कृत काव्यों की जानकारी रही हो और उससे उन्होंने लाभ उठाया हो, किन्तु काव्य-जैली के लिए वे संस्कृत काव्यों के 'कृणी' नहीं कहे जा सकते। उहाँ तक 'जिनचरित' के खोतों का सवाल है, हमें संस्कृत काव्यों की ओर नहीं जाना चाहिए। जैसा डा० लाहा ने कहा है, जाता-साहित्य और मृत्त-निपात के नालाकान्मृत ऐसे सुतों की गाथाएं 'जिनचरित' के लिए सबोत्तम नमूने हो सकते थे।<sup>२</sup> इतना ही नहीं, कालिदास के पूर्ववर्ती अश्वघोष को भी इन खोतों में अपने जाव्य-जैली के निवरण में पर्याप्त प्रेरणा मिली हांगी, ऐसा हम मान सकते हैं। 'जिनचरित' के विषय और शैली के खोत मूलतः पालि साहित्य में है, संस्कृत साहित्य में नहीं।

'सद्गम संग्रह'<sup>३</sup> और 'गन्धवंस'<sup>४</sup> के वर्णनों के अनुसार 'जिनचरित' के रचयिता का नाम मेघकर था। मेघकर नाम के अनेक व्यक्तियां सिहल में हो चुके हैं।<sup>५</sup> प्रस्तुत मेघकर 'वनरतन नेघकर' के नाम से प्रसिद्ध है। उपर्युक्त खोतों के अनुसार वनरतन नेघकर लकापिद-भूखनेकथात् प्रवर्थ (१२७३ ई०—१२८८ ई०) के समकालीन थे। डी० इलम० रायर डेविड्स<sup>६</sup> और विन्टरनिस्ट्ज<sup>७</sup> ने उनके इसी बाल की प्रामाणिक माना है। किन्तु गायगढ़ का दूसरा भर है। 'गन्धवंस' में मेघकर का उल्लेख

१. उचाहरणः जिनचरित—कोर्य सवको नु खो छाइा मारो नामो ति आदिना।

महाभारत—कोउं देवोऽप्यवा यक्षो गन्धवो वा भविष्यति।

(वन-पदं)

२. हिस्ट्री ऑब पालि लिटरेचर, जिन्द दूसरी, पृष्ठ ६१५

३. सद्गमसंग्रह, पृष्ठ ६३ (जनेल ऑब पालि टैक्सट सोसायटी, १८८६)

४. गन्ध वंश, पृष्ठ ६२, ७२ (जनेल ऑब पालि टैक्सट सोसायटी, १८८६)

५. वेलिये जनेल ऑब पालि टैक्सट सोसायटी १९०४-०५, पृष्ठ २; विजम सिह-केटेलांग पृष्ठ २१, ३५, ११९

६. वेलिये जनेल ऑब पालि टैक्सट सोसायटी, १९०४-०५, पृष्ठ चार में डा० डी० इलम० रायर डेविड्स का 'नोट ऑन मेघकर'

७. हिस्ट्री ऑब इन्डियन लिटरेचर, जिन्द दूसरी, पृष्ठ २२४

बाचिस्तर, सुमगल और घस्मकिति के बाद किया गया है। अतः गायगर ने वह अनुमान लगाया है कि वे भी उपर्युक्त भिक्षुओं के समान मिहली स्वविर सारिपुत्र के शिष्य थे। 'जिनचरित' के अन्तिम पद्धों में लेखक ने कहा है कि उन्होंने इस अन्ध की रचना राजा विजयबाहु द्वारा निर्मित परिवेण में की। गायगर ने इससे अनुमान किया है कि यहाँ लेखक को लंका का राजा विजयबाहु तृतीय (१२२५ ई०—१३०५ ई०) अभिप्रेत था। उन्होंने आगे यह भी अनुमान किया है कि विजयबाहु तृतीय मेघकर का समकालीन था, क्योंकि उसी हालत में उसकी प्रशंसा का कुछ अर्थ हो सकता है। इतने अनुमानों के बाद गायगर ने यह निष्कार्य निकाला है कि मेघकर विजयबाहु तृतीय के समकालीन और भिक्षु सारिपुत्र के शिष्य थे। उन्होंने मेघकर और बाचिस्तर का एक ही समय माना है।<sup>१</sup> जहाँ इतने अनुमानों के लिए अवकाश है वहाँ हमें यह भी आश्चर्य नहीं करना चाहिए कि डुरोइसिल ने उपर्युक्त विजयबाहु को विजयबाहु द्वितीय माना है जो सन् ११८६ ईसवी में गढ़ी पर बैठा था और जो लका के प्रसिद्ध राजा पराक्रमबाहु का उत्तराधिकारी था।<sup>२</sup> विजयबाहु से तात्पर्य हम चाहे किसी विजयबाहु से ले, 'जिनचरित' के लेखक ने तो निर्ददना कहा है कि विजयबाहु द्वारा निर्मित परिवेण में उसने 'जिनचरित' की रचना की। अतः समकालीनता का आरोप इतना आवश्यक नहीं जान पड़ता। इसलिए 'गन्धवंस' और 'सद्गमसंग्रह' के वर्णन, जो मेघकर को भुवनेकबाहु प्रथम (१२७३ ई०—१२८८ ई०) के समकालीन बललाले के पद्धताती है, 'जिनचरित' के वर्णन के विरोधी नहीं कहे जा सकते। अतः मेघकर को भुवनेकबाहु प्रथम (१२७३ ई०—१२८८ ई०) का ही समकालीन मानना अधिक युक्तिपूर्व जान पड़ता है।

### पञ्जमधु<sup>३</sup>

१०४ गायाओं में शतक डंग की रचना है। बुद्ध-स्तुति इसका विषय है। प्रथम ६९ गायाओं में बृहु की सुन्दरता का वर्णन है, शेष में उनके ज्ञान की प्रशंसा है। घोलों कृत्रिम और काल्पोचित रसात्मकता से रहित है। कम से कम जाने नाम (पञ्जमधु-गण्यमय) को वह सार्थक नहीं करती। संस्कृत का बड़ता हुआ प्रभाव भी

१. पालिलेखेज एंड लिटरेचर, पृष्ठ ४२ ।

२. जिनचरित (डुरोइसिल का संस्करण, रंगून १९०६) पृष्ठ ३ (भूमिका)

३. गुणरत्न द्वारा जनंल औंव पालि टैक्सट सोसायटी १८८७ पृष्ठ १-१६ में सम्प्रदित; देवमित द्वारा भी सम्पादित, कोलम्बो १८८७ ।

उसका एक विशेष लक्षण है। 'पञ्जमधु' बुद्धिप्रिय (बुद्धिप्रिय) नामक स्थविर की रचना है, जो स्थविर वंदेह (वंदेह थेर) के समकालीन लिहली भिक्षु थे। 'पञ्जमधु' की १०३ वर्णी नाया में कवि-भिक्षु ने अपना परिचय देते हुए, अपने को आनन्द का शिष्य बताया है।<sup>१</sup> आनन्द स्थविर वंदेह स्थविर के मूरु थे। अतः वंदेह स्थविर के साथ बुद्धिप्रिय का समकालिक होना निश्चित है। इसलिए इनका काल भी वंदेह स्थविर के साथ तेरहवीं शताब्दी ही होना चाहिए, यह निश्चित है।<sup>२</sup> सम्भवतः यही 'बुद्धिप्रिय' 'स्थपतिद्वितीय' के रचयिता भी हैं। उस रचना के अन्त में उन्होंने अपना नाम बुद्धिप्रिय 'दीपकर' बताया है और अपने को आनन्द स्थविर का शिष्य कहा है। अतः दोनों का एक व्यक्ति होना असम्भव नहीं है।

### सद्भमोपायन<sup>३</sup>

६२९ गावाओं में सद्भम के उपाय अथवा बुद्ध-धर्म के नैतिक मार्गों का वर्णन है। विषय नवीन न होते हुए भी शैली में पर्याप्त ओज और मीलिकता है। घन्य को दो मुख्य भागों में बाटा जा सकता है, (१) दुराचार के दुर्लिङ्गाम (२) सदाचार की प्रवर्णसा या उसके सुपरिणाम। इसके साथ साथ बुद्ध-धर्म के प्रायः सभी मीलिक सिद्धान्तों का समावेश इस प्रन्थ के अन्दर हो गया है, जिसे अत्यन्त प्रभावशाली भी इननशील ढंग से कवि ने उपस्थित किया है। पाप-दुष्परिणाम, पृथ्य-फल, दान-प्रसंसा, शील-प्रवर्णसा, अ-प्रमाद आदि के काव्यमय वर्णन काफी अच्छे हुए हैं। पर्यवर्द्ध होते हुए भी 'सद्भमोपायन' के विवेचन इस विषय-सम्बन्धी शब्द-पाठों से अच्छी तरह मिलाये जा सकते हैं। उनको काव्य-मय रूप देने में और साथ ही

१. आनन्दरङ्गा रत्नादिभग्नपतिन्दा निक्षेपयुद्धं पदुभिष्य सेवि नंगी। बुद्ध-प्रियेन घनबुद्धगुणप्रियेन येरालिना रजितपञ्जमधु पिवन्तु ॥

२. मिलाइये गायमर: पालिलिटरेचर एंड लेवेज, पृष्ठ ४४, ५१, विटरनिरस्तः हिस्ट्री ऑफ इंडियन लिटरेचर, जिस्ट डूसरो, पृष्ठ २२३; गुणरत्न ने बुद्धिप्रिय का काल सन् ११०० ई० के लगभग बताया है। देखिये जर्नल ऑफ पालिटेक्सट सोसायटी, १८८७, पृष्ठ १।

३. ई० मार्टिस द्वारा जनरल ऑफ पालिटेक्सट सोसायटी, १८८७, पृष्ठ ३५-१८ में सम्पादित।

उत्तरका विचाराभक्त अंत अनुभग रखते में कवि को पर्याप्त लफलता मिली है। यस्य के शारि मेर्कवि ने अपना नाम बहुचारी सोमपिण्ड बताया है 'नामगो बुद्धोमस्मि भिसते बहुचारिनो'। इनके विषय में अधिक कुछ जान हमें नहीं है, किन्तु पह निश्चित है कि ये तिहाली भिसु थे । और इनका काल भी बारहवीं-ते रहवीं शताब्दी के बासपास ही होना चाहिए ।

### पञ्चगतिदीपन<sup>१</sup>

११५ गावाओं में उन पाँच गतियों या योनियों का वर्णन है जिन्हे प्राणी अपने भले दा दुरे कांडिक, यांडिक और मानसिक कमों के कारण प्राप्त करते हैं, यथा नरक-योनि, पशु-योनि भूत-प्रेतादिकी योनि, मनुष्य-योनि और देव-योनि । वर्णन अत्यन्त सरल और स्वानाविक एवं प्रसादगुणमय होते हुए भी यह सच्चाता अत्यन्त सावारण कोटि ती ही भासी चायथी । स्वर्ग-नरक के वर्णन बाष्य के अच्छे विषय बनाये ही नहीं जा सकते, उनमें नैतिक तत्त्व चाहं जितना भी गहरा हो । वास्तव में दुःख से भी स्वर्ग के प्रलोभन या नरक के भयके कारण अपने नातिवाद का उपदेश नहीं दिया जा । उनके नैतिक आदर्शवाद की यही तो एक विशेषता थी । वहाँ विशुद्धि का भाव अपने आप में एक आचरणार्थ बस्तु थी । ब्रह्मचर्य का कथा उद्देश्य होना चाहिए, इसे शास्त्र ने अनेक बार स्पष्ट कर दिया था । किन्तु लोक-यम् इसे कब नुस्खा है? वही तो भय या पारितोषिक का प्रलोभन होना ही चाहिए । कल्पतः अशोक वो ही हम अपनी जनता को स्वर्ग-प्राप्ति के उद्देश्य से वृभ-कर्म करने के लिए प्रेरणा करते हुए देखते हैं । यह नितान्त स्वानाविक भी है । बुद्ध-मन्तव्य इसमें बहुत अधिक ऊँचा था । उसे लोक-यम् की भूमि पर ला कर अर्थात् लोक-विद्वासों का उसमें समावेश कर, उसके नैतिक तत्त्व की व्याख्या का प्रारम्भ हम स्वयं सुन्त-पिटक के कुछ ज्ञानों में ही देखते हैं । बाद में कुछ जातकों और पेतवथ्य जैसे घट्यों में तो वह बहुत ही स्फुट हो गया है । महायान-नारद्याम में जिस विस्तार के साथ स्वर्ग-नरक के वर्णन मिलते हैं, वह तो निश्चय ही एक आकर्षण की बस्तु है । निश्चय ही इस प्रकार के बीदु-वर्णनों में चाहे वे स्पविरवादियों के हों, चाहे अन्य संप्रदायों के, पुराणों (वि-

१. लियोन फिलर द्वारा जनेल और पाल्स्टेन्स्ट सोसायटी, १८८४, पृष्ठ १५२-६१ में सम्पादित ।

**विशेषतः** बहुपाण्डि, भाकीडेल, पद्मपुराण आदि) के इस विषयक वर्णनों से कुछ भी विशेषता नहीं है। किसी युग में जब मनुष्य अधिक विश्वास करने की क्षमता रखता हो तो इन सब का चाहे भले ही उपयोग रहा हो, किन्तु आज तो ये सभी मनुष्यान्तर्गत व्यवितरणों के लिए विश्वास करने की क्षमता रखता हो चुके हैं, इसमें सन्देह नहीं। **स्वभावतः** 'पञ्चगतिदीपन' भी इसका अपवाद नहीं। प्रारंभ में ही कम से कम आठ प्रकार के नरकों का वर्णन किया गया है, यथा संजीव, काल-सूत्र (कालसूत्र) संघात, रौरव, (रोरव) महा रौरव (महारोरव) तप, महातप और अर्चाचि। इनकी यातनाओं का वर्णन तो निश्चय ही रोमांचकारी है। केवल महत्वपूर्ण भाग वह है जहाँ नाना-प्रकार के पाप-कर्मों के परिणाम-स्वरूप वही जाना दिखलाया गया है। इसके अलावा इस घन्थ में अन्य कुछ जातव्य नहीं हैं। तुलनात्मक पौराणिक तत्व के विचारों के लिए 'पञ्चगति-दीपन' में प्रभुत सामर्थी मिल सकती है, इसमें सन्देह नहीं। इसके रचयिता या उसके काल के सबध में कुछ जात नहीं है।

### लोकपूर्वीपसार या लोकदीपसार<sup>१</sup>

इस ग्रन्थ की विषय-वस्तु 'पञ्चगतिदीपन' के समान ही है। 'शासनवंत'<sup>२</sup> के वर्णनानुसार मह चौदहवी शताब्दी के बर्मी भिक्षु मेथंकर की रचना है, जिन्होंने अध्ययनार्थ सिहल में प्रवास किया था<sup>३</sup>। पांच प्रकार की योनियों का वर्णन करने के अतिरिक्त यहाँ आस्थानों के द्वारा उनमें निहित नैतिक उपदेशों को समझाया भी गया है। 'भाववंत' से इस घन्थ में कानून सामग्री ली गई है। अन्य कुछ काव्यगत विशेषता इस घन्थ की नहीं है।

### पालि आस्थान: रसवाहिनी<sup>४</sup>

उत्तरवाल्लीन पालि-साहित्य में गद्य-वच मिलित कुछ आस्थानों की भी रचना

१. वेलिये मेविल बोड़पालि लिटरेचर ऑफ बरमा, पृष्ठ ३१।

२. मेविल बोड़पालि लिटरेचर ऑफ बरमा, पृष्ठ ३५।

३. सिहली लिपि में सरणतिस्त द्वारा दो भागों में सम्पादित, कोलम्बो १९०१

एवं १८९९; उसी लिपि में सिहली व्यालया सहित देवरक्षित द्वारा सम्पादित, कोलम्बो १९१७।

हुई । नेतिक छवनि की प्रवानता के अतिरिक्त इन सब को एक बड़ी विशेषता यह है कि इन्होंने जातक, अर्थकथाओं और कुछ अंग तक 'महावंश' जादि से पर्याप्त सामग्री ली है । पालि आल्यानों में 'रसवाहिनी' का नाम अधिक प्रसिद्ध है । मौलिक रूप में यह सिहली भाषा की रचना थी । महाविहारवासी रद्धपाल (राष्ट्रपाल) नामक स्थविर ने इसका प्रथम पालि रूपान्तर किया । बाद में प्रसिद्ध सिहली भिथु वैदेह स्थविर (वैदेह येर) ने इसको शुद्ध कर इसे नवोन रूप प्रदान किया । अतः 'रसवाहिनी' का कतुत्व वैदेह स्थविर के नाम के साथ ही संबंध हो गया है । वैदेह स्थविर का काल निश्चित रूप ने तेरहवीं शताब्दी हो माना जाता है<sup>१</sup>, यथापि कुछ विद्वान् उसे नौवहवीं शताब्दी मानने के भी पश्चाती हैं<sup>२</sup> । सभवतः तेरहवीं शताब्दी के अंतिम और चारदहवीं शताब्दी के मध्य भाग में वे जीवित थे । वैदेह स्थविर का जन्म विप्रपाल (विष्णगाम) के एक ब्राह्मण-बैश में हुआ था । बाद में उन्होंने बौद्ध धर्म में प्रविष्ट होकर प्रवृज्या ले ली थी । उनके गृह प्रसिद्ध सिहली भिथु आनन्द स्थविर थे, 'जो अरण्यायतन' (अरञ्जायायतन-अरण्यवासी) भी कहलाते थे । वैदेह स्थविर ने भी स्वयं अपने को 'वनवासी' संप्रदाय का अनुयायी बतलाया है<sup>३</sup> । इन्हीं को रचना 'समन्तकूटवण्णना'<sup>४</sup> नामक कविता भी है जिसमें वृद्ध के जीवन और विशेषतः उसके तीन बार लंकान्मत तथा उनके भरण (थीपद) चिन्ह द्वारा अंकित समन्त-कूट पर्वत का भी वर्णन है । इस ग्रन्थ में ३१६ पालि वृत्त है । किन्तु इनकी अधिक प्रसिद्ध रचना 'रसवाहिनी' ही है । 'रसवाहिनी' १०३ आल्यानों का संग्रह है । इनमें प्रथम ४० के देश और परिस्थिति का चित्रण भारत (जम्बुदीप) में और शेष ६३ का लंका में किया गया है । कहानियाँ प्रायः गद्य में हो हैं, किन्तु बीच-बीच में कहीं कहीं गायात्रक अंश का भी छिटका दिखाई देता है । भाषा की दृष्टि से यह उत्तमी सफल रचना नहीं

१. गायगर-पालि लिटरेचर एंड लेंग्वेज, पृष्ठ ४३ पद-संकेत २; विटरनित्या: हिस्ट्री आंव इंडियन लिटरेचर-जिल्ड दूसरी, पृष्ठ २२४ ।
२. देखिये विमलाचरण लाहा: हिस्ट्री आंव पालि लिटरेचर, जिल्ड दूसरी, पृष्ठ ६२५
३. मललसेकर: दि पालि लिटरेचर आंव सिलोन, पृष्ठ २१० ।
४. सिहली अनुवाद सहित सिहली लिपि में घम्मानन्द और जाणिस्सर (जानेश्वर) द्वारा सम्पादित, कोलम्बो, १८९० ।

कही जा सकती । किन्तु आल्यानात्मक कला के पर्याप्त दर्शन इस सुन्दर रचना में होते हैं । नैतिक उपदेश की प्रधानता होते हुए भी अनेक कहानियों कलात्मक दृष्टि से भी बहुत महत्वपूर्ण हुई है । कृतज्ञ पशु और अकृतज्ञ मनुष्य की कहानी तो निश्चय ही विश्व-साहित्य की एक संपत्ति है । जातक, अपदान, पालि अटठकथाएँ और महावेश की पृष्ठभूमि में लिखा हुआ यह यन्य निश्चय ही भारतीय आल्यान-साहित्य का एक महत्वपूर्ण रूप है । कुछ कहानियों के देशकाल को भारत और कुछ को लंका में रखकर, सिंहली और पालि दोनों भाषाओं में विरचित यह यन्य उक्त दोनों देशों की अभिन्न सांस्कृतिक और धार्मिक एकता को एक सुन्दर कलात्मक रूप में उपस्थित करता है । यह है कि इस ग्रन्थ का अभी कोई नामरो-संस्करण या हिन्दी अनुवाद प्रकाशित नहीं हुआ । दोनों देशों के सांस्कृतिक संबंध और विशेषतः भारतीय साहित्य के सिंहली साहित्य पर प्रभाव के अध्ययन के लिए इस यन्य का पारायण अत्यन्त आवश्यक है । बुद्ध-पूजा का तत्त्व इस यन्य की कुछ कहानियों में घटित होता है, जो इस संबंधी महायानी प्रवृत्ति या भारतीय भित्तिवाद के प्रभाव का सूचक हो सकता है । 'रसवाहिनी' की एक 'रसवाहिनोगण्डि' नामक पालि-टीका भी लिखी गई । सिंहली भाषा में इसका शब्दश: अनुवाद भी मिलता है । उस भाषा में इस विषय-संबंधी अन्य भी प्रभृत साहित्य है ।

### बुद्धालङ्कार

१५ वीं शताब्दी के आवा (वरमा)-निवासी शीलवंस (नोलवंस) नामक भिक्षु की रचना है<sup>१</sup> । यह यज्ञबद्ध है । निवास-कथा की सुमेह-कथा पर यह आधारित है । अन्य कुछ ध्यान इन योग्य विशेषता इसमें नहीं है ।

### सहस्रवच्युपकरण

इस यन्य में एक हजार कहानियों का संघ है । संभवतः 'रसवाहिनी' का यही आधार था<sup>२</sup> । कम से कम इन दोनों का संबंध तो स्पष्ट ही है । वरमा से ही इस यन्य का लंका में प्रचलन हुआ । किन्तु संभवतः यह मौलिक रूप में लंका में ही लिखा गया था । इस यन्य की 'सहस्रवच्युपकरण' नामक

१. मेविल बोड़ : दि पालि लिटरेचर ऑव वरमा, पृष्ठ ४३

२. मललसेकर : दि पालि लिटरेचर ऑव सिलोन, पृष्ठ १२९

एक टीका भी भी विस्तार उल्लेख कर्ता वार महावंश-टीका (म्यारहवी-नेरहवी शताव्दियों के बीच रचित) में किया गया है।

### राजाधिराजविलासिनी

१८ वीं शताव्दी के वरमी राजा बोदोग्या (बृद्धप्रिय) को प्रारंभना पर लिखा गया एक गद्य-ग्रन्थ है। इसकी कहानियों का आधार प्रधानतः जातक ही है, यथापि अट्ठकथा तथा वश-नाशहित्य से भी लेखक ने पर्याप्त सामग्री ली है। संस्कृत के व्याकरण और ज्योतिष वास्त्र से भी लेखक का पर्याप्त परिचय था, यह नीं उसके विद्वत्तामय वर्णनों से विदित होता है<sup>१</sup>।

उपर्युक्त ग्रन्थों के अतिरिक्त कुछ अल्प महत्व के भी ग्रन्थ कव्य-नाशहित्य पर इस उत्तरकालीन युग में लिखे गये। इनकी प्रेरणा का मुख्य आधार जातक ही रहा, यह तो निश्चित ही है। इस प्रकार पन्द्रहवीं शताव्दी में आवा (वरमा) निवासी रट्ठसार ने कुछ जातकों का परवर्द्ध अनुवाद किया<sup>२</sup>। तिपिटकालिकार ने १६ वीं शताव्दी में वेस्सन्तर जातक का परवर्द्ध अनुवाद किया<sup>३</sup>। अठारहवीं शताव्दी में 'गालालकारवत्यु' नामक बृद्ध-जीवनी भी किसी वरमी भिन्न ने लिखी<sup>४</sup>। जातक-अट्ठकथा और वंश-नाशहित्य के बाद इस दिशा में भीलिक कुछ नहीं किया गया, मह हम इस सब कव्य-नाशहित्य के गवेशण स्वरूप कह सकते हैं।

### पालि का व्याकरण-नाशहित्य: उसके तीन सम्प्रदाय

पालि-नाशहित्य के इतिहास में व्याकरण का विकास बहुत बाद में चलकर हुआ। बृद्धदत्त, बृद्धघोष और घम्मगाल के समय तक अर्थात् पाँचवीं शताव्दी ईसवीं तक हमें किसी पालि-व्याकरण या व्याकरणकार का पता नहीं चलता।

१. नेचिल बोड : दि पालि लिटरेचर ऑब वरमा, पृष्ठ ७८

२.०३. नेचिल बोड : दि पालि लिटरेचर ऑब वरमा, पृष्ठ ४३-५३

४. इस ग्रन्थ का विशेष विग्रहेट ने अंग्रेजी अनुवाद भी किया है। देखिये सेकेन्डवुक्स ऑब दि ईस्ट, जिल्ड ११, पृष्ठ ३२ (भूमिका) में डा० रायस डेविल्स द्वारा प्रदत्त सूचना।

जहाँ तक जात हुआ है आचार्य बुद्धोपने भी अपनी व्याख्याओं में किसी प्राचीन पालि व्याकरण का आत्रयन लेकर पाणिनीय अवलोध्यायी का ही किया है। 'विसुद्धिमग्न' में उनके द्वारा की हुई 'इन्द्रिय' शब्द की व्याख्या इसका सर्वोत्तम उदाहरण है। 'विसुद्धिमग्न' के मोलहवे परिच्छेद 'इन्द्रियसच्च निर्देशी' (इन्द्रिय और सत्य का निर्देश) में जाता है "को पन नेम इन्द्रियट्ठो नामाति ? इन्द्रियमद्ठो इन्द्रियट्ठो, इन्द्रियमित्ठो इन्द्रियट्ठो, इन्द्रियद्ठो इन्द्रियट्ठो, इन्द्रियिट्ठो इन्द्रियट्ठो, इन्द्रियमृद्ठो इन्द्रियट्ठो" ॥। निष्क्रिय ही यहा पाणिनीय अवलोध्यायी व्याकरण का यह सूत्र प्रतिष्ठित है "इन्द्रिय इन्द्रियिर्ग, इन्द्रियष्ट, इन्द्रियवृष्ट, इन्द्रियमृद्ठ, इतिवा" (५। २। ९३) । इसी प्रकार पाणिनीय सूत्र ३। ३। १। ३। १ सुत्तनिगात की अट्ठकथा<sup>१</sup> में प्रतिष्ठित हुआ है। दोनों निष्क्रियायां आपन में शब्दः इतनी मिलती है कि आचार्य बुद्धोपने पाणिनीय व्याकरण का आधेय किया है, इस निष्क्रिय का प्रतिवाद नहीं किया जा सकता<sup>२</sup> । इसी प्रकार पाणिनि ने 'आपत्ति' शब्द का प्रयोग 'प्राप्ति' के अर्थ में किया है। आचार्य बुद्धोपने इस विषय में भी उनका अनुसरण कर इस शब्द का उसी अर्थ में प्रयोग 'समलापासादिका' (विनय-पिटक की अट्ठकथा) में अनेक बार किया है<sup>३</sup> । यहा इमाना यह कहना है कि यह प्रयोग पाणिनीय व्याकरण के प्रभाव-स्वरूप उतना नहीं भी माना जा सकता, क्योंकि पालि-विपिटक के स्वयं 'लोत आपत्ति' शब्द में यह प्रयोग नकला हुआ है। यह सम्भव है कि पालि और संस्कृत

१. विसुद्धिमग्न १६४ (धर्मानन्द कोसम्बी द्वारा सम्पादित वेच नामी संस्करण)

२. जिल्डपहली, पृष्ठ २३ (पालि टैक्स्ट सोसायटी का संस्करण); इसी प्रकार विसुद्धिमग्न ७। ५। ८ (कोसम्बी जी का संस्करण) में "वस्त्राम्भो वल्लविपरियो" अस्तरशः 'काशिका' का उद्धरण है, जिसे बुद्धोपने प्राचीन संस्कृत-व्याकरण की परम्परा से लिया है।

३. इस मत की स्थापना बड़ी योग्यता के साथ डा० विमलाचरण लाहा ने की है। वेलिये उनका 'दि लाइक एंड वर्क ऑफ बुद्धोपन', पृष्ठ १०४-१०५; हिस्ट्री ऑफ पालि लिटरेचर, जिल्ड दूसरी, पृष्ठ ६३२-६३; मिलाइये जनेल ऑफ पालि टैक्स्ट सोसायटी, १९०६-०७, पृष्ठ १७२-७३ ।

४. 'दि लाइक एंड वर्क ऑफ बुद्धोपन', पृष्ठ १०५; हिस्ट्री ऑफ पालि लिटरेचर, जिल्ड दूसरी, पृष्ठ ६३३ ।

का विकास समकालिक होने के कारण पाणिनीय व्याकरण में कुछ ऐसे प्रयोग भी बृद्धिगोचर होते हों जो उस समय की साहित्यिक भाषा (संस्कृत) और लोक भाषा (पालि) में समान रूप से प्रतिष्ठित हों। अतः बृद्धोग ने ऐसे प्रयोगों को पाणिनीय व्याकरण से न लेकर संभावत पालि-विपिटक से ही लिया होगा, ऐसा मानना भी अधिक समीचीन जान पड़ता है<sup>१</sup>। यहाँ तक भी कहा जा सकता है कि उनकी अनेक निरुक्तियाँ भी त्रिपिटक और विशेषतः अभिधम्म-पिटक के एतत्संबंधी विद्वाल भाडार पर ही आश्रित हैं। यद्यपि बृद्धोग सेपहले पारिभाषिक अर्थों में पालि में व्याकरण या निरुक्ति-शास्त्र (पालि-निरुक्ति—पालि त्रिपिटक के शब्दों की व्याकरण-सम्मत व्याख्या) न भी रहा हो, किन्तु त्रिपिटक के शब्दों की व्याख्या (वेच्याकरण) के लिए कुछ नियम तो अवश्य ही रहे होंगे। सुन्त-पिटक के प्राचीनतम अंशों में भी ‘ब्राह्मण’ ‘धर्मण’ ‘भिक्षा’ ‘तत्त्वागत’ आदि शब्दों की जो निरुक्तियाँ और व्यूत्पत्ति-लब्ध अर्थ किये गये हैं उनसे यह बात आमानी में समझ में आ सकती है। धर्मपद में महाप्राज्ञ भिक्षा के लिए यह आवश्यक माना गया है कि वह ‘निरुक्ति और पदों का ज्ञाता’ हो और ‘अक्षरों के मणिपात’ अर्थात् शब्द-योजना से परिचित हो<sup>२</sup>। इससे भी यही प्रकट होता है कि शब्दों की निरुक्ति और व्याकरण संबंधी साधारण नियमों की कोई परम्परा पालि-साहित्य के प्राचीनतम युग में भी रही अवश्य होगी। संभवतः इसी परम्परा का प्रबन्धन हमें नेतृत्पकरण और पेटकोपदेस में मिलता है। फिर भी बौद्ध अनुश्रुति का यह सामान्य विद्वाल कि भगवान् बृद्ध के प्रधान शिष्य महाकच्छान (महाकात्यायन) ने भी एक पालि व्याकरण को रखना की थी, तलावंधी साहित्य के अभाव में श्रीक नहीं माना जा सकता। इसी प्रकार बोधिसत्त्व और सब्द-गुणाकार नामक दो प्राचीन व्याकरण भी, जिनका नाम बौद्ध परम्परा में सुना जाता है, आज उपलब्ध नहीं है। आज जो व्याकरण-साहित्य पालि का हमें उप-

१. यह इससे भी प्रकट होता है कि बृद्धोग ने शब्द-निरुक्ति करने वाले त्रिपिटक के अंशों, विशेषतः अभिधम्म-पिटक, को ‘वेच्याकरण’ कहा है। देखिये “सकलं अभिधम्म-पिटकं वेच्याकरणं ति वेदितव्यं” सुमगलविलासिनी, भाग प्रथम, पृष्ठ २४ (पालि टैक्सदस सोसायटी का संस्करण)

२. धर्मपद २४।१९

लव्ध है, तीन शास्त्राओं या संप्रदायों में विभक्त है (१) कच्चान-व्याकरण और उसका उपकारी व्याकरण-साहित्य (२) मोमललाल-व्याकरण और उसका उपकारी व्याकरण-साहित्य (३) अग्मवंसकृत सहनीति और उसका उपकारी व्याकरण-साहित्य। लका और बरमा में ही इस प्रभूत पालि व्याकरण-वंशधी साहित्य का प्रणयन सातवीं शताब्दी के बाद से हुआ है। जब हम उपर्युक्त तीनों संप्रदायों की परम्परा का अलग अलग विवेचन करेंगे।

### कच्चान-व्याकरण<sup>१</sup> और उसका उपकारी साहित्य

'कच्चान-व्याकरण' (या कच्चायन-व्याकरण-कात्यायन—व्याकरण) पालि साहित्य का प्राचीनतम व्याकरण है। इसका दूसरा नाम 'कच्चायन गन्ध' (कात्यायन-गन्ध) भी है। इस व्याकरण के रचयिता को बुढ़े के प्रधान शिष्य महा कच्चान (महाकात्यायन) से कोई सम्बन्ध नहीं, इसे बोढ़ विद्वान् भी स्वीकार करते हैं।<sup>२</sup> इसी प्रकार पाणिनीय व्याकरण के वातिकार कात्यायन (तृतीय शताब्दी ईसवी) से भीये भिन्न हैं, ऐसा भी निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है। नेतिपकरण और पेटकोपदेश के रचयिता कच्चान से भी व्याकरणकार कच्चान भिन्न है। व्याकरणकार कच्चान यदि बुद्धधोष के पूर्वगामी होते तो यह असम्भव था कि कच्चान-व्याकरण जैसे प्रामाणिक पालि-व्याकरण का वे अपनी व्याख्याओं में कहीं भी उद्धरण नहीं देते। इस नियंत्रितमक साध्य के अलावा अन्य स्पष्ट साक्ष्य भी कच्चान-व्याकरण के बुद्धधोष के काल से उत्तरकालीन होने के दिये जा सकते हैं। कच्चान ने अपने व्याकरण में सर्व वर्मा के कातन्त्र व्याकरण का अनुगमन किया है। उन्होंने स्पष्टतापूर्वक पाणिनि व्याकरण का उसकी काशिका-वृत्ति के साथ अनुसरण किया है। काशिका-वृत्ति की रचना का समय सातवीं शताब्दी है। अतः यह निश्चित है कि कच्चान-व्याकरण भी सातवीं शताब्दी के पूर्व का नहीं हो सकता। स्वयं कच्चान-व्याकरण में ही उसके संस्कृत सम्बन्धी झूण की स्वीकार किया गया है। इस प्रकार सूत्र ११८ में कहा गया है 'परममञ्जापयोगे।' इसकी व्याख्या करने हुए उसकी वृत्ति (वृत्ति) में कहा गया है 'यात्र पन सककतगन्धेऽप्युभ्यु समञ्जा... आदि'। इन 'संस्कृत ग्रंथों' (सककत गन्धेन) जैसा हम जर्मी

१. डा० सतीशचन्द्र विद्याभूषण द्वारा सम्पादित एवं अनुवादित, कलकत्ता १८९१; डा० मेसन ने भी इस ग्रन्थ का सम्पादन किया है।

२. सूभूति : नामसाला, पृष्ठ ६ (भूमिका)

कह चुके हैं कच्चान-व्याकरण और काशिका वृति (सातवीं शताब्दी) प्रधान है । अतः कच्चान व्याकरण का काल सातवीं शताब्दी के बाद का ही है । कच्चान-व्याकरण में ५७५ सूत्र हैं । इस व्याकरण के अलावा कच्चान 'महानिरूपि गन्ध' (महानिरूपि गन्ध) और 'चूल्ल निरूपि गन्ध' (संशिष्ट निरूपि गन्ध) नामक दो व्याकरण-गन्धों के भी ये रचयिता बताये जाते हैं ।<sup>१</sup> कच्चान-व्याकरण का सहायक साहित्य काल-क्रमानुसार इस प्रकार है (१) कच्चान-व्याकरण का सबसे प्राचीन और महत्वपूर्ण भाष्य 'न्यास' है । इसी का दूसरा नाम 'मुखमत्तदीपनी'<sup>२</sup> भी है । सह आजाये विमलबुद्धि की रचना है, जिनका काल श्यारहवीं शताब्दी से पहले और कच्चान-व्याकरण की रचना (सातवीं शताब्दी) के बाद था । (२) 'न्यास' की दीका-स्वरूप 'न्यास-प्रदीप' श्यारहवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में लिखा गया । इसके रचयिता 'छापद' नामक आचार्य थे । यह बरमों भिक्षु थे, किन्तु इनकी विद्धा लंका में हुई थी । यह सिहली भिक्षु सारिपुत्र के शिष्यों में से थे । 'न्यास' पर अन्य साहित्य भी उत्तर कालीन शताब्दियों में बहुत लिखा जाता रहा<sup>३</sup> । छपद ने कच्चान-व्याकरण साहित्य को एक गन्ध और भी दिया । (३) मूल-निर्देश—छपद-कृत कच्चान-व्याकरण की दीका-स्वरूप यह गन्ध लिखा गया है । इसका निश्चित रचना काल ११८१ ई० (बुद्धाब्द १७१५) है<sup>४</sup> । (४) स्थविर मंष-रवित (संवरधित) द्वारा रचित 'सम्बन्ध-चिन्ता' । यह गन्ध कच्चान-व्याकरण के आधार पर पालि शब्द-योजना या शब्द-संबंधका विवेचन करता है । स्थविर संष-रवित सिहली भिक्षु सारिपुत्र के शिष्यों में से थे, अतः निश्चित रूप से इनका काल १२वींशताब्दी का अंतिम भाग हो चुका है । इस प्रकार ये छपद के समकालिक

१. गन्धवंस, पृष्ठ ५९, (मिसेफ द्वारा जननेल औंव पालि ट्रैक्सट सोसापटी में सम्पादित) सुभूति ने इन गन्धों को यमक को रचना बताया है । देखिये उनकी नाममाला, पृष्ठ २८ (भूमिका)
२. गन्धवंस, पृष्ठ ६०; सुभूति : नाममाला, पृष्ठ ९ (भूमिका)
३. श्यारहवीं शताब्दी के मध्य में बरमों भिक्षु दाठानाम हारा रचित 'निरस्तसार-मंजूसा' नामक 'न्यास' की दीका प्रसिद्ध है । देखिये मेविल बोड़ : दि पालि लिटरेचर औंव बरमा, पृष्ठ ५५; सुभूति : नाममाला, पृष्ठ १० (भूमिका)
४. सुभूति : नाममाला, पृष्ठ १५; मेविल बोड़ : पालि लिटरेचर औंव बरमा, पृष्ठ १७

ज्ञाने में । इन्होंने किनवा-साहित्य पर भी 'बुद्धक-सिद्धान्त' (शुद्रक-शिथा-स्वप्निता भिज्जु घरमंडी-वर्ममधिरि) के टोका स्वरूप 'बुद्धकसिक्षा-टीका' लिखी थी । 'संवेद-चिन्ता' पर एक टीका भी गाई जाती है, किन्तु उसके लेखक के नाम और काल का पता नहीं है । (५) स्पष्टिकर सद्गमधिरि (गद्धमधिरि) विशित 'सहस्रमेदचित्ता' (शब्दार्थमेदचित्ता) । यह चन्द्र वरमा में १२ भी शताब्दी के अंतिम भाग में लिखा गया । इस पर भी एक जगत लेखक की टोका मिलती है । (६) स्पष्टिकर बुद्धप्रिय दीपकर विशित 'लग-सिद्धि' या 'पद-कल-सिद्धि' । स्पष्टिकर बुद्धप्रिय दीपकर ने इस पन्थ के असत में अपना परिचय देते हुए अपने को सारिपुत्र (सिहली भिज्जु) का घोष्य कहा था । 'पञ्चमवृ' के भी यही रचयिता है । इनका काल इस प्रकार तेरहवीं शताब्दी का अंतिम भाग ही है । यह पन्थ सात भागों में विभक्त है और कुछ अल्प परिवर्तनों के साथ कल्पना-व्याकरण का ही कागान्तर माप है । 'हां-सिद्धि' पर भी एक टीका लिखी गई और सिहली भाषा तें उसका क्यान्तर भी किया गया । (७) बालाकतार-व्याकरण—यह व्याकरण विशेषतः वरमा और न्याम में बहु लोकप्रिय है । लक्षामें इसके कई संस्करण निकले हैं । यह भी कल्पना व्याकरण के आधार पर ही लिखा गया है । यह पन्थ 'धर्मकिति' (धर्म कीति) की रचना मात्री जाती है । यह धर्मकिति (धर्मकीति) डा० गायगर के मतानुसार 'सहस्रम गंगह' के लायिता 'धर्मकिति महासामि' (धर्मकीति महास्वरमी) ही है, जिनका बीचन-काल चौदहवीं शताब्दी का उत्तर भाग है । गन्धवंस के बाणीनुसार यह वाचिस्सर (वारीश्वर) की रचना है । वाचिस्सर लिहली भिज्जु सारिपुत्र के शिष्यों में से थे । उनका जीवन-काल निश्चित कप से बारहवीं शताब्दी का उत्तर भाग और तेरहवीं शताब्दी का प्रारंभिक भाग है । इस प्रकार उनकी रचना मानने पर 'बालाकतार' का रचना-काल पी-

१. विशेषतः श्री धर्माराम डारा सम्पादित, पलियगोड, १९०२; बालाकतार, टीका-सहित, सुमंगल महाल्यविर डारा सम्पादित, कोलम्बो १८९३; देखिये सुनूति : नाममाला, पृष्ठ २४ (भूमिका)

२. पालि लिटरेचर एंड लेंग्ड्रेज, पृष्ठ ४५, ५१ ।

३. पृष्ठ ६२, ७१ (जनल ऑफ पालि टेक्स्ट शोसायटी १८८६ में सम्पादित संस्करण)

उसी नम्बर का भानना पड़ेगा। 'बालावतार' व्याकरण पर लिखी हुई एक टीका भी मिलती है, किन्तु उसके लेखक का नाम और काल आदि सब अज्ञात है। (८) बरमी भिधु कपटकस्थिपनागित या ब्रेवल नागित विशिष्ट 'सहसान्त्याजालिनी' नामक कल्चान-व्याकरण की टीका १३५६ ई० (बुद्धाब्द १९००) में लिखी गई। (९) 'कल्चायन-भेद' नामक कल्चान-व्याकरण की टीका विसको रचना जौदहवी शताब्दी के उत्तर भाग में स्थापित महायास ने की। इन्हीं स्थापित की एक और व्याकरण संबंधी रचना 'कल्चायन-सार' है।<sup>१</sup> 'भववेस' के बर्णनानुसार 'कल्चायन-भेद' और 'कल्चायन-सार' दोनों धर्मानन्द नामक भिधुकी रचनाएँ हैं। 'कल्चायन-भेद' और 'कल्चायन-सार' पर टीकाएँ भी लिखी गई हैं। 'कल्चायन-सार' की दो टीकाएँ अति प्रसिद्ध हैं, (१) सारथप्रिकामिनी' जिसकी रचना १६०८ ई० (बुद्धाब्द २१५२) ले लगभग 'अस्तियात्कार' नामक बरमी भिधु ने की, (२) 'कल्चायनभेद-महाटीका', जिसके रचयिता उत्तम सिक्षक (उत्तम शिक्ष) माने जाते हैं, जिसके काल का कुछ निश्चित पता नहीं है। 'कल्चायन-सार' पर स्वयं इसके रचयिता महायास ने एक टीका लिखी थी। गायगर के मतानुसार यह 'कल्चायनसार-पुश्याणटीका' थी<sup>२</sup> जो आज उपलब्ध है। सिद्धली विद्वान् सुभूति ने इसे किसी ज्ञात लेखक की रचना माना है।<sup>३</sup> 'कल्चायन-सार' की एक और टीका 'कल्चायनसार-अभिनवटीका' या 'सम्मानविनामिनी' वर्मी भिधु सद्गमविलास के द्वारा लिखी गई। (१०) पन्द्रहवी शताब्दी के मध्य भाग में कल्चान-व्याकरण पर 'सहस्रितु' (षष्ठि-विन्दु) नामक उपकारी ग्रन्थ बरमा में लिखा गया। 'सासनवेस' के बर्णनानुसार अस्तिमहन (अस्तिमदन—बरमा) का राजा वयच्चा इसका रचयिता था<sup>४</sup>। सुभूति ने इस ग्रन्थ का निश्चित रचना-काल १८८१ ई० (बुद्धाब्द २०२५)

- 
१. सुभूति : नाममाला, पृष्ठ ८३; भेविल बोड : हिस्ट्री ऑव पालि लिटरेचर इन बरमा, पृष्ठ ३६।
  २. पृष्ठ ७४ (जन्मत ऑव पालि टैक्स्ट सोसायटी १८८६ में सम्पादित संस्करण)
  ३. पालि लिटरेचर एंड सोसिएटी, पृष्ठ ५२।
  ४. नाममाला, पृष्ठ ८४-८५ (भूमिका)
  ५. पृष्ठ ७६ (पालि टैक्स्ट सोसायटी का भेविल बोड द्वारा सम्पादित संस्करण)

बताया है<sup>१</sup>। 'महाविन्दु' पर 'लीनस्यसुदनो' नामक टीका जागविलास (ज्ञान-विलास) नामक भिन्न डारा १६ वीं शताब्दी के अन्तिम भाग में लिखी गई। (११) सोलहवीं शताब्दी के मध्यभाग में 'वालप्रबोधन' (वालप्रबोधन) नामक व्याकरण लिखा गया। इसके रचयिता का ठीक नाम पता नहीं है। (१२) 'अभिनवकृत्तनिशति' नामक व्याकरण में, जिसके रचयिता या रचना-काल के विषय में कुछ निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता, कच्चान व्याकरण के नियमों के अपवादों का विवरण है। (१३) सत्रहवीं शताब्दी के आदि भाग में बरमी निज महाविजितावी ने 'कच्चानवण्णना' नामक व्याकरण-प्रन्थ की रचना की। कच्चान-व्याकरण के सन्धिकाण (सन्धि-कल्प) का यह विवेचन है। 'कच्चान-वण्णना' नामक एक प्राचीन प्रन्थ भी है, जिससे इस अवार्चीन रचना को भिन्न ही समझना चाहिए<sup>२</sup>। महाविजितावी ने 'वाचकोपदेस' नामक एक और व्याकरण-प्रन्थ की रचना की है जिसमें उन्होंने व्याकरण-वास्त्र का नैथ्यायिक दृष्टि से विवेचन किया है। (१४) धातुमंजुशा—कच्चान-व्याकरण के अनुसार धातुओं की मूर्च्छी इस ग्रन्थ में संगृहीत की गई है। इस ग्रन्थ के अन्त में लेखक ने अपना नाम स्थिवर मीलवेस (शीलवेश) बताया है। यह एक पद्धति रचना है। मुमूक्षु ने कहा है कि वांगदेव के कवि-कल्पद्रुम से इस ग्रन्थ में काफ़ी सहायता ली गई है<sup>३</sup>। फेंक ने पाणिनीय धातुपाठ का भी इस ग्रन्थ पर पर्याप्त प्रभाव दिलाया है।<sup>४</sup>

### मोगल्लान-व्याकरण और उसका उपकार साहित्य

कच्चान-व्याकरण के समान मोगल्लान या मोगल्लायन<sup>५</sup> व्याकरण पर भी प्रभुत सहायक साहित्य की रचना हुई है। सर्व-प्रबन्ध 'मोगल्लान-

१. नाममाला, पृष्ठ ११-१२ (भूमिका)

२. सुभूति : नाममाला, पृष्ठ २३ (भूमिका)

३. देखिये नाममाला, पृष्ठ १५।

४. देखिये गायगर : पालि लिटरेचर एंड लेखेज, पृष्ठ ५६ !

५. पालि-व्याकरण को दृष्टि से कच्चान और कच्चायन, मोगल्लान और मोगल्लायन, इन शब्दों के दोनों शब्द ही शूद्र हैं।

'व्याकरण' को ही लेते हैं। इस व्याकरण का लंका और वरमा में बड़ा नादर है। पालि-व्याकरणों में निश्चय ही इसका एक ऊचा स्थान है। कल्पान-व्याकरण के तमान प्राचीन न होने पर भी यह उसमें अधिक पूर्ण है और भाषा-उपाधानों को इसने अधिक विस्तृत रूप से संकलित और व्यवस्थित किया है। जैसा भिन्न जगदीश काश्यप ने कहा है 'पालि व्याकरणों में 'मोगलान-व्याकरण' पूर्णता तथा गमीरता में श्रेष्ठ है' १। मोगलान-व्याकरण में ८१० सूत्र है, जिनमें सूत्र-गाठ, घातु-गाठ, गण-गाठ, षष्ठि-गाठ आदि सभी व्याकरण के विषयों का सर्वांगीण विवेचन किया गया है। सोगलान-व्याकरण की विषय वस्तु को समझने के लिए भिन्न जगदीश काश्यप कृत 'महापालि व्याकरण' उपब्यंग है। यह नवय हिन्दी में पालि-व्याकरण पर प्रचन और अपनी ध्येयों का उच्चकोटि की रक्खा है, एवं मोगलान-व्याकरण पर जाहारित है। मोगलान-व्याकरण का इसरा नाम 'मागवसहूलवस्तु' भी है। यसके आदि में ही व्याकरणकार ने कहा है "सिद्धमिद्गुणं साधु नमस्मित्वा तदागत । नवम्मस्थ भासित्त मामध सहूलवस्तु ॥" पाणिनि, कान्तंत्र-व्याकरण और प्राचीन पालि-व्याकरणों का आवार लेने के अतिरिक्त मोगलान-व्याकरण पर चन्द्रगोमिनि के व्याकरण का भी पर्याप्त प्रनाव उपलब्धित होता है। मोगलान-व्याकरण लिखने के अतिरिक्त मोगलान महाप्रेर ने उसकी 'वृत्ति' (वृत्ति) भी लिखी और फिर उस वृत्ति पर 'पञ्जिका' नामक पाञ्जिकाण दीका भी। 'मोगलान-पञ्जिका' अभी तक अनुपलब्ध रही। किन्तु जैसा भिन्न जगदीश काश्यप ने हमें सूचना दी है "परमपूज्य विद्वार यी धर्मानन्द नामक महास्वविर को ताल-पत्र पर लिखी 'पञ्जिका' की एक पुस्तक पुस्तक लंका के किसी विहार में मिल गई। उन्होंने उसे संपादित कर विद्वान्कार परिवेष, लंका से प्रकाशित करवाया है ॥" २ निश्चय ही मोगलान-व्याकरण और मोगलान-पञ्जिका पालि-व्याकरण का शास्त्रीय अध्ययन करने के लिए आज भी बड़े आवश्यक सम्बन्ध है। मोगलान-व्याकरण की वृत्ति (वृत्ति) के अन्त में व्याकरणकार ने अपना परिचय दिया है, जिसमें हमें मालूम होता है कि मोगलानमहाप्रेर अनुराधपुर (लंका) के श्रावणम-

१. पालि महाव्याकरण, पृष्ठ पचास (वस्तुकथा)

२. पालि महाव्याकरण, पृष्ठ इक्षपात्र (वस्तुकथा)

नामक विहार में निवास करते थे और उन्होंने अपने व्याकरण की रचना परकमभूज (पराक्रमबाहु) के शासन-काल में की थी । विद्वानों का अनुमान है कि इन परकमभूज में तात्पर्य पराक्रमबाहु प्रथम (११५३-११८६ ई०) से है, जिनके शासन-काल में लंका में पालि-साहित्य की बड़ी समृद्धि हुई । अतः मोगल्लान व्याकरण का काल बारहवीं शताब्दी का अंतिम भाग ही मानना चाहिए<sup>१</sup> । मोगल्लान-व्याकरण के आधार पर बाद में चलकर अन्य व्याकरण-साहित्य की रचना हुई, जिसके अन्तर्गत भूख्य ग्रन्थ ये हैं । (१) 'पद-साधन' जिसकी रचना मोगल्लान के शिष्य पियदस्ती ने की । पियदस्ती मोगल्लान के समकालिक ही थे । 'पद-साधन' एक प्रकार से मोगल्लान व्याकरण का ही संक्षिप्त रूप है । प्रसिद्ध सिहली विद्वान् के बायसा का कथन है कि पियदस्ती के 'पद-साधन' का मोगल्लान-व्याकरण के साथ वही संबंध है जो बालोबतार का कच्चान-व्याकरण के साथ<sup>२</sup> । १४३२ ई० में तित्पगाम (लंका) निवासी स्थविर श्री राहुल ने, जिनकी उपाधि 'वाचिस्सर' (वाचीश्वर श्री) 'पद-साधन' पर 'पद-साधन-टीका' या 'बुद्धिप्रसादिनी' नामकी दोनों लिखी । (२) बनरतन मेधंकर-विरचित 'परोग-सिद्धि' (प्रयोग-सिद्धि) । मोगल्लान व्याकरण-संप्रदाय पर लिखा गया यह संभवतः सर्वोत्तम ग्रन्थ है । इंजायसा ने मोगल्लान-व्याकरण के साथ इसका वही संबंध दिखाया है जो 'स्वसिद्धि' का 'कच्चान-व्याकरण' के साथ<sup>३</sup> । बनरतन मेधंकर पराक्रमबाहु के पुत्र भुवनेश्वराहु तृतीय के समकालिक हे । अतः उनका जीवन-काल १३०० ईसवी के लगभग है<sup>४</sup> । ही, यही यह ध्यान अवश्य रचना चाहिए कि व्याकरणकार मेधंकर इसी नाम के जिनचरित के रचयिता और लोकप्रदीपसार के लिए, इन दोनों व्यक्तियों से भिन्न हैं । (३) मोगल्लान-सञ्जिका-परीप—'मोगल्लान-सञ्जिका' की व्याख्या है । 'पदसाधन-टीका' के लेखक स्थविर राहुल 'वाचिस्सर' ही 'मोगल्लान-सञ्जिका-परीप' के लेखक हैं । 'गन्ध-

१. मोगल्लान-व्याकरण का देवमित्र द्वारा सम्पादित सिहली संस्करण, कोलम्बो, १८९०, प्रसिद्ध है । अन्य भी बरमो और सिहली संस्करण उपलब्ध हैं ।

२. कोटेलाग, पृष्ठ २५ ।

३. कोटेलाग, पृष्ठ २६ ।

४. पालि लिटरेचर एंड लेखिक, पृष्ठ ५४ ।

बंस' १ के बर्णनानुसार 'वाचिस्सर' ने 'मोगललाल-व्याकरण' पर एक टीका लिखी थी। डॉ नायगर ने इन 'वाचिस्सर' को उसी नामके सिहली भिन्न मारियुत के शिष्य (१२ वीं शताब्दी का उत्तर भाग) न मानकर 'मोगललाल-पालिकापदीप' के लेखक इन स्थविर राहुल को ही माना है, जिनकी भी उपाधि 'वाचिस्सर' (वागीश्वर) थी<sup>१</sup>। डे जॉयसा के मतानुसार 'मोगललाल-जिञ्जका-पदीप' व्याकरण-दास्त्र पर एक अत्यंत गमीर और पांडित्यपूर्ण रचना है।<sup>२</sup> इसमें भाषा संबंधी बहुत मूल्यवान् सामग्री संकलित की गई है। अनेक प्राचीन संस्कृत और पालि-व्याकरणों के भी उद्धरण दिये गये हैं। इसकी रचना-तिथि १४५३ ई० है<sup>३</sup>। जैसा पहले कहा जा चुका है, आचार्य श्री बस्माराम नामक महापेर ने १८९६ ई० में सिहली लिपि में इस ग्रन्थ का सम्पादन किया, जो विश्वालंकार परिवेज, लका, से उसी साल प्रकाशित भी हुआ। (४) धातुपाठ"—मोगललाल-व्याकरण के अनुसार धातुओं की सूची है। कच्चान-व्याकरण को 'धातु-मंजूसा' की अपेक्षा यह ग्रन्थ अधिक संवित्त है। उसकी तरह पद्धतियाँ न होकर यह गच्छ में हैं। सभचत् काल-क्रम में यह उससे प्राचीन है, क्योंकि 'धातु-मंजूसा' में इसी का आश्रय लिया गया है<sup>५</sup>। धातुपाठ के रचयिता के नाम या काल के विषय में अभी कुछ जात नहीं हो सका है।

### सदनीति<sup>६</sup> और उसका उपकारी साहित्य

पालि-व्याकरण का तीसरा प्रमुख सम्प्रदाय 'सदनीति' का है। यह वरमा में रचित पालि व्याकरण है। वरमा में भी सिहली की ही तरह पालि व्याकरण

१. पृष्ठ २२, ७१।

२. पालि लिटरेचर एंड लेखेज, पृष्ठ ५३।

३. केटेलाग, पृष्ठ २४, मिलाइये सुभूति : नामसाला, पृष्ठ ३४।

४. गायगर : पालि लिटरेचर एंड लेखेज, पृष्ठ ५४।

५. देखिये भिक्षु जगदीश काशयप : पालि महाव्याकरण, पृष्ठ ३६७-४१२ (मोगललाल-धातुपाठों)

६. गायगर : पालि लिटरेचर एंड लेखेज, पृष्ठ ५६।

७. हेमर स्मिथ ने तोन भागों में इस ग्रन्थ का सम्पादन किया है, देखिये गायगर :

पालि लिटरेचर एंड लेखेज, पृष्ठ ५४, पद-संकेत ६; लाहा : हिस्ट्री ऑफ पालि लिटरेचर, जिल्ड द्वासरी, पृष्ठ ६३६, पद-संकेत १।

के अध्ययन की महती परमारा चली, जिसके पूर्ण विकास को हम 'सद्गति' में देखते हैं। कहा जाता है कि बरमा के व्याकरण-ज्ञान की प्रशंसा जब सिहल में पहुँची तो वहाँ से कुछ भिक्षु बरमा में आये और सद्गति-व्याकरण को देख कर उन्हें स्वीकार करना पड़ा कि निश्चय ही इसके समान विद्वान्यूण रखना उनके यहाँ कोई नहीं है।<sup>१</sup> इसकी रचना ११५४ ई० में हुई। इसके रचयिता बरमी निक्षु अग्नवंस थे जो 'अग्नपंडित तृतीय' भी कहलाते थे। 'अग्न पंडित द्वितीय' उनके चाचा थे, जो 'अग्न पंडित प्रथम' के शिष्य थे। अग्नवंस बरमी राजा नरपतिमिश्र (११५३-१२०२) के मूरु थे। अग्नवंस-कृत 'सद्गति' एक प्रकार से कल्चन्यान-व्याकरण पर ही आधारित है।<sup>२</sup> मोगललाल-व्याकरण ती सम्भवतः उसके बाद की ही रचना है। संस्कृत व्याकरणों का भी अग्नवंस ने प्रवर्णित आश्रय लिया है। उन्होंने अपने ग्रन्थ के ब्रन्त में स्वयं कहा है कि पूर्व आचार्यों (आचारियों) और त्रिपिटक-साहित्य में आश्रम लेकर उन्होंने 'सद्गति' की रचना की है। निश्चय ही 'सद्गति' एक पाडित्यपूणी व्याकरण है। इस ग्रन्थ में सत्ताईस अध्याय हैं। प्रथम १८ अध्याय 'महा लहनीति' और शेष ९ अध्याय 'नूल भद्रनीति' कहलाते हैं। 'पद-माला' 'धातुमाला' और 'सूत-माला' इन ३ भागों में सम्पूर्ण सद्गति-व्याकरण विभवत है।

'धातुलब दोपनी' नाम की एवं वह धातु-नूनी में सद्गति-व्याकरण के अनु-सार धातुओं का संकलन किया गया है। कल्चन्यान-व्याकरण की धातुसूची 'धातु-मंजूरा' और मोगललाल-व्याकरण की धातुसूची 'धातुपाठ' के समान इसमें भी गायिनीय धातुपाठ का पर्याप्त आधार लिया गया है। यह हिंगलबल जिनरतन नामक वर्मी भिक्षु की रचना बताई जाती है, जिसके काल का ठीक पता नहीं है। इसके अतिरिक्त 'सद्गति' पर और कोई छिपेष साहित्य नहीं है। बरमा में यह ग्रन्थ आज भी प्रास्त्र की तरह पूर्जित है।

### अन्य पालि-व्याकरण

उपर्युक्त तीन सम्प्रदायों के व्याकरण-साहित्य के अतिरिक्त अन्य भी बहुत व्याकरण-साहित्य उपलब्ध हैं, जो यथापि इनमें से किसी विशिष्ट सम्प्रदाय में नहीं

१. मोबिल बोढ़ : पालि लिटरेचर ऑव बरमा, पृष्ठ १६।

२. यह फैल का भत है जिसे गायगर ने पालि लिटरेचर एंड लेंग्वेज, पृष्ठ ५५ में उद्धृत किया है।

रखता जा सकता, किन्तु जो पालि व्याकरण के पूर्ण शास्त्रीय अध्ययन की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। यह मार्हिण्य भी परिमाण में इतना अधिक है कि इसकी पूरी सच्चीता आजार्य न् भूतिकृत 'नाममाला' या डेवावसा के 'केटेलोग' में ही देखो जा सकती है। यहाँ हम केवल कुछ महत्वपूर्ण ग्रन्थों का ही उल्लेख करेंगे।

(१) वरमी भिक्षु नामग्र धम्मदस्सी-कृत 'वच्चवाचक'। चौदहवीं शताब्दी के अन्तिम भाग की रचना है। इसको टीका १७६८ ई० में वरमी भिक्षु सद्गमनत्वी ने की।<sup>१</sup>

(२) भगलकृत 'गन्धिदि०', जिसका विषय उपसर्गों का विवेचन करना है। यह चौदहवीं शताब्दी की रचना है।<sup>२</sup>

(३) अरियवेस-कृत 'गन्धाभरण'। यह भी उपसर्गों का विवेचनपरक ग्रन्थ है। इसको रचना १४३६ ई० में हुई।<sup>३</sup>

(४) विमल्यत्यक्तरण—२७ श्लोकों की यह पुस्तका विभिन्नतयों के प्रयोगों का विवेचन करती है। सूभूति के भतानुसार इसकी रचना वरमी राजा वपच्चा की पुरी ने १४८१ ई० में की।<sup>४</sup> इस पर बाद में 'विमल्यत्य-टीका' या 'विमल्यत्यवीप्ती' के नाम से एक टीका लिखी गई। सम्भवतः ये दो अलग अलग टोकाएँ भी होंगी। एक और टीका 'विभित्तिक्यावण्णना' के नाम से भी इस रचना पर लिखी गई।

(५) 'संवेदनानयदीपना'—इस ग्रन्थ की रचना जम्बुधव (जम्बुधवज) के हाथ १६५१ ई० में की गई। इसी लेखक के दो अन्य ग्रन्थ 'निरुति संग्रह' और 'संवेदन्यायदीपना' भी प्रसिद्ध हैं।<sup>५</sup>

(६) सद्वृति (शब्दवृत्ति) जिसकी रचना चौदहवीं शताब्दी के सद्गम-

१. मोविल बोढ़ : पालि लिटरेचर ऑब वरमा, पृष्ठ २२।

२. मोविल बोढ़ : पालि लिटरेचर ऑब वरमा, पृष्ठ २६।

३. मोविल बोढ़ : पालि लिटरेचर ऑब वरमा, पृष्ठ ४३।

४. देविये नायगर : पालि लिटरेचर ऐड लेयेज, पृष्ठ ५७।

५. मोविल बोढ़ : पालि लिटरेचर ऑब वरमा, पृष्ठ ५५।

गृह नामक वरमो भिक्षु ने की । डॉ जांयसा ने इस मन्त्र का रचना-काल १६५६  
ई० मासा है ।<sup>१</sup>

(३) कारकपुण्डि मंजरी—पालि शब्द-योजना पर लिखित यह रचना  
केंद्री (लका) के अतरणमवंशार राजमूर नामक लेखक की है । वहाँ के राजा  
कीर्ति और राजसिंह के शासन काल (१७४७-८०) में यह रचना लिखी गई ।<sup>२</sup>

(४) सूधीरमूखनंडन—यह रचना पालि-मासास पर है ।<sup>३</sup>

इसके भी लेखक 'कारकपुण्डिमंजरी' के समान ही है ।

(५) नयलक्षणविभावनी—वरमो भिक्षु विजिताचार (विचित्राचार)  
ने १८वीं शताब्दी के उत्तर भाग में इस मन्त्र की रचना की ।<sup>४</sup>

(१०-१२) सहविन्दु (नारदवंश), सहकलिका, सहविनिच्छय आदि अनेक मन्त्र  
पालि-व्याकरण पर लिखे गये हैं, जिनका पूरा विवरण यहाँ नहीं दिया जा  
सकता ।

लका और वरमा में छठी या सातवीं शताब्दी से लेकर ठीक उशीसवीं शताब्दी  
तक पालि-व्याकरण सम्बन्धी जो गहरी तत्परता और उसके परिणामस्वरूप उत्तम  
महान् पन्थ-राशि हम देखते हैं, जिसका किन्तु दिग्दर्शन ऊपर किया जा  
सका है, उसका वास्तविक महस्त्वाकन क्या है ? निष्ठय ही पालि-व्याकरण का  
अध्ययन इन देशों में उस समय किया गया जब पालि व्रीहित भाषा नहीं रही थी ।  
अतः पिटक और अनुपिटक साहित्य एवं संस्कृत-व्याकरण, यही इनके प्रधान  
आधार रहे । स्वभावतः ही उनमें वह भाषावंजानिक तत्त्व नहीं मिल सकता, जो  
आधुनिक भाषा-विज्ञान के विद्यार्थी को तृप्त कर सके । किन्तु 'न्यास', 'हृष-काशयण  
सिद्धि', 'सहनीति' और 'बालालतार' जैसे व्याकरण पाइत्य की दृष्टि से किसी  
भी साहित्य के व्याकरणों से टक्कर ले सकते हैं । निश्चय ही जैसा भिक्षु जगदीय  
काशयण ने कहा है, मोगल्लान की मिन्हों पाणिनि, चान्द्र, कात्पायन आदि महान्

१. भोविल बोढ़ : पालि लिटरेचर ऑब वरमा, पृष्ठ २९ ।

२. केटेलाग, पृष्ठ २७ ।

३. जांयसा : केटेलाग, पृष्ठ २४ ।

४. जांयसा : केटेलाग, पृष्ठ २८ ।

५. जांयसा : केटेलाग, पृष्ठ २५; वेलिये गायगर : पालि लिटरेचर ऐड लॉवेज,  
पृष्ठ ५८ भी ।

व्याकरणों में करनी होगी।<sup>१</sup> भारतीय मूल स्रोत से इतने अलग रह कर भी इन वरमी और सिहली आचारों ने संस्कृत के समकालिक पालि-भाषा का कितना सुन्दर और मनोर्धोगपूर्वक अध्ययन किया है, इसे देख कर आद्वर्यान्वित रह जाना पड़ता है। सांस्कृतिक एकता की इससे अधिक महरी वृनियाद कभी डाली गई हो, इसका इतिहास साक्ष्य नहीं देता। यह एकता राजाओं के दरबारों में न डाली जाकर भिन्न-परिवेणों में डाली गई। इसीलिये वह इतनी स्थायी भी हुई है। एक ही यन्त्र (मोगल्लानपञ्चका-यदीप) का अंशतः पालि और अंशतः सिहली में लिखा जाना, भारत और सिहल के उस गौरवमय सम्बन्ध का सूचक है, जिसकी नींव बोढ़ धर्म ने डाली थी और जिसे उसके साहित्य से दृढ़ किया है। भारत और स्वयं मध्य-मंडल (जास्ता की विवरण-भूमि !) में ही पालि-अध्ययन के प्रति महरी उदासीनता को देख कर इन दूरस्थित बोढ़ वन्धुओं के प्रति श्रद्धा में मस्तक झुक जाता है।<sup>२</sup> कारण, इन्होंने ही धर्म की ज्योति को प्रकाशित करता है, इन्होंने ही ज्ञान के दीपक की हम तक पहुँचाया है। उनका 'पालि-व्याकरण'-सम्बन्धी प्रभाव कार्य तो इसका एक बाह्य साक्ष्य मात्र है।

### पालि कोश : अभिधानप्पदीपिका एवं एकक्षरं कोस

पालि-साहित्य में केवल दो प्रसिद्ध कोश हैं, मोगल्लान-कृत 'अभिधानप्प-दीपिका'<sup>३</sup> और वरमी भिन्न सद्दर्मकिति (सद्दर्मकीति)-कृत 'एकक्षर-

#### १. पालि महाव्याकरण, पृष्ठ पचास (वस्तुकथा)

२. वस्तुतः हमसे अधिक पालि-भाषा और उसके व्याकरण का अध्ययन तो उन पाइचात्य विद्वानों ने ही किया है जो बोढ़ धर्म से प्रभावित हुए हैं। उनके इस संबंधी कार्य और उनकी व्याकरण-संबंधी रचनाओं के परिचय के लिए देखिये गायगर : पालि लिटरेचर एंड लेंचेज, पृष्ठ ५९-६०; लाहा : हिन्दू जौव पालि लिटरेचर, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ६३८-६४०; लाहा ने पाइचात्य विद्वानों के साथ साथ, भारतीय विद्वानों के भी इस संबंधी कार्य का विवरण दिया है। बाद का प्रकाशन होने के कारण, खेद है, 'पालि महाव्याकरण' (भिन्न जगदीश काश्यप कृत) का उल्लेख यहाँ नहीं किया जा सका। पालि व्याकरण साहित्य पर भिन्न जो की यह हिन्दी को महत्वपूर्ण देन है।

३. सुभूति द्वारा सिहली लिपि में संपादित, कोलम्बो १८८३; नागरी लिपि में

कोस' ।<sup>१</sup> 'अभिधानप्पदीपिका' ( अभिधानप्रदीपिका ) नीन भागों या काँडों में विभक्त है (१) सम्बन्ध (संबंध-काँड) जिसमें देवता, वृद्ध, शालयमूर्ति, देव-धोनि, इन्द्र, निर्वाण आदि के पर्यायवाची शब्दों का संकलन है । (२) भूकाण्ड (भू-काण्ड) जिसमें पृथ्वी आदि सम्बन्धी शब्दों के पर्यायवाची शब्दों का संकलन है । (३) सामन्तज्ञ कण्ठ (शामन्तज्ञ-काण्ड) जिसमें प्रब्रह्म्या सम्बन्धी और सौन्दर्य, उत्तम जैसे शब्दों के पर्यायवाची शब्दों का संकलन है । वास्तव में यह कोश पर्यायवाची शब्दों का संकलन ही है । वरमा और मिहल में इस ग्रन्थ का बड़ा आदर है । इस ग्रन्थ की रचना संस्कृत के अमर-कोश के जाधार पर हुई है,<sup>२</sup> इसे प्रायः सभी विद्वान् आज स्वीकार करते हैं । जैसा अभी कहा जा सकता है, अभिधानप्पदीपिका मोग्नालान थेर की रचना है । यह स्थविर लंकानिवासी भिजु थे । अभिधानप्पदीपिका में इन्होंने कहा है कि लंकाधिपति 'परकम-भूज नामक भूपाल' के शासन-काल में इन्होंने इस ग्रन्थ की रचना की ।<sup>३</sup> वही इन्होंने अपना निवास-स्थान 'महाजेतवन' नामका विहार बताया है<sup>४</sup> जो आज पोलोब्रह्मवा नामक नगर में स्थित है । जिस 'परकमभूज नामक भूपाल' के शासन-काल में भोग्नालान स्थविर ने 'अभिधानप्पदीपिका' की रचना की वह विद्वानों के निश्चित मतानुसार पराक्रमबाहु प्रथम ही है, जिसका शासन-काल १५३-१८६ है और जिसके समय में पालि के टीका-साहिय की अद्भुत समृद्धि हुई । अतः मोग्नालान थेर का भी यही समय है । 'अभिधानप्पदीपिका' के लेखक मोग्नालान थेर को उसी नाम के और प्रायः उसी

मुनि जिनविजय द्वारा संपादित, गुजरात पुरातत्व मन्दिर, अहमदाबाद सं० १९८० दिं ।

१. मुनि जिनविजय द्वारा संपादित उपर्युक्त 'अभिधानप्पदीपिका' के संस्करण में ही 'एकवार कोस' भी सम्मिलित है, अभिधानप्पदीपिका पृष्ठ १५७-१७० ।
२. मललसेकर : दि पालि लिटरेचर ऑफ सिलोन, पृष्ठ १८८-१८९ ।
३. परकमभूजो नाम भूपालो गुणभूसणो । लंकाधर्मासि तेजस्सीजयो केसरि-विक्रमो । पृष्ठ १५६ (मुनि जिनविजय द्वारा संपादित नामरो-संस्करण)
४. महाजेतवनास्थमिह वहारे साधुसम्मते तररोगाम समूहमिह वसता सन्तुत्तिना ॥ मद्भमट्ठितिकामेन मोग्नालानेन धीमता । थेरेन रचिता एसा अभिधान-प्पदीपिका ॥ पृष्ठ १५६ (उपर्युक्त संस्करण)

समय के वैयाकरण मोग्गलान से भिन्न समझना चाहिये । वैयाकरण मोग्गलान, जैसा हम पहले देख चुके हैं, अनुराषपुर के शूपाराम नामक विहार में रहते थे, जब कि कोशकार मोग्गलान ने अपना निवास-स्थान पुलत्थिपुर या पोलोद्रहवा का जेतवन-विहार बताया है । 'गल्घवंस' में कोशकार मोग्गलान को 'नव मोग्गलान' कहा गया है<sup>१</sup> और वह निश्चयत वैयाकरण मोग्गलान से उनकी भिन्नता दिखाने के लिये ही । जौदहवी शताब्दी के मध्य भाग में 'अभिधानपदीपिका' पर एक टीका भी लिखी गई । 'एकाश्वरकोस' वर्षमी भिन्न सद्मकिति (सद्मं-कोति) की रचना है । १४६५ ई० में इस कोश की रचना की गई । यह कोश एकाश्वरात्मक शब्दों की पद्धति सूची है । संस्कृत भाषा के एकाश्वरी कोश का का यह पालि रूपान्तर मात्र ही कहा जा सकता है । इसके अन्त में आता है—इति सद्मकिति नाम महावेरेन सकृतमासातो परिवत्तेत्वा विरचित एकाश्वर-कोसं नाम सदृप्तकरणं परिमतं" (सद्मंकोति नामक महास्वविर द्वारा संस्कृत भाषा से रूपान्तरित कर के विरचित 'एकाश्वरकोश' नामक गव्य-प्रकरण समाप्त ) ।

### छन्दः शास्त्रः बुत्तोदय आदि

पालि में छन्दः शास्त्र पर 'बुत्तोदय' (बुत्तोदय) नामक एक मात्र प्रसिद्ध ग्रन्थ है । 'छन्दोविचिति' 'कविमारपकरण' 'कविमार टीका निस्सय' नामक अल्प प्रसिद्धि के एक-आव ग्रन्थ और भी है । 'बुत्तोदय' की रचना, चिह्नी भिन्न सारिपुत्र के शिष्य, खुदूक सिक्षका-टीका और बल्ल्चान-व्याकरण पर 'सम्बन्ध-चित्ता' के लेखक (जिनका निर्देश पहले हो चुका है) स्वविर संघरक्षित हैं, जिनका काल १२वीं शताब्दी का उत्तर भाग है । 'बुत्तोदय' पर 'बननत्वजोतिका' नाम की एक टीका भी लिखी गई ।

### काव्य-शास्त्र—सुवोधारालङ्घर

पालि काव्य-शास्त्र पर 'सुवोधारालङ्घर' एक मात्र रचना है । इसके रचयिता उपर्युक्त स्वविर संघरक्षित ही हैं ।

### पालि का अभिलेख-साहित्य

पालि का सब से बड़ा गौरव बुद्ध-वचनों के बाद उसका अभिलेख-साहित्य

है। भारतीय साहित्य और इतिहास की ही नहीं, विश्व-संस्कृति के इतिहास की भी वह मूल्यवान् सम्पत्ति है। मात्रा में स्वाभाविक रूप से अल्प होते हुए भी यह साहित्य अपनों उदात्त और सम्मोर वाणी, स्वाभाविक और सरल शब्दी, एवं जीवन के गम्भीरतम पहलुओं और अनुभवों पर निष्ठित होने के कारण उसी महत्वा को लिये हुए हैं, जिसे हम उपनिषद्कालीन ऋषियों की वाणी, वृद्ध-वचनों, मध्यकालीन सन्तों के उद्गारों या आधुनिक काल में महात्मा गांधी की सहज, आत्म-निःसृत वाणी से सम्बन्धित करते हैं। पालि का अभिलेख-साहित्य १० पूँ तो सरी शताब्दी से पन्द्रहवी शताब्दी ईसवी तक मिलता है। अशोक के शिलालेख उसकी उपर्युक्ती काल-सीमा और वरमा के राजा वस्मिते के प्रसिद्ध कल्याणी-अभिलेख उसकी निचली काल-सीमा निश्चित करते हैं। इन काल-कोटियों से लेटित प्रसिद्ध पालि अभिलेख-साहित्य यह है, अशोक के शिलालेख, सौंची और भारहृत के अभिलेख सारनाथ के कनिष्ठ कालीन अभिलेख, मोगन (वरमा) के दो स्वर्णपत्र-लेख, बोवोगी पेमोडा (वरमा) के लंडित शिलालेख, प्रोम (वरमा) के दो स्वर्णपत्र-लेख, पेमन के १४४२ ई० के अभिलेख, कल्याणी-अभिलेख। इनमें अशोक के शिलालेख सब के सिरमोर हैं और काल-कम में भी वे सर्व-प्रथम आते हैं।

### अशोक के शिलालेख

अशोक के शिलालेख उत्तर में हिमालय से दक्षिण में मैसूर तक और पूर्व में उड़ीसा से पश्चिम में कान्तियावाह तक पहाड़ी चट्टानों और पत्थर के विशाल स्तम्भों पर उल्कीण मिलते हैं। इन शिलालेखों का प्रबान्धः तीन दृष्टियों से बढ़ा महत्व है। (१) इन शिलालेखों में अशोक ने अपने शब्दों में अपनी जीवनी का वर्णन किया है। जीवनी किसी स्वूल अर्थ में नहीं। अशोक ने यहाँ अपने आन्तरिक जीवन के परिवर्तन का, अहिंसा के अपने प्रयोगों का, जीवन के अपने गम्भीरतम अनुभवों का, सादी से सादी भाषा में, बड़ी स्पष्टता और सच्चाई के साथ, वर्णन किया है। (२) अशोक-कालीन इतिहास को जानने के लिये ये शिलालेख प्रकाशगृह हैं। पालि-साहित्य के अन्य वर्णनों की अपेक्षा इन शिलालेखों का साध्य इतिहास-लेखकों को बहुत अधिक मात्य रहा है। निश्चय ही ये शिलालेख स्वतः प्रमाण-सिद्ध हैं और इन्हीं के आधार पर अशोक-कालीन इतिहास का निर्माण किया गया है। (३) अशोक के शिलालेखों से पालि भाषा के स्वरूप और उसके

साहित्य के विकास पर भी काफी प्रकाश पड़ता है। हमारे प्रस्तुत अध्ययन के प्रसंग में उनका यह महत्व हमारे लिये सब से अधिक मूल्यवान् है। अहले हम अशोक के शिलालेखों का संभिप्त विवरण देंगे, फिर उपर्युक्त नीतों द्विष्टियों से उनके महत्व का विवेचन करेंगे।

### उनका घट्टोकरण

काल-कम के अनुसार विसेन्ट स्मिथ ने अशोक के शिलालेखों को निम्न-लिखित आठ भागों में विभक्त किया है।<sup>३</sup>

(१) लघु शिलालेख—ये सात शिलालेख हैं, जो सहस्राम, रूपनाथ, वैराट, बद्धगिरि, मिढ़पुर, जतिग रामेश्वर और मास्की नामक स्थानों में मिले हैं। सहस्राम विहार में है; रूपनाथ जबलपुर के समीप मध्य-प्रान्त में है; वैराट जयपुर रियासत में है; बद्धगिरि, मिढ़पुर और जतिग रामेश्वर मैसूर रियासत में हैं, और मास्की हैदराबाद राज्य में है।

(२) भावु शिलालेख-जयपुर रियासत में वैराट के पास मिला था।

(३) सतुर्दश शिलालेख (ई० पू० २५६ के लगभग)—ये लेख पहाड़ों को चट्ठानों पर लुढ़े हुए इन स्थानों पर मिले हैं, शहवाज़गढ़ी और मनसेहर (पेशावर किले में), कालसी (देहरादून किले में), गिरनार (काठियाबाद में), धोती (कटक के पास) और जोगह (मद्रास-प्रान्त)

(४) दो कलिंग लेख (ई० पू० २५६)—कलिंग में पत्थर की चट्ठानों पर लुढ़े मिले हैं।

(५) तीन गुरु-लेख (ई० पू० २५७ और ई० पू० २१०)—गुरा के पास वारावर नाम की पहाड़ी में मिले हैं।

(६) दो तराई स्तम्भ-लेख (ई० पू० २८९) —नेपाल की तराई में स्तम्भ-दर्वाझ और निमिलवा नामक गाँवों के पास मिले हैं।

(७) सप्त स्तम्भ-लेख (ई० पू० २४३-२४२) —ये लेख स्ताम्भों पर लुढ़े हुए इन स्थानों पर मिले हैं (१) मेरठ (२) अम्बाला के पास टोणरा (ये दोनों लेख दिल्ली में से आये नहीं हैं) (३) प्रगांग (के किले का स्तम्भ-लेख)

३. ऑफिसफँड हिस्ट्री ऑफ इंडिया, वृष्ट १०३-१०४।

(४) लोरिया बरराज, (५) लोरिया नन्दनगढ़ (६) रामपुरवा । अन्तिम तीन स्थान विहार के चम्पारन जिले में हैं ।

(८) चार गोण स्तम्भ (ई० पू० २४२-ई० पू० २३२) — इनमें से दो लेख सचिं और सारनाथ की लाटों पर खड़े हुए हैं और दो प्रयाग के स्तम्भ पर पीछे से बोड़ लिये गये हैं ।

अशोक का व्यक्तित्व, उसका राजनीति-दर्शन और तत्कालीन भारत की परिस्थिति, इन लेखों से स्पष्टतः व्यंजित होते हैं । सब से पहले अशोक की बृद्ध-भृति है, जिसने अशोक को अशोक बनाया । अशोक का विश्व-इतिहास में जो कुछ भी स्वाल है<sup>२</sup> या अपने राजनीति-दर्शन के रूप में अशोक जो कुछ भी विष्व को दे माया है, वह सब बृद्ध का एक छाटा सा दान है । उससे अधिक भी बहुतों ने पाया है, परंपर इतिहास में उनका नाम नहीं है । अशोक ने बृद्ध में जो कुछ पाया, उसे वह स्वयं भी ज्ञानपूर्वक समझता था । भीषण कलिंग-युद्ध के बाद उसके हृदय में जो मालानि गेंदा हुई थी, उसका उसने आगे तेरहवें शिलालेख में मामिक लांगन किया है । यह उसके लिये एक युगान्तकारी घटना थी । इसके बाद उसने निष्पत्ति किया कि संसार में धेम, संयम, चिन-आन्ति और प्रसन्नता की ही बृद्धि करनगा, शान्ति, सद्भाव और अहिंसा का ही प्रचार करेगा । यही सर्वोत्तम विजय होगी । राजभैरी को छोड़कर उसने धर्म-धोग से ही दिशाओं को गुजायमान करने का निष्पत्ति किया । यही उसका 'प्रियदर्शी' रूप था । अशोक पहले नर-हत्यारा था, चंडाशोक था । बृद्ध-अनुभाव से वह देवताओं और मनुष्यों का प्यारा हुआ, धर्मांशोक हुआ । अशोक के इस जीवन-परिवर्तन में कहाँ तक बौद्ध प्रभाव उत्तर-दायी था अथवा कहाँ तक यह उसके स्वर्तन विचार और चिन्तन का परिणाम था, इसके विषय में विचार करने की गुजायश नहीं है । विसेन्ट स्मिथ का यह कहना कि अशोक आगे धर्म-परिवर्तन का श्रेय किसी दूसरे को नहीं देना चाहता था,<sup>३</sup>

२. "Amidst the tens and thousands of names of monarchs that crowd the columns of History.....the name of Asoka shines, and shines almost alone a star" एस० जी बेल्स अपनी 'आउट लाइन ऑफ हिस्ट्री' में ।

३. स्मिथ ने इस बात पर जोर दिया है कि अशोक ने जिस धर्म का अपने शिलालेखों में उपदेश दिया है वह तो संपूर्ण भारतीय धर्मों का वह समन्वित रूप

ठोक नहीं है। इसमें सन्देह नहीं कि पुरुषार्थ तो मनुष्य को स्वयं ही करना होता है और पर्याप्त हृदय-मंथन के बाद उपर्युक्त चित्त-भूमि भी उसे ही तैयार करनी होती है। यह सब अशोक ने भी किया था। कलिग-युद्ध के बाद उसके हृदय में धार्मिक पवित्रता और प्राणित के लिये उत्कृष्ट अभिलाषा (तिर्यः धर्मवय धर्म-कस्ट) उत्पन्न हुई थी। परन्तु कौन जानता है कि इतना हीने पर भी अशोक को यदि स्थविर (या आमणेर<sup>३</sup>) न्ययोध न मिलते तो 'विवरे हुए बादल की तरह, वह चिन्तन नहीं हो जाता। अतः अशोक को बुद्ध-सासन का प्रकाश अवश्य मिला था, जिसके लिये उसने अपने शिलालेखों में पर्याप्त कृतज्ञता भी प्रकाशित की है। भाषु शिलालेख में उसने मगध के मिथु-संघ का अद्वापुर्वक अभिवादन किया है, उनके कुशल-मगल की कामना की है और कहा है, "भन्ते ! आपको मालूम ही है कि बृद्ध, धर्म और संघ के प्रति मेरे हृदय में कितना आदर और अद्वा है। भन्ते ! भगवान् बृद्ध ने जो कुछ कहा है, सब सुन्दर ही कहा है।" कलिग-युद्ध अशोक के राज्याभियेक के आठवें वर्ष में हुआ था, और उसके बाद ही उसने न्ययोध नामक चिन्ह से उपासनत्व की दीक्षा ली थी।<sup>४</sup> उसके बाद ही तो अशोक नियमित हृष से बीढ़ महस्त-शिष्य (उगामक) हो गया। अपने 'धर्म तथा शील में प्रतिष्ठित'<sup>५</sup> (धर्ममिहसीलमिह तिट्ठन्तो) होने की बात अशोक ने अपने छठे शिलालेख में भी कही

या जिसे अशोक ने अपने स्वतन्त्र विचार के परिणामस्वरूप उद्भावित किया था और उसका बृद्ध-धर्म से, जैसाकि वह त्रिपिटक के अनेक ग्रन्थों में निहित है, कोई संबंध नहीं है। देखिये उनका अशोक : पृष्ठ ५९-६६।

१. जित व्यक्ति से अशोक को बृद्ध-मत की दीक्षा मिली, उनका नाम स्थविर-बाद परम्परा के अनुसार न्ययोध था। 'दीपवंस' के वर्णन के अनुसार न्ययोध स्थविर थे; 'समन्त पातादिका' में उन्हें स्थविर और आमणेर दोनों ही कहा गया है। महार्वद (५।६४-६८) के अनुसार वे केवल आमणेर थे। चाहे स्थविर हों, चाहे आमणेर, भिक्षु न्ययोध एक कुशल योगी अचड़य थे, जिन्होंने अपने व्यक्तित्व से अशोक को आकृष्ट कर लिया। 'दिव्यावदान' को महायानी परम्परा में अशोक के गुरु का नाम स्थविर समुद्र कहा गया है, जो उतना प्रामाणिक नहीं है।
२. यद्यपि पालि-वृत्तान्त के अनुसार अभियेक के चौथे वर्ष अशोक ने बृद्ध-मत की दीक्षा ली (चतुर्थे संवच्छरे बृद्ध-सासने पसीदि)

है। मेसूर के तोन लवु शिलालेखों में अशोक ने अपने उपासक-जीवन का वर्णन किया है। यहाँ उसके उपासक स्वकार को दो 'अवस्थाएँ' उपलब्धित होती है। पहली अवस्था वह है जिसमें अशोक एक साधारण उपासक भाव है। 'यहके उपासके' अर्थात् जब कि मैं उपासक था। दूसरी अवस्था वह है जिसमें अशोक संघ में जाने वाला (संघ उपरिते) उपासक बन गया है। अपनी इस अवस्था को सुचित करते हुए उसने कहा है 'ये मया संघे उपरिते' अर्थात् जब कि मैं संघ के दर्शनार्थ जाता था। अशोक के धर्म-विकास की अन्तिम अवस्था वह है जब कि वह 'भिस्मृगतिक' हो जाता है, अर्थात् स्वयं भिस्मृ तो नहीं होता, किन्तु अनासक्त भाव में राज्य-कार्य करता हुआ वह कभी कभी सत्संग पाले के लिये विहार में जाकर भिस्मृओं के साथ रहने लगता है।<sup>१</sup> यहाँ अशोक पुणे राजापि-पद प्राप्त कर लेता है। चौनी याकी इ-चिग्ने, जो सातवीं गतालदी में भारत में आया था, अशोक की एक मूर्ति भिस्मृ-वेश में भी देखा थी। किन्तु यह सन्दर्भ है कि अशोक अपने अन्तिम जीवन में भिस्मृ हो गया था। कुछ भी हो, इसमें सन्देह नहीं कि बृद्ध, घम्म और संघ में अशोक की असीम निष्ठा थी। अपने राज्याभियोक के इकोसंघे वर्षे वह भगवान् बुद्धदेव की जन्मसूमि लुम्बिनीवन में गथा और वहाँ एक मूर्द, गोलाकार स्तम्भ पर उत्तरने अकित करवाया "हिद बृद्धं जाते सवयमनीति..... हिद भगवा जातेति लुम्बिनिगामे"<sup>२</sup> अर्थात् यही लुम्बिनी-ग्राम में भाक्यमनि बृद्ध उत्पन्न हुए थे, यहीं भगवान् उत्पन्न हुए थे। अशोक की बुद्ध-निष्ठा का यह उत्कलन उदाहरण है। उसने कल्पितवस्तु, सारनाथ, बाबल्सी, गया आदि अन्य स्थानों की भी, जो बृद्ध की स्मृति से अकिल थे, यात्रा की ओर आर्नी अद्वाज्ञलि अंगित की। पहले अशोक की पाकशाला में हजारों जीव प्रतिदिन मारे जाया करते थे।<sup>३</sup> अपने प्रथम शिलालेख में उसने सच्चना दी है कि इस समय सिर्फ़ दो मोर और एक हिरन ही मारे जाते हैं, जिसमें हिरन का मारा जाना निश्चित नहीं है और जागे

१. देखिये राधाकुमुद मुक्तजी : मैत्र एंड थांट इन एंग्लिशमंट इंडिया, पृष्ठ १३०।
२. पुलुवं महानात्मि देवतनं पियत पियदसिने लाजिने अनुदिवसं बृहनि पान सत सहस्रानि आलभियिसु सुपठाये (पहले देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा की पाकशाला में अनेक शत-सहस्र प्राणी सूप के लिए मारे जाते थे) शिलालेख १ (जौगढ़) \*

ये तीन प्राणी भी नहीं मारे जायेंगे।<sup>१</sup> मृगया और विहार-यात्राओं के स्थान पर उसने धर्म-यात्राएं करना प्रारम्भ किया,<sup>२</sup> क्योंकि जब उसे जीवन की गम्भीरता का ज्ञान हो चुका था। उसने देखा लिया था कि मंसार के मूल-भोग, प्रतिष्ठा और बड़पन, परमेश्वर में कुछ काम नहीं आते।<sup>३</sup> अशोक यज्ञपि बोला था, किन्तु सम्प्रदायवाद उसके हृदय में नहीं था। विश्व का होने के लिये ही तह यज्ञ का हृदय था। ग्राहण और जैन साधुओं को भी वह बौद्धों के समाज ही दान देता था और उनके तीव्र स्थानों के भी समान आदर के साथ ही दर्शन करता था। अपने बाहरहरे शिलालेख में अशोक ने धार्मिक सहिष्णुता का ममेस्पर्शी उपदेश दिया है। उसका कहना है कि सच्ची धर्मोऽप्ति का मूल बाह्यसंयम है (इदं भूल विग्रहति)। मनुष्य अपने धर्म की स्तुति और दूसरे के धर्म की निन्दा न करे। जो अपने सम्प्रदाय की भक्ति के कारण अपने ही धर्म जालों की प्रजन्मा करता है और अन्य धर्मानुयायियों को निन्दा करता है वह वास्तव में अपने सम्प्रदाय को बहुत हानि पहुंचाता है। वह इस प्रकार अपने धर्म का झोण करता है और पर-धर्म का आकार करता है। लोग एक दूसरे के धर्म को नुने और उसका सेवन करें। सब धर्म बाले बहुश्रूत हैं और उनका ज्ञान कल्पाणमय हो। “प्रियदर्शी राजा जाहता है कि सब धर्म बाले सर्वत्र मेल-मिलाते हैं रहें। वे सभी संयम और भाव-शुद्धि चाहते हैं। मनुष्यों के ऊन-नीति विवार और ऊन-नीति अनुराग होते हैं। कोई अपने धर्म का पूरी तरह और कोई अवधारणा पालन करें। जिसके धर्मी देने को बहुत दान नहीं है, उसमें भी संवेद, भाव-शुद्धि, कृतज्ञता और दृढ़ भक्ति तो अवश्य हो ही सकते हैं।”<sup>४</sup> सर्वेषां-सम्भाव का इससे अधिक प्रभावशाली डारेश विश्व-इतिहास में नहीं दिया गया। अशोक ने भाग्य और उसके बाहर सीस आदि देशों में इस विश्व-धर्म का प्रचार करने के लिये जो महानीय कार्य किया वह उसके दूसरे और तेरहवें

१. सेजन अदा इवं धर्मलिपी लिखिता तिनियेव पानानि आलभियति—दुवे मज्जता एके मिगे। से पि चु निने तो धूबं। एतानि पि चु तिनि पानानि पछा नी आलभियिस्ति। शिलालेख १ (जौगङ)

२. शिलालेख ८

३. शिलालेख १०

४. शिलालेख १२

शिलालेखों में अकित है और दूसरे अध्याय में तृतीय बोड़ समीति का वर्णन करते समय हम उसका कुछ उल्लेख कर चुके हैं ।

अशोक ने बुद्ध-धर्म को जैसा समझा और जैसा उसका आचरण किया, वह कुछ प्रवचितों का ही धर्म नहीं था, चलिक जीवन की पवित्रता पर आन्वित वह विस्तृत लोक-धर्म था, जिसका आचरण जीवन की प्रत्येक अवस्था में और प्रत्येक व्यक्ति द्वारा किया वा मनना है । अहिंसा, बड़ों का आदर, सत्य-भाषण, इन बातों को सिखाते हुए प्रियदर्शी राजा कभी घकता नहीं ।<sup>१</sup> माता-पिता की सेवा करना, मित्र, परिचित, सम्बद्धी, वाह्यण और धर्मणों का आदर करना, दान और भूत्यों के साप सद्व्यवहार करना, यही सब अशोक की शिक्षाएँ थीं ।<sup>२</sup> अनप्रव्ययता और अत्यभाष्टता (कम सामान इकट्ठा करना) की उसने बड़ी प्रशंसा की है ।<sup>३</sup> आत्म-निरीक्षण को उसने धर्म का प्रमुख साधन माना है । बुद्ध के समान अशोक ने भी धर्म के आन्तरिक स्वरूप पर जोर दिया है । तत्कालीन लोकाभारों की एक सच्चे बुद्धिवादी के समान तुच्छता दिखाते हुए उसने कहा है— “बीमारी में, निमंत्रण में, विवाह में, पुनर्जन्म और यात्रा के प्रसंगों पर स्त्री-पुरुष बहुत से मंगल-कार्य करते हैं, परन्तु मे वे मंगल घोड़े फल के देने वाले होते हैं । किन्तु अहिंसा, दया, दान, मुकुजनों की पूजा इत्यादि धर्म के मंगल-कार्य अनन्त-पूर्ण उत्पन्न करते हैं ।”<sup>४</sup> अशोक ने धर्म-दान की बड़ी प्रशंसा की है । उसने कहा है कि सच्चा अनुष्ठान धर्म का अनुष्ठान है, सच्ची यात्रा धर्म की यात्रा है, सच्चा मंगलचार धर्म-मंगल है ।<sup>५</sup> वास्तव में धर्म (धर्म) शब्द को यही अशोक ने बड़े व्यापक अर्थ में प्रयोग किया है ।

अशोक की शासन-नीति को जानने के लिये उसके अभिलेख बड़े सहायक हैं । कोई भी शासक अपनी आज्ञाएँ शिलालेखों पर खुदवा सकता है । किन्तु अशोक के अभिलेखों जैसा स्थायित्व, उनकी इतनी विश्वजनीता, इतनी मान्महिता, इतनी गम्भीर सच्चाई, विश्व-साहित्य में अन्यत्र कहीं नहीं देखी गई । के

१. २. शिलालेख ३, ९ और ११ ।

३. शिलालेख ३ ।

४. शिलालेख ९ ।

५. देखिये शिलालेख ९ (गिरनार, धोली और जोगड़ का पाठ); शिलालेख ११ भी; मिलाइये धर्मपद, ‘सच्चदान’ धर्मदानं जिनाति ।

एकदम इतिहास को सामने है, उच्चतम साहित्य है, और गम्भीरतम जीवन-दर्शन भी है। उनके अन्दर 'प्रियदर्शी' की लोक-कल्याण के लिये छटपटाती हुई आत्मा वर्षों तक निःश्वास ले रही है और अतीत को जीवन प्रदान कर रही है। राजनीति जीवन से भिन्न नहीं है। बल्कि उसका ही एक अंग है। अशोक से जो तत्त्व जीवन में देखा है, उसी का आगे राजनीतिक जीवन में अभ्यास किया है, उसी को अपनी प्रजाओं की सिखाया है और उसी को लेखों में अंकित करवाया है। यथा है वह तत्त्व ? यह वही तत्त्व है जिसे स्वरित न्यूयोर्क ने उसे प्रथम चार सिखाया,<sup>१</sup> तबागत ने जिसे अन्तिम चार दृढ़राया,<sup>२</sup> अशोक से जिसे जीवन में निभाया—कल्याणकारी कार्यों में अप्रमाद, अनवरत और अनासन कर्म-योग का अभ्यास। यही तथागत का बीर्यारम्भ है, अशोक के लेखदृढ़ शब्दों में यही 'उस्टान'<sup>३</sup> (उत्तान) है, यही 'उयम'<sup>४</sup> (उच्चम) है, यही 'उसह'<sup>५</sup> (उत्ताह) यही 'पकम'<sup>६</sup> या 'परककम'<sup>७</sup> (पराक्रम) है, जिसे सिखाते हुए 'प्रियदर्शी धर्म-राजा' कभी घकता नहीं। निरालम होकर परोपकार के लिये अदम्य कर्म-योग का अभ्यास ही अशोक के जीवन का मूल दर्शन है, जिसे उसने राजनीति के सेव में भी प्रत्यक्ष किया है और उसे बर्म-साधना का अंग बना लिया है।<sup>८</sup> अपने छठे

१. दीप्तिंस मे कहा गया है कि न्यूयोर्क ने अशोक को यह गाथा सुनाई "अप्रमाद अभूत-पद है। प्रमाद मृत्यु का पद है। अप्रमादी अनुष्य मृत्यु को प्राप्त नहीं होते, प्रमादी भनुष्य तो मृत ही है।" अभूतपद के द्वितीय बगा की यह प्रथम गाथा है। महाधर्म ५।६८ के अनुसार भी न्यूयोर्क ने अशोक की यही गाथा सुनाई।

२. तबागत के अंतिम शब्द ये थे 'अप्रमाद के साथ (जीवन के लक्ष्य को सम्पादन करो)' (अप्पमादेन सम्पादेय—महापरिनिवाग-सूत—दीघ. २।३); मिलाइये महासकुलदायिन-सूत—मिल्लम. २।३।७—आनापानसति सूत मणिम. ३।२।८); अप्पमस्तक बगा (अगुत्तर-निकाय, एक = क निपात) सम्पाद्यान-संयुत (संयुत-निकाय); थपति-सूत (संयुत-निकाय) (पथानिय-सूत (अगुत्तर निकाय) आदि, आदि।

३. शिलालेख ६

४. शिलालेख १३

५. स्तम्भलेख १

६. लघु शिलालेख

७. शिलालेख १०

८. इसी को व्यक्त करते हुए उसने अमर शब्दों में कहा है "नास्ति हि कंभतरं

शिलालेख में उसने कहा है "मैंने गह प्रबल्द किया है कि प्रत्येक समय, जाहे उस समय में ज्ञाता होऊँ, जाहे अन्तःपुर में रहूँ, जाहे गवनामार में रहूँ, जाहे उद्यान में रहूँ, सब जगह ही प्रतिवेदक (पेशकार) जनता के कार्य की सूचना मुझे दे । मैं जनता के कार्य सब जगह करूँगा । यदि मैं स्वयं आज्ञा दूँ कि अमुक कार्य किया जाय और महामात्रों में उसके विषय में कोई मतभेद उपस्थित हो अथवा मन्त्रिपरिषद् उसे स्वीकार न करे तो हर घड़ी और हर समय मुझे सूचना दी जाय क्योंकि मैं कितना ही परिष्ठम करूँ और कितना ही राज्य-कार्य करूँ, फिर भी मुझे पूर्ण सन्तोष नहीं होता । मैं जो कुछ प्रयत्न (पराक्रम) करता हूँ, वह इसलिये कि प्राणियों के प्रति जो मेरा ऋण है उससे उक्खण हो जाऊँ और यहाँ कुछ लोगों को मुखी करूँ और परलोक में उन्हें स्वर्ग का अधिकारी बनाऊँ । अत्यधिक प्रयत्न (पराक्रम) के बिना यह कार्य कठिन है । जिस प्रकार मैं अपने पुत्रों का हित और सुख चाहता हूँ उसी प्रकार मैं लोक के ऐहिक और पारलोकिक हित और सुख की क्रामना करता हूँ ।" इसी प्रकार अपने चौथे स्तम्भ-लेख में अशोक ने घोषणा की है "जिस प्रकार कोई मनुष्य अपनी सन्तान को निपुण दाई के हाथ सौंपकर निश्चिन्त हो जाता है और सोचता है कि यह धाय मेरे बालक को सुख देने की भरपूर चेष्टा करेगी उसी प्रकार प्रजा के हित और सुख के लिये मैंने 'रज्जुक' नाम के कर्मजारी नियुक्त किये हैं ।" इन वाणियों से अशोक के कार्य और नीति का पता लग सकता है । अहिंसा के सिद्धान्त को वह व्यावहारिक राजनीति के साथ समन्वित करने की कितनी क्षमता रखता या यह उसके उस अभिलेख से स्पष्ट होता है जो उसने सतत उपद्रव करने की ओर प्रवणता रखने वाली उत्तर-पञ्चिमी सीमा की जंगली जातियों को सम्बोधित करते हुए उनके प्रदेश में अंकित करताया था, "सीमान्त जातियाँ मुझ से भयभीत न हों, मुझ पर विश्वास रखें और मेरे हाथ सुख प्राप्त करें, कभी दुःख न पावें और विश्वास रखें कि जहाँ तक धर्मा का व्यवहार हो सकता है । राजा हम लोगों के साथ धर्मा का व्यव-

सर्वलोकहितत्पाय च कि चि" (शिलालेख ६, गिरनार संस्करण), (नहीं है निश्चय ही सब लागों के हित से अधिक उपादेय काम)

हार करेंगे ।<sup>१</sup> समाद्र अशोक और उनके उच्च कर्मचारी समय समय पर पर जनता के सम्पर्क में आने और उसके दृश्यन करने के लिये (ज्ञानपदस जनस दस्ताने) राज्य का दौरा (अनुसंधान) करते थे ।<sup>२</sup> अशोक चाहता था कि कानून के भव्य से ही लोग सदाचार का आचरण न करें, बल्कि उनके आनन्दसिक जीवन को इस प्रकार शिक्षित किया जाय जिससे वे पाप की ओर प्रवण ही न हों । उसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये उसने 'महामात्र' नामक उच्च कर्मचारी नियुक्त किये थे और उन्हें अनेक विशेषाधिकार भी दिये थे ।<sup>३</sup> इन कार्यों के अलावा अशोक ने अपने विशाल साम्राज्य में स्थान स्थान पर धर्मशालाएँ बनवाई, मनुष्यों और पशुओं को आराम देने के लिये छायादार पेड़ लगवाये, आञ्ज-वाटिकाएँ बनवाई और पानी के कुड़ बनवाये ।<sup>४</sup> सब से बड़ा काम उसने श्रीविघ्नालय और चिकित्सालय खोलने का किया । अपने दूसरे शिलालेख में अशोक ने कहा है कि उसने रोगी मनुष्यों और पशुओं के लिये अलग अलग चिकित्सालय स्थापित किये हैं ।<sup>५</sup> यह काम उसने न केवल अपने ही राज्य में किया है, बल्कि विदेशों में भी अपने धर्मोपदेशकों द्वारा करवाया है ।<sup>६</sup> जहाँ-जहाँ मनुष्यों और पशुओं के प्रयोग में आने वाली औषधियों और श्रीविघ्नोपयोगी कन्द-मूल कल नहीं हैं, वहाँ-वहाँ वे भिजवाये गये हैं और लगवाये गये हैं ।<sup>७</sup> कहने की आवश्यकता

१. शिलालेख २ ।

२. शिलालेख ८ (गिरनार); शिलालेख १२ भी ।

३. शिलालेख ५, स्तम्भ लेख ७; धर्म महामात्रों के क्या कर्तव्य थे, इसके लिए देखिये 'अशोक की धर्मलिपियाँ' प्रथम भाग (काशी नामारो प्रचारिणी सभा) पृष्ठ ५१-५२ ।

४. स्तम्भलेख ७ ।

५. द्वे चिकीछा कता मनुस चिकीछा च पसुचिकीछा च । शिलालेख २ ।

६. शिलालेख १३ एवं २ ।

७. ओमुदानि च यानि मनुसोपगानि च पसोपगानि च यत यत नास्ति सर्वत्र हारापितानि च रीपापितानि च । मूलानि च कलानि च यत नास्ति सर्वत्र हारापितानि रीपापितानि च । शिलालेख १ ।

नहीं कि यह काम अशोक ने जाति-धर्म-देश-निविदीप प्राणि-मात्र के कल्याणार्थ हो किया । उसी के द्वारा मानवता की दुन्दुभी विश्व में चारों ओर बजवाई गई । बीढ़ धर्म उसी समय से विश्व-धर्म बन गया ।

इस संक्षिप्त विवरण के बाद अब हमें उस महत्वपूर्ण साक्ष को देखना है जो प्रश्नोत्तर के अभिलेख पालि-भाषा के स्वरूप और उसके साहित्य के विकास के विषय में देते हैं । अशोक के अभिलेखोंमें तत्कालीन लोक-भाषा (मागधी भाषा) के कितने स्वरूप दृष्टिगोचर होते हैं और उनका तथाकथित पालि-भाषा से क्या सम्बन्ध है, इसका विस्तृत विवेचन हम यहाँ अध्याय में कर चुके हैं । गिरनार (पश्चिम) जौगाह (पुर्व) और मनसेहर (उत्तर) के अभिलेखों की भाषा का तुलनात्मक अध्ययन और अनेक विद्वानों के एतद्विषयक मतों की समीक्षा वही को जा चुकी है । अतः यहाँ हम केवल पालि साहित्य के विकास पर इन अभिलेखों से जो प्रकाश पड़ता है उसी का विवेचन करेंगे । इस दृष्टि से अशोक के भाग्न शिलालेख का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है । विषय-भीरुद की दृष्टि से भी यह लेख अत्यन्त महत्वपूर्ण है । अतः उसे यहाँ उद्दृत करना ही अधिक उपयुक्त होगा ।

### ( भाग्न शिलालेख )

प्रियदर्शि लाजा मागधं संघं अभिवादनं आहा, अपावावतं च कासु विहालत चा । विदित वे भन्ते आवतके हमा बुधसि पञ्चसि संघसिति गलवेच पसादे च एके ति भते भगवता बुधेन भासिते सबे से गुभासिते चा एचु गो भते हृमियाये दिसेया संघ में बिलठितोके होसतीति अलहामि दृक् तं बतवे । इमानि भते धंम पलियायानि विनयसमुक्तसे, अलिय वसानि, अनागतभग्यानि, मुनिगाया, मोनेय सूते, उपति-सपतिने ए च लाहुलोवादे मुसावाद अविगिच्छ भगवता बुधेन भासिते । एतान भते धंमपलियायानि इच्छामि । कि ति बहुके भिल्लपाये च भिल्लुनिये चा अभिविनं सूतयु चा उपालालेयेयु चा । हेव हेवा उपासका च उपासिका चा एतेनि भते इमं लिलागायामि अभिहेत म जानेताति ।

### ( हिन्दी-अनुवाद )

प्रियदर्शि राजा मगध के संघ को अभिवादन करता है और उनका कुशल-मंगल चाहता है । भन्ते ! आपको मालूम ही है कि बुद्ध, धर्म और संघ के

प्रति मेरे हृदय में कितना आदर और अदा है । भन्ते ! भगवान् ने जो कुछ कहा है, सब मुन्दर ही कहा है । भन्ते ! जो कुछ मुझे कहना है, उसे कहता है, ताकि लद्धमें चिरस्थानी हो ।

भन्ते ! ये धर्म-परिवाय हैं—विनय-समुक्तपै, आपेक्षा, अनागतभय, मुनिगावा, मोनेश्य-सूत्र, उपतिष्ठ प्रश्न, और राहुलोवाद-सूत्र, जिसमें भगवान् ने मूरावाद के विषय में उपदेश दिया है । भन्ते ! मैं चाहता हूँ कि सभी भिक्षु, भिक्षुणियों, उपासक तथा उपासिकाएं, इन्हें सदा सूर्णे और पालन करें । भन्ते ! इसीलिए मैं यह लेख लिखवा रहा हूँ, ऐसा समझे ।”

उपर्युक्त अभिलेख में सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि यहाँ अशोक ने कुछ बुद्ध-बचनों (धर्म-परिवाय) के नाम लेकर भिक्षु-भिक्षुणियों और उपासक-उपासिकाओं सभी को उनका सतत स्वाध्याय करने की प्रेरणा की है । उसने बुद्ध-बचनों के कुछ ऐसे अंशों को चुना है जिनकी महत्ता सांबंजनीन है और जिनमें सदाचार के उस रूप की प्रतिष्ठा की गई है जिसका आचरण स्त्री-युवती सभी कर सकते हैं । जिन सात धर्म-परिवायों या धर्म परिपायों को अशोक ने गिनाया है, वे प्रायः उन्हीं नामों में वर्तमान पालि-विषिटक में भी विद्यमान हैं । किस-किस धर्म-परिवाय की अनुसृतता पालि विषिटक के किस किस अंश या सूत्र के साथ है, वह नीचे लिखे विद्वानों के एतद्विषयक भट्टों से, जिनमें कहीं कहीं कुछ अन्य विभिन्नता भी है, स्पष्ट होगा ।

## १—विनय-समुक्तपै (विनय-समुक्तपै)

१. विनय का उल्काण्ठ उपदेश या पातिमोक्ष—डा० रायस डेविड्स और ओल्डनवर्म<sup>१</sup>

१. सेकेंड बृक्स आंव दि ईस्ट, जिल्ड तेरहबीं पृष्ठ २६ (भूमिका), अलग अलग भी रायस डेविड्स : जनेल आंव रायल एशियाटिक सोसायटी, १८९८, जनेल आंव पालि टेक्स्ट सोसायटी १८९६; बूद्धिस्ट इंडिया, पृष्ठ १६९; इसी प्रकार ओल्डन बर्म : विनय-पिटक, जिल्ड पहली पृष्ठ ८० में टिप्पणी (विनय-पिटक का रोमन-लिपि में संस्करण, पालि टेक्स्ट सोसायटी द्वारा प्रकाशित) ।

२. बुद्ध की सामूक्षिकिका 'धर्मदेसना' (जैवा उठानेवाला धर्मोपदेश) जिसका उपदेश बाराणसी में दिया गया (अर्थात् धर्मवक्तव्यतात्मक-सूत) — ए० जे० एडमंडू<sup>१</sup>

३. सप्तुरिस-सूत (मजिभ्रम ३।२।३) या अंगुतर-निकाय का विनय-संबंधी उपदेश (अत्यवस्थग) — प्रो० मित्र<sup>२</sup>

४. 'गिहि-विनय' (गृह-विनय) नाम से प्रसिद्ध सिंगालीबाद-सूत (दीष ३।८) तथा 'भिक्षु-विनय' (भिक्षु-विनय) के नाम से प्रसिद्ध अनुमान-सूत (मजिकम) — डा० वेणीमाधव बाहुआ<sup>३</sup> ।

५. तुवट्ठक-सूत (सूत-निपात) — प्रो० भंडारकर

### २. अलियवसानि ( आर्यवंश )

१. अंगुतर-निकाय के चतुरक-निपात में निदिष्ट चार आर्य-वंश — आचार्य घर्मानन्द कोसम्बी<sup>४</sup>

२. अंगुतर-निकाय के दसक-निपात अथवा दीष-निकाय के संगीति-परियाय सूत और दसुतर-सूत में निदिष्ट दस आर्य-वास — डा० रामस डेविड्स<sup>५</sup>

### ३. अनागत-भयानि

१. अंगुतर-निकाय के पंचक निपात में निदिष्ट पाँच अनागत-भय — डा० रामस डेविड्स<sup>६</sup>

१. जनंल आंब रायल एंजियाटिक सोसायटी, १९१३, पृष्ठ ३८५

२. लाहा : हिस्ट्री आंब पालि लिटरेचर, जिल्ड द्विसरी, पृष्ठ ६६५ में उद्धृत ।

३. जनंल आंब रायल एंजियाटिक सोसायटी, १९१५, पृष्ठ ८०५

४. इंडियन एंटिक्वरी ४१, ४०

५. ऊपर उद्धृत पद-संकेत १ के समान ।

६. जनंल आंब रायल एंजियाटिक सोसायटी १९१६ ।

## ४. सुनि गाथा

१. मुनि-सूत (मुत्त-निपात) — डा० रायस डेविड्स<sup>१</sup>

## ५. मोनेय्य-सूते ( मोनेय्य-सूत्र )

१. नालक-सूत (मुत्त-निपात) — आचार्य गर्मानन्द कोसम्बी<sup>२</sup>२. ब्रह्मतावना की छोड़कर नालक-सूत वा शेष भाग — डा० बणीमाधव वाहूआ<sup>३</sup>३. मोनेय्य-सूत — डा० रायस डेविड्स<sup>४</sup>४. 'इतिवृत्त' के ६७ वें सूत एवं बंगुत्तर-निकाय के तिक-निपात में निर्दिष्ट मोनेय्यानि — डा० विटरनित्ता<sup>५</sup>

## ६. उपतिस-पसने (उपतिष्ठ-प्रश्न)

१. सारिपुत्र-सूत (सूत-निपात) — कोसम्बी और वाहूआ<sup>६</sup>२. मणिमम-निकाय के रथविनीत सूत (१३।४) में निर्दिष्ट उपतिष्ठ प्रश्न — न्यूमैन<sup>७</sup>

१. उपर्युक्त के समान

२. इंडियन एटिम्बरो, ४१, ४०

३. जर्नल आ॒व रायल एशियाटिक सोसायटी, १९१५, पृष्ठ ८०५

४. उपर्युक्त पद-संकेत १ के समान

५. हिस्ट्री आ॒व इंडियन लिटरेचर, जिल्ड दूसरी, पृष्ठ ६०७ (परिशिष्ट ३)

६. उपतिष्ठ सारिपुत्र का नाम है। चूंकि सुत्त-निपात के सारिपुत्र-सूत में सारि-पुत्र में कुछ प्रश्न किए हैं जिनका उत्तर बुद्ध ने दिया है, अतः यह प्रायः सुनिदिष्ट ही है कि जबोक का तात्पर्य इसी उपदेश से वा।

७. इन विद्वानों के लेखों का निवेदण ऊपर हो चुका है। जा० विटरनित्त को भी पही मत मान्य है। वेलिये उनका हिस्ट्री आ॒व इंडियन लिटरेचर, जिल्ड दूसरी पृष्ठ ६०७ (परिशिष्ट ३)

८. विटरनित्त : हिस्ट्री आ॒व इंडियन लिटरेचर, जिल्ड दूसरी, पृष्ठ ६०६ में बढ़ूत।

७. लायुलोवादे मुसावादे अधिगिर्च भगवता बुधेन भासिते  
 (राहुल को उद्देश्य कर मूयावाद के संबंध में भगवान् बुद्ध का दिया हुआ  
 उपदेश )

१. राहुलोवाद-मृत्यु (मजिमम ३।५।५) — डा० रायस डेविड्स<sup>१</sup>
२. अम्बलटिठक-राहुलोवाद-तृतीय (मजिमम २।२।१) — एम० सेन०<sup>२</sup>

उपर्युक्त विवरण का ऐतिहासिक साक्ष और महत्व स्पष्ट है । यथापि भास्त्र-  
 शिलालेख में निर्दिष्ट अम्ब-अशोकों की पालि-त्रिपिटक के विशिष्ट सूत्रों से पहचान  
 करने में विद्वानों में कुछ मत-भेद अवश्य हैं, किन्तु यह मतभेद बहुत अल्प है और  
 अधिकांश तो एक ही विषय के पालि-त्रिपिटक में अनेक स्थलों में प्रायः समान  
 अवधीं में बर्णन करने के कारण ही है । अतः यह कहना इसके साक्ष को अतिरंजित  
 करना नहीं होगा कि जिस समय अशोक का यह शिलालेख लिखा गया, अर्थात्  
 तीव्रीय शास्त्री इसकी पूर्व, पालि त्रिपिटक अपने उसी रूप में और अपने सूत्रों के  
 प्रायः उन्हों नामों के साथ, जिनमें वह आज पाया जाता है, विचारान् या । अशोक  
 के प्रजापतों को भाव-दौली से भी यही परिलक्षित होता है । उन पर बुद्ध-वचनों  
 का, जैसे कि वे आज पालि-त्रिपिटक में निहित हैं, पर्याप्त प्रभाव दृष्टिगोचर होता है ।  
 ही, विशेषता केवल यही है कि उसने बुद्ध-वचनों के अधाह समुद्र में से केवल ऐसे  
 सूवचनों को चुन लिया है, जिनका उपदेश सर्व-साधारण के लिये, जिनमें विशेषतः  
 गृहस्थों की ही अधिकता होती है, उपकारी हो सकता या । यही कारण है कि चार  
 अर्थ-सत्य, अर्थ-अष्टागिक मार्ग, प्रतोत्य समुत्पाद, निर्विण जैसे गम्भीर विषयों

१. जनरल ऑफ रायल एशियाटिक सोसायटी, १८९८

२. जनरल एशियाटिक, १८८४, विल्ड टीसरी पृष्ठ ४७८

३. डा० वेणीमाधव वाहुआ इसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं, किन्तु विटरनित्त ने उसके  
 इस निष्कर्ष को कुछ अतिरंजित माना है । देखिये उनका हिस्ट्री ऑफ इंडियन  
 लिटरेचर, जिल्ड दूसरी, पृष्ठ ६०८; फिर भी विटरनित्त ने उन विद्वानों के  
 साथ भी सहमति नहीं दिलाई है जो अशोक के समय किसी भी प्रकार के  
 पालि-त्रिपिटक का अस्तित्व स्वीकार नहीं करते । देखिये वहीं पृष्ठ ६०८-०९।

का उत्तरेख न कर उसने जन-साधारण के सामने इस लोक के साधारण सामाजिक, पारिवारिक और आधुनिक भाषा में कहे तो नागरिक कर्तव्यों का उपदेश रखना है जिसे पालि-त्रिपिटक के सिगालोबाद (या सिगालोबाद)-सृत् (दीप्त. ३।८) लक्षण-सृत् (दीप्त. ३।७) और महामंगलसृत् (सृत-निपात) जैसे भाषा में गृहस्थों को लक्ष्य कर सिखाया गया है। 'सिगालोबाद-सृत्' तो पूरे अवों में 'गिह-विनय' (गृह-विनय) ही कहा गया है। अशोक ने जिस-धर्म को सिखाया है उसमें प्राणधारियों की अहिंसा (अनारम्भो प्राणानं) जीवों को कष्ट न पहुँचाना (अविहिमा भूतान) माता-पिता की सेवा (मातरि पितरि सुख्सामा), बड़ों का आदर (येर-सुख्सामा), मित्र, परिचितों, सम्बन्धियों, बाह्यों और श्रमणों के प्रति उदारता और शिष्टता का व्यवहार (मित-संस्तुत-प्रतिकानं ब्राह्मण समणानं दानं सम्पटिपति), गृहों का सम्मान (गृहन अपचिति), दासों और नौकरों के साथ शिष्टता और उदारता का व्यवहार (दास-भतकाम्भि सम्पटिपति), मितव्ययता और अल्प संश्वेष करना (अपव्ययता, अपभोडता) आदि सामाज्य लोक-धर्म की बातें ही हैं। बुद्ध ने यही धर्म साधारण जनता को सिखाया था। 'सिगालोबाद-सृत्' के इस संक्षिप्त उद्धरण को ही देखिये—

"माता-पिता पूर्व दिशा हैं, आचार्य दक्षिण दिशा ।

पुत्र-स्त्री पश्चिम दिशा हैं, मित्र-अमात्य उत्तर दिशा ।

दास-कर्मकर नौकरों की दिशा हैं, अमण-ब्राह्मण ऊपर की दिशा ।

गृहस्थ को अपने कुल में इन दिशाओं को अच्छी तरह नमस्कार करना चाहिये ।"<sup>१</sup>

निश्चय ही अशोक ने अपने 'धर्म' को ऐसे ही बुद्ध-वचनों से पाया है। ऊपर भावू पिलालेख में उसकी बुद्ध-भक्ति दिखाई ही जा चुकी है। सांची प्रयाग और सारनाथ के अपने स्तम्भ-प्रज्ञापत्रों में संघ-भेद को रोकने के लिये जो तत्परता दिखाई है, वह भी स्पष्ट ही है। बास्तव में उसने अपने सारे जीवन-कार्यों में चक्रवर्ती धर्मराज के उस आदर्श को पूर्ण करने का प्रयत्न किया जो पालि-त्रिपिटक

१. दीप्त निकाय, पृष्ठ २७६ (राहुल सांहृत्यावन का अनुवाद)

में उपदिष्ट किया गया है। लक्षण-सूत (दोष ३१७) के अनुसार “चक्रवर्ती, धार्मिक, धर्मराज, चारों दिशाओं को जीतकर, सागर-पर्यन्त इस पूर्वी (भारतभूमि) को दृढ़ और शस्त्र से नहों, किन्तु धर्म से जीतकर उसके ऊपर शासन करता है”<sup>१</sup>। अशोक को धर्म-विजय का, उसकी प्राणि-अविहिसा का, जाति-धर्म-निर्विशेष, संपूर्ण मनुष्य-जाति को सेवा के उसके उच्च आदर्श का, इसके अलावा और अर्थ ही क्या हो सकता था? अतः यह निर्विवाद है कि अशोक की प्रेरणा का मूला-धार बुद्ध-धर्म हो था। किस प्रकार धर्म-दान की प्रशंसा करते हुए अशोक ने धर्मपद की एक गाथा (२।१) को अतिष्ठनित किया है, जिसका किस प्रकार उसके नवे शिलालेख के काल्पी, शहवाजगढ़ी और मनसेहर के संस्करण के अन्तिम भाग की शैली ‘कथावल्य’ से मिलती जूलती है, यह हम पहले दिखा चुके हैं। अतः यह नियमदेह है कि अशोक के शिलालेखों का साक्ष्य उसके बुद्ध-वचनों या पालि-त्रिपिटक के उस रूप से परिचित होने के पक्ष में है जो हमें आज प्राप्त हैं और जिसमें से ‘गृह-विनय’ के ही लोक सामान्य आदर्श को लेकर अशोक ने स्वयं (अपने गृहस्थ शासक होने को अवस्था में) उसको अपनाया और उसी को अपनी प्यारी जनताओं को भी सिखाया।

अशोक के अभिलेखों के अलावा अन्य प्रमूल पालि अभिलेख-साहित्य भी हमें आज प्राप्त हैं। यह बहुत पुराना भी है और उसकी परम्परा ठीक अर्थात् एक काल तक चलती आ रही है। तीसरी और दूसरी शताब्दी ईसवी पूर्व से लेकर ठीक अठारहवीं शताब्दी तक के पालि अभिलेख हमें प्राप्त हैं। यद्यपि इन सब अभिलेखों का साहित्यिक महत्व और ऐतिहासिक साक्ष्य अशोक के अभिलेखों के समान महत्वपूर्ण नहीं है, किन्तु इनमें से अधिकांश पालि-साहित्य के विकास की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण हैं। उसकी विकास परम्परा के विभिन्न

१. चक्रवर्ती धर्मिकों धर्मराजा चातुरल्तो विजिता बीसो इम पठावि सागर-परियन्तं अदण्डेन असत्येन अभिविजिय अज्ञावसति । लक्षणसूत (दोष ३१७)

पहले दो को समझने के लिए वे प्रकाशगृह का काम देते हैं। हम इन सात मूर्ख अभिलेखों का यही उल्लेख करेंगे (१) साँची और भारहुत के अभिलेख, (२) सारनाथ के कनिष्ठकालीन अभिलेख, (३) मौग्न (वरमा) के दो स्वर्ण-यज्ञ लिख (४) मञ्जा (प्रोम-वरमा) का पांचवी-छठी शताब्दी का स्वर्ण-यज्ञ लेख (५) मञ्जा (प्रोम-वरमा) के दोबोनी पेगोडा में प्राप्त लिखित पाण्डाण-लेख (६) १४८२ ई० का पेग्न (वरमा) का अभिलेख, और (७) रामध्य-देश (पेग-वरमा) के राजा धम्मचेति का १४७६ ई० का प्रसिद्ध कान्यागाँ-अभिलेख।

### साँची और भारहुत के अभिलेखः

प्रायः सभी पुरातत्त्वविदों का इस विषय में एक मत है कि साँची और भारहुत के स्तूपों तीसरी-दूसरी शताब्दी ईसवी पूर्व के हैं। इन स्तूपों की पापाण लेखनियों पर जो लेख उत्कीर्ण हैं और प्राचीन बौद्ध गाम्भारों के जो लिख अंकित हैं, वे भारतीय पुरातत्त्व की तो अमूर्त्य निधि हैं ही, पालि-विपिटक की प्राचीनता और प्रामाणिकता को विख्याते के लिए भी उसका प्रमाण अनितम और पूर्णतम रूप से निश्चित है। हम पहले लिख चुके हैं कि इन स्तूपों के लेखों में भिक्षुओं के विशेषण-स्वरूप 'मूलन्तिक' 'पेटकी' 'धम्मकथिक' 'पञ्जनेकायिक' 'भाणक' जैसे शब्दों का प्रयोग किया गया है, जिससे स्पष्ट है कि जिस समय ये लेख लिखे गये थे वृद्ध बच्चों का "पिटक" 'सूत्र' 'पञ्च निकाय' आदि में वर्गीकरण प्रसिद्ध था और उसका संग्रहन करने वाले (भाणक) भिक्षु भी गये जाते थे। अतः पालि विपिटक प्रायः अपने उसी विभाजन में जिसमें वह जाज उपलब्ध है, तीसरी-दूसरी शताब्दी ईसवी पूर्व भी पाया जाता था, यह निश्चित

१. साँची और भारहुत के अभिलेखों के अध्ययन के लिए देखिये विशेषतः बाड़आ और सिह "भारहुत इन्सर्किडान्स" कलकत्ता १९२६; में से : साँची और इट्स-रिमेन्ट लन्दन १८९२, मार्शल : ए. माइड टू साँची, कलकत्ता १९१८; हिन्दी में अभी इस विषयक विशेषतापूर्ण अध्ययन नहीं किया गया।

है। एक और प्रमाण भी इन्हीं स्त्रीों से इस निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए उपलब्ध है। भारहृत और सौन्ही की पाराण-वेदनियों पर बोहु गाथाओं के चित्र अंकित हैं, जो जातक की अनेक गाथाओं में विचित्र समानता रखते हैं। इतना ही नहीं, भारहृत-स्त्रीप में तो कुछ जातक-गाथाओं के नाम तक भी उल्लिखित हैं, जो इस प्रकार हैं (१) वितुर पुनाक्षय (२) मिग (३) नाम (४) घवमभक्षय (५) मुगपक्षय, (६) लतुवा (७) छन्दनिय (८) इसिमिगिय, (९) य वरमो ब्रवयेसि, (१०) हस, (११) किनर (१२) इसिमिगो (१३) जनोको राजा, (१४) मिकला देवी (१५) उद (१६) सेत्र (१७) मुजतो गढ़तो (१८) विड़ल जातक (१९) कुकुट जातक (२०) मधादेविय (२१) भिस और (२२) हरणिय। इन जातकों की गाथाएँ और कहीं कहीं नाम भी आज प्राप्त 'जातक' की इन कहानियों से समानता रखते हैं (१) विधूर पडित (२) निशोध (३) कक्कट, (४) महाउम्भम्भ (५) मुगपक्ष (६) लतुकिका (७) छहन्त (८) अलम्बुस (९) अन्धभूत, (१०) नच्च, (११) चन्द, (१२) किनर, (१३) मिगपोतक, (१४) महाजनक, (१५) दब्ब-गुफ, (१६) द्रुभिय मक्कट, (१७) मुजात, (१८) कुकुट, (१९) मत्वादेव और (२०) भिस जातक। भारहृत-स्त्रीप में कहीं कहीं दृश्य तो अंकित है किन्तु नीचे उनके नाम नहीं दिये गये हैं। फिर भी इन चित्रों से विदित होता है कि वे पालि-जातक की कुछ कहानियों के चित्रों को ही अंकित करते हैं। इस प्रकार की 'जातक' की कहानियाँ जो यही अंकित हैं, मे हैं (१) कुरुंग-मिग (२) सन्धि-भेद, (३) असदिस, (४) दसरथ, (५) महाकपि, (६) चम्मसतक, (७) आदाम-दूसक और (८) कपोत जातक। अतः इन सब साध्यों से स्पष्ट है कि न केवल पालि-विपिटक बल्कि उसके उसके कुछ विशिष्ट ग्रन्थ भी अपने उसी स्वरूप में, जैसे वे आज हैं, तृतीय-द्वितीय शताब्दी ईसवी पूर्व में विद्यमान थे। इस प्रकार सभी और भारहृत के महत्वपूर्ण अभिलेख और चित्र अशोक के शिलालेखों के साध्य का ही अनुमोदन करते हुए 'तेपिटक' बुद्ध-बचनों की प्रामाणिकता का साध्य देते हैं।

## सारनाथ के कनिष्ठकालीन अभिलेख

सारनाथ संग्रहालय में लवे जाकार को बोधिसत्त्व की एक मूर्ति सुरक्षित है। उस पर तीन अभिलेख अंकित हैं, जो कुषाण-राजा कनिष्ठ के शासन-काल के नीमरे वर्ष अंकित किये गये थे। इन लेखों का विषय बुद्ध का 'धर्मचक्र-पवतन' है। एचवर्गीय भिक्षुओं के प्रति भगवान् ने बाराणसी में चतुराय सत्य-विवरक जो उपदेश दिया वह यही इन शब्दों में अंकित है "चत्तारि मानि भिक्षुवे अरियसच्चानि। कतमानि चत्तारि ? दुःखं दि भिक्षुवे अरिय सच्चं । दुःखसमुदयो अरियसच्च दुःख निरोधो अरियसच्च दुःखनिरोधो गमिनीति पटिपदा ।" इसका हिन्दी अनुवाद है—"भिक्षुओ ! ये चार आर्य सत्य हैं ? कौन से चार ? भिक्षुओ ! दुःख आर्य सत्य है, दुःख-समुदय आर्य-सत्य है, दुःख निरोध आर्य-सत्य है, दुःख निरोध गमिनी प्रतिपदा (मार्ग) आर्य सत्य है ।" 'धर्मचक्रपवतनसूत्र' का यह अशरणः उद्धरण ही है। कनिष्ठ ने इसे अंकित करवाकर उसी स्थान पर रखा जहाँ पर कि वह ऐतिहासिक रूप से प्रथम बार दिया गया था, इससे स्पष्ट विदित होता है कि इसी सन् के लगभग (कनिष्ठ का समय) पालि-माध्यम में निहित बुद्ध-वचन ऐतिहासिक रूप से प्रामाणिक माने जाते थे। अदोक तथा सौची और भारहृत के अभिलेखों के कालक्रम से प्राप्त सादृश्य का इस प्रकार यह अभिलेख भी अनुमोदन करता है।

## मौगन (बरमा) के दो स्वर्णपत्र-लेख

स्वर्णपत्रों पर लिखे हुए दो पालि-अभिलेख बरमा में प्रोम के समीप मौगन नामक स्थान पर मिले हैं। संभवतः ये पौच्छी-छठी यातावी ईसवी के हैं और दक्षिण भारत की कदम्ब (कन्त्य-तेलगु) लिपि में लिखे हुए हैं। प्रथम अभिलेख यह है "ये बम्मा हेतुप्रभवा तेस हेतु तथागतो बाह तेस च निरोधो एववादो महासमणो ति, चत्वारो सम्मप्यधाना, चत्वारो सतिपट्ठाना, चत्तारि अरियसच्चानि, चतु वेसारज्जनि पञ्चवन्दियाणि, पञ्च चतुर्भुजि, छ असद्वारणानि, सत्त बोजभग, अरियो अट्ठंगिको मग्गो, नव लोकुत्तरा बम्मा, इस बलानि, चहुस बुद्धज्ञाणानि, अट्ठारस बुद्धधम्मा

ति ।” इसका हिन्दी अनुवाद इस प्रकार है “जो धर्म हेतुओं से उत्पन्न है उनके हेतु को तबागत बतलाते हैं और उनके निरोध को भी, उन महासमरण का यही मत है, जैसे कि चार सम्यक् प्रधान, चार स्मृति-प्रस्थान, चार आर्य-सत्य चार वैशास्त्रदृष्टि, पाँच इन्द्रिय, पाँच वश, छह असाधारण, दस बल, चौदह बुद्ध-ज्ञान, एवं अठारह बुद्ध-धर्म ।” इस अवतरण का प्रथम भाग अर्थात् यह अंश “जो धर्म हेतुओं से उत्पन्न है उनके हेतु को तबागत बतलाते हैं और उनके निरोध को भी, यही उन महासमरण का मत है” बुद्ध के सारे मन्तव्य को जैसे एक संयोग सूत्र में ही रख देता है । पालि-विग्रिप्तिक में भी यह बहुत प्रसिद्ध है । अस्सजि (अस्वजित) नामक भिक्षु ने यही कहकर प्रथम चार सारिपुत्र को बुद्ध-मन्तव्य का परिचय दिया था । बाद के अंश में बोधिपद्धीय धर्मों का परिमणन कराया गया है जो बुद्ध के नैतिक आदर्शबाद को एक परिपूर्ण सूची है । स्थविरबाद बौद्ध धर्म बुद्ध-धर्म के नैतिक मिद्दांतों को जाहार मानकर भगवान् बुद्ध द्वारा उप-दिष्ट बोधिपद्धीय धर्मों को ही उनका मूल्य मन्तव्य मानता है । पाँचवीं छठी शताब्दी में बरमी बौद्ध धर्म की प्रगति पर यह स्वर्ण-पत्र लेख अच्छा प्रकाश दालता है । द्वितीय स्वर्णपत्र पर भी प्रथम लेख के आदि का अंश अंकित है किन्तु उसके बाद यही विरतन की बन्दना और अंकित है, यथा—‘तिपि भी भगवा अरहं सम्मा सम्बुद्धो विज्ञानरणसम्पदो सुगतो लोकविदु अनुत्तरो पुरसिद्धमसारविसत्त्वादेव मनुस्सानं बुद्धो भगवाति । यह भी पालि विग्रिप्तिक का ही एक उद्धरण है । इसका हिन्दी अनुवाद है “वे भगवान् अहंत्, सम्पद्, सम्बुद्ध, विद्या-वरण सम्पद, सुगत, लोकविद, अद्वितीय पुरश्च-दम्य सारथी, देव और मनुष्यों के शास्ता, भगवान् बुद्ध हैं” बुद्ध-भवित के उद्गार-स्वरूप ही ये लेख लिखे गये हैं ।

### मञ्जुश्री का पाँचवीं-छठी शताब्दी का स्वर्णपत्र-लेख

बरमा में प्रोम के पास मञ्जुश्री नामक स्वान पर बीस स्वर्ण-धर्मों पर लिखा हुआ एक पालि अभिलेख पाया गया है । यह भी दक्षिण-भारत की कन्नड़-तेलगु प्रकार की लिपि में लिखा हुआ है । इस अभिलेख में विनय और

अभिघम्म पिटक के कुछ उद्दरण अंकित हैं। वरमा में पालि-चौदृष्ट समूह के विकास के इतिहास पर इस अभिलेख से पर्याप्त प्रकाश पड़ता है।

### मवज्ञा के बोशोगी पेगोडा में प्राप्त खंडित पाषाण-लेख

वरमा में मवज्ञा (प्राचीन ग्रोम) के बोशोगी पेगोडा में सन् १९१०-११ ई० में तीन खंडित पाषाण-लेख मिले, जो समवत छठी शताब्दी ईसवी के हैं। इनको लिपि भी दक्षिण भारत की कन्नड़-लेख लिपि से मिलती जाती है। इन अभिलेखों में पालि-त्रिपिटक विशेषत, अभिघम्म-पिटक के ही किसी पन्थ का उद्दरण है, जिसका अभी निश्चयन पता नहीं लगाया जा सका है। इस अभिलेख से वरमा को अभिघम्म-पिटक सबधी अध्ययन को ओर विशेष गति का जो बहाँ प्रारंभ से ही रही है, पता चलता है।

### १५४२ ई० का पेगन (वरमा का अभिलेख)

वरमा के तीनदिन नामक प्रान्त के प्रान्तपर्ति बीढ़ उपासक और उसकी पत्नी ने १५४२ ई० में वहाँ के मिशु-नंवर को कुछ महत्वपूर्ण दान दिया था। उसी की स्मृति को सुरक्षित रखने के लिए यह लेख अंकित करवाया गया था। इस लेख में अन्य वालों के साथ साथ उन प्रन्थों का भी उल्लेख है जिनका दान उक्त प्रान्तपर्ति ने मिशु-नंवर को दिया था। अतः वरमा में पालि-साहित्य के विकास को दृष्टि से इस अभिलेख का एक विशेष महत्व है। एक विशेष महत्व-पूर्ण दान इस अभिलेख की यह भी है कि यहाँ पालि-ग्रन्थों की सूची में अमरकोश, वृत्तरत्नाकर जैसे कुछ संस्कृत-ग्रन्थ भी सम्मिलित हैं, जो वरमा में तटियवक अध्ययन को परम्परा का अच्छा साध्य देते हैं। पन्द्रहवीं शताब्दी तक वरमी पालि साहित्य को प्रगति को दिलाने के लिए यथापि इस अभिलेख से निर्दिष्ट ग्रन्थों का अधिक विवेचन अपेक्षित है, किन्तु विस्तार भय से हम यहाँ ऐसा न कर केवल उनका नाम परिचय भाव ही करते हैं। जिनकी भी संख्या २९५ है। यथा—(१) परामिकहड़, (२) पाचित्तिय, (३) भिक्षुनी, विभंग, (४) विनय-महावदमा,

१. विशेष विवेचन के लिए तो देखिए मेंब्रिल बोड : दि पालि लिटरेचर और वरमा, पृष्ठ १०१- १०९।

- (५) विनय-बूलवग्ग, (६) विनय-परिकार, (७) पाराजिक-कंड अट्ठकथा,  
 (८) पाचितियादि-अट्ठकथा (९) पाराजिककंड-टोका, (१०) तेरसकंड  
 टीका, (११) विनय-नंशह-अट्ठकथा विस्तृत, (१२) विनय-नंशह-अट्ठकथा  
 (सधित), (१३) कंडा वितरणी-अट्ठकथा, (१४) खुदक सिक्का टोका,  
 (प्राचीन), (१५) लुइक मिक्का टीका (अभिनवा), (१६) कल्पा-टीका  
 (अभिनवा), (१७) विनय नफ्टियद, (१८) विनय-उत्तर-सिचय-अट्ठकथा,  
 (१९) विनय-सिचय-टोका, (२०) विनयकल्पन निहेस, (२१) घम्मसगणि, (२२)  
 विभंग, (२३) धातुकाथा, (२४) पुगलपञ्चाति, (२५) कवावत्ता, (२६)  
 मूलवमक, (२७) इन्द्रिय वमक, (२८) तिक-पट्ठान, (२९) दुक-तिक-पट्ठान,  
 (३०) दुक-पट्ठान, (३१) अट्ठसालिनी-अट्ठकथा, (३२) सम्मोह विनोदनी-  
 अट्ठकथा, (३३) पञ्चकल्पकरण कथा, (३४) अभिधम्म-जनुटोका, (३५)  
 अभिधम्मत्वसंगह-अट्ठकथा, (३६) अभिधम्मत्वसंगह-टीका, (३७) अभिधम्मत्व  
 विभावनी-टीका, (३८) सोलक्षन्त, (३९) महावग्ग, (४०) पाथेय, (४१)  
 सोलक्षन्त-अट्ठकथा, (४२) महावग्ग-अट्ठकथा, (४३) पाथेय-अट्ठकथा,  
 (४४) सोलक्षन्त टीका, (४५) महावग्ग-टीका, (४६) पाथेय-टोका, (४७)  
 मूलपण्णास, (४८) मूलपण्णास-अट्ठकथा, (४९) मूलपण्णास-टीका, (५०)  
 मजिस्मपण्णास, (५१) मजिस्मपण्णास-अट्ठकथा, (५२) मजिस्मपण  
 टीका, (५३) उपरिपण्णास (५४) उपरिणास-अट्ठकथा (५५) उपरिणास  
 टीका (५६) सगाववग्ग-संयुत, (५७) सगाववग्गसंयुत-अट्ठकथा, (५८)  
 सगाववग्गसंयुत-टीका, (५९) निदानवग्ग-संयुत, (६०) निदानवग्ग संयुत-  
 अट्ठकथा, (६१) खनवग्गसंयुत, (६२) खनवग्ग संयुत-टीका, (६३)  
 नडायतन वग्ग-संयुत, (६४) सठायतनवग्ग संयुत-अट्ठकथा, (६५) चतुकिनि-  
 पात-अंगुत्तर, (६६) अट्ठनव-निपात-अंगुत्तर, (६७) महावग्गसंयुत, (६८)  
 पञ्जनिपात-अंगुत्तर (६९) छपतनिपात-अंगुत्तर, (७०) अट्ठ-नव-निपात-  
 अंगुत्तर, (७१) दस-एकादस-निपात-अंगुत्तर, (७२) एकनिपात अंगुत्तर-टृकथा,  
 (७३) दुक-तिक-चतुक निपात-अंगुत्तर अट्ठकथा, (७४) पञ्चादि-अंगुत्तर-  
 अट्ठकथा भहित, (७५) घम्मपद अट्ठकथा सहित, (७६) उदान अट्ठकथा

सहित, (८०) इतिवृत्तक अट्ठकथा सहित, (८१) सुत-निपात, अट्ठकथा सहित  
 (८२) विमानवल्ल-अट्ठकथा-सहित, (८३) पेतवल्ल अट्ठकथा सहित, (८४)  
 येरगाथा अट्ठकथा सहित, (८५) चेरोगाथा अट्ठकथा सहित, (८६) पाठचरित्र  
 (८७) एक निपात जातक-अट्ठकथा, (८८) दुक्निपात जातक-अट्ठकथा, (८९)  
 तिक निपात जातक-अट्ठकथा, (९०) चतुक-पच-छनिपात जातक अट्ठकथा,  
 (९१) सत-अट्ठकथा, (९२) दस-एकादस निपात जातक ट्ठकथा, (९३) डाबस-  
 तेरस-यक्षिणक निपात-जातक-अट्ठकथा, (९४) बीसतिजातक-अट्ठकथा,  
 (९५) जाततको-सोततको-निदान-अट्ठकथा, (९६) चूलनिहेस, (९७) चूल-  
 निहेस-अट्ठकथा, (९८) महानिहेस, (९९) महानिहेस, (१००) जातक-टीका,  
 (१०१) दुम-जातक-अट्ठकथा, (१०२) अपादान, (१०३) अपादान-अट्ठ-  
 कथा, (१०४) पटिसम्भदामग्न, (१०५) पटिसम्भदामग्न-अट्ठकथा, (१०६)  
 पटिसम्भदामग्न-गणिपद, (१०७) विसुद्धिमग्न-अट्ठकथा, (१०८) विसुद्धि-  
 मग्न-टीका, (१०९) दुद्धवंस-अट्ठकथा, (११०) चरियापिटक-अट्ठकथा,  
 (१११) नामस्प टीका, (नवोन), (११२) परमत्व विनिश्चय, (११३)  
 मोह विनिश्चयनी, (११४) लोक-पञ्जाति, (११५) मोह नयन, (११६) लोकु-  
 ल्पति, (११७) अरणवति, (११८) छगति दीपनी, (११९) सहसरारसालिनी  
 (१२०) दसवल्ल (१२१) सहस्रवल्ल (१२२) महिल वल्ल (१२३)  
 चेटकोपदेस, (१२४) तवागतुपति, (१२५) घम्मचक (—पवतनसूत), (१२६)  
 घम्मचक-टीका, (१२७) दाठाघातुवंस, (१२८) दाठाघातुवंस-टीका, (१२९)  
 चूलवंस, (१३०) दोपवंस, (१३१) खूपवंस, (१३२) अनागतवंस, (१३३)  
 चोविवंस, (१३४) महावंस, (१३५) महावंस-टीका, (१३६) घम्मदान, (१३७)  
 महाकच्छायन, (१३८) न्यास, (१३९) बन-व्यन-टीका, (१४०) महापेर-  
 टीका, (१४१) रूपसिद्धि-अट्ठकथा, (१४२) बालावतार, (१४४) चूल  
 मोग्गलान, (१४५) पञ्चिक-मोग्गलान, (१४६) पञ्चिक मोग्गलान-टीका,  
 (१४७) कारिका (१४८) कारिका-टीका, (१४९) लिङ्गत्व विवरण (१५०)  
 लिङ्गत्व विवरण टीका, (१५१) मुखमत्तसार, (१५२) मुखमत्तसार-टीका,  
 (१५३) महागण, (१५४) चूलगण, (१५५) अभिघान, (१५६) अभिघान-  
 टीका, (१५७) सदनीति, (१५८) चूलनिराजि, (१५९) चूलसम्प विसोधन,

(१६०) सद्व्यमेवचिन्ता, (१६१) सद्व्यमेव चिन्ताटीका, (१६२) पदसोधन, (१६३) सम्बन्ध चिन्ताटीका, (१६४) स्वप्नतार, (१६५) सहायतार, (१६६) सद्व्यमदीपिका, (१६७) सोतमालिनी, (१६८) संबन्धमालिनी, (१६९) पदावहामहाचक्र, (१७०) प्वादि (मांगललाल) (१७१) कवचा (१७२) महाका, (१७३) बालतज्जन, (१७४) सूतावलि, (१७५) अवतरसम्मोहच्छेदनी, (१७६) जैतिद्विनेमिपरिगाया, (१७७) समासतद्विदीपिनी, (१७८) बीजकर्म, (१७९) कल्पायन-सार, (१८०) बालप्रबोधन, (१८१) अदृशालिनी, (१८२) अदृशालिनी निस्सय, (१८३) कल्पायन निस्सय, (१८४) सप्तसिद्धि निस्सय, (१८५) जातक निस्सय, (१८६) जातकगणिठ, (१८७) वर्मपदगणिठ निस्सय, (१८८) कम्मवाचा, (१८९) धम्मसत्त, (१९०) कलापपञ्चिका, (१९१) कलाप-पञ्चिका-टीका, (१९२) कलापसुत्त प्रतिज्ञासङ्कु, (१९३) प्रिन्डो-टीका, (१९४) रत्नमाला, (१९५) रत्नमाला टीका, (१९६) रोगनिदान, (१९७) दग्धमूल, (१९८) इत्र गुण-टीका, (१९९) छन्दोविचिति, (२००) चन्द्रप्रूति (चन्द्रवृत्ति), (२०१) चन्द्रपञ्चिकर, (२०२) कामन्दकी, (२०३) धम्मपञ्च-एकरण, (२०४) महोसद्दित, (२०५) सूबोधालकार, (२०६) सूबोधालकार-टीका, (२०७) तनोगवृद्धि, (२०८) तण्डि (सेभवतः दण्डी), (२०९) तण्डि-टीका, (२१०) चक्रदास, (२११) अस्त्रियसच्चावतार, (२१२) विचित्रगमन्य, (२१३) सद्व्यमपाय, (२१४) सार संग्रह, (२१५) सारपिण्ड, (२१६) पटि-पटिठं संग्रह, (२१७) सूलचारक, (२१८) पालतक्र, (२१९) उक्तमासा (उक्तमासा) (२२०) सइकारिका, (२२१) कासिकाद्वृतिपालिनी, (२२२) सद्व्यमदीपिका, (२२३) सत्यतत्त्वावबोध, (२२४) चूलनिरूति मंजूसा, (२२५) मंजूसा टीका व्याख्य, (२२६) चूलनिरूति मंजूसा, (२२७) अत्यव्याख्य, (२२८) अनुटीका व्याख्य, (२२९) पकिण्णक निकाय, (२३०) चत्वयपर्योग, (२३१) मत्वपर्योग, (२३२) रोगवाचा, (२३३) रोगवाचा-टीका, (२३४) सत्येक विपसवप्रकाश, (२३५) राजमत्तन्त, (२३६) परासव, (२३७) कोलदूज, (२३८) बृहज्ञातक, (२३९) बृहज्ञातक-टीका, (२४०) दाठा बातुवंस, टीका-सहित, (२४१) पतिक विवेक टीका, (२४२) अलंकार-टीका, (२४३) चलिन्द पञ्चिका, (२४४) वेदविविधिनिमित्तनिरूति वर्णना, (२४५) निरूति

व्याख्य, (२४६) वुत्तोदय, (२४७) वुत्तोदयटीका, (२४८) मिलिन्ड-पञ्चह, (२४९) सारथ्य संगह, (२५०) अमरकोस निस्सय, (२५१) पिण्डो निस्सय, (२५२) कलाप निस्सय, (२५३) रोगनिदान व्याख्य, (२५४) दत्तगण टीका, (२५५) अमरकोस, (२५६) दंडि टीका, (२५७) दंडिटीका (द्वितीय), (२५८) दंडिन्टोका (तृतीय), (२५९) कोलच्छज टीका, (२६०) अलंकार, (२६१) अलंकार-टीका, (२६२) भेसज्जमंजूसा, (२६३) युद्धजेय, (२६४) यतन प्रभा टीका, (२६५) विरस्थ, (२६६) विरस्थ-टीका, (२६७) चूला मणि-सार, (२६८) राजमस्तल टीका, (२६९) मृत्युवन्नन, (२७०) महाकाल खक्क, (२७२) महाकालखक्क-टीका, (२७२) परविवेक, (२७३) कञ्जायन रूपावतार, (२७४) पुम्परसारी, (२७५) तपतवावतार (तत्त्वावतार), (२७६) (२७७) न्याय विन्दु, (२७८) न्यायविन्दु टीका, न्यायविन्दु टीका, (२७९) हेतुविन्दु, (२८०) हेतुविन्दु टीका, (२८१) रिक्त- णिय यात्रा, (२८२) रिक्तणिय-यात्रा, टीका, (२८३) वरितरताकर (बृत रत्नाकर.) (२८४) श्वारमितकव्य, (२८५) युतिसंग्रह (२८६) युति संगहटीय, (२८७) सारसंगह निस्सय, (२८८) रोग यात्रा निस्सय, (२८९) रोग निदान निस्सय (२९०) सहृदयमेद चिन्तानिस्सय, (२९१) पारानिस्सय, (२९२) श्वार मितकव्य-निस्सय, (२९३) बृहज्ञातक-निस्सय, (२९४) रत्नाला, (२९५) नरयुति संगह ।

**रामण्य-देश (पेग-वरमा)** के राजा धर्मचेति का १४६७ ई० का कल्याणी अभिलेख

कल्याणी (पेग-वरमा)-अभिलेख रामण्य-देश (पेग-वरमा) के राजा धर्मचेति ने सन् १४६७ ई० में अंकित करवाया था । वरमा में बीदू धर्म के विकास, विशेषतः भिक्षु-संघ को प्रस्तुता, पर इस अभिलेख से पर्याप्त प्रकाश पड़ता है । भिलुओं के उपत्यकादा-संस्कार की विधि एवं विहार-सीमा के निर्णय करने के विषय पर राजा धर्मचेति के समय में वरमी भिक्षु-संघ में विवाद उपस्थित हो गया । इस विवाद का निश्चित समाधान करने के लिए प्राचीन बीदू साहित्य, विशेषतः विनय पिटक और उसकी अट्ठकथा एवं उपकारों साहित्य

का काफी गवेषण किया गया । उसके परिणाम स्वरूप जो निश्चित मार्ग दर्शन प्राप्त हुआ उसी का उल्लेख कल्याणी-अभिलेख में है । यह विषय बौद्ध किया-काण्ड से इतना संबंधित है कि उसका उद्दरण देने से यहाँ कोई विशेष प्रयोगन निष्ठ नहीं हो सकता । पालि-साहित्य के बरमा में विकास की दृष्टि से केवल इस अभिलेख पर अंकित उन पालि प्रन्थों के नाम महत्वपूर्ण हैं जिनकी सहायता उपर्युक्त विवाद के शमनार्थ लोगई थी । इन प्रन्थों में मैं मूल्य है—प्रातिमोक्ष खूदक-सिक्खा, विमति-विनोदिनी, विनय-पालि, वज्रवृद्धि स्थविर (वज्रिरवृद्धि थेर ।) हल विनय टीका या सारस्वदीपनी भातिकट्ठकथा या कल्पा वितरणी विनय विनिष्ठयप्पकरण, विनयसंग्रहप्पकरण, सीमालंकार पकारण, सीमालंकार तंगह जादि । जैसा स्पष्ट है, विनय-पिटक संबंधी साहित्य ही इसमें प्रधान है ।

कल्याणी-अभिलेख इस दिशा में पालि-साहित्य सृजन की अंतिम काल सीमा निश्चित करता है । वह उस प्रभूत पाल-साहित्य की ओर भी संकेत करता है जो लंका की तरह बरमा में भी लिला गया । पालि-साहित्य ग्रन्थपि संस्कृत की तरह एक पूरा वाङ्मयनहीं है, किरभी उसकी रचना भारत, लंका और बरमा तीन देशों में हुई है । उसकी अनेकविध विवरी हुई सामग्री इसका प्रमाण है । पालि में विभिन्न जान-वास्तवाओं पर ग्रन्थ नहीं लिखे गये । जो कुछ लिखे भी गये उनका भी आधार विशाल संस्कृत वाङ्मय ही था और उनका अपने जाप में कोई विशेष महत्व नहीं है ।

## उपसंहार

### भारतीय वाङ्मय में पालि साहित्य का स्थान

गत पृष्ठों में जिस साहित्य का पर्यालोचन किया गया है वह भारतीय साहित्य का जर्मी तक प्रायः एक उपेक्षित अंग ही रहा है। संपूर्ण मध्यकालीन भारतीय आयं साहित्य का ही बंसे तो यथावत् अध्ययन जर्मी हिन्दी में नहीं किया गया। किन्तु पालि-साहित्य के अतिशय मौरवशाली होने के कारण उसकी उपेक्षा तो अत्यंत हृदय द्रावक है। छठो शताब्दी ईसवी पूर्व से लेकर छठी शताब्दी ईसवी तक जर्मी, पूरे १२०० वर्षों के भारतीय इतिहास में जो कुछ भी सबसे अधिक सम्भवीय, जो कुछ भी सबसे अधिक महत्वपूर्ण है, वह पालि-साहित्य में निहित है। इस युग का भारतीय समाज, धर्म, दर्शन और सबसे अधिक विद्व-संस्कृति को उसका मौलिक दान, सभी कुछ पालि साहित्य में अंकित है। किन्तु भी इस महत्वपूर्ण साहित्य का जितना अध्ययन और प्रकाशन कोलम्बो (सिहल), रंगून, (बरमा), बंकाक (स्थाम) और पालिटेक्स्ट मोसायटी, लन्दन से हुआ है, उतना किसी भारतीय नगर या शिक्षा-केन्द्र के विषय में तो कहा भी नहीं जा सकता। संपूर्ण भारत की बात जाने भी दैंती भी मध्य-मंडल (शास्त्र की विचरण भूमि) में पालि स्वाध्याय की जो दर्यानीय अवस्था है उसे देखकर तो आश्चर्य होता है कि हम किस प्रकार अपनी संस्कृति के तत्त्वों के सरकारण का दम भरते हैं। जिस संस्कृति के प्रभाव की चीन, जापान, कोरिया, भगोलिया, तिब्बत, मध्य-एशिया और अफगानिस्तान की भूमियों जर्मी नहीं भूली हैं, जिसकी स्मृतियाँ जर्मी तक लंका, बरमा और स्थाम के निवासियों के हृदय में, उनके सारे सामाजिक संस्थान और राजनीतिक विधान में मूर्खी हुई पड़ी हैं, उसे हम भारतवासी, जो उसके वास्तविक प्रतिनिधि हैं, भूल चुके हैं। यह एक कुँजद, किन्तु सत्य बात है। भगवान् बुद्ध के जिस शासन के माध्यम से हम संसार के संपर्क में आये

ये, उसे हम आज तोड़ चुके हैं। आज हम कल्पी बुनियादों पर महल लड़े कर रहे हैं। समय ही बतायेगा कि वे बुनियादें कितनी स्थायी होती हैं। ही इतिहास की ओर मुढ़कर हम चाहें तो एक ऐसे आधार का भी आवश्य ले सकते हैं जिसकी परीक्षा पहले ही चुकी है। यह आधार उस साहित्य और संस्कृति का है जिसे हम बुद्ध के नाम से संयुक्त करते हैं। इस माध्यम की पूर्व परम्परा बड़ी शुभ्र रही है। इसके द्वारा हम जिस किसी से मिले तो उसका शोषण करने के लिए नहीं, बल्कि अपने संपर्क से केवल उसी को कृतार्थ करने के लिए उसी के अनुकूल्यार्थ ! अशोक के प्रब्रजित पुत्र महेन्द्र और उनके साथी भिक्षुओं ने जब लकाधियति देवानं पिय तिस्स से गौरव भरे शब्दों में वह कहा 'हम तेरे ऊपर अनुग्रह करने के लिए ही भारत से गही आये हैं' (तबै अनुकूल्यार्थ जम्बुदीपा इच्छागता) तो उन्होंने अपने इन शब्दों से उस सारी भावना का ही प्रतिनिधित्व कर दिया जिससे प्रभावित होकर भृत-सहन धर्मोपदेशक भिक्षुओं और मानव जाति के सेवक भारतीय मर्माधियों ने हजारोंकोसों को भयानक पैदल यात्राएँ कर विदेश-गमन किया था। इन स्मृतियों की पृष्ठभूमि को लेकर चाहे तो भारतीय राष्ट्र आज भी कम से कम एशिया के देशों में अपने पूर्व संबंधों को फिर से जीवित कर सकता है, उनके साथ मैंत्री के संबंध दृढ़तर कर सकता है। पालि साहित्य का सूभ आशीर्वाद सदा उसे अपने इस प्रयत्न में मिलेगा ।

विशुद्ध साहित्य की दृष्टि से पालि साहित्य का अर्थ-गौरव और उसकी प्रभाव-मयी ओवरस्ट्री भाषा-वैली किसी भी साहित्य से टक्कर ले सकती है। किन्तु उसके इस संबंधी गुणों या ऐतिहासिक महत्व के विषय में हमें कुछ नहीं कहना है। पहले भी इसके संबंध में बहुत कुछ कहा जा चुका है। भारतीय साहित्य के इतिहास में पालि का स्थान सब प्रकार संस्कृत के साथ है। संस्कृत साहित्य लघी महासमृद्ध में ही जापं जाति के संपूर्ण ज्ञान-विज्ञान का भांडार निहित है। उसी महासागर का एक जावते पालि भी है। पालि संस्कृत से व्यतिरिक्त नहीं, बल्कि भाषा और साहित्य दोनों ही दृष्टियों से वह उसी का एक रूपान्तर या अंग ही है। अतः संस्कृत साहित्य के अविभाज्य अवयव के रूप में पालि का महत्व भारतीय साहित्य में सदा सुप्रतिष्ठित रहना चाहिये हो, भारत की

सौमा के बाहर के देशों में पालि आपनी जेठ भगिनी संस्कृत से भी कही कही प्रभावशीलता में अधिक बढ़ गई है। इसका कारण है पालि का तथागत की सदेश-वाहिका हीना। अपने इस गीर्वक के कारण ही सत्त्वमुच्च पालि जैसी प्रादेशिक भाषा को भी विश्वजनीन होने तक का सौभाग्य मिल गया है, जो संभवतः आज तक अंशतः संस्कृत को छोड़कर अन्य किसी भारतीय भाषा को नहीं मिला।

### पालि और विश्व-साहित्य

जर्मन रवि-दार्शनिक गेटे ने साहित्य को विश्व का मानवी-करण कहा है। दुनिया का साध्यद ही कोई साहित्य इस कस्टीटो पर खरा उत्तर सके जितना पालि साहित्य।

भारतीय भाषाओं में यदि किसी के भी साहित्य में विश्व जनीन तत्त्व सबसे अधिक है तो निश्चय ही पालि में। गत पृष्ठों में पालि साहित्य के विवेचन में यदि लेखक ने अधिक प्रमाद नहीं किया है तो उससे स्पष्ट ही गया हीमा कि पालि साहित्य एक धार्मिक संप्रदाय (स्वविरचाद बीद धर्म) का ही साहित्य नहीं है, बल्कि वह जाति-धर्म-निर्वशेष विश्व-मानव का साहित्य है, जो विश्वजनीनता की भावनाओं से अनुप्राणित है। यही कारण है कि भारतीय भूमि से उद्भूत होकर उसका विकास समान रूप से ही अन्य देशों में भी हुआ है। संकुचित राष्ट्रीय आदर्शों की अभिव्यक्ति उसके अन्दर नहीं है। वह मनुष्य मात्र की समस्याओं को लेकर उनके समाधान के लिए खड़ा है जिनमें देश या राष्ट्र का वैसा कुछ भेद नहीं होता। बुद्ध-धर्म के से विश्व धर्म से ही गया इसका बहुत कुछ रहस्योदयादान पालि-साहित्य में ही ही जाता है। यहाँ कोई ऐसा विशिष्ट विश्वास नहीं, कोई ऐसा कर्मकांड का विचान नहीं, कोई ऐसा देवत्व का आदर्श नहीं, जो मनुष्य-मनुष्य के बीच भेद डाल सके। यहाँ केवल नैतिक आदर्शवाद है, मनुष्य को मनुष्य-व्याप्ति का प्रयत्न है, और यह सब है मनुष्य को मनुष्य समझ-कर मनुष्य के द्वारा मनुष्य को मार्ग दिखाकर। यदि धर्म के नाम पर मानवता का अपलाप ही आज हमारे अनेक अनेकों का कारण है, तो पालि-साहित्य हमें आज उसके व्रतिकार करने के लिए आह्वान करता है। यदि मनुष्यता के गढ़-

वर्णन में वैधता ही विश्व-मानव के भावी कल्याण का एकमात्र मार्ग है और उसी के लिए चारों ओर से प्रगति करनी है तो उसके लिए भी पालि साहित्य सबसे पहले हमारा आह्वान करता है और हमारे मार्ग को प्रशस्त करता है। विश्व-धर्म के प्रसारक इस साहित्य का यदि समुचित प्रचार और प्रसार किया जाय तो निश्चय ही यह भारतीय जनता को संसार के शेष मनुष्यों के साथ मनुष्यता की उस समान भूमि पर लाकर खड़ा कर देगा जिसकी आज सबसे अधिक आवश्यकता है और जिसके बिना भारत विश्व-संस्कृति को अपने उस महत् दान की दे भी नहीं सकता जिसे उसने बुद्ध-धर्म के रूप में कभी उसे दिया था।



## परिशिष्ट

### १—नामानुक्रमणी

**अ**

- अकारणवाद १३५
- अकालरात्रि जातक २८२
- अकिञ्चित्-वरिये २९९
- अकिञ्चि-जातक २९९
- अकियावाद १३७
- अकियावादी १९३, १९४
- अहृततत्त्वाद १३७
- अकुशल ३०, ३७३, ३७४, ३७५,  
३८६, ४००, ४३८, ४४०, ४४२,  
४४६, ४५०, ४५८
- अकुशल कर्म ३५५
- अकुशल-चित्त ३७९, ३८०, ३८६,  
३९०, ३९२, ४३३, ४३४, ५३५,  
५३६
- अकुशल वेत्तिका ३८६
- अकुशल घर्म ४६१
- अकुशल-गूळ ३५५, ४४०
- अकुशला मतोविज्ञान-धातु-तंस्यशंखा  
४००
- अकुशल विपाक-चित्त (सात) ३८२-  
३८३, ५३५
- अक्षरसमोहन्तेवनी ६४१
- अलरावद २३०
- अमाच्छासुत ९३, १४७
- अमापंडित (लोकुण्ठलि के रचयिता)  
१३९
- अमा पंडित (प्रथम) ६११
- अमा पंडित (द्वितीय) ६११

- अमा पंडित (तृतीय) ६११
- बगवंस ५७९, ६०३, ६११
- अग्निवच्छयोत (परिवाजक) १५९
- अग्निवच्छयोतसुत ९६, १५९, १५९
- अग्नि भारद्वाज (आद्मण) २४०
- अगोन् ११४
- अघोष ज्ञम ३६
- अघोष (स्पर्श) १९, २०, ३२, ३४,  
३५, ५४, ५६, ५७, ५८, ५९
- अधिरवती (नदी, राजी) ११५
- अचल काशयप १४१
- अच्छरियमनुष्मासुत ९८, १५७
- अजन्ता २९०
- अजातशत्रु (अजातसत्तु-मगधराज)  
१३७, १३८, १४४, १५७, १६२,  
१६६, १७७, १९१, ५५०, ५५२,  
५७१, ५७२, ५८१
- अजित (माणव, वाहूण वावरि का  
शिष्य) २४१, २४२, ५८६
- अजित केस कम्बलि १३३, ३५९,  
४८०
- अजितमाणवपुच्छा २४१-२४२
- अट्ठकथा १, २, ३, ४, ८, ९, ८५,  
१३०, १३२, २७८, २९०, ३३७,  
३३९, ४२२, ४२७, ४४५, ४६१,  
४६६, ४७६, ५३३, ५३४, ५३९,  
५४८, ५४९, ५६०, ५६६, ५६७,  
५६८, ५९८, ५९९, ६००, ६०२

- अद्यक्षया-साहित्य ४७२—का  
उद्भव और विकास ४७५-५००,  
५१५, ५१८, ५१९, ५००—  
की संस्कृत भाष्य और दीजार्थों  
से तुलना ५००-५०१,—की  
कुछ सामान्य विशेषताएँ ५००-५०१,  
५०२, ५०३, ५०४, ५०५, ५०६,  
५०८, ५१४, ५१५—  
दुद्धोग की अद्यक्षया एँ ५२२-  
५२९,—दुद्धदत्त की अद्यक्षया एँ  
५२४-५०५,—अभियम्पिटक  
सम्बन्धी जटालधारे ५२८-५२९;  
५३०, ५३६
- अद्यक्षयाकार ३०८, ४२७, —  
पालि साहित्य के तीन बड़े ५०१-  
५३१
- अद्यक्षयाचरित ५७७
- अद्यक्षयागम-सुत १५, १५३
- अद्यक्ष-निपात १०१, १३८, १८०,  
१८२, १८९, १९०, १९३
- अद्यक्षयाचरित-अग्रन्तर ३३१
- अद्यक्षयगम १०६, १०७, २४०
- अद्यसालिनी १०५, ११९, ३५२,  
३५९, ४७३, ४९८, ५०७, ५१३,  
५२८, ५३०, ५४३, ५८६,  
६४६
- अद्यसालिनी-अद्यक्षय ६३९
- अद्यसालिनी की निदानकथा १९८,  
१९९, ३३५, ३३६, ३५०
- अद्यसालिनी की दीक्षा ५३८, ५४२
- अद्यसालिनी-निस्सय ६४१
- अद्यान-जातक २९४
- अहूकामी (भिक्षणी) २६९
- अत्तदण्ड-सुत २४१
- अत्तदीप-सुत १७५
- अत्त-वग्म २१५, २१८, २२४
- अत्तनगल (या अत्तनग्ल—ठंका  
में स्थान) ५७५
- अत्तनगलु-विहारवस्तु ५४१, ५४८,  
५४४—५४५
- अतिरिक्त घम्म ११९
- अतीतवत्य २७३
- अत्यब्याव्ये ६४१
- अत्यवण्णता २७५
- अत्यसदग ६२९
- अत्युद्धार-कड ३७३, ३९४, ३९५
- अर्थक्षया ७१, १०४, १०५, १०९,  
२२३
- अर्थजाल १३४
- अर्थ-विद्या २९२
- अहो ३८८, ३९४, ४४०, ४९८,  
५३३, ५३५
- अद्वमामधो १८, १९, २८, ३१, ३२,  
— का पालि से सम्बन्ध ३१-  
३३; ३४, ३५, ४५, ४८, ४९,  
५०, ५२, ६६
- अधिकरणपत्रवय-कथा ५०४
- अधिकरणसमया घम्मा (सात)  
३१२, ३१५-३१६
- अधिकरण-वास्तव ३१३
- अधिट्ठान-हार ४६८
- अधिपति-प्रत्यय ४५७, ४६०
- अधिमोक्ष ३८३, ३९२, ३९३, ४१२,  
५३४, ५३५
- अधोविवेचन १६०
- अनंतगम १४९
- अनंतगण-सुत १३, १४९
- अनंत आकिचन्य (शून्यता) का  
ध्यान ३७८
- अनंत आकाश का ध्यान ३७८
- अनंत विज्ञान का ध्यान ३७८
- अनन्यशास्त्र १७८
- अनन्ततर-प्रत्यय ४५७, ४६०
- अनमत्तमा-संयुत ११, १३५
- अन-अवश्या (अनोत्तम) ३८८,  
३९२, ३९३, ५३५

- अनागतवस ५७८, ५८४-५८७,  
६४०  
अनागतवसस्त अट्टकथा ५८०  
अनागतभय-सुत २०१, ४४३, ५८५  
अनागतभयानि ६२७, ६२८, ६२९-  
६३०  
अनागामिकल १८९  
अनागामिकल-चित ३८३  
अनागामिमार्ग-चित ३७६  
अनागामी ४१८, ४२०, ४३०,  
४३२, ४३६, ४४२, ४४६, ५२२  
अनात्म ३४७, ३५५, ३७९, ४०२,  
४५३, ४६४  
अनात्मदण ४८१  
अनात्मसजा ४६९  
अनात्मवाद १४९, १५२, १५७,  
१५८, ३४९, ४२८, ४८४, ४८६  
अनात्मवादी ४५३  
अनाथपिदिक १२६, १५८, १७३,  
१८३, १८६, १८८, २२६, २२७,  
३२५, ५२६  
अनाथपिदिकोवाद-सुत ९८, १५८  
अन्यन्समान (तेरह) ३८६, ३९१,  
३९२  
अन्य-समान चित ५३४  
अन्योन्य-प्रत्यय ४४१, ४५७, ४६१  
अनियत ३१३  
अनियत कथा ५०४  
अनियता घमा ३१२, ३१६-३१७  
अनिरुद्ध (पालि अनुरुद्ध, भावायं)  
१०९, ५३२, ५३९, ५४०  
अनिरुद्ध (पालि अनुरुद्ध, भिज्ञ,  
दुःख-शिष्य) ५८, १५३, १५४,  
१५५, १६०, १६१, १८३, ३२५  
अनिविचिततावाद १३८  
अनीषवरतावाद ४२८  
अनीटीका व्यालय ६४१  
अनुनासिक ३५, ६४, ६५, ६६  
अनुपद-वस ९७, १५७  
अनुपद-सुत ९७, १५७  
अनुपालि साहित्य १०, १०, ११,—  
का काल-विभाग १०८-११०  
१२९, १३२, ४७२, ४९४, ५०६,  
५१४, ५२८, ६१३  
अनुमानपञ्चो ४८०  
अनुमान पञ्च ४७६, ४७९  
अनुमान-सुत ९३, १५३, ६२९  
अनुरुद्ध (परमत्वविनिष्ठय, नाम-  
रूप-गरिच्छेद और अभिघमत्व-  
संगह के रचयिता) ५७८  
अनुरुद्ध (चूहकसिक्ति के रचयिता)  
५७८  
अनुरुद्ध-सुत ९८, १५७  
अनुरुद्ध-सम्बन्ध १०१, १७१  
अनुला देवी (देवान् यिय तिस्स की  
भतीजी) ५७३, ५७४,  
अनुलोम २२३  
अनुलोम-पद्धान ४५६  
अनुलोम-च्छनिय-पद्धान ४५६  
अनुलोम-पटिलीम-पटिच्छसम्पाद-  
सुत २१२  
अनुराधपुर ५०४, ५०८, ५०९, ५५१,  
५६८, ५७६, ६०८, ६१६  
अनुसय १५७, ४४६, ५३७, ४४०,  
४५०  
अनुवासनी प्रातिहार्य १४२  
अनुरुद्धम् २३६  
अनुश्रव १४६  
अनुसय—यमक ४५०  
अनुसंधानात्मक ३८१  
अनुस्सति कम्मट्टान-निहेसी ५२०  
अनुसाकि (मयाहरु, प्रो०) २००  
अनोगमा (भिक्षणी) २६८, २६९  
अनोपदस्ती (सिहली भिज्ञ) ५७५  
अनोमा (नदी) २८६

अपमार्ग १९८  
 अपणाक जातक २८१  
 अपणाक-सुत ९५, १५३, १५९  
 अपणक १५३  
 अपणा समाधि ५२०  
 अपदान १०२, १०७, ११४, ११७,  
 अप११८, २००, २९८, ५९९, ६४०  
     दानटङ्गवा (अपदान-अट्ठकवा)  
     ५७७, ६४०  
 अपम-अविभग ४१०  
 अपमत्ताक वर्मा ६२४  
 अपमाद-वर्मा २१४, २२३  
 अपञ्चंदा १२, ३०, ३२, ७२  
 अप्रमाणा चेतोविमुक्ति १५७  
 अपरालीय ४२६, ४३०, ४३९,  
     ४४१, ४४७, ४४८  
 अपरान्त (अपरान्तक भी) ५१७,  
 ५७२, ५७६, ५८२  
 अपरान्त-नालिपत १३५  
 अपरान्तक-यदेवा ८८  
 अपरिमाण ३८८, ३९३, ४१२  
 अफगानिस्तान ६४४  
 अफलातू १३१, ४५४, ४७३, ४९३  
 अभृतवस्त्व १०२, १०३  
 अभय ३१०  
 अभय (महत्व भेदचिन्ता की टीका के  
     रचयिता) ५८०  
 अभयमाता (भिष्णु) २६९  
 अभय गिरि विहार ५६३  
 अभयदाकुमार-सुत ९५, १५३,  
     १५९  
 अभ्यास ४६८  
 अभिज्ञा निहितो ५२१  
 अभिष्ट जातक २७४  
 अभिघम (अभिघम) २, ८६, १०९,  
     ११३, १९९, ३०८, ३२६, ३३५,  
     ३४६, ३४८, ३४९, ३५०, ३५१,  
     ३५६, ३५७, ३५९, ३५०, ३५१,

३५२, ३७६, ३९०, ४०५, ४०८,  
 ४१८, ४१०, ४५३, ४६४, ४७०,  
 ४७१, ४८१, ४८३, ५४५  
 अभिघम-अनटोका ६३९  
 अभिघम-कोश ३३४, ३५७, ४२२,  
     ४२३, ५६३  
 अभिघम गण्डि ५८१  
 अभिघमत्व संग्रह १०९, ११०, ३५०,  
     ३८४, ४५८, ५३२,—के सिद्धांतों  
     का संक्षिप्त विश्लेषण ५३३-५३६  
 अभिघमत्वसंग्रह—अट्ठकवा ६३९  
 अभिघमत्वसंग्रह-टोका ६३९  
 अभिघमत्वसंग्रह की टीका (धर्मनिन्द  
     कोसंबी हृत) ५४२  
 अभिघमत्वसंग्रह की टीका (लेदि सदा-  
     हृत) ५४४  
 अभिघमत्वसंग्रह की टीका (तुम्हेक  
     हृत) ५४०  
 अभिघमत्वसंग्रह-संखेप टीका (छाद  
     -हृत) ५४०  
 अभिघमत्वगण्डिपद ५४३  
 अभिघमत्वविकासनी ५४०, ५७९  
 अभिघमत्वविभावनी ५४०, ५७९  
 अभिघमत्वविभावनी की टीका  
 ५४२, ६३९  
 अभिघमत्वसंग्रहकरण ५४८  
 अभिघमपणरस्तान ५८०  
 अभिघम-पिटक ८७, ८८, ९१,  
     १०३, ११५, ११७, १७२, १९७,  
     १९८, १९९, २३२, २९८, ३२७,  
     ३३०, ३३४-३५४,—का इतना-  
     काल ३३६-३४६,—का विषय—  
     ३४६-३५१,—की शैली ३४७  
     -३५१,—का महत्व ३५१-३५३,  
     —की सर्वास्तिवाद सप्रदाय  
     के अभिघम-पिटक से तुलना  
     ३५३-३५८,—के एन्थो की विषय  
     वस्तु का संक्षिप्त विश्लेषण ३५८

- ४६४, ४६५, ४६६, ४७०, ४९४,  
५००, ५०३, ५०५, ५३२, ५३३,  
५३५, ५३६, ५६६, ५६८, ६०२  
अभिव्यम्म-पिटक संवादी अट्ठकथाये  
५२८-५२९
- अभिव्यम्म फिलासफी (भिकु जगदीश  
काशय कृत) ८७, ३४२, ३४५,  
३४७, ३४९, ३५१, ३९१, ३९३,  
५१३, ५३३, ५४५
- अभिव्यम्म-मूल टोका ५३२,—की  
जन्मटोका ५४३
- अभिव्यम्म-दर्शन ३४२, ४५०, ४५२  
अभिव्यम्म-भाजनिय ३४५, ३९७,  
३९८, ३९९, ४०२, ४०३, ४०५,  
४०७, ४०८, ४१०
- अभिव्यम्म-विभाग ३४४
- अभिव्यम्म-योद्धी ३४४
- अभिव्यम्म-माहित्य ३११, ३४३, ३४५,  
३५८, ५४०
- अभिव्यम्मावतार ५०३, ५०४, ५०५,  
५०६, ५०८, ५०९
- अभिव्यम्मावतार की टोका ५३९, ५४०
- अभिव्यात ६४०
- अभिव्यान-टोका ६४०
- अभिव्यानप्रदीपिक ५३९
- अभिव्यानप्रदीपिका ७, ८, ९, ६१४-  
६१५, ६१६
- अभिनवबृहत्संस्कृतीका ५३१
- अभिनवबृहत्संस्कृति ६०८
- अभिरूपा नन्दा (भिक्षुणी) २६९
- अभिलेख-नाहित्य १०३
- अभिसमय-मंगुत ९३, १६५
- अभिसंवद्धनाथा २०८
- अभिसंवोधि १५१
- अम्बाण (अम्बदृढ़) १३८, ५२३
- अम्बदृढ़-मूत ९२, १२७, १२८, १३०,  
१३८-१३९, १७२
- अम्बपाली (गणिका, वाद में भिक्षुणी)
- १४४, २६६, २६८, २६९, २७१  
अम्बलाटिका १४५, १५३  
अम्बलाटिकाराहुलोवाद-मूत १५१  
१५३, ६३१  
अमरकोश ६१४, ६३८, ६४२  
अमरकोश-निमित्य ६४२  
अमररत्नह (संयुत-निकाय के तिंहडी  
संस्करण के संपादक) १६०
- अमराविशेषवाद १३५
- अमानुषी ४४३
- अमितायु ४४६
- अमेरिकन लैंबन्स ऑन चुद्धियम ३४३
- अमोह ३९५, ४४०, ४५८, ५३३, ५४५,  
अयोध्य-चरितम ३०७
- अरणविभग-मूत २६, १८, १४८, ५००
- अरव (देश) २९५, २९६
- अरवी २९६
- अरस्त्वा ४१४
- अरहत वग २१५, २१७, २२३
- अरिमदेन (वरमा में स्थान) ६०६
- अरियपरियेसन-मूत १४, १५१
- अरियवंस ५४२, ५८०, ६११
- अरियमन्नवतार ६४१
- अरियालोकार (वरमी भिकु) ६३०
- अरिष्ट ३१०
- अरणवति ६४०
- अरूप ३५५, ४५०, ५०५, ५२१
- अरूप-आतु ४३५, ४४३
- अरूप-राग ४४२
- अरूप-लोक ३३२, ३४५, ४३५, ४४५,
- अरूप-स्कन्ध ४१०
- अरूप-नामावि ३७९
- अरूपवचन ३७६, ३७७, ३७९, ४१२,  
४४२, ५३५, ५३६
- अरूपवचन-भूमि १६९, ३७१, ३८५,  
३९९
- अरूपवचन-भूमि के नार कुञ्जल-चित्त  
३७८-३७९

- अरुपावचर-भूमि के चार किया-चित ४५५, ४६८  
 ३८५  
 अरुपावचर विपाक-चित (चार) ३८६  
 अलकार्य ५७१, ५७२  
 अलकार्य-टीका ६४१, ६४२  
 अलकार्य-त्रृत ११४  
 अलगदूषन-सुत ९४, १०४, १५१,  
 २०५  
 अलम्बुस-जातक ६३१  
 अलम्बन्द २१५, ४९४  
 अललेन्द २१५  
 अलिकमुन्दर ८९  
 अलियवसानि (जायंवंश) ६२७, ६२८,  
 ६२९  
 अलो ३२७  
 अली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया (स्मिथ)  
 ४७३  
 अलेक्जेन्डर २१५  
 अलेक्जेन्ड्रिया २१५, ४९४  
 अलोम ३८८, ३९४, ४४०, ४५८,  
 ५३३, ५३५  
 अलीकिक ४७०  
 अलीकिक जान ४११  
 अलप्राण १५, १६, ५५, ६२  
 अवदान ११४  
 अवदान २१८  
 अवदान-माहित्य २१८  
 अवधुत-नियम (तेरह) ४९१  
 अवधृतत ५१८  
 अवन्तिपुत्र (मधुरा का राजा) १५५  
 अवन्ती १३, १८, १७३, १९५, २८७,  
 ५६३  
 अवन्ती प्राकृत ३१  
 अववरा (ओतप्पो) ३८७, ५३५  
 अवारिय जातक २४४  
 अविगत-प्रत्यय ४५८, ४६३  
 अविद्या १६५, ४०७, ४४१, ४५४,
- अविद्या-ओष ३०  
 अविद्या-वानु ४०३  
 अविद्या-योग ३०  
 अविद्याविद्यय ३५०  
 अविद्यालक्ष ४४१  
 अव्याहृत १४१, १४७, १७०, ३५९,  
 ३७३, ३७५, ३७६, ३८५, ३९१,  
 ४००, ४०१, ४०२, ४०४, ४०५,  
 ४०६, ४०७, ४१०, ४३३, ४४०,  
 ४४६, ४५०, ४५४  
 अव्याहृत-चित ३८१, ३८७, ३९२,  
 ५३३, ५३५  
 अव्याकृत-संयुत १०१, १७०  
 अव्याकृता घमा ३८१-३८३  
 अव्याहृता मनोविज्ञान-जानु-संस्पर्शजा  
 ५००  
 अवस्था ५८  
 अवाश्वतवाद १३६, ४२८  
 अशम-भावना २५४  
 अश्विय ४१८, ४१९, ४२८, ४३३  
 अशोक (विवरी, 'बम्मराजा')  
 ५, ११, १२, १४, १७, १९, २६,  
 २८, ३१, ३९, ५१, ५५, ८६,  
 ८७, ८८, ८९, ९०, १०३, १०४,  
 १०५, १०६, १११, ११२, ११६,  
 ११७, ११८, १२०, १२२, १२३,  
 १४८, १७५, २०४, २३५, २९२,  
 २९३, ३१०, ३११, ३३२, ४२१,  
 ४२२, ४२५, ४२६, ४२७, ४२४,  
 ५२१, ५२३, ५२५, ५२६, ५२७, ५२१,  
 ५२२, ५२३, ५३२, ५३३, ५४२,  
 ५४६,—के अभिलेख ६१७—  
 ६३३,—के अभिलेखों का वर्णी-  
 करण ६१८-६१९,—के अभि-  
 लेखों का महत्व ६१७-६१८,—  
 के अभिलेखों का विवरण ६१९-  
 ६३३, ६३६, ६४५

- 'अशोक' (सिंह-कृत) ६२०  
 अशोक-कालीन २०६, ३३६, ४२५,  
 ४२७, ६२७  
 'अशोक की धर्मलिपियाँ' (नामदी  
 प्रचारिणी सभा, काशी) ६२६  
 अशोक-नालि ३९  
 अशोक-संगीति ३३८  
 अशोभन-चित्त ५३४  
 अश्वघोष १९, ३५५, ४४४, ५८३,  
 ५९३  
 अष्टक-वर्ग ५५  
 अष्टादश-निकाय-शास्त्र ३०२, ४४९  
 अष्टाघायी (पाणिनीय) ६०१  
 अस्तगृह (अश्वगृह) ४८०  
 अतदिष्य जातक ६३५  
 अतम्यक् वाणी ३५५  
 असमतिस्स १३१  
 अस्मजि (अश्वजित) ३२५, ३२८,  
 ६३७  
 अस्मलायण-मुत्त (अस्मलायण मुत्तन्त)  
 ५६, १५६, २९१  
 अस्मक (अश्वक, अश्मक, जनपद)  
 १४५, १११, २८७  
 असिवन्धकपृष्ठ-मुत्त १७६  
 अमुख-कम्बट्ठान-निहेसो ५२०  
 अ-संस्कृत ४३३, ४३४, ४४४, ४४७  
 असंस्कृता-वातु ४५३  
 असंस्कृत-संयुक्त १००, १६९-१७०  
 असंस्कारिक (असंस्कारिक) ३७७,  
 ३७८, ३८०, ३८१, ३८२, ३८४,  
 ३८५  
 असग ३३४  
 असंयुक्त व्यञ्जन ३७, ३८, ४९, ५४-६२  
 अनि-न-प्रत्यय ४५८, ४६३  
 असपदान-जातक २८६  
 अहेतुक ३८४, ५३३  
 अहेतुक शिला-चित्त (तीन) ३८४  
 अहंत ११७, २३३, २९८, ३७५, ३८४  
 ३८५, ४०७, ४१०, ४२०, ४३०,  
 ४३२, ४३३, ४३६, ४४२, ४४६,  
 ४५८, ४६१, ४७५, ४८८, ५२२,  
 ५३३  
 अहंत-मान-चित्त ३७९  
 अहंतव १६९, ४२८, ४३२, ४३३,  
 ४४२, ४४५, ४९१  
 अहंतव-फल ३०, १८९, ३६१, ४७५,  
 ४८०  
 अहंतव-फल-चित्त ३८३  
 अ-ही (अहिरीक) ३८८, ३९२, ५३५  
 अहरन-सकोच ४४, ४९-५०  
 अकोत्तर-निकाय १७९  
 अकोत्तरामग ११३  
 अग (जनपद) १३१, १४५, १५१,  
 १९५, २८३, ५६३  
 अग-मगव ५२३  
 अग्रेजी सहित २७८, ४९२  
 अगिरा (मन्त्रकर्ता इविष) १४२, २९१  
 २९१  
 अगुलूर-निकाय (अगुलूर) २५, ७१,  
 ८३, ९१, १०१, १०४, १०६,  
 १०७, ११३, १२१, १३१, १७८-  
 १९६, १९८, २०१, २१०, २३२,  
 २८६, ३०६, ३१०, ३१४, ३२५,  
 ३४०, ३४२, ४१८, ४४३, ४९३,  
 ५१४, ५६७, ६२९, ६३०  
 अगुलूर-निकाय की बदलकाय ५०१,  
 ५१३, ५२४-५२६, ५३८  
 अगुलूर निकाय की अट्टकथा की टीका  
 ५३८  
 अगुलूर-टीका (अभिनवा) ६३९  
 अगुलूर-टीका (पोराण) ६३९  
 अगुलिमाल १५५  
 अगुलिमाल-मुत्त १६, १५५  
 अण्डमूत-जातक २८८  
 अन्तकिन ८९  
 अन्तरगमेवंदार (राजगृह) ६१३

- अन्तर्य व्यंजन ३७, ५४, ६८  
अस्ति-स्व ३५, ३६, ५५, ६२, ६४,  
६५  
अन्तियोक्ति ८१  
अन्त्यक ४२६, ४३०, ४३१, ४३२,  
४३३, ४३४, ४३५, ४३६, ४३७,  
४३८, ४४०, ४४१, ४४२, ४४३,  
४४४  
अन्त्यग्रन्थाय २२०  
अन्त्यट्ठक्षा ४९७, ४९८, ५३०,  
५३१, ५४३  
अन्यभूत-वाका ६३५  
अन्यवेणु-परम्परा १३०
- आ
- आउटलाइन आँव दि वल्ड हिस्ट्री  
(एच० जी० वेल्स) ६१९  
आत्मकार्ड हिस्ट्री आँव इन्हिया ६१८  
आकाशव्यय-मुत्त १३, १४९, ३२४  
आकाशानन्दव्ययतन १६९, २३१, ४३४,  
५३४  
आकाशनन्दव्ययतन कुशल-चित्त ३७९  
आकाशनन्दव्ययतन विपाक-चित्त  
३८३  
आकाश-गातु ४०४  
आकिञ्चन्यायतन १६९, २३१, ५२१  
आकिञ्चन्यायतन विपाक-चित्त ३८३  
आकिञ्चन्यायतन कुशल-चित्त ३७९  
आलयान २८६, २९१  
आलयानात्मक काला १६३  
आलयान-गीति २७१  
आगम ११४  
आगमट्ठक्षा ४९७, ४९८  
आचरियान सामन्द्यक्षा ४९७,  
४९८  
आचार्य-मुद्दि २१, ४८८, ४८९  
आजीव ३९१, ३९३  
आजीवक ३२५
- आदानादिय-मुत्त १३, १२६, १३३,  
१४८, २१२  
आठ आरब्ध वस्तु १८२  
आठ अभिभू-आयतन १८२  
आठ मह-वर्ष १८९  
आठ विमोत्र १८२  
आण्डजसप्ताय-मुत्त १७, १५६  
आत्मनेपद ६८  
आत्मदीप १३४  
आत्मवाद ४२८  
आत्म सज्जा ५६९  
आत्मशरण १७४  
आत्मा १६६, ३८७, ४२८  
आतुम (स्थविर) २४३  
आतुमान २३६  
आदिच्छपद्धान जातक २८२  
आदि असेयुक्त व्यंजन ५४५७  
आदि पञ्च २९२  
आदि व्यञ्जन ३७  
आदि संषुक्त व्यञ्जन ६५-६६  
आदेशना-प्रातिहार्य १४२  
आदेशना-विधि ३३५  
आध्यात्मिक आयतन ३४८  
आधुनिक आर्यनामा-युग २९  
आतन्द कुमारस्वामी ५६९  
आतन्द (बृद्ध-विधि) ७३, ७८, १२४  
१३४, १४२, १४४, १५३, १५६,  
१५७, १६७, १७३, १७४, १८३  
१८९, १९०, १९१, १९८, ३०५  
३०६, ३१९, ३२०, ३२५, ३२७  
४८८, ४८९, ५२६, ५१०  
आतन्द (बृद्धधोष के समकालिक अट्ठ-  
कथाकार) ५३२, ५३९, ५४३  
५४७, ५५१  
आन्ध ११६  
आतन्द 'आरप्यायतन' ५१८  
अनान्द कांसल्यायम (भद्रत)

- ७७, ७८, ८०, ९०, २०३, २१४  
 २२५, २३१, २३५, २४४, २४६  
 २७२, २७८, २९२, २९८, ३३१,  
 ५५३, ५५४, ५५५, ५५६, ५५७,  
 ५६१  
 आनन्द-भद्रकरत्त-सूत १८, १५८  
 आनापान सति ५२१  
 आनापाण-संयुत १०१, १७२  
 आनापानसति-सूत १७, ११७, १३१  
 ४०८, ५२४  
 आपति (दोष के अध्य में) ३१३, ३२०  
 आपति (प्राप्ति के अध्य में) ६०१  
 आपो तृतीय ५२०  
 आमगन्ध-सूत २४०  
 आर्य अष्टागिक मार्ग १२७, १४०  
 १४१, १५१, १५२, १६०, १७०  
 १७२, १८०, १८२, २०८, २६५  
 ३०३, ४०९, ४३७, ४४५, ४५८  
 ४९०  
 आर्य कात्यायनीपूत्र ३५४, ३५६  
 आर्य कात्यायन ३५३  
 आवतन १५८, २८, २३१, ३४५, ३४९  
 ३५६, ४०१, ४०२, ४०३, ४०६  
 ४१२, ४१३, ४१५, ४१७, ४४२,  
 ४४३, ४४७, ४५०, ५२१, ५८९  
 आयतन-वातु-निष्ठो ५२१  
 आयतन-यमक ४५०  
 आयतन-विभंग ३१७, ४०१, ४०३  
 आयतन-संयुत ३४८  
 आर्य-मार्ग ३५५, ४१२, ४४२-४४३  
 ४८२  
 आर्य-प्रश्ना ३५६  
 आर्य मौन १६६  
 आर्य मीदगत्यायन ३५३, ३५६, ३५७  
 आर्य शारिपूत्र ३५३, ३५६, ३५७  
 आर्य संग्राम (भिक्षा) २२९  
 आर्य-सत्य (जार) १२९, १५८, १८०  
 १८१, ३०३, ३५६, ४७२
- आगुपाल (स्वविर) ४५१  
 आयुवद १६०  
 आष १५२  
 आरामदूसक जातक २८३, ६३५  
 आरण ४९४  
 आलवी ५२५, ५२६  
 आलम्बन ४५८  
 आलम्बन-प्रत्यक्ष ३५३, ४५३, ४१९  
 आलवक (यश) २४०  
 आलवक-सूत २१२, २४०  
 आवा (वरमा में) ५९९  
 आर्य (जैन सूत्रों को भाषा, अर्थ  
 मासारी) १८  
 आद्विलायत १५६, १५९, २३१  
 आहार-निष्ठो ५२१  
 आखब १६९, ४११  
 आसेवन-प्रत्यय ४१७, ४६२  
 आहार-प्रत्यय ४५८, ४६२  
 आजा कौणिडन्य १८३, ३२१
- इ
- इंगलैण्ड ५६१  
 इटली २१६  
 इटिय (इतिय) ८९, ३१०, १५३,  
 १६८, ५७२  
 इडियन एटिक्योरी ५५०, ६२९, ६३०,  
 इडियन फिल्हालिकी (राधाकृष्णन) ४४८  
 इडियन लिटरेचर (हिन्दू और इडियन  
 लिटरेचर, डा० विन्टरित्व-डत्त)  
 ८, १२, १४, १६, २४, २५, ८०,  
 ८६, ८७, १२९, १३०, १३२,  
 १३४, १६१, १६६, २००, २०१,  
 २५५, २७२, २७३, २९६, ३११,  
 ३२६, ३४१, ३५१, ४३५, ४३७,  
 ४३९, ४८४, ४९२, ५५४, ६८३,  
 ५९०, ५९३, ५९५, ५९८, ६३०,  
 ६३१
- इंडियन शिपिंग (राधाकृष्णन मुकर्जी)  
 २८५,

इन्हियन हिस्टोरिकल कावाटरली ८,  
१४, २५  
इहिया ऐज़ डिस्काइब्ल इन अर्ली  
ट्रेसमेंट्स आंव जैनिश्म एफड बुद्धिम  
(विगलाचरण लाहा) २८९  
इ-चिङ् ६२१  
इच्छा-मंगल (कोशल में शाम) १९५  
इतिवृत्तक १०१, १०३, १०७, ११४,  
११९, १२६, १२७, २३१-२३५,  
५३१, ६३०  
इतिवृत्तक (साठ्ठकथ) ६४०  
इतिवृत्तक-अद्यक्षाचा ५७३  
इतिहास ४८१  
इतिहास-पुस्तक ५४३,—के पाँच लक्षण  
५४८  
इन्डो-आशन टू दि कम्पोरेटिव फिल्म-  
लार्क्स आंव दि इन्डो-आर्थिक लेस्ट्रें-  
जेज ८  
इन्स्प्रिल्यास आंव अशोक ८३  
इन्द्रविधनिवदेसो ५२१  
इन्द्रियाद-विभग ३१३, ४०८  
इन्द्रियाद-संयुक्त १०१  
इन्द्रिय ३३३  
इन्सिलिन-सुत १७, १५७, २११  
इन्मिनिगो जातक ६३५  
इन्सिलिनिगम जातक ६३५  
इन्द्र १६४, २५२, २६२, ३३५  
इन्द्रकट १६३  
इन्द्रप्रस्थ २८६, ५६३  
इन्द्रिय (इन्द्रियो) ३५६, ३५८, ३६१  
३६३, ४३८, ४६८—पाँच ४१२  
५२३,—छह ४४०, ४४२,—  
बाईस ४०६, ४१२, ४४७  
इन्द्रिय-नेतरा ४३५, ४३७  
इन्द्रिय-जातक २८७  
इन्द्रिय पञ्चमो ५६२  
इन्द्रिय-प्रत्यय ४५८, ४६२  
इन्द्रिय-भावना-सूत ९९, १५८

इन्द्रिय-यमक ४५१, ६३९  
इन्द्रिय-विभग ३०३, ४०६  
इन्द्रिय-सञ्च-निवेदो ५२१, ६०१  
इन्द्रिय-संयुक्त १०१, १७१  
इरावदी (नदी) ५८२  
इसिसिग २९३  
इक्षवाकु १३९  
ई  
ईयायिक १५६, १६०  
ईशान चन्द्र घोष २७२  
ईश्वर-प्रणिवात ४६४  
ईश्वरवाद ४२८  
ईर्ष्या ३८८, ३९२, ५३५  
ईसप २९९  
ईसाई धर्म २९६, ३३२  
ईसाई सन्त २९६  
उ  
उक्ताचेल १७४  
उक्ताचेल-सूत १७४  
उग्र मृहराति १०४  
उच्छेदवादी १३५, १३७, १९३, १९४  
उज्जेनी (उज्जयिनी) १२, १३, १५  
२८८, ४१४, ५६३  
उद्धान २५०  
उडीसा ६१७  
उत्तम (भिक्षु) २०७, २२५, २३१,  
२४४, २४६  
उत्तम (बालाचतार टीक के लेखक)  
५७८, ५७९  
उत्पलवर्णी (भिक्षुणी) १६२, १८४  
२७१  
उत्तल देश २८६  
उत्तम मिश्वत (भिक्षु) ६०६  
उत्तर-कृष्ण १८  
उत्तर-पञ्चाल २८६  
उत्तर-मनुष्य-धर्म १५०  
उत्तरलीमत्वदीपनी ५०५

- उत्तरविनिच्छय ४९९, ५०८, ५०९  
 ५४०, ५३७,  
 उत्तरविनिच्छय-टीका ५५०  
 उत्तर विहार ४९९, ५०४  
 उत्तर (स्थविर) ५५७, ५६८, ५७२  
 उत्तरा १६४  
 उत्तरा नन्दमाता १८४  
 उत्तरापथ २११  
 उत्तरापथ २११  
 उत्तरापथक (बोद्ध नम्रदाय) ५२६  
 ४३२, ४३३, ४३४, ४३५, ४३६  
 ४३८, ४३९, ४४०, ४४२, ४४५  
 उत्तिय ८९, ३१०, ३३६, ५५७, ५६८  
 ५७२  
 उद्ग जातक ६३५  
 उद्गत (उग्नात) मृहपति १८४  
 उदयत (उदेन) १७७, २३१, ४६४  
 ५०७, ५२३  
 उदय-मणिव-पुच्छा २४१  
 उदान ७५, १०१, १०३, १०६, १०७  
 ११६, ११६, ११७, २१०, २२५-  
 २३१, २३३, २३४, ४२०, ४५४  
 ५३१  
 उदान (साइडल्कर्स) ६३१  
 उदान ११४  
 उदानटूकवा ५७७  
 उदाधिनृत १७३  
 उदाधी १५४, १७३, १७५  
 उदुम्बर (आचार्य) ५८०  
 उदुम्बरिक-सोहनाद-सूत १२, १४७  
 उद्वालक-जातक २११  
 उद्देश-बार ५५१  
 उद्देश-विमर्श-सूत १८, १५८  
 उद्घल्ल (उद्घतता) ३८१, ३८८, ३९२  
 उपक (आज्ञावक) ३२५  
 उपचिक्कले-सूत १८, १५७  
 उपधमानीय ३६  
 उपतिष्ठपसने (उपतिष्ठ-प्रश्न) २३५  
 ६२७, ६२८, ६३०  
 उपतिष्ठ ३१०  
 उपतिष्ठ (सिंहली भिन्न, महावीरियवत्स  
 के सिंहली संस्करण के सम्पादक)  
 ५६८, ५६९  
 उपतिस्साचरिय (अनागतवंश की  
 अट्ठकवा के सेतक) ५८०, ५८३  
 उपनिषद्य ४५८  
 उपनिषद्य-ब्रत्यम ४५८  
 उपनिषद् १३०, १३१, १४२, १४६  
 २२०, २२१, २२२, २२३, ४४३  
 ४६३, ४६४, ४६५, ४९४  
 उपरिपण्णाम ६३१  
 उपरिपण्णास-अट्ठकवा ६३१  
 उपरिपण्णास-टीका ६३१  
 उपवत्स ३२३  
 उपवाम (अनुसमृति) ५२१  
 उपसम्पदा ४८७  
 उपसम्पदा-नियम ३०९  
 उपसम्पदा-जपिय ३१३  
 उपसीवमालवपुच्छा २४१  
 उपसेन ५३२, ५३८  
 उपसेन वंगन्तुतुत १८३  
 उगादान १६५, ३४८, ३९३, ४०७,  
 ४५५  
 उगादान-स्कल्प १५१  
 उपालि ७७, १८४, ३१०, ५२५, ५२६,  
 ५५०, ५६२  
 उपालि-सूत १५३, १५९, १६०  
 उपादान-निरोध-बार ४५१  
 उपाद-बार ४५१  
 उपाद-संयुत १००, १६३  
 उपोक्ता १७०, २९९, ३४१, ३७२,  
 ३७७, ३७८, ३८०, ३८१, ३८२,  
 ३८४, ३८५, ४०३, ४०८, ४१०,  
 उपेक्षा-धातु ४०३  
 उपक्षा-भावना १५४  
 उपेक्षेन्द्रिय ४००

उपोसथ ३२३, ३२६  
 उच्चरी पेतवत्व २४६  
 उच्चरी २६६, २७०  
 उम्मदनी-जातक २८५  
 उरग २४०  
 उरगपेतवत्व २४६  
 उरगवग्म २३५, २४०  
 उरग-भूत २३६  
 उरगपुर (उरगपुर) ५०३  
 उरबेल कसमप (उरबेल कासमप)  
     १६२, ३२५, ५२५  
 उरबेल ७४, १७३, २२७, २८६,  
     ३२१, ५३०, ५६२, ५६३  
 उषीनर २९४  
 उषीरघञ २८६  
 उषमा १५३

## क

ऊङ्घ विरेचन १६०  
 ऊम (ऊमा) ३५, ३६, ५५, ६२  
     ६४, ६५, ६६

## आ

आ और ल के पालि प्रतिक्रिया ३९-५०  
 आम्बेद ११, २८, ३९, १६५, २३६  
 आत ४५४  
 आणिदाणी (भिजूणी) २६८  
 आणिपतन (इमिपतन) ५३५, ५६३  
 आणिपतन मृगदाव १७२  
 आण्डयंग २९३

## ए

एक-आवतन ४३५, ४३६  
 एक-नगरनिपात (नगरन-निकाय) १०१,  
     १३८, १८०, १८१, १८२, २३२,  
     २३३, ६२४, ६३१  
 एक-क्षवरकोस ६१४, ६१५, ६१६  
 एक-नुक-निक-अंगलार ६३७  
 एक-वातु ४१५, ४१६  
 एक-निपात-जातक-भट्ठकवा ६४०

एक्षबोहारिक (एकव्यावहारिक)  
     ४२२, ४२३, ४२४  
 एकराजवरिय ३०१  
 एकराजवातक ३०१  
 एक-स्कन्ध ४१६, ४१७  
 एक्षतर-निकाय १७९  
 एकात्तरागम १७८  
 ए-गाइड ट-सोनी ६३४  
 एकामता (एकमता) १७१, ३३८,  
     ३२३, ४०७, ५३४  
 एकादशक-निपात १०१, १३८, १८२,  
     १८८  
 एकासनिकंग ४९१  
 एक्सिक ३०७, ५८२  
 एलेक्ट्रोन्ड ८९  
 एडमैंड्स (ए० जे०) २३४, ६२१  
 एष्डूक २९२  
 एतदमावग्म ७५, १८२, ३१०  
 एतिमासमिदापक ५८०  
 एतिमासमिदीपिकाय टोक ५८१  
 एन्साइक्लोपेडिया ऑव चिल्ड्रन एण्ड  
     एयरल २७३, ४७१, ४९२  
 ए बुद्धिस्त मेनब्रह ऑव साइकोलोजी-  
     कल एविकल ३३९, ३४०, ३५१,  
     ३५८, ४५३, ४९८  
 एलार (वामिल नेत्रा) ५७३  
 एलिया २१४, ६४५  
 एसूक्तार्दिन्भूत १०, १५९

## ऐ

ऐज य-लाइक इट २९६  
 ऐतरेय २३०  
 ऐतरेय-वात्याण १४२, २२३  
 ऐतिहासिक महाकाव्य ५५३  
 ऐसा तथागत ने कहा २३१, २३२  
 ओ

ओक्कनिक-नयूत १००  
 ओपर ३६६

- ओष्ठ-वर्ग ३६६  
ओतरणहार ४६८  
ओपम्मकचापच्छं ४७७, ४७९, ४९१  
ओपम्म-वग्म १४, १५२, ४४३  
ओपम्म-संयुत ९९, १६६  
ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट ३१४  
ओल्डनबर्ग २, १०, १३, १५, २६, ७९,  
८०, ८४, ८५, ९०, १०४, १११,  
१३२, ३४०, ३५२, ५४८, ६२८  
ओष्ट्र्य ३१, ३६, ३७, ४६
- औ
- ओद्धत्य ५३५  
क  
कवचाम-सुत १९१  
कक्षाय १४३  
कक्षट-जातक ६३५  
कक्षकट-जातक ६३५  
कच्चान (कच्चायन, व्याकरणकार)  
१०९, १११, ४३१, ६०६  
कच्चायन-नन्द (कच्चायन-नन्द)  
५३३, ६०३  
कच्चायन-व्याकरण १०, ६०३,—और  
उसका उपकारी साहित्य ६०३—  
६०७, ६०९, ६१०, ६११, ६१६  
कच्चायन-निस्त्रय ६४१  
कच्चायन-स्पाक्तार ६४२  
कच्चायन-भेद (कच्चायन-व्याकरण की  
टीका) ५८०, ६०६  
कच्चायन-भेद-महाटीका (कच्चायन-  
भेद की टीका) ६०६  
कच्चायन-वण्णना ६०७  
कच्चायन-सार ५८०, ६०६, ६४१  
कच्चायनसारस्स टीका ५८०  
कच्चायनसार-अभिनव टीका ६०६  
कच्चायनसार-पुराण टीका ६०६  
कच्चो-जातक २८२  
कचगला २०, १८०, २८६, ४८०,
- ४७४
- कचगला-सुत १८०  
कटाहक जातक २८८  
कण्टक-खिप नागित (वरसी भिन्न)  
६०६  
कण्ठघ संयुक्त व्यंजन ६७  
कण्ठिन जातक २८१  
कण्णकत्यल-सुत ९६, १५६, १६०  
कण्ठ-जातक २८२, २९४  
कण्ठदास (कण्ठदास) ५०४  
कण्ठदीपायन-वरिय ३००  
कथावल्यु (कथावल्युपकरण) ८१,  
८६, ८७, ९१, १०६, ११२, ११५,  
२०६, २११, २३५, २३६, ३४१,  
३४३, ३४५, ३४६, ३५२, ३५३,  
३५४, ३५६, ३५८, ४८१-४५०,  
४५२, ५००, ६३३, ६३९  
कथावल्यु में निराकृत सिद्धान्तों की  
सूची ४२८-४५९  
कथावल्यु की अट्ठकथा ३३७, ४२२,  
४२५, ४२६, ४४७, ५००, ५०१,  
५२१, ५३८, ५४८, ५४९  
कथकाई ४४३  
कदम्ब-लिपि (कदम्बलेलम्) ६३६,  
६३७, ६३८  
कनिष्ठ (कुषाण-राजा) ३५६, ३५७,  
६३६  
कनिष्ठकालीन ६१०  
कन्दरकसुत ९५, ११३, १६९, १६०  
कपिलवस्तु २५९, २७७, २८५, २८९,  
२८६, ५२५, ५२६, ५३०, ५६३,  
५७१, ५७२, ५७४  
कपोत-जातक ६३५  
कण्माणव-मुच्छा २४१, २४३-२४४  
कवीर ३०  
कम्पिल-राष्ट्र २८६  
कम्बोज १८५  
काम्बोडिया ५१३

- कम्मवाचा ३२६, ६४१  
 कम्मटानगहणनिहेसी ५२०  
 कर्म-स्थान (समाधि के आलम्बन) ५२०, ५२८  
 कर्मासदम्भ (कर्मा) १९६  
 कर्मज्ञा (वर्ती राजा) ६०६,—की  
     पुत्री ६१२  
 कर्मचारमरञ्जो ५७९  
 कर्मचर्णद १४३  
 कर्म (डा०) ३०९  
 कर्मण्य-मेत-मृत २११  
 करणा (भावना) १५४, ३८८, ३९१,  
     ३९२, ४१०, ५२१, ५३५  
 कर्महृतिकादमृत २४१  
 कर्मकर्ता रिष्यु ४७३  
 कलापनिसय ६४२  
 कलापपत्रिका ६४१  
 कल्याणी (प्रेम-ब्रह्मा) ५८८  
 कल्याणी-अभिलेख ५३१, ६१७, ६३४,  
     ६४२-६४३  
 कल्याणिय (बिलु) ५८८  
 कल्यापसूत्र प्रतिक्लापक-टीका ६४१  
 कलेला दमना २९५  
 कलिग १३, १५, ४९४, ५७६ ६१६  
 कलिगबोधि-जातक २८७  
 कलिग-ज्ञेय ६१८  
 कलिग-युद्ध ६१९, ६२०  
 कलिगारण्य १५९  
 कल्प (काय) ४३१  
 कल्पिकलाद्युम ६०७  
 कल्पितारपकरण ६१६  
 कविसार टीका-निसय ६१६  
 कल्पसप (काश्यप—मोह विज्ञेयनी,  
     बनागतवस और बुद्धवस आदि के  
     रचयिता) ५७८, ५८०  
 कल्पसप-मृत २१०  
 कल्पसप-मृत ११, १६५  
 कल्पसप-सीहनाद-मृत ११२, १४१  
 कल्पसपिक भिन्न ४२२, ४२३, ४२९,  
     ४४८  
 कलि भारद्वाज (ब्राह्मण) २३१, २४०  
 कलि भारद्वाज-मृत २३१  
 किया-नित ३८४-३८५  
 कर्म २२५, ३०६, ३४०, ३५८, ४४६,  
     ४९६  
 कर्म-प्रत्यय ४६२  
 कर्म-फल २४४  
 कर्म-विपाक ३७५, ३३७, ३९२, ४०८,  
     ४१०, ४३५, ४४२, ४६२  
 कर्म-स्थान (कम्मटान) ३७४, ३७८  
 कर्मान्तक १८८  
 कर्मा-टीका ६२९  
 कर्मा-नेतृत १८३  
 कर्मा-वितरणा ५१३, ५२३, ५३३,  
     ६४३  
 कर्मावितरणी-अट्ठवाचा ६३९  
 कंगवादितरणी की टीका ५३१  
 कंखावितरण-विस्मितिनिहेसी ५२२  
 कृष्ण-वच २९५  
 कृदल्ल ३०  
 कृष्ण १२९, २९४  
 कृशा गौतमी १५८  
 काय १५५, १६८, १६९, ३४८, ४०२,  
     ४०३, ४०४, ४०६, ४६०  
 काय प्राणयम ३८३, ५३१  
 काय-आवतन ५०१, ५६१  
 काय-कर्मजता (काय कम्मजता)  
     ३८३ ३८५  
 काय गतासति-मृत १७, १०१, ११७  
 कायगता सति २४०, २३१, ५२१  
 कायगतासति भावना २२९  
 कायानपश्यना १४६, ३५९  
 कनिष्ठ-कालीन ३५९  
 काय-प्रबलित (कायपस्सदि) ३८३, ५३५  
 काय-मृदुता (कायमृदुता) ३८३  
 काया म कायानुपश्यो ४०७

- कायिक भालस्य (बीतं स्त्यान) ३८८  
     ३९२  
 कायलखुता ५३५  
 काय-विजान १६५, ३४८, ३८२,  
     ३८३, ४०३, ४०४, ४६१  
 काय-हजुता (कायलखुता) ३८७  
 काय मूढता ५३५  
 कामनद्वीप ६४१  
 कारक पुण्ड मंजरी ६२३  
 कारिकोटीका ६४१  
 कार्माहाइकोल लेखररम (भाराकर)  
     २८०  
 कार्मपटर ११०  
 कार्मि ५८०  
 कारिका ६४०  
 कारिकाय टीका ५८१  
 क्रोधवन्ग २१५, २२४  
 काव्य विरतिगाथा ५४३  
 काव्य-आत्मान ५८४  
 काव्य धंष ५८४  
 काकवण्ण तिस्त (लंकाधिपति) ५८२  
 काचीपुर ५१०, ५११, ५३१  
 कात्यायन ७८, १५१, १५५, ६०३,  
     ६१३, वेत्तिये 'आर्यं कात्यायनं' भी।  
 कात्यायनी १८५  
 काठियावाह ६१७  
 काष्ठ-विमान ३५१  
 काष्ठल ११६  
 काष्ठल (ई० वी०) २७२, २७८  
 काम-ओष ३६६  
 काम वालव ४४१  
 कामवातु ४०३, ४१२, ४३५, ४४०  
 काम्बोज ८८  
 काम सुत २४१  
 काम-योग ३६७  
 काम-राम १५४  
 काम-लोक ४४५  
 कामावचर ३५८, ३७२, ४१२, ५३५,
- ५३६
- कामावच विपाकचित (आठ) ३८२  
 कामावचर भूमि ३०२, ३१८, ३७६  
     ३८०, ३८१, ३९०, ५३६  
 कामावचर भूमि के आठ विषय-चित  
     ३८६-३८५  
 कामावचर भूमि के आठ कुशल चित  
     ३५३  
 कामावचर लोक ४६४  
 कामावतक ४०६  
 काय ४०२, ४०३, ४०४, ४०६  
 कावेरी ५०४  
 काव्य-भग्न ५४४, ५४५, ५४६  
 काव्य-सास्त्र ५४६  
 कात्तव व्याकरण ६०३, ६०४, ६०८  
 काली ६३२  
 काल उवायो १८४  
 कालसी (देहरादून जिला) ६१८  
 काली १८५  
 कालाम १८६, १८७, १८५  
 कालाशोक ५८१  
 काल मुमन ३१०  
 काशीराज्य २८७  
 काशी १४५, १५२, २८८, ५६३  
 काशीनामदी ६२६  
 काशी प्रदेश १६२, १७५  
 काशीगोद २८७  
 काशी-कोसल १४५  
 काशमीर ८८, ११६, ३५४, ५५७,  
     ५६८, ५७२, ५७४  
 कसिमारवाजमुत २१२  
 काद्यप्रिक ४४८  
 काद्यप (अट्ठकथाकार) ५३२  
 काद्यप १४२, २२५, ४३२  
 काद्यप-वन्धु ३२५  
 काद्यपीय ४२३, ४२४  
 काशिका वृत्ति ६०३, ६०४

- कार्यपाल २८२  
 काशिकावृति ६०३, ६०४  
 कारिका ६०१  
 कासिका प्रस्तुति पालिनो (काशिकावृत्ति  
     पालिनो) ६४१  
 कांशरेवत (भित्र) २२६  
 किन-जातक ६३५  
 किन्नित-सूत २९, ३७, १५६, ३३४  
 किन्नर-जातक ६३५  
 किन्निल २४८  
 किरातार्जुनीय १३०  
 किरिया ४०८  
 किलानाथ ३८४  
 किलामत ३८४  
 किलाचिल ३०९, ३७६, ३८४, ३८९,  
     ३९०, ४०१, ५३३, ५३६  
 किलेस-संयुत १००, १६७  
 किलिल १५२  
 किलानन जाप लिम मिलिल ४३४,  
     ४०२, ४१४  
 किसा गोतमी २५०  
 किलिलधान्वांड २२२  
 किसोल २५०  
 कीथ (ग० वेरीडेल) ८, १४, १६, १८,  
     २४, १२१, १२३, ४८४, ५४६  
 कीरिती देववर्ण (कितितिरि देव-  
     वर्ण) ५०६  
 कीर्ति ली राजसिंह (किति सिंह राज-  
     सिंह) ५६५, ६१३  
 कोटापिरि-सूत ९६, १५५, ३२९  
 कुम्भुखतिक-सूत ९५, १५३, १६०  
 कुकुट जातक ६३५  
 कुकुट्यरम १३७  
 कुदाल-जातक २८२  
 कुदाल परित २८२  
 कुटिसक जातक २८३  
 कुडियान (भित्र) १८३  
 कुडियान (तन) २२८
- कुहन (६०) १२, १  
 कुडिया (नगर) २२८  
 कण्ठदीपायन जातक ३००  
 कुणाल २९३  
 कुणाल जातक २८१  
 कुण्ड स्वामी शास्त्री ५२९  
 कुञ्जा उत्तर १८४  
 कामन्दक २९२  
 कुम्भकार जातक २८७  
 कुम्भम-पठ जातक २८७  
 कुम्भवति जातक  
 कुम्भास्त्रिड २९४  
 कुमार कसमय ५२५  
 कुमार कालियप १४६, १८३  
 कुमार पञ्च १५१, २०८, २१०  
 कुमार (प्रदेश) १४५, १५५, १५९,  
     १५५, १९६, २०६, २१२, ५२८  
 कुरसधर १७७, १८५  
 कुरुक्षतक २८१  
 कुरुगमिय जातक २३४, २३८, ६३१  
 कुरुदिगाम्य ५८०  
 कुरुवन्मनस्त्रिय २११  
 कुरुवन्मनजातक २८६, २९७  
 कुरुद्वा (कुरुन्द्वा) ५१३, ५४२, ५४३  
 कुरुराजा २८६  
 कुरुराज्ञ २८६  
 कुरुक्षेत्र २१  
 कालिङ-जातक २८३  
 कुरुजातक २८७  
 कुशल ३५९, ३७३, ३७५, ३७६,  
     ३८६, ४०१, ४०२, ४०४, ४०५,  
     ४०६, ४००, ४०८, ४१०, ४२०,  
     ४३८, ४४२, ४४३, ४५४, ४६०  
     देखिय 'कुशल' और 'कुसल' भी  
 कुसलतिक ३५९  
 कुसलचित २८०, ३७६, ३८५, ३८६,  
     ३८७, ३९१, ४३६, ४३९, ५२३,  
     ५३६, ५३७

- कुशलचित्, कामावचर भूमि के (आठ) ३३५, गणवचर भूमि के (पाच) ३३६, जग्नावचर भूमि के चार, ३३८, ३३९, लोकोत्तर भूमि के चार ३४०  
 कुशलादि ४०९  
 कुशलविपाकचित् ५३५  
 कुशल विपाक चित् (आठ) ३०१  
 कुशल घर्ष ४१३, ४६२, ४६३, ४६४  
 कुशल मनो विश्वात्र धातु संस्पर्शजा ४००  
 कुशल-मूल ३१४, ४४०  
 कुशल विपाक चित् ३०१  
 कुसल ४०८, ६११  
 कुसला ३६०, ४०१  
 कुसला घम्मा ३०६, ३५३, ३५५  
 कुसलतो (कुशलती) २८७, ५६३  
 कुमिनारा (कुशीनारा) १४५, ११६,  
     २८७, ५६३, ५७१, ५७२  
 कूटदन्त १३९  
 कूटदन्त मुत १२०, १२८, १३०,  
     १३१, १४०, १३२, १९२, २७६  
 कूटागारसाला ५२५  
 कूटस्थ ४५३  
 कैक्य १३, १५  
 कंठय ३५, ३६, ५३  
 केटेलाग (डे जौयसा) ५६६, ६१३  
 कंडो (लंका) ६१३  
 केतुमती २८७, ५८६  
 कोमब्रज हिल्डो और इच्छिया १२  
 केरलात्र ८८  
 केवड़ १४८  
 केवट्ट-मुत १२, १२०, १४२, १७२  
 केमपुत १८६, १११  
 केसपुत्रिय मुत १८६  
 केसियस ए. पिरीरा ३४१  
 कोकालिय २४१  
 कोटियाम १४५  
 कौटिल्य विष्णुपुत्र २१०, २१३  
 कोणारमन १४३  
 कोन-योन-सेत्यु-इस्मे-उवु ३३२  
 कोरब्ब २८६  
 कोरिया ६४४  
 कोलम्बो १५८, ५०५, ५४०, ५६८,  
     ५६९, ६१४,  
 कोलदंज ६४१  
 कोलध्वज-टीका ६४२  
 कोलिय १५९, १७७, ५०३, ५०८  
 कोलिय पुत्रो (नुवासा) २२८  
 कोशल (कोसल-प्रदेश) १२, १४,  
     १५, ८१, ११०, १५१, १५५,  
     १६२, १७६, १७३, १८६,  
     १९५, १९६, २३१, २८६, २८७,  
     २९१, ४१४, ५२४  
 कोशलराज १६२, १७०, १७४, २२८,  
     २३०  
 कोशलराज (प्रेसलजित) १३०  
 कोशल-मृत ११५  
 कोसल संयुक्त ११, १६२  
 कोसला देवी २८३  
 कौशाम्बिक (मिहु) १७३, ३०२  
 कौसल्य २९१  
 कोसलम्बिय मुत १५, १५३  
 कोसी २१  
 कोकुल्य (कुकुल्य) ३८८, ३९२, ५३५  
 कोशाम्बी (कोसल्म्बी) ११०, १५३,  
     १५९, १८१, १९६, २३१, २८७  
     ५२५, ५२६, ५३०, ५६३

## ख

- खगवग्ग-संयुक्त ४३९  
 खगवग्गसंवृत्त-टीका ६३९  
 खगविनाश-मुत २०५, २३१, २४०  
 खरस्सर-जातक २८२  
 खरोष्टी (खरोष्टी) लिंगि १३, २२१  
 खुज्जुतरा १८४  
 खुदानुशुद (खदानुशुद) ३०२, ३०५,  
     ३१५, ३२९, ४८८

खुदकन्तिकाय १९६-२०१,—के स्वरूप की अभिव्यक्ति १९६,  
—गुरु-पिटक के अंग के रूप में १९६-१९७,—अभिधम्मपिटक के अन्तर्गत भी १९७-१९८,—के अन्तर्गत अभिधम्म-पिटक भी १९८-१९९,—इसका अभिधार १९९,—की घटना सत्य के विषय में सिहल, वरमा और सिद्धाम में विभिन्न मत १९९-२००,—के घटनोंका लाल-बम २००-२०१,—२, १९३, १९४, १९५, १९६, १९७, १९८, २०१, २०२, २०३, २०४, २०५, २०६, २०७, २०८, २०९, २१०, २११, २१२, २१३, २१४, २१५, २१६, २१७, २१८, २१९, २२०, २२१, २२२, २२३, २२४, २२५, २२६

खुदक-ग्रन्थ १९७

खुदकपाठ (सटीक) ६३१

खुदक-ग्राठ ११४, १७१, १७६, २०३,  
२१४, ४३४, ५१३, ५२६

खुदकपाठद्वयम् १७७

खुदकाशसत्ता ५३२, ५३०, ८१६

खुदसिक्त (धर्मशोधविवित) ५७८

खुदसिक्त (वन्दूद्वयविवित) ५७८

खुदकसिक्तास्टीका (पोरण) ६३१,—

—अभिनव ६३२,—स्वचिर सम-  
दिवित-कृत ५३८-५३९,—

—महायास-कृत ५३९,—वाजि-  
स्त-कृत ५४०

खुदकवत्यविभाग ३९७, ४११

खुरस्प-जातक २८९

खेतपमापेतवत्यु २४६

खेम (अट्ठकथाकार) ५३२, ५७८

खेम (ग्रन्थ) ५३८

खेमणकरण ५३२, ५३९

खेमणकरणस्म टीका ५३९

खेमणकरण-टीका ५३९, ६०५

खेमा (खेमा, भिक्षुणी) १५०, १८४

खोतान २२१

खन्द-आगतन-वातु-बम ४१२

खत्वक ११५, ३२२, ३२४-३२६  
खन्द-नम्बा ५०५  
खण्डगिरि १३, १५  
खण्डहाल-जातक २१९  
खन्दन-निहेसा ५२३  
खन्दक-युक्ता ५०४  
खन्द-विभग ३१३, ३१८-४०१  
खन्द-वर्ण १६६-१६७  
खन्द-वृक्ष १६६, १७६, ३४८  
खाति (जल्ति) २१०  
खूदकाम (खुदकाम) ११४, ११०

## ग

गणपाठ ६०८

गणतन्त्र ११५

गणतन्त्र-प्रयाली ११५

गया १५०, १०३, ६१८, ६२१

गयासीस (पवित्र) २८६

गरहित जातक २८४

गणतन्त्रमोगलालन-सुत १५३, १५३

गृधकृ (पवित्र) १२६, १६३, १११,  
२६० देखिये 'मिभकृ' भी

गृह-पूत्र १२४

गृहस्थ-वर्म १८७

गाइड ए. डि अभिधम्म पिटक (जाना-  
तिलोक) ३४१, ३४५, ३५१,  
३५६, ३५७, ४२२, ४२३, ४४३, ४४९

गाथा २७५, ४२०, ४२१

गामण ५५२, ११८

गामण-संयुत १६७

गामगर (३०, विलेहम) ३, १२,  
१५, १६, १७, १८, १९, २०,  
२१, २३, २४, २५, २६, ४२,  
४३, ५४, १२१, १३२, १६०,  
१६१, २७३, ३४१, ३४५, ४३१,  
४३३, ४३८, ४३५, ४९६, ४९८,  
५२३, ५५०, ५११, ५५३, ५५५,  
५६४, ५६६, ५७५, ५८३, ५८६,

- ५९०, ५९३, ५९४, ५९५, ५९८,  
 ६०५, ६०६, ६०७, ६१०, ६११,  
 ६१३, ६१४  
 गन्ध १६५, १६६, १६७, १६८, ३३०,  
 ३४८, ३८९, ४०२, ४०३, ४०४,  
 ४५९  
 गन्ध-जातक ४०१, ४५९  
 गणमाल-जातक २१४  
 गंगा १६४, १७४, १७५, १९५, ५१०  
 गन्धकाचरिय ५७७  
 गण्डतिन्दु-जातक २८७  
 गन्धटि ५६६, ६१२  
 गन्धसार ५४०, ५३९  
 गन्धकार (भवन) ५०९  
 ग्रन्थ-वर्ण ३६६  
 ग्रहणात्मक विज्ञान ३८१  
 गण्डाभरण ५८०  
 गन्धाभरण ६१२  
 गन्धाचरिय (गन्धाचार्य) ४९७, ५८०  
 गन्धवं १६१, १६७  
 गंधवं-काय-सुत १६७  
 गंधवंस २८०, ४९७, ४९८, ४९९,  
 ५०२, ५०६, ५०७, ५३७, ५४४,  
 ५४४, ५६७, ५६८, ५६९, ५७६-  
 ५८१, ५८७, ५९१, ५९८, ५९९,  
 ५९४, ६०४, ६०५, ६०६, ६०९,  
 ६१०, ६१६  
 गन्धार (गान्धार) १३, १५, ८८,  
 ११५, २८७, ४९४, ५१७, ५६८,  
 ५७२, ५७४  
 गन्धार-जातक २८७  
 गहणति-वर्ण १५३  
 गान्धा-जातक २७९  
 गान्धा-संस्कृत २२२  
 गान्धी (महामा) २१३, ६१७  
 गिरभकूट पञ्चत १९५  
 गिरसार (काठियाचाह) १८, १३,  
 १५, २७, ३९, ५३, ५६, ६१८,
- ६२३, ६२५, ६२६  
 गिरिदत्त-जातक २८२  
 गिरिमानन्द २१२  
 गिरिमानन्द-सुत २११  
 गिरिव्रज १७७, २६०, २६१, २६२,  
 २६३  
 ग्रियसंन (डा० सर जॉर्ज) १३, १५,  
 १६  
 गिहिविनय (गृहविनय) १८३,  
 ६२९, ६३२, ६३३  
 गीता २२०, २६४, ५८९  
 ग्रीक २९२  
 ग्रीक प्रभाव ४९३  
 ग्रीक भाषा ४९३  
 ग्रीक राजा (मिलिन्द) ४८१  
 ग्रीक वासन ४७४  
 ग्रीक जान ४८१, ४९३  
 ग्रीस (यूनान) ६२२  
 गुजरात (प्रदेश) १२, ५५१  
 गुजराती १२  
 गुजरात-पुरातत्व-मन्दिर ६१५  
 गुण-जातक २८२  
 गुणसत्त्व (ई० आर०) ४१२, ५८०,  
 ५९५, ५९५  
 गुणसागर (ग्रन्थकार) ५८०  
 गुणमद ११३, ३५६  
 गुन्दाचन (मधुरा में) ११५  
 गुप्ता (भिक्षणी) २७०  
 गुफा-लेख (तीन) ६१८  
 गुरु-धर्म ३०५, ३२१  
 गुलिस्सानि १५५  
 गुलिस्सानि-सुतन्त १५५, ३१४  
 गुहटक २४१  
 गुडत्यटीक ५८१  
 गेटे (जर्मन कवि-दारानिक) ६४६  
 गे (जैम्स) ५१६  
 गोतम (गीतम) १२६, १४०, १४३,  
 १६०, १७६, १९३, १९४, २४५

गोकुलिक (बोढ सम्पदाय) ४२२,  
४२३, ४२४, ४२५, ४३०, ४३७  
गोतमी (भिक्षुणी) २७०  
गोवदावद—वनवन १३८  
गोदावरी (नदी) २४१  
गोध—जातक २३४  
गोपक ब्राह्मण १६३  
गोपक—मोमलाल—मुत ९७, ३५७,  
३०५, ३२४  
गोपाल—मुत १००  
गोवन—रित्यु ३११, ३१९, ३३२  
गोसिंग वालवन १५२  
गोस्वामी तुलसीदाम २५२, २५३  
गोतम संघदेव (भिज) ११३, ३५४

## घ

घटक—जातक २९४  
घटिकार—मुत १६, १५५, २३५  
घाण १६५, १६७, १६८, १६९,  
३२० ३४८, ४०२, ४०३, ४०४,  
४०६, ४३५, ४४०  
घाण—आयतन ४०१  
घाण—विज्ञान ३४८, ३८१, ३८२,  
४०३, ४०४, ४६१  
घाण—संसर्वज्ञा ४००  
घोटमुख १५९  
घोटमुख — मुत १६, १५६  
घोष संस १६, २०, ३२, ३४, ३५,  
५४, १७, ५८,  
घोषिताराम ५२४

## च

चक्रवर्ति — शीहनाद — मुत १२१,  
१४७, ५८६  
चक्रवर्ती की वाहनशिला १५८  
चतुषक — निपात १०१, १७८,  
१८०, १८१, १८६, १९०  
चतुषप्रयोग ६४१

चतुक्षेच-छन्तिपात-जातक-अट्ठकथा  
६४०  
चतुरायं सत्य ४४५, देविये ‘चार  
आर्यं सत्यं’ भी।  
चतारो पुमाला ३४८  
चतुषक ३९२  
चतुषक — निपात १३८, १८७, ३३२,  
३४२  
चतुषक-निपात (अंगुत्तर) ६२९,  
६३९  
चतुर्थसारथ-मंजूसा ५३८  
चतुर्थं व्यान ४१०  
चतुर्थं विपाक-वित्त ३८३  
चतुर्सामणेर वत्य ५४४  
चतुर्वेद विलालेख (अशोक के) ६२८  
चन्द्रगुप्त (चन्द्रगुल) २३९, ५६२  
चन्द्रगोमिन् ६०८  
चन्द्रकीर्ति ४२३  
चन्द्रकुमार जातक २९९  
चन्द्रपरित्त-मुत २११  
चन्द्रा (भिक्षुणी) २६५, २६८, ६२५  
चन्द्रपञ्चिका ६४१  
चमेय जातक २०६, २८७, ३००  
चम्पा १३९, १५९, ५६३  
चम्पा नगर १३९  
चम्म सतक जातक ६३५  
चमेयनागचरियं ३००  
चम्पापुर १२९  
चरियापिटक १०२, १०७, ११४,  
११७, ११८, २००, २०१, २१८—  
३०१, ५३०, ५४९, ५७३  
चरियापिटक-अट्ठकथा ६४०  
चक्रिन्द पञ्चिका ६४१  
चल १६५, १६७, ३३०, ४०३,  
४०४, ४०६, ४३८, ४६०, ४४६,  
४५०  
चक्र—आयतन ४०१, ४०२, ४१५,  
४६१, ४६२

- चक्र-धारा ४२५  
 चक्रस्त्रय ४००  
 चक्र-विज्ञान १६५, ३४८, ३८१,  
     ३८२, ३८८, ४००, ४०३, ४०४,  
     ४०५, ४४४, ४५९, ४६२  
 चक्रदास ६४१  
 चंकि ११९  
 चंकि - सुत ११, १२७, १३०,  
     १५६  
 चण्डाशोक ६११  
 चातुर्वर्णी शुद्धि ३३२  
 चाणक्य (चणक्य) ५६२  
 चार अक्षयावचर विपाक-चित्त ३८३  
 चार जायं सत्त्व १५१, १७२, १७३,  
     २०८, ४०५, ४२०, ४२१, ४३३,  
     ५३५  
 चार आहार १८१  
 चार आ वासन १८७  
 चार आर्य-भ्रावक ४१८  
 चार आर्य-मार्ग ४३३  
 चार कृदिपाद १०१, ४९०  
 चार पाराविक घम्मा ३१५  
 चार महानृत ३४०, ४३४, ४४०,  
     ४६३  
 चार मार्ग-फल ४३२  
 चान्द ६१३  
 चार प्रतिसंविद् ४११  
 चार योग १८१  
 चार वैद्यास्त्रद्य १५०  
 चार लोकोत्तर विपाक-चित्त ३८३  
 चाला (भिक्षुणी) २६८  
 चार स्मृति-प्रस्त्राम १७०, ३०३  
 चार स्कन्ध ४१५, ४१६  
 चार सम्प्रक प्रधान १८०, ४१०  
 चार समाधि १८१  
 चातमा १५४  
 चातुर्म - सुत १५, १५४  
 चातुर्वर्ण संवर १५५  
 चार जान १८१  
 चार आमण्य-फल १८  
 चुल वर्मा १८९  
 चापा २६१, २७१  
 चार ध्यान १६१, ८०१, ४१०  
 चालस हूरोयिसिल ५१०, ५१३,  
     ५१४  
 चालिय पर्वत ५२५, ५२६  
 चाल्म इलियट ३३७  
 चाइल्डर्स (आर-सी०) १५, १६, ३५९  
 चित्त १३१, ३०६, ३५८, ३७४,  
     ३८२, ३८५, ४१२, ४३४, ४३५,  
     ४३८, ४५१, ४६९ ४६० ४६२,  
     ४६३, ५०५, ५३३  
 चित्तान्पथी प्रज्ञा ४११, ४६८  
 चित्त कर्मज्ञा ५३५  
 चित्त की शून्यता का योग १५७  
 चित्त प्रागृच्छ ३८७ ५३५  
 चित्त-कृच्छा ३८७ ५३५  
 चित्ता (भिक्षुणी) २६८  
 चित्तपाद-कठ ३०३, ३९३  
 चित्त मूहपति १८३, १८४  
 चित्त प्रथम्य ३८६, ५३५  
 चित्तमें चित्तान्पथी होना १७०, ४०५  
 चित्त-मूदिता ३१०, ५३१  
 चित्त-यमक ४५१  
 चित्तवर्म २१५, २२१, २२३  
 चित्त विमेद ३८६  
 चित्त-लघूता ५३५  
 चित्तलतावर्मा १४५  
 चित्त संयोजन ४०२  
 चित्त-संयुक्त १७०, १६२  
 चित्त की चार भूमियाँ ३६८  
 चित्तान्पथ्यता १४६  
 चित्त-सतति ४३८  
 चित्त-समाधि ४०८  
 चीन देव ३०८, ३३२, ३३६, ४९४,  
     ४९५, ५४४

- चीन राष्ट्र ५७८, ४८२  
 चीनी ११३, ११६, ११७, ३११,  
     ३१२, ३१४, ३३३, ४४९  
 चीनी अनुवाद १२९, २०३, २२२,  
     २२३, २२४, ३५४, ३५६, ३५७,  
     ३५९, ४७९  
 चीनी परमाण ३५६, ३५७  
 चीनी बोद्ध सप्रदाय ३१४  
 चीनी भाषा ११३, ३१२, ३५३,  
     ३५५, ४७८  
 चीनी दीशिम १३३  
 चीनी बोद्ध नाहिय ११६  
 चीनी विषय फिटक ३१३, ३१८  
 चीनी जागम २००  
 चीवरा (ग्रन्थकार) ५८०  
 चूल्लालिंग जातक २८७  
 चूल्ल घम्माले ५७८, देखिये चूल्ल  
     घम्माल, यी  
 चूल्ल निदेश १०७, २७६ देखिये  
     ‘चूल्ल निदेश’ भी  
 चूल्ल निरुत्तिमाल ५०३, ६०४  
 चूल्ल पञ्चक १८१  
 चून्द १४४, २३१, २४०  
 चुन्द-नुहा १२२  
 चूल्ल बहुधोसा ५७९  
 चून्द नमण्डेम १७४  
 चून्द परित मुल २११  
 चूल्ल वजिनी ५७८  
 चूल्लवग्म १७३, २१३, २१४, २२५,  
     २२६, २७६, ३००, ३१८, ३२४,  
     ३२५, ३२६, ३३८, ३४०  
 चूल्लवस ५०८, देखिये ‘चूल्लवस’ भी  
 चूल्लवग्म (विषय फिटक) २१, ५५०,  
     ५५८  
 चूल्ल सहनीय ६२१  
 चूल्ल-ति-उचिय २२२  
 चूल्ल बनव ३१०  
 चूल्ल बस्सापुर मुल-१५२  
 चूल्ल गोपालक-मुल १५२  
 चूल्ल कम्म विभंग-मुल १८, १९८  
 चूल्ल गोसिंग-मुल १४, १५२  
 चूल्ल दुक्कलस्तन्य-मुल १३, १५१  
 चूल्लगण ६४०  
 चूल्लदेव ३१०  
 चूल्ल (चूल्ल) घम्माल ५३२, ५३९,  
     ५४०  
 चूल्ल घम्मसमादान-मुल १५, ११२  
 चूल्ल लग्हासंख्य-मुल १४, १५२  
 चूल्ल निदेश अट्टकला ६४०  
 चूल्लनिर्वति ६४०  
 चूल्लनिर्वति भजूता ६४३  
 चूल्लनाम ३१०  
 चूल्लनिदेश १९७, २९७, ६४०  
 चूल्ल पञ्चदी ४९८, ५८९  
 चूल्ल पुण्णम-मुल १४, १५३  
 चू-का-नेन ११३  
 चूल्लबोधिचित्रिय ३०३  
 चूल्ल नालुवान-मुल १५, १३०, १६४,  
     १७०  
 चूल्लयमणिसार ६४२  
 चूल्लयमक वग्म १४-१५, १५८, १५९  
 चूल्लराहुलोवाद मुल १८, १५८  
 चूल्लवस २७, १०९, ५०६, ५४१,  
     ५४८, ५५४, ५६४-५६५, ५६७,  
     ५६४  
 चूल्ल वेदल्ल-मुल १०, १५२,  
 चूल्ल यज्ञक-मुल १४, १५६  
 चूल्ल वग्म २३०, २४०  
 चूल्ल सारोपम-मुल ५४, १५१  
 चूल्ल सोहनाद-मुल ११०  
 चूल्ल विष्व २४१  
 चूल्ल महुलुदायि-मुल—१६, १५६  
 चूल्ल-मुज्जाता-मुल १३, १५७  
 चूल्ल सन्त्विविमावन ६४०  
 चूल्ल हरिवपदोपम-मुल ५४, १२९,  
     १५१, १३२, ४०२

चेतसिक (चेतसिका घम्मा) ३५९  
३७३, ३७५, ३७८, ३८६, ४३१,  
४५१, ४६२, ४६३, ९०५,  
१३३,—की परिभाषा ५३४,  
५३५

चेतना ३०६, ३८६, ४१५, ५३४

चेतिदिनेनि परिसाचा ६५१

चेतियवादी ४२२, ४२३

चेति (चेति) १४९, १९१, २०८

चेतोलिल-मूल १११

चेत्य पर्वत विहार ५५८

चेत्यवादी ४२३

चेतिय गिरि विहार ५५९

चोल-राज्य ५०३

### छ

छ-अनुस्मित-निहो १७८, ५२०  
छवचन-निधान १०१, १८८  
छेकेतवातुक्षेत्र ५४५, ५४८, ५७६  
छातिदीपनी ६४०  
छडक-मूल ९८, १५८  
छद्वल (छद्वल) जातक २८५, ६३५  
छन्द १३१, ३८७, ५५०, ५३५, ५३६  
छन्द शास्त्र १२३, ५४३  
छन्दनिय जातक ६३५  
छन्दम् (वृत्ति) ६४१  
छन्दम् २२, २५, २९  
छन्द प्रति (वृत्ति) ३४१  
छंद ममाचि ४०८  
छन्दोग बाह्यण १५२, २९१  
छन्दाचा बाह्यण १५२, २९१  
छम १५८, ५२७  
छन्दोबाद मूल ९८, १५८  
छन्दमोहन-मूल ९३, १५३  
छन्दगरिक ४२२, ४२३, ४२४  
छन्द (सद्गम जोतिपाल) ५३८,  
५४०, ६०८  
छन्दोविचिति ६१६, ६४१

छन्दाधिपति ५६०  
छसततिपाल-समातर ६३९  
छह जायतन १८२, ३४८ ४५९  
छह इंद्रिय ४०३  
छह बुद्ध १४३  
छानदेश-उपनिषद् २१०, ४१५, ४४७

### ज

जागोना काशयप (भिज) ४, ६, ७,  
१६, २१, २७, ३०, ३५, ३२८,  
३३४, ३६०, २०३, २१०, २३१,  
२३६, २३७, २४४, २४५, ३४१,  
३४२, ३४५, ३४७, ३५१, ३६१,  
३९३, ५१६, ५१७, ५३३, ५४१,  
६०८, ६१०, ६१३

जगती (छन्द) २३६

जटिल काशयप ३२५

जातिग रामेश्वर (मेत्तूर राम्य) ६१८

जतुराणिय माणवपुच्छा २४१

जनपदकल्याणी १३०, १४३

जननतन्त्र २८९

जनक (राजा) २५३

जनयसन्म-मूल १४५

जनोको राजा जातक ६३५

जनपद-निराकित २५, २६

जम्बुखादक १६६

जम्बुखादक-मूल १००, १६९

जम्बुधज (जम्बुधज) ६१२

जम्बुहीष (जम्बुहीषो) २८५, ३१०,  
३३६, ४८१, ५०२, ५५८, ५८६,

५९८

जम्बुकोल ५५६

जयाद्वित जातक २८८, २९३, ३००

जयाद्वित चरित ३००

जयन्त पुरोहितपुत्र २७०

ज्योतिपाल (स्वविर) ५११, ५२४

ज्योत्रेष्ठो आंब अर्जी बुद्धिम (लाहा)  
२८८, २८९

- जनेल आव पालि ट्रैस्ट सीमावटी  
 ३, १०९, ११९, २०१, ३५४,  
 ३५५, ४२२, ४८४, ४८५, ४८६,  
 ४८७, ४८८, ४९२, ४९३, ४९४,  
 ४९५, ४९६, ४९७, ४९८,  
 ५५०, ५६७, ५७५, ६०१, ६०४,  
 ६०५, ६०६, ६२८
- जनेल आब रोबल एशियाटिक सोसायटी  
 २०४, २८१, ४२२, ४४९, ४७१,  
 ५७६, ६२८, ६२९, ६३०, ६३१
- जनेल एशियाटिक ६३१
- जरा २४१, ४३५, ५४५
- जरा बग २१६, २१७, २२४
- जर्मन भाषा ४१८
- जरा-नृत १७३
- जल-धार ४०३
- जहांगीरदार ८
- जंकदासस्त टीक ५८०
- जातक ७१, १०२, १०४, १०६, १०७,  
 ११३, ११७, १४५, १९६, १९७,  
 २००, २०१, २७२-२७७, ५२६,  
 ५२७, ५२८, ५२९, ५३३, ५४४,  
 ५९२, ५९३, ५९६, ५९८, ५९९,  
 ६००, ६३५
- जातक दठकथा २८१, ६००
- जातक-दृढकथाय लीनत्य पकासिनी  
 नाम टीका ५३८
- जातक-कथा २७५
- जातक की निदान कथा २७५
- जातक गायारे २७४
- जातक गठि ६४१
- जाततारी निदान ५६९
- जातक कथामक १३९
- जातक-टीका ६४०
- जातक तिस्तय ६४१
- जातक-ठवण्णना २७८, ५१३, ५२७-  
 ५२८, ५७६
- जातक चिसोधन ५४२, ५८०
- जातक सामरी २१०
- जाति १६५
- जातिवाद १३८, १३९, १५६
- जात्यव्य वग २२६, २३०
- जायाम ३३१, ३३२ ६४४,
- जालिय १५०
- जालिय-मूल १४०
- जावा २१०, २१४
- जानुस्सोण १४९
- जिनवरित ५४०, ५५९, ५८४,  
 ५९८-१४, ६०९,  
 जिनकिजय (मृति) ६१५
- जिनालकार ५४१, ५८४, ५९१-१९२
- जिह्वा १६७, ३३०, ३४८, ४४१,  
 ४०२, ४०३, ४०४, ४३५, ४४०,  
 ४६०
- जिह्वा जापतन ४०१
- जिह्वाविज्ञान ३८३, ३४८, ४०३,  
 ४०८, ५११
- जीव ४२८
- जीवक-कीमार मूल १८४, ३२६, ५२३
- जीवितिनिय ३८४, ४०६, ५३०
- जीवक-नृत १५३
- जुजु-रित्यु ३११, ३३२
- जुगाम् १९४
- जेम्स एल्विस १५, १६
- जेम्स डे ५०२, ५१२, ५५१
- जे० ले० २०४
- जेन्ती (भित्ती) २६९
- जेतवन (आराम) १२६, १८३, १८८,  
 १९५, २२६, २२७, २३०, २४१,  
 ५२५, ५२६, ५६३ —का दान  
 १७३, ३२५
- जेतवन-विहार (लंका) ८१६
- जेकोवी (हरमन) ४७
- जैन आगम ३३
- जैन-कैन-रीत ३१२
- जैन दर्शन १२७

जैन धर्म १३६

जैन साहित्य २३०

जैन सूत्र १८

जौगड़ (मद्रास राज्य) २६, ५५, ६१०  
६२१, ६२२, ६२३, ६२७**क**

भान विभंग ३१७, ४०९-४१०

भान-संयुत १००, १०१, १२९, १७१

**अ**

आणदसनाविसुद्धिनिहेमो ५२२

आणविलास (ज्ञानविलास, मिथ्)  
६०७

आण-विभंग ४११

आण सागर (ज्ञान सागर, ब्रह्मकार)  
५८०आणभिवं (ज्ञानभिवं) सच्चराज  
५४३, ५४४आणिस्सर (ज्ञानेश्वर, समन्तकृट-  
बण्णा के चिह्नी संस्करण के  
सम्पादक) ५९८

अंग्यासन्दति ५८१

अंग्यासन्दतिय टीका ५८१

आणोदय (ज्ञानोदय) ५०७, ५१४,  
५२९**ट**ट्राजेवशन्स ओव दि एशियाटिक सोसा-  
यटी ऑव जापान २००

टीकान-साहित्य ५०५, ५३३-५४६

टीकाओं का ग्रंथ १०९

ठलर (प० सी०) ४२१

ठुकनर (वौ०) ४७२

ठोपरा (अम्बला के पास) ६१८

**ड**

डायलॉम्स ऑव डि बुड़ ३३, २८७

डे चॉयस १६६, ६१२

डेक्सिग्नेश अ० दि हूयूमन टाइप्स ४१८

**ढ**

ढालके (पोल, डा०) १५९

**ण**

ण्डादि पाठ ६०८

**त**

तकाकुम् (डा०) ३५४, ३५५, ३५६

तकाल ४९४

तच्छसुकर जातक २८३

तण्डुलनालि जातक २८३

तष्ट्वा-वग्म २१५, २१६, २२३, २२४

तण्डि (दण्डो) ६४१

तण्डि-टीका ६४१

तस्त्रावतार ६४२

तस्त्रावतार-टीका ६४२

तत्पापीयसिक ३१५-३२०

तत्पिय सार्वजनिक १३८

तत्तीय समीति १२३, ३३२, ३४१

तत्तीय घ्यान ४०९, ४१०

तत्तिरीय वात्प्रण १४२

तत्पिय परमात्मप्रकाशिती ५३८

तपता ४४४

तथागत ११, २५, २६, ७२, ७४, ८०,

१०३, १११, १४०, १४४, १४५,

१५०, १५३, १६३, १७०, १७३,

१७४, १७५, १८१, २३२, ३३१,

३३२, ३३६, ४३१, ४५४, ४८८,

४८९, ५२३, ५२५, ५७१, ५७३,

५८३, ६२५, ६३६, ८३७, ९४६

तथागत-प्रवेदित-वर्षम-विनय १४३,

१४१, १९३, ३८१

तथागतुपति ६४०

तथागतुपतिप्रकाश ६४१

तनोगच्छि ६४१

तपस्वी ११४

तपस्तु १८८, ३०३, ३२५

तप्पतिप्रकाशिती (ताम्रपर्णी द्वीप-नक्का)

८१, ३१०, ५७८, ५७३

- वूरानी ३३१  
 तुष्णा १६५, ३५५, ४५४, ४५५  
 तव ५  
 तज मध्यसंबंध (तज-मध्यसंबंध) ३८७  
 तथो पुगाला ३४२  
 तजलिला १६, २८७, २९१, ५६३  
 तामिल प्रदेश ५३१  
 ताम्पुट (स्वविर) २६१,—के उदयार  
 २६२  
 तालध्य संयुक्त व्यवहन ६७  
 तालध्यीकरण ६६-६७  
 तालध्य स्पर्श ३१, ३६, ५६, ५७, ६०  
 तिक (विक) ३११, ३१३, ३१६,  
 ३१८, ४०१, ४५६, ५१७  
 तिक निषात २५, १०१, १८१, १८५,  
 २३२, ३४२, ६३०  
 तिक पट्ठान ४१२  
 तिक-द्वक पट्ठान ४५६  
 तिक-तिक पट्ठान ४५७  
 तिक-निपात-जातक-अद्वलया ६४०  
 तिक-पट्ठान ६३१  
 तिपिटकालकार ५४३, ६००  
 तितिरवातक २३८  
 तित्वगाम (लक्षा) ६०१  
 तिथ्यत ८५, ३१३, ३३०, ६४४  
 तिथ्यतो (अन्तवाद, भाषा, पुरम्परा,  
 चौदृष्टि वादि) ११०, ११३,  
 २२२, ३१३, ३१४, ३५७, ३३२,  
 ४४०  
 तिथ्यतो दुल्ह ८०  
 तिथ्यतोन २३६  
 तिरोकृद्व-सुत २०१  
 तिलोकमुख (विलोकनम्) ५४३  
 तिलमुद्दित जातक २८८  
 तिथ्य (तिथ्य) १६६, ३०६, ३१०  
 तिथ्य स्वविर ३१०  
 तिथ्य-धामगत ५२३  
 तिथ्य (वर्तमी राजा) ५८८  
 तिस्तमेतेव्य २४१  
 तिस्तमेतेव्यमाणवपुच्छा ८४३  
 तीन-स्कंघ ४१७  
 तीन वेदनार्थ २०८  
 तीन संयोजन ४१९  
 तीन वेद ४८१  
 तीन लोकोनन इन्द्रिय ४०६  
 तीयुक्तल ४६३  
 तीस निस्तमिया पाचिनिवा भृमा  
 ३२३-३१८  
 तुकर्त २२२  
 तुरम्ब ८१  
 तुवद्वक (तुवद्वक)-सूत २४१, ६२९  
 तुषित (लोक) ५५१, ५७८  
 तेज-वातु ४०३  
 तेपिटक बुद्धवत १०४, ३३८, ४६५,  
 ४८१, ४८३, ४९३, ५५३, ६३५  
 तेमिय जातक ३००  
 तेरसवाय टीका ६३९  
 तेलकाहगावाय ४४२, ५८८, ५८९-५९१  
 तेलपत जातक २८३  
 तेलगु प्रदेश ५१०  
 तेमियतरिय ३००  
 तेविज्ञ बस्तुगोत-सूत १६, १५५,  
 १५९  
 तेविज्ञ सूत १२, १२३, १३०, १४२,  
 १४३, २११  
 तोदेयमाणवपुच्छा २४१  
 तोगदिन (वर्तमा मे प्राप्त) ६३८  
 तेलिरीय वाह्यण २४१  
 तेचिक १५१  
 तपत्रामात्रा (तांनामा) ६४१  
 त्रिपिटक १, २, ३, ४, ५, ७, ८, ९, १०,  
 ११, १५, १६, १८, ३०, ३१, ३२, ३३,  
 ३४, ३६, ३८, ३०, ३१, ३२, ३३, ३४,  
 ३५, ३७, ३९, १०३, १०४, १०६,  
 १०८, १११, १२८, १३२, १३३,  
 १३५, २००, २३८, २४०, २४६,

द

नेत्र, २९६, ३००, ३०८, ३०८,  
३०९, ३१४, ३१७, ३१९, ४५४,  
४६६, ४७२, ४८७, ४९४, ५००,  
५०१, ५०२, ५०७, ५२७, ५४०,  
५४९, ५५२, ५६०, ५६३, ५६४,  
५७६, ५७७, ५८३, ५८५, ६०१,  
६०२, ६११, ६२०, ६२८, ६३१,  
६३२, ६३३, ६३४, ६३५, ६३७,  
६३८ वेलिये 'पालि चिपिटक' की  
चिपिटक-गत २७९  
चियोजनसते तुररहं २८६  
चिशारण-यज्ञ १८०  
चिष्ठुभ २३६  
चैविद्य वाह्य १८३

थ

थन-व्यन-टीका ६४०  
थपति-मृत १०५, ६२४  
थांस (१० ले०) ८, ८६  
थांस (एक० हवल्य) २८५  
थल्लकोटित १०५, १५१  
थन २८६  
थपवस १५०, १४८, ५६९-५७४,  
५७५, ५७६, ५८१, ५४०  
थपासाम-५६३, ५०८, ५१६  
थेर-अपदान २१८  
थेरगाया १०२, १०६, १०७, ११४,  
११५, १३१, २३१, २४६-२५५,  
२३१, ६५०  
थेरगाया-बट्टक्या ५३०  
थेरवाद (स्थविरवाद) ४२२ वेलिये  
‘स्थविरवाद’ भी।  
थेरवादी ४२२, ४२३  
थेरी-अपदान २०६, २१८  
थेरीगाया १०६, १०७, ११४, ११९,  
११६, ११७, २००, २४६-२५२,  
थेरगाया की साथ तुलना २४३,  
२६९-२७२; ३५१, ५३३, ६४०

दनखलस-जातिक २३५  
दक्षिणाविभग-मृत १८, १५८, ५००  
देढकवत २८७  
दण्डकारण्य १५६, २१९  
दडिनीका ६४२  
दफ्तो ३१, ४५२  
दहु-वगा २१५, २१७, २२३  
दन्तभूमि-मृत १८, १५३  
दन्तधातु पकरण ५३१  
दन्तधातुक्षम ५३१  
दन्त (गर्भ) ३५, ३६, ५५, ५६, ५७,  
५९, ६०  
दमिल ५१८, ५७३, ५७४  
दब्बापुष्क जातिक ६३५  
दब्ब मल्लपुल १८३, २२६, २३९  
दब्ब (इव्य) गृण ६४३  
दब्ब-इव्य) गृण-टीका ६४२  
द्रव्य-यज्ञ १५०  
दृष्टि ३५५, ५३५  
दृष्टि-आसव ५४१  
दृष्टिव्योग २६६  
दृष्टिमत-यज्ञ ३८०  
दृष्टि-जाति १३१  
दृष्टि-योग ३६३  
दृश्यमाकार २००  
दर्शन-दिग्दान (गहुल साक्षत्यायन)  
१४८, ४२७, ४८४  
दश-संज्ञा-मृत २१२  
दस अव्याकृत १३०  
दस-आयतन १०२, ४०४, ४१७  
दस-एकादस-निपात-अगुलर ६३१  
दस-एकादस-निपातजातिक-ठक्या ६४०  
दसक निपात १४८  
दस गण्डिवण्णना ५८०

- दस तथागत वल १८२  
 दस द्वार ३५५  
 दन्त-धम्म-सुन २११  
 दर धातुएँ ४०४, ४१०  
 दसक निषात (जंगुतर निकाय) ६२९  
 दस पारमिता २०५, २७३, २९९  
 दसवल १५०, ४३१  
 दस भावो बुढ ५८५  
 दसरव जातक २५३, ६३५  
 दस सयोजन ४३६  
 दस सिक्षापद २०५  
 दसवल्लु ६४०  
 दसुतर-सुन ९३, १५८, १७९, १८१,  
     २१०, २३५, ३४०, ६२९  
 दशिण देश १३९  
 दशिणापद २८३, ५८४  
 दशिण-पूर्वी एशिया २९६  
 दशिण भारत ५६३, ५६८  
 दन्त सप्त  
 दाठाधातुवस ६४०, ६४१  
 दाठाधातुवस दीका ६४०, ६४१  
 दाठानग (संघस्थविर) ५२३, ६०८  
 दाठावस ५४०, ५४८, ५७६, ५७६  
 दानपारमिता २९४, २९९  
 दान-यज्ञ १४०  
 दासक (भिश) ३१०, ३२६, ५६२  
 दाविणात्य (प्राहृत) ३१  
 दति (इतालियन कवि) २९९  
 दि बिभित्ति लिटरेचर और दि मर्वा-  
     स्टिवादिन्स (तकाकुस) ३५४  
 द्वारका २१४  
 द्वामतान् प्रसना २४१  
 दिव्यधोत्र १२१  
 दिहनग ४६४  
 दि डैडिग्नेशन और ह्यमन टाइम  
     देखिए 'डैडिग-नेशन और ह्यमन  
     टाइम'  
 दिट्ट-मंजुत १००  
 दिक ३९६, ४५६, ४५७  
 द्वितीय ध्यान १६६, ३४१, ४०९,  
     ४१०, ४४३  
 द्वितीय संगीति ३१०, ३३८, ३४१,  
     ३४८  
 दि पालि लिटरेचर और बरमा  
     देखिए 'पालि लिटरेचर और बरमा'  
 दि पालि लिटरेचर और मिलोन  
     देखिए 'पालि लिटरेचर और मिलोन'  
 दि लों और मोरा ४२  
 दि लाइफ एण्ड वर्क और बुद्धधोष  
     (लाहा) ४१९, ५१२, ५१३,  
     ५१३, ५२१, ५२६, ६०१  
 दिल्लावदान ६२८  
 दि संकटम् और दि विद्वन्द्वम् ५२२  
 दि होम और लिटरेशी पालि (ग्रियमंन  
     का लेख) १६  
 दोष-निकाय (दीप) १०२, १०३,  
     ११३, १२२, १२६, १३२-१४८,  
     १५९, १७१, २०२, २१०, २१३,  
     २१५, ३४०, ३१३, ४९३, ५१५,  
     ५२४, ५४३, ५६७, ५८६, ६२९,  
     ६३२, ६३३, ६३७, ६४७  
 दोष निकाय की अटठकाथा ५१३, ५२३-  
     ५२४, ५३८  
 दीधनस्त (परिज्ञानक) १५५, १५६  
 दीधनस्त-सुन ९६, १५५  
 दीधलम्बक २१२  
 दीधसन्द (सेनापति) १५४  
 दीध स्वविर ३१०  
 दीध समन ३१०  
 दीध-भाणक २०२  
 दीधांगम ११३  
 दीप ३२६, ३२७  
 दीपवस्त २, ३, १०४, १०५, १०९,  
     ३५२, ४२२, ४४९, ४९६, ४९९,  
     ५००, ५६८, ५६९, ५७०, ५७२,  
     ५७३, ५८१, ६२०, ६२४, ६४१

- दोपवंस और महावंस की तुलना १४८, १५३, १५४, १५५-१६०  
 दोपवंस और महावंस इतिहास ते-  
 नया ? १६०-१६४  
 दोपिका १५४  
 दोपकर (बृद्ध) १६९  
 दोपकर (रघुसिद्धिपरमण के लेखक) १७८  
 दोपकर (हिनालेकार के समादक  
 सिहली भिक्षु) १९१  
 दोपवंस एवं महावंस (गायगर) १६०  
 दुक ३५५, ३६३  
 दुक-पट्टान ४५२, ४५६, ६३९  
 दुक-तिक-पट्टान ४५६, ६३९  
 दुक-तिक-चतु क-निपात-अगुलर-  
 अट्ठकवा ६३९  
 दुक-निपात १०१, १३८, २३२  
 दुक-निपात-जातक-अट्ठकवा ६६०  
 दुख आमं-सत्य ४०१, ४३८, ४४२,  
 ४४३  
 दुख-निरोध आयं सत्य १७२, ४०५  
 दुख-समदय आयं-सत्य १७२, ४२०  
 दुख निरोध गामिनी प्रतिपद १७२  
 दुखेन्द्रिय १९३, ४००  
 दुख-धातु ४०३  
 दुद्धनामाण (लक्षाधिराज) ५५२, ५५३  
 ५५८, ५१९, ५६१, ५६५,  
 ५७०, ५७२, ५७३, ५७४, ५७६,  
 दुहङ्क २४१  
 दुतिय परम्परणकासिनी ५३८  
 दुतियन्यारत्वमंजूसा ५३८  
 दुमेष-जातक २८, २९४  
 दुमजातका-अट्ठकवा ६६०  
 दुम्-ख जातक २८७  
 दुष्कृत अपराध २०, २१३  
 दूभिय-मलकट जातक ६३५  
 दत्त (सुभट्टूटवण्णना) ५७९  
 देवता-मयूर ११, १६१, १६२, १६३  
 देवदत १११, २७८  
 देवदत-वग्म १५६  
 देवदत-मूर्त १५६, १५७  
 देवदह १७३  
 देवदह-मूर्त १७, १८, १२९  
 देवावितक-मूर्त १४, १२०, १५१,  
 १७२  
 देवधम्म-जातक २८८, २९३  
 देवमित (मोमाल्लाम-व्याकरण के  
 सपादक, सिहली भिक्षु) ११६,  
 ११९  
 देवरकित (सिहली भिक्षु) १६५,  
 ११३  
 देव स्वतिर ३१०  
 देवशमी (स्वतिर) ३५३  
 देवानपिय तिस्र १११, ५६६, ५१८,  
 ५१८, ५६१, ५७१, ५७३, ५४५  
 देव (दोम) ३७५  
 देसलन-नियम ३०७  
 देवामुर-संग्राम १६५  
 देववादी १३३  
 दो आयतन ४१५  
 द्रौपदी २१४  
 दीमनस्त्य-इन्द्रिय ४००  
 दीमनस्त्य-धातु ४०३

## ध

- धर्मग-मूर्त २११  
 धर्मविद्ध २८७  
 धनंजय २८६  
 धनिय २४०  
 धनिय मोप २३७  
 धनिय-मूर्त २३७, २४५  
 धर्मकथिक ६३४  
 धर्मकिति ५१४  
 धर्मकिति महासामि (भ्रमकीर्ति

- महास्वामी—बोद्धवी शताव्दी के  
सिंहली भिकु 'सद्गम संगह' के  
रचयिता) ५४१, ५६८
- धर्मकिति महावेर (सारिपुत्र के शिष्य,  
तेरहवीं शताब्दी का आदि भाग) ५३८, ५४०, ५७५
- धर्मकिति (दन्तधातुपकरण) ५७९
- धर्मकिति भहासामि (बालावतार  
और सद्गमसंगह के रचयिता) ६०५
- धर्मकिति (महावेस के परिवर्द्धन  
कर्ता, तेरहवीं शताब्दी का मध्य  
भाग) ५०६, ५२८, ५४१, ५६४,  
५६३
- धर्मगुरुत्तिक (बोढ़ सप्रदाय) ३०८,  
३११, ३१२, ३१८, ४१२, ४२३
- धर्मचक्र-टीका ६५०
- धर्मचेतिय-मुल ९६, १५६, १६०
- धर्मचक्रप्रवत्तन-मुल ११८, १३२,  
१८०, २११, ३०७, ५३०, ६२९,  
६३६, ६४०
- धर्मदस्ती शासनोर ६१२
- धर्म ३२०, ३३२, ३३४,  
३३५, ३३६, ३३७, ३४६, ३४८,  
३४९, ४१०, ४१२, ५५०
- धर्मनगर ४१०
- धर्मदायाद-मुल ८०, ९३, १४९,  
१५५, १५८
- धर्म-दीप १३४
- धर्मपलियाय १११
- धर्मदान ६४०
- धर्मपटिसम्भवा ४११
- धर्मदिज्ञा (मिथुणी) १५२, १८५,  
२६८, ५२६
- धर्म-जातक ३००
- धर्मचित्रिय २४०
- धर्मपञ्चापकरण ५४१
- धर्मपाल (आचार्य) २, ३०८,  
४९६, ५०१, ५३०, ५३१, ५३२,
- ५४५, ५७३, ५७४, ६००  
धर्मिक २५०
- धर्मसत ६४१
- धर्मशरण १०४
- धर्मदृष्टव्या २१९, २२१, २२४
- धर्मपद २१०, २१५-२२९, को प्राकृत  
धर्मपद से तुलना २२१,—को मात्रा—  
संस्कृत में लिखित धर्मपद से तुलना  
२२२, संस्कृत धर्मपद २२२,—के  
चीनी अनुवाद २२३-२२४; ११४,  
१९६, १९७, २३५, ५२७, ६०२,  
६३३, ६२४, ६३३, ६३९,  
धर्मपददत्तकर्ता १०३, २३३,  
२३५, २३५, ५१४, ५२३-५२७,  
५२८, ५३८
- धर्मपदगिरिनिस्त्रय ६४१
- धर्मपलियाय १११, ६२८
- धर्मपाल (विनायकङ्कार के सपादक  
सिंहली भिकु) ५११
- धर्मपिटक १०२
- धर्मरत्न ५४४, ५६६
- धर्मवादी ४२४
- धर्म-यमक ४११
- धर्मविलास धर्ममत्य ५४६
- धर्मदीपको ५८१
- धर्मविजय ४०८, ४१२
- धर्म-विनय १२३, १६९, ३०४, ३०५,  
३२०, ४११, ४१२
- धर्म-विश्लेषण ३४४
- धर्मवृत्तिय ४२२, ४२३
- धर्मरत्न (भिकु) २३१, २३७, २३९  
धर्मसिरि (खुड़क सि ला) १०८, ५०५
- धर्म सिरि (धर्मदीप) ५३६, ५४०
- धर्मसंगणि ८१, ११५, ३३८, ३४३,  
३४५, ३४४, ३४५, ३४६, ३५३,  
३५४, ३५८-३९१, ३९६, ३९७,  
४०१, ४४३, ४५८, ४५९, ५०३,  
५१३, ५३३, ५३५, ५३७

धर्मस्कन्ध ३५३  
 धर्म-हृदय-विभेद ३९७  
 धर्मशास्त्र २०६  
 धर्माभिसमय ४४६  
 धर्माधर्मदेवपुत्र चरित ३००  
 धर्मानन्द नाथक महास्थानि ६०८,  
     ६१०  
 धर्मानन्दाचार्य (कच्छानन्दसार)  
     ५८०  
 धर्मानन्द (भिष्म) ११३, ६०६  
 धर्मानन्द (समन्तकटवण्णना के  
     सिंहली संस्करण के संपादक) ५९८  
 धर्मानन्द कोसम्बी ३५२, ४५८ देखिये  
     ‘धर्मानन्द कोसम्बी’ भी  
 धर्मनिपरिवर्तन ५, ६, १९, ४२, ४२  
 धर्मनामूह ३१, ३५, ३६  
 धर्मान १९०, १९८, ३६७, ४१२,  
     ४४०, ४४३, ४६८  
 धर्मानावस्था ४२०  
 धर्मान की प्रथम अवस्था १७८  
 धर्मान की चार अवस्थाएँ १७९  
 धर्म-प्रत्यय ४८, ४६२  
 धर्म-भूमि ३७५  
 धर्मान सामग्री ३७९  
 धर्मान समाप्तिमी २८६  
 धर्म १६५, १६९, ३९४, ४०३, देखिये  
     ‘धर्म की’  
 धर्मी ४५३  
 धर्मग्रन्थ ४२४  
 धर्मगुरुनिक ४२२  
 धर्मचक्र ४७४, ४७५  
 धर्मचक्र-प्रवर्तन १५१, १८३, ३२४,  
     ३२५, ४२५  
 धर्मदृढ़त २११, २२५, ३५०, ५१३  
 धर्मजाल १३४  
 धर्म-जहर ४५  
 धर्म-जात ४०४  
 धर्मपद ११४

धर्मरत्न (भिष्म) २०३  
 धर्मरत्न ३५७  
 धर्मरवित ८८, २११, ४८१, ५१३,  
     ५६८, ५३२, ५८८  
 धर्मराज (बुद्ध) ५५८  
 धर्म स्कन्ध १४८, ३५६, ५५२  
 धर्म स्कन्धपाद शास्त्र १४२, ३५६  
 धर्म-संगीतिया १०, ४११  
 धर्मसंगीतिकार ३२०  
 धर्मस्त्वामी (बुद्ध) ५०८  
 धर्मसूत्र १२८  
 धर्मसेनापति सारिपुत्र ११०, १५२,  
     १६६, १६७, १६९, २४९, ३०४,  
     ३३५  
 धर्मसेनापति (प्रत्यक्षार) ५८०  
 धर्मसत्तति ४८६  
 धर्मानन्द कोसम्बी (आचार्य) ३५०,  
     ५०९, ५१०, ५११, ५१२, ५१३,  
     ५३३, ५४१, ५४६, ५०८, ५२९,  
     ६३०  
 धर्मानुसारिणी ५८१  
 धर्ममेष २३४  
 धर्म-आपत्तम ४०१, ४०२, ४०३  
 धर्मानुपश्यना १५६  
 धर्मश्च (धर्मसिगि) ५३२  
 धर्मनिपल्ली ३५५, ४०७  
 धर्मशास्त्र ५१६, ५८३, ६१२  
 धर्मवास्त्र सबधी ग्रन्थ ५४६  
 धर्मोत्तरोत्तर ४२३, ४२४  
 धर्मिय ३३८  
 धानजानि १५९  
 धानजानि-मुहूर्त १५६, १६०  
 धातु (अठारह) १५७, १६८, १६९,  
     ३४५, ३४८, ३४९, ३६६, ४६३-  
     ४०४, ४१२, ४१५, ४१७, ४१९,  
     ४५०, ५२१  
 धातुकथा (प्रकरण) १०९, ११६,

- ३४०, ३४१, ३४३, ३४६, ३५४,  
 ४१२-४१८, ४१२, ६३९  
 वातुकथा की अद्यतना ५३८, ५५३  
 वातुकथा योजना ५४३  
 वातुकथा टोका वर्णना ५४३  
 वातुकथा अनुटीका वर्णना ५४३  
 वातुकथा पाठ ११५, ३५३, ३५४, ३५७  
 वातुगम्भी ५११  
 वातुपाठ ६०१, ६१०, ६११  
 वात्स्वल्घदोषसा ६११  
 वातुमाला ६११  
 वातुमंजसा (वज्ज्वाल अधिकरण की)  
 ६०७, ६१०, ६११  
 वातु-यमक ४५०  
 वातु-यमक-यद्यात ४८१  
 वातु-विभग ३१७  
 वातु-विभग ३४०, ३४२, ३४३,  
 ३५०, ४०८-४०९  
 वातु-विभग-मुत्त १९८, ५२०  
 वातुवादी १८३  
 वातु विवरण प्रत्येक २४६  
 वातुमूली ६११  
 वातुमन (मिहल का राजा) ५५०,  
 ५५४  
 वातु-नवृत्त ०%, १६५, ३४८, ३५३  
 वारेन्ड चमो (रा.) ६२  
 वर्तमा ४६१  
 वर्तमा-निहिसो ५१७-५१८  
 व्रज-आस्मवाद ४४४  
 वृमाकारि जातक २८६  
 वातक (माणव) २४३  
 वोतकमाणव-पुच्छा २४१, २४३  
 वोममाल जातक २८७  
 वौली (अभिलेख, कटक के पास)  
 ५५, ६१८, ६२३
- न
- नकुलमाता गृहपति १८५  
 नगरिजि (नगरिजि) २८७  
 नगर विन्देश्व-मुत्त ११, १५८  
 नगई (एम०) ३१०, ३१२, ३१३,  
 ३२८  
 नच्च जातक ६३५  
 नन्द १६६, १८४, २२६, २२७, २४८,  
 ३२६  
 नन्दा १८४  
 नन्दक १८२  
 नन्दकोवाद-मुत्त १०, १५८  
 नन्दमाणव २४१  
 नन्द-बगा २२७  
 नदुख-न मुख ४०१, ४०२, ४०३, ४०६  
 न दुख-न मुख की वेदना ४०५  
 नदो काष्यव ३२५  
 नयलक्षण विभावनो ६१३  
 नरपति मिथु (वर्मीराजा) ६११  
 नरक के आठ प्रकार ५१७  
 नरक-लोक ४४६  
 नरयुनितगह ६४२  
 नलगात जातक २८८  
 नलकायत १५४, १९६  
 नलकायत-मुत्त १५, १५४  
 नलाटवातुवर्णना ५८१  
 नलाटवातुवर्ण ५८४  
 नवक-नियत १०१ १३८  
 नवटीके ५०८  
 नव विमलवृद्धि (अविधम्मपणरसदान)  
 ५८०  
 नवमेवकरी (लोकदीपसार) ५८०  
 नवमेश्वलान (जमिधानणदीपिका के  
 रचयिता) ५३९ ६१६  
 नवाम वृद्ध-वर्णन १०४  
 नवगजिनसासन १०४  
 नवनीतदीका ११०, ३५० ५३३, ५५५  
 नन्द ३०६, ५६२  
 नवांग (वृद्ध-वर्णन) ५८

नवीन सर्वास्तिवादी ३१४  
 न्यग्रोष १४७, १७२  
 नाग जातक ६३५  
 नागजून ४२३, ४२८, ४५८  
 नागमेन ४७३, ४७६, ४८८, ४९०,  
     ४८१, ४८२, ४८३, ४८४, ४८७,  
     ४८८, ४९०, ४९३, ४९४, ४९६  
 नागवग्न २१५, २१९, २२४  
 नाग संयुत १६५  
 नागित (ब्रह्मी भिक्षु) ६०६ देखिये  
 'कपटक चिपनागित' भी  
 नागिताचरिय (मद्दमात्यजालिनी)  
     ५८०  
 नागमेनसूत्र ४०३, ४०८  
 नादिका १५५  
 नानादेश-प्रचार ११३-११५  
 नाम ४०३, ४१३, ५२८  
 नामचारदोष १४०  
 नाममाला ६०३, ६०४, ६०५, ६०६,  
     ६०७, ६१०, ६१२  
 नामन्तर्युत १००  
 नाम-क्षय १६५, २४२, ४५४, ४५९,  
     ४८६  
 नामकृष्णदीक्षा ६४०  
 नामकृष्णदीक्षा ५३२, ५३९, ५७८  
 नामकृष्ण परिष्ठेद दीक्षा ५३९, ५५९  
 नामभिद्वातक २८२  
 न्यायसूत्र १२४  
 नारद २४६, ५४४  
 नालक २४५  
 नालक-सूत्र २३५, २४०, १९३, ६३०  
 नालक (मगध में) १७७  
 नालन्दा १३६, १४५, १५९, ५६३  
 नाला (शास्त्रानन्दाम) ५२५, ५२६  
 नावा २४०  
 नास्तिशय ४५८, ४६३  
 न्यास ६४०  
 निकाय १९०

निष्ठेपकंड ३७३  
 निगल नाटपुत (निवेद्य जातपुत्र)  
     १३३, १४७, १५३, १५५, १५९  
 निगण (निप्रन्य) १९३  
 निगिलवा ६१८  
 निषोष जातक ६३५  
 निषंदृ ४८१  
 निष्पत्ता-अनिष्पत्तावाद ४३५  
 निष्पत्तंजला ४६१  
 निदेस १०२, १०७, ११४, ११७,  
     ११०, १११, ३४०, ३४४, ३५१,  
     ३५०  
 निदेस टीका ५३२  
 निदान-वग्न १६५-१६६  
 निदान संयुत ११, १६५, ४०७  
 निदानवग्न संयुत ६३९  
 निदानवग्नसंयुत-अट्ठकवा ६३९  
 निदान क्षया ३८, २८१, ५४३, ५६९,  
     ५७०, ५९२, ५९९  
 निषिकृष्णसूत्र २०१  
 निष्ठय-प्रत्यय ४५७ ४६१  
 निमि २८७  
 निमिजातक २१४, २१९  
 निमिरात नरिय २११  
 नियत ४३९, ४४४  
 नियाम ४३३  
 निपात २१०  
 नियन्वग्न २१९, २२१, २२४  
 निरोध सत्य ४०५  
 निरोध-समापत्ति ४३४  
 निरोध-वार ४५१  
 निरूपत ४६५  
 निर्वाण (निवाण) १३७, २१७,  
     २२४, २३१, २३६, २६५ ३३४,  
     ३७२, ३७४, ३७५, ३८३, ३८८,  
     ४१५, ४३५, ४३६, ४३९, ४५३,  
     ४८२, ४८६ ५०५, ५३३  
 निर्वाण-शातु ४४४

निर्वाणपद ४१०  
 निरोध-समाधि ५३२  
 निराप-मृत १३, १५१  
 निर्कामता धातु ४१३  
 निष्कल ४३८  
 निरन्ति संग्रह ६१२  
 निरुत्तिवाच्य ६४१  
 निसन्देहो ५८१  
 निस्तन्तर मजूसा (चामकी टोका) ६०५, ६०६  
 निःसम्भिय-कथा ५०४  
 निःसम्भिय पावित्रिय कथा ५०४  
 निःसगि पातवन्तिक ३१३  
 निसम ३४९  
 नोबरण ४३१  
 नोवरणा-वर्ग ३३२  
 नेतिपक्षकरणस्य अल्पत्वपूर्वका (नेति-  
     पक्षकरण-अट्ठकावा) ४०१, ५३१  
 नेति ४३५  
 नेतिपक्षकरण २०८, २०८, ४६५, ५०१,  
     ४९५, ६०२, ६०३  
 नेतिपक्षकरण गम्भि ५८१  
 नेतिगम्भ ४६५, ५०३  
 नेतित्वकथा-टोका ५११  
 नेरजरा ६०, १७७, २२७, २७८  
 नेतिभावनी ५८२  
 नेतिपक्षकरण की टोका (संदर्भसंस्करि-  
     कृत) ५४०, (आमाभिवय-कृत) ५४१  
 नेवसज्जानासज्जापत्र १६१, २३१, ४३२  
     ५२१  
 नेपाल ६१८  
 नेष्टकम्प २११  
 नेवसज्जानासज्जापत्र, कुशलपत्र ३२१  
 नोट आम मेषकर १५३  
 नी अंग १०२  
 न्यूमन (कै० ई०) २७१, ६३१  
 न्ययोध (आमण्ड या स्थविर) ६२०  
     ६२४

न्यायविन्दु ६४२  
 न्यायविन्दु-टोका ३५२  
 न्यायसूत्र १२४  
 न्यास ६०४, ६१२  
 न्यादि (सोगल्लाम) ६४१  
 न्यासप्रदाय ६०४  
 न्ययोवाच्यम १३०, १८९  
 प  
 पुक्षिण्यक निकाय ६४१  
 पाहिलगक-निपात २७९  
 पाकिस्तान-वर्ग २११, २११, २२४  
 पञ्चव निहेन ४५६, ४५७  
 पञ्चनिय-अनलोम पट्ठान ४६६  
 पञ्चवद्याकाव विभग ४४३, ४५६,  
     ४०५  
 पञ्चनिय-पट्ठान ४५६  
 पञ्चवद्यमंगहो ५४०, ५७९  
 पञ्चवद्यव ५४१, ५८४, ५९४-५९५,  
     ५०५  
 पञ्चावति-पञ्चज्ञा-उत १८१  
 पटाचारा १८४, २६६, २७१  
 पटिउच्चसम्पाद ५१४  
 पटिसम्भिदामग ५५, १०२, ११३,  
     ११४, ११७, ११७, २०६, २०६,  
     ३११, ६४०  
 पटिपतिसगह ३४१  
 पटिपतिसगहो ५८१, ६४१  
 पटिसम्भिदा-विभग ३०३, ४३१  
 पटिसम्भिदामग अट्ठकावा ६४५  
 पटिसम्भिदामग की टोका ५१२  
 पटिउम्भिदामग मठिपद  
 पटिउविवेक टोका ६४१  
 पटिपतिसग्नियदस्तनविसुदि — सिद्धेसो  
     ५२१  
 पटिवेसनिय कला ५७४  
 पटिवेसनिया लम्मा (चाट) ३१३,  
     ३१६

- पटिभान पटिसम्भवा ५११  
 पट्ठान (पकरण) ९१, ११५, ३४१  
 ३४२, ३४६, ३५८, ३५९, ४०७,  
 ४५२-४६३, ४७०  
 पठम-पठमत्यष्टकासिनी ५३८  
 पट्ठानगणनानाय ५४०, ५८०  
 पट्ठानप्रकरणदृक्षया ५२९  
 पट्ठान की अट्ठकथा ५३८, ५४३  
 पट्ठानवर्णना ५४३  
 पञ्चवार ५९८  
 पण्डितसमेदो लुहकनिकायो ११७  
 पत्तर्पिंडिकंग ४११  
 पत्तजलि ४०५, ४१०, ५२१  
 पथबीक्षण-निहेमो ५२०  
 पदमपुराण ५१७  
 पदरूपविभावन ५७९  
 पदसोचन ६४१  
 पदनावन ६०९,—की टीका ६०९  
 पद-माला ६११  
 पदरूपसिद्धि ६०९  
 दै० 'क्षमतिदि'  
 पदचिन्तानणि ५२९  
 पधान २४०  
 पधानिय मुत्त १८८, ६२४  
 पपंसूदनी ४९७, ५६३, ५२५, ११०  
 पपंसूदनी की टीका ५३८  
 परमत्यज्ञोतिका ५१३, ५२६  
 परमत्यमजूसा ५३१, ५७८, ५८०  
 परमत्यदीपनी २६८  
 परमत्य दीपनी (लेदिसवाच-हृत)  
 २४७, ५३१, ५४४, ५७८  
 परमदृक् २४१  
 परमत्यविन्दु पकरण ५३९  
 परमाय सत्य ३५०  
 पंचम विपाक चित्त ३८३  
 पंचतन्त्र २१५  
 पंचशाल (याम) १६२, ४८९  
 पंचस्कन्ध (पञ्चवर्णना) —पांच स्कन्ध  
 या उपादान स्कन्ध) १५२, १५३,  
 १६८, १८१, २०८, ३७४, ४५३,  
 ४८२, ४८३, ५२१, ५८९  
 पंचप्रकरणदृक्षया ६३०  
 पंचप्रकरणदृक्षया की टीका १२८  
 पञ्च ४०२  
 पञ्चाश्चत्तक ३५०, ३९७, ४००, ४०४,  
 ४०५, ४०६, ४०७, ४१०  
 पञ्चिकामोगलान टीका ६८०  
 पञ्चिका ६०८, देखिये 'मोगलान  
 पञ्चिका' भी  
 पञ्च-वातक-सत्तानि २०६  
 पञ्चपुमला ३४३  
 पञ्चप्रदित जातक २७५  
 पञ्चवर्गीय भिक्षा १७२  
 पचादिवंगुलर अट्ठकथा ६३१  
 पञ्चिकामोगलान ६४०  
 पञ्चाल (पांचाल) १४५, १९५, २८६  
 पञ्चालराज २८३  
 पञ्चशतिका ७३  
 पञ्चाव-वल ३८९  
 पञ्चतिवादी ४२३, ४२४  
 पञ्चसामि (प्रज्ञात्वामी-वरमी भिक्षा)  
 ५८१  
 पञ्चवन्दिय (प्रज्ञा इन्द्रिय) ३१९  
 परित पाठ २१२  
 पहलवी २१६  
 पंडितवग्म २११, २२१, २२३  
 पंडितवाद ४११  
 पालुकुलिकंग ४११  
 पंजाब ११६  
 पंजाब-सस्कृत सोरीज ५७५  
 पदावहामहावक ६४१  
 परचितज्ञान ५२१  
 परजिक कंड ६३८  
 पराभव मुत्त २१२, २३९, २४०  
 परस्मैपद ६८  
 परविवेक ६४०

- परमत्यविनिव्यय ५३२, १७८, ६४०  
 पराक्रमवाहु प्रथम (लंकाधिराज) ५३७,  
     ५४१, ५६४, ५६५, ६०९, ६१४  
 पराक्रमवाहु (द्वितीय) ५६४, ५७५  
 चरित २१०, २१४  
 परित्तपाठ और लोका २११  
 परिव्वाजक — वर्ग १६, १५५  
 परिवार पाठ (परिवार) ८५, ९१,  
     १०७, ११५, ११७, ३२६-३२७,  
     ५४९  
 पर्याग सिद्धि ६०९  
 पर्वारणा ३२६  
 पशुकथाएँ २८६  
 पसूर २४१  
 पसेनदि १६२ देखिये 'प्रसेनजित्' भी  
 पश्चात्-जात प्रत्यय ४५७, ४६२  
 पञ्चगतिदीपन ५४२, ५८४, ५९३-  
     ५९४  
 पञ्चवत्य-मुत्त १३, १५६  
 पञ्चनेकायिक ७५, १०४, २०१, ६३४  
 पञ्चक ५७९  
 पञ्चनिपाति-अग्रतर ६३९  
 पञ्चक निपात १०१, १३६, १८१,  
     ३४२, ६२९  
 पञ्च इन्द्रिय १८०, १८१, ४९०  
 पञ्च निकाय ११४  
 पञ्च प्रकार की वेदनाएँ ४०६  
 पञ्च निस्तरणीय धातु १८१  
 पञ्च धातुएँ ४०४  
 पञ्च विमुक्ति आयतन १८१  
 पञ्च नैतिक इन्द्रियो ४०६  
 पांच विज्ञान धातु ४६०, ४६१  
 पांचतित्य ११, ११४, ३२२, २२३,  
     ६३८  
 पाकट वर्णना ३१२  
 पाचित्तियादि अट्ठकथा ६३९  
 पातिमोक्ष १०६, १०७, ३२३,  
     ६३९, ६२८
- पातिमोक्ष-बुद्धकसिक्षा ६४३  
 पातिमोक्ष — विसोवनी ५४०,  
     ५८०  
 पाणिनि २२, २९, ५१२, ६०८,  
     ६१३  
 पाणिनीय अष्टाध्यायी ६०१  
 पाणिनीय धातुपाठ ६०७, ६११  
 पाणिनीय व्याकरण ६०१, ६०८,  
     ६०३  
 पापवर्ग २११, २१५, २१८, २२३  
 पापक २८२  
 पायासि वर्ग २४५  
 पारापण वर्ग २०५, २४०, २४१  
 पावा १४५, १४७, ५७१, ५७२,  
     ५७४  
 पातंजल मत ५०७, ५११  
 पान जातक २८८  
 पातंजल योग ५११, ५१६, ५२२  
 पातंजल योगदर्शन ४१०  
 पायिक-मुत्त १४६, १४७  
 पायिक-वर्ग १४६, १४८  
 पाथेय्य-टीका ६३९,  
 पायासि राजन्य १४६, २०६  
 पायासि-मुत्त पायासिराजपञ्च-मुत्त १२,  
     १३१, १४६ ४३३  
 पारमिता २९९  
 पांडिटस अंब कन्दोवसी ४२१  
 पाराजिका ७७, ११, ११४, ३२२,  
     ३२३, ३३१  
 पाराजिक कथा ५०४  
 पाराजिका धम्मा ३१६, ३१२  
 पाराजिककण्ठ-अट्ठ कथा ६३९  
 पाजिटर ५४७  
 पारिलेप्यक (बनस्ताद) १७३ २२९  
     ५२१  
 पारिच्छतक वर्ग २४५  
 पारिदेसनिय धम्म ३२२  
 पालि माध्यम ११७

पालिलेखक १७३, २२९ 'देखिये'  
 पारिलेखक' भी।  
 पाटलिगामियवग्मो २२६  
 पाटलिपुत्र ८, १८, २१, ८५, ८७, ९०  
     १५९, १९६, ३३८, ४२१, ४२५,  
     ४८१, ५१६, ५१७, ५६३  
 पाठिक-सूत ९२, १३४  
 पाठिगामवग्म २३१  
 पाठिक-वग्म ९१, १३२, १३३, १३४  
 पाठाचरिय ६४०  
 पंडित वग्म २१५  
 पाष्ठव पर्वत २८६  
 पारानिस्त्रय ६४२  
 पालिटेक्स्यु सासायटो (संस्करण) ८३;  
     ८८, १०४, १६०, १७१, १७८,  
     १९५, १९६, १९९, २५७, ३३४,  
     ३४०, ३४५, ३५२, ४१८, ४२१,  
     ४२२, ४५०, ४५२, ४५७, ४७१,  
     ५०५, ५३८, ५४८, ५५३, ५६४,  
     ५६७, ५६८, ५६९, ५७५, ५८१,  
     ५८६, ६०२, ६२८, ६४४,  
 पालि दिक्षानारी (चाइल्डस) १२,  
     ३५२  
 पालि-विपिटक १०५, ११२, ११३,  
     ११५, ११८, १२०, १२२, १२३,  
     १२८, २००, २७६, ४६५, ४९५,  
     ५०८, ५२५, देखिए 'विपिटक' भी  
 पालि दि-संवेज और सदन बुद्धाद्  
     (कीय का लेख) १४  
 पालिघम्मपद २२१, २२२, २२३, २२४  
 पालि का अभिलेख-साहित्य ६१६ ६४३  
 पालि-काव्य २६७, ५६३-६००  
 पालि काव्य-शास्त्र ६१६  
 पालि कोष ७, ६१४-६२६  
 पालि छन्दः शास्त्र ६१६  
 पालि व्याकरण-साहित्य ६००-६१४  
 पालि बौद्ध धर्म ३५०  
 पालि-भाषा १-३३,-सब्दार्थ-निण्यं य १-

०,—का भारतीय भाषाओं के विकास  
 में स्थान ११-१२,—किस प्रदेश की  
 मूल भाषा थी? १२-२८,—का मानवी  
 आधार १४-२८

—और वैदिक भाषा २८-३०,  
 और संस्कृत ३०-३१,—और प्राकृत  
 भाषाएँ विशेषतः अद्भुताभ्यु  
 धीरसेनो और पैशाची ३१-३५,—  
 में पाये जाने वाले प्राकृत-तत्त्व ३२,  
 ५७-६२,—के व्यनि-समूह का  
 परिचय ३५-६८,—का यज्ञ-  
 साधन और वाक्य-विचार ६८-७०,  
 —के विकास की आवस्थाएँ ७१-  
 ७२,—और साहित्य के अध्ययन  
 का महत्व ७२-७३; १११, ५०५,  
 ५५२, ५७६, ६१५, ६२७  
 पालि लिटरेचर और बरमा (मेविल  
     बोड) ११९, २०१, ३०८, ५१७,  
     ६०६, ६११, ६१२, ६१३, ६३८,  
 पालि लिटरेचर और सिलोन (मल-  
     लसकर) ५६६, ५८८, ५९८, ५१०,  
     ६०४, ६१५

पालि लिटरेचर एवं लेखेज (शायर),  
     १२, १३, १४, १९, २३, ५२, ८०,  
     ९६, १२१, १३२, १६०, १६१,  
     २७३, ३४५, ३४६, ४७१, ४७७,  
     ४८८, ४९८, ५२७, ५५४, ५६०,  
     ५७५, ५८७, ५८८, ५९०, ५९४,  
     ५९५, ५९६, ६०५, ६०६, ६०७  
 पालि-साहित्य ७४, ८३, ९०, ९१,  
     १०८, १२१, १३०, २१०, २७६,  
     २९०, २९१, ३१८, ३४३, ३७४,  
     ४५२, ४९४, ४९५, ५००, ५२७,  
     ६३३, ६३८, ६४३,—का उद्भव  
 और विकास ७४-१०; —का  
 विस्तार, वर्गीकरण और काल-क्रम  
 ७४-११०,—में प्रकृति-वर्णन  
 २५५,—के तीन बड़े अद्भुतवाक्याद्

- ५०१,— का भारतीय वाङ्मय में  
स्वातं ६४४-६४६,—बीर विद्व-  
साहित्य ६४६-६४७,—का विव-  
रण—६४-६४७  
पालि माध्यम १११  
पालि ग्रन्थ २७५  
पालि महाव्याकरण (भिक्षु जगदीश  
काश्यप) ४, ६, ७, १६, २७, १२८,  
६१०, ६१४  
पाल संगोजन ४१९  
पास्त्रिका तथाना ३५२  
पालि मूलक वित्त संग्रह ५३८  
पास्त्रिक-मूल १३, १५३, १७०  
पास्त्रामिनूल १५१, १८०  
पालुकलवारी २५६  
पितलमाणव-युक्ता २८१  
पितृपाति पारिम्बुद्धि-मूल ११, १५८  
पिण्डपातिकं ४०२  
पितृक ८८  
पिटक ११२, १३२, १८२, १९७,  
३०७, ३१०, ३३५, ३५४  
पिटकलयलखण गत्य (पिटकवय-  
लखण यत्त्व) १२७  
पिटक-संप्रदाय १२३, १८६  
पिटक-माहित्य ३०८, ३४०, ५१३,  
५१४  
पिटक-संकलन २०१  
प्रिडो-टीका ६४१  
प्रिडो निस्तय ६४२  
पिडोल भारडाव १८३, ५२४  
पियार्तिक-मूल १६, १५५, १६०  
प्रियदर्शी (अशोक) ६१९, ६२४  
प्रियदर्शी (अयोकरणवार मोग्न-  
लान के शिष्य) ६०९  
पिरित २११  
पियज्ञालि ३३६  
पियदस्मि ३३६  
पियगाल ३३६  
पियवग २१५, २२६  
पीति ४०८  
पीटर ३२७  
पीठवग २४५  
पुच्छक ६०२  
पुगाल ८८२  
पुगाल-पञ्चति ११, १०७, १११,  
३४०, ३४१, ३४२, ३४३, ३४४,  
३४५, ३५२, ३५४, ३५५,  
३५७, ४१८-४२१, ८२९  
पुगालपञ्चति की अट्ठकवा १, १३८  
पुगालपञ्चतिपकरण-अट्ठकवा १२५  
पुण्यक २४२  
पुण्यकामाणवयपुच्छा २४१, २४२  
पुण्य मन्तानिपुत्त १२४  
पुण्योवाद-इति १८, १५८  
पुद्गम ३५१, ३१६, ३९८, ४१८  
पुलज्ञनवाद ४६४ ४८५, ४८६  
पुलवंसु १६४, ३२३  
पुण्यवग २१५, २२१, २२३  
पुण्यवती (पुण्यवती) २८३  
पुष्टवति ६४०  
पुष्टवता-उत्त्वंशी २९०  
पुरेजात-प्रत्यय ४६१  
पुराण ८२, १५३  
पुराण-इतिहास ११३ १५५  
पुराण टीका ५८१  
पुराणाचार्य (पाराणाचार्य) ४१७,  
४१९, ४००  
पुरामेद २६१, ४९६  
पुरातत्व निवत्तवाद्यो (सहृद  
साहयाय्यन) ४२२, ४२५, ४२६  
पुरुषत्व ५०६  
पुरुषमूल ५११  
पुलत्वागुर ६१६  
पलिङ्गोधा ५२०  
पुलिन्द ८८  
पुष्ट ३१०

- पुष्पमित्र ११६  
 पुष्पदेव ३१०  
 पुष्पगुर ५६३  
 पुण १५८, ३५३, ३५७  
 पुर्ख मनवायणीपत्र १८३  
 पुर्णा २६८  
 पूर्णिका २६८  
 पूर्व-अशोककालीन २७३, ३४१  
 पूर्वाचार्य (पुर्वाचार्य) १६७  
 पूर्व काश्याय १२३  
 पूर्व-बृहदधारीपत्र १०९  
 पूर्व-बृहदधारीपत्र ४३५, ४३५  
 पूर्वजन्म की स्मृति ६०९  
 पूर्वजात-प्रश्नय ४५३  
 पूर्वगाम २२८, ५२५  
 पूर्वकल्प ४८१  
 पूर्वशोलीय ४५८, ४२०  
 पूर्सी ३०९  
 पूर्वजन (पुर्वजनो) ४१८, ४२९  
 पूर्वी-वातु ४०३  
 पूर्वी-समान ध्यान की भावना १५३  
 पूर्वी-कर्मन ६२३  
 प्रकरण-पाद ११५, ३५३, ३५४, ३५५  
 प्रकीर्ण ३५५  
 प्रकृत काश्यायन १३१, १३८  
 प्रतिकूलसज्जा (बाहर म) ५२१  
 प्रत्यय २८८, ३५५, ४५५, ४५७, ४३०  
 प्रत्ययोत्पत्ति ०९८  
 प्रत्यय-स्वान ४५७, ४५८  
 प्रत्यन्त देव ५५७  
 प्रातिमोक्ष ३०२, ३२३ देविये 'प्राति-  
     मोक्ष भी'  
 प्रतिदेवाना ३१८, ३१३  
 प्रत्येक वृद्ध ४१८, ५७१  
 प्रतिसंख्यान ४३१  
 प्रतीत्य समुत्पाद १४४, १५१, १६५,  
     २१३, ४०७; ४१२ ४५४, ५८९,  
     ६३९
- प्रातिमोक्षमूलटीका १४९, ३०२, ३०५,  
     ३१३, ३१४  
 प्रातिभातकरण ३१९, ३२०  
 प्रतिसंख्यान ५४८  
 प्रतिसंविद-नाम २१८, ५३३  
 प्रथम ध्यान १६७, ४०९, ४१०,  
 प्रथम दो वौद्ध संगीतिया ३३-८५,  
     ३०८  
 प्रथम संगीति ३३-८२, ८१, ११७,  
     ३१०, ११९, ३०९, ३३६, ३३४  
 'प्रसाद' (जयशंकर) ३३  
 प्रजा १५२, १५७, १७१, २४०, ३५४,  
     ४११  
 प्रजा-इन्द्रिय ३८८  
 प्रजानिवादी ११५, ३५४, ३६६, ४२३,  
     ४२४  
 प्रजानिपाद वास्तु १६०, १४१, ३५३,  
     ३५६  
 प्रजाग ५५३ ६१७, ६१९, ६३३  
 प्रसादजननी ५८१  
 पराक्रमवाहु ५१४  
 प्राकृत-याकृद-याकृद-याकृद ८  
     प्राकृत (भाषा) १३, ३१, ३१-३५,  
     ३७, ३९, ४८, ५०, ५४, ५५, ५६,  
     ५७, ५८, ३२  
 प्राकृतपन (पाकि मे यावे जाने वाले)  
     ५७-६२  
 प्राचीन सिङ्हली अट्टकच्छा ४९६  
 प्राकृत घम्मपद २२१, २२२  
 प्राकृत (प्राकृत) ३१  
 प्राचीन बद्धमाययी १८, १९, १११  
 प्राचीन आयं भाषा ६८, ३१  
 प्राचीन नारतीय आयं नारायण  
     ११, ४७  
 प्राचीन बनकथा २७७  
 प्राचीन स्थविर (पोराणकथवेर) ४९९  
 प्रालेय (प्रालेयक) २८  
 प्रत्यीत-वैदिक-प्रयोग ३२६

प्राचीन सिहली भाषा १९६  
 प्राचुर्यवाचोपवाल २२३ ४२३, ४६६,  
 प्राण-वनि ३६, ३७, ५६  
 प्राणवनि का जगमन ५६, ६३,  
 ६४, ६७ और लोप ५६, ६३, ६७  
 प्रायदिवसिक ११४  
 प्रायदिवसिक १११  
 प्राणायाम १५७  
 प्रणिपात ३५०  
 प्रीति १३०, ३८३,  
 ३८७, ४०१, ४१०, ५३४, ५३५  
 प्रियदर्शी ८, २८  
 प्रवचन ५  
 प्रसेनजित १५६, १६२, १७७ १९४,  
 १९५, २२६, २३०  
 प्रदन उपनिषद् २११, १५६  
 प्रश्नक्रिया १७०  
 प्रदयोत (पञ्जोत) १६७  
 पेगन में प्राप्त खंडित गायण लेख  
 ६३४, ६३८  
 पेटकालकार ५४३  
 पेटकी ७५, १०४, ६३४,  
 पेटकोणदेश १०८, १२७, १२८, १९१,  
 १९४, ४३५, ४६६, ४७२, ५७७  
 ५८०, ६०२, ६०३  
 पेतवत्स १०२, १०३, ११०, ११४,  
 ११६, ११७, २००, २०१, २१०,  
 २४५, २४६, ५३१, ५९६  
 पेतवत्स अट्ठवाचा सहिता ६४०  
 पेतवत्सस विमलविलासिनी नाम  
 अट्ठवाचा ५७८  
 पेशाची प्राहृत १३, १५, २८, ३१, ३२,—  
 का पालि से संबध ३४—३५, ५०  
 पोतन १४५, २८७  
 पोतलि २८७  
 पोराण ४९९  
 पोराण अट्ठवाचा  
 पोराणाचरिय (पुराणाचार्य) ५७७, ६११

पोराणिक आख्यान १३०  
 पोटठपाद-मुत्त ९२, १२७ १२९, १३०,  
 १४१—१४२, १७२  
 पोतलिय-मुत्त ९५, १३०, १५३  
 पोलिटिकल हिस्ट्री अ औ एन्डियन्स  
 इनिडिय ( हेमचन्द्र रामचन्द्रीरी )  
 २११, २१२, २१३, ४७१, ६०९,  
 ६१०, ६११, ६१३, ६१४  
 पोलोब्रह्मा (लका मे) ६१५, ६१६  
 पोराण खट्कसिक्षा टीका ५३९  
 पोसालभाषणवपुल्ला २४१  
 पीष्टकरसाति १३८

## फ

फन्क्यू-किंड (बम्मपद का नीनी जन-  
 वाद) २२३  
 फल-चित्त २८३  
 फन्शिन्यन २७७  
 फौसबाल (बौ०) २७३  
 फानुकार्म-मुत्त ९३, १५६  
 फाहयान २०४  
 फास २६६ ५६९  
 फिक (डा०) २८९  
 फ्लोट (जे० एफ०) ५५४  
 फैक (आर-ओ०) १२, १३, १४, १५,  
 १११, १३२, १८८, ५५०, ६०७,  
 ६११

## व

वक जातक २८२  
 वंकाक ५०५, ६४४  
 वक्कुल-मुत्त ९८, १५१  
 वंगला २३५  
 वंग-प्रदेश ५५१  
 वर्मी विहार (सारनाथ) २३१  
 वंवई विश्वविद्यालय (संकरण) ५,  
 ९०, १३४, १४८, २०२, २१२,

- २४६, ३१५, ३३८, ३४१, ३४९,  
४७२, ४७४, ४८१, ५५३  
वरमा ११, २०७, २११, २७४, ३३१,  
३३२, ३५१, ४७१, ४७२, ४९२,  
५१०, ५३६, ५३७, ५४०, ५४१,  
५४३, ५४४, ५४५ ५७६, ५८१,  
५८३, ५९०, ६०५, ६०६, ६१०,  
६११, ६१४  
वरमी परम्परा, साहित्य, इतिहास आदि  
१३८, २७३, ३०८, ३१८,  
३९६, ४१८, ४२२, ४५२, ४९५,  
५०५, ५३१, ५३९, ५४२, ५४४,  
५४६, ५४८, ५६४, ५६७, ५७६,  
५८१, ५८२, ५८५, ६००, ६०४,  
६०६, ६०९, ६११, ६१२, ६१३,  
६१४, ६१५, ६१९, ६३८, ६४२  
वरमी पालि नाहिय ५४३-५४४  
वरमी परम्परा ५०९, ५१०, ५१२  
बल (पांच) ५१२  
बलसंयुक्त १०१, १७१  
बहुवदनिय-मुत १५, १५३  
बहु-धातुक-मुत १५, १५५  
बहुचर्यमध्यो उपदेश (बृहका)  
१९१-२०३  
बहुआण्ड पुराण ५९३  
बहुआय सुत १६, १५६  
बहुविहार-निदेशो ५२१  
बहुजाल मुत १२, १३४-१३७, १३८,  
२७६  
बहुविहार १४३, २१०  
बहुवर्ती ५८६  
बहुगिरि (मैसूर राज्य)  
बहुआय सुत १५६, १५०  
बहुवत २०४  
बहुनिमन्तक-मुत ११, १५३  
बहुजाल-मुत १३४-१३३, १५३  
बहुविज्ञान ४१०  
बहु संयुक्त ११, १६२, १६३  
ब्राह्मणधर्मिय (वरमा) २४०  
ब्रह्म-आर्द्धित १७३  
ब्रह्म देश ७८  
ब्रह्म-सूत्र १२४  
ब्रह्मचर्य २०८, ४२१, ४३०, ४५३  
ब्रह्मा १४३, २५२, ५११  
ब्रह्मायु (ब्राह्मण) १५७  
ब्रह्मतर भारत २१०  
बापठ (डा०) २३५, ३५०, ३५२, ५२८  
बाख्य (ए.) ८८, ११८, १७७  
बाण ५९२  
बाह्य आयतन ३४८  
बारावर (पहाड़ी, गया के गास) ६१८  
बालपंचवोधनप्रति-(वृत्ति)-करण ६६१  
बावनि (ब्राह्मण) १६२, २६०, २८१  
बावेन जातक २८३, २९५  
बावेन राष्ट्र २८३  
बालपंचवोधन (ब्राकरण) ५०१, ५०३  
६५१  
बालतज्जन ६४१  
बालावतार ५६८, १७९, ६०५, ६०६,  
६०७, ६१३, ६४०  
बालपंडित-मुत ०८, ११३  
बालावतारटीक ५३९  
बालवभ्य २१५, २२१, २२३  
बाहरी संयोजन ४३९  
बाहिर कथा ४७३  
बाह्य-ग्रन्थ ११, २८, २९  
ब्राह्मण-वरमा १६, १७, १५६, २१५,  
२२०, २२१, २२४  
ब्राह्मण-संयुक्त ११, १५३  
ब्राह्मिक-मुत १६, १५६  
बाहिरा (घम्मा) ३६९  
बाहिम दारुचीरिय (भिक्ष) १८३  
बाह्य आयतन ३४८  
ब्राह्मण वर्ग १५९  
बाहुल्यक (बौद्धसम्प्रदाव) ४२२, ४२३  
बाहुश्रुतिक (बाहुलिक) ४२३

चिंगेट (विशप) ६००

चिंडल जातक ६३५

चिंचिलियोदेहका इंडिका ५६१

चिंमिसार २३०, १४५, २२८, २९२,  
३२५, ३२६, ५६१, ५६२

चिनि-म.-रोत ३१२

चिलारबत जातक २८२

चीजल्व ६४१

चुद्ध-उपरेता ७१, ७३, ८३, १०१,  
१०२, १२५, १२६, १३१, १३२,  
१३४, १३५, १६७, १८०, २०१,  
२१४, २३५, ३०५, ४४५, ४५५,  
४५६, ४६६

चुद्ध-काल ११, ८२८, ८३६, ३१०  
चुद्ध-कालीन १२७, १८२, २४६, २७३,  
२८९, ३२५, ३४७, ४५०, ४८१

चुद्धकालीन भास्त १२०, १५९,  
१७५, १९६, २०५

चुद्धधार्य (आचार्य) १, २, ३, ६, १०, २२,  
२३, २४, २८, ३०६, ३०५, ३०८,

३२०, ३२०, ३४८, ३७७, ३८०,  
३०८, ३०९, ३१०, ३१२, ३१५,

३२८, ३३१, ३३४, ३३७, ३४१,  
३४६, ३५०, ४२७, ४६५, ४७२,

४७३, ४७५, ४८६, ४९७, ४९८,  
४९९, ५००, ५०१, ५०२, ५०३,

५०४, ५०५,—की चीवनी ५०५—  
—५०६—की रखनारे ५१३—

५०७,—५०८, ५०९, ५१०, ५११,  
५१२, ५१३, ५१४, ५१५, ५१६,

५१७, ५१८, ५१९, ५२०, ५२१,  
५२२, ५२३, ५२४, ५२५, ५२६,

५२७, ५२८, ५२९, ५३०, ५३१,  
५३२, ५३३, ५३४, ५३५, ५३६,

५३७, ५३८, ५३९, ५३३, ५३५,  
५३६, ५३७, ५३८, ५३९, ५३०,

५३१, ५३२, ५३३, ५३४, ५३५,  
५३६, ५३७, ५३८, ५३९, ५३०

चुद्ध-सेना ४६८  
चुद्ध-जीवन १२५, १७३, २०१,  
२३५, ४७१, ४७४, ५०५, ५८२,  
५९३, ५९४, ६००

चुद्ध की चीवनी १५०, १५६, १५८,

२०८, चुद्ध-यमे ७३, ८६, ८८, ११२, ११३

१२३, १४५, १४६, १४७, १६१,

१६२, १६३, १७२, १७४, १७५,

१७६, १७८, १८५, १९०, २०३,

२११, ४१८, ४३१, ४४२, ४४५,

४४७, ४६६, ४९३, ५१७, ५६३,

५६८, ५८१, ५९५, ६००, ६०१,

६०३, ६४३

चुद्ध-नेत्र ४५४

चुद्ध-प्रवत्तन १४८, १५६, १६०,

१६८, ३०९

चुद्ध प्रशस्ता १६३, १६६

चुद्ध-प्रमुत चिद्धु-संघ १२७, २२८

चुद्ध शिष्य १३२, २६९

चुद्धचर्या (राहुल साकृत्यामन) ०६,

८२, १३२; १११, ३३५, ५२५

चुद्ध-नूत्र युग २९०

चुद्ध भवित २०८

चुद्धकालीन संघ ३०८

चुद्ध-मत १५३, ३२५, ४२८, ४५३

चुद्धमन्त्रव्य ४४१४४, ३०६, ३३५,

३४६, ४२५, ४६३, ४६८, ४८४

चुद्ध मूल ८३, ११२, १२०, २१७

चुद्ध वैवित १५५

चुद्धमित ०८१

चुद्ध गौरव १६८

चुद्ध-युग २१, ३५, १९३

चुद्धवस १०२, १०७, १०८, ११८,

११९, २१८, ५०५, ५०६, ५०७,

५०८, ५०९, ५१०, ५११

चुद्ध-वासन ५, १३६, २४५, २४७,

२४८, २४९, २५६, २६१, ३०७,

३०८, ४७२, ४८७ ५८१, ५८८,

५२०

चुद्धरजित ३१०

चुद्ध-संवाद १७८

बुद्ध-पूर्व युग २९२	५०६, ५०७, ५११, ५१२, ५१३,
बुद्धकालीन भूगोल २८९	५१४, ५१६, ५१७
बुद्धप्रिय 'दीपकर' (स्थविर) ५१५,	बुद्धप्रोप की अभिधर्म प्रटीक सम्बन्धी
५१६, देखिये 'दीपकर' भी	अद्धत्कथाएँ ५२८-२९,—की अन्य
बुद्धघोष युग की परम्परा अवधि	उच्चनारे,—का पालि साहित्य में
टीकाओं को युग, ५१७, ५१	स्वान ५२९-३०
बुद्धिस्ट फिलासफो (कीथ) १२३	बुद्धप्रिय १४१
बुद्धिस्ट साइकोलॉजी ५०५	बुद्धघय ११३, ३५६
(अट्ठवश्वाकार)	बुद्ध वग २१५, २१८, २२४
बुद्धदन १५५, ४१५, ४१६, ५०१,	बुद्ध (भगवान्) ५, १२, १५, १६,
५०२,—की जीवनी और रचनापृ	१७, २१, २२, २३, २४, २५,
५०२, ५०५, ५०३, ५०८, ५३०,	२६, २८, ३३, ३५, ३६, ३८, ३९,
५३१, ५३२, ५३३, ५३४, ५४५,	३७, ३८, ३९, ४०, ४१, ४२,
५४६, ५४७, ५४८, ५४९, ५४३	४३, ४४, ४५, ४६, ४७, ४८,
बुद्धघोष-विहार ५१३	४९, ५०, ५१, ५२, ५३, ५४,
बुद्धाल्कार ५४२	५५, ५६, ५७, ५८, ५९, ५३१, ५३२,
बुद्धघया २१०, ५०९	५३३, ५३४, ५३५, ५३६, ५३८, ५४२,
बुद्धमित्र ५१०, ५२४	५४३, ५४४, ५४५, ५४६, ५४७,
बुद्धप्रिय ५८०	५४८, ५४९, ५५०, ५५१, ५५०
बुद्धवस्त्र-टट्टकावा ३४८	५५२, ५५३, ५५४, ५५५, ५५६,
बुद्धवश ११४, ११५	५५७, ५५८, ५५९, ११५, ११६,
बुद्ध-यात्रा राजगृह से कमिनारा तक १४५	११७, २०१, २०२, २०३, २०४,
बुद्ध की हृदय से उत्पन्न कल्पा २६७	२०५, २०६, २०७, २०८, २०९,
बुद्धघोष-यग ४९६, ५३६	२०१०, २०११, २०१२, २०१३, २०१४,
बुद्ध-गणितिविद्वाण ११८, ११९, १२०,	२०१५, २०१६, २०१७, २०१८, २०१९,
१२१	२०१०, २०११, २०१२, २०१३, २०१४,
बुद्धिमत्त एजेक्येश्वर इन पालि एवं	२०१५, २०१६, २०१७, २०१८, २०१९,
संस्कृत स्कूलम् (ए० ई० जे० कालिज)	२०१०, २०११, २०१२, २०१३, २०१४,
२०१५	२०१५, २०१६, २०१७, २०१८, २०१९,
बुद्धघोष यग की परम्परा अवधि	२०१०, ५०१, ५०२, ५०३, ५०४,
टीकाओं का यग ११०	५०५, ५०६, ५०७, ५०८, ५०९,
बुद्धरक्षित (बिनालकार के रखियता)	५०१०, ५०११, ५०१२, ५०१३, ५०१४,
५११, ५१२	५०१५, ५०१६, ५०१७, ५०१८, ५०१९,
बुद्ध-वर्गित ३३, ५१२	५०१०, ५०११, ५०१२, ५०१३, ५०१४,
बुद्धानुस्मिति ५३	५०१५, ५०१६, ५०१७, ५०१८, ५०१९,
बुद्धकालीन सामाजिक अवस्था	५०१०, ५०११, ५०१२, ५०१३, ५०१४,
२८९	५०१५, ५०१६, ५०१७, ५०१८, ५०१९,
बुद्धघोमण्डि ८०९, ५०२, ५०३,	५०१०, ५०११, ५०१२, ५०१३, ५०१४,
	५०१५, ५०१६, ५०१७, ५०१८, ५०१९,

- बुद्ध-वचन १, ४, ६, ८, २१, २२, २३,  
 २५, ७५, ७६, ७६, ७७, ८०,  
 ८४, १०२, १०३, १०४,  
 १०६, १०७, १०८, ११२,  
 ११७, ११८, ११९, १२०, १२३,  
 १२४, १२७, १२९, १३१, १३३,  
 १४८, १३९, १८२, १८७, १९२,  
 २००, २१४, २२९, २३२, २३३,  
 २३४, २७६, ३२६, ३३७, ३३८,  
 ३३९, ३४०, ३४३, ३५०, ३५२,  
 ३५३, ३५८, ३७४, ४०५, ४०९,  
 ४१०, ४१२, ४६५, ४८८, ५५६,  
 ५६९, ५७०, ५८४, ५८७, ५९२,  
 ५९३, ५९४, ५७७, ६३३, ६३६  
 बुद्ध दर्शन ४५३, ४८१, ४८४, ४८७  
 बुद्धिस्तिक स्टडीज (लाहोर-संपादित )  
 ४, ८, १२, ६७, ८२, ८४, ८९,  
 १०५, ११६, १२३, ३१२, ३१३,  
 ३२८, ३३४, ३३८, ४२४, ४४०  
 बुद्धिस्त वर्ष स्टडीज २०३, २८१  
 बुद्धिस्त विनय डिसिप्लिन और  
 बुद्धिस्त कम्पाइमेंट्स ३२८  
 बुद्धिस्त मेनेजल ऑफ साइकोलॉजीकल  
 एविक्यू ४४३  
 बुद्धिस्त इंडिया (रायस डेविल्ड) १२,  
 ११२, २०२, २७३, ३३३, ४५०,  
 ५६१, ६२८  
 बुद्धिस्त विनय डिसिप्लिन ३१२  
 बुद्धिमत्त : इट्स हिस्ट्री एंड लिटरेचर  
 (अमेरिकन लेक्चर्स ऑफ बुद्धिमत्त,  
 डॉ. रामस डेविल्ड) ३४६  
 बुद्ध की उठाने वाली आदेशना १८७  
 बुद्धिष्ठसाधिनी ६०९  
 बुद्धनाम (स्वविर) ५३८, ५३९, ५४१  
 बुद्ध बन्दना ३७०  
 बुद्धालंकार ५८४, ५९१  
 बुद्धत्व प्राप्ति १२५, १८५, २५४,  
 ३२४
- बुद्धरक्षित (स्वविर) ५३८, ५८०, ५८५  
 बुद्धयो (बुद्धसिर) ५२२  
 बुद्ध निर्वाण ११, १५५  
 बुद्ध स्वभाव ३२९  
 बैत्तिकसम्मुत १५५  
 बैलूक-जातक २८८  
 बैकिया ८९, १९६  
 बैराट (जयपुर) ६१८  
 बोधिवस ५८१, ६४०, देविए 'महा-  
 बोधिवस'  
 बोधिपदीय घम १८९, २१३, ४२२  
 ३३०  
 बोधिमत्त आदेश २०८, २१०  
 बोधिमत्त (बाकाकरण) ६०८  
 बोधिकृष्ण ५०९, ५५३, ५६५, ५६८,  
 ५७३, ५७८  
 बोधिमत्त २०५, २३३, २९६, ४३२  
 ४४७, ५३०, ६३६  
 बोधि के मातृ अङ्ग, १३०, २०८, ६०८  
 बोरोबुदुर अङ्ग २१०  
 बोद्ध मिशनिय २६४  
 बौद्ध योग २१०  
 बौद्धिराजकुमार-मृत १६, ४५५, ५६०  
 बोजमा विमर्श ३१०, ६०८  
 बोजमग-संघूत १००  
 बोधयंग १५८, ३१८  
 बोधि वर्ग २२१, २२५, ४१२, ४५४  
 बोबोगी योगीहा (बरमा) ६१६ म  
 प्राप्त नंदित पापाण लेख ६३८  
 बौद्ध संगीतिय १०५, ११८, ३२५,  
 ५२३, ५३७, ५५०, ५५१, ५५२  
 ५५८, ५६२, ५६८, ५६९, ५७२,  
 ५८१, ६२३  
 बौद्धयगीन यिक्षा २८९  
 बौद्ध घम ११७, ११८, १३१, १४६,  
 १५९, २३१, २३५, २३७, २४५,  
 २६९, २७६, २७८, ३३१, ४४७,  
 ४४८, ५०६

- बोद्ध साहित्य २१३, २३०, २९०, २४१,  
     २३०, २६५  
 बोद्ध जनवर्णनि ३९, ४१६  
 बोद्ध महाविभाषा शास्त्र २१२  
 बोद्ध परम्परा १६०, ३३८, ४२७, ३०५  
     ३३५, ५८७, ३३८, ४२७, ३०५  
 बोद्ध-संघ ८६, ३०७, ३०८, ६७७  
 बोद्ध ग्रंथ ३४०  
 बोद्ध नेत्रिकबाद २४८  
 बोद्ध दर्शन ४८९  
 बोद्ध सम्प्रदाय ३५५  
 बोद्ध-नात्य-दर्शन ३३५  
 बृहज्ज्वातक-मिस्सय ४४७  
 बृहत् कथा २०४  
 बृहज्ज्वातक-टीका ६४१  
 बृहज्ज्वातक ६४१  
 बृहज्ज्वातक ६७४  
 भ  
 भग्न १६९  
 भग्न राज्य २८७  
 भग्न दैश १८५  
 भग्नवान् भग्नवीर १५६, १५७  
 भडगाम १४५, ११५  
 भडगाम (डॉ आर०) ८६, ६२९  
 भड्डौच ४९४  
 भतो-रोग-रोग ३१२  
 भद्रन्त (स्थविर) १२४  
 भद्रकल्प १४३  
 भद्रयानिक ४२४, ४२२, ४२५, ४३०  
 भद्रा (भिष्ठुणी) २६९  
 भद्रा कात्यायनी (भिष्ठुणी) १८४  
 भद्रा कापिलायनी २६८  
 भद्रा कुण्डलकेशा (भिष्ठुणी) २६८-  
     २६९  
 भद्रनाम ३३६  
 भद्राल (स्थविर) ५५३, ५६८,  
     ५६२, ८९, ३१०
- भद्रसाल जातक २८७  
 भद्रालि १५४  
 भद्रालिसूत १५, १५४  
 भद्रालव माणव पुच्छा २४१  
 भद्रिय २३०, ३२५, ३३६  
 भद्रिय कालिगोधापुत्र १८३  
 भद्रेकरत-सूत १५८, ३४५  
 भूमिज-सूत १५७  
 भयभेरव-सूत १३, १२९, १४९, १७२,  
     २४४  
 भरह-कालाम १८५  
 भरह-मृत १८४  
 भग् १४२, २९१  
 भत् हरि ५९०  
 भरत भुनि ३१  
 भरकल्प २८८, ४९४  
 भलिका ३२७  
 भलिक २०३  
 भव १६५, ४१४, ४५५, ४०७  
 भव-ओष ३६६  
 भव-योग ३६७  
 भव्य (आत्माय) ४४९, ४२३, ४२४  
 भव-वासना ४२०  
 भवासे २३६  
 भवासव ४४१  
 भागलपुर १३९  
 भागवत (डा०) १४८, ५४८  
 भांडारकर ओरियन्टल सीरीज, पुस्ता  
     ३५२  
 भांडारकर कोमोमेरेश्वर बोल्यूम १६  
 भाषणक ७५, ६३४  
 भालू (विलालेख) ४, ६, १९, १०३,  
     २३५, ६१८, ६२०, ६२७, ६३३  
 भारत (भारतवर्ष) ७४, ९१, २८५,  
     ४७३, ५०२, ६४५, ३३७, १०७,  
     ११०, ४८१, ५०८, ५०९, ५३०,  
     ५५८, ५६३, ५६३, ५७३, ५७४,  
     ५७७, ३१०, ३६६, ४१२, ४१३,

- ५०७, ५८६, ४०४, ६२२, ५९८,  
५९९, ६१४, ६२१  
भारद्वाज (वाहृण) १४२, १७७, २९१,  
१६९, १७६, १६३, २३९  
भारहुत (अभिलेख) १०४, २०१,  
२३३, ५७३, ६१७, ६३४-६३५  
६३६  
भारतीय साहित्य २९०, २९५, ८८५,  
४७६, ४९२, ४९३  
भारतमूर्मि ३३१  
भारत-बूद्धोपिषद ६३  
भारतीय काव्य साहित्य २५९  
भारतीय गच्छाली ४९२  
भारतीय दण्ड ४५३, ४८४  
भारतीय भूगोल २८५  
भारतीय राष्ट्र ४८१  
भारतीय विद्या भवन (बम्बई) ११४  
भारतीय साहित्य का विदेशी साहित्य  
पर प्रभाव २९०  
भारतीय बाह्यकार्य ४९३  
भारतीय ज्ञान ४९३  
भावनामयी वज्रा ४११, ४६०  
भाव्य ५००,—की परिभाषा ५००—  
५०१  
भाष्यकार ४६६  
भिक्षुगतिक ६२१  
भिस जातक ६३५  
भिक्षु-पातिमोक्ष ३२३  
भिक्षुनी पातिमोक्ष ३२३  
भिद्यु-पातिमोक्ष ३१३  
भिक्षु वग्म ९५, ९६, ११३, १५५,  
२१५, २१९, २३१, २२४  
भिक्षु वित्तय १८७, ६२३  
भिक्षु विमंग ५०४  
भिक्षुनी विमंग ३२३, ६२८  
भिल्ल-संघ २०९, २२८, २५१, ३२१,  
३२३, ३२५, ३२६, ३२७-३२९,  
३२८, ३३०  
भिल्ली-संघ १९, ३०५, ३०८, ३२८  
भिक्षु-संघ १५३, २०६  
भिक्षुणी-नवृत्त १९, १३०, १६१,  
१६२  
भीतरी संयोजन ४१९  
भुवनेकबाहु प्रथम (लकाधिराज)  
५९३  
भुवनेकबाहु द्वितीय (लकाधिराज)  
५६५  
भुवनेकबाहु तृतीय (लकाधिराज)  
६०९  
भूमिज-सूत ९८  
भूतत्वता ४४८  
भूरिदत्त-चरित्य ३००  
भैसकलावन १७३, ५२५  
भेदज्ञमंजुसा ६४२  
भोज ८८  
भोजाजानीय जातक २७४  
भोवादी २२०  
भीतिकबाद ४२८  
भीतिकहावादी ४५३
- म
- ममामग दस्तन विसुद्धि निदृदेसो ५२२  
मगध ४, १०, ११, १४, १३, १८, २४,  
२६, २८, २९, ५६, ११५, १३५,  
१९५, २५१, २८६, २८८, ५६३,  
५७१, ५७२, ५८३, ८२३  
मगध-कोसल २३३  
मगध-भाषा १०९  
मजिमम (स्थविर), ८८, ८९, ५५५  
५६२, ५६६, ५८२  
मजिममा पटिपटा ३६२  
मजिममनिकाल को जट्ठकथा १८८—  
१९०, १६१, ५१०, ५१३, ५३८  
मजिममपण्णास अट्ठकथा-३३१  
मजिमम पण्णास ६३९  
मजूसा टीका व्याप्ति ६४१

- मजिममेसुपदेसु २१  
 मजिमम-निकाय (मजिमम) २५, २६, २७,  
 ११, १३, १९, १०३, १०७, ११३,  
 १२३, १२७, १३१, १२९, १३०,  
 १४०, १४८-१५०, १५१, १६८,  
 १६९, १७०, १७१, १७२, १८०,  
 १८८, १९४, २०५, २११, २०५,  
 ३२१, ३२४, ३३४, ३४०, ३४२,  
 ३१९, ४०३, ४०८, ४३१, ४५५,  
 ४१७, ५००, ५०९, ५१४, ५२४,  
 ५६७, ६२४, ६२९, ६३०  
 मध्य मंडल १८, २१, २४, २६, २०,  
 २३, २४, ३३१, ३३२, ३३८,  
 ५६०, ६१४, ६४८  
 मजिमम निकाय की अट्ठकथा की  
 टीका ५३८  
 मध्य-व्यजन ३७, ५४,—असंयुक्त  
 ५३-६२,—संयुक्त ६३-६७  
 मध्यमा प्रतिपदा (मध्यम भाग) ५२२  
 मध्यमागम ११३, १३३  
 मध्यकालीन भारतीय भाषाएँ  
 ३०, ३२  
 मध्यम मार्ग १४१, १६९, १७३  
 मध्यकालीन भारतीय भाषे साहित्य  
 ६४४  
 मध्यम (स्थविर) देखिये 'मजिमम  
 स्थविर'  
 मधुरस्थ विलासिनी (बुद्धवंश की  
 अट्ठकथा) १०४, ५०५-५३१, ५७३  
 मनोविज्ञान ४६५, ४८८, ४०३, ४०४  
 मन-आयतन ४०१, ४०२, ४०३  
 मनोरथपूरणी ४७३, ५१३, ५२४-५२६  
 मनोषात् ४५१, ४६०, ४६१, ३८१,  
 ३८३, ३८४  
 मस्त्य (राजा), ३४५, ५४८  
 मगधराज १३३, १६७, १६९, २२८  
 मक्कट जातक २८८  
 मखादेव जातक २८१, ६३५  
 मललसेकर (जी० पी०, डा०) ५८८,  
 ५९८, ५९९, ६१५  
 मधादेविय जातक ६३५  
 मक्कलि गोमाल १३३, १५९, १७६,  
 ४८०, ४८१  
 मच्छ-जातक ३००  
 मच्छराज-नरिय ३००  
 मकुल पवत ५२५  
 मच्छ १४५, १९५  
 मगोलिया ३३२, ६४८  
 मधुरस्थाहिनी ५३९  
 मज्जा (प्रोम-वर्त्मा) का हृषीकेश  
 लेख ६३४, के लोकोंगो अभिलेख  
 ६३५-३६  
 मनोविज्ञान वातु ३८१, ३८४, ४७०,  
 ४०२, ४०४, ४५१  
 मजिमम पण्णासक १५८  
 मनोरा पुरणी ५३३  
 मनोरथपूरणी की टीका ५३८  
 मन १६५, १६७, १६९, ३३०, ३३२  
 ३४८, ४०३, ४०५, ४०६  
 महानाम ३१०  
 मनवकारी ज्ञापि २९१  
 मध्यदेश २०३, २८६  
 मजिमम-भाणक १९७  
 मध सोगि-रित्म ३११  
 मनोधातु ४०२, ४०४  
 मगमवग २२१, २२४  
 मंजुष्टि वग २४५  
 मतसिकार (मनसिकारो) ३८६, ५१२,  
 ५३४  
 मणिसार मंजुसा ५४२, ५४०  
 मखादेव-सत् ८१, १५५, २७६, २८१  
 मनसेहर (पेशावर जिला) १७, २३,  
 ६१८, ६२७, ६३३  
 मग-संयुक्त १३२, १७३  
 मग-विभूग ३९, ४०८  
 मलल राजट २८५

- मत्थके मत्थलुग २१०  
 मवुपिण्डिक-सुत १४, १५१  
 मनुवण्णना ५४६  
 मनुस्मृति २२०, ५४६  
 मंगल (गम्भट्ठि के रचनिता) ६१२  
 मनुसार ५४६  
 मन्वन्तर ५४८  
 मञ्जिक मुहम्मद जायसी २३०  
 मनाचे छोक २५२  
 मंगल सूत १५५, २०८, २१०  
 मञ्जकन्तिक (स्वविर) ८८, ५५७, ५६८,  
     ५७२  
 मञ्जिकापण्डवासी १८४  
 मलाया २८८  
 मणिदीप ५५३, ५६०  
 मद (देव) २९२, १६३  
 मनोहर ६८०  
 मगधभूताविदम ५८०  
 मनोधातु-संस्पर्शज्ञ ४००  
 मधुरा (मधुरा) १५५, १८३, ४७४,  
     ४९४, ५६३  
 मधुमारत्यदीपनी ५४३  
 मृद ३१२, ५३५  
 मध्य चता ५३५  
 मल्ल राज्य १४५, ५६३, ५७१  
 मध्य-एशिया ६४४  
 मल्लवंग २२४  
 मध्यमा प्रतिपदा १३६  
 मार्कण्डेय पुराण ५९३  
 मध्यकालीन जार्य भाषा युग ११, २९,  
     ५४  
 मञ्जिभूमपण्णास टीका ६३९  
 मराठो १२, २८, २९, ५६  
 मणिकंठ जातक २७६  
 मरिचबट्ठि विहार ५५८, ५५९, ५७३  
 मयूररूपदून ५१०  
 मयूरसुत्पदून ५१०  
 मतुदा (प्रा०) ५४९  
 महाकोटिठत १००  
 महावग्ग टीका ६३९  
 महामवस्त्र सूतन्त २७६  
 महामेवण्णाराम ५६३  
 महाकालबाबू ६४३  
 महामुर २१२  
 महाकल्पायन (विनयगाडि) ५३३  
     ५३०, १७१  
 महासन (लकाविष्टि) ५४८, ५९९,  
     ५५०, ५५२, १६०, ५६१, ५६४  
 महाविजितवी (वरमी निक) ६०७  
 महापरिनिक्षण सूत ७५, ७६, ८०,  
     ८१, ८३, ९२, १३०, १३३, १४४,  
     १४५, २२५, २३१, ३०५, ४७०,  
     ५७१, ६२४  
 महावेषि (जन्मल) २३१, २९३,  
     ३०२, ५३०  
 महावंसटीका ५४९, १५४, ५१५,  
     ५६९, ५७२, ६००, ६४०, ऐच्चिये  
 'महावस की टीका' भी  
 महावंसमसादान सूत १५२  
 महालोमहस-जातक ३०१  
 महाविजित १३०  
 महासंषिक ३११, ४२२, ४२३, ४२४,  
     ४२५, ४२८, ४३७, ४३८, ४४१,  
     ४४४, ४४८, ५५०  
 महासतिपट्टान सूत १२, १४६, १५०,  
     १३०, २१०, ४३५  
 महापुराण-कल्प १२१  
 महासलायतनिक-सूत १५८  
 महाकम्भविभग सूत ९३  
 महासलायतनिक सूत ९१  
 महासुदर्शन २९९  
 महानिस्सर ५८०  
 महागण ६४०  
 महायानो बीढ़ साहित्य ८५  
 महासंगीतिक भिन्न १२१, २०२, ३५२  
 महावेर टीका ६४०

- महानिहेस १६७, ८४०  
 महापुरुष-ज्ञान १५३  
 महिषमंडल ८८, १३५, ६२४  
 महायानी यथा ८४६  
 महायगल २२४, ६६६, १६३  
 महाकल्पान भद्रेश्वर-सूत १८, १५८  
 महावस्तु २२२  
 महाप्राणत्व ३२  
 महार्लि भूत १५०, ८१३  
 महाकल्पविभंग-सूत १५८  
 महाराहलोकाद्य-सूत ३५  
 महापदान-सूत १२, २०५  
 महाविरचयुदि ५७८  
 महार्टिका ५३१  
 महाकौणित्य या शारिष्ठुत ३५६, ३५७  
 महायगल सूत २१०  
 महायात्रोपन सूत ३५  
 महायात्रक विग्रह ३११  
 महानद्यकवा ४५७, ४९८  
 महायग ५५२, ५५८, ५५९, ५६०  
 महारिट ५६  
 महासम्मत ५१०, ५५६  
 महाचोष मभा १३०, १३५, १४८,  
 ५३३  
 महाराम्पान-जातक २८५, २८९,  
 ५३  
 महावली गंगा ५३३  
 महापञ्चरो (महापञ्चरिय) ११३,  
 ९५, १८१ १३३, ५४१  
 महाराजानीति ६११  
 महाराजालक्ष्मण-दीक्षा १४५  
 १४९  
 महार्लि १६०  
 महाप्राणाद ५१०  
 महायाम २३५, ३२५, १०८  
 महेन्द्र (महिन्द्र) १२, १३, १५, ८९,  
 १०, ११०, १२०, १२२, ५६९,  
 ६७२, ७३३, ८१०, ८३६, १२५,  
 ४५  
 ३३८, ४९६, ५०८, ५५१, ५५७,  
 ५१८, ५६०, ५६२, ५६८, ६४५  
 महाव्यूत्पत्ति ३१४  
 महानिःश्वासित्यमन्वयो ५३३  
 महास्वामी (महासामी) ५३२  
 महात्मय-सूत ९२, १२६, १४६  
 महात्म-सूत ९२, १७२  
 महाविभग ३२५  
 महापुण्यम-सूत ९७, १५७  
 महासुदस्यन-सूत ९२  
 महावृद्ध २१२  
 महाप्रस्त्रसमावान-सूत १६  
 महाअस्त्वपुर सूत १४, १२३, १५२,  
 १३३  
 महामेत्र १६४  
 महानकुलदायि सूत ७६, १५५, १६०,  
 ६२४  
 महाकपि जातक ६३५  
 महाव्यूत्तालादी ४२८, ४४२, ४४३,  
 ४४०  
 महाविष्युह २४१  
 महावर्मरणित ८८, ५८२  
 महायामी संस्कृत साहित्य १२४  
 महायात्र ३१०  
 महायात्रसंख्य-सूत ५४, १५२  
 महायुद्धयोत्सव निदानवर्त्त ५६७  
 महा इक्षुकमण्ड सूत १५१  
 महावत दोका ५७२  
 महानिहेस अद्यकवा ६४०  
 महाकाल्यायन १८३, २१०, ३३१,  
 ५०२, ८५१, ५००, १२४, ५२५,  
 ६०२, ६०३  
 महासदस्यन जातक १४५, २५०  
 महाधित २१०  
 महानगर राष्ट्र (ल्पाम) ५८२  
 महाविवित १३९  
 महापत्तिरीत्यान-सूत १०, १५७  
 महावन्ध २२, ३५, ७१, ७२, १०६,

- ११४, १३२, १३३, १३४, १४३,  
 १७०, १७२, १८१, २१८, २१९,  
 २२५, २२६, २४४, २४६, ३२२,  
 ३२४, ३२६, ६३१  
**महामाता** ३३५  
**महाभूत** ३५५  
**महाघमरक्षित** १५१, ५८६, ५८८  
**महो** (नवी) ११५ २३८, २५०  
 'नहावस' कीटोंका ४९६, ५४१, ५५३,  
 ५५९  
**महागोप्तिग्रन्थसुत** १४, १५०  
**महापरिता** २१०  
**महावमकन्दम** १४  
**महाकाशयाप** १६५  
**महानाम-सूत** १८८  
**महासीहनाद-सूत** १३, १६०  
**महाकल** १७७, ५२५  
**महामौद्रग्रन्थालय** १५१, १५३, १५५,  
 १६९, १६४, १८१, २१०, २२९,  
 ३२५  
**महापात्र** २४५  
**महाराज्ञ** ८८, ५०४  
**महानाम घासप** १८८, १८५, १८८  
**महासच्चक** सूत १४  
**महापिगल** जातक २१२  
**महावेस** (महावेस) २२, ८, ९, १०  
 ३८, १८, ४०, ६६, ९०, १०५,  
 १०५, १०९, ११३, ११६, १११,  
 ३२७, ३३१, ३५१, ४२२ ४२४,  
 ४२६, ४४६, ४४९, ४४६, ४००,  
 ४०६, ५०३, ५०९, ५११, ५२८,  
 ५४७, ५४८, ५५०, ५५१, ५५३,  
 ५५४, ५५६ ५५७, ५५९, ५००,  
 ५६१, ५६२, ५६३, ५६५, ५७५,  
 ५७६, ५८०, ५८८, ५८३, ५९८  
 ५९९, ६००  
**महानाम** (लकाधिपति) १०८ ५०१  
**महाविव** (स्वविव) ५१०, ५५८, ५७२
- महामैत्रल सूत ६३२  
 महामैगल २४०, ५४५  
 महाप्राण ५४, ५६, ५८, ५९, ६२  
**महाप्लामी** ५३१  
**महावत्तिका** ६४०  
**महावत्तिग्रन्थसुत** १३, १५१, १५३,  
 १५५  
**महावट्टिक** ६४१  
**महामान** (स्वविव) ५२९  
**महाकस्ता** (सत्रहव्यो दत्तात्रेयी के बरमी  
 भिल) ५४३  
**महाकाश्या** (ब्रह्मश्य) ५२६,  
 ३५, ३८, ४०, १८२, १९८, २१०,  
 ३००, ३०५, ३०७, ३३९, ५५५,  
 ५७२  
**महानाम** (महावेस के रखिया)  
 १५५, १५६, ५६५, ५६६  
**महासारोप-सुत्तम** १५१  
**महामाता** २६५  
**महापरिनिवास** ११८, १२१ ३१२, ४२८  
**महासृष्टिशब्द** १४५  
**महामूद्रसन्न-सुत** १५५  
**महायात्र** २३०  
**महायात्रान** १०८, ५३०  
**महामूजता-सूत** १८, १५७  
**महाठोक** ५३१  
**महायात्र** घम ४४२, ४४३  
**महाभाष्य** ३५६  
**महाभाल-वज्र-सूत** १५  
**महाराज्ञि** (प्राह्लद) ३१, ३७  
**महाकल्पालय** ५५१, ६४० देखिये  
 'महाकल्पालय' भी  
**महियमहल** ५५०, ५८८, १५२, १५४,  
**महामान** सप्रदाय ५८३  
**महामोक्षित** १५५  
**महायात्रक** २४१, ४२८, ४२९, ४२३,  
 ४३५, ४३६, ४३७, ४४२,  
 ४४४, ४४५, ४४६

- महानिदानमुत्त १२, १५५, ४५५, ५५५  
 महावोधिवस ५६८-६९, ५७२  
 महामालवय मुत्त १५४  
 महागोविन्द-मुत्त १२, १५५  
 महामुत्तसोम जातक २८६  
 महामाव ६२६  
 महापुरुष-लक्षण १५६  
 महापंथक १८३  
 महाकोटिदत्त १८३  
 महाकल्पित १८३  
 महावेदल्ल-मुत्त १५, १०३, १५२  
 महाभिनिष्ठकमण १५२  
 महानिदेस १०३, २९७  
 महागोविद जातक २७५  
 महायोगालक-मुत्त १५२  
 महावनक-जातक २८३, २९३, ६३५  
 महापुरुष ५७०, ५७२, ५७४  
 महानिरुद्धिग्रंथ ६०८  
 महासकुलदायि परिवाजक १५५  
 महापदान मुत्त १५३  
 महाविनयसमग्रहणकारण १५८  
 महावमाममद्य ६३१  
 महाकोशाल २८३  
 महायमक-वन्मा १५३  
 महाविनयग्रंथ ५०६  
 महाराट्ठ (महाराट्ठ) ५०६, ५८८,  
 ५७२, ५८२  
 महाअद्वृक्षया ५४७  
 महानाम (महामण्डकासिनी के  
 रचयिता) ५०६  
 महारचित (स्वविर) ५०३, ५८०,  
 ५८२  
 महायास (कल्याणनभेद के रचयिता)  
 ६०६  
 महावद्वयोसत्स निदानवन्धु ५०६  
 महामन्त्रक मुत्त १५३, १६०  
 महाविहार ६०, २८१, ४९८, ४९९,  
 ५०४, ५०८, ५१६, ५३०, ५३१,
- ५३२, ५३३, ५३५, ५३७, ५३८  
 महामारतकार ५८९  
 महावतवस (लक्षा) ६१४  
 महाहत्यिपदोपम-मुत्त १०, १५६, १५९  
 महानिदान मुत्त १५४  
 महावोधि समा २०३, ३५०, ५८८  
 महावोधि यहण ५१८  
 मग्नसंदूक्त १७४  
 महाप्रजापति शोतुरी १०४, १८१,  
 ११०, २६५, ३२५, ५२५  
 मजिमस २७४  
 महाराहलोवाद मुत्त १५३, १६०  
 महानाम (महासारत्थ दीपनी के  
 रचयिता) ५४३  
 महासंगीति ८४, ८५  
 महासुदसान जातक २१९  
 महाभारत १२९, १३०, १५४, २२०,  
 २८८, २९८, २९३, ५४७, ५४८,  
 ५४९  
 महाकस्याग (वारहवी यत्ताक्षी के  
 सिहली भिक्ष) ५३३  
 महायानी परम्परा ३१४, ३४०, ५१२,  
 ५१६, ५२१, ५२०  
 महिम-जातक २१०  
 मामधी (प्राकृत) १०, ११, १४, १५,  
 १६, १७—की विसेषताएँ १७-१८,  
 १९-२१, २३-२४, २५, २६, २८, ३१,  
 कहा तक पालि का आधार है ?  
 ३६-३८, ३१, ३२, ३४, ४४, ४८,  
 ५५, ६३  
 मायधा निरन्ति १०, ११  
 मामधी (भाषा) ५०२, ५०८, ५०९,  
 ५१३, ५७५  
 मामधिक भाषा १०  
 मग्न संयुक्त १७४  
 मामचिय मुत्त १६, १५५, १६०  
 माम-सत्य ४०५, ४१५, ४१६  
 माम-प्रत्यय ४५८, ४६८

- मानधको बोहारो १०, २३  
 मानान्दिय (परिप्राजक) ५७, १५५,  
     १६९, २८१, ३०६, ३३०  
 मानध सदरमन्त्रण ६०८  
 मानं-प्राप्ति ४२३  
 माध २४  
 माधी ३२५  
 माध-फल ४८८  
 माधुर्यि मुत १५५  
 माध्यमिक मूल ४२३  
 मान १३५  
 मानस ३१६  
 मार १५१, १५३, १६२, १६६,  
     १६७ २५८  
 मारतज्जनिय मुत १५, १५३  
 मार्गिस (ई) १०८, ३४२, ४१८, ५५५  
 मार संयुत ११, १६१  
 मातिकट्टकथा ६४३  
 मातिका २१२, ३०८, ३३९, ३५९,  
     ३९५, ४१२  
 माणव ४३६  
 मालालिकारवस्थ १४८, ६००  
 मालग-जातक ३००  
 मालग-वरिव ३००  
 मालुगाम-संयुत १००  
 मातिकट्टवापनो ५४०  
 मालवे (मल्लरिम) ३८२, ३९२, ५३५  
 मालकपुत ४८८  
 मार्छङ (सर जोहन) ६३४  
 मास्की (हंदशावाद राज्य) ६१८  
 मात्राकाल ४८, ५१  
 मातुगमि-संयुत १६८  
 मात्रकान्धर ७५  
 मातिका बण्णता ३१२  
 मालमतदीनो ५२८, ३१४  
 मालमतसार तट्टीक ४८०  
 मगपत्य जातक ३२५  
 मखमतसार टोका ६४०
- मृत्तिक जातक २७५  
 मृत्तिन्सुत ३३५, ६३०  
 मतता २६८  
 मृत्तिमाता २३५, ६२९, ६२८  
 मु डक २४३  
 मुलर (ई) १३, १५  
 मखमतसार ६४०  
 मविता ४१०  
 मगपत्य जातक ६३५  
 मविता ५२१, ५३५  
 मध्यन्य ३५, ३६, ४६, ५७  
 मुखम्बोकरण ५९  
 मूलपद ४६  
 मूलगम्भुटी २३५  
 मूलसिक्षा-टोका ५३९  
 मूदन्य संयुत व्यंजन ६७  
 मूल सिक्षाम टोका ५७९  
 मूल वर ३१  
 मूलगम्भा स वट्टकथा ६३९  
 मूल टोका ५६८, को टोका ५४३  
 मूल सिक्षा (मूल शिक्षा) ५३२, ५३९  
 मूलपरियाय-व्यम २४९, ३५०  
 मूल यमक ४६०, ६३९  
 मूलटोक ४३३  
 मूल सर्वोत बादो ३१३, ३१४  
 मूल परियाय मुत १५९  
 मूलगम्भा स टोका ६३९  
 मूलगम्भा ६३९  
 मूलसिक्षा अभिनव टोका ५३९  
 मूलसिक्षा पाराण टोका ५३९  
 मूल सिक्षा टोका ५८१  
 मेगम ८९  
 मध्यम-वग २२६, २२९  
 मेदलम्प १५०  
 मेविल वैड ११९, २११, ३०८,  
     ४३२, ५३६, ५६०, ५८१, ५९७,  
     ५९९, ६०८, ६०९, ६०६, ६११,  
     ६१२, ६१३

- मेत्तग्नाणवपुच्छा २४१, २४३  
 मेत्त सुत २०९, २१०  
 मेत्तामावस्त २३४  
 मेत्तम् २४३  
 मेरठ ६१८  
 मेता ५१०  
 मेघकर (जिनस्त्रित के रचयिता  
     तेरहवाँ शताव्दी के सिहली भिष्म) ५१९, ५१३, ५१४  
 मेघकर (बरमो भिष्म, लोकदोपसार के  
     रचयिता) ५१३  
 मेघकर ५४० ५४२  
 मेनुअल आव (इंडियन) बुद्धिम  
     (कम: ३४० वेस्टिंग्स ए मेनुअल  
     आव इंडियन बुद्धिम' भी)  
 मेघकर (व्याकरण) ६०९ वेस्टिंग्स  
     बनरजनमध्यक  
 मत्त्वप्रयोग ५४१  
 मेनाम्बर (शाक राजा) ५७३, ५७४,  
     ५७५, ५७६, ५७७  
 मेत्तानिसंस्कृत २११  
 मेसन (डा) ६०६  
 मैसूर ६१०  
 मैन एंड वॉट इन एन्डियेन्ट इंडिया  
     (राधाकुमार मुकर्जी) ८८१  
 मैनेय (वृद्ध) १०९, १३०, ५८५, ५८६,  
     ५८७  
 मैथी-मावसा ११३, २१३, २२३,  
     २३४  
 मैत्रिका २६८  
 मैत्री (भाषण) ११, ४१०, ५८९  
 मैत्रसमुद्र ५१०  
 मैत्रस वेलेसर ८१, ८६  
 मैथुनसंबंध ४४७  
 मौगन के दा - वर्णायन लेख (बरमा)  
     ६१७, ६३४, ८३८-८३९  
 मोहम्मलिपुत्र तिल्प ५५७, ५६२, ५६६  
     वेस्टिंग्स मोम्मलिपुत्र तिल्प' भी
- मोम्मलान (व्याकरणकार) ६७,  
     ५७८, ६०८, ६०९, ६१३, ६१६  
 मोम्मलान व्याकरण और उत्तरा  
     उपकारी साहित्य ६०७-६१०  
 मोम्मलान (अभिवानापदोपिकाकार) ६१४, ६१५  
 मोम्मलिपुत्र तिल्प ३१०, ३११, ३३५,  
     ४२२, ४२४, ४२५, ४२६, ५६०,  
     ५६२, ५६३, ५७२  
 मौद्गल्यायन ३२१  
 मौष्ठ-व्यिपत्ति ००६  
 मौद्गल्यायन १२५, २४७  
 मोम्मलान-संयुत १००  
 मोम्मलान (मोम्मलायन) ४५, ४६५,  
     ४८५, ४८६  
 मोम्मलान पञ्चका ६०९, ६१०,  
     ६१४  
 मोम्मलान पञ्चका ६०८  
 मोघराजमाणवपुच्छा २४१  
 माधालिपुकृत ३३३  
 मोघराज १८६  
 मेविल हल १८८  
 मोर्डेलेटक ५१०  
 मोलिनी २८३  
 मोरपति सूत २११  
 मोनेय सूत (मोनेय मृष्ट) २३५,  
     ६२५, ६२६, ६३०  
 मेसडोलिया ८०  
 मोह ३७४, ५३३, ५३५, ४५८,  
 मोहविच्छेदनी १३२, १४६, ५८७, ६४०,  
 मोहमूलक ३१२, ५३५  
 मोहमूलक दो अकुललिपित ३८१  
 मोहनयन ६४०  
 मोम्मलान-व्याकरण ६७३, ६७४  
 मिथ्या-व्यिट १२७, १३५  
 मिलिनपञ्च १२९, १३०, १३१,  
     १३३, ४३२-४३५  
 मीमांसा १०१

मिलिन्द वास्तवुत १८३

मध्य-रथी-दोन ३१२

मृगारमाता (विशाखा) २२८

मृत्यु चंतन ६४२

### य

यजुर्वेद २३८

यतनप्रभाटीका ६६८

यद्भूयसिक ३१९

यमक ११, ११५, ३४१, ३४३, ३४६,  
३४८, ४५०-४५२, ४५३, ५४८

यमक पक्षरण ४५०

यमक पक्षरणटडकवा ५२९, ५३८

यमक-बमा २१४, २२३

यमक वण्णना ५४३

यमक (लेखक) ६०४

यमदग्नि १४२, ५९१

यमसा १३०, ११६

यथन-देश (योगक लोक) ८८, २१२,  
४५३, ४१४, ५५७, ५६८, ५७८

यश (बृह-शिष्य) ३२५

यशोमित्र ३५६, ३५७

यसवृहृदनवल्यु ५४३

यात्रिवन २८६

यशोघरा ७३

यषा १६१

यज्ञ-लोक ४२५

यशिणी १६१

यासक २९, ३१

याज्ञवल्यम ४९४

युग-काल ४३५

युगिरल गङ्गानन्द महायेर ५४४,  
५६५

यशन-विवर्य ३४

यूति संगह ६४२

यूति संगह-टीका ६४२

युधिष्ठिर २१३

युधिष्ठिर १६४, २४५, २८६, २१३

यूद्धज्येष्ठ ६४२

यूद्धज्येष्ठ चरिय ३००

यूद्धज्येष्ठ जातक ३००

यूद्धस्थव २९६

यूआन-चुब्राइ ८१, ८२, ८३, ८५, ८७,  
३५४, ३५६, ३५८

यूनान ४१४

योग ३६३

योग-नृत्र १२४

योग विनिष्टय ५४०, ५७९

योग कम्बोज ३५१

योगेपियत साहित्य २९६

य वमणी अवयेसि जातक ६३५

### र

रमित वेर (रमित स्वविर) ५५७,  
५६६, ५७२

रत्नक (राजकमंचारी) ६२६

रट्टपाल ५२९

रट्टपाल (मधुरमवाहिनी) ५७९

रट्टपाल मुत १५५

रट्टमार ५४२, ५४३, ५०८

रत्न २५०

रत्नमाला ६४१, ६४२

रत्नमाला टोका ६४१

रत्नमुत २०३, २१०

रथविनीत-मुत १८, १५१, १५९,  
१३८

रममनगर २८३

रमेशचन्द्र मन्मदार (ठाठ) ८३, ८४,  
८५, ४३४

रस १६१, १६६, ३३०, ३४८,  
३४९, ४०२, ४०३, ४०४, ४५१,

रस-आयतन ४०३, ४५१

रसवाहिनी ५४१, ५४४, ५८८, ५९५  
५२९

- रसवाहिनी गाँड ५१९  
 रसित ८८  
 रसित बन २२०  
 रात्र (इच्छा एवं डो़) ५९८  
 रोहिल (इवल्यू इवल्यू) २२२  
 राम ५३३  
 राघन्संयंत १००, १६७  
 रामाय देश (पेरु-बरमा) १  
 रामकथा २९३  
 रामगाम १३२, १४०  
 रामपुरवा (चारान-दिहार) ६१०  
 रामायण २९२, २९३  
 रामस डेविहस (डो़ इवल्यू डा०)  
     ६, ७, १८, १६, १०६, १०६, १०३,  
     १११, १२१, १३१, १३२, २०६,  
     २७३, २८१, २९०, २९३, ३४०,  
     ४२२, ४७४, ४७५, ४७६, ४८४,  
     ४९२, ४९६, ५००, ५०१, ५०८,  
     ५२९, ६३०, ६३१  
 रामस डेविहस (सी० ए० एफ०,  
 आमती) देखिये 'आमती रामस  
 डेविहस'  
 राष्ट्रपाल १५५  
 राष्ट्रिक ८८  
 रात्रुल १३०, १५३, १५६, २२६,  
 २४०, २९८, ३६५, ५२५  
 रात्रुल 'वाचिस्तर' (सिहली भिज्.)  
 ६४५, ६००, ६१०  
 रात्रुल साक्ष्यावत (महागठित)  
 १०८, १२३, १२५, १३२, १३३,  
 १३४, १४८, १८२, १९३, २१४,  
 २२६, २३१, २३८, २४४, २४६,  
 २६१, ३१३, ३३४, ४२२, ४२३,  
 ४२५, ४२६, ४२७, ४४३, ५१६,  
 ५२५, ५२६, ५३२  
 रात्रुल संयुत १३, १६६  
 राहुलोवाद-मुशान्त ६३१  
 राजगृह ३५, ८०, ८१, १२६, १३६,  
                   १४५, १५३, १५७, १६३, १९६,  
                   २५१, २८६, ३२४, ५२६, ५२८,  
                   ५३०, ५६३, ५७१, ५७२, ५७५,  
 राजगृहिक (भिज्.) ४२६, ४३५,  
                   ४३९, ४४०, ४४१, ४४२, ४४३,  
 राजतरंगिणी ५८७  
 राजमत्तन्त ६४१  
 राजमत्तन्त-टीका ६४२  
 राज-वर्मा १६, १५५, १५६  
 राजवाद ४११  
 राजवादकथ ५४४  
 राजविराजाविलासिनी ५४४, ५४५,  
                   ५००  
 राज १६३, १८४  
 राजाकृष्णन (सर्वेपल्ली, डा०) ४२७,  
                   ४८४  
 राजाकुमुद मृकर्णी (डा०) २८९, ६२१  
 रिकाड अ विविडिस्ट किम्बस  
                   २०४, २७३  
 रिकाशिय याका ६४२  
 रिकाशिय याका-टोका ६४२  
 रिक्ष ३०८  
 रसायनिकग ४९१  
 रसमनदीह ६१८  
 रस १६५, १६६, १६८, १९८,  
     २३०, ३४४, ३४५, ३४८, ३५३,  
     ४०२, ४०३, ४०४, ४०५, ४३३,  
     ५१०, ५१३, ५८८, ५८९, ५०५,  
     ५२४, ५२८, ५३३  
 स्पष्टायतन ४०१, ४५७  
 स्पष्टक ३७३  
 स्पष्टव्यन्ध-विभंग ३४४, ३४५  
 स्प-जोवितिन्द्रिय ४३३  
 स्प-नवात ४१२, ४३५, ४६०, ४४८  
 स्पनाथ (जवलपुर के समाप्त मध्य-  
                   प्रदेश म.) ६१८  
 स्प-नाम ४४०  
 स्प-लोक ४३५, ४४५

वा

कृष्ण-विभान ३१  
 कृष्ण-विष्णुलेयण ६४९  
 क्षमा-क्षम्य ३२९, ३९८, ३९९, ४०१,  
 ४०४, ४१६, ४५१, ४५२  
 कृष्णदि ५०५, ६०९, ६११  
 कृष्णदिविजटठक्करण ६४०  
 कृष्णदिटीका ६४०  
 कृष्णदिटीके ६४८  
 कृष्णदिविस्तम ६४१  
 कृष्णदिविष्णुप्रकरण ६४८  
 क्षमा-क्षम्यविभान (बृहददत्त-कृत)  
 ५०४, ५०५—वाचिस्तुर—कृत  
 ५४०, ५७२  
 क्षमावचर ३२२, ३७४, ३९९, ४०३,  
 ४३५, ५३६  
 क्षमावचर-भूमि ३३८, ३७६  
 क्षमावचर-भूमि के गाँव किलो-वित्त  
 ५४५  
 क्षमावचर विपाक चित्त (पोच) ३८३  
 क्षमावतार ६४१  
 रेवत ८५  
 रेवत बादिन-विनिय १८३  
 रेवत महाशेर ५०७, ५०८  
 रोगनिदान ६४१  
 रोगनिदान-निस्तम्य ६४२  
 रोगनिदान व्याहार ६४२  
 रोगयात्रा ६४१  
 रोगयात्रा-टॉका ६४१  
 रोगयात्रा-निस्तम्य ६४२  
 रोमन (लिपि में संस्कारण, पाठि थंडो  
 के) १०८, २७३, ३९५, ४१२,  
 ५२१, ५५०, ५७२, ५३१, ५३३,  
 ५६६, ५६८, ५७५, ५८८, ५८३,  
 ५९१, ५९२, ५२८  
 रोमक २९२  
 रोहण ३१०, ४८१, ५६६  
 रोहिणी २८२  
 रोहिणी जातक २८२

लक्ष्मिकांगम-सुत ९५, १५४  
 लक्ष्मणपञ्चो ४८६  
 लक्ष्मण-संयुत ९९, ११६  
 लक्ष्मणसुत १२६, १५३,  
 ३५३, ६३२, ६३३  
 लक्ष्मा २, १२, १३, १५, ८३, ९०,  
 ११, ११३, ११६, १२२, १११,  
 २७४, २७०, ३०७, ३१०, ३३१,  
 ३३२, ३३३, ३३४, ३३५, ४३८,  
 ४९८, ४९९, ४९७, ५०३, ५०४,  
 ५०५, ५०६, ५०८, ५०९, ५०१,  
 ५०२, ५०३, ५०४, ५०५, ५०६,  
 ५०७, ५०८, ५०९, ५०१, ५०२,  
 ५०३, ५०४, ५०५, ५०६, ५०७,  
 ५०८, ५०९, ५०१, ५०२, ५०३,  
 ५०४, ५०५, ५०६, ५०७, ५०८,  
 ५०९, ५०१, ५०२, ५०३, ५०४,  
 ५०५, ५०६, ५०७, ५०८, ५०९,  
 ५०१, ५०२, ५०३, ५०४, ५०५,  
 ५०६, ५०७, ५०१, ५०२, ५०३  
 लक्ष्मा जातक ६३५  
 लक्ष्मिका जातक ६३५  
 लक्ष्मिवत २८६  
 लक्ष्मिला लेख (जगान के) ३१८  
 लक्ष्मिक भद्रिय (भित्त) १८३, २३०  
 लाटी (प्राकृत) ३१  
 लाघलावदे मुसलवाद अधिविष्य  
 भगवतात्मेभाविता  
 लाभस कार नयूत ११, १३६,  
 १६६  
 लाल ५२१  
 लाहा (इ० तिमलालरण लाहा)  
 ४, ११, १२, १३, १५, २२, २४,  
 ११६, १२१, २०५, २७३, ३१३,  
 ३१३, ३३३, ३३४, ३४८, ३५६ देविय  
 'विमलाचरण लाहा' भी  
 लिगात्व विवरण ६४०  
 लिंगत्वविवरणप्रकारण ५८०

लिंगत्वविवरणपकासन ५८०  
 लिंगत्वविवरणटीका ५७९, ६४०,  
 लिङ्गवि ११०, १६३, १०३, २१२,  
     ५२६, ५५१  
 लिङ्गवि गात्रनम १६६  
 लिङ्गविपृष्ठ २४०  
 लिंग लकार ६९  
 लिंगम कियर १६०, ५९६  
 लोनत्व पकासिनो ५३१, ५३८,  
     ५०८, ५८१  
 लोमस्वेषणना ५३१  
 लोमत्वसुदनी (सद्दविशुद्ध की टीका)  
     ५३०  
 लम्बिनी २८६, ५३०  
 लम्बिनी चाम ६२१  
 लम्बिनीयन ६२१  
 लुइस (पक.) १८, ३३, ३९९  
 लीड सदाव ५८२, ५८५  
 लेडी (सिलको) १०, २०, ८६  
 लोक पञ्चशिंह ६४०  
 लोकपञ्जानिपकरण ५८१  
 लोकपञ्जामार (लोकदीपमार)  
     ५४२, ५८७, ५८८, ५९०, ६०९,  
 लोकवग्म २१६, २१८, २२५  
 लोकायत ४८१  
 लोकिया ३६४  
 लोकपञ्च ५६९, ६४०  
 लोकोत्तर ३६५, ४३१, ४४०, ४४१,  
     ५३५  
 लोकोत्तर विपाक चित (पार)  
     ३८३  
 लोकोत्तर घ्यान ४०७, ४०८  
 लोकोत्तर भूमि ३७६  
 लोकोत्तर भूमि के चार कुमाल चित  
     ३७९  
 लोकोत्तर घर्म ३५५  
 लोकोत्तरवादी ४२४  
 लोनत्वविषयना ५७८

लोभ ३६५, ३६६, ३६७, ३७२  
     ४४०, ४५८, ४३५  
 लोममूलक ३१२ ५३६  
 लोममूलक आठ अकुमाल चित ३७१  
 लोमसकगिय-भद्रदेवरस-तत्त्व १८, १५८  
 लोमहस जातक ३०१  
 लोह प्रासाद ५५२, ५५८, ५५९  
     ५६०, ५६२, ५७३  
 लोहित्व १४२  
 लोहित्व-मूत १४२  
 लोकिक ५३०  
 लोकिक गान ५११  
 लोरिया असराव ५११,  
 लोरिया तन्दनगढ ५११,  
     विहार)  
 लोकित्व १४२  
 व  
 वचन-वात्यय ११  
 वचनत्वगोत्तरका ५१६  
 वचन-वाचक ३१२  
 वच्छगोत्त-मूत १००, १६८  
 वच्छवृद्धि (विनय टीका के लेखक) ३८३  
 वज्रा (वज्रिया) १६२  
 वज्रि १४४, १४५, १४६  
 वज्रिवृद्धि (अट्टकवाला) ५३८  
 वज्रिवृद्धि समन्वयासाधिका की  
     टीका) ४९८, ५३२  
 वहुगामणि अनम (जहुधिपति) १  
     ११, ११६, ३२०, ३३०, ४९६  
     ५५२  
 वहुद्विसवर जातक २८७  
 वर्णनामवा काम्य संख ५८८  
 वर्त्यमाया २५१  
 वर्ष मूल ३५०  
 वर्त्त राज्य २८३  
 वर्तपत्र ५५३  
 वर्गरत्न मेवकार ५५३, ६०९

- वनवासी-मन्त्रदाय ५९८  
 वनस्पति ११, १६३  
 वद्धपोतक जातक ३७०  
 वग्नकुल-मूल १५७  
 वर्जियुतक १२२, ४८६, ४८८, ४८९,  
     ५११  
 वर्ण-परिवर्तन २३  
 वर्णन-तिगम्यी ५७३  
 वर्णविवरण ३२, ३०  
 वर्षभूषण-मूल (वर्ष सूत) १३  
 वनपत्ति-मूल १४, १५१  
 वनवास (मैसूर का उत्तरी भाग) ५५५,  
     ५६८, ५७२, ५७४  
 वलाह-नीयत १००, १३८  
 वशिष्ठ ४८१  
 वसमित्र ३५३, ३५५, ४८३, ४८४,  
     ४८९  
 वंग १५६, १०४  
 वंशोण (वंशीम) ३८, १६३, १८५  
 वंशीम-नीयत ११, १६३  
 व्यजत अनुकृता ६३, ६५  
 व्यजन-विषयक ६३  
 व्यजनों के उच्चारण स्थान में परि-  
     वर्तन ५७, ६१, ६३ ६६-६७  
 वृद्धि ८४ देखिये 'वृद्धि' भी  
 व्यजन-परिवर्तन ३७, ५४-५७  
 व्यवहार मत्य ३५०  
 वस्तकार (वर्षकार) ११५  
 वण ३८५  
 वर्णक-मूल ११, १५३  
 वलाहक-कायिक १६८  
 वर्णिलय (वर्णिर) २४३  
 वर्णो-वास ३२१, ३२६  
 वस्त मूल २१२  
 वस्तवन्प ३३४, ३५५, ४८५  
 वर्णितसमा-नियम ३३२  
 वर्णण ४५५  
 वर्जियुतक १०३ देखिये 'वर्जियुतकमी'
- वृत्तरत्नाकर ६३८, ६४०  
 वृत्ति (मोमाल्लान व्याकरण पर) ६०८  
 वृत्तोदय टीका ६४१  
 वज्र (वंम) शब्द का अर्थ और इतिहास  
     से भेद ५४३-५४८  
 वंश ग्रन्थ १५५, १०२, १०८, १३६,  
     ५३७, ५४०, ५४१, ५४२, ५४४,  
     ५४५, ५४६, ५४८, ५४९, ५५०, ५५१  
     ५५२, ५७३, ५७५  
 वंशमाहित्य ५१३-५८२  
 वंशवटोंगी (महावेस की टीका)  
     ५४१  
 व्यजनविषयक ३५-३६  
 वाचकोपदेस (व्याकरण) ६०३  
 वाचनामग्न ११, २२  
 वाचस्पति ४८४  
 वाचस्पति भिक्ष ५३९  
 वाचिस्तर महालामि (वाचस्पति महा-  
     लामी) ५०५  
 वाचिस्तरो ५३९  
 वाचिस्तर ५०५, ५०६  
 वाचिस्तर (सिहली भिक्ष, सारितुल  
     के शिव्य) ५३८, ५३९, ५४०,  
     —की प्रथानवरतनाएँ ५३८-५४०,  
     ५६८, ५६९  
 वाचिरीय ४०६  
 वाङ्मा-ओरमित्र २७२, २८१  
 वात्सीपुत्रोप ४२३, ४२६, ४२८  
 वात्स्यायन ४६४  
 वातितकार (वात्स्यायन) ६०३  
 वात्स्य-विचार २१  
 वात्सर-जातक २८३  
 वात्सिन्द जातक २८२  
 वामक १४, २११  
 वामदेव १४-, २५१  
 व्याकरण साहित्य ४०१, ५३०, ५३५,  
     ५४३, ५६६  
 व्याकरण सुष १२४

- व्याकुलत ३५६  
 वायु-वातु ४०३  
 वाराणसी १५९, १६३, १७२, २७४,  
 २८६, ३२४, ३२५, ४९४, ५२५,  
 ५६३, ५२७, ६३६  
 व्यापाद १५४  
 व्यापाद-वातु  
 वाल्मीकि-नामायण १११, २२९, २५५,  
 २६६  
 वाणिष्ठ १४८, १४९  
 वाणिष्ठी २३०  
 वासवदत्ता १२३  
 वासेट्ट १५९, १४१  
 वासेट्ट-नुल १३, १५६  
 वासेट्टी २६८  
 वाहीतिय-नुल ११४  
 वाह्नीक (प्राकृत) ३१  
 विकमसिह ५८४  
 विकमसिह (सारिगुल के शिष्य) १२२  
 विगति-प्रत्यय ४५८  
 विचार १३१, २२३, ३७२, ३७८,  
 ३१२, ३५५, ३८९, ३९२, ४१०,  
 ५३४  
 विचित्रित्या १५८, ३८८, ३९५, ४३०,  
 ५३५  
 विचित्राचार ६१३  
 विचित्र गता ६४१  
 विजय १५१, १५६, १६०, ५६१  
 विजयवाह (वितोय, नूतीय) ५१५  
 विजयवाह ३०१  
 विनक १३१, ३३२, ३३४, ३४०,  
 ३८२, ३८६, ३८९, ३९२, ४०९,  
 ४१०, ४३६, ५३४  
 विन करणातान्त्रिक १४ १५१  
 विसमिका ४८०  
 विनिय सेनासुन ८८०  
 विनुर पुस्तिय जातक ६३१  
 विविध मध्यमान ईका ५८०  
 विदर्दना ४६९  
 विदर्दना-भावना २६१  
 विद्यालकार परिचय १०८, ११०  
 विदिशा ५७४  
 विदुर २७३  
 विषुर २७३  
 विषुर वहित जातक १८६, ६३५  
 विष्वेष्वर भद्राचार्य ३  
 विटरनित्य (एम०) ८, ८३, १२९, १३०,  
 १३२, १३३, १३४, १६१, १६४,  
 २००, २०१, २५५, २७१, २७३,  
 २७५, २७६, २७८, ३१५, ३२६,  
 ३४१, ३४५, ३५१, ४७०, ४७५,  
 ४७५, ४७७, ४७८, ४७९, ४८४,  
 ४९३, ५४४, ५८६, ५८९, ५९०,  
 ५९१, ५९३, ५९५, ५९८, ६३०,  
 ६३१  
 विडिशा (३०) १५, १६  
 विनय प्रदेश १३, १४, १५, २१  
 विनय ३१, १२, १०, १२३, ११३,  
 ११८, ३३६, ३३७, ३३९, ३४०,  
 ३५८, ३५९, ५५०  
 विनय गड्ढल दीपनी ५५०  
 विनयोत्तर सिवय अट्टवाया ३३९  
 विनय नियम ३२८, ३२९, ३३०  
 विनयप्रिका २५२, २५३  
 विनय पिटक १३, २१, २२१ ७५,  
 ७०, ७८, ८३, ८५, १०८, १०९,  
 ११५, ११७, ११८, १२१, १२२,  
 १२३, १२५, २०१, २०५, २०६,  
 ३०२-३०३, ३३६, ३३८, ३४०,  
 ३४१, ३४८, ४३२, ४३३, ४४४,  
 ४४७, ५०५, ५०७, ५०८, ५१०,  
 ६२८, ६३८, ६४३, ६४५  
 विनय-पिटक के नियम ३१५-३२२  
 विनय-पिटक का विषय और उम्मा  
 संकलन-गत ३००-३११  
 विनय-पिटक के भेद ३१५-३१७

विनय-माता-नरणना ३१२  
 विनय पिटक की अटठकवा (अर्थकथा)  
     ३८, ३०८, ४३८, ५०१  
 विनय पिटक की टोका ५४०  
 विनयपिटक-चल-बगा ३६, ३८, ८८  
 विनय पालि ६४३  
 विनयचल बगा ६३९  
 विनय परिचार ६३९  
 विनय प्रजनि ४८८  
 विनय नहावगा ६३८  
 विनय पिटक-महावगा १७३ विनय  
     ‘महावगा’ भी  
 विनयविनिक्षेपकरण ६४३  
 विनयविनिक्षेप ५३३  
 विनयविनिक्षेपमग्ना ५३९  
 विनय विनिक्षेप की टोका ५४०  
 विनय नमद्वान दीपनो ५४०  
 विनयव मंजुष ५०६  
 विनय गढि ६०९  
 विनय गोठि ५०८  
 विनय विनिक्षेप ५०३, ५०६, ५०८,  
     ५०९, ५३३  
 विनय-कन्ध-तिवेस ६३१  
 विनय सगह ६३१ यो टोका ५६३  
 विनय-नमद्वान ३०८  
 विनयसिन्धुटोका ६३९  
 विनयसंगहप्रकरण ५४३  
 विनयसंगहप्रकरण ५३९  
 विनयसाहित्य ६०९  
 विनय सगह अटठकवा (महा)  
     ६३९  
 विनय सगह अटठकवा (चल) ६३९  
 विनय समद्वान दीपनो ५४० ५३९  
 विनय समूकसे (विनय सगहप्र.) ६०,  
     ६२३, ६२८, ६२९  
 विनयसाहित्यदीपनो ५०९  
 विनय-सुन ६१३  
 विपाका ३५०

विपाक चित्त ३७५, ३७६, ३८१, ३८३,  
     ३८५, ५३६, ५३७  
 विपाक घम्म ३६०  
 विपश्चना १३०  
 विपश्चना प्रजा ५२२, ५२८  
 विपस्ती (विश्वी) १४३  
 विप्रगाम (विणगाम) ५९८  
 विप्रदुत्त-ब्रह्म ४५८  
 विपाक-प्रत्यय ६५३  
 विभवितन्या यद ५०  
 विभज्यवाद ५६, ३०३  
 विभज्यवाद ४१४  
 विभज्यवादी ३४, ४६, ६५  
 विभवत्तवदीपनी ६१२  
 विभवत्तव टोका ६३२  
 विभवित्तिकावल्लाना ६१२  
 विभवत्तवायकरण ६१२  
 विभग १३, १४६, १४७, २४६, २४१  
     ३४३, ३४३, ३४६, ३४७, ३४८  
     ३४९, ३४९, ३४९, ३४९, ३४९, ३४९  
 विभग की अटठकवा ५३३, ५२८,  
     ५२९, ५३०  
 विभव-वगा १३  
 विभाग ३५१  
 विभला २६९  
 विभलाचण लाहा (डा०) १०९, १०७,  
     २०३, २०८, २०९, २०८, २०९,  
     २०९, ४३, ११८, ५११, ५११,  
     ५२९, ५५४, ५६३, ५६३, ५६३, ५६३  
     ५६३, ५६३, ६११, ६११  
 विभवित्तिकावल्ली ५३२, ५३६, ५३७  
 विभवित्ति विनोदिनी ६४३  
 विभवित्तिकावल्ल ५३२  
 विभवित्तिकावल्ल ५३२  
 विभवित्तिकावल्ल ५३२  
 विभवित्तिकावल्ल ५३२  
 विभवित्तिकावल्ल ५३२

- विमानवत्तु १०३, १०७, ११६, १९६,  
     १९७, २०८, २०९, २४५, २४६,  
     २४७, २४९, २५०  
 विमान वत्ससा विमलविजासिनी  
     नाम अटठकवा ५७८  
 विरच्छ ६४८  
 विरग्ग-टोका ६४२  
 विरतिया (तीव्र) ५३५  
 विशेषन वातक २८२  
 विलारवत जातक २८३  
 विवृत वर ६३  
 विष्वापित्र १४८, २११  
 विशाक्षा ५२६  
 विष्णुदास (विष्णुदास) ५०८  
 विष्णु-प्राप्त २९३  
 विसर्ग ३६, ३७, ४४-४५  
 विसर्जनीय या विसर्ग ३६  
 विसुद्धिमग्न (विसुद्धिमग्न) १, १०,  
     ३५, १०९, ११०, १३०, २०९,  
     २३०, ४३१, ५७३, ५८६, ६०१  
 विसुद्धिमग्न अटठकवा ५३१, ६४०  
 विसुद्धिमग्न चलन नवटोका ५४१  
 विसुद्धिमग्न को टोका ५४५, ६४०  
 विसुद्धिमग्न मनि ५८५  
 विहार सोमा ३०, १८२, ६४२  
 विश्वा भासीय १४८  
 विज्ञान १५२, १६६, १६७, १६८,  
     १६९, १७०, १७१, १७२, १७३,  
     १७४, १७५, १८२, १८३, ५०५,  
     ५०६, ५०७, ५०८  
 विज्ञानानन्दकायतन १६९, ५२१  
 विज्ञानानन्दकायतन कुशल चित्त ३७६  
 विज्ञानकायपाद १११, २१६, ३५३  
 विज्ञान पात्र ५०२  
 विज्ञानवात ५२८  
 विज्ञान स्वरूप ३४६, ३४४  
 वीतसोक (स्थविर) २०४  
 वीमसंक-नूत १५, १५२
- वीमसा (मोमासा) ५६०  
 वीमसाधिपति ८६०  
 वीम सा-समाधि ५०८  
 वीय (विरिय) १३०, १३१, ५३४,  
     ५३५  
 वीयाधिपति ५६०  
 वीसतिजातक-अटठकवा ६४०  
 वीसति वण्णना ५४३  
 वृत्तिमोगललाल ६४०  
 वृत्तोदय ५३८; ५१६, ६४१  
 वृत्तोदय-टोका ५५  
 वृत्तीदय विवरण ५७९  
 वैखणम-सुत ९६, १२६, १५७  
 वैठदीपक ५७१, ५७२  
 वैष्णोमाधव वाडबा २२१, ३५५, ६३९,  
     ६३०, ६३१, ६३५ वैत्तिर 'वाडबा' भी  
 वैष्णवन (वेलुवन) १५३, ३२५, ५२५,  
     ५६३  
 वैतुल्यक (वैतुल्यक-वैपुल्यक) ५२६,  
     ५२८ वैतिर 'वैतुल्यक' भी  
 वैद २२, २९, ३०, ३१५  
 वैदग (वैदज) १५६, १७६, २४३  
 वैद-वदाल २९१  
 वैदाविरितिभित्तिभित्तिवण्णना ६४१  
 वैदना १५२, १६६, १६७, १६८,  
     १६९, ३८६, ३८७, ३८४, ३८८,  
     ३८९ ४०१, ४०६, ४०७, ४१०,  
     ४१४, ४४५, ४६८, ४८२, ४८३,  
     ४९५, ५२३, ५२५, ५३६  
 वैदनानपृथ्वीना १५०, २४६, ३८१,  
     ४०३  
 वैदना-विज्ञान ३४७  
 वैदना-साधन १००, १६८  
 वैदना-स्तरन्य ३४७, ३७४, ३८८, ४१५,  
     ४१६, ४१७  
 वैदनम जातक २८८  
 वैदल १०२, १०३  
 वैपुलवृद्धि ५८०

- वेश्याकरण १०२, २५३, ४८१, ६०२  
 वेरजक-मूल ९८, १५२, १९३  
 वेरजक-द्राह्यान्तर १२९  
 वेरंजा १२५, ५२६  
 वेरजकणवयना २  
 वेल (एच० बी०) ३१९  
 वेस्टर्न-हातक २०९, २६४, २८५,  
     २९३, ३००  
 वेस्टमू १४३  
 वेगुलक (वेपुल) ४२६, ४४१, ४४२,  
     ४६७, ४८२  
 वैदिक आत्मान २९१  
 वैदिक परमारा १२५, २४१, २८१,  
     २८४, ४७१  
 वैदिक भाषा ६, ८, २२, २८, —की  
     विशेषताएँ २९-३०, —का  
     उत्तरि-मूह ३१, ५२, ७१  
 वैदिक वाङ्मय १२४  
 वैदिक यात्तिक्य १२४, २११  
 वैदेह स्वतिवार १४१,—की दो प्रसिद्ध  
     रचनाएँ ५१३, ५१५, ५१८  
 वैभार निरि २८६  
 वैभागिक ३५५  
 वैशाली ४३, ८४, १४५, १५३, २१२,  
     २०७, ३०९, २८६, ३०६, ३३८,  
     ४२५, ६२६, ५६३, ५७१, ५७२,  
     ५७४,—का गणितन्त्र १४५,—की  
     मर्गीति ३३९, ३५२  
 वैशेषिक-मूल १२८  
 वैस्तरांग १२, १४  
 वोद्योपया (बृद्धप्रिय-वर्मी राजा) ६००  
 वीषदेव ६००, ६०३
- श
- शब्द १६६, १६७, १७२, ३३०, ३५८,  
     ४०८, ४०९, ४०४  
 शब्द-आमतन ४०१  
 शब्द-साधन २०, ६८
- शक १४५, १४६, १४७, २४२  
 शब्द कालद्रुम १२४, ५००  
 शताख वाह्यण २१०, २११  
 शतक वाच ५८९  
 शरण-वम २०३  
 शम्भ १७२  
 शरीर के वत्तीन अग २०८  
 शत्रु-लिखित वत्ताचर्य ३०६  
 शाक्य १३८, १३९, १४१, २६९, ५७१  
 शाक्य मूल ३०७ ६२१,  
 श्वास-प्रश्वास ४८३  
 शाश्वतवाद १३५, १३६, ४२८  
 शमावती २३३  
 शाक्य और बृहिस्त औरीजिन्स  
     (श्रीमती राधा उविहस) ६, ७,  
     १२३  
 शारात्मातिकाय-निम्नय ६४२  
 शारात्मितिकाय ६४२  
 शास्त्र संघर ३५३  
 शा-जैन आग ४८१  
 शाल (क्रासिल से शास) १३२  
 शहवाजगढ़ी (वेशावर विला) ६१८  
 श्यामा (भिक्षणी) २६८  
 शाक्य महिलाय २६८  
 शारिपुत्र (महाकोटिल) ३६३  
 शिवनृग्न्य ३१३, ३१४, ३१५  
     ३१४, ३१५, ३१६, ३१७  
 शिवायद १६०, ३०५, ३१५, ४८८  
 शिल्पी १४३  
 शिशायाल वध ५११  
 शिव स्पौतिर ३१०  
 शिशायाला ५६८, २०१  
 शीलव २६१, २७०  
 शील १५२, १५६  
 शीलभद्र (भित्र) २३५  
 शील समाज ३४३  
 शील-सिद्धेश (सोल्निहेश) १२०-  
     १२८

- सील यज्ञ १४०  
 वीलवतपरामर्श १५४  
 शुक्र २३४  
 शम्भा २६८  
 शम्भ १४२  
 शक्तारा २४५  
 शुन देव की कथा २९०  
 शुद्धादन २६८  
 शुग ११६  
 शून्यता ४५३  
 शक्ति ४५४  
 शरसेन (शूरसेन) १४५, ११५, ४२२  
 श्वेतकेतु आरण्ये ४९४  
 शोकसपीयर २७६  
 शोल (बाल्याण) १५९  
 शोला (भिक्षुणी) २७२  
 शोदय ३१३, ३१४, ३५१, ४३८, ४३३,  
 शोभग (चित्त) ३८६, ५३४  
 शोभन-चित्त-साधारण ३८६  
 शोभन चेतानि ३८७  
 शोणा (भिक्षुणी) २६८  
 शोभा (निवारणी) २६८  
 शोभित स्थविर २३६, ३८०  
 शीरसेनी २८, २८, ३१, ३२—का  
     पालि में सम्बन्ध ३३-३४, ३५  
 शदा १५१, १८२, ५३६  
 शहदेविष ४३४, ४४४  
 श्वास भासा १८४  
 श्रमण शोउम ४४८  
 श्वासक २२३  
 श्वासक संघ ३२७  
 श्वासनी (सावत्ति) १८, १७६, १६३,  
 १५९, १८३, १८८, १९३, २२६,  
 २२७, २३०, २४६, २५१, ५३१,  
 ५२८, ५२६, ६२९  
 श्रीमती राधेश डेविल्स (नी० ए०  
 एफ०) १२३, २१६, ३३९, ३४४,  
 ३४७, ३७१, ३७५, ४२१, ४४३,
- ४५०, ४५२, ४८४, ४९८, ५०५,  
 ५४४  
 श्री मेषवर्ण (सिरि मेषवर्ण) ५८४  
 श्रीराजाविराज सिह १५१  
 श्रीपद (बद्र का वरण-चिन्ह) १९८  
 श्री महाराज हुथमेशाज (बरमी राजा) १८२  
 श्री विक्रम राज सिह (सिरि विक्रम  
     राज सिह) ५६५  
 श्री संबोधि (सिरि सम्बोधि—लका-  
     पिराज) ५३५  
 श्री हर्ष ४६४  
 श्रुतमयी प्रजा ४११  
 श्रुति ४८०  
 श्रुति ४७८  
 शैक्षण-अशैक्षण ३५५  
 श्रोत्र ३३०, ३४८, ४०२, ४०३, ४०४,  
 ४०६, ४३५, ४४०  
 श्रोत्र-आयतन ४०१  
 श्रोत्र-विज्ञान ३०६, ३४८, ३८१, ३८२,  
 ४०३, ४०५, ४६१  
 श्रोत्र संस्करणजा (वेदमा) ४००  
 श्रोत्र सूत्र ४२४
- प
- पडावतन ४१८  
 पाण्डागारिक ४४५
- स
- समीति पर्याप्याद ३१५, ३५३, ३५८,  
 ३५६, ३५७  
 समीति-ग्रन्थाम-मृत ४३, १२९, १६२,  
 १३९, १८१, २१०, २३५, ३४०, ३४१,  
 ३४२, ३५१, ६८४  
 समाख्य-मृत १३, १५६  
 समाख्यगम १८१, १८२, १८५  
 समाख्यगम सम्भ-अट्टकवी ६३०

- समाधिवग्न लक्ष्मी ६३५  
 समास के कारण त्वरों के माजाकाल  
 में परिवर्तन ५१-५२  
 सर्व ५४१  
 सगहवार ५६७  
 सबवर्मी ५०३  
 सम्भाह विनोदनी ५१३, ५२८  
 समीतियाँ ८१, १९८, २०८, ३१०,  
     ३३६  
 सप्तरिशनन ५७, १५०  
 सम्पाद्यानविभग ५०८  
 समाधिवग्नसंयुक्त टोका ६३९  
 सामल २८०, ४३३, ४८०, ४९४, ५६३  
 समीतिकार २२५, २२६  
 समालका ४३९  
 सामनापद्धति ५६३  
 सामवास-सन्त ५०, १५६, १५२,  
     ३२९  
 सामानक सदत १००, १६९  
 साम जातक २१३  
 समारब १५९  
 सिगाल १४८  
 सिगवर ८६  
 सिमाव ५६८, ५८२  
 सिगालोवाद-सन्त २८०, ६३९, ६३२  
 सिगाल जातक २८४  
 सिलवे लेखों, देखिये 'लेखो'  
 सिंहाल २९२  
 सिवित्रा (अशोक की मुर्ती) ५५१,  
     ५५२, ५५५  
 स्टेन कोनो १३, १४, १५,  
 सिम्पलिकाइ चामर जीव दि पालि  
     जीवज १३  
 सहिता ५, २२  
 सरणीतिम ५९३  
 सह जातक २८८, २९९, ३००  
 समाज चरित्र ३००  
 सदस्यमन्त्र ४९३, ५०६, ५४१,
- ५४८, ५६९-५७०, ५७०, ५७१,  
     ५७३, ५७४  
 सद्गम जीतिका ५३२  
 सद्गमनद ५६३, ५६४  
 सद्गुरकालिका ६१३  
 सद्गुरजारिका ६४१  
 सद्गुरज्येदाविना ५३९, ६०१, ६४१,  
     —की टोका ६४२  
 सद्गुरज्येदाविनाय महाटाक ५००  
 सद्गुरज्येदाविनाय मजिनमटाक ५६१  
 सद्गुरज्येद चिन्ता निम्नय ६४२  
 सदद विन्दु १०९, ६०६, ६१३, ६१३  
 सधरशित (स्वरित-सम्बन्धचिन्ता के  
     लेखक) ६०४  
 सन्देशकथा ५८८  
 संघपाल स्वरित ५०८  
 स्वामत (मिल) १८८  
 स्वनदक लूट १५५  
 सच ३२१, १३२, ३२३, ३३२  
 सचाराम ५८३  
 सचादिसेस कथा  
     सर्वेचित्त साधारण ३१३  
 संवति सत्य ३१०  
 सद्विमानकर १०२  
 सरम् (मन्त्र) ११२  
 सुमेल कथा ५४३  
 सुख्नाविमंगसूत ८१४  
 सुख्न-सम्पूर्ण १०३, १०५  
 सच्चवस्थ-नरिये ३००  
 सच्चविभग-सन्त १८, १५६, १५८  
 सच्च विभग ३४२, १०३, ४०५  
 सच्चन-संयुक्त १०३  
 सहजकिर जातक १००  
 सच्चवस्थेन (साप सदोप) ५३२,  
     ५३३, ५३०  
 सुख्नाविमंगटोका (स्वरित वार्तालालकृत)

- नवचिकित्सा १३६  
 सहस्राम (विहार) ६१८  
 संपर्यग्वत (सिंहली भिक्षु सारिपुत्र के विषय) ५३८, १३९, ५४०  
 दक्षिण ३३, ३४१, ३४२, ३४४, ३४५, ३४६,  
 ३४८-३४९, ४१०, ४१३, ४१५, ४१६  
 समर्पणमंडिका-सुत १५, १५५  
 समर्पण रामदास २५  
 समरसेकर ५४४  
 सहुदागामी ४१८, ४१९, ४२८, ४३३,  
 ५२२  
 सहकार-संयुक्त १०६, १०७, १५४, १७३  
 सामिकार्य २२२, ४०३, ४२४, ४२५,  
 ४२९, ४३०, ४३१, ४३४, ४३५,  
 ४३६, ४३७, ४४४, ४४८  
 सहुलादार्थी १५०  
 सहकारिक सुत १७३  
 सुखल-नामज्ञा ४६०  
 भरतकुमार लक्ष्मा १०१  
 सत्यराज-जातक ३००  
 समुमार-जातक २८३  
 सहुदागामिकल १५०  
 सिद्धल ५४१  
 सिद्धार्थ ४२६, ४३४, ४४०, ४४१,  
 ४४२, ४४९  
 निदार्थ ७३  
 नाकेत १७७, ४१४  
 नेकिलेश ४६६, ४७०  
 नेकिलेस-बासना-निव्वेष-भागिय ४६९  
 नेकिलिक ४२२, ४२३  
 नेकिलेल भागिय ४६९  
 निकलायद १०७  
 निकलायपदविमंग (शिखा पदविभग)  
 ३१७, ४१०  
 निवि लातक २१९  
 निविराज चरिय २१९  
 नाकिलद ४४१  
 सेकेट बृक्ष औंव दि इस्ट १०२, १०३,  
 ३४०, ४७५, ४९२, ४९४, ५५०,  
 ६००  
 सोहनाद-बग्ग १३, १४, १५०-१५२  
 सेक्सन-सूत १५, १५३  
 नेशार यमक ४५०  
 संखपाल जातक २८८  
 सलाहस्पति-सुत १५७  
 सुचिलोम २४०  
 सददनोति (सददनोतिएकरण) ५३९,  
 ६०३, ६१०-६११, ६१३-का  
 उपकारी साहित्य ६११, ६४०  
 सददविनिच्छय ६१३  
 सद्वद्वारत्वजालिनी (कल्पना-  
 व्याकरण को टोका) ६०६  
 सद्वद्वारत्वजालिनीया टोका ५८०  
 सद्वद्वृति ६१२  
 सद्वद्वृतिपकाशन ५७९, ५८०  
 सद्वद्वावतार ६४१  
 सद्वद्वृतिपकाशनसम टोके ५८०  
 सद्वद्वमकिति (एकावलेकाव)  
 सद्वद्वमपकाशिनी ५३२, ५३८  
 सद्वद्वमाद्यटोका ५३२  
 सद्वद्वम पृष्ठोका १०२  
 सद्वद्वमोषायन ५४२, ५४४, ५५५-  
 ५९६  
 सद्वद्वम विलास ६०६  
 सद्वद्वमगुह (सद्वद्वृति) ५७९, ६१२,  
 ६१३  
 सद्वद्वम दीपक ६४१  
 सद्वद्वमद्विठ टोका ५०८  
 सद्वद्वमालकार ५४३, ५८८  
 सद्वद्वमपाय ६४१  
 सद्वद्वमर्जी गुहा ५२६  
 सु-सुमार मिरि १०७, ५३५  
 सम्बन्ध विला ५३८, ६०४, ६०५,  
 ६१६  
 सम्बन्धन-चिला टोका ५३२, ५४१

- सद्गमनगह ३  
 सद्गमनम् ३  
 सल्ल ६७  
 संघावधीय ११३, ११४, ३१८, ३१९, ३२०  
 संघाविसर १०, २०, ३२२, ३२६  
 सापाशतिका ८३  
 सच्च-प्रभाक ४५०  
 सच्च संजोप दाका (सुमगल-कृत) ५४७  
 सेष जातक ६३५  
 सञ्जव वेलिट्युत १३६, १३८, १३९,  
     ४४०  
 सुजात जातक ६३५  
 सूजता-बग १३, १५  
 सूर्योम-जातक २८३, २९४  
 सूजता १८४, २६८, २६९,  
 स्वराषात के कारण स्वर-परिवर्तन ४६,  
     ४८, ५९  
 स्त्रीग (एस० ए०) ५६८, ५६९  
 शिख (वी. प.) १२१, ५१०, ५१८,  
     ५१९  
 समना २६७  
 सीतालिक १२६, १२८  
 सानुनामिका १२, १३, ५८५-५८६, ५८५  
 सूजता गहूतो जातक ६३५  
 सूजता बग १८४-१८८, १८९  
 स्त्रीह २७५  
 मरामतल बग १८, १९, १८०, १८५,  
     १८८, १८०  
 सडायतन-विचरण-मूल १८, ३४८,  
     ५००  
 सतायतन यवत १००, १८५, १८६,  
     १८७, १८८, १८९  
 सतिकल ३८  
 सत्यतापदोष ६४५  
 सत्त्विक १०४  
 सूक्ष निपात ती अट्टकवा ६०७  
 सत्त्व निपात १०१, १०८, १८२, १९१  
 साताग्निकामिका ४५८
- मातिपटाल विभग ३४८, ३४९,  
     ४०३, ४०८  
 मतुकर्णिका जातक २८६  
 मति पट्टाल २१०  
 मतिपटाल-नयन १००, १०१, १०२  
 मत्ताविद्युत-निरोह १९२  
 नवर-नायिक ५३-५५  
 स्वर-नायिक के कारण स्वरामत ५०-५१  
 स्वर-विपर्यय ८५  
 मतिपटाल मूत ९३, २५०, १५०,  
     ३४८, ४०५, ४०८  
 मतीशब्द विचारण ६०३  
 ममतापानादिका २१०, २११, २१२  
     २१३, २१४, २१५, २१६, २१७, २१८,  
     २१९, २२०, २२१, २२२, २२३, २२४,  
     २२५, २२६, २२७, २२८, २२९, २२३,  
     २२४, २२५, २२६, २२७, २२८, २२९,  
     २२३, २२४, २२५, २२६, २२७, २२८  
 ममतापानादिका की निरानकया ११८  
 ममतापानादिका की वाहिकाका ११९  
 ममतापानादिका की वाहिका निरान  
     करणा ४०३  
 ममतापान-मूल १०१  
 ममतापृष्ठ यवत ५१८  
 मतीलिप ४९, २०१, २००, ५१६  
     ५१८, ५१९, ६३२ और मारहूत  
     के अनिलेत ६३४-६३५, ८१७,  
     ८१८  
 मध्याकोठ ४५३  
 मात चलुए ४१७  
 स्वाम (वीन) ३४८, ५३५  
 साम इन-सूत १०, १५६, १७२,  
     २०६, ४०८  
 साम जातक २१३  
 मामजापल मूर ४ १२, १२३,  
     १३०, १३१, १५८, १५९, २७६,  
     ४०८  
 तामजनक तुलन जला ११२  
 मामावति (स्थामावती) १८५-

- सद्गमांसीर (सद्वरथ भेदचिन्ता) ५७९  
 सद्गमज्ञानिपाल ५३८, ५४०, ५७९-  
 १८०  
 सद्गमतन्त्री ६१०  
 सब्बासद-सुत १३, १४०  
 सब्बदाठ जातक २८८  
 संयुक्त निकाय ११, १०, १०१, ११३,  
 १२२, १२०, १३०, १३१, १६०-  
 १६८, १८०, १८१, १८२, १८०,  
 १९६, २०१, २१०, २०६, २४७,  
 २४७, २४८, २४९, ४४३, ४७३, ४७६,  
 ५१३, ५१४, ५१७, ६२४  
 संयत-निकाय को अट्ठकथा ५१३,  
 ५२४, ५३८  
 संयक्त व्यजन ३७, ३८, ४१, ४२,  
 ४३, ४४, ४८, ५०, ५१, ५२,  
 ६२-६३  
 संयक्त स्वर ३५, ३७, ४४, ४२  
 संयोजन ३५६, ३३२  
 संयुक्तवाचाम ११३  
 सहृत ३, ११, २२, २३, २५, २६,  
 —का पालि से मन्त्रनम ३०-३१,  
 का अन्तिमन्त्रह ३६, ३६, ३८, ३९  
 ४१, ४२, ४३, ४४, ४५, ४६, ४६,  
 ४७, ४८, ४९, ५०, ५१, ५२, ५३,  
 ५५, ५७, ५८, ५९, ५३, ५५  
 स्मृति १३०, १७१, ३८७  
 स्मृति प्रस्थान १४८, १४९, १५०,  
 १५०, १५०  
 स्मृति-सम्प्रबन्ध १५०, १३३  
 सिद्धार्थ (सिक) ४, ५, ६, १६,  
 २३, २४, ३०  
 स्मृति-विनय ३१९  
 संघर्ण गत (खुदकसिक्षा, सम्बन्ध-  
 चिन्ता, वृत्तोदय के लेखक) ३१६  
 सद्गमदीपिका ६४१  
 सबहल-सुत १७५  
 सधरचित्त १५८ (सुवोषालङ्कार)
- साधुविलासिनी ५५३  
 सुधीरमुखमठन ६१३  
 संविमेद जातक २८३  
 सोधनहार ५६८  
 सिंघ २७४  
 सम विविध ट्राइन्स आव एन्ड व्हेस्ट  
 ईडिया (लाहौ) २८८  
 सुप्रवासा कालिय-दुहिता १५४, २२६,  
 २२८  
 सुप्पारक ५५१, ५५३  
 सुनश्च लिङ्गतिविनुम १५०, १५८, १५०  
 सुत १३२, १०२, १०३, १०८, १२०,  
 १२१, २७१, ३२३, ३२८, ३३५,  
 ३३५, ३२६, ३११, ३२४, ३२६  
 ३४५, ५१३  
 सुत्त पिटक १३, ७४, ८१, ९१, १०४,  
 १११-३०१, १११, १२२, १२५,  
 ३३४, ३३५, ३४०, ३४२, ३४६,  
 ३५०, ३५१, ३५२, ४१३, ५२३  
 सुत्तनिहेस (आदकृत आकरण-ग्रन्थ)  
 ६०४  
 सुतावली ६५१  
 सुत्तनिपात २२, ६२१, ६३०, ६३२,  
 १०३, १०२, १०६, १०८, १०९,  
 ११४, ५७३, २७५, २४४  
 सुत्तमाला ६११  
 सुत्तनिहेस ५८०  
 सुत्तनिपात को लट्ठकथा ५१३, ५२६  
 सुतों की दोली १२८, १३१  
 सगीतिवा १८२  
 सुत्तसगह ११२, ११०, ४१५  
 सुत्तत्त ३४३, ३४४, ३४५, ३४७, ४०६,  
 ४०६, ४१८, ४६३  
 सुमगल विलासिनी १, २, १११,  
 १३४, ३३५, ५१३, ५२३, ५२४,  
 ५२०, ५३८, ५३३, ५०२, समगल  
 विलासिनी की नियान कथा ११६,  
 ११७, ११८, ३०२

- सुद्धसन २८३  
 सुदृत महापति १०८  
 सुदृढक २८९  
 सुब्रह्मा ५८६  
 सुवर्णसामर्चिणि ३०१  
 सुभ-सुत ९३  
 सुवोधालकार ५३८, ६१६, ६४१  
 सुलक्षण-सुत ९३, १५६  
 सुनश्वर लिङ्गविपुल १४०, १४६  
 सुप्रबद्ध २३०  
 सुप्रिया (स्थासिका) १८४  
 सुपृष्ठसुयुत १००, १६७  
 सुप्रेष-कथा ५९९  
 सुमंगल ५४२, ५५५, ५९४  
 सुमंगलाचार्य ५६५  
 सुरदृढ २८७  
 सुरियोपरित्त-सुत २११  
 सूतक्षतु-गरम ४३८  
 सूतप (चार आये) २१३, ४१८ ५२१  
 चात बोध्यग १८०, ८९०  
 सीमा विवाद-विनिष्ठय ५८५  
 सीमालङ्घार संगह ५३१, ६४३  
 सुत विभग ११, १०६, ३२२, ३२४  
 सुपाह व्यक्ति ५३१  
 सुतन्ति ७५, १०८, ३४७, ६३४  
 सुतसोम चरिय ३००  
 सुतवादी ४२२, ४२३  
 सुभूति चन्दन ३१२  
 सुवध-कला ५९९  
 सूज घन्य ११, २८  
 चखा रक्खन्यो ३१८, ३१८  
 सूचय अट्ठकथा ४१७, ४१८  
 संखपाठ चरिय ३००  
 सांख दर्शन ३२९  
 सालेयक-सुत ९४, १५२  
 सालक जातक २७५  
 सिंची १४३  
 संस्कृत परिवेष ४८०, ४८१  
 सेतिया ३१३, लेतिय घम ३१५,  
     संघा दिसेमा  
 संखेय बण्णना ५८०  
 साल्य योग ४८०  
 साल्य सूत १२६  
 मुखम ३९९  
 मुख धनु ४०३  
 मेल-मूत ९६, १५६  
 मुखावती व्युह ४८६  
 मौलवी ४९०, ५४२, ६०७  
 सुलान-दुला १६८  
 मुख १५१, ४०२, ४०३, ४०४, ४०५  
     ४०९, ४१०  
 मुखवसा २१८, २२४  
 मुखोदय २८०  
 मर्खपाल जातक ३००  
 सेतिय कथा ५०४  
 संखा योग ४६०  
 सेतिय धम्मा ३१२, ३२२  
 मुख बेदना ३१८, ४०५  
 सात अनश्वर १८२  
 सिंधाम (स्थाम देश) ७२, ९१, १०९,  
     २००, २०२, २७६, २७०, २७४,  
     ३३१, ३३२, ४१२, ५४६, ६०५,  
 सिंधामी (स्थामी) २००, २७३,  
     ४१२, ४३२, ४५२, ४५५, ४५६,  
     ४५४  
 सुतन्त आधार ३१८  
 सुत विभाग ३४४  
 समीपवर्ती अंजनों का स्वरो पर प्रभाव  
     १६  
 मुन्दरिक भारद्वाज १४०  
 मुवर्ण-भूमि ८९, २८८, ५५६, ५६८,  
     ५७२, ५७४  
 सीमालकार संगह ५३९, ५४०, ५४९,  
     ६४३  
 सीमालकारस्स टोका ५३९  
 सीहचम्म जातक २८२

- सीहलवाच ५८१, ६४०  
 सीहविकारलित ५५९  
 सीहलट्टकथा महावेस ५४०, ५५२  
 सुरेन्द्रनाथ मिश्र २०१  
 सुरापात जातक २०१  
 सुशब्दन २०७  
 मुरुचि जातक २०३  
 सेल-मुत ९६, ११६  
 सेवितव्य-असेवितव्य मुत १७, १५७  
 मुतन्त-भाजनिय ३८४, ३९६, ३९८,  
     ४०१, ४०२, ४०३, ४०४, ४०५,  
     ४०६, ४०७, ४०९  
 मुत तिगत की प्राचीनता २३६  
 आत आपति ३०४, ३३३, ५८२  
 सुतसोम जातक २८६  
 सात मवालयं १८८  
 सिरिया ८९  
 सोततमीनिदान ५३९  
 सोतप्पमालिनी ५८१  
 सोतापति संयुत १०१, १७२  
 सोतमालिनी ६४१  
 सेतकेतु जातक २९१  
 सेना ११९, २२१, ४७३, ६३१  
 सेनानी (गाव) १३३  
 सेनानी दुहिता १८८  
 सोणदण्ड (बाह्यण) २३०  
 सोणदण्ड-मुत १२, १३०, १३८, १७२  
 सोण ३५  
 सोण कोडिवोस ८३, ५५२  
 सोणक ३१०, ५८२, ५८८  
 सोणतर ४८०  
 सवर्जकदुर औष डिमकोस ४२१  
 सत्त-अट्ठ-नव-निपात जातक अट्ठ  
     कथा ६४०  
 सत्येकविष्टवप्रकाश ६४१  
 सोत आपत ४१८, ४१९, ४२८,  
     ४२९, ४३१, ४३८, ४४०  
 सुत-विपात (अट्ठवाच सहित) ६४०
- सति ३९०  
 सतिन्द्रिय (स्मृति इन्द्रिय) ३८९  
 सोमकृ महाजनपद ११५, २८६  
 सोम (स्थविर) ५५७, ५५२  
 स्तम्भलेल (सात) ५१८, ६२६  
 सोत विज्ञात ३४६  
 सोसानिकांग ४७१  
 सो-सोर-वर-या ३३२  
 सोराट (सोराट) ११६, १९८  
 सहस्रसत्त्वप्पकारण ५८८, ५९१-६००,  
     ६४०  
 सहस्र वर्ण २१५-२४३, २८१, २२३,  
     २२३  
 सहस्ररसमालिनी ६५०  
 सहजात प्रत्यय ४४१, ४५३  
 सहेतुकवित ३१०, ५३३, ५३५, ५३६  
 सवण्णनानयदीपनो ६१२  
 सारस्पदीपनो ५३८, ५४१, ६०६,  
     ६४३  
 सारस्पदकामिनी ४९३, ५१३, ५३६,  
     ५३८, ५३३  
 सारस्पदसंतासा ५३८, ५३९  
 सारस्पदसगह ५८०, ६४२  
 सारस्लाघ १०९, ४७२, ६१३, ६११,  
     ६३२  
 सारस्लगह ५४१, ५४१  
 सारसंगह निमसय ५४२  
 सारदस्ती ५४३  
 सारिपुत (सारिपुत्र) १०९, १४५,  
     १४९, १५७, १६९, १७०, १७५,  
     १७९, १८३, २४३, २४१, ३२१, ३३५,  
     ४२५, ५००, ५३८, ५४०, ५४२,  
     ५७५, ५७९, ५८०, ६०४, ६०५,  
     ६१०, ६२६  
 सारिपुत-मुत २३५  
 सारिपुत संयुत १००, १०६, १६१,  
     १६७  
 सिंहल २, ९, ३२, १२०, १९९, २०९,

- ३२६, ३३६, ३३८, ३१४, ५७१,  
५३९, ५४०, ५४१, ५४२, ५५०,  
५५१, ५५२, ५५३, ५५४, ५५५,  
५५६, ५५७, ५५८, ५५९, ५५१,  
५५१  
सिहारी अद्वक्षयार (प्राचीन) ५१५,  
५१६, ५१८, ५१९, ५२०, ५२१,  
५२२, ५२३, ५२४, ५२५, ५२६,  
५२७, ५२८, ५२९  
सिहरी (परम्परा, माधव, साहित्य  
आदि) १०, ११, १२, १३, १४,  
१५०, १५८, १६१, २०३, २३७,  
२६४, २८८, २९२, २१८, ४२२,  
४०२, ४०३, ४०४, ४४२, ४४४,  
४४५, ४४६, ४४७, ४४८, ४४९,  
४४९, ४४१, ४४२, ४४३, ४४४,  
४४५, ४४६, ४४७, ४४८, ४४९,  
४४१, ४४२, ४४३, ४४४, ४४५  
सिंह सेनापति ११३  
सुभाषित वाच्य २४०  
सुभ-सज्जा १६९  
सुभणकट वण्णना १५१  
सुभ सुत १६, १७, १७१,  
१८२, १८५, १८७  
सुभद्र ३६, ३८, ३८  
०९, १० १४४, १८८  
सुम (प्राचीन) १५१  
सुभति (सिहरी विद्वान्) ६०३, ६०८,  
६०५, ६०६, ६०७, ६१०, ६११,  
६१४  
सुभति (द्वंभित) १८३  
सुलभारक ५४१  
सामरिय (त्रिलोकी) ५४२  
सोभित ३३६  
संस्कृत भाषा ६८, ७१, ११६, १२०,  
२३०, २३२, २३४, २६४, ४४७,  
४४९, ४४६, ४४७, ४४८, ४४९,  
५१२, ५१३, ५१४, ६००, ६०१,  
६०२, ६०३, ६०४, ६०५, ६०६  
६०७, ६०८, ६०९, ६१०, ६११  
संस्कृत व्याकरण ६८, ७०, ६०१,  
६०३, ६१०, ६११  
संस्कार १५३, १६५, १६६, १६७,  
१६८ ४०१, ४३०, ४५०, ४५५,  
४०५, ४२१, ४३६  
संस्कृत सन्धि ३३, ६०३, ६१८  
संस्कृत सर्वपद २२२, २२३  
संस्कृत साहित्य ११२  
संस्कृत विपिटक १७९  
संस्कृत वाङ्मय ६४३  
संस्कार स्कन्ध ३४१, ४१७, ४४४  
संघोत्तम ४३८, ४४६  
संस्कार चेतना ४०७  
सेमानसिणनिददेशो ५२०  
सासानवस्त्र ५०८, ५०३, ५०६, ५५७,  
५४८, ५५३, ५८४-५८५, ६०६  
सिहबाहु ५५१  
सिहा २६८  
स्पष्टिनवाद बोढ घमे (उसकी प्रमाणरा,  
साहित्य आदि) १६, ११, १०८,  
११२, ११४, १३६, १४३, १५५,  
२००, २१०, २१३, २२७, २२१,  
२१०, ३०८, ३३६, ३३८, ३३९,  
३६१, ३५०, ३७६, ४०६, ४२७,  
४२८, ४३०, ४३२, ४३४, ४३५,  
४५६, ४५८, ४६८, ४९३, ४९३,  
५५१, ५७६  
सर्वानितवादी बोढ घमे (उसकी  
प्रमाणरा, भावावे, साहित्य आदि)  
११३, ११४, ११५, ११६, ११७,  
२००, २११, ३१८, ३२४, ३३१,  
३५६, ३६४, ३८०, ३९८, ४०२,  
४२३, ४२४, ४४६, ४२८, ४२९,  
४३०, ४३८, ५६२

ह

हनिवगाम १४५  
 हरनीय जातक ६३५  
 हरित मातक जातक २८७  
 हरिदद्वसत (क वा) १५९  
 हल्ला (डा०) २०४  
 हस्तक आजवक १८४  
 हन्थवनगलविहारवस्तु १७४ अस्तिये  
 अत्तमगांधुविहारवस्तु

हन्त्र मात्राकाल का नियम ४८-४९  
 हन्त्रस्वर ३७-४०, ४०, ४३, ५२  
 हस्त जातक ६३५  
 हाई (ई) १४०, १६१  
 हितोपदेश २५४  
 हिमवान् (हिमवत्) प्रदेश ८९, ५२०  
 हिमालय प्रदेश ८८, २९२  
 हिमालय पर्वत ४८०  
 हिमालय-प्रदेश ८१, ४८१  
 हिमुचल चिनरतन (बरमी भित्ति) ६११  
 हिन्दी २०, ३०, ४९२  
 हिन्दी भाषा का इतिहास (क्षेत्रक  
 वर्मा) ५२

हिन्दी साहित्य सम्मेलन २३२, ५१३  
 हिन्दी और इण्डियन लिटरेचर  
 (विन्टरनिक्स)

अस्तिये इण्डियन लिटरेचर

हिन्दी जांग गालि लिटरेचर (काहा)  
 ८, ११, १२, १८, २२, २५, १०६,  
 १०३, २०३, २२०, ३४२, ३४३,  
 ३४४, ३४५, ४९८, ५५४, ५५५,  
 ५५६, ५५७, ५५८, ५५९, ५८५,  
 ५८६, ५९३, ५९८, ६०१, ६१०,  
 ६१४, ६२९

सिद्धारम एवं वृद्धिरम (जाल्ये इस्तियट)

३३५

हिन्दुकुण (पर्वत) २९४  
 हीनयान २९०  
 हीनयानी ३११, ३५२  
 हीं ३८७, ५३५  
 हेतु ३६३, ४५८, ४३०,—शब्द का  
 अथ ५३३  
 हेतु-गच्छयो ४५८  
 हेतु-प्रत्यय ३५६, ४५७, ४५८  
 हेतुवादी (वाढ़ संप्रवाप) ४२६, ४४१,  
 ४४२, ४४५, ४४६, ४४८  
 हेतुविन्दु ३४२  
 हेतुविन्दु-टोका ६४२  
 हेमवत्तमाणव पुच्छा २४१  
 हेमचन्द (वैयाकरण) ३१  
 हेमचन्द राय चौधरी (डा०) १७६,  
 २९१, २९२, २९३, २९५, ४३३  
 हेमघंत २४०, ४२४  
 हेमघंत-सुत २४०  
 हेमरस्तिय ३१०  
 हेतुवितरणे निवि संस्करण २७३,  
 ३१६, ५३१

व

जान-दर्शन २२३  
 जात प्रस्थान-जास्त ११५, ३५३, ३५४  
 जात-विप्रस्थुत ३७३, ३७५, ३८२,  
 ३८४, ३८५  
 जातवज १३९  
 जात-सप्रस्थुत ३७३, ३८४, ३८२,  
 ३८५, ३८६  
 जानातिलीक (भहास्त्रधिर) ३६१,  
 ३४५, ३५१, ३५६, ३७३, ४१७,  
 ४१८, ४२२, ४२५, ४२६, ४२७,  
 ४४३, ४४९, ४५५

## २—उद्धृत पालि शब्दों की अनुक्रमणी

अ

अकल २०, ५९  
 अकालिक १७५  
 अकुतला (धर्मा) ३६०, ३७३-३८१,  
     ४०१, ४०२ देखिये 'अकुशल'  
     (नामानुक्रमणी) भी ।  
 अपिता ६३  
 अगति २३१  
 अग्र ५२  
 अग्रल ५२  
 अग्रस्थनिया (धर्मा) ३६५  
 अग्र ४६  
 अग्नि ३७, ४५, ६४  
 अग्नीहि ६८  
 अकुल ४६९  
 अग्ल-अग्लि-अग्ली ५  
 अचेतसिक ४२७  
 अचेतसिका (धर्मा) ३६८  
 अचलनियासता ४४४  
 अच्छ ३९, ४०  
 अच्छेर (वल्लविर, अच्छरिय) ४१,  
     ४५  
 अजानसेत ४८९  
 अविरवती २०  
 अज्ञतावहिदा ३६३  
 अज्ञतावहिदारमणा ३६३  
 अज्ञता ३६३  
 अज्ञतारमणा ३६३  
 अज्ञनातिक जायतन ३४८  
 अज्ञनातिका (धर्मा) ३६९  
 अज्ञकत ३९९

अज्ञेत ४९  
 अज्ञामज्ञापञ्चयो ४६१  
 अज्ञा ४०६  
 अज्ञाताविनिय ४०६  
 अट ६७  
 अटठ ३७  
 अस्त्रोपद ६८  
 अस्त्रसज्जा ४६१  
 अता १६७, ४६४  
 अतिबोत ४९  
 अतिरेक ३३४, ३४६  
 अतोत्तरयु २३१  
 अतीता ३६२  
 अतीतारमणा ३६३  
 अत्थपटिसम्भदा ४११  
 अत्थवण्णना २७७  
 अत्थ-पत्तयो ४६३  
 अदुष्मगमनुखाय वेदगाम समयुता  
     (धर्मा) ३६७  
 अदोतो ३८८  
 अविकरणसमया धर्मा (गात्र)  
     ३१२, ३१९-३२१, ३२२ देखिये  
     'अविकरणसमय' (नामानुक्र-  
     मणी) भी ।  
 अधिगिर्द १९  
 अधिपति-पत्तयो ४६०  
 अधिमोत्तो ३०३, ३९२  
 अनण ४०  
 अनत्तलव्यय ५८९  
 अनत्तसज्जा ४६१  
 अनता ४५३, ५२२

- असल्तर-पचयो ४६०  
 अनभिज्ञा ३९०  
 अनमतग्न २६५  
 अनागता (धर्मा) ३६२  
 अनामतारमणा (धर्मा) ३६३  
 अनारमणा (धर्मा) ३६८  
 अनासव ४२२  
 अनासवा (धर्मा) ३६५  
 अनिच्छन्नसंज्ञा ४६९  
 अनिददस्तुन्-अप्पटिष्ठा (धर्मा) ३६३  
 अनिददस्तुना ३६४  
 अनियत ३२३  
 अनियता (धर्मा) ३१२, ३१६, ३१७,  
     ३२२, ३६२, ३७२  
 अनियामिका (धर्मा) ३७२  
 अनुत्तरा (धर्मा) ३७३  
 अनुप्यत्रा (धर्मा) ३६२  
 अनुपादानिया (धर्मा) ३७०  
 अनुपादिका (धर्मा) ३६९  
 अनुपादितप्राप्यानिया (धर्मा) ३६०  
 अनुत्तर्य ३८८, ३९०  
 अपचक्षनामिणी (धर्मा) ३६१  
 अप्पल्लवा (धर्मा) ३६४, ३९५  
 अप्पटिष्ठा (धर्मा) ३६४  
 अप्पमाणा (धर्मा) ३६२  
 अप्पमाणारमणा ३६२  
 अपरगोप्यन ५८  
 अपरष्टह ५५  
 अपरसेलिय ४४८  
 अपरामट्ठा (धर्मा) ३६८  
 अपरिवाप्त ३९९  
 अपरिवाप्ता (धर्मा) ३७२  
 अपारुत ५०  
 अपीलिका (धर्मा) ३७२  
 अपेक्षा (अपेक्षा) ५२  
 अचबहृति ४२  
 अचम्पत (अचम्पत) ५२  
 अभिनन्दिति ५३
- अभि-विनय ३३४  
 अभ्यागादो ३९०  
 अमृड-विनय ३१३, ३८०  
 अमोहो ३८०, ३९४  
 अमृत ३०, ५३  
 अमृता ६६  
 अर्य (अरिय) ६४  
 अरणा (धर्मा) ३७३  
 अरहावचरा (धर्मा) ३७८  
 अरहिपिंडी (धर्मा) ३६४  
 अरंजर ४६, ६१  
 अलिक ४८  
 अलोभो ३८७, ३८९  
 अबट ३९  
 अबस्त ६५  
 अब्याकत १६४  
 अब्याकता (धर्मा) ३६०, ४०३  
 अब्याकतो ४०२  
 अविगत-पचयो ४६३  
 अविचारा (धर्मा) ३७२  
 अविज्ञा ४६१, देखिये अविज्ञा  
     (लामानुक्रमणी) भी ।  
 अवितक-अविचारा (धर्मा) ३६१  
 अवितक-चिचारमत्ता (धर्मा) ३६१  
 अवितका (धर्मा) ३७२  
 अवीचिता २५६  
 अवेच्छ ५३  
 अवेग ५७  
 असञ्जनसता ४३१, ४५१  
 अस्त ६५  
 असाद ५६८  
 असु ४८  
 असुभस्त्वां ४६९  
 असेक्षा (धर्मा) ३६१  
 असेन ४५०  
 असेनामालिय ४६९  
 असाक्षिलिट्ठ-असाक्षिलेसिका (धर्मा)  
     ३६०

असंक्षिप्त-मंकिलेसिका (धर्मा)	३६०	आमविषयका (धर्मा)	३५५
असंक्षिलिद्धा (धर्मा)	३३०	आमविषयका अनामवा (धर्मा)	
असंक्षिलिद्धिका ३७०		३६५	
असंख्यता (धर्मा)	३६६	आमविषयका सासवा (धर्मा)	
असंख्यता धातु ३५५		३६७	
असंख्यागतिया (धर्मा)	३६९	आसवसमयपूता (धर्मा)	३६५
अहिरोक ३८८, ३९०		आसवसमयपूता चेव नो च आसवा (धर्मा)	
अहिकार ४३		३६६	
अहेतुक (लित्र.) ५३३, ५३५		आसवा (धर्मा)	३६४
अहेतुका (धर्मा)	३६५	आसवा चेव आसवसमयपूता चे (धर्मा)	

## आ

आचरिय (आचर)	१०	इक्क ३१, ४०	
आचरिय-मृद्धि ४६६		इण ३१, ४०	
आचयगामिनी (धर्मा)	३६१	इल्यो ५०	
आजिर (अजिर)	४८	इदपि ५३	
आदिनव ४६८		इष ५८	
आनन्द ४६८		इन्द (अन्द की निश्चित) ६०१	
आनगाननसति १५३		इरियति ५०	
आनेज्ज ४४६		इतिपत्तन २०	
आमिसदायाद ३२७		इस्मानिय ४४	
आरातियकम ४०६			
आरमेर २७			
आरभितु २७			
आरभितु २८			
आरभित्ता १३, २३			
आरम्भन ५१			
आरम्भण पञ्चव्यो ४५५			
आरोग (अरोग)	४८		
आलभितु १३, २३			
आलभित्तु २७, २८			
आलविका ६			
आलानिक ६१			
आलिनद (अलिनद)	४८		
आबलहार ४६८			
आधुन ६१			
आवृत्ति ६१			

## इ

इक्क ३१, ४०			
इण ३१, ४०			
इल्यो ५०			
इदपि ५३			
इष ५८			
इन्द (अन्द की निश्चित) ६०१			
इरियति ५०			
इतिपत्तन २०			
इस्मानिय ४४			

## उ

उच्छु (इक्कु)	५५		
उम (उक्कु)	३१		
उष्णा ६१			
उन ६३			
उत्तिटठ ६७			
उदाहु २७, ४८, ५३			
उदिल्लाति ६४			
उदुक्कल ४७			
उद्दिदस ३४०, ३४४, ३५१			

उपर्युक्त ५९	उत्तु ४५	
उपादानविषयुता (धर्मा) ३३०	उत्तुमा ११	
उपादानविषयुता अनुपादानिया (धर्मा) ३३०	उस्ताम ६२४	
उपादान विषयुता उपादानिया (धर्मा) ३३०	उस्तुक ४४	
उपादान सम्पर्कुता (धर्मा) ३३०	उस्तुया (असूया) ४५	
उपादा (धर्मा) ६६१	अ	
उपादाना (धर्मा) ३३०	क्रतुदेवि ५०	
उपादाना चेव उपादानसम्पर्कुता (धर्मा) ३३०	ए	
उपादानसम्पर्कुता चेव नो च उपादाना (धर्मा) ३३०	एक २३	
उपादानिया चेव नो च उपादाना (धर्मा) ३३०	एकल ३८	
उपादानिया चेव नो च उपादाना (धर्मा) ३३०	एक्लगता ६८६	
उपादाना चेव उपादानिया च (धर्मा) ३३०	एके २७	
उपादानिया (धर्मा) ३३०	एको २३	
उपादिना (धर्मा) ३६९	एकोदिः १९, २०	
उपादिनुपादानिया (धर्मा) ३६०	एकवार्षी ४३८	
उहनदान ५२	एकार्णिस (एकादस) ६०	
उत्ता (उपस्था) ५२, ६०८	एडक ५	
उपेन्द्रा पारमिता ३०१	एदित्व (एरिक्ट्र) ४३	
उपेन्द्रासहगता (धर्मा) ३६१, ३८८, ३७१	एदिसक ४३	
पैष्ठ्या (धर्मा) २६२	एदित (एरित्र) ४३	
उउपादिनो (धर्मा) ३६०	एरावण ४४	
उज्ज्ञानगहनदा (धर्मा) ३३९	एरिक्ट्रा (एदिक्ट्रा) ६०	
उपेतो ५३	एरिस (एदिस) ६०	
उपज्ञानि ५४	एल ६०	
उपर्युक्ति २३५	एलक ५	
उच्चियम ६४	एलन्ड ६०	
उम्मुक्तेति ६४	एल्ड ३८	
उम्हयति (उम्हयते) १०	ओत्तामुख ३८	
उयम ६२६	ओट्टड ३८	
उलक ४६	ओत्तण १०, ३८९, ३९०	
उम्म ३९	ओवि ११	
उस्तु ६२४	ओगम २०१	

ओ

ओरस ३७, ४४  
ओवरक ५०

## क

काक ६४  
काकल १०३  
कल्पान (कच्चायन) ४९  
कल्प ६३  
कल्पनि २९  
कणेहि २९  
कणेह ६१  
कत ४०  
कत्तेति ४५  
कम्मज्ज्र ६३  
कल्ल ६५  
कल्पन ७०  
कवि (कपि) ५५  
कविट्ठ ५८  
कम्म-पञ्चयो ४६२  
कम्माम ६४  
कपिल्लका ६१  
करोण ९९  
कह ५१, ६६  
करोति ५४  
कस्ट ३५, ५०  
कट्टक ६४  
काकणिका ४६  
कातव ३०  
कातूर ३०  
काल ४१  
कालुषिय ५०  
किण ६१  
कित ३९, ४०  
किलतो ६२  
किलसी ६२  
किल्विस ६४  
किलेसविषयुता (धमा) ३००

किलेसविषयुता असंकिलेसिका  
(धमा) ३०१  
किलेससमयुता ३०१  
किलेससमयुता चेव नो च किलेस  
३०१  
किलेसा ३००  
किलेसा चेव संकिलेसिका ३०१  
किलेसा चेव संकिलिट्ठा च ३०१  
किलेसा चेव किलेससमयुता च ३०१  
कुट्टा (हत्ता) ३९  
कुत ४०  
कुति ४०  
कुण्ठित्वस्तुति २३६  
कुबनि ६४  
कुण्ठ ४६  
कुसिनार (कुसिनार) ५८  
कुमीत २०, ५९  
कुट्टे ६३  
केन चि विज्ञेया ३६४  
केन चि न विज्ञेया ३६४  
केवटट ६३  
को ४५  
कोटित ३८  
कोमिय ५८

## ख

खत ५६  
खति ६८  
खमो ६२  
खलुच्चामतिकग ४९६  
खायित ५८  
खीर ४१  
खील ५६  
खुज ५६  
खुद ४४  
खृष्ण ६३  
खल ५७

## ग

गणनार्थ ४१  
 गवित (गवित) ५८  
 गन्धनिया ३६६  
 गन्ध-विषयता ३६६  
 गन्धविषयता अगन्धनिया ३६६  
 गन्धविषयता गन्धनिया ३६६  
 गन्ध-समयता ३६६  
 गन्धसमयता चेव नो व गन्धा ३६६  
 गन्धा ३६६  
 गन्धा चेव गन्धनिया च ३६६  
 गन्धा चेव गन्धसमयता च ३६६  
 गाधिति २०  
 गलावे ३०  
 गमिस्तिं ३४  
 गरहिति ५१  
 गरहा ११  
 गर ५२  
 गहित ४८  
 गाम ६२  
 गिरिमव ५३  
 गेहक ५३

## घ

घटो ५१

## च

चक्र ३४८  
 चबाति ८२  
 चतारो मे १३  
 चतुर्क ४४३  
 चतुर्घट्टहार ४६८  
 चन्द्रमा ४७  
 चरामसे २३६  
 चरिय ४७  
 चालक २०, ५९  
 चित्त-प्रसदि ३९०  
 चित्तमृदुता ३८०

चित्त-लहुता ३९०  
 चित्तविष्पुता ३६८  
 चित्तविसंसद्धा ३६८  
 चित्तसम्पृता ३६८  
 चित्तमृदुठाना ३६८  
 चित्तसंसद्धा ३६८  
 चित्तसहभूता ३६९  
 चित्तसद्धनसमुद्धाना ३६९  
 चित्तसंसद्ध-समुद्धानानुपरिवर्तिनो  
 ३६९  
 चित्त - समुद्ध - समुद्धान - सहभूतो  
 ३६९  
 चित्ता २१  
 चित्तानुपरिवर्तनो ३६९  
 चित्तामया पञ्चा ४११  
 चित्तुज्ञकता ३९०  
 चेतिय ३८, ४३  
 चेमे ५२  
 चोरो ५४

## छ

छक्क ५९  
 छारिका ६३

## ज

जन्मा ६७  
 जेनरर २३६  
 जनेत्वा २३६  
 जनो ५४  
 जल्लिका ५६  
 जिग्नज्ञति ४६  
 जिण ४१  
 जिमह ६५  
 जिया ५०  
 जिक्का ६६  
 जिक्कामलीय ३६  
 जीवन्तो (जीवतो)  
 जुङ्हा ६६

जन्मा ५६  
जेति ४९

तमे ५३

थ

क

भास १६०  
भास ६३  
भास-प्रभास १६२

धर ३३  
धीन ४८  
धारा ६७  
धैर ५०

ठ

ठापेति ६३  
ठितो ६३

दक्षिणा ६३

ड

इसति ५७  
इहति ५७  
इह ५७, ६०

ददलति ६०  
ददह ३७  
देना ५४  
दमिल ६३  
दस्तनेन पहातत्वा ३५१  
दस्तनेन पहातत्वहसुका ३५१  
दाता ५३  
दानि ५४

त

तसक ३५  
तच्छति ६३  
तयरिच १६  
तहा ६६, १६६, १६७  
तथावोदात-भागिय ४६८, ४६९  
तथाज्ञालेन भागिय ४६९  
तहण (तहण) ५०  
तस्ता ५३  
तति ५, ७, ८, ९  
ताहेदि ५४  
त्वाम ३०  
तिक्कन्दिति ६०  
तिणविल्लात ३१५, ३२०, ३२१  
तिष्ठ ५५  
तिष्ठ ३०  
तिमिसा ४५  
तीह ४८  
त्वीन ५५  
तुरिय (तुरिय) ५५  
तमीविल्ला ४२१

दाय (दाव) ६३  
दामिलय ५२  
दिदिवत्तमणवृत ३८६  
दिदिवोदात-भागिय ४६९  
दिदिव-सक्तिल-भागिय ४६९  
दिसालोकम ३५७  
दीप ४१  
दीषमद्वधान (दीषमदान) ५२  
दुखम ४१, ५२  
दुखसमझा ४५७  
दुली ३३  
दुख्यम वदनाय समयना ३५८  
दुमताह ५२  
दोह ४८  
दुन्नरित-बोद्धाम-भागिय ४६९  
दुन्नरित-महिनेस-भागिय ४६९  
दुलम ५५  
दुवे ५५  
दुमहो ५०  
दैनिक ५०

देवाति ५३  
देवाम ८१  
देवामे ६९  
देवेमि २१  
देवेहि २१  
देवो ४१  
देवनाशार ४६८  
देसो ५६  
देहनी ६१  
देहतक ६०  
दोस ४९, ४६९

## ध

धम्मता २५८  
धम्मराजा ४  
धम्मा २५, २६९  
धम्मामे ३०  
धारोप २८  
धिन ४९

## न

न अलनालवरा (धम्मा) ३७२  
नग ५१  
नटिव-नचलयो ४६३  
नयति (नदती) ५१  
नादि ४१  
न इस्तनेतम पहातभवेतुका ३७१  
निव्वेषभणिय ४६९  
न भावनाय पहातवा ३७१  
न भावनाय पहातववेतुका ३७२  
नन्मीतिमहयता ३७२  
नग ४६०  
नय-समद्वान ४६७  
नयिद ५३  
न स्पावस्त्रा (धम्मा) ३७२  
नवाति ४०  
न सुखनहयता ३७२  
न हेतु ३६३

न हेतु अहेतुका ३६४  
न हेतु सहेतुका ३६४  
नामेति ५५  
निच्छवेत्ता ४६९  
निहङ् (नेहङ्) ४८  
निहेतुवार ४५१, ४६७  
गिराना ४०३  
गिर ६४  
गिणारिवाय देसना ३५०  
गिरति पठिनमिभदा ४११  
गियरा ३५२  
गियति ६४  
गियानिदा ३१७  
गिसमिगाया पाचिनिया ३१६, ३२२  
गिसमिगाया पाचितिया धम्मा ३१२,  
३१६, ३१७-३१८  
गिसमो यज्ञयो ४६१  
गिंगम ४६  
गिसमोहो ४५  
गीयाति ४२  
गीवरण ४२०  
गीवरणविष्वेत्ता ३६७  
गीवरणविष्वेत्ता अनीवरणिया ३६७  
गीवरणविष्वेत्ता नीवरणिया ३६७  
गीवरणसमग्रेत्ता ३६७  
गीवरणसमग्रेत्ता चेव नो च नीवरणा  
३६७  
गीवरणा ३६७  
गीवरणा चेव नीवरणिया च ३६७  
गीवरणा चेव नीवरणसमग्रेत्ता च ३६७  
गीवरणिया ३६७  
गीवरणिया चेव नो च नीवरणा ३६७  
गेवत ४८, ४८  
गेव अपचयगामिनो न अपचयगामिसो  
३६९  
गेव दस्तनेत न भावनात पहातभवेतुका  
३७१  
गेव इस्तनेत न भावनाय पहातवा ३६९

- नेव विपाक-न-विपाक-वस्त्रमा ३६०  
 नेव सुखाना न असेखाना ३६१  
 नेसज्जिकंग १९१  
 नो आसदा ३६४  
 नो उपादाना ३६५  
 नो किलेसा ३६०  
 नो गत्या ३६६  
 नो चित्तसमृद्धाना ३६८  
 नो चित्तसहभूनो ३६९  
 नो चित्तसमृद्ध-समृद्धाना ३६१  
 नो-चित्त-समृद्ध- समृद्धान- सहभूनो  
     ३६८  
 नो-चित्त - समृद्ध - समृद्धानानु  
     परिवर्तनी ३६९  
 नो चिता ३६८  
 नो चितानुपरिवर्तनी ३६९  
 नो नवरसा ३६३  
 नो परामासा ३६७  
 नो सयोजना ३६५  
 नगल ३३, ६१
- प
- पकिरिय ४३  
 पग्हाहो ३१०  
 पग्हरति ६३  
 पच्चनोका (पच्चनिका) ५१  
 पच्चय वस्त्र ४६०, ४५०  
 पच्छाजात-प्रत्यय ४३२  
 पच्चयासे ३३६  
 पच्चयुपस्त्र ४६१, ४६५  
 पच्चयुपस्त्रारमण ३३३  
 पच्चर २९  
 पच्चयसा ३६२  
 पच्छलति ६५  
 पञ्जन्तिवार ४५१  
 पञ्जन्तिहार ४६५  
 पञ्जा ६२
- परिनां ६९  
 पञ्जह ६६  
 पञ्चवी-पठवी-भुवी, पुञ्चवी, पुञ्चवी ४०  
 पञ्चदामहार ४६८  
 पन ५२  
 पम्ह ६६  
 पठग ५९  
 पठाप ६७  
 पठान ४६८  
 पठवर १  
 पठिगच्च (पठिकच्च) ५७  
 पठिमा ६०  
 पठिवस्त्रक ४४  
 पठिवस्त्रमृप्याद ४६८  
 पठिवेसलिना वस्त्रमा ३१२, ३१३, ३१४  
 पठिमल्लान ४७  
 पठिसक्ता ४३१  
 पठम ६०  
 पठवी ६०  
 प्रणति २८  
 पर्णिता ३६८  
 पर्ति २६  
 पर्वतम ६२४  
 पर्वत्याद ६८  
 परामासतुम्पवृत्ता ३६८  
 परामासविष्पवत्ता अपरा मट्ठा ३६८  
 परामासविष्पवृत्ता परामट्ठा ३६८  
 परामट्ठा ३६८  
 परामासा ३६१  
 परामासा चेव परामट्ठा च ३६८  
 परामट्ठा चेव नो न परामासा ३६८  
 परामास-विष्पवृत्ता ३६८  
 परिज्ञानवार ४११, ४५२  
 परियाय (पलियाय) ४, ९  
 परिवस्त्रहार ४६८  
 परिक्षाहार ४६८  
 परिषापवित्ता ५०  
 परिवर्तय ६५

- वारिता १६१  
 वारिम ४७  
 वारितारम्मण ३६२  
 वारिकवारहार ४००  
 वलच्छर ५  
 वलिवनति ६१  
 वलिघ २०  
 वलिल (पलिल) ५१  
 वलिस्तवति ६१  
 वलिल ८  
 वक्ष ६२६  
 ववति-वार ४५५  
 ववेष्टति २०  
 वसद ५७  
 वसनतो ६२  
 वस्तु ५०  
 वस्त्रिवक ४४  
 वस्त्रिड ४०८  
 वलडारावज्ज्वल ३८८  
 वाकद १२  
 व्राणसतसहस्रामि २७, २८  
 वाचितिया घम्मा ३१२, ३१४, ३१८  
 वाचितिय २०, ३१३, ३२२, ३२३  
 वातिक-वातिल ८  
 व्राणसतसहस्रामि १७, २७, २८  
 वाति २६  
 वातिय ४८  
 वातसतसहस्रामि २७, २८  
 वानानि १८  
 वामुरण २०, ४७, ५१  
 वाम्पिक २०  
 वाणिकाधम्मा ३१५, ३१६  
 वाम्पन (पामुरण) ६१, ३०१, ५८२  
 वाह ५, ६  
 वालि ४, ५, ६  
 वाम्पच्छ ५, ५२  
 वाहुपेय ३२३  
 विति ७१  
 विविष्टतो ४०  
 वित्तस ७१  
 विवेषातक ४०  
 विवेषति ५१  
 विवक्ष ६७  
 विवरसिना ८३  
 विवरसि २७  
 विवदशिन १७, २७  
 विय ३७  
 वियवसिने २८  
 वियदशि १७, २७, २८  
 वियस २८  
 वियस २८  
 वियवसिनो २८  
 वियदशि २७, २८  
 विलक्ष ५०  
 विसील २६  
 वीतिसहगता ३६१, ३७२  
 वुच्छति ३१  
 वुच्छमा ४७  
 वुत ५२  
 वुच्छह ६५  
 वुर २५, २८  
 वुरा १७, २७, २८  
 वुरिस ५६  
 वुरिसकारे ३३  
 वुरे ३३  
 वुरेजात-वल्लयो ४६१  
 वुलुव १७, २७, २८  
 वेक्ख ३४  
 वेतवल्थ २१४८  
 वेव्याळ ६, १२८  
 वोक्खर ३८  
 वोम्मरणी ४६  
 वोण २६, ४७  
 वोर ४४  
 वोस्व ५४

## क

कासु ५६  
फल ५५  
फालक ५७  
फस्तो ३८९  
फोण ६७  
फ्रॉटवर ३४८

## ब

बधि ३०  
बनी ३०  
बहिरा २६३ ३९०४  
बहिरारमणा २६३  
बाहनी (बहानी) ५६  
बहिरो ५४  
बहुप्रवार ५३  
बृद्धान सामुक्कसिका घम्मदेसना  
१२३, ६२३,  
बृद्धासे १३७, ६९  
बुढ़ेहि ३०  
बुधे १०  
ब्रह्मेति ६७

## भ

भिलखुम ३८  
भिलखहि ३८  
भगवा ६८  
भारिय ३४  
भासने २९  
भावनाय पहातव्वा ३६१  
भावताय पहातव्वहेतुका ३६१  
भिलखे ८२, १३, १४, १५  
भिलक्क ५३  
भेसज्ज ५३

## म

महल ६८

मविलका ६३  
मग ३९, ४०, ४९  
ममाजिन २६९  
मम-यच्चया ४६२  
मगो २३, २८  
ममाहेतुका ३६२  
ममाधिगतिनो ३६२  
ममारमणा ३६२  
मन्दस्मेवोदके ५३  
मच्छेर ५०  
मत ५०  
मतिक ५३  
महव ५१  
मह ६५  
मरियादा ५०  
'मसे' २९  
महगति ३६२  
महगमतारमणा ३६२  
माकुण (मकुण) ५३  
मामन्दिय २०  
मातिकत्वदीपनी ५३९  
मातिगमतो १०  
मातुधातक ४०  
मुख ३७, ५५  
मखपाठसेन ३३२  
मुलोदक ५३  
मुम ६४  
मुच्चति ६७  
मूर्तग २०, १५  
मूर्तीमा ४६  
मूर्तिता (मुड्ला) ५३  
मुकाल ६०  
मूल या मूल ४०  
मैता ४५  
मौर्चेति ४९  
मौर (मूर) ५०  
मौरिय ३८, ४३

## च

- चटिका (लटिका भी) ११  
 यर्षांव ५३  
 यवाज्ज्ञानयेन ४३  
 यवासन्यतिकंग ४९१  
 यमामने २९  
 यस्मिन्दिवाणि ५३  
 याव ५६  
 याम् ५६  
 युमिहार ४६८  
 येव ३३

## र

- रव ०३  
 रजाय (रजायथ) ५०  
 रज्जा ३१  
 रम्म ६५  
 रहद ६१  
 राजो २८  
 राज ५५  
 राजा १७, २३  
 राजिने २०, २८  
 राजिनो ३१  
 राजूल ४७  
 रक्त ४०  
 रामो ३३  
 रहिद (रहिद) ५८  
 रुपा २९  
 स्वामि (ल्पान भी) ५१  
 स्विनो (प्रम्मा) ३६४

## त

- तरलण्हार ४६८  
 लमा ६४  
 लघमेस्सति ५३  
 लह ५८  
 लोला ४१  
 लापुलोवाद १७, १९

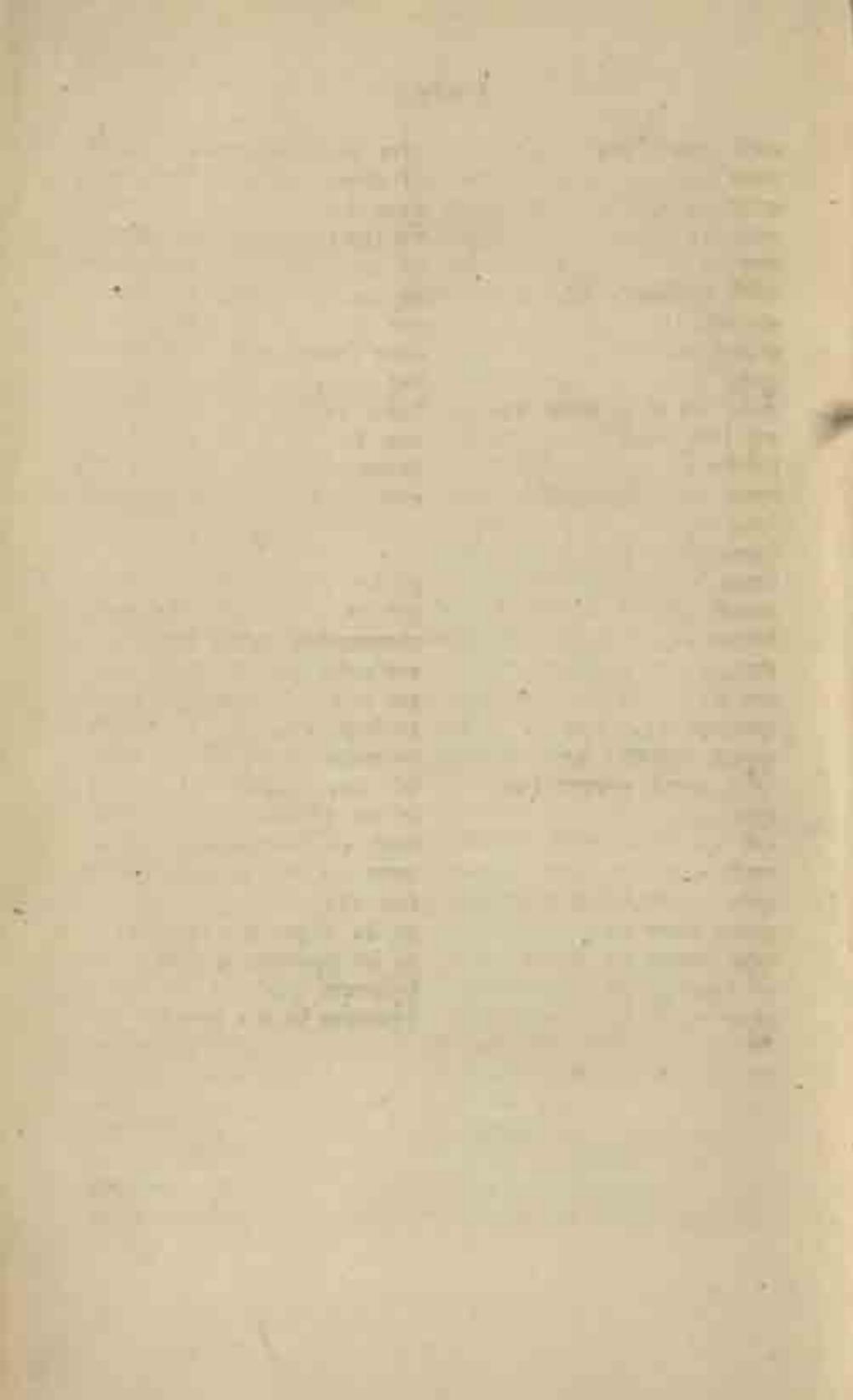
- लाला १७, २७  
 लाजिना २७  
 लाजिने २८  
 लृत्यति ५५  
 लूइ ४८, ५५  
 लोकस्साति ५३  
 लोण ४९

## व

- वक ३१  
 व क (वाक) ४२  
 वचिर ५१  
 वडवति ६०  
 वडिड ४०  
 वध ३३  
 वसन ४८  
 वाक ६४  
 वादी ५५  
 वाग्नो-भाग्य ४३९  
 वासना-निवेष-भाग्य ४६१  
 व्याकलो ५३  
 व्यावट ६०  
 व्याथ ४८  
 विकट (विकृत) ३१  
 विचय-हार ४६८  
 विचित्रक ३१  
 वितको ३८६, ३९२  
 विन्ध २६  
 विंससना ४६९  
 विष्युत ४१८, ४४०  
 विष्कार ४३६  
 विष्युतेन विष्युतो ४१४  
 विष्युतेन सगहितं असगहितं ४१४  
 विष्युतेन सम्प्युतं ४१३  
 विष्यहातवे ५०  
 विभलि-हार ४६८  
 विभगवार ४६७  
 विश्य ४६

- विमोक्ष (विमोक्ष) ४२  
 विरियन्द्रिय ३८९  
 विल ६५  
 वौतिवत ८८  
 वीरिय ३८३  
 वीमसस्ति ६१  
 वीति (वीत) ८३  
 वृच्छति ६५  
 वृद्धि ४०  
 वे ४८  
 वेलु ५, ३३, ३५  
 वेष्ट ३८  
 वेवनन-हार ४६८
- स
- स-उत्तरा २७३  
 सकटभासाय २२  
 सका निरुति २३  
 सकाय निरुत्तिया २२, २३, २४, २५,  
     २६  
 सक्षिकाति ६८  
 सक्षिव (सक्षिव) ३०  
 सक्षिभाव (सक्षीभाव) ५२  
 सक्षाय ५३  
 सत-सद- सय-सज-सी— १८  
 सतिमती (सतीमती) ११  
 सत ६३  
 सत्यबाही ५६  
 सह ६३  
 सगहित ४१२  
 सष्ठि ६६  
 सन्तीरण ३८१  
 सनिद्वस्सन-सप्पटिया ३६३  
 सनिद्वस्सना ३६५  
 सप्पच्चया ३६४  
 सप्पटिया ३६४  
 सप्पीतिका ३७२  
 समन्तीष्ठि ५३
- समृद्धतामे २३६  
 समृज्जनी ४६  
 समृति ४५  
 संवह ६५  
 सम्मदलो ५३  
 सवनाय ५३  
 सशासा ३७३  
 सशाव २६  
 सविचारा ३७२  
 सवितवक-सविचारा ३६८  
 सवितवक ३७२  
 समस्तारिक ३७३, ३८०  
 सहित (सहिता) १  
 सहेतुका ३६४  
 सहेतुका चेव न च हेतु ३६४  
 सकिलिद्ध-सकिलेसिका ३६०  
 सकिलिद्धा ३६०  
 सकिलेसिका ३६०  
 सक्षमली (सक्षमिका) ४६  
 संकुण ६०  
 सखता ३६६  
 सगहितेन सम्प्रवत् विष्यवत् ४१४  
 सगहितेन असगहित ४१३  
 सम्मयीगो विष्यवागो ४१३  
 सम्प्रवतेन विष्यवत् ४१३  
 सगहितेन सगहित असंयहित ४१४  
 सम्प्रवतेन सम्प्रवत् ४१४  
 संयोजन-विष्यवुत्ता ३६५  
 संयोजनविष्यवुत्ता संयोजनिया ३६६  
 संयोजनविष्यवुत्ता असंयोजनिया ३६६  
 संयोजनसम्प्रवत् चेव नो च संयोजना  
     ३६६  
 संयोजनसम्प्रवुत्ता ३६६  
 संयोजना ३६६  
 संयोजनिया ३६६  
 संयोजना च संयोजनिया च ३६६  
 संयोजना चेव संयोजन-सम्प्रवुत्ता ३६५  
 संयोजनिया चेव नो च संयोजना ३६५

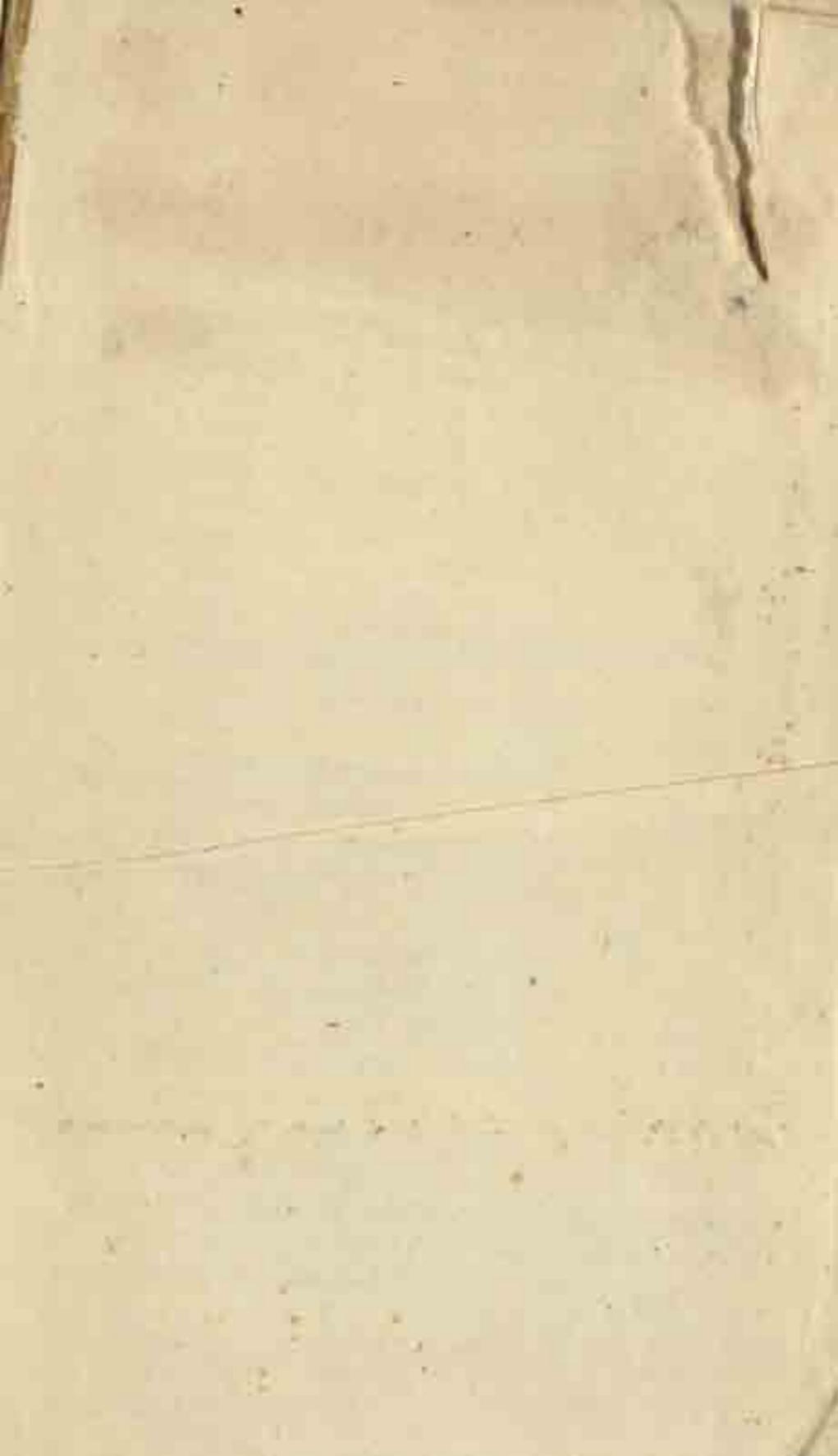
संवरी (सावरी) ४३	मुण्डन ४९
समयो ३१०	मुशिय (नृथ्य) ८३
सामूल ५७	मृमूल ४५
सांज्य ४३	सुत (सूक) ५८
साण ४०	सुवे ३३
सायति (सादियति) ५८	सुसु ८१
सारमणा ३६८	सुसम ४४
सावित्री २२	संख्या (बम्मा) ३६१
सासवा ३६१	सेम्ह ३८, ६५
सासवा चेव नो च आसवा ३६५	मेयथा ३३
साहु (साषु) १८	मेया ३८
सिगिवेर ४६	मोत्थान ४०
सिनान ३४	सोण ८१, ६४
सिनेह ५१	
सिन्धव ४४	ह
सिन्धुल ५२	हट ५९
सिन्धुली ५२	हृदय ३१
सिरिसप ४५	हसितृप्याद-चित्त ३८४
सीह ४३	हान भागीय १४८
सुचक ६५	हार ४६७
सुखसहगता ३६०, ३७२	हार-विभंग ४६७
सुखमाल (सुकुमार) ५९	हार-सम्पात ४६७
सुखाय वेदनाय सम्युक्ता ३६०	हिरि २४०, ३१०
सुलम ५१	हिरिवल ३८०
सुजा ५७	हियो ५०
सुणाहि ७०	हिलाद ५१
सुणोध ३०	हीना ३६२
सुतमया पञ्जा ४११	हेतु चेव सहेतुका च ३६४
सुनव (शुनक) ५९	हेतु चेव हेतुसम्पयुक्ता च ३६४
सूक (सूक) ५०	हेतुविषयुक्ता ३६४
सुमग्न ४५	हेतुसम्पयुक्ता चेव न च हेतु ३६४



## शुद्धिपत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१८५	१३	नहे	नहि
१८६	१७	पाइता	पइता
१८७	१४-१६	पालि साहित्य संबंधी लेख	
१८८	पद-संकेत की प्रथम पंक्ति	हम	इस
२१	१९	चाल्द-नाधन	चाल्द-नाधन
३१	पद-संकेत की अंतिम पंक्ति	प्रकृष्ट विदुः	प्रकृष्ट प्राइत विदुः
६०	१७	ऐरिस	एरिस
१२१	२१	मिनयेक	मिनयेक
१२८	पद-संकेत की पांचवीं पंक्ति	पूर्वगत	पूर्वगत
१२९	२४	करिस्तामि	करिस्तामि
१६१	२२	बोज्ज्ञ	बोज्ज्ञ
२२३	८	सम्मोहि	सम्मोहि
२५२	३	उपसम्भावा	उपसम्भदा
२७८	१८	भवला	भवला
३३०	१०	अनुभव	अनुभव
४८९	२	सञ्चेत	सञ्चेव
४९५	१०	अट्टकावाय	अट्टकवाय
४९९	पद-संकेत की दूसरी पंक्ति	बुद्धकोण	बुद्धकोण
५०४	५	पालि-सात्ति	पालि-साहित्य
५०५	६	प्रम्मकिति महासामि (घर्मकीति महास्वामी)	महामंगल
५०९	पद-संकेत की अंतिम पंक्ति	जा तो	जातो
५१०	१०	विमुद्दमग्न	विमुद्दिमग्न
५१०	१६-१७	मञ्जिकम-निकामा	मञ्जिकम-निकाम
५१५	पद-संकेत की पहली पंक्ति	विमुद्दिमग्नो	विमुद्दिमग्नो
५२६	२०	विशेष	विश्व
५२७	११	कार्यकर्मजता	कार्यकर्मजता

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५४०	१	विनया, विनिच्छपटीका	विनयविनिच्छप टीका
५४०	११	बुद्धदत्त	बुद्धदत्तहत्त
५४०	२६	दाठावंस	दाठावंस
५४२	२७	बुद्धधोमुण्डति	बुद्धधोमुण्डति
५५०	९	गन्धो	गन्ध
५५८	११	सातव	सातव
५६२	१०	संगति	संगीति
५६२	२२	समाश्रयणीय	समाश्रयणीय
५६३	१६	इसिपतल	इसिपतल
५६३	२३	सुदक	सुदक
५६४	३	बुद्धकोष	बुद्धघास
५७०	१५	समन्तपासादिका	समन्तपासादिका
५७५		२२४६	१२४६
५७५	१३	दाठावंस	दाठावंस
५७६	१५	गन्धत	गन्धवंस
५७७	२२	मुहूरामठ्ठकाचा	मुहूरामठ्ठकाचा
५७८		परमत्वविनिच्छयं	परमत्वविनिच्छयं
५७८		मुखोवलकार	मुखोवलकार
५७९	४	मवसोमालान	मवसोमालान
५८०	१५	सहृदयभेदचिन्नाय	सहृदयभेदचिन्नाय
५८०	१४	उत्त	उत्त
५९५		विदरनिरत्व	विटरनित्व
६०१		पाणिनीय	पाणिनीय
६०३		अन्त	अन्थ
६०३		उपकार	उपकारी
६११, ६१२, ६१३		मेदिल	मेदिल
६१२		विनत्यत्यप्यकरण	विनत्यत्यप्यकरण
६१३		सूक्ष्मदरवासिदि	सूक्ष्मसिद्धि
६१३		विजितावीसे	विजितावी सो
६४४	२१	राजनीतिक	राजनीतिक
६४६	९	कसीटी पर भरा	कसीटी पर उत्तरा भरा



✓

✓/28/30

✓	/	2	8	/	3	0
✓	/	2	8	/	3	0
✓	/	2	8	/	3	0
✓	/	2	8	/	3	0
✓	/	2	8	/	3	0

D.G.A. 80.

CENTRAL ARCHAEOLOGICAL LIBRARY

NEW DELHI

Issue record.

Call No.— 891.3709/Upa-8684

Author— Upadhyaya, Bharat Singh.

Title— "Alī sāhitya kā itihāsa."

Borrower's Name

Date of Issue

Date of Return

"A book that is shut is but a block"

CENTRAL ARCHAEOLOGICAL LIBRARY  
GOVT. OF INDIA  
Department of Archaeology  
NEW DELHI.

Please help us to keep the book  
clean and moving.